अद्वैतसिद्धिः ।

द्वितीयो भागः

म० श्रीयोगेश्वरदत्तशास्त्री

देश गुजरात पेटलाद निवासि शेठश्री नारणभाई केशवलाल
तरफसे ब्र: हरिदेव शर्मा द्वारा पूं-पंडितश्री राधाकान्त
झा जीको भेट ता. ७-३-३६ - संवत् - १९९२ - फाल्गुन
शुक्ला चतुर्दशी शनिवार.

॥ श्रीः ॥

श्रीस्वामिमधुसूदनसरस्वतीप्रणीता ।

अद्वैतसिद्धिः ।

ब्रह्मचारिश्रीरामेश्वरदत्तशर्म्मप्रणीतसरलाख्यव्याख्यया

सम्वलिता ।

द्वितीयो भागः

तेनैव संस्कृता च ।

सेयं

मुम्बय्यां

'मणिलाल इच्छाराम देशाई' इत्यनेन स्वकीये गुजरातीमुद्रणयन्त्रालये,
श्रीपेटलादवास्तव्यकेशवलालात्मजश्रीनारायणभाई
श्रेष्ठिने मुद्रिता ।

वि० सम्वत् १९८०. शके १८४५.

प्राप्तिस्थानम्—

राज्यरत्ननगरसेठ नारायणभाई केशवलाल.

पेटलाद, वडोदा स्टेट, देश—गुजरात ।

"गुजराती" प्रिन्टिंग प्रेसमें

मणिलाल इच्छाराम देशाई इन्होंने छापा.

कोट–सरकल, सासून बिल्डिंग, नं० ८ बंबई.

॥ श्रीः ॥

द्वितीयपरिच्छेदः ।

अथ अखण्डार्थलक्षणोपपत्तिः ।

हेयं निरूप्य बन्धाख्यं तन्निवृत्तेर्निबन्धनम् ।
यज्ज्ञानं तदखण्डार्थमादेयमधुनोच्यते ॥ १ ॥

तच्चाखण्डार्थं द्विविधम् । एकं पदार्थनिष्ठम्, अपरं वाक्यार्थनिष्ठम् । एकैकञ्च पुनर्वैदिकलौकिकभेदेन द्विविधम् पदार्थनिष्ठं वैदिकमपि द्विविधम् । तत्पदार्थनिष्ठम् त्वंपदार्थनिष्ठञ्च । तत्र सत्यं ज्ञानमनन्तमित्यादि तत्पदार्थनिष्ठम् । योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः इत्यादि त्वंपदार्थनिष्ठम् । प्रकृष्टप्रकाश इत्यादि तु लौकिकं पदार्थनिष्ठम् । वाक्यार्थनिष्ठमपि वैदिकं "तत्त्वमस्यादि वाक्यम्" सोऽयं देवदत्त इत्यादि तु लौकिकम् ॥

अथ सरलायामखण्डार्थलक्षणोपपत्तिः ।

मङ्गलम् ।

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥

हेयमिति । बन्धनामक हेयका निरूपण कर तन्निवृत्तेः=बन्धकी निवृत्तिका निबन्धन=हेतु जो ज्ञान है वह अखण्डार्थ हुआ आदेय है, अत एव तथाविध अथ निरूपण किया जाता है। तच्चाखण्डार्थम्=और वह अखण्डार्थ वाक्य तो दो प्रकारका है। एक वाक्य पदार्थनिष्ठ है और दूसरा वाक्यार्थनिष्ठ है। और फिर एक एक वाक्य वैदिकलौकिकभेदसे दो प्रकारका है=पदार्थनिष्ठअखण्डार्थवाक्य दो प्रकारका है, लौकिक तथा वैदिक, तैसे वाक्यार्थनिष्ठ अखण्डार्थक वाक्य दो प्रकारका है लौकिक तथा वैदिक। पदार्थनिष्ठ वैदिक वाक्यभी दो प्रकारका है, तत्पदार्थनिष्ठ तथा त्वंपदार्थनिष्ठ तत्र=उक्त दोनोंमें–'सत्यं ज्ञानमनन्तम्' (तै० २।१।१) इत्यादि तत्पदार्थनिष्ठ है 'योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः पुरुषः' (बृ० ४।३।७) इत्यादि त्वंपदार्थनिष्ठ है। प्रकृष्टप्रकाश, इत्यादि लौकिकअखण्डार्थक वाक्य पदार्थनिष्ठ है। और वाक्यार्थनिष्ठ वैदिक वाक्य तो तत्त्वमस्यादि हैं। और वाक्यार्थनिष्ठ लौकिकवाक्य 'सोऽयं देवदत्तः' इत्यादि हैं।

अत्राहुः—किमखण्डार्थत्वम्? न तावन्निर्भेदार्थत्वम्; यतो निर्भेदार्थत्वस्य शब्दबोध्यत्वे विशेषणतायामुपलक्षणतायां च 'निर्घटं भूतलमितिवत्' सखण्डार्थतैव स्यात्,

शब्दाबोध्यत्वे तु वस्तुगत्या यन्निर्भेदं ब्रह्म तद्बोधकसगुणवाक्यानामपि अखण्डार्थत्वापत्तिः। अथ यन्निर्भेदं वस्तुगत्या तन्मात्रपरत्वम्, न; प्रकृष्टप्रकाशादिवाक्येऽव्याप्तेः, तेषां धर्मिसमसत्ताकभेदवद्वस्तुपरत्वेन वस्तुगत्या निर्भेदार्थनिष्ठत्वाभावात्। अतएव निर्विशेषार्थत्वमपि न। नापि अपर्यायशब्दानां प्रातिपदिकार्थमात्रपर्यवसायित्वम्; शीतोष्णस्पर्शवन्तौ पयःपावकावित्यादावनेकप्रातिपदिकार्थपरेऽतिव्याप्तेः। नच सम्भूयार्थपरत्वमत्र नास्त्येव, प्रत्येकं त्वेकैकार्थपरत्वं लक्षणवाक्यत्वादिति नातिव्याप्तिरिति–वाच्यम्, तथापि ब्रह्मणि अभावात्, अभिधया लक्षणया वा वेदान्तवाक्यानां निःसम्बन्धे ब्रह्मणि पर्यवसानानुपपत्तेः।

यहाँपर कहते हैं—अखण्डार्थत्व क्या है? निर्भेदार्थत्वरूप तो अखण्डार्थत्व नहीं हो सकता है=निर्भेदार्थत्व यहाँपर भेदाभावमें शब्दबोध्यत्व विवक्षित है या भेदाभावका स्वरूपसे ब्रह्ममें सत्त्वमात्र विवक्षित है, शब्दबोध्यत्व नहीं, और आद्यपक्षमें भी क्या वाक्यमें भेदाभावविशिष्टार्थप्रतिपादकत्व अभिप्रेत है या भेदाभावोपलक्षितार्थप्रतिपादकत्व अभिप्रेत है, इस रीतिसे विकल्पकर आदिम दोनों पक्ष नहीं बनसकते हैं–यत इति। यतः निर्भेदार्थत्वस्य=भेदाभावको शब्दबोध्यत्व होनेपर भेदाभावको विशेषणता या उपलक्षणता होनेपर। 'निर्घटं भूतलम्' इस वाक्यको जैसे घटाभावप्रकारकभूतलविशेष्यकबोधजनकत्वेन सखण्डार्थता है, तैसे ब्रह्मबोधकवाक्योंको भेदाभावप्रकारकब्रह्मविशेष्यकबोधजनकत्व होनेसे सखण्डार्थता होगी। अन्तिमपक्षका निषेध किया जाता है=शब्दबोध्यत्वे इति। भेदाभावको शब्दबोध्यत्व न होनेपर तो वस्तु स्थितिसे जो निर्भेद ब्रह्म है तद्बोधकसगुणवाक्योंकोभी अखण्डार्थत्वकी आपत्ति है। यदि यों कहो कि वस्तुगत्या जो भेदरहित पदार्थ है तन्मात्रपरत्व अखण्डार्थत्व है, तो ऐसा नहीं कहसकते हो। क्यों? प्रकृष्टप्रकाशादि वाक्यमें अव्याप्ति होनेसे=यहाँपर इस बातको ध्यानमें रखनी चाहिए कि–लक्षणवाक्योंको अखण्डार्थक वाक्य कहा जाता है, क्योंकि प्रश्नकर्ता वस्तुके स्वरूपमात्रको पूछता है अतः उत्तरदाताकोभी स्वरूपमात्र ही कहना उचित है अन्यथा प्रश्नोत्तरोंका वैयधिकरण्य हो जायगा तथाच लक्षणवाक्योंको अखण्डार्थवाक्य कहा जाता है, किसीने किसीसे पूछा कि,–'कश्चन्द्रः' उत्तर दाताने उत्तर दिया कि, प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्रः, तथा च लक्षणवाक्य होनेसे यह वाक्य अखण्डार्थ है, परन्तु इसको धर्मिसमसत्ताक जो भेद तादृश भेदवत् जो वस्तु तादृशवस्तुपरत्व होनेसे वस्तुगत्या निर्भेदार्थनिष्ठत्व इसमें नहीं है तथाच अव्याप्ति है, इसी रीतिसे अन्यत्र भी समझना उचित है। अत एव=उक्त प्रकारसे उक्त दोषोंके विद्यमान होनेसे ही निर्विशेषार्थत्वरूपभी अखण्डार्थत्व नहीं बन सकता है,=भेदाभावकी जगहमें विशेषाभावको अभिषिक्त कर उक्त प्रकारसे सर्व दोषोंका उद्भावन करना उचित है। अपर्यायशब्दोंका प्रातिपदिकार्थमात्रपर्य्यवसायित्व=भिन्नरूपेण स्वार्थस्मृतिद्वारा एकमात्रप्रातिपदिकार्थानुभावकनानानामत्वरूपभी अखण्डार्थत्व नहीं बन सकता है=घटः कलशः, इत्यादिके वारणके लिए 'अपर्याय' विशेषण दियागया है 'भिन्नरूपेण स्वार्थस्मृतिद्वारा' इतना अर्थ

इसीका है 'घटः कलशः' इसमेंभी एकमात्रप्रातिपदिकार्थानुभावकनानानामत्व तो है, परन्तु भिन्नरूपेण, स्वार्थस्मृतिद्वारा नहीं, क्योंकि घट तथा कलश इन दोनोंसे घटत्वेन ही कुम्भकी उपस्थिति होती है नकि भिन्न रूपसे । क्यों ? अनेकप्रातिपदिकार्थपर जो 'शीतोष्णस्पर्शवन्तौ पयःपावकौ' इत्यादि वाक्य हैं, उन्होंमें अतिव्याप्ति होनेसे=अनेकप्रातिपादिकार्थपरत्व होनेसे इसको अलक्ष्यत्व है । और 'कीदृशः पयः पावकौ' ऐसा प्रश्न होनेपर इस लक्षणवाक्यको प्रवृत्त होनेसे प्रश्नोत्तरोंका वैयधिकरण्य न हो जाय इस लिए इस वाक्यको पयःपावकरूप-प्रातिपदिकार्थमात्रपर्य्यवसायित्व है, अतः अतिव्याप्ति है । यदि यों कहोकि,–यहाँपर सम्भूय=मिलकर अर्थपरत्वम्=एकनामार्थमात्रपरत्व नहीं ही है, और प्रत्येकको तो एक एकार्थमात्रपरत्व है लक्षणवाक्य होनेसे अतः अतिव्याप्ति नहीं है तो ऐसा नहीं कहना, क्योंकि ऐसा होनेपरभी ब्रह्ममें अभाव है, अभिधासे या लक्षणासे वेदान्तवाक्योंके निःसम्बन्ध ब्रह्ममें पर्य्यवसानकी अनुपपत्तिसे ।

अतएव नैकविशेष्यपरत्वमपि, तद्विशिष्टैकविशेष्यबोधकनीलोत्पलादिवाक्ये अतिव्याप्तेरिष्टापत्तेश्च । यच्च अपर्यायशब्दानां संसर्गागोचरप्रमितिजनकत्वं वा तेषामेकप्रातिपदिकार्थमात्रपर्य्यवसायित्वं वा अखण्डार्थत्वम् । तदुक्तं पञ्चपादिकाकृद्भिः–'पदानां परस्परानवच्छिन्नार्थानाम् अनन्याकाङ्क्षाणां अव्यतिरिक्तैकरसप्रातिपदिकार्थमात्रान्वयः इति । उक्तञ्च तत्त्वप्रदीपिकाकृद्भिः–संसर्गासङ्गिसम्यग्धीहेतुता या गिरामियम् । उक्ताऽखण्डार्थता यद्वा तत्प्रातिपदिकार्थता (चि० प० १ का० २३) ॥ इति ॥ तन्न; आद्ये अप्राप्तयोः प्राप्तिः संयोग इत्यादौ संयोगलक्षणवाक्येऽव्याप्तेः । अथ पदस्मारितपदार्थसंसर्गाप्रमापकत्वं विवक्षितम्, तत्रापि द्विपदन्नं न भोक्तव्यमित्येतत्परे 'विषं भुङ्क्ष्वेति' वाक्ये अतिव्याप्तिः; ।

अतएव—एकविशिष्यपरत्वभी अखण्डार्थत्व नहीं हो सकता है, अतएव शब्दके अर्थको स्पष्ट करते हैं । तदिति । तद्विशिष्ट=नीलत्वविशिष्टएकविशिष्यबोधक 'नीलमुत्पलम्' इत्यादि वाक्यमें अतिव्याप्तिसे=एकविशेष्यपरत्वलक्षण करनेसे शीतोष्णस्पर्शवन्तौ पयःपावकौ इसको पयःपावकरूपानेकविशिष्यपरत्व होनेसे इसमें अतिव्याप्ति नहीं है, परन्तु उत्पलमें नीलिमाके संसर्गका बोधकत्व होनेसे 'नीलमुत्पलम्' इसको सखण्डार्थत्व है, परन्तु उत्पलरूप एकविशेष्यपरत्व होनेसे अखण्डार्थत्वकी अतिव्याप्ति है । 'नीलमुत्पलम्' यह लक्षणवाक्य नहीं बन सकता है, क्योंकि नीलिमा मण्यादिमेंभी रहती है । इष्टापत्तेश्च=सर्व वेदोंको अनन्तगुणविशिष्टभगवद्रूपैकविशेष्यप्रतिपादकत्वरूपाखण्डार्थका हम लोगोंसे अङ्गीकार होनेसे उक्तविध अखण्डार्थत्वमें हमको इष्टापत्ति है । अपर्य्यायशब्दोंका जो संसर्गागोचर प्रमितिजनकत्व है वह अखण्डार्थत्व है=' घटः कलशः' 'हस्तः करः' इत्यादिमें अतिव्याप्तिवारणार्थ अपर्य्याय दिया गया है, इन्द्रियोंमें अतिव्याप्तिवारण करनेके लिए शब्दका निवेश है । 'घटमानय' इत्यादिमें अति-

व्याप्तिवारणके लिए संसर्गागोचर दिया गया है, वाक्याभासमें अतिव्याप्तिवारणके लिए प्रमिति दिया गया है। 'पङ्कजमानय' एतद्वाक्यघटकयौगिक पङ्कज पदमें अतिव्याप्तिवारणार्थ बहुवचन है, क्योंकि पङ्कज तथा आनयन ये दोनों मिलकर ही संसर्गका प्रतिपादन करते हैं, केवल पङ्कज नहीं, फलतः प्रकृत पदार्थ जो पद्मरूप तथा आनयनरूप है तन्निरूपित जो संसर्ग तादृश संसर्गागोचरप्रमितिजनकत्व है अतः केवलपङ्कजपदमें अतिव्याप्ति है, अथवा अपर्यायशब्दोंका एकप्रातिपदिकार्थमात्रपर्य्यवसायित्वरूप 'अखण्डार्थत्व है। सो कहा है पञ्चपादिकाकारने,– अनन्याकाङ्क्षाणाम्=परस्पर आकाङ्क्षासे रहित परस्परानवच्छिन्नार्थानाम्=अपर्यायशब्दोंका जो अव्यतिरिक्तैकरसप्रातिपादिकार्थमात्रान्वयित्व वह अखण्डार्थत्व है। तत्त्वप्रदीपिकाकारनेभी कहा है,–गिराम्=अपर्य्यायशब्दोंको जो संसर्गागोचरप्रमितिकी हेतुता है वह अखण्डार्थता है अथवा, अपर्य्यायशब्दोंको प्रातिपदिकार्थमात्रपर्यवसायित्वरूप अखण्डार्थत्व है, इति यत् तत् तु न। क्यों? आद्यलक्षणमें=अप्राप्तयोः प्राप्तिः संयोगः, इत्यादिसंयोगलक्षणवाक्यमें अव्याप्ति होनेसे=लक्षणवाक्यत्व होनेसे इसमें अखण्डार्थत्व चाहिए परन्तु संयोगरूप संसर्गगोचरप्रमिति-जनकत्व होनेसे संसर्गागोचरप्रमितिजनकत्वघटित लक्षण नहीं है अतः अव्याप्ति है। अथ= यदि यों कहो कि,–पदस्मारित जो पदार्थ हैं तादृश पदार्थोंका जो संसर्ग तादृशसंसर्ग–अगो-चरत्व विवक्षित है, उक्त स्थलमें पदस्मारित संसर्गही प्रमाका गोचर है न कि,–पदस्मारित पदार्थोंका संसर्ग, संयोगको स्वतः ही पदार्थरूपता होनेसे, तो ऐसा नहीं कहना,–क्योंकि उक्तविध विवक्षासे उक्तस्थलमें अव्याप्ति वारित होनेपरभी 'शत्रुका अन्न भोक्तव्य नहीं है' एतदर्थपर 'विषं भुङ्क्ष्व' इस वाक्यमें अतिव्याप्ति है=इस वाक्यको पदस्मारितपदार्थसंसर्ग जो विषकर्मक भोजन तत्प्रमापकत्व नहीं है अतः अतिव्याप्ति है।

नच—द्विषदन्नं न भोक्तव्यमिति शास्त्रमूलत्वेन शास्त्रीयपदस्मारितपदार्थ–संसर्ग-प्रमापकत्वादत्र नातिव्याप्तिरिति–वाच्यम्; युक्तिमूलत्वेनास्य शास्त्रमूलत्वासिद्धेः। अथ प्रतिपिपादयिषितपदार्थसंसर्गाप्रमापकत्वमत्र विवक्षितम्, तत्राप्यसंभवः, चन्द्रब्रह्मादि-शब्दार्थानां स्वरूपतो ज्ञाततयाऽप्रतिपिपादयिषितत्वेन संसर्गविशेषप्रतियोगित्वेनैव प्रति-पिपादयिषितत्वात्। अतएव न द्वितीयलक्षणमपि, तथाच लक्षणासंभवात् प्रमाणमप्य-संभवि, अलक्षिते प्रमाणस्योपन्यसितुमशक्यत्वात् इति।

शङ्कते नचेति। इस वाक्यको द्विषदन्नकर्मक भोजन कर्तव्य नहीं है, इत्याकारकशास्त्र-मूलत्व होनेसे शास्त्रीय पदोंसे स्मारित जो पदार्थ तादृश पदार्थ–संसर्गका प्रमापकत्व है, अतः इस वाक्यमें अखण्डार्थत्वकी अतिव्याप्ति नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्यों? युक्तिमूलत्व होनेसे इसके शास्त्रमूलत्वकी असिद्धिसे=यह पुरुष इस कालमें अप्रसक्त शत्रुगृहमें भोजनको देखकर मद्विषयक क्रोधवान् है आप्त होके प्रमाणविरुद्ध कर्त्तव्यताको कहनेवाला होनेसे, अतः शत्रुका अन्न भोक्तव्य नहीं है, इसी अभिप्रायसे इसने इस वाक्यका प्रयोग किया है अतः मुझको शत्रुगृहमें भोजन नहीं करना चाहिए, इत्याकारकयुक्तिमूलत्व इस वाक्यको है नकि,–

शास्त्रमूलत्व। अथ=यदि प्रतिपिपादयिषित=प्रतिपादनकरनेकी इच्छाका विषयीभूत जो संसर्ग तादृशसंसर्गागोचरत्व यहाँपर विवक्षित है। वैसा होनेपरभी असम्भव है=विषं भुङ्क्ष्व यहाँपर प्रतिपादन करनेकी इच्छाका विषयीभूत संसर्ग 'द्विषदन्न भोक्तव्य नहीं है' इत्याकारक है तद्गोचरत्व इस वाक्यको है ही अतः अतिव्याप्ति नहीं है परन्तु असम्भव है; क्यों? चन्द्र-ग्रहादिरूप जो शब्द हैं तिन शब्दोंके अर्थोंको स्वरूपतः ज्ञात होनेसे स्वरूपतः प्रतिपादयिषि-तत्व नहीं है अतः संसर्गविशेषप्रतियोगित्वेन ही उन्होंको प्रतिपादयिषितत्व है और जब यों हुआ तब तो किसीभी लक्षणवाक्यको संसर्गागोचरप्रमितिजनकत्व नहीं है, अतः असम्भव है। अतएव=उक्त रीतिसे संसर्गागोचरप्रमितिजनकत्वके अभावसे ही द्वितीयलक्षण=अपर्याय-शब्दानां प्रातिपदिकार्थ–मात्रपरत्वरूप द्वितीय लक्षणभी नहीं बन सकता है। फलतः लक्षणके अभावसे प्रमाणका भी असम्भव है; अलक्षित पदार्थमें प्रमाणको उपन्यास करनेकेलिए अशक्यत्व होनेसे।

अत्रोच्यते—पदवृत्तिस्मारितातिरिक्तमत्र संसर्गपदेन विवक्षितम्। तथाचापर्याय-शब्दानां पदवृत्तिस्मारितातिरिक्तसंसर्गागोचरप्रमाजनकत्वमाद्यलक्षणं पर्य्यवसितम्। तथा च न संयोगलक्षणेऽव्याप्तिः; तस्य पदवृत्तिस्मारितत्वात् नापि द्विषदन्नभोजननिषे-धकेऽतिव्याप्तिः, तत्रानिष्टसाधनत्वसंसर्गस्य पदवृत्त्यस्मारितस्य प्रतिपाद्यत्वात् शीतोष्ण-स्पर्शवन्तौ पयःपावकावित्यत्र त्वखण्डार्थत्वमिष्टमेव, नच धर्मधर्मिभावासहमखण्डार्थत्वं कथं धर्मिभेदं सहतामिति वाच्यम्, एकत्रासहिष्णुतायाः सर्वत्रासहिष्णुतायामहेतुत्वात्, शीतस्पर्शवत् पयः, उष्णस्पर्शवान् पावक इति वाक्यार्थभेदाच्च। असम्भवस्तु तन्मात्र-प्रश्नोत्तरत्वात्, इति हेत्वसिद्ध्युद्धारे निरसिष्यते।

अत्रोच्यते=ऐसी शङ्का होनेपर कहा जाता है,–अत्र=प्रकृत लक्षणमें संसर्गपदसे पद-वृत्तिसे स्मारित जो संसर्ग तादृश संसर्गसे भिन्न जो संसर्ग वह संसर्ग विवक्षित है तथाच अपर्याय शब्दोंका पदवृत्तिस्मारित संसर्गसे अतिरिक्त–संसर्गागोचरप्रमितिजनकत्व, आद्य लक्षण पर्यवसित हुआ। फलतः ऐसा लक्षण होनेपर अब संयोगके लक्षणमें अव्याप्ति नहीं है तस्य= संयोगको पदवृत्तिसे स्मारितत्व होनेसे। और द्विषदन्नकर्मक भोजननिषेधक वाक्यमें अति-व्याप्तिभी नहीं है, क्यों? तत्र=उक्तार्थक वाक्यमें पदवृत्तिसे अस्मारित जो अनिष्टसाधनत्व-संसर्ग तादृश संसर्गको प्रतिपाद्यत्व होनेसे। और 'शीतोष्णस्पर्शवन्तौ पयःपावकौ' यहांपर तो अखण्डार्थत्व इष्ट ही है। शङ्कते नचेति। धर्मधर्मिभावासहम्=विशेषणविशेष्यभावको नहीं सहन करनेवाला जो अखण्डार्थत्व है वह धर्मिभेदम्=पदार्थद्वयविषयकत्व कैसे सहन करेगा, इति न च वाच्यम्, क्यों? एकत्र=विशेषणविशेष्यभावमें जो असहिष्णुता है उस असहिष्णु-ताको सर्वत्र=पदार्थद्वयविषयकत्वादि की असहिष्णुतामें अहेतुत्व होनेसे; और 'शीतस्पर्शवत् जल है' 'उष्णस्पर्शवान् पावक है' इस रीतिसे वाक्यार्थभेदसेभी=तथाच वाक्यद्वयघटक प्रत्येक

वाक्य लक्ष्य है नकि समुदित, तथाच कोई दोष नहीं । और असम्भव दोष तो ' तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्वात् ' इस हेतुसिद्धिके उद्धारमें निराकृत किया जायगा ।

अत्र च घटः कलशः इत्यादौ संसर्गाप्रमापके एकार्थपरेऽतिव्याप्तिवारणायापर्य्यायशब्दानामिति । तत्रापि बहुवचनेन सम्भूयैकार्थप्रतिपादकत्वस्य लाभान्न धवखदिरपलाशा इत्यादावतिव्याप्तिः । पदज्ञाप्येत्युक्ते अर्थापत्त्या पदज्ञाप्यमनिष्टसाधनत्वमादाय ' विषं भुङ्क्ष्वेति ' वाक्ये अतिव्याप्तिः स्यात्तद्वारणाय-वृत्तीति, तथाप्यन्विताभिधानवादिमते शक्त्याभिहितान्वयवादिमते च लक्षणया वाक्यार्थभूतसंसर्गस्य वृत्तिज्ञाप्यत्वात् सर्वत्र प्रमाणवाक्येऽतिव्याप्तिः स्यात्तद्वारणाय उक्तं स्मारितेति; आद्ये पक्षे कुब्जशक्त्यङ्गीकारात्, द्वितीयपक्षे चाज्ञाताया एव पदार्थनिष्ठाया लक्षणाया वृत्तित्वाङ्गीकारात् न संसर्गस्य पदस्मारितत्वम्, किन्तु अनुभाव्यत्वमिति—अतिव्याप्तिपरिहारः ।

अत्र च—इस लक्षणमें संसर्गाप्रमापक ' घटः कलशः ' इत्यादिमें अतिव्याप्तिवारणार्थ ' अपर्य्यायशब्दानाम् ' यह विशेषण दिया है । तत्रापि बहुवचनेन=अपर्य्यायशब्दके सान्निध्यविशिष्ट=अपर्य्यायशब्दप्रकृतिक बहुवचनसे मिलकर एकार्थप्रतिपादकत्वका लाभ होनेसे ' धवखदिरपलाशाः ' इत्यादि वाक्योंमें अतिव्याप्ति नहीं । पदज्ञाप्येत्युक्ते=पदवृत्तिस्मारित न कहं कर ' पदज्ञाप्य ' यह संसर्गका विशेषण देनेपर अर्थापत्त्या=द्विपदन्नकर्मकभोजनमिष्टसाधनम्, इस अर्थके विना ' विषं भुङ्क्ष्व ' इस आप्तोक्त वाक्यका अर्थवत्त्व अनुपपन्न है इत्यादिरूपार्थापत्तिसे पदज्ञाप्य जो अनिष्टसाधनत्व=द्विपदन्नभोजननिष्ठानिष्टसाधनत्वसंसर्ग उस संसर्गको लेके ' विषं भुङ्क्ष्व ' इस वाक्यमें अतिव्याप्ति होती उस अतिव्याप्तिको वारण करनेके लिए पदवृत्ति कहा है । तथापि अन्विताभिधानवादीके मतमें शक्तिसे ज्ञाप्य जो वाक्यार्थभूत संसर्ग उस संसर्गको वृत्तिज्ञाप्यत्व होनेसे, और अभिहितान्वयवादीके मतमें लक्षणासे वाक्यार्थभूत संसर्गको वृत्तिज्ञाप्यत्व होनेसे सर्वत्र प्रमाणवाक्यमें अतिव्याप्ति होगी उस अतिव्याप्तिके वारणके लिए 'स्मारित' कहा है । अन्विताभिधान और अभिहितान्वयवाद ये दोनों मत बहुत कालसे चले आते हैं, अभिहितान्वयवाद भट्टतार्किकादि बहुत लोगोंने अङ्गीकार किया है और अन्विताभिधान प्रभाकरका है, अभिहितान्वयवादमें पदार्थोंमें शक्ति मानी जाती है, फलतः प्रथम पदार्थोंकी उपस्थिति होती है पश्चात् वाक्यघटकपदजन्यपदार्थोपस्थितिविषयीभूतपदार्थोंका जो परस्पर संसर्ग है, जिसे कि,—वाक्यार्थ कहते हैं उसका ज्ञान पदार्थोपस्थितिसहकृत पदोंकी लक्षणासे होता है=वाक्यार्थविषयकज्ञान पद लक्षणावृत्तिसे उत्पन्न करते हैं वह लक्षणावृत्तिभी ज्ञात हुई शाब्दबोधकी उत्पादिका नहीं किन्तु स्वरूपसती, जैसे जातिशक्तिवादीके मतमें व्यक्तिमें शक्ति स्वरूपसती शाब्दबोधकी हेतु है ज्ञाता सती नहीं तद्वत् । और अन्विताभिधानवादमें तो संसर्गविशिष्टमें ही शक्ति मानी जाती है, संसर्गांशमें लक्षणा माननेकी जरूरत नहीं; इस मतमें प्रकृत्यर्थ तथा प्रत्ययार्थ इन दोनोंमें शक्ति ज्ञात हुई कार्य करती है, संसर्गांशमें स्वरूप सती शाब्दबोधरूप कार्यको उत्पन्न करती है,—ऐसी वस्तुस्थिति है; तहाँ कहते हैं—आद्यपक्षे=अन्विताभिधान

पक्षमें कुब्जशक्तिका अङ्गीकार होनेसे=यन्निरूपितत्वेन शक्तिका ज्ञान शाब्दबोधका हेतु न हो अथ च स्वरूपसती शक्ति यद्विषयक शाब्दबोधको उत्पन्न करती हो तद्विषयमें वह शक्ति कुब्ज-शक्ति कही जाती है, इसी लिए शक्तिवादमें=जातिशक्तिवादीकी रीतिसे व्यक्तिमें कुब्जशक्ति बतलाई गई है—तथाच इस पक्षमें पदको संसर्गस्मारकत्व नहीं है। द्वितीयपक्षे=अभिहितान्वय-वादमें तो पदार्थनिष्ठ अज्ञातलक्षणाका ही वृत्तित्व अङ्गीकृत होनेसे=शक्यसम्बन्धरूपलक्षणाका संसर्गमें सत्त्व होनेपरभी उसके ज्ञानकी अपेक्षा न होनेसे संसर्गको पदस्मारितत्व नहीं है, किन्तु पदनिष्ठाकाङ्क्षादिविषयकज्ञानतः अनुभाव्यत्व=अनुभवीयविषयताविशिष्टत्व है इस रीतिसे अतिव्याप्तिका परिहार है।

एवं द्वितीयमपि लक्षणं सम्यगेव। तत्राप्येकत्वं प्रातिपदिकार्थस्यैकधर्मावच्छेदेन वृत्तिविषयत्वम्, नत्वेकमात्रव्यक्तित्वम्। अतो यौगिकार्थौपगवादिप्रश्नोत्तरे 'श्यामो दीर्घः लोहिताक्ष औपगव' इत्यादौ अनेकार्थात्मके वनसेनादिप्रश्नोत्तरे एकदेशस्था वृक्षा वनमित्यादौ च नाव्याप्तिः। 'शीतोष्णस्पर्शवन्तौ पयःपावकाविति तु प्रत्येक-मेकैकार्थपरत्वात् संग्राह्यमेव। तदुक्तं कल्पतरुकृद्भिः—अविशिष्टमपर्यायानेकशब्दप्रकाशि-तम्। एकं वेदान्तनिष्णाता अखण्डं प्रतिपेदिरे॥ इति। ननु—प्रवृत्तिनिमित्तभेदे अपर्यायत्वम् स च अनन्तादिपदेषु न संभवति; शुद्धब्रह्ममात्रनिष्ठत्वात् अतो वेदान्तेषु लक्षणाऽव्याप्तिरिति—चेन्न; प्रवृत्तिनिमित्तभेदं स्वीकृत्यैव लक्षणयाऽनन्तादिपदानां शुद्ध-ब्रह्मपरत्वस्य वक्ष्यमाणत्वात्। नच शुद्धे सम्बन्धाभावान्न लक्षणापीति—वाच्यम्; अता-त्त्विकसम्बन्धेनैव लक्षणोपपत्तेः भ्रमप्रतीतरजतत्वेन सम्बन्धेन शुक्तौ रजतपदलक्षणावत्। शुद्धस्यैव सर्वकल्पनास्पदत्वेन शुद्धे न कल्पितसम्बन्धानुपपत्तिः। यथा चानन्तादि-पदानां लाक्षणिकत्वेऽपि ब्रह्मणि नान्तवत्त्वादिप्रसङ्गः तथा वक्ष्यते।

इत्यद्वैतसिद्धौ अखण्डार्थलक्षणोपपत्तिः।

इसी रीतिसे द्वितीयमपि=अपर्यायशब्दानामेकप्रातिपदिकार्थप्रमापकत्वरूप द्वितीयलक्ष-णभी ठीक ही है। तत्रापि=लक्षणघटकप्रातिपदिकार्थनिष्ठ एकत्व तो एकधर्मावच्छेदेन वृत्ति-विषयत्वरूप है, एकमात्रव्यक्तित्वरूप नहीं, अतः=प्रातिपदिकार्थनिष्ठत्वेन उक्तविध एकत्वको विवक्षित होनेसे यौगिकार्थौपगवादिप्रश्नोत्तरे=उपगोरपत्यं पुमान् औपगवः कः, इस रीतिसे यौगिकार्थ जो औपगवादि तद्विषयक जो प्रश्न तादृश प्रश्नका उत्तरभूत जो 'श्यामो दीर्घः लोहिताक्ष औपगवः' इत्याकारक वाक्य उस वाक्यमें और अनेकार्थात्मकवनसेनादिप्रश्नोत्तरे= अनेक जो अर्थ=वृक्षगजतुरगादि तदात्मक जो वन और सेनादि तद्विषयक जो प्रश्न=किं वनम्, का सेना, इत्यादि रूप प्रश्न तिस प्रश्नके उत्तरभूत वाक्यमें=एकदेशस्था वृक्षा वनम्, एकदेशस्था गजतुरगरथाद्याः सेना, इत्यादिरूप वाक्योंमें अव्याप्ति नहीं है='श्यामो दीर्घो लोहिताक्ष

औपगवः' यहाँपर गोसमीपवृत्त्यपत्यत्वधर्मावच्छेदेन वृत्तिविषयत्व है; वनसेनादिलक्षणस्थलमें वनत्वावच्छेदेन और सेनात्वाद्यवच्छेदेन वृत्तिविषयत्व है। वृत्तिविषयत्वका अर्थ यह है कि, वृत्तिज्ञानाधीनज्ञानविषयत्व, वृत्तिशब्दसे शक्तिलक्षणाकृत्तद्धितान्तसमास इनमेंसे अन्यतमका ग्रहण है औपगवादिस्थलमें तद्धितरूपवृत्ति है, वनसेनादिस्थलमें शक्तिरूपवृत्ति है, तथाच तद्धितज्ञानाधीनज्ञानविषयत्वविशिष्टविषयकप्रमितिजनकत्वेन श्यामो दीर्घः, इत्यादिलक्षण-वाक्यमें लक्षणसमन्वय होता है और शक्तिज्ञानाधीनज्ञानविषयत्वविशिष्टविषयकप्रमितिजनकत्वेन वनसेनादिलक्षणवाक्योंमें लक्षण समन्वय होता है। अतः अव्याप्ति नहीं। शीतोष्णस्पर्शवन्तौ पयःपावकौ, यह तो संग्रह करनेके लिए योग्य ही है, प्रत्येकम्=एक एकको एक एक अर्थ-परत्व होनेसे। सो कहा है, कल्पतरुकारने–अविशिष्टम्=पदार्थान्तरसे अनन्वित अपर्याय जो अनेकशब्द उन्होंसे प्रकाशित एकम्=एकवृत्तिविषय, एवम्भूत अखण्डम्=अखण्डशब्दार्थको वेदान्तनिष्णातोंने अङ्गीकार किया है। शङ्कते नन्विति। प्रवृत्तिनिमित्तका भेद होनेपर= शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्त जो जातिगुणक्रियादि हैं उन्होंका भेद होनेपर शब्दोंमें अपर्यायत्व होता है, सच=वह निमित्तभेद तो अनन्तादि पदोंमें सम्भवित नहीं है, अनन्तादि पदोंको शुद्धब्रह्ममात्रनिष्ठत्व होनेसे, अतः वेदान्तोंमें लक्षणकी अव्याप्ति है, इति चेन्न; क्यों? प्रवृत्ति-निमित्तके भेदको अङ्गीकार करके ही लक्षणासे अनन्तादिपदोंके शुद्धब्रह्मपरत्वको कहाजानेवाला होनेसे। शुद्धमें सम्बन्धके न रहनेसे शक्यसम्बन्धरूपलक्षणाभी नहीं है, इति नच वाच्यम्; क्यों? अतात्त्विकसम्बन्धसे ही लक्षणाकी उपपत्तिसे, जैसे कि, भ्रमप्रतीतरजतत्वरूपसम्बन्धसे शुक्तिमें रजत पदकी लक्षणा होती है। और शुद्धको ही सर्व कल्पनाओंका आस्पद होनेसे शुद्धमें कल्पित सम्बन्धका असम्भव नहीं है। और जैसे अनन्तादिपदोंका लाक्षणिकत्व होने-परभी ब्रह्ममें अन्तवत्त्वादिका प्रसङ्ग नहीं है तिस रीतिसे कहा जायगा।

इति सरलायामखण्डार्थलक्षणोपपत्तिः।

अथ सत्याद्यवान्तरवाक्याखण्डार्थत्वोपपत्तिः।

एवं लक्षणसम्भवे प्रमाणसम्भवोऽपि। तथाहि–सत्यादिवाक्यमखण्डार्थनिष्ठम्, ब्रह्मप्रातिपदिकार्थनिष्ठं वा, लक्षणवाक्यत्वात् तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्वाद्वा, 'प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्र' इत्यादिवाक्यवदिति पदार्थविषयाखण्डार्थत्वानुमानम्। तत्त्वमस्यादिवाक्यमखण्डार्थ-निष्ठम्, आत्मस्वरूपमात्रनिष्ठं वा, अकार्यकारणद्रव्यमात्रनिष्ठत्वे सति समानाधिकरण-त्वात् तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्वाद्वा, सोऽयमित्यादिवाक्यवदिति वाक्यार्थविषयाखण्डार्थत्वानुमा-नम्, नच सत्यादिवाक्ये तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्वमसिद्धम्; ब्रह्मविदाप्नोति परमिति ब्रह्मवेद-नस्यैवेष्टसाधनतया तन्मात्र एव बुभुत्सातः तन्मात्रस्यैव प्रश्नविषयत्वात्। नच प्रकृष्टादि-वाक्ये साध्यवैकल्यम् तद्वाक्यं पक्षीकृत्य तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्वेन चन्द्रमात्रनिष्ठतायाः सामान्य-व्याप्तिमवलम्ब्यसाधनात्।

अथ सरलायां सत्याद्यवान्तरवाक्याखण्डार्थत्वोपपत्तिः ।

उक्त प्रकारसे लक्षणका सम्भव होनेपर प्रामाणकाभी संभव है, तथाहि–सत्यादि वाक्य, अखण्डार्थनिष्ठ हैं, अथवा ब्रह्मप्रातिपदिकार्थनिष्ठ हैं, लक्षणवाक्यत्वरूप हेतुसे अथवा ब्रह्मप्रातिपदिकार्थमात्रविषयक प्रश्नका उत्तरत्व होनेसे 'प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्रः' इस वाक्यकी नाईं=' प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्रः' इस वाक्यमें अखण्डार्थनिष्ठत्वरूप तथा चन्द्रप्रातिपादिकार्थमात्रनिष्ठत्वरूप साध्य है, और लक्षणवाक्यत्वरूप तथा तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्वरूप हेतुभी है, अतः इसे दृष्टान्तता है। यह पदार्थविषयक अखण्डार्थत्वानुमान है=पदार्थनिष्ठ अखण्डार्थत्व इस अनुमानसे सिद्ध होता है। तत्त्वमस्यादि वाक्य, अखण्डार्थनिष्ठ है, या आत्मस्वरूप मात्रमें निष्ठ है, अकार्य तथा अकारण एवम्भूत जो द्रव्य तादृशद्रव्यनिष्ठ होके समानाधिकरणत्व होनेसे, या तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्व होनेसे 'सोऽयम्' इत्यादिवाक्यवत् । शङ्का–'नीलो घटः' इत्यादि समानाधिकरणस्थलोमें नीलघटका तादात्म्यसम्बन्ध प्रतीत होता है और 'सोऽयम्' इत्यादिमें अखण्डार्थत्व प्रतीत होता है, इसमें नियामक क्या है? समाधान–चार प्रकारसे सामाधानाधिकरण्य होता है–विशेषणविशेष्यभाव होनेपर जैसे 'नीलो घटः' इत्यादिमें=यहाँपर नीलपदार्थ घटपदार्थमें विशेषण है और घटपदार्थ विशेष्य है अतः यह सामानाधिकरण्य विशेषणविशेष्यभावप्रयुक्त है। दूसरा अध्यासस्थलमें सामानाधिकरण्य होता है, जैसे कि,–'इदं रजतम्' यह अध्यासिक सामानाधिकरण्य है–व्यावहारिक तादात्म्यका नाम है,–विशेषणविशेष्यभाव; और प्रातीतिक तादात्म्यका नाम है,–अध्यास; यह दोनोंका भेद है। तीसरा बाध होनेपर सामानाधिकरण्य होता है, जैसे कि,–'जो चोरत्वेन ज्ञात था वह चोर नहीं है किन्तु स्थाणु है' इत्यादि स्थलोमें। चतुर्थ ऐक्य होनेपर हुआ करता है जैसे कि,–'सोऽयम्' इत्यादिमें होता है, यहाँपर तत्ता तथा इदन्ता इन दोनोंको एक कालमें वृत्ति न होनेसे तत्ता तथा इदन्ता इन दोनोंसे उपहितोंका तो तादात्म्य नहीं बन सकता है अतः तदुभयोपलक्षितोंका अखण्डव्यक्तिमात्ररूप ऐक्य प्रतीत होता है फलतः जहाँ तादात्म्यका सम्भव नहीं है तहाँ अखण्डार्थत्व होता है, तथाच प्रकृतमेंभी जीवत्वोपहित तथा ईशत्वोपहित इन दोनोंके तादात्म्यका असम्भव होनेसे अखण्डार्थत्व है। 'नीलो घटः' इत्यादिमें तो तादात्म्य बन सकता है गुण तथा क्रिया और द्रव्यरूपकार्य तथा सामान्य और विशेष इनके तादात्म्यका स्वीकार है। तैसे विशिष्ट तथा केवल इन्होंकेभी तादात्म्यका सम्भव है केवलमें विशिष्टको कल्पितत्व है, और कल्पितत्व होनेसे कार्यत्व है और अंश तथा अंशी इन्होंकाभी तादात्म्यसम्बन्ध है अंशको अंशीमें कल्पित होनेसे कार्यत्व है, 'पुरुषो दण्डी' इत्यादिमेंभी दण्डसंयोगको गुणत्व होनेसे द्रव्यमें उसका तादात्म्य है। वैसेही नित्यगुणका जलादिपरमाणुओमें और ज्ञानानन्दादिरूप नित्यांशका ब्रह्ममें तादात्म्य उपपन्न है, यह वाक्यार्थविषयक अखण्डार्थत्वानुमान है। सत्यादि वाक्यमें तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्व असिद्ध है, नच=असिद्ध नहीं है, क्यों? ब्रह्मवित् परब्रह्मको प्राप्त होता है, (तै० २।१।१) इस वाक्यसे ब्रह्मवेदनको ही इष्टसाधनता होनेसे, तन्मात्रे एव=ब्रह्ममात्रमें ही बुभुत्सा=जिज्ञासा है, अतः तन्मात्र ही

प्रश्नका विषय है और जब तन्मात्र प्रश्नका विषय है तब प्रश्नोत्तरवैयधिकरण्यभिया उत्तरकोभी तन्मात्रविषयत्वही होना चाहिए।'प्रकृष्टादिवाक्ये=' प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्रः' इस वाक्यमें साध्यका अभाव है, नच=साध्यका अभाव नहीं है, क्यों ? उक्त वाक्यको पक्ष बनाकर तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्वरूप हेतुसे चन्द्रमात्रनिष्ठताका सामान्यव्याप्तिको अवलम्ब बनाकर साधन होनेसे=सामान्यव्याप्तिसे उक्त वाक्यमें चन्द्रमात्रनिष्ठताकी सिद्धि होती है अतः साध्यवैकल्य उक्त वाक्यमें नहीं है।

एवं तत्त्वमस्यादिवाक्येऽपि तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्वं नासिद्धम्; कोहमित्यात्मस्वरूपस्यैव प्रश्नविषयत्वेन तदधिकप्रत्युक्तेरयुक्तेः। नाप्यत्र दृष्टान्तासिद्धिः, देवदत्तस्वरूपमात्रे पृष्टे अस्य प्रवृत्तेः। नचाप्रयोजकत्वम् प्रश्नोत्तरयोर्वैयधिकरण्यापत्तेः विपक्षबाधकतर्कस्य विद्यमानत्वात्। नच संसर्गागोचरप्रमितिजनकत्वं साध्यमप्रसिद्धम्। प्रत्यक्षादिनापि इदमित्थमितिविशेषसंसर्गागोचराया एव प्रमितेर्जननादिति–वाच्यम्; निर्विकल्पकस्वीकर्तृणां तस्मिन्नेव प्रसिद्धेः; इतरेषां तु प्रमात्वं संसर्गागोचरवृत्ति, सकलप्रमावृत्तित्वात् अभिधेयत्ववत् इति सामान्यतः तत्प्रसिद्धेः। यद्यप्यत्रापि अप्रयोजकत्वं संभाव्यते तथापि सन्देहरूपा साध्यप्रसिद्धिर्न दुर्लभा। वस्तुतस्तु प्रकृष्टादिवाक्य एव तत्प्रसिद्धिर्दर्शिता।

इस रीतिसे तत्त्वमस्यादि वाक्यमेंभी तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्व असिद्ध नहीं है, 'मैं क्या हूँ' इस रीतिसे आत्मस्वरूपको ही प्रश्नका विषयत्व होनेसे तदधिक=आत्मस्वरूपसे अधिक प्रत्युत्तरके अप्रयुक्तत्वसे=आत्मस्वरूपमात्रमें जिज्ञासा है तो तन्मात्रविषयक उत्तरको ही युक्तियुक्तता है। न कि,–अधिकविषयक उत्तरको। और अत्र=तत्त्वमस्यादिवाक्यपक्षक अनुमानोंमें भी दृष्टान्तकी असिद्धि नहीं है क्यों ? देवदत्तके स्वरूपमात्रको पूछे जानेपर अस्य=' सोऽयम्' इस उत्तरकी प्रवृत्तिसे। इस अनुमानमें व्यभिचारशङ्कानिवर्त्तकतर्कशून्यत्वरूप अप्रयोजकत्व है, नच=अप्रयोजकत्व नहीं है; क्यों ? प्रश्न तथा उत्तर इन दोनोंके वैयधिकरण्यकी जो आपत्ति तादृश आपत्तिरूप तर्कके विद्यमान होनेसे। संसर्गागोचरप्रमितिजनकत्वरूप जो साध्य है वह अप्रसिद्ध है,–प्रत्यक्षादिप्रमाणोंसेभी इदम्=यह इस प्रकारका है, इस रीतिसे विशेषसंसर्गगोचर प्रमितिके ही जननसे, इति नच वाच्यम्, क्यों ? निर्विकल्पको स्वीकार करनेवाले वादिओंको तो तस्मिन्नेव=निर्विकल्पमें ही प्रसिद्धिसे=निर्विकल्पकज्ञान माननेवालोंको तो निर्विकल्पमें ही साध्यकी प्रसिद्धि है। और इतरोंको तो ' प्रमात्व संसर्गागोचरवृत्ति है, सकलप्रमाओंमें वृत्ति होनेसे, अभिधेयत्ववत्' इस सामान्यानुमानसे साध्यकी प्रसिद्धिसे; यद्यपि इस अनुमानमेंभी अप्रयोजकत्व संभावित होता है तथापि सन्देहरूप साध्यकी प्रसिद्धि दुर्लभ नहीं। और वस्तुतः तो प्रकृष्टादि वाक्यमें ही साध्यकी प्रसिद्धि दिखला दी है।

नच—लक्षणवाक्यत्वं सत्यादिवाक्येष्वसिद्धम्। सत्यत्वादेः परापरजातितया तस्याश्चान्यत्रापि विद्यमानत्वेनासाधारण्याभावात्, नच–तात्त्विकत्वं तद्ब्रह्मणि अद्वैत-

श्रुतिविरोधात्, अतात्त्विकं त्वन्यत्रापि तुल्यमिति वाच्यम्। परमार्थसत्यादिरूपताया ब्रह्मस्वरूपलक्षणत्वात्। अस्मन्मते यद्यपि सत्याद्यन्यतमपदं स्वरूपलक्षणपरम् ब्रह्मणोऽन्यस्य तदाभासत्वात्; तथापि परैरपि सत्यत्वस्य सत्यत्वे सति ज्ञानत्वस्य सत्यत्वे सत्यानन्दत्वस्य शून्यवादिभिरपि सत्त्वरहितज्ञानानन्दात्मकत्वस्य ब्रह्मणोऽन्यत्राङ्गीकारान्मिलितं विना न निर्विचिकित्सितब्रह्मसिद्धिरिति मिलितं लक्षणम् नचैवं विशिष्टस्य लक्षणत्वे सखण्डार्थत्वप्रसङ्गः; वाच्यस्य सखण्डार्थत्वेऽपि लक्ष्यस्याखण्डत्वात्। यद्यपि सर्वेषां सत्यादिपदानां लक्ष्यमेकमेव निर्विशेषं ब्रह्म; तथापि निवर्तनीयांशाधिक्येन न पदान्तरवैयर्थ्यम्। अतो वाच्यार्थवैशिष्ट्यस्याखण्डसिद्धावुपायत्वात् न तद्विरोधिता।

शङ्कते नचेति। सत्यादि वाक्योंमें लक्षणवाक्यत्व असिद्ध है, क्यों ? सत्यत्वादिको परापर जातिता होनेसे तस्याः=सत्यत्वादि जातिको अन्यत्रापि=ब्रह्मवृत्ति होकर ब्रह्मातिरिक्तमेंभी विद्यमानत्व होनेसे असाधारण्यके अभावसे यदि यों कहो कि, तात्त्विक तत्=सत्यत्वादि ब्रह्ममें है, तो ऐसा नहीं कहना, अद्वैतश्रुतिके साथ विरोध होनेसे और अतात्त्विक सत्यत्वादि तो अन्यत्रभी तुल्य है, इति न च वाच्यम्, क्यों परमार्थसत्यादिरूपताको ब्रह्मका स्वरूपलक्षण होनेसे। हमारे मतमें यद्यपि सत्यादिमें अन्यतम पद स्वरूपलक्षणपर है, ब्रह्मसे अन्यको सत्याभासत्व होनेसे तथापि परैरपि=अन्योंसेभी सत्यत्वस्य=सत्यत्वका ब्रह्मसे अन्यत्र अङ्गीकार होनेसे वैसे सत्यत्वविशिष्ट ज्ञानत्वका और सत्यत्वविशिष्ट आनन्दत्वका ब्रह्मसे अन्यत्र अङ्गीकार होनेसे शून्यवादिओंसेभी सत्वरहित ज्ञानानन्दात्मकत्वका ब्रह्मसे अन्यत्र अङ्गीकार होनेसे मिलितलक्षणके विना संशयरहितब्रह्मकी सिद्धि नहीं हो सकती है, अतः मिलित लक्षण है। एवम्=उक्तप्रकारसे विशिष्टस्य=सत्वज्ञानत्वादिविशिष्ट आनन्दत्वको लक्षणत्व होनेपर सखण्डार्थत्वका प्रसङ्ग है; नच=सखण्डार्थत्वका प्रसङ्ग नहीं है, क्यों ? वाच्यस्य=वाच्यसत्यत्वादिघटितको सखण्डार्थत्व होनेपर भी लक्ष्यस्य=सत्यत्वाद्युपलक्षितको अखण्डत्व होनेसे, यद्यपि सत्यादि सर्व पदोंका लक्ष्य एक ही निर्विशेष ब्रह्म है तथापि निवर्त्तनीय=जडत्वादि भ्रमरूप निवर्त्तनीय अंशोंके आधिक्यसे पदान्तरका वैयर्थ्य नहीं है। अतः वाच्यार्थवैशिष्ट्यस्य=वाच्यार्थवैशिष्ट्यविषयकज्ञानको अखण्डकी सिद्धिमें उपायत्वात्=द्वारत्व होनेसे वाच्यार्थवैशिष्ट्यबोधको तद्विरोधिता=अखण्डार्थसिद्धिकी विरोधिता नहीं है।

ननु—इदं विरुद्धं असाधारणधर्मरूपलक्षणपरवाक्यस्य सखण्डार्थत्वनियमादितिचेत्, न; सर्वलक्षणवाक्यानां स्वरूपमात्रपर्यवसायित्वेन नियमासिद्धेः, धर्मलक्षणस्याखण्डत्वविरोधित्वेऽपि स्वरूपलक्षणस्य तदविरोधित्वाच। नचाभेदे लक्ष्यलक्षणभावायोगः अन्तःकरणवृत्तिनिबन्धनाकारभेदेनोभयोपपत्तेः, आवृतत्वानावृतत्ववत्, अन्यथा स्वरूपलक्षणतटस्थलक्षणविभागो न स्यात्। नच यावद्द्रव्यभावित्वाभावित्वाभ्यां व्यवस्था; तावता हि स्थायित्वास्थायित्वव्यवस्था स्यात्, न तु स्वरूपादिरूपा, तव मते पार्थिव-

रूपादौ स्वरूपलक्षणेऽव्याप्तेश्च ब्रह्मणि यावद्द्रव्यभाविधर्माविरहाच्च। वस्तुतस्तु–द्वारत्वेन लक्षणे तात्पर्यं न द्वारिणोऽखण्डार्थत्वं विरुणद्धि। नच–स्वरूपज्ञानस्य प्रागेव सामान्यतो जातत्वात् तज्ज्ञाने नैतद्द्वारापेक्षेति–वाच्यम्; ज्ञानमात्रेऽस्य द्वारत्वाभावेऽपि संशयादिनिवर्तकैतज्ज्ञाने तद्द्वारापेक्षणात्।

शङ्कते नन्विति। इदम्=लक्षणवाक्यत्वात्, रूप साधन विरुद्ध है=साध्याभावसे ही व्याप्त है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं–असाधारणेति। असाधारण=सजातीय विजातीयसे व्यावृत्त धर्मरूप जो लक्षण है तादृशलक्षणपर वाक्यको सखण्डार्थत्वके नियमसे इति चेन्न; क्यों? सर्व लक्षणपरवाक्योंको स्वरूपमात्रपर्यवसायित्व होनेसे त्वदुक्त नियमकी असिद्धिसे। और त्वदुक्त नियम मान भी लें तो भी धर्मलक्षणस्य=लक्ष्यवृत्ति उक्तविध धर्मरूपलक्षणको अखण्डत्वका विरोधित्व होनेपरभी स्वरूपलक्षणको अखण्डत्वका अविरोधित्व होनेसे। अभेदे=अभेद होनेपर लक्ष्यलक्षणभावके व्यवहारका अयोग है=अभिन्न पदार्थोंमें लक्ष्यलक्षणभावका व्यवहार नहीं बन सकता है, नच=ऐसा नहीं कहना, क्यों? अन्तःकरणकी वृत्तिनिबन्धन जो आकारभेद उस अकारभेदसे, उभयोपपत्तेः=लक्ष्यभाव तथा लक्षणभाव इन दोनोंकी उपपत्तिसे,–विभिन्न अन्तःकरणकी वृत्तिरूप–उपाधिभेदसे एकमेंभी उपहितरूपसे भेदका सम्भव है, अतएव सम्बन्ध भी बन सकता है; यहाँपर अन्तःकरणकी वृत्तिसे ब्रह्मपदका अर्थ जो स्वरूपमात्र है, उसकी लक्षणासे जो उपस्थिति है वह लेनी चाहिए, और तद्विषयत्वेन ब्रह्मको लक्ष्यता है तैसे सत्यादिपदोंका अर्थ जो स्वरूपमात्र है उसकी जो लक्षणासे उपस्थिति वह भी वृत्तिपदसे लेनी चाहिए तद्विषयत्वेन ब्रह्मको लक्षणत्व है आवृतत्वानावृतत्ववत्=जैसे ब्रह्मको एक होते हुए भी आविद्यक भेदसे पूर्णानन्दरूपेण आवृतत्व है और चिद्रूपेण अनावृतत्व है तैसे उपाधिभेदसे लक्ष्यलक्षणभावभी है। अन्यथा=उपाधिभेदकृत भेदको न माननेपर स्वरूपलक्षण और तटस्थ लक्षण इन्होंका विभाग न होगा। यावद्द्रव्यभावित्वाभावित्वाभ्यां व्यवस्था=जितने कालतक लक्ष्य रहता है तितने कालपर्य्यन्त स्थायि लक्षणका नाम स्वरूप लक्षण है, जैसेकि पृथिव्यादिका लक्षण पृथिवीत्वादिरूप; इससे अन्य लक्षण तटस्थ लक्षण कहा जायगा, जैसे कि; पृथिव्यादिका गन्धादिरूप लक्षण है, तथाच उक्तविध भावित्व अभावित्वसे व्यवस्था होगी नच=यह व्यवस्था नहीं हो सकती है। और तुह्मारेमतमें स्वरूपलक्षणरूप पार्थिवत्वादिरूपमें अव्याप्तिसेभी यह लक्षण नहीं बन सकता है। और ब्रह्ममें यावद्द्रव्यभावि जो धर्म तादृश धर्मके विरहसेभी यह लक्षण ठीक नहीं। और वस्तुतः तो द्वारत्वेन लक्षणमें तात्पर्य्य द्वारीके अखण्डार्थत्वको निरुद्ध नहीं करता है। स्वरूपज्ञानको प्रथम ही सामान्यतः ज्ञात होनेसे तज्ज्ञाने=स्वरूपज्ञानमें इस द्वारकी अपेक्षा है, इति नच वाच्यम् क्यों? ज्ञानमात्रमें द्वारत्वका अभाव होनेपरभी सत्यत्वादिवैशिष्ट्यबोधोत्तरवर्त्ति सत्यत्वाद्युपलक्षिताखण्डबोध रूप संशयादिनिवर्त्तक एतज्ज्ञानमें लक्षणरूप द्वारकी अपेक्षा होनेसे=लक्षणशब्दसे उक्तस्थलमें सत्यत्वादिधर्मप्रतियोगिकब्रह्मानुयोगिकवैशिष्ट्यविषयक ज्ञान लेना।

नच—सखण्डवनादिलक्षणवाक्ये व्यभिचारः, तत्रापि साध्यसत्त्वस्य व्युत्पादनात् । नच किं चन्द्रलक्षणमित्यसाधारणधर्मप्रश्नोत्तरे प्रकृष्टप्रकाशादिवाक्ये व्यभिचारः, तत्र हि न चन्द्रस्वरूपपरत्वम्; किन्तु प्रकर्षाश्रयो यः प्रकाशः तत्स्वरूपपरत्वम् तथाच प्रकर्षोपलक्षितप्रकाशव्यक्तिस्वरूपमात्रप्रतिपादकत्वेन तत्राप्यखण्डार्थत्वाविरोधात् । अत एव–धर्मे पृष्टे चन्द्रस्वरूपं वक्तुं नोचितमिति–निरस्तम्, धर्मस्यैव स्वरूपत उक्तत्वात् अन्यथा प्रश्नोत्तरयोर्वैयधिकरण्यापत्तेः ।

शङ्कते नचेति । सखण्ड जो वनादि तादृश वनादिका जो लक्षण तादृश लक्षणको कहनेवाला जो वाक्य उस वाक्यमें व्यभिचार है=सखण्डवनादिलक्षणवाक्यमें लक्षणवाक्यत्वरूप हेतु है, परन्तु अखण्डार्थनिष्ठत्वरूप साध्य नहीं है, अतः व्यभिचार है; नच=व्यभिचार नहीं है, क्यों ? तत्रापि=उक्तविधलक्षणवाक्यमेंभी साध्यसत्त्वका व्युत्पादन होनेसे, चन्द्रका लक्षण क्या है, इस रीतिसे, असाधारण धर्मविषयक प्रश्नका उत्तररूप प्रकृष्टप्रकाशादिरूप वाक्यमें व्यभिचार है, नच=व्यभिचार नहीं है, क्योंकि तत्र=उस वाक्यमें चन्द्रस्वरूपपरत्व नहीं है, किन्तु प्रकर्षका आश्रय जो प्रकाश तत्स्वरूपपरत्व है, तथाच प्रकर्षसे उपलक्षित जो प्रकाश व्यक्तिका स्वरूपमात्र तादृशस्वरूपमात्रप्रतिपादकत्वेन तत्रापि=उक्तविध वाक्योंमेंभी अखण्डार्थत्वके अविरोधसे । अतएव=प्रकर्षोपलक्षितप्रकाशव्यक्तिस्वरूपमात्रप्रतिपादकत्व होंनेसेही धर्मके पूछे जानेपर चन्द्रस्वरूप कहनेके लिए उचित नहीं है, यह कथन खण्डित हुआ, धर्मको ही स्वरूपतः उक्तत्व होनेसे । अन्यथा प्रश्न तथा उत्तर इन दोनोंके वैयधिकरण्यकी आपत्तिसे ।

ननु—इदं बाधितम्, धर्मिज्ञानाधीनसप्रकारकसंशयादिनिवर्त्तकं मोक्षहेतुं सप्रकारकज्ञानं प्रति साधनत्वेन वेदान्तविचारविधानान्यथानुपपत्त्या वेदान्तवाक्ये साध्याभावनिश्चयादिति–चेन्न; अनृतादिप्रतिषेधकव्यावृत्ताकारज्ञानेनैव अनृतादिसंशयादिनिवृत्त्युपपत्तेरन्यथासिद्धत्वात् नहि सप्रकारकत्वमात्रं तत्र तन्त्रम् । भ्रमकालीनानुवृत्ताकारज्ञानस्य सप्रकारकत्वेन संशयादिनिवर्त्तकत्वे भ्रमकथैवोच्छिद्येत । ज्ञानस्याज्ञानसमविषयत्वेनैव तन्निवर्त्तकत्वम्, न तु समानप्रकारकत्वेनापि गौरवात् । अज्ञानविषयश्च शुद्धं ब्रह्म अज्ञानकल्पितस्य तदितरस्याज्ञानविषयत्वायोगात् । तथाच शुद्धब्रह्माकारा चित्तवृत्तिः निष्प्रकारिकैवाज्ञाननिवर्त्तिका; प्रकारमात्रस्याविद्याकल्पितत्वेन तद्विषयतायां वृत्तेरविद्यासमविषयत्वाभावात् । यथाचाविद्यातत्कार्यविषयं ज्ञानं तदनिवर्त्तकं तथा व्युत्पादितं प्राक् ।

शङ्कते नन्विति । इदम्=लक्षणवाक्यत्वरूप साधन बाधित है=साध्याभावविशिष्टपक्षक है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं धर्मिज्ञानाधीन जो सप्रकारक संशयादि तादृश सप्रकारकसंशयादिनिवर्त्तक जो मोक्षका हेतुभूत सप्रकारक ज्ञान तादृशसप्रकारक ज्ञानके प्रति साधनत्वेन जो वेदान्तविचारका विधान तादृशविधानान्यथानुपपत्त्या वेदान्तवाक्योंमें साध्याभावके निश्चयसे=

मोक्षका हेतुभूत जो ज्ञान है उस ज्ञानको संशयका निवर्त्तकत्व 'छिद्यन्ते सर्वसंशयाः' (मुण्ड० २।२।८) इस श्रुतिसे सिद्ध है, और संशयनिवर्त्तकत्व सप्रकारकज्ञानमें ही बन सकता है, तथाच वेदान्तवाक्योंमें सप्रकारनिष्ठत्व रह जानेसे अखण्डार्थनिष्ठत्वरूप साध्य नहीं है, इस साध्याभावका नाम ही तो बाध है, इति चेन्न; अनृतादिप्रतिषेधकव्यावृत्ताकारज्ञानेनैव= अनृतादिका प्रतिषेधक=व्यावर्त्तक जो सत्यत्वादिरूप व्यावृत्तपदार्थ तादृश व्यावृत्तपदार्थोप-लक्षित जो आकार=स्वरूप तादृश स्वरूपविषयक ज्ञानसेही अनृतादिसंशय='ब्रह्म अनृतं न वा' इत्यादिरूप संशयकी निवृत्तिकी उपपत्तिसे संशयकी निवृत्तिको अन्यथासिद्धत्व होनेसे। क्योंकि सप्रकारकत्वमात्रही तत्र=संशयकी निवृत्तिमें तन्त्र नहीं है। इसी अर्थमें बाधक दिखलाते हैं,- यहाँपर सरलामें संशय शब्दसे संशय और भ्रम दोनों अजहत्स्वार्थालक्षणासे विवक्षित हैं, भ्रमकालीन जो अनुवृत्ताकार ज्ञान तादृश ज्ञानको सप्रकारकत्वप्रयुक्तसंशयादिका निवर्त्तकत्व होनेपर भ्रमकी कथा ही उच्छिन्न हो जायगी, और ज्ञानको अज्ञानसमानविषयकत्वेन ही अज्ञाननिवर्त्तकत्व है, किन्तु समानप्रकारकत्वेन भी नहीं, गौरव होनेसे। और अज्ञानका विषय तो शुद्ध ब्रह्म है, क्योंकि अज्ञानसे कल्पित जो अज्ञानेतर उसको अज्ञानविषयत्वका अयोग है, अतः शुद्ध ब्रह्म ही अज्ञानका विषय है, फलतः शुद्धब्रह्माकारा निष्प्रकारक चित्तकी वृत्ति ही अज्ञानकी निवर्त्तिका है, प्रकारमात्रको अविद्यासे कल्पितत्व होनेसे वृत्तिको तद्विषयता होनेपर, अविद्यासमविषयत्वके अभावसे=अर्थात् प्रकारविषयकवृत्तिको अविद्यासमविषयत्वके अभावसे अविद्याका निवर्त्तकत्व न होगा। और जिस प्रकारसे अविद्याविषयक तथा अविद्या-कार्यविषयक ज्ञान तदनिवर्त्तकम्=अज्ञानका अनिवर्त्तक है तथा पूर्वमें व्युत्पादित हो चुका है।

द्रव्याद्याकारज्ञानानाञ्च घटाद्याकारत्वस्यानुभवनिरस्तत्वान्न द्रव्याद्याकारज्ञानेन घटाद्याकाराज्ञाननिवृत्तिप्रसङ्गः द्रव्यत्वघटत्वयोर्भेदेन विषयभेदाच्च। यथाच समानप्रका-रकत्वमादायापि न निस्तारः तथा प्रतिपादितमस्माभिर्वेदान्तकल्पलतिकायामिति दिक्।

और द्रव्याद्याकारज्ञाननिष्ठ घटाद्याकारत्वको अनुभवसे निरस्त होनेसे द्रव्याद्याकारज्ञानसे घटाद्याकार अज्ञानकी निवृत्तिका प्रसङ्ग नहीं है, द्रव्यत्व तथा घटत्व इन दोनोंके भेदसे उक्तविषयभेदभी है. अतोऽपि उक्ताकार ज्ञानसे उक्ताकाराज्ञानकी निवृत्ति नहीं होती है। और जिस रीतिसे समानप्रकारकत्वको लेकर भी द्वैतीका निस्तार नहीं है तथा वेदान्तकल्पलतिकामें हमने प्रतिपादन किया है यह यहाँपर दिग्दर्शन है।

ननु—अस्तु सत्प्रतिपक्षः, तथाहि—सत्यादिवाक्यतात्पर्यविषयः, संसृष्टरूपः संसर्गरूपो वा, प्रमाणवाक्यतात्पर्यविषयत्वात् सम्मतवत्, सत्यादिवाक्यं स्वतात्पर्य-विषयज्ञानाबाध्यसंसर्गपरं, स्वतात्पर्यविषयज्ञानाबाध्यस्वकरणकप्रमाविषयपदार्थनिरूप्य-संसर्गपरं वा, प्रमाणवाक्यत्वात् अग्निहोत्रादिवाक्यवत् 'विषं भुङ्क्ष्व' इत्यादौ वाक्यार्थ-संसर्गपरत्वाभावेऽपि स्वकरणकप्रमाविषयपदार्थसंसर्गपरत्वान्न व्यभिचारः 'खं छिद्रं

कोकिलः पिकः' इत्यादौ चानतिभिन्नार्थत्वे सामानाधिकरण्यायोगेन छिद्रकोकिलादीनां खपिकादिशब्दवाच्यत्वसंसर्गपरत्वान्न व्यभिचार इति-चेन्न; आद्यानुमाने संसृष्टरूप इति साध्ये संसर्गे संसर्गरूप इति साध्ये च संसृष्टरूपे पदार्थे व्यभिचारात्, तयोरुभयोरपि प्रमाणवाक्यतात्पर्यविषयत्वात् ।

शङ्कते नन्विति । सत्प्रतिपक्ष रहो, तथाहि—सत्यादिवाक्योंके तात्पर्यका विषय संसृष्टरूप है या संसर्गरूप है, प्रमाणवाक्यका जो तात्पर्य तादृश तात्पर्यका विषयत्व होनेसे, सम्मतवत्=ज्योतिष्टोमादिवाक्यवत् । सत्यादिवाक्य, स्वतात्पर्यका जो ज्ञान तादृश ज्ञानसे अबाध्य जो संसर्ग तादृश संसर्गपर है, ननु='विषं भुङ्क्ष्व' इस वाक्यमें स्वतात्पर्यका विषयीभूत जो ज्ञान-द्विषदन्नं न भोक्तव्यम्' इत्याकारक ज्ञान उस ज्ञानसे अबाध्य जो संसर्ग विषकर्मक भोजन क्रियारूप संसर्ग तादृशसंसर्गपरत्वके अभावसे व्यभिचार है=प्रमाणावाक्यत्वरूप हेतु तो है उक्त वाक्यमें, परन्तु, स्वतात्पर्यविषयज्ञानाबाध्यसंसर्गपरत्वरूप साध्य नहीं है, अतः व्यभिचार है, अतः आह स्वकरणकेति । स्वकरणक जो प्रमिति तादृश प्रमितिके विषय जो पदार्थ तादृश पदार्थनिरूप्यत्व संसर्गमें विशेष है, तथाच व्यभिचार नहीं=स्वतात्पर्यविषयज्ञानाबाध्यसंसर्ग-शब्दसे विषयकर्मकभोजनक्रियासंसर्गरूप वाच्यार्थसंसर्ग यहाँपर विवक्षित नहीं है, जिससे कि तत्परत्व न होनेसे 'विषं भुङ्क्ष्व' में व्यभिचार हो, किन्तु स्वतात्पर्यविषयज्ञानाबाध्यसंसर्गमें स्वकरणकप्रमितिविषयपदार्थनिरूप्यत्व विशेषण विवक्षित है, फलतः प्राक्प्रदर्शित प्रकारसे इस वाक्यको लिङ्गत्व होनेसे एतद्वाक्यकर्णिका जो प्रमिति—'द्विषदन्नं न भोक्तव्यम्' इत्याकारिका प्रमिति तद्विषय जो पदार्थ—शास्त्रीय पदार्थ तन्निरूप्य जो संसर्ग—द्विषदन्नकर्मकभोजन कर्त्तव्य नहीं है, इत्याकारक संसर्ग तादृशसंसर्गपरत्व प्रकृत वाक्यको है ही,—तथाच साध्यकोभी पक्षमें रह जानेसे व्यभिचार नहीं है, इस अभिप्रायसे द्वैतीने द्वितीय साध्यका उपन्यास किया है; प्रमाणवाक्यत्व होनेसे; अग्निहोत्रादिवाक्यवत्=अग्निहोत्रादिवाक्यमें हेतु साध्य दोनों प्रसिद्ध हैं अतः दृष्टान्तता है । 'विषं भुङ्क्ष्व' इत्यादिमें वाच्यार्थसंसर्गपरत्वके न रहनेपरभी स्वकरणक जो प्रमा तादृशप्रमाविषयपदार्थसंसर्गपरत्व होनेसे व्यभिचार नहीं है । ननु—'खं छिद्रं कोकिलः पिकः' इत्यादि पर्यायशब्दप्रतिपादक प्रमाणवाक्यमें संसर्गपरत्वका अभाव है, और प्रमाणवाक्यत्वरूप हेतु है, अतः व्यभिचार है,—तहाँ कहते हैं खमिति । 'खं छिद्रः कोकिलः पिकः' इत्यादिमें अनतिभिन्नार्थत्वे=अत्यन्तभिन्नका नाम है—यहाँपर भिन्न, भिन्नं, अतिक्रान्तः अतिभिन्नः=भेदाभेदवान्=उसका अभाव, फलतः भेदाभेदका अभाव होनेपर सामानाधिकरण्यके अयोगसे छिद्रकोकिलादिपदोंको खपिकादिशब्दवाच्यका जो संसर्ग तादृशसंसर्गपरत्व होनेसे व्यभिचार नहीं है,=यहाँपर भी छिद्रशब्दवाच्यमें खशब्दवाच्यत्वका और कोकिलशब्दवाच्यमें पिकशब्दवाच्यत्वका विधान होता है तथाच वाच्यार्थसंसर्गपरत्त होनेसे व्यभिचार नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? आदिम अनुमानमें 'संसृष्टरूप' इस साध्यके होनेपर संसर्गमें व्यभिचार है, प्रमाणवाक्यतात्पर्यविषयत्वरूप हेतु तो संसर्गमें है, परन्तु संसृष्टत्वरूप साध्य नहीं

अतः व्यभिचार है, और संसर्गरूप इस साध्यके होनेपर संसृष्टरूप पदार्थमें व्यभिचार है= संसृष्टरूपपदार्थमें प्रमाणवाक्यतात्पर्यविषयरूप-हेतु है परन्तु संसर्गत्वरूप साध्य नहीं है अतः व्यभिचार है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं–तयोः=संसृष्ट तथा संसर्ग इन दोनोंको प्रमाणवाक्य-तात्पर्यविषयत्व होनेसे।

द्वितीयानुमाने प्रमाणवाक्यत्वस्याबाध्यपरत्वमात्रेण प्रमितिविषयपरत्वमात्रेण वोपपत्तौ विशिष्टसाध्यस्य, तत्रातन्त्रत्वेनाप्रयोजकत्वात्, अलक्षणवाक्यत्वस्योपाधित्वाच्च। नापि वेदान्तजन्यप्रमा, सप्रकारिका विचारजन्यत्वात्, संशयनिवर्त्तकत्वाद्वा कर्मकाण्डजन्यज्ञानवत्। वेदान्तजन्या प्रमा ब्रह्मप्रकारविषया, ब्रह्मधर्मिकसंशयविरोधित्वात्, ब्रह्मविचारजन्यत्वाद्वा, यदेवं तदेवं यथाकर्मकाण्डजन्यो निश्चय इति प्रतिसाधनमस्त्विति–वाच्यम्। तव मते ज्ञानमात्रस्य सप्रकारत्वेन विचारजन्यत्वसंशयविरोधित्वयोर्व्यर्थत्वात् अप्रयोजकत्वात् निष्प्रकारकज्ञानादपि संशयादिनिवृत्तिसम्भवात्, लक्षणवाक्यजन्यत्वस्योपाधित्वाच्च। अतएव–द्वितीयानुमानमप्यपास्तम्, ब्रह्मनिष्ठप्रकारविषयत्वसाधने दृष्टान्ताभावाच्च। सर्वेषु च प्रतिसाधनेषु प्रश्नोत्तरयोः–वैयधिकरण्यापत्तिः प्रतिकूलतर्कोऽवसेयः।

और द्वितीयानुमानमें प्रमाणवाक्यत्वरूप हेतुकी अबाध्यपरत्वमात्रसे या प्रमितिविषयपरत्वमात्रसे उपपत्ति होनेपर त्वदुक्तविशिष्टसाध्यको तत्र=प्रमाणवाक्यत्वरूप हेतुमें तन्त्रता=व्यापकता न होनेसे अप्रयोजकत्व है अतः द्वितीयानुमानभी ठीक नहीं; और अलक्षणवाक्यत्वको उपाधित्व होनेसेभी द्वितीयानुमान अर्थका साधक नहीं=अग्निहोत्रादि वाक्योंमें स्वतात्पर्यविषयज्ञानाबाध्य संसर्गपरत्वरूप साध्य है और वहाँपर अलक्षणवाक्यत्वभी है, अतः उपाधिमें साध्यव्यापकत्व है और प्रमाणवाक्यत्वरूप साधन सत्यादिवाक्योंमें है परन्तु वहाँपर अलक्षणवाक्यत्वरूप उपाधि नहीं है, अतः उपाधिमें साधनाव्यापकत्व है। वेदान्तवाक्यजन्यप्रमा सप्रकारिका है, विचारजन्यत्व होनेसे या संशयका निवर्त्तकत्व होनेसे कर्मकाण्डसे जन्य ज्ञानकी तरह=कर्मकाण्डजन्यप्रमामें हेतु साध्य दोनों हैं अतः उसे दृष्टान्तता है। वेदान्तजन्यप्रमा, ब्रह्मनिष्ठप्रकारविषया है, ब्रह्मधर्मिक जो संशय तादृश संशयके विरोधित्वसे या ब्रह्मविषयकविचारजन्यत्व होनेसे=यदेवम्=जो यद्धर्मिकसंशयका विरोधि होता है, या यद्विषयकविचारजन्य होता है तदेवम्=वह तन्निष्ठप्रकारविषयक होता है जैसे कि–कर्मकाण्डजन्यनिश्चय, यह प्रतिसाधन रहो इत्यपि न वाच्यम्; क्यों ? तुह्मारे मतमें ज्ञानमात्रको सप्रकारकत्व होनेसे विचारजन्यत्व तथा संशयविरोधित्व इन दोनोंको व्यर्थत्व=असाधकत्व होनेसे; और अप्रयोजकत्वभी है–निष्प्रकारकज्ञानसेभी संशयादिकी निवृत्तिका सम्भव होनेसे, लक्षण–वाक्याजन्यत्वरूप उपाधिसेभी यह अनुमान नहीं बन सकता है=कर्मकाण्डजन्यनिश्चयमें सप्रकारकत्वरूप साध्य है और वहाँपर लक्षणवाक्याजन्यत्वरूप उपाधिभी है अतः उपाधिमें साध्यव्यापकत्व है, और विचारजन्यत्व और संशयनिवर्त्तकत्व ये दोनों हेतु वेदान्तवाक्यजन्यप्रमामें हैं परन्तु वहां

लक्षणवाक्यजन्यत्व होनेसे लक्षणवाक्याजन्यत्वरूप उपाधि नहीं है, अतः उपाधिमें साधना-व्यापकत्व है । अतएव=व्यर्थत्व और अप्रयोजकत्व इन दोनोंसे ही द्वितीयानुमानभी अपास्त हुआ । और ब्रह्मनिष्ठप्रकारविषयत्वसाधनमें दृष्टान्तके अभावसेभी । तथा सर्व प्रतिसाधनोंमें प्रश्न तथा उत्तर इन दोनोंके वैयधिकरण्यकी आपत्तिरूप प्रतिकूलतर्क ज्ञातव्य है=जबकि प्रश्न प्रकारतादिविनिर्मुक्तवस्तुस्वरूपमात्रविषयक है तब उत्तरको भी तादृश ही होना चाहिए; यदि उत्तरवाक्यजन्यज्ञानमें सप्रकारकत्व होगा, तो प्रश्नोत्तरोंका वैयधिकरण्य हो जायगा, और ' आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे ' इसन्यायकी प्रसक्ति होगी ।

ननु—दृष्टान्ते साध्यवैकल्यम्, तथाहि–प्रकृष्टप्रकाशादिवाक्यं न तावदभिधया अखण्डार्थनिष्ठम्, प्रकृष्टादिपदस्याखण्डे अभिधाया अभावात् त्वयानङ्गीकाराच्च नापि लक्षणया, प्रकृष्टप्रकाशस्य द्रव्यस्य गुणस्य वा चन्द्रे अन्वयोपपत्तेः=,अन्वयानुपपत्तिरूप-लक्षणबीजाभावादिति–चेन्न; यष्टीः प्रवेशयेत्यादौ लोके, तरसमयाः पुराडोशा भवन्ती-त्यादौ वेदे च यथा श्रुतान्वयसंभवेपि यथा तात्पर्यविषयीभूतान्वयानुपपत्त्या यष्टिधरपुरुषेषु सवनीयहविर्मात्रे च यष्टिपुराडोशशब्दयोर्लक्षणाऽऽश्रिता, तथैवेह तात्पर्यविषयीभूतान्व-यानुपपत्तिनिमित्तया लक्षणया अखण्डार्थपरत्वोपपत्तेः, कश्चन्द्र इति चन्द्रस्वरूपे पृष्टे तन्मात्रपरस्यैवोत्तरस्योचितत्वात् ।

शङ्कते नन्विति । दृष्टान्तमें साध्यका अभाव है=' प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्र ' यह वाक्य दृष्टान्त है, द्वैती कहता है कि इसमें अखण्डार्थनिष्ठत्वरूप साध्य नहीं है, तथाहि–प्रकृष्टप्रकाशादिरूप वाक्य अभिधासे अखण्डार्थनिष्ठ नहीं है, क्यों ? प्रकृष्टादि पदकी अखण्डमें अभिधाके अभा-वसे, और तुमसे अङ्गीकार न होनेसेभी । नापि लक्षणया=लक्षणासेभी प्रकृष्टप्रकाशादि वाक्य अखण्डार्थनिष्ठ नहीं है, क्यों ? प्रकृष्टप्रकाशरूप द्रव्यके या गुणके चन्द्रमें अन्वयकी उपपत्तिसे अन्वयानुपपत्तिरूप लक्षणाबीजके अभावसे इति चेन्न; क्यों ? यष्टीः प्रवेशय इत्यादिलोकमें तथा ' तरसमयाः पुरोडाशा भवन्ति ' इत्यादिवेदमें यथाश्रुत अन्वयका सम्भव होनेपरभी जैसे तात्पर्यविषयीभूत जो अन्वय उस अन्वयकी अनुपपत्तिसे यष्टिपदकी यष्टिधर पुरुषोंमें और पुरोडाशशब्दकी सवनीयहविर्मात्रमें लक्षणा आश्रयण की है, तैसे ही तात्पर्यविषयीभूत जो अन्वय उस अन्वयकी जो अनुपपत्ति तादृशअनुपपत्तिनिमित्तकलक्षणासे अखण्डार्थपरत्वकी उपपत्तिसे । ' कश्चन्द्रः ' इसरीतिसे चन्द्रस्वरूप पृष्ट होनेपर तन्मात्रपरस्यैव=चन्द्रस्वरूपमात्रपर उत्तरको ही उचितत्व होनेसे ।

ननु—चन्द्रस्वरूपस्य ज्ञातत्वे तत्र प्रश्नो न युज्यते; अज्ञातत्वे धर्मिज्ञानसाध्यबुभु-त्सासन्देहयोश्चन्द्रइत्यनूद्य क इति प्रश्नस्थचन्द्रशब्दस्यार्थवत्त्वाज्ञानेनाप्रातिपदिकतया तदुत्तरसुब्विभक्तेश्चायुक्तत्वप्रसङ्गात्, चन्द्रस्वरूपे ज्ञातेऽपि तस्यासङ्कीर्णस्वरूपं न ज्ञात-मिति न युक्तम्, तस्मिन् रूपद्वयाभावात्, असङ्कीर्णत्वेन न ज्ञातमिति चेत्, असङ्की-

र्णत्वप्रकारकप्रतीतिपरत्वं पर्यवसितम्, तच्च व्यावर्त्तकवैशिष्ट्यं वा, व्यावृत्तिवैशिष्ट्यं वा, उभयथाप्यखण्डार्थत्वभङ्ग इति–चेन्न; भावानवबोधात्, तथाहि–चन्द्रस्वरूपस्य ज्ञातत्वाभ्युपगमादेव तदज्ञाननिबन्धनदोषानवकाशः। ज्ञातत्वेऽपि च विपर्ययविरोधिज्ञानानुदयदशायां तदुदयार्थं प्रश्नो युज्यते एव; अन्यथा सर्वथा प्रश्नमात्रोच्छेदापत्तेः। अथानभ्यासदशापन्नं ज्ञानं न विपर्ययविरोधि प्रकृतेऽपि समं विषयतुल्यत्वेऽपि ज्ञानविशेषस्यैव विपर्ययनिवर्त्तकत्वस्य सर्वतन्त्रसिद्धान्तत्वात्।

शङ्कते नन्विति। चन्द्रस्वरूपको ज्ञातत्व होनेपर तत्र=चन्द्रस्वरूपमें प्रश्न युक्त नहीं है, अज्ञातत्वे=चन्द्रस्वरूपका अज्ञातत्व होनेपर धर्मिज्ञानसे साध्य जो बुभुत्सा=जिज्ञासा तथा सन्देह इन दोनोंकी अयुक्तता है तथा 'चन्द्रः' इस रीतिसे अनुवाद कर 'कः' इत्याकारक जो प्रश्न है=चन्द्रः कः=इत्याकारक जो चन्द्रको उद्देश्यकर प्रश्न है उस प्रश्नस्थ जो चन्द्रशब्द है उस चन्द्रशब्दके अर्थवत्वके अज्ञानसे चन्द्रशब्दको प्रातिपदिक न होनेसे तदुत्तर=चन्द्रशब्दसे उत्तर सुप् विभक्तिकी अयुक्तता है अतः आपका पक्ष समीचीन नहीं यदि आपका यों कथन है कि चन्द्रस्वरूपके ज्ञात होनेपरभी चन्द्रका असङ्कीर्ण स्वरूप ज्ञात नहीं है, तो यह कथन आपका युक्त नहीं क्यों? तस्मिन्=चन्द्रमें रूपद्वयके अभावसे; असङ्कीर्णत्वेन ज्ञात नहीं है ऐसा यदि है तब तो असङ्कीर्णत्ववारकप्रतीतिपरत्व पर्यवसित हुआ, तच्च=असङ्कीर्णत्व तो व्यावर्त्तक धर्मका वैशिष्ट्यरूप है,–यावत्साध्यव्यावृत्तिवैशिष्ट्यरूप है, उभयथापि अखण्डार्थत्वका भङ्ग है, इति चेन्न; क्यों? भावके न समझनेसे, तथाहि=भाव दिखलाते हैं–चन्द्रस्वरूपके ज्ञातत्वका अभ्युपगम होनेसे ही अज्ञातत्वनिबन्धन दोषोंका अनवकाश है। और ज्ञातत्व होनेपरभी विपर्ययका विरोधि जो ज्ञान उस ज्ञानकी अनुदय दशामें तदुदयार्थम्=उस ज्ञानके उदयके लिए प्रश्न युक्त ही है, अन्यथा सर्वत्र प्रश्नमात्रके उच्छेदकी आपत्तिसे यदि यों कहो कि,–अनभ्यासदशापन्नज्ञान विपर्ययका विरोधी है तो यह कथन प्रकृतमेंभी समान ही है और विषयको तुल्यता होनेपर ज्ञानविशेषनिष्ठ ही विपर्ययनिवर्त्तकत्वको सर्वतन्त्रसिद्धान्तत्व होनेसे।

शङ्खः श्वेतो न पीतः इत्यादि परोक्षज्ञाने भासते यादृशं श्वैत्यस्वरूपं पीताभावस्वरूपं वा, तादृशमेवापरोक्षज्ञानविषयतादशायां विपर्ययविरोधीतिविपर्ययविरोधिफलोपहितमेव असङ्कीर्णमित्युच्यते। फलोपधानतदभावौ च, दोषविशेषतदभावयोर्वैपरीत्येनेत्यन्यदेतत्। तथाच एकमेव स्वरूपं दशाविशेषभेदेन संकीर्णमसंकीर्णं चेति संकीर्णतादशायां युगपत् ज्ञाना–ज्ञानयोरुपपत्तिः। अतएव–व्यावृत्तिवैशिष्ट्यं व्यावर्त्तकवैशिष्ट्यं वा असंकीर्णत्वमिति–अपास्तम् शङ्खः श्वेतो न पीतः इत्यत्रोभयसद्भावेऽपि विपर्ययाविरोधित्वरूपसंकीर्णताया दर्शनात्।

शङ्ख श्वेत है, पीला नहीं; इत्यादिरूप परोक्षज्ञानमें जैसा श्वैत्यरूप या पीताभावस्वरूप भासित होता है तादृशमेव=वैसा स्वरूप ही अपरोक्षज्ञानविषयतादशामें विपर्ययका विरोधी है,

इस रीतिसे विपर्ययविरोधि=फलोपहित ही असङ्कीर्णशब्दसे कहा जाता है। फलोपधान और फलोपधानाभाव ये दोनों तो दोषविशेष और दोषविशेषका अभाव इन दोनोंके वैपरीत्येन=व्युत्क्रमसे होते हैं=दोषविशेषका अभाव होनेपर फलोपधान होता है, और दोषके होनेपर फलोपधानाभाव होता है, यह अन्यत्=यहाँपर विस्तार्य नहीं है। फलतः एकही स्वरूप दशाविशेषभेदसे सङ्कीर्ण तथा असङ्कीर्ण होता है, अतः सङ्कीर्णतादशामें एककालावच्छेदेन ज्ञान तथा अज्ञान इन दोनोंकी उपपत्ति है। अतएव व्यावृत्तिवैशिष्टय या व्यावर्त्तकवैशिष्टय असङ्कीर्णत्व है, यह कथन खण्डित हुआ, अतएव शब्दका अर्थ दिखलाते हैं—शङ्ख—इति 'शङ्खः श्वेतो न पीतः' यहाँपर उभयसद्भावेऽपि=व्यावृत्तिवैशिष्टय तथा व्यावर्त्तकवैशिष्टय इन दोनोंका सद्भाव होनेपरभी विपर्ययका अविरोधित्वरूप सङ्कीर्णताके देखनेसे।

यद्यपि यश्चन्द्रः तत्र चन्द्रत्वं तमोनक्षत्रादिव्यावृत्तिश्चास्तीति मया ज्ञायते एव तथापि चन्द्रस्वरूपं परं न ज्ञायते इत्यनुभवेन व्यावर्त्तकव्यावृत्तिवैशिष्टयस्याजिज्ञासितत्वेन जिज्ञासितं चन्द्रस्वरूपमेव विपर्ययविरोधिज्ञानविशेषं जनयता प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्र इति वाक्येन बोध्यत इति किमनुपपन्नम्? व्यावृत्तेः शाब्दबोधफलत्वेऽपि तदविषयत्वान्नाखण्डार्थत्वव्याघातः तद्बोधकपदाभावाच्च। अथ लक्षणया व्यावृत्तेः शाब्दबोधे भानम् न वैयर्थ्यं तत्र तात्पर्याभावेन लक्षणाया अयोगात् तथाहि—चन्द्रे व्यावृत्तिर्बोध्यते व्यक्तिविशेषे वा, नाद्यः या शुक्तिः सा रजतादिभिन्नेति ज्ञानेऽपि शुक्तिस्वरूपाज्ञानतत्कार्यविपर्ययादिदर्शनात्। द्वितीये त्वावश्यकत्वाद्व्यक्तिविशेष एव बोध्यताम्, किं व्यावृत्त्या शब्दानुपस्थितया? व्यक्तिविशेषबोधादेव तत्सिद्धेः।

यद्यपि। यः=जो चन्द्र है तत्र=उसमें चन्द्रत्व है और तमोनक्षत्रादिकी व्यावृत्तिभी उसमें है, यह मुझसे जाना है, तथापि चन्द्रस्वरूप मुझसे नहीं जाना जाता है इत्याकारक अनुभवसे व्यावर्त्तक तथा व्यावृत्ति इन दोनोंके वैशिष्टयको जिज्ञासितत्व न होनेसे जिज्ञासित चन्द्रस्वरूप ही विपर्ययविरोधि जो ज्ञानविशेष तादृश ज्ञानविशेषको उत्पन्न करता हुआ 'प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्र=' इस वाक्यसे बोधित होता है अतः ब्रह्मवादिओंके मतमें क्या अनुपपन्न है। व्यावृत्तिको शाब्दबोधका फलत्व=फलीभूतधीविषयत्व होनेपरभी शाब्दबोधको तदविषयत्व=व्यावृत्त्यविषयत्व होनेसे अखण्डार्थत्वका व्याघात नहीं है। तद्बोध=व्यावृत्तिबोधकपदके अभावसेभी शाब्दबोधमें उक्तस्थलमें व्यावृत्तिका भान नहीं होता है। अथ=यदि यों कहोकि, लक्षणासे शाब्दबोधमें व्यावृत्तिका भान होता है तो ऐसा नहीं कहना, क्यों? वैयर्थ्यप्रयुक्त तत्र=व्यावृत्तिमें तात्पर्यके अभावसे लक्षणाके अयोगसे। इसी अर्थको स्पष्टतया दिखलाते हैं—तथाहीति। चन्द्रमें व्यावृत्ति बोधन की जाती है यह आद्य पक्ष नहीं बन सकता है, क्यों? जो शुक्ति है वह रजतादिसे भिन्न है। इत्याकारक ज्ञानके होनेपरभी जैसे शुक्तिस्वरूपका अज्ञान और उस अज्ञानका कार्य विपर्यय इन दोनोंका दर्शन होता है, तैसे 'जो चन्द्र है वह

तम आदिसे विलक्षण है ' इत्याकारक ज्ञानके होनेपरभी चन्द्रस्वरूपका अज्ञान और चन्द्रस्वरूपाज्ञानका कार्य्य विपर्य्यय इन दोनोंके देखनेसे । और द्वितीय पक्षमें तो आवश्यक होनेसे व्यक्तिविशेष ही बोधित हो, शब्दसे अनुपस्थित व्यावृत्तिसे क्या फल है ? व्यक्ति विशेषके बोधसे ही व्यावृत्तिकी सिद्धिसे ।

नहि 'धूमोऽस्तीति वाक्ये वह्नौ लक्षणा अतएव विनैव लक्षणां व्यावृत्तिः शाब्दबोधे भासते, ' घटेन जलमाहरेत्यत्र छिद्रेतरत्ववत्–इति–निरस्तम् छिद्रतरत्वस्यानन्यलभ्यत्वेन शब्दतात्पर्यविषयत्वेऽपि न व्यावृत्तेस्तथात्वम् । हानोपादानादिवत् फलत्वेनान्यलभ्यत्वात् । छिद्रेतरत्वमपि लक्षणां विना न शाब्दबोधविषयः अन्यथा लक्षणोच्छेदापत्तेः, किन्तु शाब्दबोधविषये जलाहरणसाधने वस्तुगत्या । अस्तीत्यन्यत्र विस्तरः । अत एवोक्तमाकरे–अन्यतो व्यावृत्तिः, अर्थात् न शब्दादिति नच कश्चन्द्र इति धर्मप्रश्नोऽयम्; कश्चन्द्रधर्म इति स्वाधीने शब्दप्रयोगे निष्प्रयोजनलक्षणाया अन्याय्यत्वात्, तद्बोधनेऽपि अखण्डार्थत्वस्योपपादितत्वाच्च ।

क्योंकि ' धूमोऽस्ति ' इस वाक्यमें वन्हिनिरूपित लक्षणा नहीं है=किसीने प्रश्न किया कि, ' वन्हिरस्ति ' उत्तरदाताने कहाकि ' धूमोऽस्ति ' यहाँपर उत्तरदाताका धूमसे वन्हिका बोधहो ऐसा तात्पर्य नहीं है किन्तु–धूमपदसे धूमको जानकर वन्हिका स्वयं अनुमान करलेगा, ऐसा तात्पर्य है, तद्वत् प्रकृतमेंभी व्यावृत्ति, अर्थतः सिद्ध हो जाती है । अतएव–लक्षणाके विनाही व्यावृत्ति शाब्दबोधमें भासित होती है जैसे ' घटसे जलको ले आ' यहाँपर छिद्रेतरत्व घटमें भासित होता है, यह कथन निरस्त हुआ, अतएव शब्दके अर्थका विवरण करते हैं–छिद्रेति । अनन्यलभ्यत्वेन=उक्तवाक्यसे भिन्नप्रमाणसे लभ्यत्व न होनेसे छिद्रेतरत्वको शब्दतात्पर्यविषयत्व होनेपरभी व्यावृत्तिका तथात्व=शब्दतात्पर्यविषयत्व नहीं है, क्यों ? हान तथा उपादान इनदोनोंकी–तरह फलत्वेन अन्यलभ्यत्व होनेसे । छिद्रेतरत्वभी लक्षणाके विना शाब्दबोधका विषय नहीं है । अन्यथा=लक्षणाके उच्छेदकी आपत्ति है, किन्तु शाब्दबोधका विषय जो जलाहरण=जलके ले आनेका साधन उस साधनमें वस्तुगत्या छिद्रेतरत्व है, इस अर्थका अन्यत्र विस्तर है । अतएव प्राचीन ग्रन्थमें कहा है कि, अन्यतः=अन्यसे व्यावृत्ति है,–अर्थतः है नकि शब्दसे । ' कः चन्द्रः ' यह धर्मविषयक प्रश्न है नच=धर्मविषयक प्रश्न नहीं है, क्यों ? ' कः चन्द्रधर्मः ' इस रीतिसे स्वाधीन शब्दप्रयोगके होनेपर निष्प्रयोजनलक्षणाको न्यायापेत होनेसे । तद्बोधनेऽपि=चन्द्रधर्मका बोधन होनेपरभी इसप्रकरणमें ही अखण्डार्थत्वके उपपादित हो चुकनेसेभी ।

ननु—सर्वलक्षणवाक्यानां वस्तुगत्या परस्परभिन्नतत्तत्प्रातिपदिकार्थमात्रविषयज्ञानजनकत्वेन सप्रकारकज्ञानजनकत्वाभावात् प्रश्नवाक्यस्थं विशेष्यमात्रसमर्पकं चन्द्रादिपदमेव प्रयोक्तव्यमुत्तरवादिना किं प्रकृष्टप्रकाशादिपदेनेति–चेन्न; स्वरूपमात्रस्य ज्ञेय-

त्वेऽपि स्वरूपज्ञानस्य तावत्पदार्थाधीनत्वे सत्येव तावत्पदार्थेतरव्यावृत्तिफलत्वेन सर्वपदानां सफलत्वात्, अन्यथा संशयाद्यनुवृत्तेः अनुभवसिद्धत्वात्।

शङ्कते नन्विति। सर्वलक्षणवाक्योंको वस्तुगत्या परस्पर भिन्न जो तत्तत्प्रातिपदिकार्थमात्र तादृश प्रातिपदिकार्थमात्रविषयक जो ज्ञान तादृश ज्ञानका जनकत्व होनेसे सप्रकारक ज्ञानके जनकत्वके अभावसे=लक्षणवाक्योंको सप्रकारक ज्ञानकी जनकता न होनेसे प्रश्नवाक्यमें स्थित और विशेष्यमात्रका समर्पक जो चन्द्रादिपद वह चन्द्रादिपदही उत्तरवादीसे प्रयोक्तव्य है प्रकृष्टप्रकाशादिपदसे क्या है?=निष्फल होनेसे प्रकृष्टप्रकाशादिपदोंका प्रयोग नहीं करना चाहिए; इति चेन्न; क्यों? स्वरूपमात्रको ज्ञेयता होनेपरभी स्वरूपज्ञानको तावत्पदार्थाधीनत्व होनेपर ही तावत्पदार्थेतरव्यावृत्तिफलत्व होनेसे, सर्वपदोंको सफलत्व होनेसे, अन्यथा प्रकृष्टप्रकाशादिपदोंके न होनेपर संशयादिकी अनुवृत्तिको अनुभवसिद्धत्व होनेसे।

ननु—उत्तरस्य प्रकृष्टत्वादिविशिष्टबोधपरत्वाभावे तात्पर्यतो यः कश्चिच्चन्द्र इत्येवावबोधनाद्वस्तुतो यस्य कस्यापि चन्द्रत्वं स्यात् तात्पर्यविषये चायं चन्द्र इति लक्ष्यलक्षणरूपोद्देश्यविधेयविभागाभावेन चन्द्रबुभुत्साया अनिवृत्तिः कश्चन्द्र इति प्रश्नस्योत्तरं च न स्यादिति चेन्न; यथागङ्गसम्बन्धित्वविशिष्टे तात्पर्याभावेऽपि वस्तुगत्या गङ्गासम्बन्ध्येव तीरं गङ्गापदेन लक्ष्यते, यथा वा; व्रीहीन् प्रोक्षतीत्यादौ व्रीह्यादिस्वरूपे प्रोक्षणादिविधानवैयर्थ्याद्व्रीहिभिर्यजेतेत्यादिवाक्यसिद्धापूर्वसम्बन्धित्वलक्षणायामपि वस्तुगत्या व्रीहीत्वाद्याश्रयीभूता एव व्यक्तयो व्रीह्यादिपदैर्लक्ष्यन्ते तथा प्रकृतेऽपि प्रकृष्टप्रकाशपदाभ्यां वस्तुगत्या स्वाश्रयीभूतैव व्यक्तिर्लक्ष्यते नतु या काचिदिति विशिष्टतात्पर्याभावेऽपि न पूर्वोक्तदोषः।

शङ्कते नन्विति। उत्तरस्य=उत्तरको प्रकृष्टत्वादिसे जो विशिष्ट तादृशविशिष्टविषयक जो बोध तादृशबोधपरत्व न होनेपर तात्पर्यतः 'जो कोई चन्द्र है' इस रीतिसे ही अवबोधन होनेसे वस्तुतः जिस किस पदार्थकाभी चन्द्रत्व होगा, और तात्पर्यके विषयमें 'यह चन्द्र है' इस रीतिसे लक्ष्यलक्षणरूप जो उद्देश्यविधेय उसके विभागके अभावसे चन्द्रबुभुत्साकी अनिवृत्ति होगी और 'कश्चन्द्रः' इस प्रश्नका उत्तरभी न होगा, इति चेन्न; क्योंकि, जैसे गङ्गायां घोषः यहाँपर गङ्गासम्बन्धित्वविशिष्टमें तात्पर्यके न होनेपरभी वस्तुगत्या गङ्गासम्बन्धितीरही गङ्गापदसे लक्षित होता है, अथवा जैसे-'व्रीहीन् प्रोक्षति' इत्यादिमें व्रीहि आदिके स्वरूपमें प्रोक्षणादिके विधानके वैयर्थ्यसे, व्रीहिभिर्यजेत, इत्यादिवाक्यसिद्ध जो अपूर्व तादृश-अपूर्वसम्बन्धित्वमें लक्षणाके होनेपरभी वस्तुगत्या व्रीहित्वादिधर्मकी आश्रयभूत जो व्यक्तियां हैं वे व्यक्तियां ही व्रीह्यादिपदोंसे लक्षित होती हैं, तैसे प्रकृतमेंभी प्रकृष्ट तथा प्रकाश इन दोनों पदोंसे वस्तुगत्या स्वाश्रयीभूत=प्रकर्ष तथा प्रकाश इन्होंकी आश्रयीभूत व्यक्ति ही लक्षित होती है न कि,—जो कोई, अतः विशिष्टमें तात्पर्यके न होनेपरभी पूर्वोक्त दोष नहीं है।

अयं चन्द्र इति लक्ष्यलक्षणभावाभावेऽपि तदुभयप्रतिपादकपदाभ्यामुपस्थितस्यैकस्वरूपस्यैव उद्देश्यविधेयभावसम्भवेन बुभुत्सानिवृत्तेरुत्तरत्वस्य च संभवात्। निष्प्रकारस्यापि ज्ञानस्य संशयादिनिवर्त्तकत्वं प्रागुपपादितमेव तदेतन्निष्कृष्टम्—प्रश्नोत्तरे तावत् चन्द्रप्रातिपदिकार्थमात्रविषये चन्द्रप्रातिपदिकार्थश्च प्रकृष्टप्रकाशाश्रयीभूतासाधारणी विशेष्यभूता व्यक्तिः, न तु प्रकृष्टप्रकाशविशिष्टा, प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्र इति सहप्रयोगानुपपत्तेः विशेष्यव्यक्तिश्चाखण्डेत्यखण्डार्थतैव।

यह चन्द्र है, इस रीतिसे लक्ष्यलक्षणका अभाव होनेपरभी=विशेषणविशेष्यभावरूप जो पराभिमत लक्षणवाक्याधीन लक्ष्यलक्षण धर्म है उसका अभाव होनेपरभी तदुभय=चन्द्रत्वविशिष्ट और प्रकृष्टप्रकाशत्वविशिष्ट जो उभय तादृश उभयप्रतिपादक पदोंसे उपस्थित एक स्वरूपको ही उद्देश्यविधेयभावका सम्भव होनेसे,—बुभुत्सानिवृत्तिके और उत्तरके सम्भवसे। और निष्प्रकारक ज्ञानकोभी संशयादिका निवर्त्तकत्व प्रथम उपपादितही है। तत्=तस्मात् यह निष्कृष्ट हुआ कि—प्रश्न तथा उत्तर ये दोनों चन्द्रप्रातिपदिकार्थमात्रविषयक हैं, और चन्द्रप्रातिपदिकार्थ तो प्रकृष्टप्रकाशाश्रयीभूत असाधारणी विशेष्यभूता व्यक्तिं है, प्रकृष्टप्रकाशविशिष्टा व्यक्ति चन्द्रप्रातिपदिकार्थ नहीं; क्यों ? 'प्रकृष्टप्रकाशः चन्द्रः' इस रीतिसे सह प्रयोग होता है उसकी अनुपपत्तिसे=जब चन्द्रपदका ही उक्त अर्थ हो जायगा तब 'प्रकृष्टप्रकाशः' इतनेका चन्द्रके साथमें प्रयोग करनेका कुछ प्रयोजन नहीं। और विशिष्य व्यक्ति तो अखण्डा है अतः अखण्डार्थता ही है।

ननु—गामानयेत्यत्र गामुद्दिश्यानयनविधानात् यथा गोत्वस्य उद्देश्यतावच्छेदकत्वात् आनयनेनान्वयेऽपि प्रकारत्वं, तथा प्रकृतेऽपि प्रकृष्टप्रकाशस्य चन्द्रप्रातिपदिकार्थत्वेनानन्वयेऽप्युद्देश्यतावच्छेदकत्वात् प्रकारत्वं दुर्वारम्, नहि गामानयेत्यत्र गोत्वं विनाऽन्वय इति चेन्न; प्रातिपदिकार्थतावच्छेदकत्वस्य प्रातिपदिकार्थत्वनियतत्वेनाप्रातिपदिकार्थे तदवच्छेदकत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्। तथाच प्रकृष्टप्रकाशस्य प्रातिपदिकार्थतावच्छेदकत्वे प्रातिपदिकार्थत्वं दुर्वारमेव।

शङ्कते नन्विति। गामानय=गोको ले आ. यहाँपर गोको उद्देशकर आनयनका विधान होनेसे जैसे गोत्वको उद्देश्यतावच्छेदकत्व होनेसे आनयनरूप विधेयके साथ गोत्वका अन्वय न होनेपर भी शाब्दबोधमें उसको प्रकारत्व है। तैसे प्रकृतमेंभी प्रकृष्ट प्रकाशका चन्द्रप्रातिपदिकार्थत्वके साथ अन्वय न होनेपर भी उद्देश्यतावच्छेदकत्व होनेसे प्रकारत्व दुर्वार है, क्योंकि 'गामानय' यहाँपर गोत्वको छोडकर अन्वय नहीं होता है, इतिचेन्न; क्यों ? प्रातिपदिकार्थमें तदवच्छेदकत्वस्य=प्रातिपदिकार्थतावच्छेदकत्वको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे, फलतः प्रकृष्टप्रकाशको प्रातिपदिकार्थतावच्छेदकत्व होनेपर प्रातिपदिकार्थत्व दुर्वारही है।

ननु—पृथिवीत्ववती पृथिवीत्यादौ पृथिवीत्वस्य विधेयेन पृथिवीप्रातिपदिकार्थत्वेनान्वयः; पृथिवीत्वस्य पृथिवीप्रातिपदिकार्थत्वात्, सहप्रयोगस्तु पृथिवीशब्दस्य तद्व्यवहर्तव्यतापरतयेति तत्र व्यभिचार इति—चेत् न, पृथिवीशब्दार्थत्वेन पृथिवीत्वजातिविशिष्टमजानतः पृथिवीत्वपदेन जातेरुपस्थित्यभावात् अनन्वय एव स्यात् इति पृथिवीत्वजातिविशिष्टे पृथिवी-शब्दार्थत्वग्रहोऽवश्यं प्रागेव श्रोतुर्वक्तव्यः । तथाच वचनवैफल्यमित्यनन्यगत्या जलादिव्यावृत्तगन्धसमानाधिकरणजातिमती पृथिवीत्याद्यर्थे पर्यवसितमुत्तरम् । गन्धसमानाधिकरणजातिमत्त्वादिकञ्च न पृथिवीपदवाच्यमिति कथं नान्वयः । व्यवहर्तव्यतालक्षणया सह प्रयोगोपपादनं चायुक्तं । व्यवहर्त्तव्यतायां हि जहल्लक्षणा तत्र च स्वार्थहानिः; स्वरूपे तु जहदजहल्लक्षणा, तत्र स्वार्थान्वय इति स्वरूपे जहदजहल्लक्षणाया एवोचितत्वात् ।

शङ्कते नन्विति । पृथिवीत्ववती पृथिवी है, इत्यादिमें पृथिवीत्वका विधेय जो पृथिवीप्रातिपदिकार्थत्व उस पृथिवीप्रातिपदिकार्थत्वके साथ अन्वय है, पृथिवीत्वको पृथिवीप्रातिपदिकार्थत्व होनेसे=उद्देशतावच्छेदकीभूतलक्षणका=पृथिवीत्वका यहाँपर विधेयके साथ अन्वय बोधित होता है तद्वत् अन्यत्रभी लक्षणका विधेयके साथ अन्वय बोधित होगा और ऐसा होनेसे लक्षणवाक्योंको सखण्डार्थता सिद्ध होगी और यहाँपर पृथिवीत्ववतीके साथ जो पृथिवीपदका प्रयोग है वह तो तद्व्यवहर्त्तव्यतापर=‘पृथिवीत्ववती पृथिवीपदवाच्या’ इत्याकारकव्यवहर्त्तव्यतापर है, अतः तत्र=उक्त स्थलमें व्यभिचार है=थिवीत्ववती पृथिवी इसेभी लक्षणवाक्यत्व है परन्तु संसृष्टार्थपरत्व होनेसे अखण्डार्थनिष्ठत्वरूप साध्य नहीं अतः व्यभिचार है इति चेन्न; क्योंकि—पृथिवीशब्दार्थत्वेन पृथिवीत्वजातिविशिष्टको नहीं जाननेवालेको पृथिवीत्वपदसे जातिकी उपस्थितिके अभावसे अनन्वय ही होगा, अतः पृथिवीत्वजातिविशिष्टमें पृथिवीशब्दार्थत्वका ग्रह अवश्यही पहिले श्रोताको कहना चाहिए, और ऐसा होनेपर उक्त वचनका नैष्फल्य है इस लिए अन्यगतिके न होनेसे जलादिसे व्यावृत्त और गन्धसमानाधिकरण जो जाति तादृश जातिमती पृथिवी है, इत्याद्यर्थमें उत्तर पर्यवसित हुआ । और गन्धसमानाधिकरण जातिमत्त्वादिक तो पृथिवीपदवाच्य नहीं है अतः यहाँपर अन्वय कैसे न होगा । और व्यवहर्त्तव्यतामें लक्षणासे सह प्रयोगका उपपादन भी अयुक्त है क्योंकि व्यवहर्त्तव्यतामें जहल्लक्षणा होगी और जहल्लक्षणा होनेपर स्वार्थकी हानि होगी और स्वरूपमें तो जहदजहल्लक्षणा होगी तत्र=जहदजहल्लक्षणा होनेपर स्वार्थान्वय है, फलतः स्वरूपमें जहदजहल्लक्षणाकोही उचितत्व है ।

तदुक्तं व्याप्तेश्च समञ्जसमित्यधिकरणे भाष्यकृद्भिः—लक्षणायामपि सन्निकर्षविप्रकर्षौ भवत इति । ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीतेत्यत्र किमोङ्कारसदृशमुद्गीथमित्यर्थः; किंवा उद्गीथावयवमोङ्कारमिति विवक्षायां गौण्यां वृत्तौ स्वार्थहानेरवयव-लक्षणैव ज्यायसी सन्निकृष्टत्वादिति तत्र निर्धारितम् । एतेन धर्मिणश्चन्द्रस्य सामान्यतो ज्ञातत्वात् नक्षत्रा-

दिभ्यो व्यावर्त्तकधर्मस्य व्यावृत्तेश्च घटादौ प्रागेवज्ञातत्वात्, विशिष्टविषये एव प्रश्नोत्तरे तत्र यदि व्यावृत्तिवैशिष्ट्यमेव प्रष्टुः साक्षाद्. बुभित्सितं तदापि तत्तद्व्यावृत्तेः समासहस्रेणापि वक्तुमशक्यतया वह्निबुभुत्सायां धूममिव व्यावर्त्तकधर्मवैशिष्ट्यमेवाभिधत्ते, नहि वह्निबोधार्थस्य धूमोऽस्तीति वाक्यस्य न धूमे तात्पर्यम्, न वा यागाक्षेपकस्य यदाग्नेय इत्यादिवाक्यस्य द्रव्यदेवतासम्बन्धे, यदा तु तत्तद्व्यावृत्तेर्वक्तुमशक्यतामवगम्य व्यावर्त्तकधर्मवैशिष्ट्यमेव पृच्छति तदा सुतरां प्रश्नोत्तरयोर्विशिष्टपरत्वमिति निरस्तम् प्रथमे प्रश्नोत्तरयोर्वैयधिकरण्यापत्तेः, द्वितीये श्रुतार्थपरित्यागापत्तेः प्रथमेऽपि श्रुतार्थपरित्यागः स्थित एव। नचानन्यगतया श्रुतार्थपरित्यागाभ्युपगमः गत्यन्तरस्योक्तत्वात्।

सो कहा है व्याप्तेश्च समञ्जसम्, (वे० अ० ३ पा० ३ सू० ९) इस अधिकरणमें भाष्यकारने-लक्षणामेंभी सन्निकर्षविप्रकर्षौ=युक्तत्व तथा अयुक्तत्व ये दोनों होते हैं। ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत (छां० १।१।१) यहाँपर ओङ्कारके सदृश उद्गीथको यह अर्थ है, अथवा उद्गीथावयवभूत ओङ्कारको यह अर्थ है=यहाँपर क्या ओङ्कारके सदृश उद्गीथकी उपासना विवक्षित है अथवा उद्गीथावयवत्वेन ओङ्कारकी उपासना विवक्षित है, इस रीतिसे विकल्प होनेपर गौणीवृत्ति होनेपर स्वार्थकी हानिसे=सिंहो माणवकः=यहाँपर जैसे स्ववाच्यसम्बन्धिशूरत्वक्रूरत्वादिधर्मोंसे माणवकबोधक सिंहपदके स्वार्थकी हानि है, तैसे प्राशस्त्य विशेषको निमित्तकर गौणीवृत्त्या ओम् इस पदको ओङ्कारसदृश-उद्गीथबोधकत्व होनेपर स्वार्थकी हानि है तादृश स्वार्थहानिसे, अवयवलक्षणैव=उद्गीथावयवत्वेन लक्षणा ही है सन्निकृष्टत्वात्=उद्गीथरूपमुख्यार्थगर्भित अर्थज्ञानका प्रयोजकत्व होनेसे, इति=यह अर्थ तत्र=उक्ताधिकरणमें निश्चित हुआ है। एतेन, धर्मिरूप जो चन्द्र है उस चन्द्रको सामान्यतः ज्ञातत्व होनेसे और नक्षत्रादिकोंसे व्यावर्त्तक धर्म तथा व्यावृत्ति इन दोनोंको घटादिकमें प्रथम ही ज्ञातत्व होनेसे विशिष्ट है विषय जिन्होंका ऐसे ही प्रश्न तथा उत्तर हैं, तहाँ यदि व्यावृत्तिका वैशिष्ट्य ही प्रष्टाको साक्षात् जिज्ञासित है तबभी तिस तिसकी व्यावृत्तिको वर्षसहस्रसेभी कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे वह्निकी बुभुत्सामें धूमकी नाई व्यावर्त्तक धर्मके वैशिष्ट्यको ही कहता है, क्योंकि वह्निबोधार्थ जो 'धूमोऽस्ति' इत्याकारक वाक्य है, उस वाक्यका धूममें तात्पर्य नहीं है ऐसा नहीं है, तैसे यागका आक्षेपक जो 'यदाग्नेयः' इत्यादि वाक्य है उस वाक्यका द्रव्यदेवतासम्बन्धमें तात्पर्य नहीं है यह बातभी नहीं है=' यदाग्नेयोऽष्टाकपालः ' यहाँपरभी 'अग्निरूपदेवता' और अग्निदेवताक अष्टकपालोंमें संस्कृत पुरोडाशरूपद्रव्य इन दोनोंके अभिधानसे यागका आक्षेप होता है, इस रीतिसे यागबुबोधयिषासे उच्चरित इस वाक्यकाभी द्रव्यदेवतासम्बन्धमें तात्पर्य है तैसे प्रकृतमेंभी; इसी रीतिसे अग्निबुबोधयिषया उच्चरित 'धूमोऽस्ति' इस वाक्यमेंभी ज्ञातव्य है। और जब कि, तत् तत्=तिस तिससे व्यावृत्तिके कथन करनेकी अशक्यताको समझकर व्यावर्त्तक धर्मके वैशिष्ट्यको ही पूछता है तब तो सुतराम् प्रश्न तथा उत्तर इन दोनोंको विशिष्टपरत्व है; यह

कथन निरस्त हुआ, एतेन शब्दका अर्थ स्पष्टकरते हैं, प्रथम इति। प्रथमे=तत्र यद्व्यावृत्ति-वैशिष्ट्यमेव, इत्यादिरूप प्रथमपक्षमें प्रश्न तथा उत्तर इन दोनोंके वैयधिकरण्यकी आपत्तिसे= व्यावृत्तिविषयक प्रश्न है, और व्यावर्त्तकबोधक उत्तर है, फलतः दोनोंको साक्षाद्भिन्नविषयकत्व होनेसे, प्रश्नोत्तरका वैयधिकरण्य है। द्वितीये='यदा तु' इत्यादिरूप द्वितीय पक्षमें श्रुतार्थके परित्यागकी आपत्ति है='कश्चन्द्रः' इस प्रश्नको 'जिज्ञासितश्चन्द्रः' इत्यर्थकत्वेन श्रुतत्व है, और 'जिज्ञासितव्यावर्त्तकधर्मयुक्त चन्द्र है' इत्यर्थकत्व होनेपर श्रुतार्थका त्याग है। इस रीतिसे प्रथम पक्षमेंभी 'जिज्ञासितव्यावृत्तिविशिष्टः चन्द्रः' यह प्रश्नका अर्थ श्रुत नहीं है फलतः श्रुतार्थका त्याग उस पक्षमेंभी है ही। अन्यगतिके न होनेसे श्रुतार्थके परित्यागका अभ्युपगम है; नच=ऐसा नहीं कहना, क्यों? अन्यगतिको उक्तत्व होनेसे।

ननु—प्रश्नोत्तरयोर्वैयधिकरण्यापत्तेर्यदि स्वरूपे लक्षणा तदा वह्निप्रश्ने धूमोऽस्तीत्युत्तरे वह्नौ लक्षणास्त्विति—चेन्न; धूमोऽस्तीति वाक्येनाहत्य शक्त्या लिङ्गे बोधिते तत एव वह्निबोधोपपत्तौ तात्पर्यानुपपत्तिकल्प्यलक्षणाया अयोगात्, श्रुतिलिङ्गाधिकरणन्यायेन वाक्यापेक्षया लिङ्गस्य बलवत्त्वाच्च प्रकृते चासङ्कीर्णचन्द्रस्वरूपसिद्धौ वाक्यातिरिक्तप्रमाणाभावेन वैषम्याच्च।

शङ्कते नन्विति। प्रश्न तथा उत्तर इन दोनोंके वैयधिकरण्यसे यदि स्वरूपमें लक्षणा है तब वह्निविषयक प्रश्न होनेपर 'धूमोऽस्ति' एतदुत्तरनिरूपित वह्निमें लक्षणा हो, इति चेन्न; क्यों? 'धूमोऽस्ति' इस वाक्यसे आहत्य=साक्षात् शक्तिसे, लिङ्गके बोधित होनेपर तत एव= लिङ्गबोधसेही वह्निबोधकी उपपत्ति होनेपर तात्पर्यकी अनुपपत्तिसे कल्पनीय जो लक्षणा उस लक्षणाके अयोगसे, और श्रुतिलिङ्गाधिकरणन्यायसे वाक्यापेक्षया लिङ्गको बलवत्ता होनेसे भी वह्निका ज्ञान लिङ्गसेही मानना उचित है, और प्रकृतमें तो असङ्कीर्ण चन्द्रस्वरूपकी सिद्धिमें= विपर्ययविरोधिचन्द्रस्वरूपविषयकज्ञानमें वाक्यातिरिक्त प्रमाणके अभावसे वैषम्य होनेसेभी कोई अनुपपत्ति नहीं।

ननु—किंलक्षणश्चन्द्र इत्यस्यासाधारणधर्मविषयकस्य कतमश्चन्द्र इत्यस्य जातिविषयकस्यानयोः कतरश्चन्द्र इत्यस्य जातिगुणक्रियाभिः पृथक्करणरूपनिर्धारणविषयकस्य प्रश्नस्योत्तरे इवात्रापि प्रतिवचने लक्षणोक्तेः प्रश्नेऽपि प्रकृष्टप्रकाशोऽप्रकृष्टप्रकाशो वेति धर्मवाचकं पदं कल्पनीयं तत्सूचककिंशब्दप्रयोगाच्चेति—चेन्न; वह्निप्रश्ने धूमोऽस्तीति-प्रतिवचनदर्शनेन प्रतिवचनोक्तत्वस्य प्रष्टुर्बुभुत्सितत्वेऽतन्त्रत्वात्। अथ तत्र बुभुत्सितबोधोपयुक्तत्वात्तदुक्तिः, प्रकृतेपि नोपयोग इति केन तुभ्यमभ्यधायि? किंलक्षण इत्यादिप्रश्नतथात्वे तद्वाचकपदवत्त्वस्योपाधित्वात्, क्वचिद्दर्शनमात्रस्याप्रयोजकत्वाच्च, किंशब्दस्य बुभुत्सासूचकत्वेन तस्य धर्मबुभुत्सानियतत्वाच्च। एवञ्च प्रश्ने धर्मवाचिपदाभावात्तदनुरोधिन्युत्तरे धर्मवाचकं पदं स्वरूपपरमेव।

शङ्कते नन्विति। 'किंलक्षणश्चन्द्र' इस असाधारणधर्मविषयक प्रश्नके उत्तरमें 'कतमः चन्द्रः' इस जातिविषयक प्रश्नके उत्तरमें और इन दोनोंमें 'कतरः चन्द्रः' इस जातिगुणक्रिया-ओंसे पृथक्करणरूपनिर्धारणविषयकप्रश्नके उत्तरमें जैसे असाधारणधर्मकी उक्ति होती है, जैसे अत्रापि='कश्चन्द्र' इस प्रश्नके प्रतिवचन=उत्तरमेंभी लक्षण=असाधारणधर्मकी उक्ति होनेसे प्रश्नमेंभी प्रकृष्ट प्रकाश है या अप्रकृष्ट प्रकाश है इस रीतिसे धर्मवाचक पद कल्पनीय है. तत्सूचक=उक्त विकल्पसूचक किंशब्दके प्रयोगसेभी इति चेन्न; क्यों ? वह्निविषयक प्रश्न होनेपर 'धूमोऽस्ति' ऐसा प्रतिवाक्य देखनेसे प्रतिवचनोक्तत्वको प्रष्टाके बुभुत्सितत्वमें अतन्त्रत्व=अव्याप्यत्व होनेसे=पूछनेवालेको जो जिज्ञासित है वहीं प्रतिवचनसे कहा जाय ऐसा नियम नहीं है यदि यों कहो कि तत्र=उक्तस्थलमें बुभुत्सित=वह्निके बोधमें उपयुक्तत्व होनेसे तदुक्तिः=धूमकी उक्ति है, तो प्रकृतमें भी बुभुत्सिताखण्डस्वरूपके बोधमें लक्षणोक्तिका उपयोग नहीं है ऐसा किसने तुमसे कहा है। किंलक्षण इत्यादिप्रश्नतथात्वे='किंलक्षणश्चन्द्रः' इत्यादि-प्रश्नवदसाधारणधर्मबोधकत्वानुमानमें='कश्चन्द्रः' यह प्रश्न, असाधारणधर्मविषयक है, असा-धारणधर्मविषयकप्रश्नोत्तरसमानोत्तरत्वात्, 'किंलक्षणकश्चन्द्रः' इतिवत् इत्याकारकानुमानमें तद्वाचकपदवत्वको उपाधित्व होनेसे=किंलक्षणश्चन्द्रः। यहाँपर तद्वाचक=असाधारणधर्मवाचक पदवत्त्वरूप उपाधि है अतः साध्यकी व्यापक है और साधन तो 'कश्चन्द्रः' इस वाक्यमेंभी है परन्तु यहाँ उक्त उपाधि नहीं अतः साधनकी अव्यापक है और कचिद्दर्शनमात्रको अप्रयोज-कता होनेसे भी उक्त नियम नहीं बन सकता है। और किंशब्दको बुभुत्साका सूचकत्व होनेसे तस्य=किंशब्दको धर्मबुभुत्सानियतत्वके अभावसेभी। एवञ्च=फलितार्थ यह हुआ कि-प्रश्नमें धर्मवाचिपदके अभावसे तदनुरोधिनी=तदनुसारि उत्तरमें धर्मवाचक पद स्वरूपपरही है।

स्वरूपबुभुत्साया उपपादितत्वेन लक्षणाबीजाभावात् न प्रश्नवाक्यस्थं चन्द्रपदं तदसाधारणधर्मलक्षणम्। यत्तु—लक्षणवाक्यं चन्द्रव्यवहारकर्तव्यतावैशिष्ट्यपरम्। अतो नाखण्डार्थता, चन्द्रपदविशेषितो व्यवहारः, नतु चन्द्ररूपार्थविशेषित इति तज्ज्ञानाज्ञा-नाभ्यां वैयर्थ्यबोधनाशक्यतादोषौ न भवतः। नच—वृद्धव्यवहार एव शक्तिग्राहकोऽस्तु, किं लक्षणवाक्येनेति—वाच्यम्; उपायस्य उपायान्तरादूषकत्वात्—इति तन्न; प्रश्नोत्तरवै-यधिकरण्यापत्तेरुक्तत्वात्, प्रश्नवाक्यस्थचन्द्रशब्दे लक्षणाबीजाभावात् असाधारणं चन्द्र-स्वरूपमज्ञात्वा तत्र चन्द्रशब्दविशेषितव्यवहारवैशिष्ट्यस्य ज्ञातुमशक्यत्वात् तज्ज्ञानस्याव-श्यकत्वे तेनैव वाक्यप्रामाण्योपपत्तेर्व्यवहारकर्त्तव्यतापरत्वे मानाभावात्। अत एवोक्तं—मानान्तरसिद्धं प्रकृष्टप्रकाशवैशिष्ट्यमखण्डार्थसिद्धावुपायमात्रमिति।

स्वरूपविषयिणी जिज्ञासाके उपपादितत्वसे और लक्षणामें बीजके अभावसे प्रश्नवाक्यमें स्थित चन्द्रपद तदसाधारण=चन्द्रवृत्त्यसाधारण धर्मका लक्षक नहीं है। लक्षणवाक्य, चन्द्रव्यव-हारकी जो कर्त्तव्यता उस कर्त्तव्यताका जो वैशिष्ट्य तादृशवैशिष्ट्यपर है, अतः लक्षणवाक्यको

अखण्डार्थता नहीं है, और चन्द्रव्यवहार तो चन्द्रपदसे विशेषित व्यवहाररूप विवक्षित है, न कि चन्द्ररूप जो अर्थ तादृश अर्थसे विशेषित; अतः तज्ज्ञानाज्ञानाभ्यां=चन्द्रस्वरूपके ज्ञानसे तथा अज्ञानसे क्रमसे वैयर्थ्य तथा बोधनाशक्यता ये दोनों दोष नहीं होते हैं=चन्द्रस्वरूपका ज्ञान होनेपर तद्व्यवहारका भी सम्भव होनेसे व्यवहर्त्तव्यताज्ञापनका वैयर्थ्य है, और चन्द्रस्वरूपका ज्ञान न होनेपर चन्द्रस्वरूपविशेषणके अज्ञानसे चन्द्रस्वरूपरूपविशेषणसे विशेषित व्यवहारका ज्ञापन अशक्य है। वृद्धव्यवहारही शक्तिका ज्ञापक रहो लक्षणवाक्यसे क्या प्रयोजन है, इति नच वाच्यम्, क्यों? एक उपायको उपायान्तरका अदूषकत्व होनेसे इति यत् तत् तु न; क्यों? प्रश्न तथा उत्तर इन दोनोंके वैयधिकरण्यकी आपत्तिको उक्त होनेसे, प्रश्नवाक्यस्थ जो चन्द्रशब्द है उस चन्द्रशब्दमें लक्षणाके बीजके अभावसे, असाधारण चन्द्रस्वरूपको न जानकर तत्र=चन्द्रमें चन्द्रशब्दविशेषित व्यवहारके वैशिष्ट्यको जाननेके लिए अशक्यत्व होनेसे तज्ज्ञानस्य=चन्द्रज्ञानको आवश्यकत्व होनेसे तेनैव=उक्त चन्द्रस्वरूपके ज्ञानसेही लक्षणवाक्यके प्रामाण्यका सम्भव होनेसे व्यवहारकर्त्तव्यतापरत्वमें प्रमाणके अभावसे। इसी लिए कहा है—मानान्तरसे सिद्धप्रकृष्टप्रकाशका वैशिष्ट्य अखण्डार्थसिद्धिमें उपायमात्र है।

अस्मिन्ज्योतिर्मण्डले कश्चन्द्र इति प्रश्नसमये प्रत्यक्षेणेव अन्यदापि प्रकारान्तरेणैव तस्य ज्ञातत्वात्, अन्यथा तस्यानुवाद्यत्वानुपपत्तेः चन्द्रस्वरूपे तु ज्ञातेऽप्यसङ्कीर्णज्ञानाभावात् बुभुत्सोपपादितैवेति प्रथमानुमानमनाविलम्।

इस ज्योतिर्मण्डलमें कौन चन्द्र है इत्याकारक प्रश्नके समयमें प्रत्यक्षेणेव=जैसे प्रत्यक्षसे चन्द्र ज्ञात होता है वैसे अन्यदापि=प्रकृष्टप्रकाशका जो वैशिष्ट्य तादृश वैशिष्ट्यका जिस कालमें इन्द्रियके साथ सन्निकर्ष नहीं है उस कालमें प्रकारान्तरेणैव=अनुमानादिसे=चन्द्रः, प्रकृष्ट-प्रकाशविशिष्टः तमोनक्षत्रादिभिन्नत्वात् इस अनुमानसे और चन्द्रका प्रकृष्ट प्रकाश है इस शब्दसे जाना जाता है, एवं यथासम्भव प्रमाणान्तरसेभी ज्ञान हो सकता है। अन्यथा=प्रकारान्तरसे ज्ञान न होनेपर अनुवाद्यत्वकी अनुपपत्ति है=व्यवहारकर्त्तव्यताके प्रति प्रकृष्टप्रकाशादिका उद्देश्यत्व अवश्य वाच्य है अतः अनुवाद्यत्व आवश्यक है, क्योंकि ज्ञातको उद्देश्यकर अज्ञातका विधान किया जाता है यह वस्तुस्थिति है यह भाव है। और चन्द्रस्वरूपके ज्ञात होनेपरभी असङ्कीर्णज्ञानके अभावसे बुभुत्सा उपपादित हो ही चुकी है इस रीतिसे सत्यादिवाक्य अखण्डार्थ निष्ठ है, लक्षणवाक्यत्व होनेसे यह प्रथम अनुमान अनाविल=निर्दोष है।

द्वितीयानुमानेऽपि नाप्रसिद्धविशेषणत्वबाधसत्प्रतिपक्षसाध्यवैकल्यादयो दोषाः। तथाहि—साध्यं तावत् ब्रह्मप्रातिपदिकार्थविशेष्यनिष्ठत्वम्; अन्यथा ब्रह्मपदस्य यौगिकत्वेन सखण्डार्थत्वप्रसङ्गात्, प्रकृष्टप्रकाशादिवाक्यञ्च प्रातिपदिकार्थविशेष्यमात्रपरं भवतीति सामान्यव्याप्तौ दृष्टान्ते न साध्यवैकल्यमपि। ब्रह्मप्रातिपदिकार्थविशेष्यमात्रनिष्ठत्वं

हि अखण्डार्थत्वमेव। तत्प्रश्नोत्तरत्वहेतुव्युत्पादनमपि पूर्वोक्तप्रकृष्टादिवाक्यन्यायेनैवेति नाप्रसिद्धिबाधौ प्रश्नोत्तरवैयधिकरण्यापत्तिरूपविपक्षबाधकसध्रीचीनतया सत्प्रतिपक्षाप्रयोजकत्वोपाधीनामनवकाशः नच–सत्यादिरूपप्रतिवचने प्रश्नस्य कश्चन्द्र इतिवदश्रवणात्तदुत्तरानुसारेण प्रश्नवाक्ये कल्पनीये धर्मविषयकमेव तत् कल्प्यते बाधकाभावात्, तथाचासिद्धिरिति–वाच्यम्; ब्रह्मविदाप्नोतिपरं एकधैवानुद्रष्टव्यमित्यादिवाक्यबलात् सत्यत्वादिवैशिष्ट्याविषयकस्यैव ब्रह्मविषयकवेदनस्य मोक्षजनकत्वात् तदतिरिक्तबुभुत्साविरहेण तद्विषयकप्रश्नवाक्यस्य कल्पयितुमशक्यत्वेन कश्चन्द्र इतीव किं ब्रह्मेत्येव वाक्यं कल्प्यत इति नासिद्धिः।

सत्यादिवाक्यम्, ब्रह्मप्रातिपदिकार्थनिष्ठम्, तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्वात्, इस द्वितीयानुमानमेंभी अप्रसिद्धविशेषणत्व, बाध, सत्प्रतिपक्ष, साधनवैकल्यादि दोष नहीं हैं। तथाहि= दोषाभाव दिखलाया जाता है तहाँ साध्य तो ब्रह्मप्रातिपदिकका जो अर्थ उस अर्थमें जो विशेष्य तादृशविशेष्यनिष्ठत्वरूप है अन्यथा=ब्रह्मप्रातिपदिकार्थविशेष्यनिष्ठत्व न होनेपर ब्रह्मपदको यौगिकत्व होनेसे, सखण्डार्थत्वका प्रसङ्ग है अतः उक्तार्थनिष्ठत्व कहना ही उचित है। और प्रकृष्टप्रकाशादिवाक्य तो प्रातिपदिकार्थविशेष्यमात्रपर होताही है इस रीतिसे सामान्य व्याप्तिके होनेपर दृष्टान्तमें साध्यका अभावभी नहीं। और ब्रह्मप्रातिपदिकार्थविशेष्यमात्रनिष्ठत्व तो अखण्डार्थत्व ही है। तत्प्रश्नोत्तरत्व रूप जो हेतु है उस हेतुका व्युत्पादनभी पूर्वोक्त प्रकृष्टादिवाक्यन्यायसेही है अतः असिद्धि तथा बाध ये दोनों नहीं हैं। तैसे प्रश्नोत्तरके वैयधिकरण्यकी आपत्ति रूप जो विपक्षमें बाधकतर्क उस तर्कसे सहकृत होनेसे सत्प्रतिपक्ष तथा अप्रयोजकत्व एवं उपाधि इन तीनोंको अवकाश नहीं है। शङ्कते नन्विति। सत्यादिरूप जो प्रतिवचन है, उस प्रतिवचनमें 'कश्चन्द्रः' यहाँकी तरह प्रश्नके अश्रवणसे उस उत्तरके अनुसार प्रश्नवाक्यके कल्पनीय होनेपर धर्मविषयकही तद्वाक्य कल्पित किया जाता है धर्मविषयक कल्पनमें कोई बाधकके न होनेसे तथाच हेतु स्वरूपासिद्ध है=धर्मविषयक प्रश्नको होनेसे तद्विषयक ही उत्तरकोभी आवश्यकत्व होनेसे सत्यादिवाक्यमें ब्रह्मप्रातिपदिकार्थमात्रपरत्व नहीं है अतः हेतु स्वरूपासिद्ध है, इति नच वाच्यम् क्योंकि ब्रह्मविन् परब्रह्मको प्राप्त होताहै (तै०२।१।१)एक प्रकारसेही द्रष्टव्य है (बृ०४।४।२०) इत्यादि जो वाक्य उन वाक्योंके बलसे सत्यत्वादिवैशिष्ट्यअविषयक ब्रह्मविषयक वेदनकोही मोक्षका जनकत्व होनेसे तदतिरिक्तविषयक बुभुत्साके विरहसे तद्विषयक=धर्मविषयक प्रश्नवाक्यको कल्पना करनेके लिए शक्यत्व न होनेसे कश्चन्द्रः इसकी नाई 'किं ब्रह्म' ऐसा ही वाक्य कल्पित किया जाता है अतः असिद्धि नहीं=हेतु स्वरूपासिद्ध नहीं।

ननु—कतम आत्मेत्यत्र कतरः स आत्मेत्यत्र च त्वंपदार्थप्रश्ने 'वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्' 'द्वयोरेकस्य निर्धारणे डतरच्' इति सूत्राभ्यां निर्णीतजात्याद्यर्थकतमादिपदप्रयोगात् तत्प्रतिवचने 'योऽयंविज्ञानमय' इत्यादौ पक्षेत्वदभिमतहेतोर-

सिद्धिः, नच–यद्यत्प्रश्नोत्तरं तत्तदखण्डार्थमिति न ब्रूमः, किन्तु यत् प्रश्नोत्तरं तत्तदर्थकमिति–वाच्यम्; एवं सामान्यव्याप्त्या व्यभिचारेऽपि तद्बलादेतत् पक्षीकृत्याखण्डार्थत्वसाधनेऽखण्डार्थप्रश्नोत्तरत्वादिति पर्यवसितहेतावसिद्धेरनुद्धारादिति–चेत्, नैष दोषः तात्पर्यविषयस्यैवार्थत्वेन विवक्षितत्वात्, । यथाहि धर्मवाचकपदासत्त्वेऽपि उत्तरस्य न धर्मे मुख्यतस्तात्पर्यं तथा प्रश्नेऽपि तद्वाचकतमादिप्रत्ययसत्त्वेऽपि न मुख्यतः तत्परत्वम्, असाधारणात्मस्वरूपस्य मुख्यतो बुभुत्सितस्योपायत्वेन तदुपयोगात्, आत्मस्वरूपबोधस्यैव पुरुषार्थत्वात् । नच–सर्वस्याप्युत्तरस्य प्रश्ननिर्धारितधर्मिनिष्ठानिर्धारितैकधर्मपरत्वाद्विरुद्धो हेतुरिति–वाच्यम् अनिर्धारितनिर्धारणत्वेनैवोत्तरतोपपत्तौ तादृग्धर्मपरत्वस्योत्तरत्वाप्रयोजकत्वेन नियमासिद्धेः।

शङ्कते नन्विति। 'कतम आत्मा' (बृ० ४।३।७) यहाँपर च=और 'कतरः स आत्मा' (ऐत० ३।११) यहाँपर त्वंपदार्थविषयक प्रश्नमें 'वा बहूनां जातिपरिप्रश्ने डतमच्' (अष्टा० ५।३।९३) 'द्वयोरेकस्य निर्धारणे डतरच्' (अ० ५।३।९२) इन दोनों सूत्रोंसे निर्णीत जो जात्याद्यर्थकतमादिपद तादृश तमादिपदके प्रयोगसे, तत्प्रतिवचनरूप जो 'योऽयं विज्ञानमयः' (बृ० ४।३।७) इत्यादिरूप पक्ष उस पक्षमें तुमको अभिमत जो हेतु उस हेतुकी असिद्धि है; यत् यत्=जो जो प्रश्नोत्तर होता है वह वह अखण्डार्थ है, ऐसा हम नहीं कहते हैं किन्तु जो जिस प्रश्नका उत्तर है वह तदर्थक है ऐसा कहते हैं, इति नच वाच्यम्, क्यों? ऐसा होनेपर सामान्यव्याप्तिमें व्यभिचार न होनेपरभी तद्बलात्=सामान्यव्याप्तिके बलसे एतत्पक्षीकृत्य='योऽयं विज्ञानमयः' इत्यादि वाक्यको पक्ष बनाकर अखण्डार्थत्वसाधनमें अखण्डार्थप्रश्नोत्तरत्वरूप जो पर्य्यवसित हेतु है उस हेतुमें असिद्धिके अनुद्धारसे=यहाँपर जातिविषयक प्रश्न होनेसे, अखण्डार्थप्रश्नोत्तरत्वरूप हेतु नहीं है; इति चेत्=ऐसा यदि कहो तो नैष दोषः=यह दोष नहीं है, क्यों? तात्पर्यके विषयको ही अर्थत्वेन विवक्षित होनेसे=मुख्यतात्पर्यका विषयीभूत जो अर्थ है वही अर्थ वहाँपर विवक्षित है, जैसे धर्मवाचक पदका सत्त्व होनेपरभी उत्तरका धर्ममें मुख्य तात्पर्य नहीं है तैसे प्रश्नमेंभी धर्मवाचक तमादिप्रत्ययका सत्त्व होनेपरभी मुख्यरूपसे प्रश्नवाक्यको तत्परत्व=धर्मपरत्व नहीं है मुख्यतः जिज्ञासित जो असाधारण आत्मस्वरूप है,–तादृश आत्मस्वरूपका जो ज्ञान तादृशज्ञानके प्रति उपायत्वेन तदुपयोगः=धर्मविषयक प्रश्नका उपयोग है=सत्यत्वादिधर्मवैशिष्ट्यविषयक जो ज्ञान तादृशज्ञानद्वारक ही अखण्डज्ञानको मोक्षके प्रति हेतुता है अतः धर्मविषयक प्रश्नभी युक्त है यह भाव है। आत्मस्वरूपविषयक बोधकोही पुरुषार्थत्वहोनेसे। शङ्कते नचेति। सर्व ही उत्तरोंको प्रश्नसे निर्धारित जो धर्मि तादृश धर्मिनिष्ठ जो अनिर्धारित एक धर्म तादृशधर्मपरत्व होनेसे हेतु विरुद्ध=साध्यवत्में नहीं है, इति नच वाच्यम्; क्यों? अनिर्धारितके निर्धारणत्वेन ही उत्तरत्वकी उपपत्ति होनेपर उक्तविध धर्मपरत्वको उत्तरत्वका अप्रयोजकत्व होनेसे नियमकी असिद्धिसे।

ननु—कथं स्वरूपमात्रपरस्य निर्धारकत्वम्? लक्षणवाक्यत्वादिति गृहाण । नच एवमुत्तरजन्मज्ञानस्य निष्प्रकारतया कथं सप्रकारकसंशयनिवर्त्तकत्वमिति वाच्यम्; निष्प्रकारकत्वेऽपि संशयनिवर्त्तकतायां उपपादितत्वात् । ननु यदि प्रश्नादुत्तरमधिकविषयं न स्यात् उत्तरमेव न स्यात्, प्रश्न एवोत्तरं स्यादिति-चेन्न, प्रश्नादनधिकविषयत्वेऽपि असाधारणधर्मवाचकपदवत्त्वेन निर्विचिकित्सधर्मिप्रतिपादकत्वेन चोत्तरत्वसंभवात् । अत एव प्रश्नो नोत्तरम् तत्प्रयोजकरूपविरहात् । नच किं करोति किमानेयमित्यादिप्रश्नोत्तरे अध्ययनं करोति गामानयेत्यादौ व्यभिचारः; नहि तत्राध्ययनत्वगोत्वादित्यागेन लक्षणया कर्मादिमात्रपरत्वमिति वाच्यम्; अत्र हि न कृत्यानयनयोः प्रश्नः किन्तु कृतिकर्मानयनकर्मणोः, अन्यथा किं करणं किमानयनमित्येव पृच्छेत् । तथाच प्रश्नोत्तरयोरध्ययनत्वादिविशिष्टकर्माविषयत्वात् यत् यत् प्रश्नोत्तरं तत्तदर्थकमिति सामान्यव्याप्तौ व्यभिचाराभावात् ।

ननु—स्वरूपमात्रपर जो वाक्य है उस वाक्यको निर्धारकत्व कैसे है ? लक्षणवाक्यत्व होनेसे ऐसा जान । इस रीतिसे उत्तरसे जन्यज्ञानको निष्प्रकारता होनेसे सप्रकारक जो संशय उस संशयका निवर्त्तकत्व कैसे है इति नच वाच्यम्, क्यों ? निष्प्रकारकत्वेनभी संशयके निवर्त्तकत्वके उपपादित हो चुकनेसे । शङ्कते नन्विति । यदि प्रश्नसे उत्तर अधिक विषयक न हो तो वह उत्तरही न होगा प्रश्न ही उत्तर हो जायगा इति चेन्न; क्यों ? प्रश्नसे उत्तरको अनधिकविषयत्व होनेपरभी असाधारणधर्मका वाचक जो पद तादृश पदवत्त्वेन या निर्विचिकित्सक जो धर्मी तादृश धर्मिप्रतिपादकत्वेन उत्तरत्वका सम्भव होनेसे, अतएव प्रश्न उत्तर नहीं है, प्रश्नमें उत्तरप्रयोजक रूपके अभावसे शङ्कते नचेति । 'क्या करता है क्या ले आऊँ' इत्यादि प्रश्नोंके उत्तररूप 'अध्ययन करता है' गोको लेआ इत्यादिमें व्यभिचार है; तत्र=उक्त स्थलमें, अध्ययनत्वके तथा गोत्वादिके त्यागसे लक्षणया कर्मादिमात्रपरत्व नहीं है इति न च वाच्यम् क्योंकि यहाँपर कृतिविषयक या आनयनविषयक प्रश्न नहीं है किन्तु कृतिकर्मविषयक तथा आनयनकर्मविषयक प्रश्न है अन्यथा=कृतिविषयक या आनयनविषयक प्रश्न होनेपर 'क्या करण है' क्या आनयन है इस रीतिसे पूछता । तथा च प्रश्न तथा उत्तर इन दोनोंको अध्ययनत्वादिविशिष्ट जो कर्म तादृशकर्माविषयत्व होनेसे अध्ययनत्वकृतिकर्मत्वादिसे उपलक्षितव्यक्तिस्वरूपमात्रविषयकत्व=होनेसे, जो जिस प्रश्नका उत्तर है वह तदर्थक=तन्मात्रार्थक है, इस सामान्यव्याप्तिमें व्यभिचारका अभाव है, तथा च उक्त व्यवस्थाको स्वस्थ होनेसे कोई दोष नहीं ।

एवं सति—सत्यादिवाक्यार्थो ब्रह्मप्रातिपदिकार्थमात्रम्, । तन्मात्रप्रश्नोत्तरवाक्यार्थत्वादित्यादिन्यायदीपावलीस्थमप्यनुमानं साधु । ननु—एकप्रातिपदिकार्थमात्रपरत्वेऽपि कथं अखण्डार्थत्वम्? पञ्चकस्य त्रिकस्य वा वैयाकरणमते प्रातिपदिकार्थत्वात्,

तदुक्तं–' स्वार्थो द्रव्यं तथा लिङ्गं संख्या कर्मादयोऽपि च। नामार्थपञ्चकं प्राहुराद्यं त्रिकमथापरे '। इति । प्राभाकरमतेऽस्मदेकदेशिमते चान्वितस्यैव प्रातिपदिकार्थत्वाच्च, अभिहितान्वयवादिमतेऽपि जातिविशिष्टाया एव व्यक्तेः प्रातिपदिकार्थत्वपक्षे प्रातिपदिकार्थस्यैव विशिष्टत्वाच्च। जातावेव शक्तिः व्यक्तिस्तु आक्षेपलभ्येतिमते प्रातिपदिकार्थमात्रपरत्वेन विशेष्यचन्द्रादिव्यक्तिपरत्वं न स्यात्। ब्रह्मपदस्य यौगिकत्वेन सुतरामस्य प्रातिपदिकार्थस्य विशिष्टत्वादिति–चेन्न ब्रह्मप्रातिपदिकार्थविशेष्यांशमात्रपरत्वस्य साध्यत्वात्।

ऐसा होनेपर सत्यादिवाक्यका अर्थ ब्रह्मप्रातिपदिकार्थ मात्र है, ब्रह्मप्रातिपदिकार्थमात्रविषयक जो प्रश्न तादृश प्रश्नका उत्तररूप जो वाक्य तादृशवाक्यका अर्थत्व होनेसे इत्यादि न्यायदीपावलीस्थ अनुमान भी निर्दोष है। शङ्कते नन्विति। एक जो प्रातिपदिक तादृश प्रातिपदिकका जो अर्थमात्र तादृश अर्थमात्रविषयक जो प्रश्न तादृश प्रश्नका उत्तरत्व होनेसे, एकप्रातिपदिकार्थमात्रपरत्व होनेपरभी लक्षणवाक्यको अखण्डार्थत्व कैसे है? वैयाकरणके मतमें पांचको या तीनको प्रातिपदिकार्थत्व होनेसे, सो कहा है–स्वार्थः=जाति, द्रव्यम्=व्यक्ति तैसे लिङ्गम्=स्त्रीत्वादि, सङ्ख्या=एकत्वादिरूपा कर्मादयः=कर्त्ताकर्मादिक षड्विधकारक नामके अर्थपञ्चकको कहते हैं, कितनेही वैयाकरण; अपरे=दूसरे वैयाकरण त्रिकम्=आदिम तीन अर्थोंको कहते हैं=कोई वैयाकरण उक्त पञ्च नामार्थ बतलाते हैं और कोई प्राथमिक तीन बतलाते हैं अन्तिमपक्षावलम्बियोंके मतमें सङ्ख्या तथा कर्मादिरूपकारक स्वादिप्रत्ययोंके अर्थ हैं। और प्रभाकरके मतमें तथा अस्मत्=तत्त्ववादियों और मीमांसावादियोंके एकदेशिमतमें अन्वितकोही प्रातिपदिकार्थत्व होनेसे=प्राभाकरमतमें कार्यान्वितप्रातिपदिकार्थ है यह भेद है तथा अभिहितान्वयवादीके मतमेंभी जातिविशिष्टव्यक्तिकेही प्रातिपदिकार्थपक्षमें प्रातिपदिकार्थकोही विशिष्टत्व होनेसेभी 'और जातिमेंही शक्ति है व्यक्ति आक्षेपसे लभ्य है' इस मतमें जातिरूपप्रातिपदिकार्थमात्रपरत्व होनेसे विशेष्यरूप जो चन्द्रादिव्यक्ति तत्परत्व न होगा। और ब्रह्मपदको यौगिकत्व होनेसे सुतराम् इस प्रातिपदिकार्थको विशिष्टत्व होनेसे लक्षणवाक्यको अखण्डार्थपरत्व नहीं है इति चेन्न; क्यों? ब्रह्मप्रातिपदिकार्थमें जो विशेष्यांश तादृश विशेष्यांशमात्रपरत्वको साध्यत्व होनेसे।

तथाच प्रातिपदिकार्थस्य विशिष्टत्वेऽप्यखण्डार्थत्वसिद्धिः ' प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्र ' इत्यत्र लिङ्गादेरपि प्रातिपदिकार्थत्वेन तद्ग्रहणवैयर्थ्यमाशङ्क्य प्रातिपदिकार्थपदस्य लिङ्गाद्यविशिष्टस्वरूपमात्राभिधायकतया समाधानस्याभियुक्तैरुक्तेश्च। यत्तु पञ्चकत्वादिकं प्रातिपदिकार्थस्योक्तं तदनङ्गीकारपराहतं युक्तिविरुद्धञ्च । द्रव्यादिप्रातिपदिकात् गुणकर्मणोरप्राप्तेः। अन्यथा द्रव्यमित्युक्ते ' नीलं पीतं वा चलति न वेति सन्देहो न स्यात् नच जिज्ञासान्यथानुपपत्या सामान्यतस्तदुक्तावपि विशिष्यानभिधा-

नात् सन्देह इति वाच्यम्; द्रव्यत्वाद्याक्षिप्तसामान्यज्ञानादेव जिज्ञासोपपत्तेः सङ्ख्या-कर्मत्वादीनां च वचनविभक्त्यादिनैव प्राप्तेश्च । अन्विताभिधानरूपएकदेशिमतमपि न युक्तिसहम् अन्वयस्याकाङ्क्षासहकारिवशात् पदार्थमात्रशक्तादेव सिद्धेः। नच प्राति-पदिकार्थमात्रपरस्य कथमेकदेशपरत्वम् ? विशेषणस्यानाकाङ्क्षितत्वेन प्रागेव तदुपपाद-नात् नचाप्रयोजकत्वम् स्वरूपमात्रबुभुत्साप्रवृत्तत्वरूपविपक्षबाधकस्य उक्तत्वात् ।

फलतः प्रातिपदिकार्थत्वविशिष्टत्व होनेपरभी अखण्डार्थत्वकी सिद्धि है। प्रातिपदिकार्थ-लिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा (अष्टा० २।३।४६) इत्यत्र=इस पाणिनीय सूत्रमें लिङ्गादिको भी प्रातिपदिकार्थता होनेसे लिङ्गादिके ग्रहणके वैयर्थ्यकी आशङ्काकर प्रातिपदिकार्थ पदको लिङ्गसङ्ख्याद्यविशिष्टस्वरूपमात्राभिधायकत्वरूपप्रयुक्त-समाधानको अभियुक्तोंसे उक्त होनेसे। और जो प्रातिपदिकार्थका पञ्चकत्वादिक कहा है वह तो अनङ्गीकारसे पराहत है, और युक्तिसे विरुद्धभी है, द्रव्यादिप्रातिपदिकसे गुण तथा कर्मकी अप्राप्तिसे। अन्यथा=द्रव्यादिप्रातिपदिकसे गुण तथा कर्म इन्होंकी प्राप्ति होनेपर 'द्रव्यम्' इसके उक्त होनेपर 'नील है या पीत' चलता है या नहीं यह सन्देह न होगा। जिज्ञासाकी अन्यथानुपपत्तिसे=सामान्यज्ञानके विना विशेष जिज्ञासाकी अनुपपत्तिसे=सामान्यसे नीलादिकी उक्ति होनेपरभी नीलत्वादिविशेषरूपसे अन-भिधान होनेसे सन्देह होता है इति नच वाच्यम्, क्यों ? द्रव्यत्वादिसे आक्षिप्त जो गुणादि-विषयक सामान्यज्ञान उस सामान्यज्ञानसे ही विशेष जिज्ञासाकी उपपत्तिसे, और सङ्ख्याकर्म-त्वादिकोंकी वचन और विभक्तिओंसेही प्राप्ति होनेसे। और अन्विताभिधानरूप एकदेशिमतभी समीचीन नहीं; क्यों ? आकाङ्क्षादिरूप सहकारिवशात् पदार्थमात्रमें शब्दसे ही अन्वयकी सिद्धिसे। प्रातिपदिकार्थमात्रपरको एकदेशपरत्व कैसे है ? विशेषणके अनाकाङ्क्षितत्वसे पूर्वमेंही उसके उपपादनसे। इस अनुमानमें व्यभिचारशङ्कानिवर्त्तकतर्कशून्यत्वरूप अप्रयोजकत्व है नच= अप्रयोजकत्व नहीं है स्वरूपमात्रबुभुत्साप्रवृत्तत्वरूप जो विपक्षमें बाधक तादृश बाधकको उक्त होनेसे।

ननु—सत्यादिवाक्ये सत्सु विशेषणेषु सस्तुतिकविधिवाक्ये प्राशस्त्य इव विशेष-णार्थेऽपि रक्तपटन्यायेनाकाङ्क्षोत्थापनीया, उक्तंहि–' आकाङ्क्षणीयाभाव आकाङ्क्षाया अभाव इतीति चेन्न, सत्यादिवाक्ये विशेषणे सत्यपि न तद्गोचराकाङ्क्षाकल्पनम् प्रकृष्ट-प्रकाशश्चन्द्र इत्यत्र विशेषणे सत्यपि कश्चन्द्र इति स्वरूपमात्राकाङ्क्षादर्शनात्। नच तत्रापि तत्कल्पनम्, तत्कल्पनं विनापि व्यावृत्तिबोधमात्रेणैव तत्सार्थकत्वोपपत्तेः। व्यावृत्ति-विशेषबोधश्च विशेषणपरत्वाभावेऽपि तद्वारकस्वरूपमात्रज्ञानमात्रेणैवोपपद्यते। ननु–सप्र-कारकज्ञानस्यैव मोक्षहेतुतया ब्रह्मविदाप्नोति परमित्यर्थेन य एवं विद्वानमृत इह भव-तीति श्रुत्या यो वेद निहितं गुहायामित्युत्तरवाक्येन च मुमुक्षोः सप्रकारक एव धर्मि-ज्ञाने साध्ये बुभुत्सोचितेति–चेन्न;–निष्प्रकारकज्ञानस्यैव स्वरूपोपलक्षणोपलक्षिताधि-

ष्ठानज्ञानत्वेन भ्रमादिनिवृत्त्या मोक्षहेतुताया उपपादितत्वेन तदनुरोधात् ब्रह्मविदि-त्यादेः सप्रकारकब्रह्मज्ञानपरतायां मानाभावात् ।

शङ्कते नन्विति । सत्यादिवाक्यमें विशेषणोंके रहते हुए विशेषणोंको सार्थक करनेकेलिए 'कीदृशं तद्ब्रह्म' ऐसी आकाङ्क्षा उत्थापनीय है जैसे सस्तुतिकविधिवाक्यघटक विशेषणार्थक पदमें प्राशस्त्यनिमित्तक-रक्तपटन्यायसे आकाङ्क्षा उत्थापनीय होती है=वायव्यं श्वेतमालभेत वायुर्वैक्षेपिष्ठा देवता, यहाँपर वायुदेवताकश्वेतपश्वालम्भनं कार्यम्, इस विधानसे आकाङ्क्षाकी निवृत्ति होनेपरभी क्षेपिष्ठत्वादिक उत्तरवाक्यस्थ वायुदेवताक विशेषणोंको सार्थक करनेकेलिए-कीदृशी वायुर्देवता, यद् देवताको यागः कार्यः । इत्याकारक आकाङ्क्षाका उत्थापनकर अर्थवादस्थ विशेषणसे प्राशस्त्यप्रतिपादन किया जाता है जैसे कि 'रक्तः पटो भवति । यहाँ-पर 'पटो भवति' इतनेको पूर्णता होनेपरभी रक्त पटके सार्थक्यके लिए 'कीदृश पटः' ऐसी आकाङ्क्षा उत्थाप्य होती है, कहाभी है कि आकाङ्क्षणीयका=आकाङ्क्षणीयपदका अभाव होनेपर आकाङ्क्षाका अभाव होता है और यहाँपर तो आकाङ्क्षणीयपदका सद्भाव है अतः आकाङ्क्षाका अभाव नहीं हो सकता है इतिचेन्न क्यों ? सत्यादि वाक्यमें विशेषणके रहने परभी विशेषणगोचर आकाङ्क्षाका कल्पन नहीं हो सकता है 'प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्रः' यहाँपर विशेषणके होनेपरभी 'कश्चन्द्रः' इसरीतिसे स्वरूपमात्रविषयिणी आकाङ्क्षाके देखनेसे । तत्रापि=प्रकृष्टप्रकाशश्चन्द्रः । यहाँपरभी तत्कल्पनम्=विशेषणविषयिणी आकाङ्क्षाका कल्पन है, नच=उक्त कल्पन नहीं हो सकता है, क्यों ? तद्विषयक कल्पनके विनाभी व्यावृत्तिबोध-मात्रसेही तत्सार्थकत्व=प्रकृष्टादिपदोंके सार्थक्यकी उपपत्तिसे 'और व्यावृत्तिविशेषका बोध तो विशेषणपरत्व न होनेपरभी तद्द्वारक=व्यावृत्तिद्वारक स्वरूपमात्रज्ञानमात्रसेही उपपन्न होता है । शङ्कते नन्विति । सप्रकारक ज्ञानकोही मोक्षकी हेतुताकी 'ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्' (तै० २।१।१) इससे प्रतीति होनेसे, और 'य एवम्' (नृ० ता० १।६) इत्यादिश्रुतिसे 'यो वेद' (मुण० २।१।१०) इत्यादि उत्तरवाक्यसे मुमुक्षुकी धर्मिज्ञानसाध्य बुभुत्सा सप्रकारमें ही उचित है, इतिचेन्न; क्यों ? निष्प्रकारक ज्ञानकोही स्वरूपोपलक्षणोपलक्षिताधिष्ठानज्ञानत्वेन भ्रमादिकी निवृत्तिसे मोक्षकी हेतुताको उपपादितत्व होनेसे तदनुरोधसे 'ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्' इत्यादिकी सप्रकारकज्ञानपरतामें मानके अभावसे ।

य एवं विद्वान् (नृ० ता० १।६) इत्यस्यार्थे इतरप्रकारत्वं नार्थः किन्तु एवं प्रकारोपलक्षितत्वम्, एकधैवेत्याद्यनुसारात् । नच-एवं सगुणवाक्यस्यापि ब्रह्मबुभुत्सायां कर्मकाण्डस्यापि कर्मबुभुत्सायां वैद्यकादिशास्त्रस्यापि औषधादिबुभुत्सायामखण्डब्रह्मा-खण्डकर्माखंडौषधादिपरत्वं स्यादिति-वाच्यम्; नहि वयं बुभुत्साप्रवृत्तवाक्यत्वमात्रेणा-खण्डार्थत्वं ब्रूमः; किन्तु स्वरूपमात्रबुभुत्साप्रवृत्तवाक्यत्वेन । नच तत्रापि स्वरूपमात्रबु-भुत्सा; विशिष्टपरत्वे बाधकाभावात् । तत्रापि चेल्लक्षणवाक्यादौ तथा तदेष्टापत्तेश्च ।

नच–तर्हि सगुणवाक्यानां सत्यशुद्धान्यमिथ्याविशिष्टार्थपरत्वेन प्रामाण्यायोगः कर्मकाण्डवद्व्यावहारिकप्रामाण्याविरोधात्।

'य एवं विद्वान्' इसके अर्थमें इतरप्रकारत्व अर्थ नहीं है किन्तु एवं प्रकारोपलक्षितत्वरूप अर्थ है; एकधैवानुद्रष्टव्यम् (बृ० ४।४।२०) इसके अनुरोधसे। शङ्कते नचेति। इसरीतिसे ब्रह्मबुभुत्सामें निर्गुणवाक्यकी नाईं सगुणवाक्यकोभी अखण्डब्रह्मपरत्व होगा, और कर्मबुभुत्सामें कर्मकाण्डकोभी अखण्डकर्मपरत्व होगा, और औषधादिकी बुभुत्सामें वैद्यकादि शास्त्रकोभी अखण्डौषधादिपरत्व होगा, इति नच वाच्यम्, क्योंकि हम बुभुत्साप्रवृत्तवाक्यत्वमात्रसे अखण्डार्थत्व नहीं कहते हैं, किन्तु स्वरूपमात्रविषयिणी जो बुभुत्सा तादृशबुभुत्सासे प्रवृत्त जो वाक्य तादृशवाक्यत्वेन अखण्डार्थत्व कहते हैं। तत्रापि=उक्तस्थलोमेंभी स्वरूपमात्रविषयिणी बुभुत्सा है नच=वहाँपर नहीं है, क्यों? विशिष्टपरत्वमें बाधकके अभावसे। और उक्तस्थलोंमेंभी यदि लक्षणवाक्यादिमें अखण्डार्थत्व है तब तो इष्टापत्ति है। तब सगुण वाक्योंको सत्यरूप शुद्धसे भिन्न मिथ्यारूप जो विशिष्टार्थ तादृशविशिष्टार्थपरत्वेन प्रामाण्यका अयोग है, नच= प्रामाण्यका अयोग नहीं है, क्यों? कर्मकाण्डकी तरह व्यावहारिक प्रामाण्यके अविरोधसे।

ननु—ब्रह्मणि धर्म इवालक्षणवाक्यमस्ति, तदप्यखण्डार्थं स्यादिति–चेन्न, अवान्तरतात्पर्यमादाय चेत् तदा ब्रह्मपरत्वस्यैवाभावात्, महातात्पर्यमादाय चेत्तदेष्टापत्तेः। किञ्च एकधैवानुद्रष्टव्यमित्याद्यनेकाकारनिषेधकवाक्यं उदरमन्तरं कुरुत, इत्यादिभेदनिषेधकवाक्यं केवलो निर्गुणश्चेति गुणनिषेधकं एकमेवाद्वितीयमितिद्वितीयमात्रनिषेधकवाक्यं च बाधकं, तथा सर्वतोऽनवच्छिन्नवस्तुपरानन्तशब्दब्रह्मशब्दौ च। नच तेषामैक्यभेदाभावादिविशिष्टार्थपरत्वे वेदान्तमात्रस्याखण्डार्थत्वासिद्धिः सत्यशुद्धान्यमिथ्याविशिष्टार्थपरत्वे प्रामाण्यायोग इति–वाच्यम् ऐक्यभेदाभावादीनां स्वरूपत्वेन विशिष्टपरत्वस्यैवाभावात्।

शङ्कते नन्विति। यागादिरूप कर्ममें जैसे 'अग्निहोत्रं जुहुयात्' इत्यादि अलक्षण वाक्य हैं वैसे ब्रह्ममेंभी 'नेह नानास्ति किञ्चन' इत्यादि अलक्षण वाक्य हैं वे भी अखण्डार्थक होंगे क्योंकि आप सर्ववेदान्तोंको अखण्डार्थक बतलाते हैं, इति चेन्न; क्यों? अवान्तर तात्पर्यको लेकर यदि अलक्षण वाक्योंका अखण्डार्थत्व कहते हो तब उन वाक्योंमें उक्तविधतात्पर्यसे ब्रह्मपरत्वके न होनेसे ही तुम्हारा कथन अयुक्त है, और महातात्पर्यको लेकर यदि अखण्डार्थत्व बतलाते हो तब इष्टापत्ति होनेसे ही कोई अनुपपत्ति नहीं। किञ्च–'एकधैवानुद्रष्टव्यम्' (बृ० ४।४।२०) इत्यादि अनेकाकारनिषेधवाक्य, 'उदरमन्तरं कुरुते' (तै० २।७।१) इत्यादि भेदनिषेधक वाक्य, 'केवलो निर्गुणश्च' (श्वेत० ६।११) इत्यादि गुणनिषेधक वाक्य, 'एकमेवाद्वितीयम्' (छां० ६।२।१) इत्यादि द्वितीयमात्रनिषेधक वाक्य सत्यादि वाक्योंके विशिष्टार्थपरत्वमें बाधक हैं। तैसे सर्वतः अनवच्छिन्नवस्तुपरक अनन्त शब्द तथा ब्रह्म शब्द ये दोनों

भी बाधक हैं। शङ्कते नचेति। तेषाम्=एकधैवानुद्रष्टव्यम् इत्यादि वाक्योंको ऐक्यविशिष्टपरत्व होनेपर तथा भेदाभावादिविशिष्टपरत्व होनेपर वेदान्तमात्रके अखण्डार्थत्वकी असिद्धि है, और सत्यशुद्धसे भिन्न मिथ्याभूत जो विशिष्टार्थ तादृश=विशिष्टार्थपरत्व होनेपर प्रामाण्यका अयोग है, इति नच वाच्यम् क्यों ? ऐक्यको तथा भेदाभावादिको स्वरूपता होनेसे विशिष्टपरत्वके ही अभावसे।

भेदाभावादेः कल्पितप्रतियोगिकतया कल्पितत्वे तु सत्यादिपदवद्विशिष्टार्थाभिधानद्वारा स्वरूपपरत्वेन प्रामाण्योपपत्तेश्च; नच—एवं तेषां लक्षणयाऽखण्डार्थत्वेन तद्विरोधेन विशिष्टार्थस्य सत्यादिवाक्यस्य मुख्यार्थत्यागः, विशेष्यपरस्य विशिष्टपरेणाविरोधादिति—वाच्यम्; द्वारतयोपस्थितस्याप्यैक्यभेदाभावादेर्विशिष्टार्थविरोधितया मुख्यार्थत्यागसंभवात्। नच—द्वारतयोपस्थितैक्यादेः मिथ्यात्वेन सत्यत्वादिधर्मपरत्वविरोधिता, सत्यत्वे चापसिद्धान्त इति—वाच्यम्; भिन्नत्वे सति सत्यतायामेवापसिद्धान्तात्। नचाभेदे द्वारत्वानुपपत्तिः; कल्पितधर्मताकत्वेन द्वारत्वसंभवात्। नच—अत्र सत्यत्वादेर्द्वारत्वेनोपादानात्तेषामेवैतद्विरोध इति—वाच्यम्, सत्यत्वादेः कल्पितजातिरूपस्य द्वारतया स्वरूपेणोपादानेऽपि पारमार्थिकत्वाकारेण निषेधकानामविरोधात्। एतेन—ब्रह्मानन्तपदयोरपि बाधकत्वं व्याख्यातम्।

और भेदाभावादिको कल्पितप्रतियोगिकत्वसे कल्पितत्व होनेपर तो सत्यादिपदोंकी तरह विशिष्टार्थके कथनद्वारा स्वरूपपरत्व होनेसे प्रामाण्यकी उपपत्ति है। शङ्कते नचेति। एवम्=इसरीतिसे लक्षणासे उक्तवाक्योंका अखण्डार्थत्व होनेपर न तद्विरोधेन=ऐक्यादिके विरोधसे विशिष्टार्थक सत्यादि वाक्योंके मुख्यार्थका त्याग जो आपसे अङ्गीकृत है वह न होगा, विशेष्यपरका विशिष्टपरके साथ विरोध न होनेसे इति नच वाच्यम्, क्यों द्वारतया उपस्थित ऐक्यभेदाभावादिकोभी विशिष्टार्थकी विरोधिता होनेसे मुख्यार्थके त्यागके सम्भवसे। द्वारतया उपस्थित जो ऐक्यादि तादृश ऐक्यादिका मिथ्यात्व होनेपर सत्यत्वादिधर्मपरत्वकी विरोधिता नहीं है, और सत्यत्व होनेपर अपसिद्धान्त है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? ब्रह्मभिन्नत्व होते हुए सत्यता होनेपर ही अपसिद्धान्त होता है=ब्रह्मसे भिन्न होकर यदि किसी वस्तुमें पारमार्थिक सत्यता हो तभी अपसिद्धान्त हो सकता है और ऐक्यादिको ब्रह्माभिन्नत्व होनेसे सत्यता होनेपरभी अपसिद्धान्त नहीं है, अभेद होनेपर ऐक्यादिको द्वारत्वकी अनुपपत्ति है, नच=द्वारत्वकी अनुपपत्ति नहीं है, क्यों ? कल्पितधर्मताकत्वेन द्वारत्वका सम्भव होनेसे। अत्र=सत्यादिवाक्यमें सत्यत्वादिका द्वारत्वेन उपादान होनेसे तेषामेव=सत्यत्वादिकोंका ही एतद्विरोधः=एकधैवानुद्रष्टव्यम् (बृ० ४-४-२०) नेह नानास्ति किञ्चन (बृ० ४-४-१९) इत्यादिके साथ विरोध है इति नच वाच्यम् क्यों ? कल्पितजातिरूपस्य सत्यत्वादेः=प्रपञ्चसाधारण्यसे कल्पित स्वकालाबाध्यसत्यत्वादिका स्वरूपेण=पारमार्थिकत्वसे अविशेषितरूपसे

उपादान होनेपरभी पारमार्थिकत्वाकारसे निषेधकानाम्=एकधैवानुद्रष्टव्यम् (बृ० ४-४-२०) इत्यादि निषेधकोंके अविरोधसे। इस कथनसे ब्रह्मपद तथा अनन्त पद इन दोनोंका भी बाधकत्व व्याख्यात हुआ।

ननु—'अथ कस्मादुच्यते ब्रह्मेति बृहन्तो ह्यस्मिन् गुणा अथर्वशि० ४' इत्यादि श्रुत्या महद्गुणत्वाद्यनन्तमाहुरित्यादिस्मृत्या च ब्रह्मानन्तपदयोः सगुणवाचित्वेन निर्वचनात् कथं न ताभ्यां विरोधः? इति चेन्न; उक्तश्रुतिस्मृत्योः सगुणप्रकरणस्थितब्रह्मानन्तशब्दार्थविषयत्वेन लक्षणवाक्यस्थितब्रह्मानन्तशब्दार्थनिर्वचनपरत्वायोगात्।

क्यों कहा जाता है ब्रह्म? इसमें बडे बडे गुण हैं, इसलिए इसे कहा जाता है-ब्रह्म, इत्यादि श्रुतिसे महद् गुणत्व होनेसे यम्=जिसको अनन्त कहते हैं इत्यादि स्मृतिसे ब्रह्मपद तथा अनन्तपद इन दोनोंका सगुणवाचित्वेन निर्वचन होनेसे ताभ्याम्=उक्तश्रुतिस्मृतिओंके साथ विरोध क्यों न होगा? इति चेन्न; क्यों? उक्तश्रुतिस्मृतिओंको सगुणप्रकरणमें स्थित जो ब्रह्म तथा अनन्त पद तादृशपदोंका जो अर्थ तादृश-अर्थविषयत्व होनेसे लक्षणवाक्यमें स्थित जो ब्रह्म तथा अनन्त शब्द तादृश शब्दोंका जो अर्थ तादृश अर्थका जो निर्वचन तादृश निर्वचनपरत्वके अभावसे।

ननु—इमे हेतवः प्रतिकूलतर्कपराहताः। तथाहि—पक्षदृष्टान्तलक्षणमैक्यपरवाक्यं यदि संसृष्टार्थं न स्यात् वाक्यमेव न स्यात् आकाङ्क्षायोग्यतासन्निधिमत्त्वाभावात्। आकाङ्क्षा हि अभिधानापर्यवसानम् तच्च येन विना यस्य न स्वार्थान्वयानुभावकत्वम् तदेव तस्यापर्यवसानम्। सन्निधिस्त्वव्यवधानेनान्वयप्रतियोग्युपस्थितिः, योग्यता च एकपदार्थसंसर्गे अपरपदार्थनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकधर्मशून्यत्वं, नैतत्त्रयं संसर्गाविषये संभवति इति नैष दोषः; अखण्डार्थेऽप्येतत्त्रियतसंभवात्। तथाहि। निराकाङ्क्षयोरपि यत्किञ्चिदन्वयानुभावकतया तात्पर्यविषयाननुभावकत्वमेवाकाङ्क्षा वाच्या। तथाचान्वयांशो व्यर्थः; येन विना यस्य तात्पर्यविषयाननुभावकत्वमित्येतावन्मात्रस्यैव सामञ्जस्यात्।

शङ्कते नन्विति। इमे हेतवः=लक्षणवाक्यत्वादिरूपहेतु प्रतिकूलतर्कसे पराहत=स्वकार्याक्षम हैं। तथाहि—पक्षदृष्टान्तलक्षणम्=पक्षस्वरूपवाक्य तथा दृष्टान्त स्वरूप वाक्य च= और 'सोऽयम्' इत्यादि ऐक्यपरवाक्य यदि संसृष्टार्थक न हों तो वाक्य ही न हों, आकाङ्क्षा तथा योग्यता एवं सन्निधि एतत्त्रितयवत्त्वाभाव होनेसे। आकाङ्क्षा नाम है,—कथनके अपर्यवसानका, तच्च=वक्त अपर्यवसान तो जिसके विना जिसको स्वार्थान्वयका अनुभावकत्व नहीं है वही उसका अपर्यवसान है=जैसे गच्छति=यहाँपर देवदत्तादिरूप कर्त्रादिवाचक पदके विना गच्छतिको स्वार्थान्वयको अनुभावकत्व नहीं है, यही उसका अपर्यवसान है। और सन्निधिनाम है,—व्यवधानसे रहित अन्वयके प्रतियोगिओंकी उपस्थितिका और योग्यता तो

एकपदार्थसंसर्गे=इतरपदार्थसंसर्गमें अपरपदार्थनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकधर्म-शून्यत्वरूप है, जलेन सिञ्चति=इतरपदार्थसंसर्गपदसे सेकक्रियाकरणरूप संसर्ग लेना चाहिए उसमें अपरपदार्थसे जलका ग्रहण किया तन्निष्ठ जो अत्यन्ताभाव=सेकक्रियाकरणरूपसंसर्गो नास्ति इत्याकारक अभाव तो नहीं मिल सकता है क्योंकि जलमें सेकक्रियाकरणरूप संसर्ग ही है किन्तु घटादिका अभाव मिला तादृश अभावीय प्रतियोगिता,—घटादिनिष्ठा प्रतियोगिता है, प्रतियोगितावच्छेदक घटत्वादिक है, तद्वत्ता घटादिकमें है, तत्—शून्यत्व सेकक्रियाकरणरूप संसर्गमें है; 'वह्निना सिञ्चति' यहाँपर सेकक्रियाकरणरूप संसर्गमें अपरपदार्थरूपवह्निनिष्ठात्य-न्ताभावप्रतियोतावच्छेदक धर्मवत्व ही है, तच्छून्यत्व नहीं अतः यहाँपर योग्यता नहीं। ये तीनों वो,—संसर्ग नहीं है विषय जिसका ऐसे वाक्यमें सम्भवित नहीं है; नैष दोषः= यह दोष नहीं है, क्यों ? अखण्डार्थमेंभी इन तीनोंका सम्भव होनेसे तथाहि—निराकाङ्क्षयो-रपि='घटः कर्मत्वम्' इन निराकाङ्क्षपदोंकोभी यत्किञ्चिदन्वय=अभेदरूपान्वयकी अनुभावकता होनेसे तात्पर्यका विषयीभूत जो अन्वय तादृश अन्वयका अननुभावकत्व ही आकाङ्क्षा कहनी चाहिए फलतः अन्वयांश व्यर्थ है, जिसके बिना जिसको तात्पर्यके विषयका अननुभावकत्व है, इतनेको ही न्याययुक्तत्व होनेसे।

तात्पर्यविषयश्च क्वचित्संसृष्टः क्वचिदखण्ड इति न विशेषः। अतः सा तात्पर्य-विषयाखण्डार्थानुभवजननात् प्राग्वेदान्तवाक्येऽप्यस्त्येव। आसत्तिरप्यव्यवधानेन शाब्दबोधानुकूलपदार्थोपस्थितिमात्रम्, नत्वन्वयप्रतियोगित्वविशेषितपदार्थोपस्थितिः गौरवात्। सा च संसर्गाबोधकेऽप्यस्त्येव। योग्यतापि तात्पर्यविषयाबाध एव, नत्वेक-पदार्थसंसर्ग इत्यादिस्वरूपा, यत्र बाधिताबाधितसंसर्गद्वयसम्भवः तत्र बाधिततात्पर्य-विषयकेऽतिव्याप्तेः। तात्पर्यविषयाबाधश्चाखण्डार्थेऽपि सुलभः।

और तात्पर्यका विषय तो कहींपर संसृष्टरूप होता है और कहींपर अखण्डरूप होता है, अतः तात्पर्यविषयत्वेन दोनोंका संग्रह हो जानेसे कुछ विशेष देना अनावश्यक है। अतः वह तात्पर्यका विषयीभूत जो अखण्डार्थ तादृश अखण्डार्थविषयक जो अनुभव उस अनुभवके जन्मसे पूर्व वेदान्तवाक्यमें है ही। और आसत्तिभी अव्यवधानसे शाब्दबोधानुकूल पदार्थो-पस्थितिमात्र है, अन्वयप्रतियोगित्वसे विशेषित जो पदार्थ तादृश पदार्थोपस्थितिरूप नहीं गौरव होनेसे सा च=उक्तरूप आसत्ति तो संसर्गाबोधकमेंभी है ही। और योग्यताभी तात्पर्यके विषयका, जो अबाध तादृश अबाधरूप ही है, एकपदार्थसंसर्ग, इत्यादिरूपा नहीं, क्यों ? जहाँपर बाधित तथा अबाधित एवंविध संसर्गद्वयका सम्भव है तहाँपर बाधित तात्पर्यविषयकमें अतिव्याप्ति होनेसे। और तात्पर्यके विषयका अबाध तो अखण्डार्थमेंभी सुलभ है।

अथवा अन्वयस्य भेदघटितत्वनियमाभावेनाभेदसंसर्गमादायाकाङ्क्षादिनिर्वाहः कर्त्तव्यः, एकपदार्थस्याखण्डस्य तात्पर्यविषयत्वमपि नानुपपन्नम्, यत्र हि असाधारण-

स्वरूपेणैकः पदार्थो ज्ञातः; तत्र पदार्थान्तरविशिष्टः स प्रतिपाद्यते यत्र तु न तथा ज्ञातः तत्र स न शक्यःपदार्थान्तरैर्विशेष्टुमिति स एव प्रतिपाद्यः तत्रैव वाक्यपरिसमाप्तेः प्रकृष्टत्वसत्यत्वादेः तत्तद्वारकत्वरूपबोधने व्यावृत्तिभेद उपयोगादिति न वाक्यत्वानुपपत्तिलक्षणप्रतिकूलतर्कपराहतिः ।

अथवा अन्वयको भेदघटितत्वके नियमके अभावसे=भेदसे घटित ही अन्वय=सम्बन्ध होता है इस नियमके अभावसे अभेदसंसर्गको लेकर आकांक्षादिका निर्वाह कर्त्तव्य है । तैसे अखण्डरूप एक पदार्थका तात्पर्यविषयत्वभी अनुपपन्न है । जहाँपर असाधारण रूपसे एक पदार्थ ज्ञात है वहाँपर पदार्थान्तरसे विशिष्ट हुआ वह प्रतिपादन किया जाता है, और जहाँपर तथा= असाधारण स्वरूपसे वह ज्ञात नहीं है तहाँपर वह पदार्थान्तरोंसे विशिष्ट करनेके लिए शक्य नहीं होता है अतः ऐसे स्थलमें वह पदार्थ ही प्रतिपाद्य है तत्रैव=उस पदार्थमेंही वाक्यकी परिसमाप्तिसे । प्रकृष्टत्वसत्यत्वादिको तत्तद्वारकत्वरूप बोधसे व्यावृत्तिविशेषमें उपयोगसे, अतः वाक्यत्वानुपपत्तिलक्षण जो प्रतिकूल तर्क उस तर्कसे हेतुओंकी पराहति नहीं है ।

ननु—संसृष्टार्थत्वं न चेत् तदा वेदान्तानां निर्विषयत्वापत्तिः, अखण्डवाक्यार्थस्य स्वप्रकाशचिन्मात्रस्याविद्याद्यध्यासाधिष्ठानत्वेन तत्साक्षित्वेन च नित्यसिद्धत्वादिति—चेन्न; अनाद्यविद्योपहितत्वेनादोषात् स्वतः सिद्धस्यापि प्रमाणवृत्तिमन्तरेणाविद्यानिवर्त्तकत्वाभावात् प्रमाणवृत्तेश्चाविद्यानिवृत्तिफलोपहितत्वात्, नवा काप्यनुपपत्तिः । नच—बाधकं विना मुख्यार्थत्यागायोगः प्रतिकूलतर्कः एकरसत्वादिप्रतीपादकश्रुतीनामप्यखण्डार्थपरत्वेन बाधकत्वाभावादिति—वाच्यम्, द्वारतयोपस्थितस्यापि बाधकताया उक्तत्वात् ।

संसृष्टार्थत्व यदि न होगा, तो वेदान्तोंको निर्विषयत्वकी आपत्ति है क्यों ? स्वप्रकाशचिन्मात्राखण्डवाक्यार्थको अविद्यादिरूपाध्यासाधिष्ठानत्वेन और अविद्यादिरूपाध्याससाक्षित्वेन नित्यसिद्धत्व होनेसे इति चेन्न; क्यों ? अनाद्यविद्योपहितत्वेन नित्यसिद्ध न होनेसे दोषके न होनेसे और स्वतः सिद्धको भी प्रमाणजन्यवृत्तिके विना अविद्यानिवर्त्तकत्वके अभावसे । और प्रमाणवृत्तिको अविद्याकी निवृत्तिरूप फलसे उपहितत्व होनेसे कोईभी अनुपपत्ति नहीं । बाधकके विना मुख्यार्थके त्यागका जो अयोग है वही प्रतिकूल तर्क है एकरसत्वादिप्रतिपादक श्रुतिओंको भी अखण्डार्थपरत्व होनेसे बाधकत्वके अभावसे इति न च वाच्यम् क्यों ? द्वारतया उपस्थितकोभी बाधकता है इस अर्थको उक्त होनेसे ।

ननु—वेदान्तवाक्यजन्यज्ञानं निष्प्रकारकं चेत् ज्ञानमेव न स्यात्; ज्ञानस्येच्छादितुल्यतया सविषयकत्ववत्सप्रकारकत्वस्यापि नियमात्, किञ्चित् प्रकारं विना वस्तुनो बुद्धावनारोहाच्चेति—चेन्न; व्याप्त्यसिद्धेः तार्किकादिभिरपि निर्विकल्पकज्ञानाभ्युपगमात् । शब्दवाच्यत्वं तु किञ्चित्प्रकारमन्तरेण सम्भवति नवेति वादिनो विवदन्ते । तच्चास्माभि-

र्ब्रह्मणो नाभ्युपेयते। आकाशादिपदवत् किञ्चित्प्रयोगोपाधिमादाय तदपि सम्भवत्येव। नच शाब्दत्वेन सविकल्पकत्वसाधनम् स्वरूपोपलक्षणज्ञानाजन्यत्वस्य स्वरूपपरवाक्या-जन्यज्ञानत्वस्य चोपाधित्वात् ज्ञानत्वस्येव शाब्दत्वस्यापि सविकल्पकत्वव्याप्यत्वग्रहे मानाभावाच्च। नच–वेदान्तानाम् अनुभितिसितार्थत्वापत्तिः, धर्मिणः प्रागेव ज्ञानात् तत्र बुभुत्साविरहादिति–वाच्यम्; स्वरूपस्य ज्ञातत्वेऽप्यसाधारण–स्वरूप–बुभुत्साया उपपादितत्वात्।

शङ्कते नन्विति। वेदान्तवाक्यसे जन्यज्ञान यदि निष्प्रकारक होगा, तो वह ज्ञानही न होगा, ज्ञानको इच्छादिकी तुल्यता होनेसे सविषयत्ववत् सप्रकारकत्वका भी नियम होनेसे= इच्छादिसमकक्ष होनेसे इच्छादिवत् ज्ञानमें सविषयत्वकी तरह सप्रकारकत्वभी होना चाहिए और किसीभी प्रकारके विना वस्तुका बुद्धिमें आरोह न होनेसे भी ज्ञानको सप्रकारक मानना ही ठीक है, इति चेन्न; क्यों ? नियमकी असिद्धिसे; व्यभिचारको दिखलाते हैं–तार्किकादि-कोंसे भी निर्विकल्पकज्ञानका अभ्युपगम होनेसे। और शब्दवाच्यत्व तो किञ्चित्प्रकारके विना बन सकता है या नहीं बन सकता है इस रीतिसे वादी लोग विवाद करते हैं तच्च=और वह शब्दवाच्यत्व तो हम लोगोंसे ब्रह्मका नहीं अङ्गीकार किया जाता है, और आकाशादि पदकी तरह किञ्चित्प्रयोगोपाधिको लेकर तदपि=शब्दवाच्यत्वभी सम्भवित है ही=जैसे शब्दाश्रय-त्वोपलक्षित आकाशव्यक्ति आकाशपदकी शक्य है तैसे त्रिकालाबाध्यत्वादिसे उपलक्षित ब्रह्म-व्यक्ति सत्यादिपदोंकी शक्य हो सकती है, फलतः लक्षणा विनाभी ब्रह्मका ज्ञान शब्दसे हो सकता है। परन्तु इस विषयमें हमारा कोई आग्रह नहीं यह भाव है। शाब्दत्वेन ज्ञानमें सविकल्पकत्वका साधन है, नच=नहीं हो सकता है, क्यों ? स्वरूपोपलक्षणज्ञानाजन्यत्वको उपाधित्व होनेसे=स्वरूपपदसे धर्मिस्वरूपमात्र लेना चाहिए और उपलक्षण पदसे सत्यत्वादिके वैशिष्ट्यका ग्रहण है स्वरूपपदका उपलक्षण पदके साथ षष्ठीतत्पुरुषसमास है, और उपलक्षण पदका ज्ञानपदके साथ षष्ठीतत्पुरुषसमास है स्वरूपपदोत्तर षष्ठीका अर्थ विषयत्व है–तथाच यह अर्थ हुआ कि,–धर्मिस्वरूपमात्रनिष्ठसत्यत्वादिवैशिष्ट्यविषयक जो ज्ञान तादृश ज्ञानसे अजन्यत्व, पक्षीभूत सत्यादिवाक्यजन्यशाब्दज्ञानको छोडकर निखिल शाब्दज्ञानोंमें यह उपाधि मिलती है, अतः साध्यकी व्यापक है, और शाब्दत्वरूप हेतु पक्षमें है परन्तु वहाँपर उक्तविधज्ञाना-जन्यत्वरूप उपाधि नहीं है, क्योंकि उसमें तो तादृशज्ञानजन्यत्व ही है, इसलिए साधनकी अव्यापक है, तैसे स्वरूपपरवाक्याजन्यज्ञानत्वकोभी उपाधित्व है=स्वरूपपर=धर्मिस्वरूपमात्र-पर जो वाक्यसे अजन्यज्ञानत्व। और जैसे ज्ञानत्वस्य=ज्ञानत्वनिष्ठसविकल्पकत्वव्याप्यत्वग्रहमें मानका अभाव है जैसे ज्ञानत्वमें सविकल्पकत्वनिरूपीत व्याप्यत्वका ग्रह अप्रामाणिक है, तैसे शाब्दत्वनिष्ठभी सविकल्पकत्वव्याप्यत्वग्रहमें उपाधिका अभाव है=ज्ञानत्वं सविकल्पकत्वा-भाववद्वृत्ति यह प्रतिबन्ध जैसे नहीं बन सकता है तैसे–शाब्दत्वं सविकल्पकत्वाभाववद्-वृत्ति यह प्रतिबन्ध=व्याप्तिभी नहीं बन सकता है। उभयत्र प्रमाणके अभावसे। वेदान्तोंको

अबुभुत्सितार्थत्वकी आपत्ति है, धर्मिविषयक ज्ञानको प्रथमही होनेसे तत्र=धर्मीमें बुभुत्साके अभावसे इति नच वाच्यम्, क्यों ? स्वरूपको ज्ञातता होनेपरभी असाधारण स्वरूपविषयिणी बुभुत्साको उपपादित हो चुकनेसे ।

नापि विचारविध्यनुपपत्तिः । विचारस्य वेदान्ततात्पर्यनिश्चयादिफलकतया निष्प्रत्यूह-निष्प्रकारकब्रह्मज्ञानार्थत्वोपपत्तेः आपातदर्शनस्य प्रतिबद्धत्वेन अज्ञाननिवर्त्तकत्वात् । शुद्धब्रह्मविषयाणामप्यधिकरणानामप्यारम्भो नानुपपन्नः; विषयादिपञ्चकसम्भवात् । व्यावृत्ताकारेणाज्ञातो हि विषयः, ब्रह्म च तथा भवत्येव । विषयस्वरूपनिर्धारणाधीनञ्च प्रयोजनं न निर्धारणे सप्रकारकत्वमपेक्षते । निष्प्रकारके वस्तुनि स्वरूपनिर्धारणत्वाव्याघातात्, अद्वैताद्युपलक्षिताखण्डार्थज्ञानञ्च निर्धारणम् । तदधीनं प्रयोजनं मुक्तिरेव । पूर्वपक्षसिद्धान्तौ च कल्पितप्रकारावलम्बिनौ । संशयोऽपि कल्पितसमानधर्मधीजन्मैवेति नानुपपत्तिः ।

विचारविधिकी अनुपत्तिभी नहीं क्यों ? विचारको वेदान्ततात्पर्यनिश्चयादिफलकत्वेन निष्प्रत्यूह जो निष्प्रकारक ब्रह्मज्ञान तादृश ब्रह्मज्ञानार्थत्वकी उपपत्तिसे; आपाततः दर्शनको प्रतिबद्धत्व होनेसे अज्ञानके अनिवर्त्तकत्वसे । तैसे शुद्धब्रह्मविषयक अधिकरणोंका आरम्भभी अनुपपन्न नहीं है, विषयादि पंचका संभव होनेसे विषयादि पञ्चकको दिखलाते हैं व्यावृत्ताकारसे अज्ञात पदार्थ विषय होता है ब्रह्म तो तथा—व्यावृत्ताकारसे अज्ञात होताही है । और विषयस्वरूप निर्धारणाधीन जो प्रयोजन है वह निर्धारणमें सप्रकारकत्वकी अपेक्षा नहीं करता है । निष्प्रकारक वस्तुमें स्वरूप निर्धारणत्वके अव्याघातसे । और अद्वैतादि-उपलक्षित जो अखण्डार्थ तादृश अखण्डार्थज्ञान निर्धारण है । तदधीनम्=निर्धारणाधीन प्रयोजन मुक्तिही है । और पूर्वपक्ष तथा सिद्धान्त तो कल्पित प्रकारोंको अवलम्बनकरनेवाले हैं=कल्पित प्रकारोंको लेकर ब्रह्ममें पूर्वपक्ष तथा सिद्धान्त ये दोनों बन सकते हैं, संशयभी कल्पित जो समानधर्म तादृशसमानधर्मविषयक जो धी तादृश धीसे उत्पन्न होनेवालाही है इस रीतीसे अधिकरणकी अनुपपत्ति नहीं ।

अतएव—प्रथमाध्यायतृतीयपादीयाधिकरणानामनारम्भएव प्राप्तः विषयादिपञ्चकाभावात्, विशिष्याज्ञातो हि विषयः साधारणधर्मधीजन्यश्च संशयः, मिथ्यासत्यैकप्रकारावलम्बिनौ च पूर्वपक्षसिद्धान्तौ एकप्रकारेण निर्धारणाधीनञ्च प्रयोजनम् तच्च पञ्चकं निर्विशेषे कथं स्यादिति–परास्तम्, उक्तरीत्योपपत्तेः । नच–' ब्रह्मविदाप्नोति परम् '(तै० २।१।१) इति सामान्यतो ज्ञातत्वात् सत्यादिवाक्यवैयर्थ्यापत्तिः असाधारणस्वरूपज्ञानार्थत्वेन साफल्यात् । नच सत्यत्वादिविशिष्टे तात्पर्याभावे तात्पर्यतो यत्किञ्चिद् ब्रह्म इत्येव बोधनात् यस्य कस्यापि ब्रह्मत्वं स्यात्; इदं ब्रह्मेति लक्ष्यल-

क्षणरूपोद्देश्यविधेयविभागाभावाच्चेति–वाच्यम्; लक्षणस्वाभाव्याद्वस्तुगत्या तत्स्वरूपलाभस्य प्रागेवोक्तत्वात्, एकस्मिन्नपि कल्पितोद्देश्यविधेयसंभवात् । अप्राप्तविधेयमात्रपरत्वाद्वाक्यस्य नाखण्डार्थत्वव्याघातः ।

अतएव प्रथमाध्यायस्थ तृतीयपादीय अधिकरणोंका अनारम्भ ही प्राप्त है, विषयादि पञ्चके अभावसे,–विशेषरूपसे अज्ञात विषय कहा जाता है, और साधारणधर्मज्ञानसे जन्य संशय होता है, तैसे मिथ्या तथा सत्य इन दोनोंमें रहनेवाला जो एकप्रकार तादृश प्रकारको अवलम्बन करनेवाले पूर्वपक्ष तथा सिद्धान्त ये दोनों होते हैं, और एकप्रकारसे निर्धारणाधीन प्रयोजन होता है और वह पञ्चक निर्विशेषमें कैसे होगा, यह परास्त हुआ, अतएव शब्दका अर्थ करते हैं–उक्त रीतिसे उपपत्ति होनेसे । ब्रह्मविदाप्नोति परम् (तै० २–१–१) इस पूर्व वाक्यसे सामान्यतः ज्ञात होनेसे सत्यादिवाक्यके वैयर्थ्यकी आपत्ति है, नच=वैयर्थ्यकी आपत्ति नहीं है, क्यों ? असाधारणस्वरूपविषयकज्ञानार्थत्वेन सत्यादिवाक्यका साफल्य होनेसे । शङ्कते नचेति । सत्यत्वादिविशिष्टमें तात्पर्यके न होनेपर तात्पर्यतः यत् किञ्चित् ब्रह्म है ऐसा ही बोधनसे जिस किसकाभी ब्रह्मत्व होगा और यह ब्रह्म है इस रीतिसे लक्ष्यलक्षणरूप जो उद्देश्य तथा विधेय उन दोनोंके विभागके अभावसेभी सत्यत्वविशिष्टमें ही तात्पर्य मानना उचित है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? लक्षणके स्वभावसे वस्तुगत्या लक्षणस्वरूपके लाभको पूर्वमेंही उक्त होनेसे, एकमेंभी कल्पित उद्देश्यविधेयभावके सम्भवसे और वाक्यको अप्राप्तविधेयमात्रपरत्व होनेसे अखण्डार्थत्वका व्याघात नहीं है ।

ननु—स्वरूपेण ज्ञातस्य विधेयस्योद्देश्यसंसृष्टतयैव बोधनीयत्वं–वाच्यम् तथाच–सखण्डार्थतैव । उक्तं हि–किञ्चिद्विधीयतेऽनूद्य वाक्येनेति सतां स्थितिः । सत्यज्ञानादिवाक्येन कथ्यतां किं विधीयते ॥' इति नैष दोषः; असाधारणस्वरूपस्य प्रमेयतया विधेयत्वात् सत्यत्वादिद्वारकस्वरूपज्ञानेनासाधारणज्ञानपर्यवसानात् द्वारफलाभ्यामप्राप्तप्रापणसंभवात् । तथा चोद्देश्यता च विधेयता च स्वरूपमात्रपर्यवसन्नैव ।

शङ्कते नन्विति । स्वरूपसे ज्ञात जो विधेय है उस विधेयका उद्देश्यसे संसृष्टतयैव बोधनीयत्व वाच्य है, तथाच सत्यादि वाक्योंको सखण्डार्थता ही है । कहाभी है–वाक्यसे अनुवादकर किञ्चित् विधेय होता है । ऐसा विद्वानोंका मानना है । और सत्यज्ञानादिसे क्या विहित होता है सो कहना चाहिए । नैष दोषः=यह दोष नहीं है क्यों ? असाधारणस्वरूपको प्रमेयतया विधेय होनेसे सत्यत्वादिद्वारक स्वरूपज्ञानसे असाधारणज्ञापनमें पर्य्यवसान होनेसे । द्वार तथा फल इन दोनोंसे अप्राप्त प्रापणका सम्भव होनेसे । तथाच उद्देश्यता तथा विधेयता स्वरूपमात्रमेंही प्रकृतमें पर्य्यवसन्ना है ।

ननु–एवं सत्यादिपदानां लक्षणा न स्यात्, अशक्यासदृशान्वयप्रतियोग्युपस्थितिरूपायास्तस्या असम्भवात्तद्बीजस्यान्वयानुपपत्तेश्चात्राभावादिति–चेन्न, वृत्त्या हि पदा-

र्थोपस्थितिः नतु सैव वृत्तिः अतो नोक्तरूपा लक्षणा, किन्तु शक्यसम्बन्धः। स च प्रकृतेप्यस्त्येव । उपस्थितिरूपत्वेऽपि लक्षणायास्तात्पर्यविषयानुकूलोपस्थितिरेव सा नोक्तोपस्थितिरूपा अतात्पर्यविषयतादृगुपस्थितौ गतत्वात् । नापि बीजानुपपत्तिः; तात्पर्यानुपपत्तेरेव बीजत्वात् । नापि सत्यादिपदानां पर्यायतापत्तिः वाच्यार्थभेदात् । सत्यत्वं ह्यस्मन्मते त्रिकालाबाध्यत्वम् परमते कुम्भादिसाधारणी परजातिः सत्यपदप्रवृत्तिनिमित्तम् ज्ञानपदानन्दपदयोरप्यस्मन्मतेऽन्तःकरणवृत्त्युपधानलब्धभेदचिदानन्दविशेषानुगते ज्ञानत्वानन्दत्वे परमते तु स्वभावलब्धभेदज्ञानानन्दनिष्ठे अपरजाती प्रवृत्तिनिमित्ते तथाच लक्ष्यार्थाभेदेऽपि न पर्यायताशङ्का ।

इस रीतिसे सत्यादि पदोंकी लक्षणा न होगी अशक्य तथा असदृश जो अन्वयका प्रतियोगी तादृश प्रतियोगीकी जो उपस्थिति तादृश उपस्थितिरूप जो लक्षणा उस लक्षणाके असम्भवसे—यहाँ शक्त्या जायमान अन्वयप्रतियोगीकी उपस्थितिको लक्षणात्व वारण करनेके लिए अशक्य कहा है, और गौण्या जायमान अन्वयप्रतियोगीकी उपस्थितिको लक्षणात्व वारण करनेके लिए 'असदृश' यह कहा है, और लक्षणाका बीज जो अन्वयानुपपत्ति उसकेभी यहाँपर अभावसे, इति चेन्न; क्योंकि वृत्तिसे पदार्थकी उपस्थिति होती है, और सैव=उपस्थिति ही वृत्ति नहीं है, अतः त्वदुक्तरूपा लक्षणा नहीं है, किन्तु शक्यसम्बन्धका नाम लक्षणा है, सच=वह शक्यसम्बन्ध तो प्रकृतमेंभी है ही। और लक्षणाको उपस्थितिरूपता होनेपरभी तात्पर्यविषयानुकूल उपस्थितिरूपा ही सा=लक्षणा है, प्रथमोक्त उपस्थितिरूपा नहीं, क्यों ? अतात्पर्यविषय जो तादृग् उपस्थिति उस उपस्थितिमें गत होनेसे। और लक्षणाके बीजकीभी अनुपपत्ति नहीं है, तात्पर्यानुपपत्तिकोही बीजता होनेसे। और सत्यादि पदोंको पर्यायताकी आपत्तिभी नहीं है, वाच्यार्थके भेदसे। और सत्यत्व हमारे मतमें त्रिकालाबाध्यत्वरूप है। और परमतमें कुम्भादिसाधारणी सत्यपदकी प्रवृत्तिमें निमित्त है। ज्ञानपद तथा आनन्दपद इन दोनोंकेभी प्रवृत्तिनिमित्त हमारे मतमें अन्तःकरणकी जो वृत्ति तादृश वृत्तिरूप जो उपधान उस उपधानसे प्राप्त किया है भेद जिसने ऐसा जो चिदानन्दविशेष उस चिदानन्द विशेषमें अनुगत जो ज्ञानत्व तथा आनन्दत्व ये दोनों हैं। परमतमें तो स्वभावसे प्राप्त किया है भेद जिन्होंने ऐसे जो ज्ञान तथा आनन्द इन दोनोंमें रहनेवाली अपरजातियाँ प्रवृत्तिकी निमित्त हैं। फलतः हमारे मतमें लक्ष्यार्थका अभेद होनेपरभी पर्यायताकी शङ्का लब्धपदा नहीं हो सकती है।

ननु—कुम्भाद्यनुगतसत्ताया ब्रह्मलक्षणत्वायोगः मिथ्यासत्यानुगतसामान्याभावात्, तथाचानृताद्व्यावृत्त्यसिद्धिः त्रिकालाबाध्यत्वं ब्रह्मणि श्रौतमिति त्वन्मतहानापत्तिश्चेति—चेन्न ब्रह्मणः सर्वाधिष्ठानतया तद्रूपसत्ताया 'सर्वानुस्यूतत्वेन जातिव्यपदेशात् कल्पितधर्मत्वमादाय ब्रह्मव्यक्तिकत्वाच्च। तच्च सत्त्वं त्रिकालाबाध्यत्वमेवेति न तस्य श्रौतत्वहानिः, तस्यानृतं प्रति अधिष्ठानत्वेऽपि अनृताश्रितत्वाभावेन तद्व्यावर्त्तकत्वसम्भ-

त्वात् आनन्दत्वादिकल्पितजातिसाहित्येन लक्षणोक्तिः पररीत्या। नच धर्मिसमानसत्ताकभेदं विनैवोपाधिकभेदमात्रेणाकाशत्वादेरिव ज्ञानत्वादेरपि जातित्वायोग इति–वाच्यम्। ज्ञानत्वादीनां धर्मिसमसत्ताकभेदवदुपहितवृत्तित्वात्।

शङ्कते नन्विति। कुम्भादिमें अनुगत जो सत्ता उस सत्ताको ब्रह्मलक्षणत्वका अयोग है, मिथ्या तथा सत्य इन दोनोंमें अनुगत सामान्यके अभावसे, फलतः अनृतसे व्यावृत्तिकी असिद्धि है, और त्रिकालाबाध्यत्व ब्रह्ममें श्रौत है, इस तुम्हारे मंतके हानिकीभी आपत्ति है, इति चेन्न; क्यों? ब्रह्मको सर्वका अधिष्ठान होनेसे ब्रह्मरूप सत्ताको सर्वानुस्यूतता होनेसे जातित्वके व्यपदेशसे और कल्पित भेदको लेकर ब्रह्माधिकरणकत्वसेभी=कल्पित भेदको लेकर वह ब्रह्ममेंभी रहती है, और वह सत्त्व तो त्रिकालाबाध्यत्वरूपही है। अतः उसके श्रौतत्वकी हानि नहीं; तस्य=उक्त सत्त्वको अनृतके प्रति अधिष्ठानत्व होनेपरभी अनृतके आश्रित न रहनेसे असत्के व्यावर्त्तकत्वका सम्भव होनेसे और आनन्दत्वादिरूप जो कल्पित जातियाँ उन्होंके साहित्यसे सत्यत्वमें जो लक्षणकी उक्ति है वह पररीतिसे है। धर्मिसमसत्ताक जो भेद तादृश भेदके विना ही औपाधिकभेदमात्रसे आकाशत्वादिकी नाईं ज्ञानत्वादिकोंकोभी जातित्वका योग नहीं है=औपाधिक भेदसे आकाशत्वादिक जातियाँ नहीं हो सकती हैं तैसे ज्ञानत्वादिक जातियाँभी नहीं बन सकती हैं; इति नच वाच्यम् क्यों? ज्ञानत्वादिको धर्मिसमसत्ताक जो उपहित तादृश उपहितमें वृत्तित्व होनेसे।

तर्हि—शुद्धस्य कथं ज्ञानत्वादिलक्षणम् नहि गन्धो जलस्य लक्षणमिति चेत् न; उपहितवृत्तित्वेऽपि उपधेयवृत्तित्वानपायात्। तदुक्तं–सत्यत्वादिविशिष्टशबलब्रह्मवाचिनां सत्यत्वादिपदानां शुद्धे ब्रह्मणि लक्षणेति। नच अनृतस्वरूपे शबले सत्यत्वायोगः, योगे वा ततो नानृतव्यावृत्तिरिति–वाच्यम्। शबले हि सत्यता एषैव यत् परमार्थसंसर्गेण प्रतीयमाने तस्मिन् सत्यशब्दसङ्गतिग्रहः। तदुक्तं–संक्षेपशारीरके–आकाशादौ सत्यता तावदेका प्रत्यङ्मात्रे सत्यता काचिदन्या। तत्संपर्कात् सत्यता तत्र चान्या व्युत्पन्नोऽयं सत्यशब्दस्तु तत्र। (सं०अ० १।७८) इति। एवमानन्दादिपदेष्वपि द्रष्टव्यम् तथाच कथं तेषां नानृतादिव्यावर्त्तकत्वम्?

तब शुद्धका ज्ञानत्वादि लक्षण कैसे है? गन्ध तो जलका लक्षण नहीं होता है, इति चेन्न; क्यों? उपहितमें वृत्तित्वके अनपायसे=उपधेय शुद्धमेंभी वृत्तिता होनेसे लक्षण बन सकता है। सो कहा है–सत्यत्वादिविशिष्ट जो शबल ब्रह्म तादृश शबल ब्रह्मके वाचक सत्यादिपदोंकी शुद्धमें लक्षणा है, अनृत स्वरूप जो शबल है उस शबलमें सत्यत्वका अयोग है, और शबलमें सत्यत्वका योग होनेपर ततो=उस सत्यत्वसे अनृतकी व्यावृत्ति न होगी इति नच वाच्यम, क्योंकि,–शबलमें सत्यता यही है कि परमार्थसंसर्गसे प्रतीयमान उसमें सत्य शब्दकी सङ्गतिका ग्रह। सो कहा है सङ्क्षेप शारीरकमें, सङ्क्षेप शारीरकके इस पद्यका अर्थ प्रथमपरिच्छेदके अन्तिम

प्रकरणमें देखना चाहिए । इस रीतिसे आनन्दादिपदोंमेंभी ज्ञातव्य है फलतः सत्यादिपदोंको अनृतादिका व्यावर्त्तकत्व क्यों नहीं है ।

एतेन—शुद्धादन्यत्र सत्यत्वाद्यसंभवात् सत्यादिवाक्यस्य लक्षणया अखण्डार्थत्वे शुद्धे सत्यत्वादेरभानात् पर्यायत्वं दुर्वारमिति–परास्तम् । स्वरूपमात्रपरत्वेपि न पदान्तरवैयर्थ्यव्यावृत्तिभेदबोधनेन साफल्यादिति चोक्तमेव । नच व्यावर्तकस्य सत्यत्वादेस्तात्पर्यतोऽसमर्पणे व्यावृत्त्यसिद्धिरिति–वाच्यम्; 'गम्भीरायां नद्यां घोषःप्रतिवसती' त्यत्र यथा तीरे तात्पर्येऽपि नद्यामगम्भीरव्यावृत्तिरभिधाबलाल्लभ्यते तात्पर्यविषयागम्भीरनदीतीरव्यावृत्ततीरबुद्धावुपायत्वात्, तथात्राप्यभिधाबलात् सत्यत्वादिविशिष्टे तात्पर्याभावेऽपि आपाततस्तत्प्रतीतिमात्रेणैव व्यावृत्तिसिद्धिः तात्पर्यविषयानृतादिव्यावृत्तस्वरूपबुद्धावुपायत्वस्य तुल्यत्वात् । नच–नद्यादिपदलक्ष्ये तीरादावनदीत्वादिवत् सत्यत्वादिपदलक्ष्येऽपि ब्रह्मण्यसत्यत्वाद्यापत्तिजहल्लक्षणानभ्युपगमात् ।

एतेन=शुद्धसे भिन्नमें सत्यत्वादिके असम्भवसे सत्यादि वाक्यको लक्षणासे अखण्डार्थत्व होनेपर शुद्धमें सत्यत्वादिके अभावसे सत्यादिका पर्यायत्व दुर्वार है, यह कथन परास्त हुआ । स्वरूपमात्रपरता होनेपरभी पदान्तरका वैयर्थ्य नहीं है, व्यावृत्तिविशेषबोधनत्वेन साफल्य होनेसे, यह तो कहा ही है । व्यावर्त्तक जो सत्यत्वादिक हैं, इन्होंका तात्पर्यतः वाक्यसे समर्पण न होनेपर व्यावृत्तिकी असिद्धि है इति नच वाच्यम्; क्यों ? गम्भीरनदीमें घोष प्रतिवास करता है यहाँपर जैसे वाक्यका तीरमें तात्पर्य्य होनेपरभी नदीमें अगम्भीरकी व्यावृत्ति अभिधाबलतः लब्ध होती है, तात्पर्यका विषयीभूत जो अगम्भीरनदीतीरसे व्यावृत्त तीर तादृशतीरविषयक बुद्धिमें उपायत्व होनेसे, तैसे ही प्रकृतमेंभी अभिधाके बलसे सत्यत्वादिविशिष्टमें तात्पर्य्यके न होनेपरभी आपाततः सत्यत्वकी प्रतीतिमात्रसेही व्यावृत्तिकी सिद्धि है । तात्पर्यका विषय जो अनृतादिसे व्यावृत्तस्वरूप तादृशस्वरूपविषयक जो बुद्धि उस बुद्धिमें उपायत्वको तुल्यत्व होनेसे । जैसे नद्यादिपदसे लक्ष्यतीरादिमें अनदीत्व है, तैसे सत्यादिपदसे लक्ष्य ब्रह्ममेंभी असत्यत्वादिकी आपत्ति है नच=यह आपत्ति नहीं है क्यों ? तीरादिकी तरह यहाँपर जहल्लक्षणाका अङ्गीकार न होनेसे ।

यदि हि तीरादौ नदीत्वादिवत् ब्रह्मण्यपि सत्यत्वादिकमभिधाबलात् न प्रतीयेत तदैवं स्यात्, नत्वेवमस्ति, नद्यादौ नदीत्वादिवत् सत्यत्वादेर्ब्रह्मण्येव प्रतीतेः नचैवं निर्धर्मकत्वव्याकोपः व्यावहारिकस्य धर्मस्य सत्वेऽपि स्वसमानसत्ताकधर्मविरहेण तदुपपत्तेः वाचकानामपि लक्षकत्वमन्यानुपरक्तस्वरूपभानायेत्यन्यत् । तदुक्तं कल्पतरुकृद्भिः—'सत्तादीनां तु जातीनां व्यक्तितादात्म्यकारणात् । लक्ष्यव्यक्तिरपि ब्रह्म सत्तादि न जहाति नः ॥ इति गौर्नित्यो गौरनित्य इत्युभयत्रापि एकदेशान्वयार्थं लक्षणाभ्युपगमेऽपि जातिव्यक्त्योरुभयोरपि तार्किकैर्गोपदार्थत्वाभ्युपगमाच्च ।

यदि जैसे तीरादिमें नदीत्वादि अभिधावलसे नहीं प्रतीत होते हैं तैसे ब्रह्ममेंभी अभिधाबलसे सत्यत्वादिक न प्रतीत होते हों तब ऐसा हो सकता है=असत्यात्वादिकी ब्रह्ममें आपत्ति हो सकती थी परन्तु ऐसा तो नहीं है, नद्यादिमें जैसे नदीत्वादिकी प्रतीति होती है तैसे सत्यत्वादिकी ब्रह्ममेंही प्रतीति होनेसे। ऐसा होनेपर ब्रह्ममें जो निर्धर्मकत्व माना जाता है उसका व्याकोप होगा नच=निर्धर्मकत्वका व्याकोप नहीं है, क्यों? व्यावहारिक धर्मका सत्त्व होनेपरभी स्वसमानसत्ताक धर्मके न रहनेसे निर्धर्मकत्वकी उपपत्तिसे, और वाचकोंकाभी लक्षकत्व अन्यसे अनुपरक्त जो केवल स्वरूप उस स्वरूपके मानके लिए अङ्गीकार किया जाता है सो कहा है कल्पतरु कारने; सत्तादिक जातिओंका स्वाश्रयव्यक्तिओंके साथ तादात्म्य होनेसे। लक्ष्यव्यक्तिरूप हुआभी ब्रह्म नः=हमारे मतमें सत्तादिको छोडता नहीं है। गो नित्य है, गो अनित्य है, इन दोनों प्रयोगोमेंभी एकदेशके अन्वयके लिए=गो नित्य है यहाँपर जातिके अन्वयके लिए और गो अनित्य है यहाँपर व्यक्तिके अन्वयके लिए लक्षणाका अभ्युपगम होनेपरभी जाति तथा व्यक्ति इन दोनोंकोभी नैयायिकोंसे गोपदार्थत्वका अभ्युपगम होनेसे।

ननु—औपनिषदे पुरुषे धर्मा न प्रत्यक्षेण प्राप्ताः किन्तु तत्त्वावेदकेन वेदेन, तथाच कथं व्यावहारिका इति—चेन्न; वेदादापाततः प्रतीतानामपि वेदतात्पर्यविषयत्वाभावादतात्त्विकत्वोपपत्तेः। तात्पर्यविषये हि वेदस्य प्रामाण्यम् यत्र च तस्य प्रामाण्यं तदेव तात्त्विकमिति नियमात्। नच—वेदस्यातत्परत्वमात्रेण कथं व्यावहारिकत्वम्? बाध्यत्वेन चेत् प्रस्तरेऽपि यजमानत्वं व्यावहारिकं स्यात् यजमानत्वस्य तत्रानध्यासात् अव्यावहारिकत्वे शुक्तिरूप्यादेः व्यावहारिकत्वापत्तिरिति—वाच्यम्। वेदतात्पर्याविषयत्वेन अतात्त्विकत्वे सिद्धे तत्त्वावेदकबाध्यत्वव्यावहारिकावेदकबाध्यत्वाभ्यां व्यावहारिकप्रातिभासिकव्यवस्थोपपत्तेः। नच—तत्त्वावेदकस्य विशेष्यमात्रपरत्वान्न बाधकत्वम् विशेषणबुद्धिद्वारकत्वेन तन्मात्रपरस्यापि बाधकत्वसम्भवात् विशेषणेऽप्यवान्तरतात्पर्याभ्युपगमाद्वा।

शङ्कते नन्विति। उपनिषद्वेद्य पुरुषमें धर्मप्रत्यक्ष प्रमाणसे प्राप्त नहीं हैं, किन्तु तत्त्वबोधक जो वेद तादृश वेदसे प्राप्त हैं, फलतः व्यावहारिक कैसे हैं=जब कि तत्त्वावेदक वेदसे ज्ञात हैं तब व्यावहारिक कैसे हो सकते हैं, इति चेन्न; क्यों? आपाततः वेदसे प्राप्तोंकोभी वेदमुख्यतात्पर्यविषयत्वके अभावसे अतात्त्विकत्वकी उपपत्तिसे=यद्यपि वेदसे आपाततः ज्ञात हैं तथापि वेदोंका मुख्यतात्पर्य्य उन्होंमें नहीं है, अतः वे अतात्त्विक हो सकते हैं। मुख्यतात्पर्यके विषयमेंही वेदका तात्त्विक प्रामाण्य है अतः वही तात्त्विक है, ऐसा नियम होनेसे। वेदके अतत्परत्वमात्रसे व्यावहारिकत्व कैसे है, यदि कहो कि बाध्यत्वेन व्यावहारिकत्व है तो प्रस्तरमेंभी यजमानत्व व्यावहारिक हो क्योंकि प्रस्तरमें यजमानत्व बाधित है; यजमानत्वका प्रस्तरमें अध्यास

न होनेसे अव्यावहारिकत्व होनेपर शुक्तिरूप्यादिके व्यावहारिकत्वकी आपत्ति है इति नच वाच्यम्, क्यों ? वेदातात्पर्याविषयत्वेन अतात्त्विकत्वके सिद्ध होनेपर तत्त्वावेदकबाध्यत्वेन और व्यावहारिकावेदकबाध्यत्वेन क्रमशः व्यावहारिक व्यवस्थाकी और प्रातिभासिक व्यवस्थाकी उपपत्तिसे तत्त्वावेदकको विशेष्यमात्रपरत्व होनेसे बाधकत्व नहीं है, नच=ऐसा नहीं कहना, क्यों ? विशेषबुद्धिद्वारकत्वेन तन्मात्रपरस्यापि=विशेष्यमात्रपरकोभी बाधकत्वका सम्भव होनेसे, या विशेषणमेंभी अवान्तर तात्पर्यके अभ्युपगमसे ।

यजमानः प्रस्तरः इत्यादौ तु न विशेषणे अवान्तरतात्पर्यम्; तात्पर्यविषयसिद्धावनुपायत्वात् । महातात्पर्यविषयसिद्ध्युपाये हि अवान्तरतात्पर्यमिति सर्वमतसिद्धम् । ननु–व्यावृत्तयः सत्या मिथ्या वा, नाद्यः । व्यावर्त्तकानामपि सत्यत्वापत्तेर्व्यावहारिकाणां पारमार्थिकव्यावृत्त्यसाधकत्वात्, नान्त्यः, शुक्तेः शुक्तितो व्यावृत्तेर्मिथ्यात्वे शुक्तित्वस्य शुक्तिसमसत्ताकत्वपदनृतव्यावृत्तेः ब्रह्मणि मिथ्यात्वे अनृतत्वस्य ब्रह्मसमसत्ताकत्वापत्तेरिति–चेन्न; उभयथाप्यदोषात् । तथाहि–व्यावृत्तेर्ब्रह्माभिन्नतया पारमार्थिकत्वेऽपि व्यावर्तकं पारमार्थिकमिति कुतः ? नहि यत् पारमार्थिकबोधकं तत् पारमार्थिकमिति नियमोऽस्ति बोध्यबोधकयोः समसत्ताकत्वस्य पदतदर्थादौ व्यभिचारेण प्रागेव निरस्तत्वात् दोषाप्रयुक्तभानत्वस्य सत्त्वप्रयोजकत्वात् । नापि व्यावृत्तिबोधकं व्यावृत्तिसमसत्ताकमिति नियमः स्वाप्नाङ्गनादेरपि स्वप्नजन्यसुखापेक्षया सुखान्तरव्यावृत्तिबुद्धिजनकत्वात् कारणस्य कार्यव्यावर्त्तकत्वात् ।

और 'यजमानः प्रस्तरः' इत्यादिमें तो विशेषणमें अवान्तर तात्पर्य्य नहीं है, क्यों ? तात्पर्य्यविषयसिद्धौ=प्रस्तरस्तुतिरूप जो तात्पर्य्यका विषय उस विषयकी सिद्धिमें उपायत्व न होनेसे । महातात्पर्यका जो विषय उस विषयकी सिद्धिमें जो उपाय उस उपायमें अवान्तर तात्पर्य्य होता है यह सर्वमत सिद्ध है । शङ्कते नन्विति । व्यावृत्तियाँ सत्य हैं या मिथ्या नाद्यः=व्यावृत्तियाँ सत्य हैं यह आदिमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों ? व्यावृत्तकोंकेभी सत्यत्वकी आपत्तिसे–व्यावहारिक व्यावर्त्तकोंको पारमार्थिक व्यावृत्तिओंके प्रति साधकत्व न होनेसे । नान्त्यः=व्यावृत्तियाँ मिथ्या हैं, यह अन्तिम पक्षभी ठीक नहीं, क्यों ? शुक्तिकी जो शुक्तिसे व्यावृत्ति है उस व्यावृत्तिका मिथ्यात्व होनेपर जैसे शुक्तित्वका शुक्तिसमसत्ताकत्व है तैसे अनृतकी व्यावृत्तिको ब्रह्ममें मिथ्यात्व होनेपर अनृतत्वको ब्रह्मसमसत्ताकत्वकी आपत्तिसे, इति चेन्न; क्यों ? उभयथापि=सत्यत्वमिथ्यात्व इन दोनों प्रकारोंसेभी दोषके न होनेसे । तथाहि–सत्यत्वपक्षमें व्यावृत्तिको ब्रह्मके साथ अभिन्न होनेसे पारमार्थिक होनेपरभी, व्यावर्त्तक पारमार्थिक है यह क्यों ? क्योंकि जो पारमार्थिकका बोधक है वह पारमार्थिक है ऐसा नियम नहीं है, बोध्य तथा बोधक इन दोनोंके समसत्ताकत्वको पदतदर्थादिमें व्यभिचारसे पूर्वही निरस्त होनेसे=मीमांसककी रीतिसे नगनागादिपद नित्य तथा विभु माने जाते हैं, परन्तु

ध्वनिधर्मन्हस्वत्वदीर्घत्वादिविशिष्टत्वेन ये प्रातिभासिक माने जाते हैं, परन्तु नगनागादिपदबोध्य पर्वतहस्त्यादिरूप अर्थ प्रातिभासिक नहीं हैं, इत्यादिरूप अर्थ बाधोद्धारमें बतला चुके हैं। दोपाप्रयुक्तभानत्वको सत्त्वका प्रयोजकत्व होनेसे। और व्यावृत्तिबोधक व्यावृत्तिसमसत्ताक होता है यह नियमभी नहीं क्यों? स्वाप्निक अङ्गनादिकोभी स्वजन्यसुखकी अपेक्षासे सुखान्तर-व्यावृत्तिबुद्धिजनकत्व होनेसे, कारणकोभी कार्यका व्यावर्त्तकत्व होनेसे।

साच व्यावृत्तिः तव मते पारमार्थिक्येव। मम मते तु व्यावहारिकी। सर्वथापि प्रातिभासिकव्यावर्त्तकापेक्षयाधिकसत्ताकैव नच व्यावृत्तेर्ब्रह्माभिन्नत्वे ब्रह्मपदेनैव तल्लाभादितरपदवैयर्थ्यम्; सामान्यतः तत्सिद्धावप्यनृतादिव्यावृत्त्याकारेण तत्सिद्धौ साफल्यात्। एवमज्ञानादिव्यावृतीनामन्योन्यभेदे सत्यपदेनैव चारितार्थ्यमिति–अपास्तम्; तत्तदाकारेण सिद्धेस्तत्तत्पदं विनानुपपत्तेः। नच–एवं सत्यत्वज्ञानत्वादिधर्माणामपि व्यावृत्तिवत् ब्रह्माभिन्नतया पारमार्थिकत्वमस्त्विति–वाच्यम् इष्टापत्तेः। तदेवं व्यावृत्तेः सत्यत्वे न कोऽपि दोषः। व्यावृत्तेर्मिथ्यात्वपक्षेऽपि नानृतत्वस्य ब्रह्मसमसत्ताकत्वापत्तिः एकबाधक–बाध्यत्वस्योभयत्रापि तुल्यत्वात्, व्यावृत्तिबाधकाबाध्यस्यैव प्रतियोगिनो, व्यावृत्त्यधिकसत्ताकत्वम्। नत्वेकबाधकबाध्यस्य अपि कल्पितरजतव्यावृत्तेः कल्पितरजते मिथ्यात्वेऽपि तदपेक्षया तस्याधिकसत्ताकत्वाभावात्। अधिकं मिथ्यात्वमिथ्यात्वोपपादने द्रष्टव्यम्।

और वह व्यावृत्ति तुम्हारे मतमें पारमार्थिकी है। और मेरे मतमें तो व्यावहारिकी है। सर्व रीतिसे प्रातिभासिक जो व्यावर्त्तक उस व्यावर्त्तककी अपेक्षासे अधिक सत्ताक ही है। व्यावृत्तिके ब्रह्मसे अभिन्नत्व होनेपर ब्रह्म पदसेही व्यावृत्तिके लाभसे इतर पदोंका वैयर्थ्य है, नच=वैयर्थ्य नहीं है, क्यों? सामान्यतः ब्रह्मपदसे व्यावृत्तिकी सिद्धिमें इतर पदोंके साफल्यसे। इस रीतिसे अज्ञानादिकी व्यावृत्तिओंको परस्पर अभेद होनेपर सत्यपदसे चारितार्थ्य है, यह कथन भी खण्डित हुआ, क्यों? तिस, आकारसे व्यावृत्तिकी सिद्धिको तिस तिस पदके विना अनुपपन्न होनेसे, शङ्कते नचेति। इस रीतिसे सत्यत्वज्ञानत्वादि धर्मोंकोभी ब्रह्मके साथ अभिन्नता होनेसे इनकोभी पारमार्थिकत्व रहो, इति नच वाच्यम्=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों? हमको इष्टापत्ति होनेसे। सो इस रीतिसे व्यावृत्तिका सत्यत्व होनेपर कोईभी दोष नहीं। और व्यावृत्तिके मिथ्यात्व पक्षमेंभी अनृतत्वको ब्रह्मसमसत्ताकत्वकी आपत्ति नहीं एक बाधकसे बाध्यत्वको उभयत्रापि=अनृतत्व और अनृतव्यावृत्ति एतदुभयत्रापि तुल्यत्व होनेसे, व्यावृत्तिका जो बाधक उस बाधकसे अबाध्य जो प्रतियोगी उस प्रतियोगीकोही व्यावृत्तिसे अधिक सत्ताकत्व होता है, न कि,–एक बाधकसे बाध्यप्रतियोगीको, कल्पित जो रजत उस रजतकी व्यावृत्तिको कल्पितरजतमें मिथ्यात्व होनेपरभी तदपेक्षया=कल्पितरजतव्यावृत्त्यपेक्षया तस्य=कल्पित रजतको अधिकसत्ताकत्वके अभावसे। इस विषयमें अधिक मिथ्यात्वके मिथ्यात्वोपपादनमें द्रष्टव्य है।

ननु–तत्त्वजिज्ञासुं मुमुक्षुं प्रति मिथ्याबोधनायोगः, नचानृतत्वादिभ्रान्तिनिवृत्त्यर्थं तत् ; अधिष्ठानब्रह्मतत्त्वसाक्षात्कारेणैव तन्निवृत्तिसम्भवे भ्रान्त्यन्तरोत्पादनायोगात्, नहि वल्मीके स्थाणुरयमिति भ्राम्यतः पुरुषोऽयमित्युपदिश्यते इति चेन्न; निवर्त्तकाधिष्ठानतत्त्वसाक्षात्कार एव तस्योपायत्वात् स्थूलारुन्धतीन्यायेन पूर्वपूर्वभ्रमनिवृत्तये काल्पनिकोपदेशस्य पञ्चकोशस्थले दर्शनाच्च । यथा चात्मनि कल्पितेन ब्राह्मण्येनाशङ्किता ब्राह्मण्यभ्रान्तिर्निवर्तते तथा व्यावहारिक्या व्यावृत्त्या प्रातिभासिक्यनृतादिभ्रान्तिनिवर्तते नचासद्व्यावृत्तेर्व्यावहारिकत्वेऽनपोदितप्रामाण्येन असद्वा इदमग्र आसीदिति वाक्येनासत्वस्य पारमार्थिकत्वप्रसङ्गः नेह नानेत्यनेन तस्य निषेधात् असद्वा इत्यादेरन्यपरत्वस्य प्रागेव दर्शितत्वाच्च । तथाच मीमांसकमते अनृतस्याप्यर्थवादार्थस्य सत्ये प्राशस्त्य इव मिथ्याभूतानामपि व्यावृत्तीनां सत्ये ब्रह्मणि द्वारत्वेन बोधनं युक्तम् । उक्तं हि–सत्ये ब्रह्मणि सत्यादिशब्दा व्यावृत्तिद्वारा पर्य्यवस्यन्तीति ।

शङ्कते नन्विति । तत्त्वके जाननेकी इच्छावाला जो मुमुक्षु है इस मुमुक्षुके प्रति मिथ्या पदार्थके बोधनका अयोग=उक्तविध मुमुक्षुको मिथ्यापदार्थका समझाना अयुक्त है, यदि यों कहो कि,–अनृतत्वादिकी जो भ्रान्ति उस भ्रान्तिकी निवृत्तिके लिए तत्=मिथ्याका बोधन है, तो यह नहीं कहना क्यों ? अधिष्ठानके तत्त्वसाक्षात्कारसे ही अनृतत्वादिकी भ्रान्तिकी निवृत्तिका सम्भव होनेपर अन्य भ्रान्तिके उत्पादनके अयोगसे, क्योंकि वल्मीकमें ‘ यह स्थाणु है ’ इस रीतिसे भ्रान्तिको प्राप्त जो पुरुष है, उस पुरुषको ‘ यह पुरुष है ’ इस रीतिसे वल्मीक उपदिष्ट नहीं किया जाता है, इति चेन्न; क्यों ? निवर्त्तक जो अधिष्ठानका तत्त्वसाक्षात्कार उस तत्त्वसाक्षात्कारमें ही, तस्य=मिथ्यात्वबोधनको उपायत्व होनेसे । और स्थूलारुन्धतीन्यायसे पूर्वपूर्व भ्रमकी निवृत्तिके लिए काल्पनिक उपदेशको पञ्चकोशस्थलमें देखनेसेभी मिथ्याका बोधन अयुक्त नहीं है, और आत्मामें कल्पित जो ब्राह्मण्य उस ब्राह्मण्यसे आशङ्कित अब्राह्मण्यकी भ्रान्ति निवृत्त होती है, तैसे व्यावहारिकी जो व्यावृत्ति है उस व्यावृत्तिसे प्रातिभासिकी जो अनृतादिकी भ्रान्ति वह भ्रान्ति निवृत्त होती है । असत्‌की व्यावृत्तिको व्यावहारिकत्व होनेपर अखण्डित है प्रामाण्य जिसका ऐसा जो ‘ असद्वा इदमग्र आसीत् ’ (तै० २।७।१) इत्यादिवाक्य उस वाक्यसे असत्त्वके पारमार्थिकत्वका प्रसङ्ग है; नच=नहीं है क्यों ? ‘ नेह नानास्ति किञ्चन ’ (बृ० ४।४।१९) इस वाक्यसे तस्य=असत्त्वके निषेधसे, और ‘ असद्वा ’ इत्यादिके अन्यपरत्वको पूर्वमें ही दिखला दिया होनेसेभी यह शङ्का नहीं बन सकती है । तथाच मीमांसक मतमें जैसे अनृतरूप अर्थवादार्थकाभी सत्यभूत प्राशस्त्यमें द्वारत्वेन बोधन युक्त है तैसे मिथ्याभूत व्यावृत्तिओंकाभी सत्यरूप ब्रह्ममें द्वारत्वेन बोधन युक्त है । कहाभी है–सत्यस्वरूप ब्रह्ममें सत्यादि शब्द व्यावृत्तिद्वारा पर्य्यवसित होंगे ।

व्यावृत्तिज्ञानस्य धर्मिधीसाध्यत्वेन वैपरीत्यापातः; धर्मविशिष्टधर्मिज्ञानसाध्याया

व्यावृत्तेः शुद्धधर्मिज्ञाने द्वारत्वाङ्गीकारात् । नच–शाब्दे अर्थे आर्थिकस्य द्वारत्वमनुपपन्नम् । अन्यथा नीलमुत्पलमित्यादेरनीलव्यावृत्तिद्वारा स्वरूपमात्रपरत्वं स्यादिति वाच्यम् । नीलमुत्पलमित्यादौ स्वरूपमात्रबोधे तात्पर्याभावान्न शाब्देऽर्थे आर्थिकार्थापेक्षा, विशिष्टार्थतात्पर्यात् । अत्र तु स्वरूपमात्रे तात्पर्यम् तच्च–आर्थिकार्थस्य द्वारत्वं विनाऽनुपपन्नम् । नच–विशेषस्य त्वन्मतेऽभानात् किं प्रागज्ञातं व्यावृत्त्या ज्ञापनीयमिति–वाच्यम्; अन्याविषयकस्य स्वरूपज्ञानस्य भ्रमविरोधिनः साध्यत्वात् नचैवमन्याज्ञाने द्वारत्वम्; अन्यज्ञानप्रतिबन्धद्वारेण शुद्धज्ञान एव द्वारत्वसंभवात् । नच व्यावृत्तिज्ञाने एव स्वरूपज्ञानं द्वारमस्तु; तस्याभिधावललब्धविशिष्टज्ञानादेवोपपत्तेः । नच प्राचीने ब्रह्मज्ञाननिवर्त्तकब्रह्मापरोक्षज्ञाने तदज्ञानकार्यस्यान्यस्य भावायोगः । ब्रह्मप्रातिपदिकार्थबुभुत्सायामेव एतद्वाक्यप्रवृत्तिरिति स्वप्रक्रियाविरोधश्चेति–वाच्यम्;

व्यावृत्तिज्ञानको धर्मिज्ञानसे साध्यत्व होनेसे=अभावज्ञानमें अधिकरणज्ञानको करणता होनेसे वैपरित्यापातः=व्यावृत्तिस्वरूपबोधनमें ब्रह्मस्वरूपबोधनके द्वारत्वका आपात है, नच=वैपरीत्यापात नहीं है, क्यों ? धर्मसे विशिष्ट जो धर्मि तादृशधर्मिविषयक ज्ञानसे साध्य जो व्यावृत्ति उस व्यावृत्तिको शुद्धधर्मिज्ञानमें द्वारत्वके अङ्गीकारसे । शाब्दे अर्थे= सत्यादि पदोंकी लक्षणा वृत्तिसे ज्ञात ब्रह्मरूप शब्दार्थमें आर्थिकस्य=व्यावृत्तिको द्वारत्व अनुपपन्न है= प्रथम आपाततः सत्यादिपदोंसे सत्यत्वादिविशिष्ट ब्रह्म बोधन किया जाता है पश्चात् निर्गुणश्रुत्यन्यथानुपपत्त्या उस अर्थको त्यागकर अनृतादिकी व्यावृत्तिकी कल्पना की जाती है, अतः व्यावृत्ति आर्थिक है और आर्थिक होनेसे शाब्दार्थके प्रति उसे द्वारता नहीं बन सकती है, अन्यथा=' नीलमुत्पलम् ' इत्यादिकाभी अनीलव्यावृत्तिद्वारा स्वरूपमात्रके बोधमें तात्पर्य्यके अभावसे शाब्द अर्थमें आर्थिकार्थकी अपेक्षा नहीं, विशिष्टार्थमें तात्पर्य्यके होनेसे। और प्रकृतमें तो स्वरूपमात्रमें तात्पर्य है, और वह तो आर्थिकार्थके द्वारत्व विना अनुपपन्न है । विशेषका तुह्मारे मतमें भान न होनेसे क्या पूर्वमें अज्ञात हुआ व्यावृत्तिसे ज्ञापनीय है, इति न च वाच्यम् क्यों ? अन्याविषयक और भ्रमविरोधि एवम्भूत जो स्वरूपज्ञान तादृश स्वरूपज्ञानको साध्यत्व होनेसे । एवम्=ऐसा होनेपर तो अन्याज्ञाने=अन्य–विषयक ज्ञानाभावमें व्यावृत्तिको द्वारत्व है नच=ऐसा नहीं है, क्यों ? अन्यज्ञानका जो प्रतिबन्ध तादृश प्रतिबन्धद्वारा शुद्धज्ञानमें ही द्वारत्वका सम्भव होनेसे, व्यावृत्तिज्ञानमें ही स्वरूपज्ञानको द्वारत्व रहो नच=ऐसा नहीं हो सकता है, क्यों ? तस्य=व्यावृत्तिज्ञानको अभिधाबलसे लब्ध जो विशिष्टज्ञान उस विशिष्टज्ञानसे ही उपपन्न होनेसे । प्राचीने=द्वारीभूतव्यावृत्तिज्ञानसे पूर्वमें होनेवाला जो ब्रह्माज्ञाननिवर्त्तक ब्रह्मापरोक्षज्ञान, उस ज्ञानके होनेपर तदज्ञान=ब्रह्माज्ञानका कार्य जो अन्य उस अन्यके भानका अयोग है=फलतः अन्यके भानके अयोगसे अन्यकी व्यावृत्ति न बनेगी, और सत्यादिपदबोधित असत्त्वादिकी व्यावृत्तिको अन्याज्ञानमें द्वारत्व कहनेपर

सत्यादिवाक्यको ब्रह्मज्ञानार्थत्व न बनेगा, यदि कहो कि हमको इष्टापत्ति है, अर्थात् सत्यादिवाक्यको ब्रह्मज्ञानार्थत्व मत रहो तहाँ कहते हैं–ब्रह्मप्रातिपदिकेति। ब्रह्मप्रातिपदिकार्थकी बुभुत्सा होनेपरभी सत्यादिवाक्यकी प्रवृत्ति है, इस स्वप्रक्रियाके साथ विरोधभी है इति नच वाच्यम्, क्यों ?

ब्रह्मापरोक्षज्ञानं हि तत्स्वरूपं वा वृत्तिरूपं वा, आद्ये नान्यभानानुपपत्तिः; तस्याविद्यानिवर्तकत्वाभावात्। वृत्तिरूपमप्यापातदर्शनं नाविद्यानिवर्त्तकम्; तस्यासाक्षात्कारत्वाद्वा, साक्षात्कारत्वेऽपि प्रतिबद्धत्वाद्वा। विचारजन्यन्तु फलीभूतं भवत्यविद्यानिवर्त्तकम्? नतु तत्प्राचीनमिति किमनुपपन्नम्? ननु–सत्यशब्देनासद्व्यावृत्तिद्वारा यद्बोधितं तदेव ज्ञानादिपदैरज्ञानादिव्यावृत्तिद्वारा बोध्यमिति पदान्तरवैफल्यम्; नच द्वारविकल्पः सत्यादिपदानां नित्यवच्छ्रवणात् एकस्मिन् प्रयोगे व्रीहियवयोरिवैकस्मिन् वाक्ये, सत्याद्यनेकपदोपादानायोगात्, अनृतत्वादिभ्रान्तिनिवृत्तिरूपदृष्टकार्याणां भिन्नत्वेन व्रीहियवादिवत् विकल्पप्रयोजकस्यैककार्यत्वस्याप्यभावाच्चेति–चेन्न; समुच्चितानां द्वारत्वेन सफलत्वात्। प्रधानस्य ब्रह्मणः प्रतिपत्त्युपयोगिनामानन्दादीनां भावरूपाणां आनन्दादयः प्रधानस्येत्यनेन स्थूलत्वादीनामभावस्वरूपाणां 'अक्षरधियां त्ववरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत्तदुक्तमित्यनेन च सूत्रेण निर्गुणब्रह्मप्रतिपत्तावेव सर्वशाखोपसंहारस्य प्रतिपादितत्वेन द्वारसमुच्चयस्यैवेष्टत्वात्।

ब्रह्मापरोक्षज्ञान ब्रह्मस्वरूपभूत ज्ञान है, या वृत्तिरूप ज्ञान है। आद्ये=आद्यपक्ष होनेपर अन्यभानकी अनुपपत्ति नहीं है, तस्य=स्वरूपभूतज्ञानको अविद्यानिवर्त्तकत्वके अभावसे। वृत्तिरूपभी आपातदर्शन अविद्याका निवर्त्तक नहीं=साधनसम्पत्तिशून्यविषयासक्तिसमन्वितान्तःकरणभूमिक जो क्षणिकज्ञान उत्पन्न होता है जिसे कि, आजकलके गुरुशून्यमन्दबुद्धिलोग ब्रह्मज्ञान समझते हैं और जिसके फलसे आजकल बहुतसे लोगोंमें धर्मविमुखता और अधर्मप्रवणता बढती जाती है, और जिसके फलसे अनभिज्ञलोग वेदान्तिओंको शुष्क और अकर्मण्य बतलाते हैं और जो आजकल वेषधारी आलसिओंका भोजनादिका साधन हो रहा है उसका नाम है,–आपातदर्शन; वह आपातदर्शन अविद्याका निवर्त्तक नहीं है अथवा उसको साक्षात्कारत्व न होनेसेही वह अविद्याका निवर्त्तक नहीं, अथवा साक्षात्कारत्व होनेपरभी प्रतिबद्धत्व है, इसलिए अविद्याका निवर्त्तक नहीं, विचारजन्यं तु=साधनसम्पत्तियुक्तविषयासक्तिशून्यान्तःकरणभूमिक विचारजन्य जो ज्ञान है वह तो अविद्याका निवर्त्तक है परन्तु वह प्राचीन नहीं है, अतः क्या अनुपपन्न है। शङ्कते नन्विति। सत्पदसे असत्की व्यावृत्तिद्वारा जो बोधित होता है वही ज्ञानादिपदोंसे अज्ञानादिकी व्यावृत्तिद्वारा बोधनीय है, अतः ज्ञानादिरूप पदान्तरोंका वैफल्य है। द्वारविकल्पः=असद्व्यावृत्ति अज्ञानव्यावृत्ति परिच्छिन्नव्यावृत्तिरूप जो ब्रह्मबोधनके द्वार हैं उन द्वारोंमें विकल्प है=कभी असद्व्यावृत्तिसेही ब्रह्मका बोधन होता है कभी

अज्ञानव्यावृत्तिसे ही इत्यादि विकल्प है, और विकल्पस्थलमें किसीका नैष्फल्य नहीं कहा जा सकता है, नच=विकल्प नहीं है; क्यों? सत्यादिपदोंका नित्यवन् श्रवण होनेसे=सत्यादिपदोंके साथ विकल्पबोधक वादि पदोंका उच्चारण नहीं हैं, अतः यहाँपर विकल्प नहीं हो सकता है, और जैसे एक प्रयोग=अनुष्ठानमें व्रीहि तथा यव इन दोनोंका उपादान नहीं होता है तैसे सत्यादिपदोंकाभी एकवाक्यमें उपादानके अयोगसे; और अनृतत्वादिकी जो भ्रान्ति तादृश भ्रान्तिकी निवृत्तिरूप जो कार्य्य उन कार्य्योंको भिन्नत्व होनेसे व्रीहियवादिवत् विकल्पप्रयोजक एककार्य्यत्वके अभावसेभी विकल्प नहीं बन सकता है; इति चेन्न; क्यों? समुचित व्यावृत्तिओंको द्वारत्व होनेसे पदान्तरोंके साफल्यसे। प्रधानभूत जो ब्रह्म है उस ब्रह्मकी प्रतिपत्तिमें उपयोगी जो भावरूप आनन्दादिक हैं उन भावरूप आनन्दादिकोंको 'आनन्दादयः प्रधानस्य वे० अ० ३। पा० ३। सू० ११' इस सूत्रसे प्रतिपादितत्व होनेसे तैसे ब्रह्मकी प्रतिपत्तिमें उपयोगि अभावरूप जो अस्थूलत्वादिक हैं उन्होंको 'अक्षरधियांत्वविरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत्तदुक्तम् वे० अ० ३। पा० ३। सू० ३३' इस सूत्रसे प्रतिपादितत्व होनेसे, तैसे निर्गुण ब्रह्मकी प्रतिपत्तिमें ही सर्वशाखोपसंहारको प्रतिपादितत्व होनेसे द्वारसमुच्चयकोही इष्टता होनेसे।

ननु—सगुणे ब्रह्मणि उपासनार्थं भवतु शाखान्तरीयगुणोपसंहारः; निर्गुणब्रह्मप्रतिपत्तौ तु किं शाखान्तरीयगुणोपसंहारेण? सत्यादिपदानां प्रत्येकं लक्षकत्वेन लक्ष्यब्रह्मबोधने प्रत्येकमेव समर्थत्वात्, सत्यादेश्च प्रत्येकं लक्षणत्वात्। नहि प्रकृष्टत्वादिकमिव सत्यत्वादिकमतिव्याप्तमिति—चेत् न; प्रकृष्टप्रकाशपदयोरिव सत्यादिपदानामपि कुमतप्राप्तातिव्याप्तिनिवृत्त्यर्थं समुच्चयापेक्षणात्। नह्यनृतव्यावृत्तिबोधनं विना 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' त्यत्र शून्यवादव्यावृत्तब्रह्मसिद्धिः। एवमेकैकपदाभावे सर्वत्रातिव्याप्तिरूहनीया। तथाच सत्यत्वादिकमनृतादिव्यावृत्तिद्वारा, शून्यवादादिव्यावृत्तब्रह्मब्रह्मसिद्धेरुपायः। नच—व्यावृत्तिः किं ब्रह्मविशेषणत्वेन बोध्या, स्वतन्त्रा वा, आद्ये सखण्डार्थत्वं द्वितीये ब्रह्मजिज्ञासुं प्रति तदुपदेशो असङ्गत इति—वाच्यम्;—व्यावृत्तिर्यद्यपि विशेषणतयैवार्थिकबोधे भासते तथापि न शाब्दबोधे सखण्डार्थत्वम्।

शङ्कते नन्विति। सगुण ब्रह्ममें उपासनाके लिए शाखान्तरीय गुणोंका उपसंहार हो, परन्तु निर्गुण जो ब्रह्म उसकी प्रतिपत्तिमें शाखान्तरीय जो गुण उन गुणोंके उपसंहारसे क्या है? सत्यादिपदोंमें प्रत्येकको लक्षकत्व होनेसे लक्ष्यरूप जो ब्रह्म उस ब्रह्मबोधनमें प्रत्येकको ही समर्थत्व होनेसे, और सत्यत्वादि प्रत्येकको लक्षणत्व होनेसे, क्योंकि प्रकृष्टत्वादिककी तरह सत्यत्वादिक अतिव्याप्त नहीं है, इति चेन्न; क्यों? प्रकृष्ट तथा प्रकाश इन दोनों पदोंकी नाईं सत्यादि पदोंकेभी कुमतप्राप्तातिव्याप्तिनिवृत्त्यर्थ समुच्चयके अपेक्षणसे। अनृतव्यावृत्तिके बोधन विना, विज्ञानमानन्दं ब्रह्म (बृ० ३।९।२३) यहाँपर शून्यवादसे व्यावृत्त ब्रह्मकी सिद्धि नहीं है। इस रीतिसे एक एक पदके अभावमें सर्वत्र अतिव्याप्ति ऊहनीय है, फलतः सत्यत्वादिक

अनृतादिकी व्यावृत्तिद्वारा शून्यवादादिसे व्यावृत्त जो ब्रह्म उस ब्रह्मकी सिद्धिके उपाय हैं। शङ्कते नचेति। सत्यादि पदोंसे व्यावृत्ति ब्रह्मविशेषणत्वेन बोध्य है या स्वतन्त्रा, आद्ये=आदिम पक्षमें सखण्डार्थत्व है, द्वितीयमें ब्रह्मजिज्ञासुके प्रति व्यावृत्तिका उपदेश असङ्गत है, इति नच वाच्यम्; क्योंकि व्यावृत्ति यद्यपि विशेषणरूपसे ही आर्थिकबोधमें भासित होती है तथापि शाब्दबोधमें सखण्डार्थत्व नहीं है।

यश्चार्थादर्थो न स चोदनार्थ इति न्यायात्। तदुक्तंवार्त्तिककारैः—'मानान्तरादपोहस्तु न शाब्दस्तेन स स्मृतः। इति। नचार्थिकेनापि विशेषणेन ब्रह्मणः सखण्डत्वापत्तिः; निर्धर्मकत्वादिश्रुतेर्विशेषणस्य धर्म्यसमानसत्ताकत्वेन सखण्डत्वात्वप्रयोजकत्वात्। नच—अनन्तशब्देनान्तवद्व्यावृत्तेस्साक्षादेव बोधान्न तस्य आर्थिकत्वम् तथाचानन्तपदस्य सखण्डार्थत्वं स्यादिति—वाच्यम् यद्यपि तत्रानन्तोऽन्तवद्वस्तुव्यावृत्त्यैव विशेषणम्। स्वार्थार्पणप्रणाड्या तु परिशिष्टौ विशेषणम्॥ इति तैत्तिरीयवार्तिकोक्तदिशा विभिन्नपदानां स्वार्थार्पणप्रणाडिकया अर्थादितरनिवृत्तिबोधकत्वम्; निषेधपदानान्तु साक्षादिति स्थितं; तथापि द्वारभूते ज्ञाने सखण्डार्थत्वेऽपि परमतात्पर्यविषयज्ञानेनाखण्डार्थत्वव्याघात इत्यसकृदुक्तम्। एतदेवोक्तमानन्दबोधाचार्य्यैः—लक्ष्यार्थभेदाभावेऽपि व्यवच्छेद्यविभेदतः। विज्ञानानन्दपदयोः पर्य्यायव्यर्थते नहि॥ इति।

जो अर्थतः अर्थ प्राप्त होता है वह चोदनार्थ नहीं है इस न्यायसे। सो कहा है वार्तिककारने, अपोहस्तु=विरोधिभूत अनृतादिकी व्यावृत्ति तो मानान्तरात्=अनुपपत्तिलक्षण प्रमाणान्तरसे ज्ञात होती है; तेन=अतः, सः=अपोह शाब्द नहीं माना जाता है। आर्थिक विशेषणसेभी ब्रह्मको सखण्डार्थत्वकी आपत्ति है, नच=नहीं है, क्यों? निर्धर्मकत्वादिश्रुतिसे विशेषणको धर्मिसत्तासमानसत्ताक न होनेसे सखण्डत्वके प्रति अप्रयोजकत्व होनेसे। अनन्त शब्दसे अन्तवत्की व्यावृत्तिको साक्षात् ही बोधन होनेसे, तस्य=उक्त व्यावृत्तिरूप विशेषणको आर्थिकत्व नहीं है फलतः अनन्तपदको सखण्डार्थत्व होगा, इति नच वाच्यम्, क्योंकि यद्यपि तत्र=सत्यादि तीनों पदोंमें अनन्तः=अनन्त शब्दका अर्थ अन्तवद्वस्तुकी व्यावृत्तिसे ही विशेषण है, परिशिष्टौ=सत्य ज्ञान ये दोनों शब्द तो स्वार्थार्पणप्रणाडिकारूपव्यवधानसे विशेषण हैं=जैसे अनन्त कहनेसे अन्तका साक्षात् अभाव प्रतीत होता है, तैसे सत्य तथा ज्ञानपदसे अनृन तथा जडकी साक्षाद् व्यावृत्ति नहीं प्रतीत होती है किन्तु स्वार्थबोधद्वारा अनृतादिकी व्यावृत्ति प्रतीत होती है, इस तैत्तिरीय वार्तिकमें बतलाये प्रकारसे विभिन्नपदोंको स्वार्थबोधद्वारा अर्थात् इतरनिवृत्तिबोधकत्व है; और निषेधपदोंको साक्षात् इतरनिवृत्तिबोधकत्व है यह स्थित है; तथापि द्वारभूत ज्ञानमें सखण्डार्थत्व होनेपरभी परमतात्पर्यविषयज्ञानमें अखण्डार्थत्वका व्याघात नहीं है, यह कई बार कहा जा चुका है। यही आनन्दबोधाचार्यने न्यायमकरन्दमें कहा है,—लक्ष्यार्थमें भेदका अभाव होनेपरभी व्यवच्छेद्यके=व्यावर्त्तनीयके भेदसे विज्ञान पद तथा आनन्द पद इन दोनोंमें पर्यायता तथा व्यर्थता नहीं है।

एवं पदे लक्षणेतिपक्षे समाहितम् । केचित्त्वत्र वाक्ये लक्षणामाहुः न पदे । तथाहि–‘ गम्भीरायां नद्यां घोष ’ इत्यत्र गम्भीरनद्योः परस्परमन्वयबोधानन्तरं विशिष्टार्थसम्बन्धितीरं लक्ष्यते तथा प्रकृते परस्परविशिष्टार्थबोधानन्तरं तत्सम्बध्यखण्डं लक्ष्यते तथाच न पदवैयर्थ्यम् नच तत्रापि प्रत्येकं लक्षणा, तथासति गम्भीरनदीतीरादिलाभेन विशिष्टतीरबुद्धिर्न स्यात् । नच तत्र गम्भीरनदीपदयोरिव इह सत्यादिपदानां परस्परमन्वयबोधकत्वं त्वन्मते नास्तीति–वाच्यम्, एकस्मिन् ब्रह्मणि द्वारीभूतस्य परस्परार्थान्वयबोधस्य सत्यादिपदैः मिलित्वा जननात्, उत्तरकाले एव लक्षणया अखण्डबोधस्याभ्युपगमात् । नच–‘ सत्यं ज्ञानं; विज्ञानमानन्दमित्यादौ अन्योन्यानपेक्षाणां सत्यादिपदानां ब्रह्मलक्षकत्वदर्शनात्, कथं गम्भीरायामित्यादितुल्यन्यायतेति–वाच्यम् यत्र वस्तुगत्या गम्भीरनद्यभिप्रायेणैव नद्यां घोष इत्युक्तं तत्र परस्परनिरपेक्षलक्षकत्वस्य गम्भीरायामित्युक्तौ च मिलितलक्षकत्वस्य दर्शनात् गुणोपसंहारन्यायेन द्वारसमुच्चयस्य स्थापितत्वाच्च ।

इस रीतिसे पदमें लक्षणा है, इस पक्षमें प्रकृत=अखण्डार्थत्व समाहित हुआ । और कोई लोग तो यहाँ वाक्यमें लक्षणा कहते हैं पदमें नहीं । तथाहि–जैसे ‘ गम्भीरायां नद्यां घोषः ’ यहाँपर गम्भीर तथा नदी इन दोनोंके परस्पर अन्वयबोधके बाद विशिष्टार्थ=गम्भीरनदीरूपविशिष्टार्थसम्बन्धि तीर लक्षित होता है तैसे प्रकृतमें परस्पर विशिष्टार्थबोधके बाद तत्सम्बन्धि=विशिष्टार्थसम्बन्धि अखण्ड लक्षित होता है, फलतः पदोंका वैयर्थ्य नहीं है । तत्रापि=‘ गम्भीरायां नद्यां घोषः ’ यहाँपरभी प्रत्येकम्=प्रत्येक पदकी लक्षणा है; नच=नहीं है, क्यों ? तथा सति=प्रत्येककी लक्षणा होनेपर गम्भीरनदीतीरादिका लाभ होनेसे विशिष्टतीरबुद्धि न होगी । शङ्कते नचेति । तत्र=उक्त वाक्यमें गम्भीर तथा नदी इन दोनों पदोंको जैसे परस्पर अन्वयबोधकत्व है तैसे तुम्हारे मतमें सत्यादिपदोंको परस्परान्वयबोधकत्व नहीं है इति नच वाच्यम्, क्यों ? एक ब्रह्ममें द्वारीभूत जो परस्परान्वयबोध तादृश अन्वयबोधको सत्यादिपदोंसे मिलकर उत्पन्न करनेसे, उक्तविधबोधसे उत्तरकालमेंही लक्षणासे अखण्डबोधका अभ्युपगम होनेसे । सत्यं ज्ञानं; (तै० २।११) विज्ञानमानन्दं; (बृ० ३।९।२८) इत्यादिमें परस्पर अपेक्षासे रहित जो सत्यादिपद हैं तादृश सत्यादिपदोंको ब्रह्मलक्षकत्व देखनेसे ‘ गम्भीरायाम् ’ इत्यादिके साथ तुल्यन्यायता उन्होंको कैसे है इति नच वाच्यम्, क्यों ? जहाँपर वस्तुगतिसे गम्भीर नदीके अभिप्रायसेही ‘ नदीमें घोष है ’ यह कहा है, वहाँपर परस्पर निरपेक्ष लक्षकत्वको और ‘ गम्भीरायाम् ’ ऐसी उक्ति होनेपर मिलितके लक्ष्यकत्वके देखनेसे, और गुणोपसंहारन्यायसे द्वारसमुच्चयको स्थापितत्व होनेसेभी उक्त दोष नहीं है ।

नच—परस्परपदसाहित्येन तत्र गम्भीरनदीसम्बन्धि तीरं लक्ष्यते, अन्यथा त्वेकैकसम्बन्धि, प्रकृते त्वधिकलाभो न पदान्तरेणापीति–वाच्यम् । तत्रापि युगपद्वृत्तिद्व-

यविरोधापत्त्या गम्भीरनदीतीरत्वेन लक्षणानभ्युपगमात्, वस्तुगत्या विशिष्टसम्बन्धिनः प्रत्येकपदादपि लाभः। अथ विशिष्टबुद्धिद्वारत्वाद्वारत्वाभ्यां विशेषः—प्रकृतेऽपि स तुल्य एव। ननु—गम्भीरायामित्यत्रापि न मिलिते लक्षणा किन्तु नदीपदे एव; परस्परसाहित्येन विशिष्टबोधानन्तरं स्वज्ञाप्यविशिष्टसम्बन्धिनि लक्षणासम्भवात् स्वज्ञाप्यसम्बन्ध एव हि लक्षणा लाघवात् न तु तद्विशेषः शक्यसम्बन्धः गौरवात् तथाच पदद्वये लक्षणा लक्षणाद्वयं वा न युक्तम् एवञ्च वृत्तेः पदवृत्तित्वनियमोऽपि सङ्गच्छते इति चेत् नैतत्सारम् स्वज्ञाप्यसम्बधो हि लक्षणेति त्वयोच्यते।

परस्पर पदोंके साहित्यसे तत्र='गम्भीरायाम्' इत्यादि वाक्यमें गम्भीरनदीसम्बन्धि तीर लक्षित होता है, अन्यथा=पदोंका साहित्य न होनेपर एक एकका सम्बन्धि तीर लक्षित होता है; और प्रकृते=सत्यादि वाक्यमें तो पदान्तरसेभी अधिकका लाभ नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्यों? तत्रापि=उक्त स्थलमेंभी एक कालमें वृत्तिद्वयके विरोधकी आपत्तिसे=विशिष्टतीरत्वरूपसे लक्षणाके स्वीकारसे और गम्भीरत्वादिसे शक्त्यधीन बोधके स्वीकारसे वृत्तिद्वयकी युगपत् प्राप्ति है, उस प्राप्तिसे गम्भीरनदीतीरत्वेन लक्षणा नहीं स्वीकार की जा सकती है और वस्तुगत्या विशिष्टसम्बन्धितीरका प्रत्येक पदसेभी लाभ होनेसे। यदि यों कहो कि विशिष्टबुद्धिके द्वारत्व तथा अद्वारत्व इन दोनोंसे विशेष है=गम्भीरनदीरूपविशिष्टकी धी 'गम्भीरायाम्' इस पदका सत्त्व होनेपर तीरत्वेन तीरविशेषधीमें द्वार है, और 'गम्भीरायाम्' इस पदके न होनेपर गम्भीरनदीरूपविशिष्टकी धी उक्तधीकी द्वार नहीं है, यह विशेष है तो प्रकृतमेंभी यह विशेष तुल्य ही है=दृष्टान्तमें जैसे गम्भीर पदके रहनेपर कुछ अधिक लाभ है, तैसे दार्ष्टान्तिकमेंभी शून्यवादीसे व्यावृत्त ब्रह्मकी सिद्धिसे अधिक लाभ है यह कहा ही है। शङ्कते नन्विति। 'गम्भीरायाम्' इत्यादिवाक्यमेंभी मिलितमें लक्षणा नहीं है किन्तु पदमें ही लक्षणा है; परस्परसाहित्येन=गम्भीर तथा नदी इन दोनोंके परस्परसाहित्यसे विशिष्टबोधानन्तरम्=गम्भीर तथा नदी इन दोनों पदोंसे विशिष्टबोधके बाद स्वज्ञाप्यविशिष्टसम्बन्धिनि=विशिष्टरूप जो वाक्यार्थ है, वह जैसे वाक्यसे ज्ञाप्य होता है तैसे पदसेभी ज्ञाप्य होता है, तथाच स्वपदसे नदीशब्दका ग्रहण है तज्ज्ञाप्य तो विशिष्ट गम्भीरत्वविशिष्टनदीरूप विशिष्ट उस विशिष्टका सम्बन्धि तीर है तादृशतीरमें नदीपदकी ही लक्षणा है मिलितकी नहीं। ननु—पदकोही लक्षकत्व है, इस नियमसे स्वशक्यसम्बन्धका नाम ही लक्षणा बन सकता है, और वाक्यार्थ तो स्वका शक्य नहीं है, वहाँ कहते हैं—लाघवसे स्वज्ञाप्यसम्बन्धका नाम ही लक्षणा है तद्विशेषः=ज्ञाप्यसम्बन्धका विशेष शक्यसम्बन्ध नहीं, गौरव होनेसे; फलतः पदद्वयमें लक्षणा या लक्षणाद्वय ये दोनों पक्ष युक्त नहीं है, और ऐसा होनेपर वृत्तिको पदवृत्तित्वका नियमभी सङ्गत होता है; इति चेत्=ऐसा यदि कहते हो तो यह कथन सारवत् नहीं है, क्यों? स्वज्ञाप्यसम्बन्धका नाम लक्षणा है, ऐसा तुम से कहा जाता है।

तच्च ज्ञाप्यं प्रकृते विशिष्टम्, तज्ज्ञापकत्वं चोभयो. साधारणमिति कथं नदीपदे एव लक्षणा ? न गम्भीरपदे; विनिगमकाभावात्। नच—गाम्भीर्येण सह तीरस्य परम्परया सम्बन्धः; नद्याः साक्षात्सम्बन्ध एव विनिगमक इति—वाच्यम् 'निम्नं गभीरं गम्भीरमितिकोशात् गम्भीरपदस्य निम्नरूपनदीद्रव्यवाचित्वेन साक्षात्सम्बन्धास्यापि साधारणत्वात्। नच—विशेषणविभक्तेः साधुत्वार्थकत्वात् गम्भीरपदलक्षणायां विभक्त्यर्थानन्वय इति—वाच्यम्; विशिष्टबोधसमये गम्भीरपदस्य विशेषणपदत्वेऽपि—विशिष्टसम्बन्धिलक्षणासमये विशेष्यपदत्वात्। विशेषणविभक्तेः साधुत्वार्थकत्वमित्यप्यसम्बद्धम्, अभेदार्थकत्वस्य नैयायिकैः प्रत्येकमन्वयस्य च मीमांसकैररुणाधिकरणसिद्धस्य चाभ्युपगमात्। एवमन्यदपि वाक्यलक्षणोदाहरणमनुसन्धेयम्, गच्छ गच्छसि चेत् कान्तेत्यादि विषं भुङ्क्ष्वेत्यादि च।

और वह ज्ञाप्य तो प्रकृतमें विशिष्ट है, और उस विशिष्टका ज्ञापकत्व दोनों पदोंमें साधारण है अतः नदी पदमें ही लक्षणा है गम्भीर पदमें नहीं यह कैसे ? विनिगमकके अभावसे। गम्भीरपदबोध्य गाम्भीर्य्यका तीरके साथ परम्परा सम्बन्ध है=स्वाश्रयनदीसंयोगरूप परम्परा सम्बन्ध है और नदीपदबोध्यनदीका तीरके साथ साक्षात् संयोगरूप सम्बन्ध है, यही नदीपदके लक्षकत्वमें विनिगमक है, नच=यह विनिगमक नहीं हो सकता है, क्यों ? 'निम्नं गभीरं गम्भीरं' (अमर० का० १ वर्ग १० श्लो० १५) इस कोशरूपप्रमाणसे गम्भीरपदको नदीरूप जो द्रव्य तादृशद्रव्यवाचित्व होनेसे साक्षात्सम्बन्धकोभी नदीपदके साधारण होनेसे। विशेषणविभक्तेः= विशेषणवाचकपदोत्तरविभक्तिको साधुत्वार्थकता होनेसे गम्भीरपदकी लक्षणा होनेपर विभक्त्यर्थका अनन्वय होगा,=नदीपदोत्तर जो विभक्ति है उस विभक्तिका गम्भीर पदके लक्ष्यमें अनन्वय होगा, क्योंकि प्रत्यय स्वप्रकृत्यर्थसे अन्वित जो स्वार्थ तादृश स्वार्थको बोधन करते हैं, यहाँपर तीर स्वप्रकृत्यर्थ नहीं है क्योंकि आपने गम्भीरपदकी लक्षणा तीरमें मानी है, यह भाव है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? विशिष्टविषयक बोधसमयमें गम्भीरपदको विशेषणपदत्व होनेपरभी विशिष्टसम्बन्धिलक्षणासमयमें विशेष्यपदत्व होनेसे। और विशेषणविभक्तिको साधुत्वार्थकत्व है, यह कथनभी असम्बद्ध है क्यों ? नैयायिकोंसे अभेदार्थकत्वका और मीमांसकोंसे अरुणाधिकरणसिद्ध प्रत्येकके साथ अन्वयका अभ्युपगम होनेसे। अरुणाधिकरण पूर्वमीमांसके तृतीयाध्यायके प्रथमपादमें देखना चाहिए। इस रीतिसे—गच्छ गच्छसि चेत् कान्त पन्थानः सन्तु ते शिवाः। भूयान्ममापि तत्रैव जन्म यत्र गतो भवान् इत्यादि, और 'विषं भुङ्क्ष्व' इत्यादि अन्यभी वाक्यलक्षणाके उदाहरण अनुसन्धेय हैं।

ननु—अत्र जन्मना मरणानुमानम्, तेन च तत्साधनीभूतायाः गतेरकर्त्तव्यतानुमानमित्यनुमानपरम्परैव, न लक्षणा अनन्यलभ्यस्यैव शब्दार्थत्वात्। नहि धूमोऽस्तीति वाक्यं वन्हिलक्षकम्, विषमित्यादावपि विषभोजनस्येष्टसाधनतोक्त्या शत्रुगृहान्नभोजन-

स्यानिष्टसाधनत्वमाक्षिप्यते। यद्वा आप्तस्य प्रमाणविरुद्धोपदेष्टृत्वेन कोपोऽनुमीयते तत्र च प्रसक्तशत्रुगृहान्नभोजनस्य हेतुत्वं कल्पयित्वा तत्राकर्त्तव्यतानुमानम्, न लक्षणेऽति–चेत्, नैतत्साधु; जन्मनामरणाक्षेपेऽपि तन्मरणे गमनस्य हेतुत्वानाक्षेपात्, शतवर्षानन्तरं जरादिनाऽपि तदुपपत्तेः । तथाच प्रियामरणे हेतुत्वं गमनस्य न लक्षणां विनाऽवगन्तुं शक्यम्। नापि प्रियामरणहेतुत्वेन गमनस्याकर्त्तव्यतानुमानम्; प्रियामरणहेतोरपि तत्त्वेनाज्ञानदशायां गुरुनिदेशाद्वा आत्मत्राणार्थं वा कुलापकीर्तिपरिहारार्थं वा कर्तव्यत्वदर्शनेन व्यभिचारात् तथाच गमनस्य प्रियामरणहेतुत्वं तादृशस्य चाकर्त्तव्यम् इत्युभयमपि लक्षणाधीनम्, जन्मनिर्देशस्य च प्रकृतेऽनुपयोगात् तेन प्रकृतोपयोगिन्यगमने तात्पर्यं ज्ञाप्यते समुदायस्य तथाच समुदाये एव लक्षणा।

शङ्कते नन्विति। अत्र=‘गच्छ गच्छसि’ इत्यादि वाक्यस्थलमें जन्मसे मरणका अनुमान होता है=मद्गमनारम्भोत्तरं प्रतीयमानमेतस्या जन्म, पूर्वशरीरप्राणवियोगरूपमरणपूर्वकम्, पूर्वशरीरप्राणवियोगेऽसति शरीरग्रहणासमर्थस्य शरीरग्रहणत्वात् सम्मतवत् इत्याकारक अनुमान होता है, तेन च=अनुमित मरणसे गतिके अकर्त्तव्यताका अनुमान होता है; प्रस्तुता गतिः, मया न कर्त्तव्या प्रियामरणहेतुत्वात्, प्रियां प्रति कठोरकुठारप्रहारवत् ऐसा अनुमान होता है इस रीतिसे अनुमानोंकी परम्परा ही यहाँपर है वाक्यमें लक्षणा नहीं अन्यप्रकारसे अज्ञातार्थको ही शब्दवृत्तिलभ्यार्थत्व होनेसे। धूमोऽस्ति यह वाक्य वह्निका लक्षक नहीं है=क्योंकि यहाँपर अनुमानरूपप्रकारान्तरसे ही वह्निरूप अर्थका ज्ञान हो सकता है। ‘विषं भुङ्क्ष्व’ यहाँपरभी विषभोजनको इष्ट साधनताकी उक्तिसे शत्रुगृहमें अन्नभोजनको अनिष्टसाधनत्व आक्षिप्त होता है=‘विषं भुङ्क्ष्व’ यह वाक्य शत्रुगृहमें भोजनकी प्रसक्ति होनेपर उच्यमान हुआ सावधारण है–विष भोजन ही बलवदनिष्टका साधन होकर इष्टका साधन है न कि शत्रुगृह भोजन इत्यर्थक यह वाक्य है, परन्तु एतादृशार्थकत्व इस वाक्यका शत्रुगृहभोजनमें बलवदनिष्टसाधनत्वके विना अनुपपन्न है। इस रीतिसे अनिष्टसाधनत्व आक्षिप्त होता है अथ च प्रमाणविरुद्धार्थोपदेष्टृत्वरूप हेतुसे आप्तनिष्ठ कोप अनुमित होता है तत्र च=और कोपमें प्रसक्त शत्रुगृहान्नभोजनको हेतुता कल्पनकर तत्र=उक्त भोजनमें अकर्त्तव्यताका अनुमान होता है, यहाँपर लक्षणा नहीं है इति चेत् नैतत्साधु,–क्यों ? जन्मसे मरणका आक्षेप होनेपरभी उस मरणमें गमनके हेतुत्वके अनाक्षेपसे=जन्मसे मरणका उक्तानुमान हो भी सकता है परन्तु मरणमें गमनकी हेतुताका अनुमान नहीं बन सकता है=मेरे गमनसे ही इसका मरण होगा, यह बात अनुमानसे नहीं जानी जा सकती है, क्यों ? शतवर्षके बाद जरादिसेभी मरणकी उपपत्तिसे। प्रियाके मरणमें गमनका हेतुत्व लक्षणाके विना जाननेके लिए शक्य नहीं है तैसे प्रियामरण हेतुत्वेन गमनकी अकर्त्तव्यताका अनुमानभी नहीं हो सकता है, क्यों ? प्रियामरणका हेतु जो गमन उस गमनमेंभी तत्त्वेन=प्रियामरणहेतुत्वेन अज्ञानदशामें गुरुकी आज्ञासे या आत्मरक्षणके लिए

अथवा कुलकी अपकीर्तिके परिहारके लिए कर्त्तव्यत्वके देखनेसे व्यभिचार होनेसे । तथाच गमनका प्रियामरणहेतुत्व और तादृशस्य=प्रियामरणहेतुभूतगमनका अकर्त्तव्यत्व ये दोनों लक्षणाधीन है । और जन्मनिर्देशका प्रकृतमें=प्रियावाक्यमें अनुपयोग होनेसे तेन=जन्मनिर्देशसे प्रकृतोपयोगि जो अगमन उस अगमनमें समुदायका तात्पर्य्य ज्ञापित होता है फलतः समुदायमें ही लक्षणा है ।

न प्रत्येकपदे, प्रत्येकं तात्पर्यज्ञापकाभावात् । तथाच नात्रानुमितिपरम्परा नवा प्रत्येकपदे लक्षणा । एवं विषं भुंक्ष्वेत्यत्रापि विषभोजनेष्टसाधनत्वेन शत्रुगृहान्नभोजनानिष्टसाधनत्वं नाक्षेप्तुं शक्यते व्यधिकरणत्वात्, तेन विनाप्युभयोरपीष्टसाधनतयोपपत्तिसंभवाच्च । नहि येन केनचिद्यत्किञ्चिदाक्षिप्यते; किन्तु अनुपपद्यमानेनोपपादकम् । नाप्याप्तत्वेसति प्रमाणविरुद्धोपदेष्टृत्वेन कोपानुमानम् कोपेन तद्धेतौ शत्रुगृहान्नभोजने अकर्त्तव्यतानुमानम् । अप्राप्तस्यापि पित्रादेर्भ्रमादिना विनापि कोपं प्रमाणविरुद्धोपदेष्टृत्वदर्शनेन, व्यभिचारादाप्तकोपहेतोरपि भ्रमादिना प्रियामरणहेतोरविकर्त्तव्यत्वदर्शनेन तत्रापि व्यभिचाराच्च । तथाच अप्रसक्तप्रतिपादनेन प्रसक्तवारणे तात्पर्य्यं ज्ञात्वा-तेनाकल्पितपदविभागे समुदाय एव लक्षणां कल्पयति, नतु प्रत्येकपदे. तत्र तत्र विशिष्य तात्पर्यज्ञापकाभावात्, तथाच पदार्थतात्पर्यान्वयानुपपत्तिभ्यां लक्षणा पदे वाक्यार्थे तद्वायानुपपत्त्या लक्षणा वाक्ये । वाक्यार्थान्वयानुपपत्त्यनिवन्धनत्वं च लक्षणायाः पदवृत्तित्वसाधने उपाधिरित्यवधेयम् ; ।

प्रत्येक पदमें नहीं, प्रत्येकम्=प्रत्येकको तात्पर्यका ज्ञापकत्व न होनेसे । फलतः प्रकृतस्थलमें अनुमितिओंकी परम्परा नहीं है, और प्रत्येक पदकी लक्षणाभी नहीं, इस रीतिसे 'विषको खा' यहांपरभी विषभोजननिष्ठ इष्टसाधनत्वसे शत्रुगृहान्नभोजननिष्ठ अनिष्ट साधनत्व आक्षिप्त करनेके लिए शक्य नहीं है, क्यों ? हेतुको व्यधिकरणत्व होनेसे । और तेन विनापि=उक्त आक्षेपके विनाभी उभयोरपि=विषभक्षण तथा शत्रुगृहान्नभोजन इन दोनोंकोभी इष्टसाधनतया उपपत्तिके सम्भवसेभी=विषभक्षणको तथा शत्रुगृहमें भोजनकोभी इष्टसाधनता वनसकती है=जहाँपर विषभक्षण न कहनेपर और जीवित रहनेपर राजदैवादिके उपघातसे मेरा वडा भारी अनिष्ट होनेवाला है, उस अनिष्टको निश्चित कर आपने यह वाक्य कहा है-ऐसा निश्चय होता है वहाँपर विषभक्षणसमानाधिकरणवलवत्तरानिष्ट-साधनीभूताभावप्रतियोगित्वेन विषभक्षणमें इष्ट साधनत्व है-विषभक्षणके समानाधिकरण जो वलवत्तरानिष्ट=राजादिके उपघातसे आनेवाला अनिष्ट उस अनिष्टका साधनीभूत जो अभाव=विषभक्षणाभाव तत्प्रतियोगित्व विषभक्षणमें है=अर्थात् अनिष्टसाधनकोभी वलवत्तरानिष्टसाधनीभूताभावप्रतियोगित्वेन इष्टसाधनत्व वन सकता है जैसे कि-श्रमरूपानिष्टके साधन व्यायामको वलवत्तरानिष्टसाधनीभूताभावप्रतियोगित्वेन इष्टसाधनत्व होता है=यहाँपर

बलवत्तरानिष्टसे=व्यायामके न करनेसे शरीरमें होनेवाले कितनेही रोगोंका ग्रहण है, तत्साधनीभूताभाव=व्यायामका अभाव तत्प्रतियोगित्व व्यायाममें है। तैसे शत्रुगृहमें भोजनभी शत्रुसन्तोपद्वारा शत्रुत्वोच्छेदरूप इष्टका साधन है, अतएव बलवदनिष्टका अजनक है यह निश्चय करनेके लिए शक्य होनेसे व्यधिकरण जो अनिष्टसाधनत्व वह उपापादकत्वेन कल्प्य नहीं हो सकता है। क्योंकि जिस किससे यत्किञ्चित् आक्षिप्त नहीं होता है। किन्तु अनुपपद्यमानसे उपपादक आक्षिप्त होता है। आप्तत्वके होते हुए प्रमाणविरुद्धोपदेष्टृत्वेन कोपका अनुमान और तादृश कोपसे कोपहेतुशत्रुगृहान्नभोजनमें अकर्त्तव्यतानुमानभी नहीं बन सकता है, क्यों? पित्रादिरूप आप्तकोंही कोपके विनाही भ्रमादिसे प्रमाणविरुद्धोपदेष्टृत्वके देखनेसे व्यभिचार होनेसे, और आप्तकोपरूप हेतुकाभी भ्रमादिसे प्रियामरण हेतुकी नाईं कर्त्तव्यत्व देखनेसे तत्रापि=आप्तकोपरूप हेतुमेंभी व्यभिचारसे। तथा च अप्रसक्तप्रतिपादनेन=अप्रसक्त जो विषभोजन उसके प्रतिपादनसे प्रसक्तवारणे=प्रसक्त जो शत्रुगृहमें भोजन उसके वारणमें तात्पर्य्यको जानकर तेन उक्तविधतात्पर्य्यसे नहीं कल्पित है पदविभाग जिसमें एवम्भूत जो समुदाय उस समुदायमेंही लक्षणाको कल्पित करता है, प्रत्येक पदमें नहीं क्यों? तत्र तत्र=तिसतिस पदमें विशेषरूपसे तात्पर्य्यके ज्ञापकके अभावसे। तथा च पदार्थमें जो तात्पर्य्यानुपत्ति तथा अन्वयानुपपत्ति इन दोनोंसे पदमें लक्षणा होती है, और वाक्यार्थमें उक्त दोनों अनुपपत्तिओंसे वाक्यमें लक्षणा होती है। और लक्षणाके पदवृत्तित्वसाधनमें=लक्षणा पदकीही वृत्ति है न कि वाक्यकी इस अर्थके साधनमें वाक्यार्थान्वयानुपपत्ति–अनिबन्धनत्व उपाधि है=लक्षणा, पदवृत्तिः वृत्तित्वात् शक्तिवत्, यहाँपर वाक्यार्थान्वयानुपपत्ति–अनिबन्धनत्व उपाधि है=लक्षणा, पदवृत्तिः, वृत्तित्वात् शक्तिवत्, यहाँपर वाक्यार्थान्वयानुपपत्ति–अनिबन्धनत्व उपाधि है. यह अनुसन्धेय है।

एवमेवार्धमन्तरर्धंबहिरित्यादौ लोके अर्धमन्तर्वेद्यर्धंबहिर्वेदीति वेदेऽपि वाक्य एव लक्षणा। नच तत्राप्यर्धस्यान्तरत्त्वे सत्यर्धस्य बहिष्ट्वेनान्तरालानुमानम् न लक्षणेति–वाच्यम्; छिन्ने गृहे अन्तरालराहित्येऽपि तदुद्वयदर्शनेन व्यभिचारात्, यथाकथंचिदनुमानसम्भवे वा सर्वत्र शब्दप्रमाणोच्छेदापाताच्च। एवञ्च ब्रह्मजिज्ञासापदेन विचारो लक्ष्यत इति विवरणकारोक्तं यज्ञायुधपदेन यजमानो लक्ष्यते इति सङ्क्षेपशारीरकोक्तं च वाक्यलक्षणोपपन्नम्; ब्रह्मजिज्ञासायज्ञायुधशब्दयोः सुबन्तत्वलक्षणपदत्वेऽपि शक्तत्वलक्षणपदत्वाभावेन शक्य–सम्बन्धरूपाया लक्षणाया अयोगात्, स्वज्ञाप्यसम्बन्धरूपा तु लक्षणा यौगिकपदसमुदायेऽपि वाक्यस्थानीये नानुपपन्ना। एवं वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता इत्यादौ अर्थवादेऽपि प्राशस्त्यप्रतिपत्तये वाक्ये एव लक्षणा अङ्गीकार्या प्रत्येकपदात्तदनुपपत्तेः।

एवम्=इस रीतिसे गृहमें चैत्रका अर्ध अन्तर् है, और अर्ध बहिर् है इस लौकिकप्रयोगमें, पूर्वका अर्ध अन्तर्वेदि है और अर्ध बहिर्वेदि है इस वैदिक प्रयोगमेंभी वाक्यमें ही लक्षणा

है=यहाँपर आद्यस्थलमें तो गृहके जिस प्रदेशमें स्थित चैत्रका आधा गृहके भीतर हो और आधा गृहके वाहर हो उस प्रदेशमें लक्षणा है, द्वितीयस्थलमेंभी जिस देशमें मीयमान यूपका आधा वेदिके भीतरमें हो और आधा वेदिके वाहर हो उस देशमें लक्षणा है तत्रापि=उक्त-स्थलमेंभी अर्धस्य=अर्धावच्छेदेन अन्तस्त्वे=गृहान्तर्वर्तित्व होकर अर्धस्य=अर्धान्तरावच्छेदेन वहिष्ट्वेन=वहिःस्थितत्वेन अन्तराल=गृहकेभीतर और वाहरके जो देश हैं उन देशोंके मध्यमें देशका अनुमान है, लक्षणा नहीं इति नच वाच्यम् क्यों? छिन्ने गृहे=जिसघरमें भित्ति गिरगई है और छतभी टूट गई है तादृश घरमें तद्देशावच्छेदेन–चैत्रके होनेपर अन्तरालके न होनेपरभी तद्द्वयदर्शनेन=अन्तर् तथा वहिर् इन दोनोंके देखनेसे व्यभिचार होनेसे। और जिस किस रीतिसे अनुमानका सम्भव होनेपर तो शब्द–प्रमाणके उच्छेदका प्रसङ्ग सार्वत्रिक हो जायगा,। और इस रीतिसे 'ब्रह्मजिज्ञासापदसे विचार लक्षित होता है' यह विवरणोक्त और यज्ञायुध पदसे यजमान लक्षित होता है, यह सङ्क्षेप शारीरकोक्त, लक्षणासे उपपन्न होता है। ब्रह्मजिज्ञासा और यज्ञायुध इन दोनों शब्दोंमें सुवन्तत्व लक्षण पदत्वके रहनेपरभी शक्तत्वलक्षण पदत्वके अभावसे शक्यसम्बन्धरूप लक्षणाके अयोगसे। और स्वज्ञाप्यसम्बन्धरूपा लक्षणा तो वाक्यस्थानीययौगिकपदसमुदायमेंभी अनुपपन्ना नहीं है। इसी रीतिसे वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता, इत्यादि अर्थवादमेंभी प्राशस्त्यके ज्ञानके लिए वाक्यमें लक्षणा अङ्गीकार्य है प्रत्येक-पदसे प्राशस्त्यप्रतिपत्तिकी अनुपपत्तिसे।

नच—तत्र। कर्मणि क्षिप्रदेवताप्रसादहेतुत्वरूपतत्पदार्थसम्बन्धवोधकत्वमेव, नतु तदन्यप्राशस्त्यलक्षकत्वमिति–वाच्यम्; पदार्थमात्रसंसर्गवोधे वायुः शीघ्रतम इत्ये-वर्धीः स्यात्, न कर्मप्राशस्त्यविषया सा स्यात्। नच–लिङ्गाद्यभिधेयकार्यस्यान्वयानु-पपत्तिस्तत्र लक्षणावीजमस्ति, प्रकृते च सर्वपदानां लक्षकत्वादभिधेयान्वयानुपपत्तिर्ना-स्ति–इति–वाच्यम्; केन तुभ्यमभाण्यभिधेयानुपपत्त्या लक्षणेति? किन्तु तात्पर्यानु-पपत्त्या, तच्च तात्पर्यमभिधेयान्वयविषयमन्वयसामान्यविषयं स्वरूपमात्रविषयं वेति न कश्चिद्विशेषः। अन्यथा यष्टीः प्रवेशयेत्यत्र लक्षणा न स्यात्। न च–भोजनप्रयोजनकप्र-वेशनस्य यष्टिष्वन्वयानुपपत्तेरिवास्तीति–वाच्यम्; एवमपि प्रवेशनविशेषे तात्पर्यग्रह एवोपजीव्य इति तदनुपपत्तिरेव लक्षणावीजमस्तु। विनिगमनाविरहेण द्वयोरपि व्यव-स्थितविकल्पेऽप्यस्माकं न क्षतिरित्यवधेयम्।

तत्र=वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता, इत्याकारक वाक्यमें कर्मणि=वायुदेवताक यागरूपकर्ममें क्षिप्र-देवताप्रसादहेतुत्वरूप जो तत्पदार्थका सम्बन्ध तादृशसम्बन्धका वोधकत्व ही है तदन्य=क्षिप्र-देवताप्रसादहेतुत्वसे अतिरिक्त प्राशस्त्यका लक्षकत्व नहीं है इति नच वाच्यम्, क्यों? पदार्थ-मात्रका संसर्गवोध होनेपर 'वायुः शीघ्रतमः' इसी प्रकारका ज्ञान होगा, वह वुद्धि कर्मप्राशस्त्य-विषया न होगी। लिङ्गादिसे अभिधेय जो कार्य तादृशकार्यकी अन्वयानुपपत्ति तत्र=उक्त

अर्थवादवाक्यमें लक्षणाका बीज है, और प्रकृते=सत्यादि वाक्यमें सर्व पदोंको लक्षकत्व होनेसे अभिधेयके अन्वयकी अनुपपत्ति नहीं है, अतः यहाँपर लक्षणा नहीं वन सकती है इति नच वाच्यम्—किसने तुमको कहा कि अन्वयानुपपत्तिसे लक्षणा होती है, किन्तु तात्पर्यानुपपत्तिसे लक्षणा होती है। तच्च=और वह तात्पर्य्य तो अभिधेयान्वयविषयक हो या अन्वयसामान्यविषयक हो या स्वरूपमात्रविषयक हो जहाँ उसकी अनुपपत्ति होगी तहाँ लक्षणा होगी इस रीतिसे लक्षणामें कोई विशेष नहीं है=अभिधेयान्वयविषयक तात्पर्यकी अनुपपत्तिसे ही लक्षणा हो स्वरूपमात्रविषयक तात्पर्य्यकी अनुपपत्तिसे लक्षणा न हो ऐसा कुछ विशेष नहीं है। अन्यथा=अन्वयानुपपत्तिको ही लक्षणाका बीजमानों और तात्पर्यानुपपत्तिको लक्षणाका बीज न मानों तो 'यष्टीः प्रवेशय' यहाँपर यष्टिपदकी यष्टिधरमें लक्षणा न होगी क्योंकि यहाँपर प्रवेशमें यष्टिपदके शब्दार्थके अन्वयकी अनुपपत्ति नहीं है। भोजनप्रयोजनकप्रवेशके अन्वयकी अनुपपत्ति तो यष्टिपदशक्यार्थमें है ही तथाच अन्वयानुपपत्ति ही यहाँपरभी लक्षणाका बीज है-इति नच वाच्यम्, क्योंकि ऐसा होनेपरभी प्रवेशविशिष्टमें तात्पर्यग्रह ही उपजीव्य है=उक्तविध तात्पर्य्यको ग्रहण करके ही अन्वयानुपपत्ति ग्राह्य है, फलतः उपजीव्य जो तात्पर्य्यग्रह तादृश तात्पर्यकी अनुपपत्ति ही लक्षणामें बीज रहो। और विनिगमनाविरहसे द्वयोरपि=तात्पर्य्यानुपपत्ति और अन्वयानुपपत्ति इन दोनोंकाभी व्यवस्थितविकल्प होनेपरभी हम लोगोंकी कोई हानि नहीं है। कहींपर अन्वयानुपपत्ति ही लक्षणामें बीज है और कहींपर तात्पर्य्यानुपपत्ति ही लक्षणामें बीज है इस रीतिसे व्यवस्थित विकल्प मान लेनेमेंभी हमारी कोई हानि नहीं। यह अवधेय है।

ननु—सर्वपदानां लाक्षणिकत्वे वाक्यार्थानुभवो न स्यात्, लाक्षणिकस्याननुभावकत्वादिति-चेन्न; लाक्षणित्वेऽप्यनुभावकत्वोपपत्तेः। शक्तत्वेन ह्यनुभावकत्वम्, नतु तच्छक्तत्वेन गौरवात्। लाक्षणिकमपि क्वचिच्छक्तमेव; भट्टाचार्यैर्वाक्यार्थस्य सर्वपदलक्ष्यत्वाभ्युपगमाच्च। तथाहि—अभिहितान्वयवादे पदैः स्वशक्तिवशात्। पदार्था अभिधीयन्ते; नतु स्मार्यन्ते; स्मार्यस्मारकसम्बन्धातिरिक्तमूलसम्बन्धकल्पनापत्तेः। एकसम्बन्धिज्ञानं ह्यपरसम्बन्धिस्मारकम्; नतु स्मारकत्वमेव सम्बन्धः हस्तिपकादिषु तथा दर्शनात्। अत एवोक्तम्—'पदमभ्यधिकाभावात् स्मारकान्न विशिष्यते ॥ इति अज्ञातज्ञापकत्वभावान्नानुभावकम्, सम्बन्धान्तराभावाच्च। न स्मारकम् किन्तु शक्त्याऽज्ञातज्ञापकमिति स्मारकसदृशमित्यर्थः।

शङ्कते नन्विति। सर्वपदोंको लाक्षणिकत्व होनेपर वाक्यार्थका अनुभव न होगा, लाक्षणिक पदको अनुभवका जनकत्व न होनेसे, इति चेन्न; क्यों? लाक्षणिक पदकोभी अनुभवके जनकत्वकी उपपत्ति होनेसे। पदको शक्तत्वेन अनुभावकत्व=अनुभवजनकत्व है, तच्छक्तत्वेन नहीं, गौरव होनेसे=सामान्यकार्यकारणभावको त्यागकर विशेष माननेमें गौरव

होनेसे। और लाक्षणिक पदभी कहींपर तो शक्तही है। और भट्टाचार्यसे वाक्यार्थके सर्व-पदलक्ष्यत्वका अभ्युपगम होनेसेभी। तथाहि अभिहितान्वयवादमें पदोंसे स्वशक्तिवशतः पदार्थ कहे जाते हैं, स्मारित नहीं कराये जाते हैं, स्मार्य्यस्मारकसम्बन्धसे अतिरिक्त इसके मूलभूत सम्बन्धकी कल्पनाकी आपत्तिसे। क्योंकि एक सम्बन्धिका ज्ञान अपर सम्बन्धिका स्मारक है, परन्तु स्मारकत्वरूपही सम्बन्ध नहीं हस्तिपकादिकमें तथा देखनेसे=हस्तिरक्षकका ज्ञान हस्तिका स्मारक है उसका हस्तिके साथ स्मारकत्वरूप सम्बन्ध नहीं है—स्मारकत्वसे भिन्न जो स्मार्य्या-नुपयोगिक संयोगादिरूप सम्बन्ध तादृश सम्बन्धप्रतियोगित्वेन ज्ञात जो पदार्थ तादृशपदार्थ-विषयक जो पूर्वज्ञातसंयोगादिरूप—सम्बन्धविषयक स्मरणसहकृतज्ञान वह ज्ञान अपर सम्बन्धिका स्मारक होता है, जैसे कि,—स्मार्यरूपगजानुयोगिक संयोगप्रतियोगित्वेन पूर्वज्ञातहस्तिपविषयक ज्ञान हस्तीका स्मारक होता है यहाँपर मूलभूत सम्बन्ध संयोग है। अत एव कहा है—अभ्यधिकाभावात्=अज्ञातज्ञापकत्वके अभावसे पद स्मारकसे विशिष्ट नहीं होता है, इसीका अर्थ करते हैं—अज्ञातज्ञापकत्वके अभावसे पद अनुभावक नहीं है, और सम्बन्धान्तरके अभावसे स्मारकभी नहीं है किन्तु शक्त्या अज्ञातज्ञापक है, फलतः स्मारकके सदृश है यह अर्थ है।

स्मृत्यनुभवातिरिक्तश्च ज्ञानं प्रमाणबलादायातमङ्गीकार्यमेव; पदार्थज्ञाने तत्तानुल्ले-खाच्च। ततोल्लेखनियमभङ्गेनात्र तत्प्रमोपकल्पने चातिगौरवात्। तथाच पदजन्यस्मृत्य-नुभवविलक्षणज्ञानविषयीभूताः पदार्थाः अभिहिता इत्युच्यन्ते। तादृशाश्चाकांक्षाद्यनुसा-रेण स्वान्वयमनुभावयन्तीति वाक्यार्थो लक्ष्य इत्युच्यते पदेन यत् बोध्यते तच्छक्यम् पदार्थेन यत् बोध्यते तल्लक्ष्यमिति नियमात्। अत एवोक्तं वाक्यार्थो लक्ष्यमाणो हि सर्वत्रैवेति नः स्थितम्। इति। यद्यपि पदाभिहितपदार्थस्मार्यत्वं तीरादौ लक्ष्यत्वम्, वाक्यार्थे तु तदनुभाव्यत्वमितिविशेषः; तथापि पदार्थबोध्यत्वमादाय लक्ष्यत्वव्यपदेशः। अतएव पदार्थेन पदार्थलक्षणायां पूर्वसम्बन्धज्ञानापेक्षा, तस्य स्मार्यत्वात्। वाक्यार्थलक्ष-णायान्तु न तदपेक्षा, तस्यानुभाव्यत्वेन पूर्वसम्बन्धज्ञानानपेक्षत्वात्।

और प्रमाणबलसे प्राप्त स्मृति तथा अनुभव इन दोनोंसे अतिरिक्त पदजन्यज्ञान स्वीकरणीय ही है यद्यपि सामान्यतः लोकमें स्मृति तथा अनुभव ये दोही ज्ञान प्रसिद्ध हैं किन्तु पदप्रयो-ज्यज्ञानस्थलमें उपदर्शित प्रकारसे ये दोनों प्रकार नहीं बन सकते हैं, अतः इन दोनोंसे विलक्षण ज्ञान उक्तस्थलमें अङ्गीकार्य है। तैसे पदजन्यपदार्थज्ञानमें तत्ताका उल्लेख न होनेसेभी इसे स्मृति नहीं मान सकते हैं। तैसे स्मृतिमें जो तत्ताके उल्लेखका नियम है उस नियमके भङ्गसे यहाँपर उसका लोपकल्पना करनेमें अतिगौरव होनेसेभी उक्तज्ञान स्मृतिरूप नहीं हो सकता है। फलतः पदसे जन्य जो स्मृति तथा अनुभवसे विलक्षण ज्ञान तादृश ज्ञानके विषयीभूत जो पदार्थ वे अभिहित=इस रीतिसे कहे जाते हैं। तादृशाश्च=उक्तविधाभिहितत्वविशिष्ट हुए वे पदार्थ आकाङ्क्षा योग्यतादिके अनुसारसे स्वान्वयम्=अपने सम्बन्धका अनुभव कराते हैं, अतः वाक्यार्थ लक्ष्य है ऐसा कहा जाता है; पदसे जो जाना जाता है वह शक्य है और पदार्थसे

जो जाना जाता है वह लक्ष्य है, ऐसा नियम होनेसे । अतएव=ऐसा नियम होनेसे ही कहा है—नः=हम लोगोंके मतमें सर्वत्र वाक्यार्थ लक्ष्यविधया ही प्रतीत होता है यह निश्चित है । यद्यपि पदसे अभिहित जो गङ्गादिरूप पदार्थ तादृशपदार्थस्मार्यत्व तीरादिमें लक्ष्यत्व है, और वाक्यार्थमें तो तदनुभाव्यत्व=पदाभिमतपदार्थानुभाव्यत्व है,=तीरादिरूप पदार्थ जहाँपर लक्ष्य है वहाँपर पदसे अभिहित पदार्थ तद्विपयक=पदार्थरूपलक्ष्यविपयक स्मृतिको उत्पन्न करता है, और वाक्यार्थरूप जहाँपर लक्ष्य है वहाँपर पदाभिहित पदार्थ तद्विपयक=लक्ष्यरूप वाक्यार्थ-विपयक स्मृतिको नहीं उत्पन्न करते हैं किन्तु अनुभवको उत्पन्न करते हैं यह विशेष है, तथापि वाक्यार्थमें पदार्थबोध्यत्वको लेकर लक्ष्यत्वका व्यपदेश है=पदार्थबोध्यत्वका अर्थ है—पदार्थजन्य-ज्ञानविपयत्व यह उभयत्र समान है, क्योंकि ज्ञानशब्दसे अनुभव तथा स्मृति इन दोनोंका ग्रहण होता है । अतएव=पदार्थरूप लक्ष्यमें और वाक्यार्थरूपलक्ष्यमें स्मार्य्यत्व और अनुभा-व्यत्वप्रयुक्त भेद होनेसे ही पदार्थसे पदार्थलक्षणामें पूर्वसम्बन्धके ज्ञानकी अपेक्षा है गङ्गा-दिपदार्थोंका और तीरादिपदार्थोंका जो परस्पर सम्बन्ध उस सम्बन्धका ज्ञान लक्षणासे पूर्वमें चाहिए तस्य=पदार्थरूप लक्ष्यको स्मार्य्यत्व होनेसे और वाक्यार्थलक्षणामें तदपेक्षा=पदार्थ-सम्बन्धज्ञानकी अपेक्षा नहीं क्यों ? तस्य=वाक्यार्थको अनुभाव्यत्व=विपयता सम्बन्धसे अनु-भवविशिष्टत्व होनेसे, पूर्वमें सम्बन्धज्ञानकी अपेक्षा न होनेसे ।

पदार्थलक्षणायां पूर्वसम्बन्धज्ञानमेव वाक्यार्थलक्षणायामाकाङ्क्षादिकमेवेति पर-स्परनिरपेक्षमुभयं नियामकम् । अतोऽपूर्वे वाक्यार्थे शक्यसम्बन्धितया ज्ञातुमशक्ये कथं लक्षणेत्यपास्तम्; पदार्थलक्षणाया एव तथात्वात् एवञ्च पदशक्तेः पदार्थोपस्थितावेवोप-क्षयादुपस्थितानां च पदार्थानां अन्वयानुभावकत्वात् । सर्वपदलाक्षणिकत्वेपि न वेदान्त-वाक्यानामन्वयानुभावकत्वानुपपत्तिः । स्यादेतत् । अभिहितान्वयवादे माभूदनुपपत्तिः; अन्विताभिधाने तु भवति । तथाहि—पदानामन्वयानुभवजननसामर्थ्यमेव शक्तिरित्यु-च्यते, एकैकपदार्थोपस्थितिस्तु स्मृतिरूपा, न शक्तिसाध्या । एकसम्बन्धिज्ञानादपरसम्ब-न्धिस्मरणस्य हस्तिपकादिसाधारणत्वात्, अन्वयानुभवजननसामर्थ्यरूपस्य च मूलस-म्बन्धस्य विद्यमानत्वात् ।

पदार्थलक्षणामें पूर्वसम्बन्धज्ञानही नियामक है और वाक्यार्थलक्षणामें आकाङ्क्षादिकही नियामक है, इस रीतिसे परस्पर निरपेक्ष दोनों नियामक हैं अतः=इस व्यवस्थापनसे शक्य-सम्बन्धितया जाननेकेलिए अशक्य एवम्भूत जो अपूर्व वाक्यार्थ तादृशवाक्यार्थमें लक्षणा कैसे हैं, यह कथन अपास्त हुआ पदार्थलक्षणको ही तथाविध नियमसे आक्रान्त होनेसे । एवञ्च=और ऐसा होनेपर पदशक्तिका पदार्थोपस्थितिमें ही उपक्षय होनेसे उपस्थित पदार्थोंको अन्वयका अनुभावकत्व होनेसे=अन्वयविपयक अनुभवजनकत्व होनेसे सर्वपदोंका लाक्षणिकत्व होनेपरभी वेदान्तवाक्योंको अन्वयके अनुभावकत्वकी अनुपपत्ति नहीं । स्यादेतत्=रहो यह,

अभिहितान्वयवादमें मत हो अनुपपत्ति परन्तु अन्विताभिधानमें तो होती है। तथाहि– पदोंमें, अन्वयविषयक जो अनुभव तादृश अनुभवका जो जनन=जन्म तादृश जन्ममें जो सामर्थ्य वह सामर्थ्य ही शक्ति है इस रीतिसे कहा जाता है, और एक एक पदार्थकी उपस्थिति तो स्मृतिरूपा है वह शक्तिसाध्या नहीं, क्यों ? एक सम्बन्धिज्ञानसे अपरसम्बन्धि-स्मरणको हस्तिपकादिसाधारणत्व होनेसे, और अन्वयानुभवजननसामर्थ्यरूप मूलसम्बन्धको विद्यमानत्व होनेसे।

अतएव—पदशक्त्यसाध्यत्वात् पदार्थोपस्थितेः स्मृत्यन्तरसाधारणायास्तद्वैजात्य-कल्पने मानाभावात् अर्थाध्याहार एवासति बाधके न पदाध्याहारः; पुष्पेभ्य इत्यत्र साधुत्वार्थं स्पृहयति पदस्य विश्वजिता यजेतेत्यत्र नियोज्य लाभार्थं स्वर्गकामपदस्य सौर्ये चरावतिदेशप्राप्ते 'अग्नये जुष्टं निर्वपामीति मन्त्रे प्रकृतौ वाचकपदवत्तया क्लृप्तो-पकारे अग्निपदबाधेन वाचकपदलाभाय सूर्य्यपदस्य चाध्याहारेऽपि पदार्थस्मरणाय वाक्यार्थानुभवाय वा तदनपेक्षणात्। शाब्दत्वञ्च पदजन्यान्वयानुभवत्वेनैव न पदजन्यो-पस्थितिजन्यान्वयानुभवत्वेन गौरवात्। अतएव योग्यतावच्छेदकस्य छिद्रेतरत्वादेः पदादनुपस्थितस्यापि पदजन्यान्वयानुभवविषयत्वाच्छाब्दत्वम्; अन्यैरप्यनुकूलत्वप्रतियो-गित्वादीनां तथात्वाभ्युपगमात्।

अतएव स्मृत्यन्तरसाधारण जो पदार्थोपस्थिति उस पदार्थोपस्थितिको पदशक्तिसे साध्यत्व न होनेसे और पदश्रवणसे उत्तरमें जायमान पदार्थोपस्थितिमें स्मृत्यन्तरसे वैजात्यकी कल्पना करनेमें प्रमाणके अभावसे, बाधकके न होनेपर, अर्थाध्याहारः='द्वारम्' इत्यादिस्थलमें पिधानादिरूप अर्थकाही कल्पन होता है, नकि 'पिधेहि' इत्यादिरूप पदका; 'पुष्पेभ्यः' यहाँपर साधुत्वके लिए स्पृहयति इस पदका अध्याहार होनेपरभी और 'विश्वजिता यजेत' यहाँपर नियोज्यके लाभके लिए–'स्वर्गकामः' इस पदका अध्याहार होनेपरभी और सौर्य्य चरुमें अतिदेशसे प्राप्त और प्रकृतिमें वाचकपदवत्तया क्लृप्तोपकारक जो 'अग्नये जुष्टं निर्वपामि' यह मन्त्र इस मन्त्रमें अग्निपदके बाधसे वाचकपदके लाभकेलिए सूर्य्यपदका अध्याहार होनेपरभी पदार्थस्मरणकेलिए या वाक्यार्थानुभवकेलिए तदनपेक्षणात्=पदाध्याहारका अपेक्षण न होनेसे। और वाक्यार्थबोधमें शाब्दत्व तो पदजन्यान्वयानुभवत्वेन है, नकि, पदजन्य जो उपस्थिति तादृश उपस्थितिजन्यान्वयानुभवत्वेन गौरव होनेसे, अतएव=पदजन्योपस्थिति जन्यान्वयानुभवत्वेन शाब्दत्वके न होनेसे ही पदसे अनुपस्थित जो जलाहरणयोग्यतावच्छेदक छिद्रेतरत्वादि तादृश छिद्रेतरत्वादिकोभी पदजन्यान्वयानुभवविषयत्व होनेसे शाब्दत्व है, अन्यैरपि=प्राचीन तार्किकादिकोंसेभी अनुकूलत्व प्रतियोगित्वादिकोंके तथात्वका=पदसे उपस्थित न होनेपरभी पदजन्यान्वयानुभवविषयत्वेन शाब्दत्वका अभ्युपगम होनेसे।

एवं च चैत्रोऽयामित्यादौ लोके 'उद्भिदा यजेत पशुकाम' इत्यादौ च वेदे मत्य-

क्षोपस्थितानामेव चैत्रोद्भिदादिपदानां नामत्वेनान्वयः; अन्यथा चैत्रपदवाच्योऽयं उद्भित्पदवाच्येनं यागेन इत्यादि कल्पने लक्षणाप्रसङ्गात्, अगृहीतसङ्गतिके पदे तदयोगात्। घटः पटो नेत्यत्र नञन्वय इव चैत्रोऽयमित्यादिनामधेयान्वयेऽपि विभक्त्यर्थद्वारत्वानपेक्षणेन व्युत्पत्त्यन्तरकल्पनात् नञन्वये विभक्त्यर्थापेक्षायां जितमद्वैतवादिभिः; नीलं सुगन्धिमहदुत्पलमितिवत् घटपटनञर्थानामभेदान्वयोपपत्तेः। नामधेये विभक्त्यर्थापेक्षायां वेदे नामधेयत्वं न सिद्ध्येत् इति जितं पूर्वपक्षिणा, 'सोमेन यजेत' इत्यत्रेव मत्वर्थलक्षणयोद्भिदा यजेतेत्यादावपि विशिष्टविधित्वोपपत्तेः; उभयत्र लक्षणायास्तुल्यत्वेऽपि प्रवृत्तिविशेषकरत्वेन विधित्वस्योचितत्वात्।

एवञ्च=और ऐसा होनेपर 'चैत्रोऽयम्' इत्यादि लोकमें और 'उद्भिदा यजेत पशुकामः' इत्यादि वेदमें प्रत्यक्षतः उपस्थित चैत्रोद्भिदादिपदोंका नामत्वेन अन्वय होता है, अन्यथा चैत्रपदवाच्योऽयम्, उद्भिदपदवाच्येन योगेन इत्यादि कल्पना करनेमें लक्षणाके प्रसङ्गसे अगृहीतसङ्गतिके=अगृहीतशक्तिकपदमें लक्षणाके अयोगसे=शक्यसम्बन्धका नाम लक्षणा है, अतः अगृहीतसङ्गतिकपदमें लक्षणा नहीं हो सकती है, 'घटः पटो न' यहाँपर जैसे विभक्तिके अर्थको द्वार न कर नञ्का नामार्थके साथ अन्वय होता है तैसे 'चैत्रोऽयम्' इत्यादि नामधेयके अन्वयमेंभी विभक्त्यर्थके द्वारत्वका अपेक्षण न होनेसे व्युत्पत्त्यन्तर=यन्नामार्थमें चैत्रादि नामका वाच्यतासम्बन्धसे अन्वय होता है, तिस नामका समानविभक्तिकत्व चैत्रादि नामको अपेक्षित है, एतद्व्युत्पत्त्यन्तरके कल्पनसे और नञर्थके अन्वयमें विभक्त्यर्थकी अपेक्षा होनेपर तो जीत लिया अद्वैतवादियोंने; जीतलेनेमें हेतुको दिखलाते हैं—जैसे 'नीलं सुगन्धि महत् उत्पलम्' यहाँपर नीलादि पदार्थोंका अभेदान्वय होता है, तैसे घटः पटो न। यहाँपरभी घटपट नञर्थ इन दोनोंके अभेदान्वयकी उपपत्तिसे। और नामधेयमें विभक्त्यर्थकी अपेक्षा होनेपर वेदमें नामधेयत्व न सिद्ध होगा, ऐसा होनेपर पूर्व पक्षीने जीत लिया, हेतुको दिखलाते हैं— जैसे 'सोमेन यजेत' यहाँपर मत्वर्थलक्षणासे विशिष्टविधि है तैसे 'उद्भिदा यजेत' यहाँपर विशिष्टविधिका सम्भव होनेसे=सोमविशिष्ट यागकी विधि जैसे सोमेन यजेत यहाँपर है तैसे उद्भिद्द्रव्यविशिष्ट यागकी विधि 'उद्भिदा यजेत' यहाँपरभी उपपन्न हो सकती है। उभयत्र=उद्भिदादिपदवाच्यमें और उद्भिद्द्रव्यविशिष्टमें लक्षणाका तुल्यत्व होनेपरभी प्रवृत्तिविशेषकरत्वेन=नामधेयपक्षमें नामका सङ्कल्पादिमें उपयोग होनेपरभी द्रव्यविशिष्ट–विधिपक्षमें प्रवृत्तिविशेषकरत्वेन विधित्वस्य=द्रव्यविशिष्ट विधित्वकोही उचितत्व होनेसे।

वार्त्तिककाराणां तु पदार्थोपस्थितेः पदशक्तिसाध्यत्वात्तदर्थं सर्वत्र पदाध्याहाराङ्गीकारेऽपि नामधेयान्वये व्युत्पत्त्यन्तराश्रयणमस्त्येव तथाच स्वयमेव व्युत्पादितं नामधेयाधिकरण इत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्त्या। प्रकृतमनुसरामः—एवं स्थिते लाक्षणिकमपि अन्वयानुभावकं चेदन्वयानुभवजननसामर्थ्यमेव शक्तिरिति लाक्षणिकस्यापि तद्वत्त्वान्

मुख्यजघन्यविभागो न स्यात् । तथाच लिङ्गाधिकरणविरोधः । तत्र हि ' वर्हिर्देवसदनं दामीत्यादिमन्त्राणां मुख्ये जघन्ये चार्थे लिङ्गत्वद्विनियोगः उत मुख्य एवेति संशय्य उभयोरपि शाब्दत्वादुभयत्रापि विनियोग इति प्राप्ते मुख्य एव इति सिद्धान्तितम् ' अर्थाभिधानसंयोगान्मन्त्रेषु शेषभावः स्यात् तस्मादुत्पत्तिसम्बन्धोऽर्थेन नित्यसंयोगादिति ।

और वार्तिककारके मतमें तो पदार्थोपस्थितिको शब्दशक्तिसे साध्य होनेसे तदर्थम्=पदार्थोंपस्थितिके लिए सर्वत्र पदके अध्याहारका अङ्गीकार होनेपरभी नामधेयके अन्वयके लिए व्युत्पत्त्यन्तरका आश्रय है ही, तिस रीतिसे स्वयं ही व्युत्पादित किया है, अब इस प्रसक्तानुप्रसक्तिसे अलम् कर, प्रकृतका अनुसरण करते हैं। ऐसा स्थित होनेपर लाक्षणिकभी यदि अन्वयका अनुभावक हो तो अन्वयानुभवजननसामर्थ्य ही तो शक्ति है, अतः लाक्षणिककोभी तद्वत्त्वात्=शक्तिमत्त्व होनेसे, मुख्य जघन्यका विभाग न होगा,=अभीतक तो शक्तको मुख्य समझते थे और लाक्षणिकको जघन्य समझते थे तैसे शक्तिद्वारा बोध्यार्थको मुख्य समझते थे और लक्षणाद्वारा ज्ञाप्य अर्थको जघन्य समझते थे परन्तु अब समानरूपसे अर्थबोधकता होनेसे और अर्थकोभी एकविधत्व होनेसे उभयत्र मुख्यजघन्यविभाग न होगा। और इष्टापत्ति करनेपर लिङ्गाधिकरणका विरोध है। तत्रहि=उस लिङ्गाधिकरणमें 'वर्हिर्देवसदनं दामि' इत्यादि मन्त्रोंका मुख्यार्थमें तथा जघन्यार्थमें लिङ्गसे विनियोग है, अथवा मुख्यार्थमें ही विनियोग है इस रीतिसे संशय्य=संशयकर दोनों अर्थोंको शाब्दत्व होनेसे दोनोंमें विनियोग है, इस रीतिसे पूर्वपक्षके प्राप्त होनेपर मुख्यार्थमें ही विनियोग है, यह अर्थ सिद्धान्तित किया है, अर्थाभिधानसंयोगात् जै० अ० ९ पा० १ सू० ३६ इत्यादि सूत्रसे।

अर्थाभिधानसामर्थ्यरूपाल्लिङ्गाच्छ्रुत्यविनियुक्तेषु वर्हिर्देवसदनं दामीत्यादिमन्त्रेषु शेषभावो विनियोगः स्यात् । तच्च सामर्थ्यं मुख्ये न जघन्ये शब्दसामर्थ्यादुपस्थितो ह्यर्थो मुखमिवाव्यवहितो भवतीति मुख्य उच्यते । मुख्यार्थसम्बन्धादुपस्थितस्तु जघनमिव व्यवहितो भवतीति जघन्य उच्यते । तथाच जघन्येऽर्थविनियोगं ब्रुवतापि तदुपस्थितये मुख्योपस्थितिर्वक्तव्या, तथाचोत्पत्तिसम्बन्धः स्वभावसम्बन्धोऽर्थाभिधानसम्बन्ध एव विनियोजकः स्यात्; तस्यार्थनियतत्वात्, तावतैवस्वाध्यायविधेश्चरितार्थत्वात् मुख्यसम्बन्धस्तु न लिङ्गम् । अनेकेषां मुख्यसम्बन्धित्वेनार्थानियमाच्चरमत्वाच्चेति सूत्रार्थः । अत एव मुख्यसम्भवे लक्षणा नोपादेयेति सर्वतन्त्रसिद्धान्तः । पदवृत्तिर्हिशक्तिः पदार्थवृत्तिश्च लक्षणा; साच बहुप्रकारेत्यन्यत्, लाक्षणिकपदेन अन्वयप्रतियोग्युपस्थितौ कृतायां यदविशिष्टं शक्तं तदेवान्वयानुभावकम् । अर्थवादपदानां सर्वेषां लाक्षणिकत्वेऽपि तदेकवाक्यतापन्नं विधिपदमेवानुभावकम् । ' विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युरिति ' न्यायात् । तथा च सत्यादिपादानां सर्वेषामपिलाक्षणिकत्वे कथमन्वयानुभवोपपत्तिरिति–चेत्, नैषदोषः ।

सूत्रार्थ दिखलाते हैं—अर्थके अभिधानका जो सामर्थ्य तादृश सामर्थ्यरूप लिङ्गसे श्रुतिसे किसीभी अर्थमें नहीं नियुक्त ऐसे जो 'बर्हिर्देवसदनं दामि' इत्यादि मन्त्र हैं उन मन्त्रोंमें शेषभाव:=विनियोग होगा, तच्च=और वह अर्थाभिधानरूप सामर्थ्य तो मुख्यमें है जघन्यमें नहीं क्योंकि शब्दसामर्थ्यसे उपस्थित अर्थ मुखकी नाई अव्यवहित होता है, अतः वह मुख्य कहा जाता है। और मुख्यार्थके सम्बन्धसे उपस्थित हुआ अर्थ तो जघनकी तरह व्यवहित होता है, अतः जघन्य कहा जाता है फलतः जघन्यार्थमे विनियोगको कहनेवालेसेभी तदुपस्थितये=जघन्यार्थकी उपस्थितिके लिए मुख्यार्थकी उपस्थिति वक्तव्य है। तथाच=उत्पत्तिसम्बन्धः=स्वभावसम्बन्ध=अर्थाभिधान सम्बन्ध ही विनियोजक होगा, तस्य=उक्त सम्बन्धको अर्थके साथ नियतत्व होनेसे। और तितनेसेही 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः=इस स्वाध्यायविधिकोभी चरितार्थत्व होनेसे। मुख्यसम्बन्धस्तु=मुख्यार्थज्ञापनद्वारक अमुख्यार्थबोधकत्व लिङ्गम्=लिङ्गत्वेन विनियोजक नहीं है, अनेकोंको मुख्यसम्बन्धित्व होनेसे, अर्थके अनियमसे चरमत्वात्=मुख्यार्थविषयकोपस्थितिसे उत्तरोपस्थितिकत्व होनेसेभी; इति=यह सूत्रार्थ है। अतएव=उक्ताधिकरणका विरोध होनसे ही मुख्यका सम्भव होनेपर लक्षणा उपादेय नहीं है यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है। शक्ति पदनिष्ठ वृत्ति है। और लक्षणा पदार्थवृत्ति है। साच=और वह लक्षणा बहुविधा है, इत्यन्यत्=लक्षणाके अनेक प्रकारोंका निरूपण यहाँपर असम्बद्ध हैं अतः उसकी आवश्यकता नहीं। लाक्षणिकपदेन=ततः लिङ्गाधिकरणविरोधपरिहारके लिए ऐसा कहना चाहिए कि—लाक्षणिक पदसे अन्वयके प्रतियोगियोंकी उपस्थितिके करनेपर जो अवशिष्ट शक्त पद है वही अन्वयका अनुभावक है=अन्वयविषयक अनुभवका जनक है; सर्व अर्थवाद पदोंको लाक्षणिकत्व होनेपरभी अर्थवादोंके साथ एक वाक्यतापन्न विधिपद ही अनुभावक है, विधिना त्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः जै० अ० १ पा० २ सू० ७ इति न्यायात्=इस सूत्रसे तथाच=जब कि यों कहना पडा तब सत्यादि सर्व पदोंको लाक्षणिकत्व होनेपर अन्वयके अनुभवकी उपपत्ति कैसे होगी इति चेत्=ऐसा यदि कहते हो तो यह दोप नहीं है क्यों?

शक्यस्यैवान्वयानुभवाभ्युपगमात्, लक्षणा त्वेकदेशत्यागमात्राय नत्वशक्यार्थोपस्थितये गौर्नित्य इत्यादिवत्। अत एव वाचकानामेव स्वार्थे लक्षणेयमित्युक्तं प्राक्। ननु जहल्लक्षणाभ्युपगमे कथमन्वयानुभवः? शक्यैकदेशस्यापि तत्राभावात्। तथाचोक्तं संक्षेपशारीरके—'साभासाज्ञानवाची यदि भवति पुनर्ब्रह्मस्तथाहं ब्रह्मशब्दोऽहङ्कारवाची भवति तु जहती लक्षणा तत्र पक्ष' (सं० शा० अ० १।१६९) इति। अस्मिन्पक्षे अन्विताभिधानवादानभ्युपगमान्नदोपः। पक्षद्वयाश्रयणं तु जहदजहल्लक्षणापक्ष एव। तथाच दर्शितं तत्रैव—'अभिहितघटना यदा तदानीं स्मृतिसमबुद्धियुगं पदे विधत्तः। परदृशि पुनरन्विताभिधाने पदयुगलात् स्मृतियुगममेव पूर्वम्। (सं० शा० १।३८४) इति। तत्त्वप्रदीपिकाकृदादयस्तु अभिहितान्वयपक्षमेवोररीचक्रुः, सर्वथापि सिद्धान्तानुकूलत्वा-

दिति न किञ्चिदवद्यम् । तार्किकमतस्योभयपक्षबहिर्भावादिकं च वेदान्तकल्पलतायां व्युत्पादितमित्युपरम्यते ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ सत्याद्यवान्तरवाक्याखण्डार्थतोपपत्तिः ॥

शक्यस्यैव=सत्यादि पदोंके शक्यकेही अन्वयके अनुभवका अभ्युपगम होनेसे=सत्यादि पदोंसे सत्यत्वादिविशिष्ट विषयक जो अनुभव होता है इस अनुभवमें विशेष्यतया शुद्धात्माकाभी भान होता है, अतः शुद्धात्मानुभावकत्व सत्यादिपदोंको है ही और लाक्षणिक पद अनुभावक नहीं होता है यह नियम जहदजहल्लक्षणा=भागत्यागलक्षणास्थलमें नहीं है किन्तु इस लक्षणासे भिन्न लक्षणाएँ जहां होती हैं तहाँ है यह भाव है। और लक्षणा तु=प्रकृतमें लक्षणा तो विरुद्धरूप एकदेशके त्यागके लिए है अशक्यार्थकी उपस्थितिके लिए नहीं, जैसे कि 'गौर्नित्यः' यहांपर व्यक्तिरूप एक देशके त्यागके लिए गोशब्दकी गोत्व जातिमें लक्षणा है, न कि अशक्यार्थकी उपस्थितिके लिए तैसे। अतएव=उक्तार्थके इष्ट होनेसेही वाचक सत्यादिपदोंकी ही स्वार्थमें लक्षणा है, यह कहा है पहिले। शङ्कते नन्विति। जहल्लक्षणाभ्युपगमपक्षमें कैसे अन्वयका अनुभव है शक्यके एकदेशकाभी उस पक्षमें अभाव होनेसे तथा च कहा है सङ्क्षेप शारीरकमें–यदि ब्रह्म शब्द आभासके सहित ज्ञानका कहनेवाला होता है और अहं शब्द अहङ्कारका कहनेवाला होता है तो उस पक्षमें जहती लक्षणा होती है–समाधान करते हैं अस्मिन्निति । इस पक्षमें अन्विताभिधानवादके अनभ्युपगमसे दोष नहीं है। और पक्षद्वयका आश्रयण तो=अन्विताभिधानवाद तथा अभिहितान्वयवाद एतत्पक्षद्वयका आश्रयण तो भागत्यागलक्षणपक्षमें ही है। तथाच दिखला दिया है वहींपर यदा=जब अभिहितघटना=अभिहितान्वयवादका आश्रयण है तदानीम्=तब पदे=अहम् और ब्रह्म ये दोनों पद परदृशि=शुद्धात्मामें पूर्वम्=शाब्दबोधसे पूर्व स्मृतिसमबुद्धियुग्मको निष्पन्न करते हैं; और अन्विताभिधानवादमें तो पदयुगलसे परदृशि=शुद्धात्मामें स्मृतियुग्म ही शाब्दबोधसे पूर्वमें होता है,= यहाँपर युगादिपद अविवक्षितार्थक हैं अतः सत्यादि वाक्यमें नानापदज्ञानजन्यज्ञानका लाभ है। और तत्त्वप्रदीपिकाकारादिकोंने तो अभिहितान्वयवादपक्षकोही अङ्गीकार किया है, सर्वथा सिद्धान्तके अनुकूलत्व होनेसे, अतः कोई दोष नहीं। और तार्किक मतका उभयपक्षसे बहिर्भावादिक वेदान्तकल्पलतिकामें व्युत्पादित है, अतः अब इस विषयमें मुझसे उपराम किया जाता है।

इति सरलायां सत्यादिवाक्याखण्डार्थत्वोपपत्तिः।

अथ तत्त्वमस्यादिवाक्याखण्डार्थत्वोपपत्तिः।

एवं तत्त्वमस्यादिमहावाक्यपक्षकानुमानमपि निर्दोषम्। नच सोऽयं देवदत्त इत्ययं दृष्टान्तः साध्यविकलः; विशिष्टाभेदस्य बोधयितुमशक्यत्वात्। तथाहि–किमत्र तद्देशकालविशिष्ट एतद्देशकालवैशिष्ट्यं प्रतिपाद्यते, एतद्देशकालविशिष्टे वा तद्देशकालवैशिष्ट्यं

तद्विशेषणयोरैक्यं वा, तद्विशिष्टयोरैक्यं वा, । नाद्यः, तद्देशकालवैशिष्टयस्याप्रत्यक्षत्वेनानुद्देश्यत्वात्, तत्कालादेरिदानीं सत्त्वापत्तेश्च । नद्वितीयः; एतत्कालादेरन्यदा सत्त्वापत्तेः; न तृतीयः बाधात् । अत एव न चतुर्थोऽपि; विशेषणस्य भिन्नत्वेन विशेषणविशेष्यतत्सम्बन्धात्मकस्य विशिष्टस्य भिन्नत्वात् अतिरिक्तत्वेऽपि विशेषणभेदेन विशेष्यभेदेन च तद्भेदनियमात् । तथाचोभयविशेषणपरित्यागेन विशेष्यमात्रभिन्नं बोध्यत इति सिद्धमखण्डार्थत्वम् ।

अथ सरलायां तत्त्वमस्यादिवाक्याखण्डार्थत्वोपपत्तिः ।

इस रीतिसे तत्त्वमस्यादिरूप जो महावाक्य तादृश महावाक्यपक्षक अनुमानभी निर्दोष है= तत्त्वमस्यादिवाक्यम्, अखण्डार्थनिष्ठम्; आत्मस्वरूपमात्रनिष्ठं वा, अकार्य्यकारणद्रव्यमात्रनिष्ठत्वे सति समानाधिकरणत्वात्, तन्मात्रप्रश्नोत्तरत्वाद्वा, सोऽयमित्यादिवाक्यवत्, यह तत्त्वमस्यादिमहावाक्यपक्षक अनुमानभी दोषोंसे रहित है । 'सोऽयं देवदत्तः' यह दृष्टान्त साध्यसे विकल है='सोयं देवदत्तः' यह वाक्य जो आपने दृष्टान्तत्वेन उपन्यस्त किया है उसमें अखण्डार्थनिष्ठत्व या स्वरूपमात्रनिष्ठत्वरूप साध्य नहीं है अतः दृष्टान्त साध्यविकल है, नच=दृष्टान्त साध्यविकल नहीं है, क्यों? विशिष्टमें अभेदको बोधन करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे । इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं–तथाहीति । क्या यहाँपर तद्देशकालविशिष्टे=व्यवहितदेशकालविशिष्टमें अव्यवहितदेशकालका वैशिष्टय प्रतिपादन किया जाता है, या एतद्देशकालविशिष्टे=अव्यवहितदेशकालविशिष्टमें तद्देशकाल=व्यवहितदेशकालका वैशिष्टय प्रतिपादन किया जाता है, या तद्विशेषणयोः=ते च ते विशेषणे च इति तद्विशेषणे, तयोः=तद्विशेषणयोः तत्त्वेन एतत्त्वेन उक्तदेशकालरूप विशेषणोंका ऐक्य प्रतिपादन किया जाता है, या उक्तविधविशेषणविशेष्योंका ऐक्य प्रतिपादन किया जाता है; विकल्पोंको कर अब निराकरण करते हैं– नाद्य इति । व्यवहितदेशकालविशिष्टमें अव्यवहितदेशकालका वैशिष्टय सोऽयम् इस वाक्यसे प्रतिपादन किया जाता है यह प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों ? व्यवहितदेशकालके वैशिष्टयको प्रत्यक्षत्व न होनेसे तेन रूपेण उद्देश्यत्वके अभावसे=प्रत्यक्षतः जो ज्ञात होता है उसको उद्देश्यकर अज्ञातको ज्ञापन करनेके लिए 'सोऽयम्' यह कहा जाता है, और तद्देशकालका विशिष्टत्व तो प्रत्यक्ष नहीं है, अतः तेन रूपेग उद्देश्यता नहीं बन सकती है=तद्देशकालविशिष्टत्व एतद्देशकालवैशिष्टयके प्रति उद्देश्यतावच्छेदक नहीं हो सकता है । और तत्कालादेः= व्यवहितकालादिकके इस कालमें सत्त्वापत्तिसेभी तद्देशकालविशिष्टत्वको उद्देश्यतावच्छेदकत्व नहीं बन सकता है । न द्वितीयः=एतद्देशकालविशिष्टमें तद्देशकालका वैशिष्टय इस वाक्यसे प्रतिपादन किया जाता है, यह द्वितीय पक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? इस कालादिका अन्यकालादिमें सत्त्वकी आपत्तिसे=जब कि एतद्देशकालविशिष्टमें तद्देशकालके वैशिष्टयका भान माना जायगा तब तो तद्देशकालवैशिष्टयसे पूर्वमें एतद्देशकालका विशिष्टत्व मानना पडेगा तथाच

वर्त्तमानकालादिका अतीत कालमें सत्त्व मानना पड़ेगा और वाराणसी प्रदेशका मथुरा अवच्छेदेन सत्त्व मानना पड़ेगा; न तृतीयः=विशेषणोंका ऐक्य प्रतिपादन किया जाता है, यह तृतीय पक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? बाध होनेसे,=वाराणसी प्रदेशका मथुरा प्रदेशके साथ ऐक्य बाधित है और वर्त्तमानकालका अतीतकालके साथ ऐक्य बाधित है। न चतुर्थोऽपि=विशिष्टोंका ऐक्य प्रतिपादन किया जाता है, यह चतुर्थ पक्षभी नहीं बन सकता है क्यों ? अतएव=बाध होनेसेही इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं–विशेषणको भिन्नत्व होनेसे विशेषणविशेष्य तथा एतदुभयसम्बन्ध एतत्त्रितयात्मक विशिष्टको भिन्नत्व होनेसे, अतिरिक्तत्वेऽपि=उक्त तीनों पदार्थोंसे विशिष्टको अतिरिक्तत्व होनेपरभी विशेषणके भेदसे और विशेष्यके भेदसे तद्भेदे=विशिष्टभेदके नियमसे फलतः गत्यन्तरके अभावसे उभयविध विशेषणोंके परित्यागसे अभिन्नस्वरूपविशेष्यमात्र 'सोऽयम्' इस वाक्यसे बोधित होता है, अतः इसमें अखण्डार्थत्व सिद्ध हुआ।

तदुक्तम्—'अविरुद्धविशेषणद्वयप्रभवत्वेऽपि विशिष्टयोर्द्वयोः। घटते न यदैकता तदा नतरां तद्विपरीतरूपयोः॥ (सं० शा० १।१६७) इति। यदा हि दण्डी कुण्डलीत्यादौ दण्डकुण्डलादेरेकदेशकालावस्थितत्वेनाविरोधेऽपि न तद्विशिष्टयोरैक्यं; विशेषणयोरप्यैक्यापत्तेः; तदाकैव कथा सोऽयमित्यत्र तत्तेदन्तयोरेककालानवस्थाननियमेन परस्परविरुद्धत्वात्तद्विशिष्टयोरैक्यस्य। लक्षणयैक्यबोधनं तूभयत्रापि समानम्। लाक्षणिकत्वेऽपि दण्डी कुण्डलीत्यादौ विशिष्टतात्पर्यान्नाखण्डार्थत्वव्यवहारः सोऽयमित्यत्र तु 'अयं स न वा अयं नैव स' इत्यादिसंशयविपर्ययज्ञानविषयीभूताभेदमात्रस्य बुभुत्सितत्वेन तत्रैव तात्पर्यादखण्डार्थत्वम्; नह्यस्मिन् बुभुत्सिते अन्यत् प्रतिपादयितुमुचितमित्युक्तम्। तत्तेदन्तोपस्थितिद्वारकाभेदबोधस्यैव भेदभ्रमविरोधितया नान्यतरपदवैयर्थ्यम्। प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्षस्यापि अभिज्ञाद्वयोपस्थितस्वरूपातिरिक्ताविषयत्वेऽपि उभयोपस्थितिद्वारकाभेदबोधनेन भ्रमनिवर्त्तकत्वम्, तत्समानार्थकं च वाक्यमेतदिति न विशिष्टपरम्।

सो कहा है–अविरुद्धविशेषणद्वयका अस्तित्व होनेपरभी जब विशिष्टोंकी एकता संघटित नहीं होती है तब विरुद्धविशेषणवाले विशिष्टोंकी एकता तो नहीं ही हो सकती है। इसीका अर्थ दिखलाते हैं–जबकि 'दण्डी' कुण्डली इत्यादिमें एकदेश एक कालमें अवस्थितत्वेन दण्ड कुण्डलादिका विरोध न होनेपरभी तद्विशिष्टयोः=दण्डकुण्डलादिसे विशिष्टोंका ऐक्य नहीं है, विशेषणोंकेभी ऐक्यकी आपत्तिसे; तब 'सोऽयम्' यहाँपर एक कालमें अनवस्थानके नियमसे तत्ता तथा इदन्ता इन दोनोंको परस्पर विरुद्धत्व होनेसे तद्विशिष्टयोः=तत्ता तथा इदन्ता इन दोनोंसे विशिष्टोंके ऐक्यकी क्या कथा है। और लक्षणासे ऐक्य बोधन तो उभयत्र समान है। और लाक्षणिकत्व होनेपरभी 'दण्डी कुण्डली' इत्यादिमें विशिष्टमें तात्पर्य्य होनेसे अखण्डार्थ-

त्वका व्यवहार नहीं है, 'सोऽयम्' यहाँपर तो–यह वह है या नहीं यह वह नहीं ही है, इत्यादिरूप जो संशय–विपर्य्ययज्ञान तादृशज्ञानविषयीभूत जो अभेद तादृश अभेदमात्रको बुभुत्सितत्व होनेसे तत्रैव=अभेदमात्रमें ही तात्पर्य्यके होनेसे अखण्डार्थत्व है। क्योंकि अन्यके बुभुत्सित होनेपर अन्य प्रतिपादन करनेके लिए उचित नहीं है, यह कहा जा चुका है, तत्ता तथा इदन्ता इन दोनोंकी उपस्थिति है द्वार जिसका ऐसा जो अभेदबोध तादृश अभेदबोध-कोही भेदभ्रमकी विरोधिता होनेसे अन्यतर पदका वैयर्थ्य नहीं । और प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष-कोभी अभिज्ञाद्वयसे उपस्थित जो स्वरूप उस स्वरूपसे अतिरिक्त विषयत्व न होनेपरभी उभयोपस्थितिद्वारकाभेदबोधनसे भ्रमका निवर्त्तकत्व है, तत्समानार्थकं च=प्रत्यभिज्ञासमानार्थक यह वाक्य है अतः यह विशिष्टपर नहीं है।

यथा चाभिज्ञाद्वयात् प्रत्यभिज्ञाया विषयवैलक्षण्याभावेऽपि द्वारविशेषनिबन्धनज्ञानगतवैलक्षण्यादेव फलभेदः, तथा स्मृतिरूपायास्तदिदंपदार्थोपस्थितेरनुभवरूपस्य वाक्यार्थबोधस्य । एवञ्च भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तयोरेकार्थबोधपरत्वं सामानाधिकरण्यमिति प्राचां वचोऽपि निष्प्रकारके सुतरामुपपद्यते। ननु–सोऽयमिति प्रत्यभिज्ञा तावन्नाखण्डार्थविषया; तत्र प्रत्यक्षे शब्दवृत्तेर्लक्षणाया अभावात्, तत्तेदन्तोल्लेखित्वेन तत्र निष्प्रकारकत्वस्य अनुभवपराहतत्वात्, तदनुल्लेखे त्वभिज्ञातो विषयवैलक्षण्यानुपपत्तेः। तथाच शाब्दप्रत्यभिज्ञापि तथा, स्वप्रत्यभिज्ञावगतस्य परं प्रति बोधनादिति–चेन्न, वृत्त्यनपेक्षत्वेऽपि प्रत्यक्षस्य विशिष्टाभेदविषयत्वे बाधस्य प्रतिबन्धकतया स्वरूपाभेदमात्रविषयत्वात्।

और जिस रीतिसे अभिज्ञाद्वयसे प्रत्यभिज्ञाके विषयमें वैलक्षण्यके न होनेपरभी द्वार-विशेषाधीन जो ज्ञानगत वैलक्षण्य तादृश वैलक्षण्यसे ही फलभेद है, तैसे स्मृतिरूप जो तदिदम्पदार्थकी उपस्थिति तादृश उपस्थितिसे अनुभवरूप वाक्यार्थबोधका वैलक्षण्य है। एवञ्च= ऐसा होनेपर, भिन्न है प्रवृत्तिका निमित्त जिन्होंका ऐसे जो दो शब्द उन दो शब्दोंका जो एकार्थपरत्व है वह सामानाधिकरण्य है, यह प्राचीनोंका वचनभी निष्प्रकारमें सुतराम् उपपन्न होता है। शङ्कते नन्विति। 'सोऽयम्' इत्याकारिका जो प्रत्यभिज्ञा है वह अखण्डार्थविषया नहीं है, क्यों? तत्र प्रत्यक्षे=उस प्रत्यभिज्ञारूप प्रत्यक्षमें शब्दकी वृत्ति जो लक्षणा उस लक्षणाके अभावसे; तत्तेदन्तोल्लेखित्वेन=तत्ता तथा इदन्ता एतदुभयविषयकत्वेन तत्र=प्रत्यभिज्ञामें निष्प्रकारकत्वको अनुभवसे पराहतत्व होनेसे; तदनुल्लेखे तु=तत्ता तथा इदन्ता एतदुभयविषय-कत्व न होनेपर तो प्रत्यभिज्ञामें अभिज्ञासे विषयवैलक्षण्यकी अनुपपत्ति है, अतः प्रत्यभिज्ञामें तत्तेदन्ताका उल्लेख मानना ही पडेगा, फलतः शाब्दप्रत्यभिज्ञाभी तथा=तत्तेदन्ताको उल्लेख करनेवाली है, प्रत्यक्षात्मक स्वप्रत्यभिज्ञासे अवगतका परके प्रति शब्दतः बोध न होनेसे इति चेन्न; क्यों? प्रत्यक्षस्य=प्रत्यक्षात्मक प्रत्यभिज्ञाको वृत्त्यनपेक्षत्वेऽपि=शब्दवृत्ति लक्षणाकी

अपेक्षा न होनेपरभी विशिष्टाभेदविषयमें बाधको प्रतिबन्धकता होनेसे स्वरूपात्मक जो अभेद तादृश–अभेदमात्रविषयत्व होनेसे।

अभेदश्च न प्रकारः, स्वरूपतया प्राधान्यात्। तत्तेदन्तयोरपि न प्रकारता, भासमानाभेदरूपवैशिष्ट्यप्रतियोगित्वाभावात्। अतएव न तस्याः तत्तेदन्तोल्लेखिता तदभिलापे तु निरन्तरोत्पन्नाभिज्ञाद्वयादेव तथोल्लेखव्यवहारात् तत्र च लक्षणा लब्धपदैव। सर्वत्र निर्विकल्पाभिलाप इयं गतिः। नचाभिज्ञाया अविशेषः, सप्रकारकत्वनिष्प्रकारकत्वाभ्यामेव विशेषात्,। फलवैलक्षण्यन्तूक्तमेव। अत एव तत्तोपलक्षितप्रतियोगिकभेदरहित इदन्तोपलक्षितदेवदत्तस्वरूपे तात्पर्यात्, यथा ज्ञानमुपदेशोऽप्युपपद्यते। भेदविरहश्च न कश्चिद्धर्मः किन्तु स्वरूपमेव; । तदेव चैक्यमित्युच्यते। नचायमस्ति नियमः स्वेन यथावगतं परं प्रति तथैव वाच्यमिति समूहज्ञानेनापि श्रोतृबुभुत्सितैकदेशोपदेशदर्शनात्, ज्ञानमात्रसाध्यत्वात् बुभुत्सानुसारित्वाच्चोपदेशस्य। एवञ्च विशिष्टविषयादपि ज्ञानादखण्डोपदेशोपपत्तिः। विशेषणोपलक्षणादिविवेकश्चान्यत्र स्पष्ट इति नेह प्रतन्यते। तथाच न दृष्टान्तः साध्यविकलः। एवं तत्त्वमस्यादिमहावाक्येऽपि बोद्धव्यम्।

और अभेद तो प्रकार नहीं है; स्वरूपत्वेन प्राधान्य होनेसे, तैसे तत्ता तथा इदन्ता इन दोनोंकोभी प्रकारता नहीं है, क्यों? भासमान जो अभेदरूप वैशिष्ट्य तादृश वैशिष्ट्यके प्रतियोगित्वके अभावसे। अतएव=उक्त क्रमसे तत्ता तथा इदन्ता इन दोनोंके प्रकारत्वके असम्भवसे ही तस्याः=प्रत्यभिज्ञाको तत्तेदन्ताविषयकत्व नहीं है, और तदभिलापेतु=प्रत्यभिज्ञाऽभिलापमें तो निरन्तरोत्पन्ना–अभिज्ञा द्वयसे ही तथोल्लेखव्यवहारात्=तत्तेदन्ताबोधक शब्दप्रयोगसे तत्र च=उक्तविध अभिलापमें तो लक्षणा धृतपदा ही है। सर्वत्र निर्विकल्पाभिलापे=' य एवं वेदाऽहं ब्रह्मास्मि' (बृ० १।४।१०) 'आत्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मि' (बृ० १।४।९) आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति (बृ० ४।४।१२) इत्यादि वेदमें और 'सोऽयम्' इत्यादि लोकमें सर्वत्र निर्विकल्पाभिलापमें यह गति है, अभिज्ञाके साथ इस प्रत्यभिज्ञाका अविशेष है, नच=अविशेष नहीं है, क्यों? सप्रकारकत्वनिष्प्रकारकत्वप्रयुक्त विशेष होनेसे=अभिज्ञामें सप्रकारकत्व है और प्रत्यभिज्ञामें निष्प्रकारकत्व है, एतत्प्रयुक्त दोनोंमें परस्पर विशेषता है। और फलमें वैलक्षण्य तो कहा ही है–इसी प्रकरणमें पासमें ही कहा है। अतएव=उक्तार्थके व्यवस्थापनसेही तत्तोपलक्षितप्रतियोगिकभेदरहितइदन्तोपलक्षित देवदत्तस्वरूपमें तात्पर्य्य होनेसे यथाज्ञान उपदेशभी उपपन्न होता है। और भेदका विरह कोई धर्म नहीं है, किन्तु स्वरूप ही है। वही 'ऐक्य इस रीतिसे कहा जाता है। और यह नियम नहीं है कि स्वसे जो पदार्थ जिस रीतिसे अवगत हुआ हो वह पदार्थ अन्यके प्रतिभी उसी प्रकारसे वाच्य है, क्यों? समूहज्ञानसेभी श्रोताको जिज्ञासित जो एकदेश उस एकदेशका उपदेश देखनेसे; उपदेशको ज्ञानमात्रसे साध्य होनेसे और बुभुत्सानुसारित्व होनेसे। और ऐसा होनेपर विशिष्ट है विषय जिसका ऐसा जो

ज्ञान उस ज्ञानसेभी अखण्डोपदेशकी उपपत्ति है। और विशेषण तथा उपलक्षणादिका विवेक अन्यत्र=अद्वैतसिद्धिमें ही असत्के साधकत्वाभावमें बाधकनिरूपणावसरमें=दृग्दृश्यसम्बन्धभङ्गप्रकरणसे पूर्वपूर्वप्रकरणमें स्पष्ट है, अतः यहाँपर उसका विस्तार नहीं किया जाता है। फलतः दृष्टान्त साध्यविकल नहीं है इसी रीतिसे तत्त्वमस्यादिमहावाक्योंमेंभी समझना चाहिए।

ननु—चिन्मात्रस्य चिन्मात्रेण सहाभेदबोधने इष्टापत्तिः अप्रसक्तनिषेधश्च, अभेदश्चेत् स्वरूपमेव तस्य स्वप्रकाशतया नित्यसिद्धत्वेनोपदेशवैयर्थ्यम्, तदस्फुरणे च तद्बुभुत्साद्यनुपपत्तिः, तत्त्वम्पदार्थशोधकेनावान्तरवाक्येनैवोपपत्त्या महावाक्यवैफल्यञ्च एकपदेनैवोपपत्तेः पदान्तरवैयर्थ्यञ्च, भ्रमकालज्ञाताधिकाप्रतिपत्तेर्महावाक्यात् भेदभ्रमनिवृत्तिश्च न स्यादिति—चेन्न; चैतन्यस्य नित्यसिद्धत्वेऽपि सार्वज्ञ्याद्युपलक्षितस्वरूपज्ञानस्य अज्ञानादिनिवर्त्तकस्य साध्यत्वात्। नचैवं सप्रकारता, तत्तादिवत् सार्वज्ञ्यादीनामन्वयबोधाप्रकारत्वात्, उपायान्तरेणैतादृशज्ञानासम्भवाच्च नोपदेशवैयर्थ्यादयो दोषाः। भ्रमप्रतीतभेदाश्रयतावच्छेदकप्रतियोगितावच्छेदकद्वयोपलक्षितस्वरूपमात्रज्ञानस्य भेदभ्रमनिवर्त्तकत्वेन विषयावैलक्षण्येऽपि फलवैलक्षण्यात्, शङ्खश्वैत्यविषयत्वे तुल्येऽपि तदनुमाननिवर्त्यपीतभ्रमस्य तत्प्रत्यक्षनिवर्त्यत्वदर्शनात्।

शङ्कते नन्विति। चिन्मात्रका चिन्मात्रके साथ अभेदबोधनमें इष्टापत्ति है, और प्रसक्त भेदका निषेधभी है और अभेद यदि चैतन्यका स्वरूपही है तब तो अभेद रूप उस चैतन्यको स्वप्रकाशता होनेसे नित्यसिद्धत्व है और नित्यसिद्ध होनेसे उपदेशका वैयर्थ्य है और अभेदका स्फुरण न होनेपर तो अभेदविषयिणी बुभुत्सादिकी अनुपपत्ति है, और तत्त्वम्पदार्थशोधक जो अवान्तर वाक्य उस अवान्तरवाक्यसेही चैतन्यमात्रकी उपपत्ति होनेसे, महावाक्योंका वैफल्य है और एकपदसेही स्वरूपकी उपपत्तिसे पदान्तरोंका वैयर्थ्यभी है, तैसे भ्रमकालमें ज्ञात जो पदार्थ तादृशपदार्थसे अधिककी महावाक्यसे प्रतिपत्ति न होनेसे, महावाक्यसे भेदभ्रमकी निवृत्तिभी न होगी; इति चेन्न; क्यों ? चैतन्यको नित्यसिद्धत्व होनेपरभी सार्वज्ञ्यादिसे उपलक्षित जो स्वरूप तादृशस्वरूपविषयक जो अज्ञानादिनिवर्त्तकज्ञान तादृशज्ञानको साध्यत्व होनेसे ऐसा होनेपर ज्ञानमें सप्रकारता हो जायगी, नच=नहीं हो सकती है, क्यों ? जैसे तत्तादिको अन्वयबोधमें प्रकारकत्व न होनेसे। और अन्य उपायसे एवम्भूतज्ञानके असम्भवसे उपदेशवैयर्थ्यादिरूप दोष नहीं, और भ्रमप्रतीत=भ्रमसे पूर्वमें प्रतीत जो भेद तादृशभेदाश्रयतावच्छेदक तथा प्रतियोगितावच्छेदक एतद्द्वयोपलक्षित जो स्वरूपमात्र तादृशस्वरूपमात्रविषयक ज्ञानको भेदभ्रमका निवर्त्तकत्व होनेसे विषयमें अवैलक्षण्य होनेपरभी फलमें वैलक्षण्य होनेसे; शङ्खश्वैत्यविषयक अनुमान तथा प्रत्यक्ष इन दोनोंको शङ्खनिष्ठश्वैत्यविषयत्वके तुल्य होनेपरभी तदनुमानानिवर्त्त्य=शङ्खश्वैत्यसाधक अनुमानसे अनिवर्त्त्य जो–प्रत्यक्षात्मकपीतभ्रम उस पीतभ्रमको तत्प्रत्यक्ष=शङ्खनिष्ठश्वैत्यविषयक प्रत्यक्षसे निवर्त्यत्व देखनेसे।

अत एवोक्तम्—विवरणे 'अभिज्ञातः प्रत्यभिज्ञायास्तावन्न प्रमेयतो विशेषः; अभिज्ञया ज्ञातस्यैव देवदत्तैक्यस्य प्रत्यभिज्ञयापि ग्रहणात् । नहि देवदत्तस्य स्वेनैक्यमभिज्ञायां न प्रतिभाति। नच तस्यैक्यान्तरमस्ति यदनभिज्ञातं प्रत्यभिज्ञायते । एकस्य कालद्वयसम्बन्धः प्रत्यभिज्ञागोचर इति चेन्न; ऐक्ये कालद्वयसम्बन्धस्य अभिज्ञाद्वयात् एव सिद्धेः। तस्मात् कालद्वयसम्बन्धिपदार्थैक्यविषयत्वे द्वयोरप्यविशिष्टे प्रत्यभिज्ञाया एव कालद्वयपरामर्शित्वेन भेदभ्रमनिवर्त्तकत्वात् प्रामाण्यं। उक्तञ्च कात्यायनेन, सिद्धन्तु निवर्त्तकत्वादिति।

अतएव विवरणमें कहा है—अभिज्ञातः=अभिज्ञासे प्रत्यभिज्ञाका प्रमेयतः विशेष नहीं है, अभिज्ञासे ज्ञात जो देवदत्तका ऐक्य उस ऐक्यकाही प्रत्यभिज्ञासेभी ग्रहण होनेसे। देवदत्तका अपने साथ जो ऐक्य है वह ऐक्य अभिज्ञामें नहीं भासित होता है यह बात नहीं है। और तस्य=देवदत्तनिष्ठ अन्य ऐक्य नहीं है जोकि प्रथम अनभिज्ञात होकर पश्चात् प्रत्यभिज्ञात होता है। एक पदार्थका जो कालद्वयके साथ सम्बन्ध है वह प्रत्यभिज्ञाका गोचर है, इति चेन्न; क्यों ? ऐक्यमें कालद्वयके सम्बन्धको अभिज्ञाद्वयसेही सिद्ध होनेसे। तस्मात् कालद्वयसम्बन्धि जो पदार्थैक्य, तादृश पदार्थैक्यविषयत्वके दोनोंमेंभी अविशिष्ट होनेपर प्रत्यभिज्ञाकोही कालद्वयपरामर्शित्व होनेसे पदार्थनिष्ठ भेदभ्रमका निवर्त्तकत्व है, अभिज्ञाको नहीं, इस रीतिसे, तत्त्वमसि इस वाक्यको सत्यादिवाक्यसे और स्वघटकतत्पदसे प्रमेयका वैलक्षण्य न होनेपरभी धर्मद्वयपरामर्शित्वेन भेदभ्रमनिवर्त्तकत्व होनेसे प्रामाण्य है। कहाभी है कात्यायन महर्षिने—सिद्धन्तु=व्याकरणका प्रामाण्य सिद्ध है, क्यों ? निवर्त्तकत्वात्=भ्रमनिवर्त्तकत्व होनेसे=शब्दोंके नित्यत्वके सिद्धान्तित होनेपर ज्ञातज्ञापकत्वेन व्याकरणके अप्रामाण्यकी शङ्का कर मृजादि धातुओंसे मृजन्ति आदिके साधुत्वके निश्चयका सम्भव होनेपरभी 'मार्ष्टि' इत्यादिके असाधुत्वभ्रमनिवृत्त्यर्थ व्याकरणका प्रामाण्य सिद्ध है। यह कात्यायनने कहा है, तैसे ज्ञातज्ञापकत्व होनेपरभी भ्रमविशेषनिवृत्तिरूप प्रयोजनका सत्त्व होनेसे तत्त्वमस्यादिका प्रामाण्य है यह भाव है।

स्यादेतत्—अभिज्ञया वस्तुतः एकस्मिन् कालद्वयसम्बन्धस्य देवदत्ताभेदस्य च ग्रहणेऽपि प्रत्यभिज्ञया एकस्मिन् कालद्वयसम्बन्ध इति वा, कालसम्बन्ध्येक इति वा ग्रहणेन प्रमेयत एव भेदः। नहीदमिति ज्ञानं वस्तुतः शुक्तौ शुक्त्यभेदग्राह्यपि इयं शुक्तिरिति ज्ञानवदिदंत्वशुक्तित्वाधार एक इत्याकारम्, अन्यथा तु फलतोऽपि विशेषो न स्यात; कालद्वयपरामर्शस्य भेदभ्रमेऽपि सत्त्वात्। एवं तत्वमसीत्यत्रापीति। उच्यते—नहि प्रत्यभिज्ञायामैक्यं प्रकार इति कस्यचिन्मतम्, तस्य स्वरूपत्वेन विशेष्यत्वात्। अभेदस्वरूपविषयत्वे तुल्ये तत्तेदन्तोभयप्रकारिका सेति तव मतम्, निष्प्रकारिकैवेति मम। एकत्वञ्च नैकत्वसङ्ख्या; गुणादावभावात्, तज्ज्ञानस्य भेदभ्रमाविरोधित्वाच्च किन्तु

भेदविरहरूपं स्वरूपमित्युक्तम् । अन्यथा तदभिलापकवाक्यमपि सोऽयमेक इति स्यात् नतु–सोऽयमिति ।

रहो यह–अभिज्ञासे वस्तुत: एकमें कालद्वयके सम्बन्धका और देवदत्ताभेदका ग्रहण होनेपरभी प्रत्यभिज्ञासे एकमें कालद्वयसम्बन्ध इस रीतिसे या कालद्वयसम्बन्धि एक, इस रीतिसे ग्रहण होनेसे प्रमेयत: ही भेद है । क्योंकि 'इदम्' यह ज्ञान वस्तुत: शुक्तिमें शुक्तिके अभेदको ग्रहण करता हुआभी 'इयं शुक्तिः' इस ज्ञानकी नाईं इदन्त्व शुक्तित्वका आधार एक है, इत्याकारक नहीं है=इयं शुक्तिः इस ज्ञानमें जैसे इदन्त्व शुक्तित्व एकाधारमें है इत्याकारत्व है तैसे 'इदम्' इस ज्ञानमें नहीं । अन्यथा फलसेभी विशेष न होगा, कालद्वयपरामर्शका भेद-भ्रममेंभी सत्त्व होनेसे । इसी रीतिसे 'तत्त्वमसि' यहाँपरभी । उच्यते=इस विषयमें कहा जाता है=प्रत्यभिज्ञामें ऐक्य प्रकार है यह किसीका मत नहीं है, तस्य=ऐक्यको स्वरूपता होनेसे,–विशेष्यत्व होनेसे । अभेदस्वरूपविषयत्वके तुल्य होनेपर तत्ता तथा इदन्ता एतदुभय-प्रकारिका सा=प्रत्यभिज्ञा है, ऐसा तुम्हारा मत है । और वह प्रत्यभिज्ञा निष्प्रकारिका ही है, ऐसा मेरा मत है । एकत्व एकत्वसङ्ख्यारूप नहीं है, गुणादिमें सङ्ख्यारूप एकत्वके अभावसे=गुणादिक निर्गुण माने जाते हैं, अत: गुणादिमें गुणरूप सङ्ख्या नहीं है और सङ्ख्यारूप–एकत्व-विषयक ज्ञानको भ्रमका अविरोधित्व होनेसेभी यह पक्ष ठीक नहीं । किन्तु भेदविरहरूप जो स्वरूप तद्रूपही ऐक्य है यह कहा है । अन्यथा=उक्तस्वरूप ऐक्यको न माननेपर तदभिलापक= प्रत्यभिज्ञाभिलापक वाक्यभी 'सोऽयमेक:' ऐसा हो जायगा न कि 'सोऽयम्' ऐसा ।

सोऽयमितिवाक्ये त्वैक्यस्य प्रकारत्वं तत्प्रतिपादकपदाभावादेव दूरनिरस्तम् । भेदभ्रमे कालद्वयपरामर्शेऽपि भ्रमप्रतीतभेदाश्रयतावच्छेदकेत्यादिनिरुक्तफलवैलक्षण्य-मुपपन्नमेव, । अत एव उपाधिभेदभिन्नार्थो येनैकः प्रतिपाद्यते । तदपि स्यादखण्डार्थं महत् खं कुम्भकं यथा ॥ इत्यादि कल्पतरूक्तं 'घटाकाशो महाकाश इत्युक्तेश्चैक्यधीर्य-थे'ति वार्तिकञ्च निरवद्यं तथाच तत्त्वमसि वाक्यमखण्डार्थम् । उपाधिभेदभिन्नेऽर्थे ऐक्य-प्रतिपादकत्वात्, घटखं महाखमिति वाक्यवदित्युक्तं भवति । एवञ्च सत्यज्ञानादिगीरे-तत्संसर्गव्यतिरेकिणि अर्थे प्रमाणम्, मानत्वात्, नयनादिप्रमाणवत् (चि० परि० १ का० २०) इति चित्सुखाचार्योक्तमपि-साधु । सत्यादिवाक्यमेतत्पदार्थसंसर्गव्यतिरि-क्त एवार्थेप्रमाणमिति सावधारणं साध्यं विवक्षितम्, तेन संसर्गातिरिक्तसंसर्गिण्यपि प्रामाण्याङ्गीकारात् न सिद्धसाधनम् । कण्टकोद्धारस्तु पूर्ववत् । एवमन्येषामपि प्रयोगाः यथायथमुपपादनीयाः ॥

और 'सोऽयम्' इस वाक्यमें ऐक्यका प्रकारत्व तो तत्प्रतिपादक=प्रकारत्वप्रतिपा-दक पदके अभावसे ही दूरमें निरस्त है । भेदभ्रममें कालद्वयका परामर्श होनेपरभी भ्रमप्रतीत-भेदाश्रयतावच्छेदक इत्यादि निरुक्त फलका वैलक्षण्य उपपन्न ही है । अतएव=उक्त क्रमसे व्यव-

स्थाके दोषरहितत्वसे ही, उपाधिभेदसे भिन्न हुआ अर्थ जिस वाक्यसे अभेदरूपसे प्रतिपादन किया जाता है तदपि=वह वाक्यभी अखण्डार्थक होता है, जैसे कि 'महत्खं, कुम्भखम्' इत्यादि वाक्य हैं, इत्यादि कल्पतरूक्त निर्दोष है, और घटाकाश महाकाश इस उक्तिसे जैसे ऐक्यधी होती है यह वार्तिकभी निर्दोष है फलितार्थ दिखलाते हैं-तथा चेति। तत्त्वमस्यादि वाक्य, अखण्डार्थनिष्ठ है, उपाधिभेदभिन्नार्थमें ऐक्यप्रतिपादकत्व होनेसे 'घटखं महाखं' इति वाक्यवत्; यह कहा हुआ होता है। एवञ्च=और ऐसा होनेपर सत्यज्ञानादिगीः= सत्यंज्ञानमित्यादिवाक्य एतत्संसर्गव्यतिरेकिणि=सत्यादिपदार्थप्रतियोगिकानुयोगिक जो संसर्ग तादृश संसर्गसे अतिरिक्त=भिन्न जो अर्थ तादृश अर्थमें प्रमाण है, मानत्वात्=प्रमाणत्व होनेसे नयनादिप्रमाणवत्, यह चित्सुखाचार्यसे उक्तभी साधु है। सत्यादिवाक्य एतत्पदार्थसंसर्ग-व्यतिरिक्तार्थमें ही प्रमाण हैं इस रीतिसे सावधारण साध्य विवक्षित है, ततः संसर्गसे अतिरिक्त संसर्गिमेंभी प्रामाण्यका अङ्गीकार होनेसे सिद्धसाधन नहीं है, और दोषोंका उद्धारतो पूर्ववत् ही है। इस रीतिसे यथायोग्य अन्योंकेभी प्रयोग उपपादनीय हैं।

तस्मात् वृथा रोदिषि मन्दबुद्धे तव भ्रमादेव हि दुःखमेतत्। तस्यापनोदो विहितः प्रमाणैस्तुभ्यं तु रोचेत स नेति चित्रम्॥ मानं वेदान्तवाक्यानि निर्गुणाखण्डबोधनात्। निर्गुणत्वं च तस्योक्तं श्रुत्या युक्तिसहायया॥ इह कुमतिरतत्त्वे तत्त्ववादी वराकः प्रलपति यदकाण्डे खण्डनाभासमुच्चैः। प्रतिवचनममुष्मै तस्य को वक्तु विद्वान् नहि रुतमनुरौति ग्रामसिंहस्य सिंहः॥

इत्यद्वैतसिद्धौ तत्त्वमस्यादिमहावाक्यस्याखण्डार्थत्वोपपत्तिः।

ब्रह्ममोक्षपराङ्मुख प्रपञ्चाभिनिवेशी द्वैतीको उद्देश्यकर सिद्धान्तीसे कहा जाता है-यतः समस्तसंसारध्वंसक जीवब्रह्मैक्यज्ञान सर्वथा निर्दोष है, ततः अन्तःस्थ निधिको न जाननेवाला तू मन्दबुद्धि वृथा ही आनन्दमार्गमें असन्तुष्ट हुआ रोदन करता है, अनुजिघृक्षावशंवदत्वेन, आचार्य्यश्री विरुद्धाभिनिवेशी द्वैतीकोभी मार्ग बतलाये देते हैं-तव भ्रमादेव हि=तुझको तेरे निजरूपके भ्रमसे ही यह दुःख प्रतीत हो रहा है=जबतक तेरा वेदविरुद्धार्थरूप द्वैतमें अभिनिवेश है तबतक तुझको रागद्वेषरूप पिशाच नहीं छोड सकते हैं और जबतक मनुष्य इन पिशाचोंके पञ्जेमें है तबतक उसे शान्ति कहाँ? अतः अपने स्वरूपको एकबार दुराग्रह छोड़कर समझ तब ब्रह्मानन्दमें निमग्न हुआ तू जिन्हेंके मतोंका आश्रयणकर पुरुषार्थसे पराङ्मुख होता है उन्होंकी विप्रलम्भकताको स्पष्ट जान लेगा और फिर उन्होंके कुत्सिननयनगरमें प्रवेशकी इच्छा न करेगा इत्यादि तात्पर्य है। तस्य=उस तेरे भ्रमका अपनोद=ध्वंस प्रमाणोंसे कहा है सः= वह अपनोद तुझको नहीं रुचिकर हो तो कोई आश्चर्य नहीं=जिस पुरुषमें अच्छे या बुरे जो संस्कार दृढ़ हो जाते हैं वे तुरत नहीं ध्वस्त होते हैं; विशेषतया अशास्त्रीय संस्कार तो शीघ्र नहीं ही नष्ट होते हैं, इसी अभिप्रायसे पद्यका चतुर्थ पाद है। इस प्रकरणके अर्थको संगृहीतकर

दिखलाते हैं–मानमिति निर्गुण तथा अखण्ड जो ब्रह्म तादृश ब्रह्मके बोधनसें वेदान्त प्रमाण हैं। और युक्तिसहकृत श्रुतिसे तस्य=ब्रह्मका निर्गुणत्व कहा है यहाँपर द्वैतीने अद्वैतवादिओंको अनभिमत ऐसें कितनेही विकल्प खडेकर बड़ा अकाण्डताण्डव किया है परन्तु वह फलशून्य है, और उसमें कोई ज्ञातव्य नई बातभी नहीं है, अतः इस ताण्डवकी उपेक्षा करना ही ठीक है, इस अभिप्रायसें कहते हैं–इह=प्रकृतविषयमें अतत्त्वे तत्त्ववादी=इसको जो तत्त्व वस्तुतः अभिप्रेत नहीं है उसे अस्मदीयसिद्धान्तत्वेन कहनेवाला=अथवा आह्वालिकादिसुप्रसिद्ध भेदादि पदार्थोंको तत्त्व कहनेवाला=अतः=वराकः=पुरुषार्थशून्य, कुमतिः=तर्कोंसे वैदिक अर्थोंको बिगाडकर जगत्में अनर्थ फैलानेवाला द्वैती अकाण्डमें यत्=जो खण्डनाभासका उच्चैः=करभादिवत् उच्चैःव होकर प्रलाप करता है, उस द्वैतीके प्रलापके लिए कौन विद्वान् प्रतिवचनम्=उत्तरको कहेगा, क्योंकि ग्रामसिंहस्य=सारमेयके शब्दके पीछे सिंह शब्द नहीं करता है, अन्यथा २ बकने वालोंके साथ विद्वान् लोग विचार करना नहीं चाहते हैं, जितना कथन उसका प्रकृतसे सम्बन्ध रखता ही उतनेका उत्तर देना उचित है।

इति सरलायां तत्त्वमस्यादिमहावाक्याखण्डार्थत्वोपपत्तिः ।

अथ ब्रह्मनिर्गुणत्वोपपत्तिः ।

कैवल्यश्रुत्या तावदात्मा निर्गुणः । ननु—'बृहन्तोऽस्यधर्मा' इति श्रुत्या 'ब्रह्मेशानादिभिर्देवैः समेतैः यद्गुणांशकः । नावसाययितुं शक्यो व्याचक्षाणैश्च सर्वदा ॥' इति स्मृत्या च; ब्रह्म, धर्मवत् पदार्थत्वादित्याद्यनुमानेन च स्वसमानसत्ताकधर्मवत् ब्रह्मेति–चेत्, मैवम्; न तावच्छ्रुत्या सगुणत्वसिद्धिः । सगुणप्रकरणस्थाया उपास्तिविधिविषयविशेषणसमर्पकत्वेन तत्परत्वाभावात् । नचापूर्वत्वात् सत्यकामादौ विशेषणे तात्पर्य्यम् अपूर्वत्वेऽप्यन्यशेषस्यातत्परत्वदर्शनात्, तथाहि–जर्तिलयवाग्वा वा जुहुयात् गवीधुकयवाग्वा वा जुहुयादित्यादौ जर्तिलयवाग्वादेर्होमसाधनत्वस्य 'अनाहुतिर्वै जर्तिलाश्च गवां धुकाश्चेति निन्दायाश्च' अजक्षीरेण जुहोतीतिविध्येकवाक्यतया अतत्परत्वं, तथैवात्राप्युपपत्तेः; निर्गुणप्रकरणस्थायास्तु अद्वितीयब्रह्मप्रतिपत्त्यनुकूलनिषेधापेक्षितविषयसमर्पकतया अन्यथासिद्धेः ।

अथ सरलायां ब्रह्मनिर्गुणत्वोपपत्तिः ।

कैवल्यश्रुत्या='केवलो निर्गुणश्च' (श्वे० ६।११) इस श्रुतिसे आत्मा निर्गुण सिद्ध है। शङ्कते नन्विति । अस्य=इस ब्रह्मके बडे २ धर्म हैं 'बृहन्तोऽस्य धर्माः' इस श्रुतिसे और सर्वदा व्याख्यान करनेवाले और सम्मिलित ऐसें जो ब्रह्मशिवादिक देव हैं उन देवोंसे जिसके गुणके एकदेशका निश्चय करनेके लिए शक्य नहीं है। इस स्मृतिसे और ब्रह्म, धर्मवत्, पदार्थत्वात्, घटवत् इत्यादि अनुमानसे । स्वसमान=ब्रह्मसमानसत्ताक जो धर्म तादृश

धर्मवाला ब्रह्म है=यहाँपर द्वैतीने धर्ममें जो 'स्वसमानसत्ताकत्व विशेषण लगा लिया है उसका तात्पर्य्य यह है कि उक्तधर्मबोधक श्रुतिस्मृत्यादिकका कोई बाधक नहीं है, अतः उन्होंसे एवम्भूतधर्म सिद्ध होता है। इतिचेत् मैवम्; क्योंकि प्रथमतः श्रुतिसे ब्रह्ममें सगुणत्वकी सिद्धि नहीं है। क्यों? सगुणप्रकरणमें स्थित जो श्रुति उस श्रुतिको उपासना विधिका विषयीभूत जो ब्रह्मांश उस ब्रह्मांशमें विशेषण=प्रकारीभूत जो धर्म तादृशधर्मसमर्पकत्व होनेसे तत्परत्वाभावात्=गुणपरत्वके अभावसे=ब्रह्ममें धर्मविशेषप्रकारकउपासनाविधायकत्व उक्त श्रुतिको है ब्रह्ममें धर्मवैशिष्ट्यविधानमें उसका तात्पर्य नहीं यह भाव है। अपूर्वत्वात्=प्रमाणान्तरसे अबाधितत्व होनेसे और प्रमाणान्तरसे अप्राप्तत्व होनेसे सत्यकामादिरूप विशेषणमें श्रुतिका तात्पर्य्य है नच=ऐसा तात्पर्य्य नहीं है; क्यों अपूर्वता होनेपरभी अन्यशेषका अतत्परत्व देखनेसे यथाहि 'जर्तिलयवाग्वा वा जुहुयात्' गवीधुकयवाग्वावा जुहुयात् इत्यादिमें जर्तिलयवाग्वादिके होमसाधनत्वका 'अजक्षीरेण जुहोति' इत्याकारक जो विधि तादृश विधिके साथ एकवाक्यत्वेन अतत्परत्व है और अनाहुतिर्वै जर्तिलाश्च गवीधुकाश्च इसनिन्दाका अजक्षीरेण जुहोति इत्याकारक जो विधि तादृशविध्येकवाक्यत्वेन अतत्परत्व है, तिसी रीतिसे प्रकृतमें उपपत्ति होनेसे; उपरोक्तविषयका विचार जै० मी० अध्याय १० पा० ८ अधि० ४ में है; जङ्गली तिलोंका नाम जर्तिल है, और जङ्गली गेहुओंका नाम–गवीधुक है, और निर्गुणप्रकरणस्थ सगुणश्रुतिको तो अद्वितीयब्रह्मविषयक जो प्रतिपत्ति तादृश प्रतिपत्त्यनुकूल जो निषेध तादृश निषेधको अपेक्षित जो विषय=प्रतियोगि तादृशप्रतियोगिसमर्पकतया अन्यथासिद्ध होनेसे सगुणत्वके प्रति साधकत्व नहीं है।

नच—किञ्चनेत्यादिसामान्यवाचकपदेनैव ब्रह्मातिरिक्तसर्वनिषेध्योपस्थितौ विशेषग्रहणमनर्थकम् इति वाच्यम्, अलौकिकतया वाक्यप्रमेयत्वभ्रमव्युदासार्थत्वात्। अतएव श्रुतिप्राप्तस्य श्रुत्या निषेधे अहिंसावाक्यम्, अग्नीषोमीयहिंसायाः अग्रहणवाक्यञ्च षोडशिग्रहणस्य असद्वेत्यादिवाक्यं ब्रह्मसत्त्वस्य भेदवाक्यं चैक्यस्य निषेधकं स्यादिति–निरस्तम् प्रकृते श्रुतिप्राप्तस्यैवाभावात्। श्रुतिप्राप्तत्वं हि न तत्प्रसक्तत्वम्; अतिप्रसङ्गात्; तत्प्रमितत्वस्य च प्रकृते अभावात्। अहिंसावाक्यस्यावैधहिंसाविषयत्वेन समानविषयत्वाभावात्, समानविषयत्वे ग्रहणाग्रहणवद्विकल्पापत्तेः। ग्रहणाग्रहणवाक्ययोस्तु सत्यपि समानविषयत्वे एकस्याधिकबलत्वाभावेन बाध्यबाधकभावस्यासंभावितत्वात् अन्यथा विकल्पानाश्रयणप्रसङ्गात्। असद्वाक्यभेदवाक्ययोस्तु न ब्रह्मसत्त्वैक्यनिषेधकता, सत्त्वैक्यबोधकयोरेव तत्परत्वेन प्राबल्यात्।

शङ्कते नन्विति। किञ्चन, इत्यादि सामान्यवाचक जो पद है तादृशसामान्यवाचकपदसेही ब्रह्मसे अतिरिक्त सर्व निषेध्यकी उपस्थिति होनेपर विशेषरूपसे ग्रहण अनर्थक है इति नच वाच्यम् क्यों? अलौकिकत्वेन सगुणोपासनावाक्यप्रमेयत्वका जो भ्रम तादृशभ्रमका

व्युदासार्थत्व होनेसे=सत्यकामादिक धर्म अलौकिक हैं अतः सगुणोपासनाविधिका इन्होंमें तात्पर्य्य होगा, इस भ्रमकी निवृत्तिके लिए निर्गुणप्रकरणमें निषेधके लिए धर्मोंका नाम आया है। अत एव=श्रुतिसे प्राप्तका श्रुतिसे निषेध होनेपर अहिंसावाक्य अग्नीषोमीय हिंसाका निषेधक होगा, अग्रहणवाक्य षोडशिग्रहणका निषेधक होगा, 'असद्वा' इत्यादिवाक्य ब्रह्मसत्वका निषेधक होगा, यह कथन खण्डित हुआ, अतएव शब्दका अर्थ दिखलाते हैं–प्रकृतमें श्रुतिसे प्राप्तके ही अभावसे। क्योंकि श्रुतिप्राप्तत्व तत्प्रसक्तत्व=श्रुतिप्रसक्तत्वरूप नहीं है, अतिप्रसङ्ग होनेसे= श्रुतिसे प्रसक्तका श्रुतिसे निषेध होनेपर विकल्पका स्वीकार होता है, ऐसा होनेपर 'न कलञ्जं भक्षयेत्' एतद्वाक्यघटक 'कलञ्जं भक्षयेत्' इस अंशकोभी प्रमाणान्तरसे प्राप्त जो कलञ्जभक्षण तादृशकलञ्जभक्षणानुवादित्वेन कलञ्जभक्षणप्रसञ्जकत्व होनेसे यहांपर विकल्पकी प्रसक्ति है, इसीका नाम है यहाँपर अतिप्रसङ्ग। और श्रुतिप्रमितत्वरूप श्रुतिप्रसक्तत्वका प्रकृतमें अभाव होनेसे। और अहिंसावाक्यको अवैधहिंसाविषयत्व होनेसे, समानविषयत्वके अभावसे अग्नीषोमीयहिंसानिषेधकत्व नहीं है समानविषयत्व होनेपर ग्रहण–तथा अग्रहण इन दोनोंकी तरह विकल्पकी आपत्ति है=जैसे अतिरात्रनामक कर्ममें षोडशिग्रहणाग्रहणका विकल्प होता है वैसाही अग्नीषोमीयकर्ममें हिंसा अहिंसाका होगा। और ग्रहणवाक्य तथा अग्रहणवाक्य इन दोनोंको समानविषयत्व होनेपरभी एकमें अधिकबलत्वके अभावसे बाध्यबाधकभावको असंभावितत्व होनेसे अन्यथा=उक्तविधविषयमें बाध्यबाधकभावको सम्भावितत्व होनेपर विकल्पके अनाश्रयणके प्रसङ्गसे। और असत्प्रतिपादकवाक्य तथा भेदप्रतिपादकवाक्य इन दोनोंको तो क्रमशः ब्रह्मसत्त्वनिषेधकता और ऐक्यनिषेधकता नहीं है, क्यों? सत्त्वबोधक तथा ऐक्यबोधक इन दोनोंको ही सत्त्वपरत्व तथा ऐक्यपरत्व होनेसे, प्राबल्य होनेसे।

नाप्यनुमानं ब्रह्मणि तात्त्विकधर्मसाधनायालम्। तथाहि—ब्रह्म, धर्मिसत्तासमानसत्ताकधर्मवत्, उक्तसत्ताकभावरूपधर्मवद्वा, यावत्स्वरूपमनुवर्त्तमानधर्मवद्वा, तादृशभावरूपधर्मवद्वा, स्वज्ञानाबाध्यधर्मवद्वा, तादृशभावरूपधर्मवद्वा, धर्मैर्भावरूपधर्मैर्वा हीनं नावतिष्ठते वा, पदार्थत्वात्, अथवा, भावत्वात्, घटवत्। ब्रह्म स्वज्ञानाबाध्यप्रकारवत्, स्वारोपितव्यावर्त्तकस्वज्ञानाबाध्यप्रकारवद्वा, अधिष्ठानत्वात्, शक्तिवत्, ब्रह्म, स्वज्ञानाबाध्यदुःखव्यावर्त्तकधर्मवत् दुःखानात्मकत्वात्, घटवत्, ब्रह्म, स्वज्ञानाबाध्यप्रकारविशेष्यम्, सन्दिग्धत्वात् विचार्यत्वात् निर्णेतव्यत्वाद्वा, स्थाणुवत्, ब्रह्म, वेदान्ततात्पर्य्यगोचरप्रकारवत् वेदान्तविचारविषयत्वात्, यदेवं तदेवम् यथा कर्मकाण्डविचारविषयो धर्मः। ईश्वरः सदावाप्तसमस्तकल्याणगुणः, सदा प्रेप्सुत्वे सति तत्र शक्तत्वात्, यो यदा यत् प्रेप्सुर्यत्र शक्तः स तदा तद्वान यथा चैत्रः। ईश्वरः सदा त्यक्तसमस्तदोषः, सदा तज्जिहासुत्वे सति तत्त्यागे शक्तत्वात्, यश्चैवं स तथा यथा चैत्रइत्याद्यनुमानेषु धर्मिपदस्वपदयोर्येत्किञ्चित्धर्मियत्किञ्चित्सम्बन्धिपरत्वे घटादिसमसत्ताककल्पितधर्मवत्त्वेन सिद्धसाधनम्–ब्रह्मपरत्वे साध्याप्रसिद्धिः, घटादिधर्मे ब्रह्मसमानसत्ताकत्वादेरप्रसिद्धेः।

तैसे अनुमानभी ब्रह्ममें तात्त्विकधर्मसाधनमें समर्थ नहीं है। तथाहि—अनुमानोंका अनुवादकर दोष दिखलाते हैं,—ब्रह्म, धर्मि जो ब्रह्म तादृश ब्रह्मकी सत्ताके समान सत्ता है जिसकी ऐसा जो धर्म उस धर्मका नाम है धर्मिसत्तासमानसत्ताक धर्म तादृश धर्मवाला है, श्रीमण्डनमिश्रके मतमें ब्रह्ममें रहनेवाला द्वैताभाव सत्य है, उसको लेके अर्थान्तर है उस अर्थान्तरके वारणके लिए द्वैती उक्तधर्ममें भावभूत विशेषण देता है, इसी रीतिसे आगेके अनुमानोंमेंभी भावभूतकी व्यावृत्ति समझनी चाहिए, या उक्तसत्ताक=धर्मिसत्तासमानसत्ताक जो भावभूत धर्म तादृश धर्मवाला है। अथवा यावत्कालको अवधिकर ब्रह्मका स्वरूप है, तावत् कालको अवधिकर अनुवर्त्तमान जो धर्म तादृश धर्मवाला ब्रह्म है, उक्त द्वैताभावको लेकर अर्थान्तर वारणके लिए कहते हैं—अथवा, तादृश=यावत्स्वरूपमनुवर्त्तमान जो भावरूप धर्म तादृश धर्मवाला है, स्वज्ञान=ब्रह्मविषयकापरोक्षज्ञानसे अबाध्य जो धर्म तादृश धर्मवाला है, अथवा, स्वज्ञानाबाध्यभावरूप धर्मवाला है, या धर्मोंसे रहित होकर नहीं स्थित होता है, या भावरूप धर्मोंसे रहित होकर नहीं स्थित होता है सर्वत्र हेतु दिखलाते हैं—पदार्थत्वात्=पदार्थत्व होनेसे, पदवाच्यत्वरूप पदार्थत्वका शुद्ध ब्रह्ममें अभाव है, अतः कहते हैं भावत्वात्=सत्तादात्म्य प्रतियोगित्व होनेसे घटादिकी तरह सद्रूप ब्रह्ममेंभी उक्तप्रतियोगित्व असिद्ध नहीं है, घटवत्= घटमें हेतु तथा साध्य इन दोनोंका सद्भाव है, अतः उसे दृष्टान्तता है। ब्रह्म स्व=ब्रह्मज्ञानाबाध्य जो प्रकार तादृश प्रकारवत् है, स्वज्ञानसे अबाध्य जो अज्ञानका नाशरूप पञ्चमप्रकार उस प्रकारको लेकर होनेवाले अर्थान्तरको वारणके लिए कहते हैं स्वारोपितेति। स्वस्मिन् आरोपितं इति स्वारोपितम्=अनृतत्वादिकम्, स्वारोपितात् स्वस्य व्यावर्त्तकम् स्वज्ञानाबाध्यश्च यत्= सत्यत्वादिकम्, तद्भिन्नप्रकारवत् है, अधिष्ठानत्वात्=अधिष्ठानत्व होनेसे शुक्तिवत्=दृष्टान्तमें स्वारोपित धर्म रजतत्व है उससे व्यावर्त्तक और स्वज्ञानाबाध्य धर्म शुक्तित्व तादृश धर्मरूप प्रकारवत्ता शुक्तिमें है=इस अनुमानमें ब्रह्म, यदि तादृशप्रकारवाला न होगा तो किञ्चित्प्रकारक-भ्रमनिवर्त्तक जो ज्ञान उस ज्ञानका विशेष्य न होगा, इस तर्कको नामके लिए प्रकारका ग्रहण है, ब्रह्म स्वज्ञानसे अबाध्य और दुःखका व्यावर्त्तक ऐसा जो धर्म तादृश धर्मवाला है, दुःखात्मकत्व न होनेसे, घटवत्, ब्रह्म स्वज्ञानसे अबाध्य जो प्रकार तादृश प्रकारका विशेष्य है, सन्दिग्धत्व होनेसे विचार्यत्व होनेसे, निर्णेतव्यत्व होनेसे, स्थाणुवत्; ब्रह्म वेदान्तके तात्पर्यका विषय ऐसा जो प्रकार तादृश प्रकारवाला है, वेदान्तविचारविषयत्व होनेसे, यदेवम्=जो यद्विचारविषयत्ववाला होता है तदेवम्=वह तद्विचारगोचरप्रकारवाला होता है, जैसे कर्मकाण्ड-विचारविषय धर्म। ईश्वर सर्वकालमें प्राप्तसमस्तकल्याण गुण है, सर्वकालमें उक्त गुणोंकी प्राप्तिकी इच्छावाला होता हुआ तत्र=उक्तविध गुणोंकी प्राप्तिमें शक्तत्व होनेसे जो जिस कालमें यद्विषयक प्रेप्सावाला होता है और जिसमें शक्त होता है वह उस कालमें तद्वान् होता है जैसे चैत्र। ईश्वर, सर्वकालमें त्यक्तसमस्त दोष है, सर्वदा तज्जिहासावाला होता है तत्त्यागे= समस्त दोषोंके त्यागमें शक्त होनेसे, जो ऐसा है वह तैसा है=जो उक्त हेतुमान् है वह उक्त

साध्यवान् है, जैसे चैत्र; इत्यादि अनुमानोंमें धर्मिपद तथा स्वपद इन दोनोंको यत्किञ्चिद्धर्मिपरत्व और यत्किञ्चित्सम्बन्धिपरत्व होनेपर घटादिसमसत्ताककल्पितधर्मवत्त्व होनेसे सिद्धसाधन है, और धर्मिपद तथा स्वपद इन दोनोंको ब्रह्मपरत्व होनेपर पक्षातिरिक्त स्थलमें साध्यकी अप्रसिद्धि है । घटादिनिष्ठघटत्वादि धर्ममें ब्रह्मसमानसत्ताकत्वादिकी अप्रसिद्धिसे।

नच—दृष्टान्ते साध्यनिरूपणे तदेव धर्मी, पक्षे तन्निरूपणे ब्रह्मैव धर्मी, धर्मिपदस्वपदादीनां समभिव्याहृतपरत्वादिति—वाच्यम्; शब्दस्वभावोपन्यासस्यानुमानं प्रत्यप्रयोजकत्वात्। स्वरूपपदस्याप्येवमेव ब्रह्मपरत्वे साध्याप्रसिद्धिः घटादिपरत्वे सिद्धसाधनम्। समभिव्याहृतपरत्वस्य शब्दस्वभावस्यानुमानं प्रति अप्रयोजकत्वमिति दूषणं पूर्ववत्। धर्मैर्विना नावतिष्ठत इत्यस्य ब्रह्म धर्मव्याप्तमित्यर्थः। तथा च, सिद्धसाधनम्, यस्मिन्काले देशे वा ब्रह्म, तत्र धर्माः सन्त्येव। नहि कालो देशो वा धर्मरहितः; मायाचित्सम्बन्धस्य कालस्य मुक्त्यसहवृत्तित्वात्। स्वज्ञानाबाध्यइत्यत्रापि पूर्ववत् स्वपदार्थविकल्पः। अतएव—स्वारोपितव्यावर्त्तकस्वज्ञानाबाध्यधर्मवदिति—निरस्तम्; स्वज्ञानाबाध्यदुःखव्यावर्त्तकधर्मवदित्यत्रापि स्वपदार्थविकल्पः पूर्ववत् दुःखव्यावर्त्तकधर्मवत्त्वेन सिद्धसाधनम्। वेदान्ततात्पर्यगोचरेत्यत्रावान्तरतात्पर्यमादाय सिद्धसाधनम्। मुख्यतस्तात्पर्योक्तौ च वेदान्तवाक्यमुख्यतात्पर्यविषयप्रकाराप्रसिद्ध्या साध्याप्रसिद्धिः, न च यत्तद्भ्यामनुगमय्यसाध्यप्रसिद्धिः तथा शब्दानुगमस्यानुमानं प्रत्यनुपयोगात्।

शङ्कते नचेति। दृष्टान्ते साध्यनिरूपणे=उदाहरण वाक्यमें तदेव दृष्टान्त ही धर्मी=धर्मिपदका अर्थ है, पक्षे तन्निरूपणे=प्रतिज्ञावाक्यमें तथा निगमनवाक्यमें ब्रह्म ही धर्मी=धर्मिपदका अर्थ है, धर्मिपदस्वपदादिकोंको समभिव्याहृतपरत्व होनेसे, इति नच वाच्यम्; क्यो? उक्त शब्दस्वभावोपन्यासको अनुमानके प्रति अप्रयोजकत्व होनेसे=पर्वतः अरुणवह्निमान् धूमात् यो यो धूमवान् स शुक्लवह्निमान्, इत्यादि वाक्यका अनुमानमें उपयोग नहीं हैं। क्योंकि जिसरूपसे साध्य प्रतिज्ञात है उसी रूपसे हेतुके प्रति साध्यका व्यापकत्व उदाहरणमें प्रदर्शनीय है, अतः प्रतिज्ञावाक्यमें पक्षरूपधर्मिपदार्थबोधकत्वेन साध्यबोधकता है और उदाहरणमें दृष्टान्तरूपधर्मिपदार्थबोधकत्वेन साध्यबोधकता है, यह शब्दस्वभाव अनुमानमें पर्यवसायी नहीं है यह भाव है। और स्वरूपपदकोभी इसी रीतिसे ब्रह्मपरत्व होनेपर साध्यकी अप्रसिद्धि है और स्वरूपपदको घटादिपरत्व होनेपर सिद्धसाधन है। और समभिव्याहृतपरत्वरूप शब्दस्वभावका अनुमानके प्रति अप्रयोजकत्व है, इस रीतिसे दूषण पूर्ववत् है। और ब्रह्म धर्मोंसे विना स्थित नहीं होता है, इसका ब्रह्म धर्मव्याप्त है, यह अर्थ है, फलतः सिद्धसाधन है सिद्धसाधन दिखलाते हैं—जिस देशमें या जिसकालमें ब्रह्म है उस देशमें और उस कालमें धर्म है ही। क्योंकि काल, या देश धर्मसे रहित नहीं है; मायाचित्सम्बन्धरूपकालको मुक्तिके साथमें रहनेवाला न होनेसे। स्वज्ञानाबाध्यप्रकारवन् इस अनुमानमेंभी स्वपदार्थमें विकल्प है, और विकल्प होनेसे

पूर्ववत् दोष है। अतएव=उक्तपक्षोक्त दोषके सद्भावसेही, स्वारोपित, इत्यादिसाध्यकानुमानभी उद्‌धृत हुआ। स्वज्ञानाबाध्यदुःखव्यावर्त्तकधर्मवत्, इस अनुमानमेंभी स्वपदार्थमें विकल्प पूर्ववत् है। और दुःखव्यावर्त्तक धर्मवत्त्वेन सिद्धसाधन है=ऐसा धर्म ब्रह्ममें आनन्दत्वरूप माना ही जाता है, अतः उसको लेकर सिद्धसाधन है। वेदान्ततात्पर्य्यगोचर इत्यादि अनुमानमें-वेदान्तका जो अवान्तर तात्पर्य्य तादृशतात्पर्य्यका गोचर जो प्रकार उस प्रकारको साध्यता होनेपर सिद्धसाधन है–क्योंकि हमलोग ब्रह्मवृत्ति सत्यत्वादिमें वेदान्तावान्तरतात्पर्य्यगोचरत्व मानते हैं। और मुख्यरूपसे तात्पर्य्यकी उक्ति होनेपर तो वेदान्तवाक्योंका जो मुख्यतात्पर्य्य तादृश तात्पर्य्यका विषय जो प्रकार तादृश प्रकारकी अप्रसिद्धिसे साध्यकी अप्रसिद्धि है। यत् तथा तत् इन दोनोंसे अनुगम कर साध्यकी प्रसिद्धि है=यत्त्व तथा तत्त्व इन दोनोंको प्राचीनोंके मतमें अनुगतत्व होनेसे 'यः यद्विचारविषयः स तत्तात्पर्य्यविषयप्रकारवान्' इत्याकारिका सामान्यमुखीव्याप्ति ग्रहण करनेके लिए शक्य है, अतः विशेषतः वेदान्तमुख्यतात्पर्य्य-विषयप्रकारत्वेन जो साध्यकी अप्रसिद्धि वह साध्यकी अप्रसिद्धि प्रकृतमें व्याप्तिग्रहकी विरोधिनी नहीं है यह द्वैतीका भाव है; शब्दानुगममात्र यह है, अनुमानमें यत्त्व तथा तत्त्वके अनुगतत्वमें मानका अभाव होनेसे, इस आशयसे कहते हैं–नच=ऐसा नहीं बन सकता है, क्यों? तथा शब्दानुगमको अनुमानके प्रति अनुपयोग होनेसे=यत्त्व तथा तत्त्व इन दोनोंको अनुगतत्व होनेसे व्याप्तिग्रहका सम्भव होनेपरभी अनुमितिमें विशेषरूपसे साध्यभानको आवश्यकत्व होनेसे अनुमितिविरोधित्व साध्याप्रसिद्धिको है ही।

ईश्वरः सदावाप्तसमस्तकल्याणगुणः इत्यत्र कालं व्याप्य आप्तगुणत्वस्यास्माभिरप्यङ्गीकारात्। नहि निर्धर्मकतायां सत्यां कालसम्बन्धोऽस्ति। किंच शुद्धस्य पक्षीकरणे हेत्वसिद्धिः, उपहितस्य पक्षीकरणे अर्थान्तरम्, स्वाभिन्नाप्तसमस्तकल्याणगुणत्वेन सधर्मकत्वायोगाच्च, सिद्धसाधनाच्च, कल्याणगुणानामानन्दादीनां नित्यत्वेन तत्प्रेप्सायास्तत्र सामर्थ्यस्य च त्वयापि वक्तुमशक्यत्वाच्च। अतएव प्रेप्सादिकं प्रज्ञानघनत्वादितिनिरस्तम्। सदा त्यक्तसमस्तदोषत्वे साध्ये चरमवृत्तिपर्य्यन्तत्यागे सामर्थ्याभावेन हेत्वसिद्धेः; यदा तु तत्सामर्थ्यं, तदा त्यक्तदोषत्वमिष्टमेव। प्रकारवत्त्वादौ साध्ये अप्रयोजकत्वमपि। नच अधिष्ठानत्वसन्दिग्धत्वाद्यनुपपत्तिरेवानुकूलस्तर्कः; अधिष्ठानत्वे हि स्वारोपितव्यावर्त्तकवत्त्वं तन्त्रं कल्पिताकल्पितसाधारणमित्युक्तत्वात्, स्वज्ञानाबाध्यत्व-विशिष्टधर्मं विना तस्यानुपपत्त्यभावात्।

ईश्वर सदा अवाप्तसमस्तकल्याण गुण है, इत्यत्र=यहाँपर कालको व्याप्तकर=कालिक व्याप्त्या आप्तगुणत्वका हमसेभी अङ्गीकार होनेसे=जिस कालमें ईश्वर है उस कालमें आप्तसमस्तकल्याणगुण है, ऐसा नियम अङ्गीकार करनेमें हम लोगोंको इष्टापत्ति है। और निर्धर्मकता होनेपर तो कालका सम्बन्ध नहीं है। किञ्च=और भी कहना है, शुद्ध ब्रह्मको पक्ष बनानेपर

हेतुकी असिद्धि है=त्वदुक्त हेतु उपहितमें है, न कि शुद्धमें अतः पक्षीभूतमें हेत्वसिद्धि है। और उपहितको पक्ष बनानेमें अर्थान्तर है=अनुपहितके निर्गुणत्वमें कोईभी अनुपपत्ति नहीं। और स्वाभिन्नाप्तसमस्तकल्याणगुणत्व होनेसे सधर्मकत्वके अयोगसेभी=ईश्वरमें गुणोंकी अवाप्ति तादात्म्यरूप कहनी होगी, और तुम्हारे मतमें अत्यन्ताभेदमेंभी तादात्म्य अङ्गीकार होनेसे गुणोंमें धर्मत्वकी सिद्धि नहीं है यह भाव है। सिद्धसाधन होनेसेभी यह अनुमान ठीक नहीं=स्वाभिन्नगुणवत्वेन यदि सधर्मकत्व सिद्ध होता है तो भले सिद्ध हो, ऐसा पारिभाषिक सधर्मकत्व अद्वैतका विरोधि नहीं और ब्रह्ममें किसी पदार्थका या उसके सम्बन्धका साधक नहीं। वैसे कल्याणगुण आनन्दादिकोंको नित्यत्व होनेसे तद्विषयक प्रेप्साको और तत्र=तन्निमित्तक सामर्थ्यको तुमसे और मुझसेभी कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसेभी। अतएव=प्रेप्सादिको कहनेके लिए शक्यत्व न होनेसे प्रेप्सादिकम्=प्रेप्सादिक ईश्वरमें हैं प्रज्ञानघनत्वात्=प्रेक्षावत्त्व होनेसे, यह कथनभी निरस्त हुआ। सदा त्यक्तसमस्तदोषत्वके साध्य होनेपर जीवकी चरमवृत्तिपर्य्यन्तके त्यागमें ईश्वरके सामर्थ्यके अभावसे हेतुकी असिद्धि है अतः यह अनुमान नहीं बन सकता है। और जिस कालमें दोषत्यागका सामर्थ्य है, उस कालमें त्यक्तदोषाभाव इष्ट ही है, और प्रकारवत्वादिके साध्य होनेपर अप्रयोजकत्वभी है। प्रकारवत्वादिके विना अधिष्ठानत्व सन्दिग्धत्वादिकी जो अनुपपत्ति है वही अनुकूल तर्क है=ब्रह्म यदि प्रकारवन्न स्यात्, तर्हि अधिष्ठानं न स्यात्, सन्दिग्धश्च न स्यात्, इत्यादिरूप अनुकूल तर्क है नच=यह तर्क नहीं हो सकता है, क्यों? अधिष्ठानत्वमें कल्पिताकल्पितसाधारण स्वारोपितव्यावर्त्तकवत्त्व तन्त्र है,— स्वारोपितव्यावर्त्तक इसका अर्थ ऊपर कर चुके हैं इस अर्थको उक्तत्व होनेसे; स्वज्ञानाबाध्यत्वविशिष्ट जो धर्म तादृश धर्मके विना तस्य=अधिष्ठानत्वकी अनुपपत्तिके अभावसे।

सन्दिग्धत्वमपि व्यावर्त्तकेन कल्पितेनाकल्पितेन वा रूपेणानिश्चिततयैवोपपद्यत इति तस्यापि नानिश्चितसाध्यधर्मं विनानुपपत्तिः। एवं दुःखानात्मकत्वं दुःखव्यावर्त्तकस्वरूपतयैवोपपन्नं कदाचिद्वक्तव्यम्, अन्यथा अनवस्थापत्तेः। नहि व्यावर्त्तकधर्मोऽपि केवलान्वयी, येन स्ववृत्तिः स्यात्। तथाच तदपि व्यावर्त्तकधर्मं विनाप्युपपन्नं न तत्साधनायालम्। अनवस्थाभिया कचिद्धर्मे विश्रान्तौ पदार्थत्वमपि व्यभिचार्येव। नच स्वस्यैव स्ववृत्तित्वात् न व्यभिचारः आत्माश्रयात्। नन्वेवं दृश्यत्वस्यापि स्वस्मिन्नवृत्त्या भागासिद्धिः, स्ववृत्तित्वाभावेऽपि स्वनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य तत्रासिद्धताप्रयोजकस्याभावात्। तस्मान्नानुमानं ब्रह्मसमसत्ताकधर्मे प्रमाणम्;

सन्दिग्धत्वभी कल्पित या अकल्पित जो व्यावर्त्तकरूप तादृशरूपसे अनिश्चितत्वेन ही उपपन्न होता है, अतः तस्यापि=सन्दिग्धत्वकीभी अनिश्चित साध्यधर्मके विना अनुपपत्ति नहीं है। इसी रीतिसे दुःखानात्मकत्वभी दुःख व्यावर्त्तकस्वरूपत्वेन ही कदाचित् उपपन्न वक्तव्य है। अन्यथा अनवस्थानकी आपत्तिसे=व्यावर्त्तक धर्मोंमें व्यावर्त्तक धर्मान्तर मानना पड़ेगा, इसी

रीतिसे आगे २ बढनेमें अनवस्थाकी आपत्ति है। क्योंकि व्यावर्त्तक धर्मभी केवलान्वयी तो नहीं है; जिससे कि स्ववृत्तिभी हो। तथाच तदपि=दुःखानात्मकत्वभी व्यावर्त्तक धर्मके विनाही उपपन्न हुआ व्यावर्त्तक धर्मसाधनके लिए समर्थ नहीं है। और अनवस्थाके भयसे किसीभी धर्ममें विश्रान्ति होनेपर पदार्थत्वभी व्यभिचारी ही है। स्वमें ही स्ववृत्तित्व होनेसे व्यभिचार नहीं है; नच=ऐसा नहीं हो सकता है; क्यों? आत्माश्रय होनेसे। ऐसा होनेपर=आत्माश्रय होनेपर मिथ्यात्वके साध्य होनेपर दृश्यत्वकोभी स्वमें न वर्त्तनेसे भागासिद्धि है=दृश्यत्वमेंभी मिथ्यात्वरूप साध्य विवक्षित है, परन्तु वहाँ दृश्यत्व नहीं अतः हेतुमें भागासिद्धि है, नच= भागासिद्धि नहीं है; क्यों? दृश्यत्वको स्ववृत्तित्व न होनेपरभी तत्र=दृश्यत्वमें असिद्धता प्रयोजक जो स्वनिष्ठ-अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व उस प्रतियोगित्वके अभावसे तस्मात् अनुमान ब्रह्मसमसत्ताक धर्ममें प्रमाण नहीं है।

किञ्च श्रुतिः अपरब्रह्मविषया; निर्धर्मकश्रुतिविरोधेन विषयभेदस्यावश्यकत्वात्। नच–सगुणातिरिक्तस्य परब्रह्मणोऽद्याप्यसिद्धिः त्वत्पक्षे तात्त्विकगुणवद्व्यक्त्यन्तरस्याभावात् किंविषयत्वञ्च सगुणश्रुतेरिति–वाच्यम्, तात्त्विकत्वपर्य्यन्तस्य सगुणश्रुत्या अविषयीकरणात्, निर्धर्मकत्वश्रुत्या शुद्धब्रह्मसिद्धेश्च। तदुक्तमन्तरधिकरणे कल्पतरुकृद्भिः–'निर्विशेषं परं ब्रह्म साक्षात्कर्तुमनीश्वराः। ये मन्दास्तेऽनुकम्प्यन्ते सविशेषनिरूपणैः॥ वशीकृते मनस्येषां सगुणब्रह्मशीलनात्। तदेवाविर्भवेत् साक्षात् अपेतोपाधिकल्पनम्॥ इति॥ अतएव स्मृति–सूत्राभ्यां न विरोधः। नच–सगुणे 'परः पराणा' मित्यादि स्मृत्या परादपि परत्वं स्मर्यते, तथा च कथं सगुणवाक्यानामपरब्रह्मविषयत्वमिति–वाच्यम्। जडापेक्षया परः किञ्चिज्ज्ञः तदपेक्षया सर्वज्ञस्य शुद्धापेक्षयाऽपरस्यापि परत्वात् नच–'सदेव सौम्येदमग्र आसीदसद्वा इदमग्र आसीदिति' श्रुती अपि परापरब्रह्मविषये स्यातामिति–वाच्यम्; अत्रेदमिति प्रपञ्चस्य प्रकृतत्वेन ब्रह्मपरत्वस्य वक्तुमशक्यतया प्रपञ्चस्यैव पूर्वं कारणात्मना सत्त्वं कार्यात्मना असत्त्वं विषयी कुरुतः नापि ग्रहणाग्रहणवाक्ये अपि परापरयागविषये 'ऐन्द्रवायवं ग्रहं गृह्णाति' इत्यादिवत् षोडशिग्रहणवाक्यस्य यागपरत्वेऽपि अग्रहणवाक्यस्य तदभावबोधकतया यागविषयत्वाभावात्।

किञ्च श्रुतिः=सगुणश्रुति अपरब्रह्मविषया=शुद्धब्रह्मसे अन्यके सगुणत्वकी प्रमापिका है, क्यों? निर्धर्मकब्रह्मबोधक श्रुतिके साथ विरोध होनेसे, विषयभेदको आवश्यकत्व होनेसे। शङ्कते नचेति। सगुणसे अतिरिक्त परब्रह्मकी आजभी असिद्धि है; तुम्हारे पक्षमें तात्त्विक जो गुणवद् व्यक्त्यन्तर उसके अभावसे, और सगुणश्रुतिको किंविषयत्व है, इति नच वाच्यम; क्यों? तात्त्विकत्वपर्यन्तका सगुणश्रुतिसे विषयीकरण न होनेसे, और निर्धर्मकत्व श्रुतिसे शुद्धब्रह्मकी सिद्धिका सम्भव होनेसे, सो कहा है–अन्तरधिकरणमें कल्पतरुकारने–जो मन्दबुद्धिलोग, निर्विशेष परब्रह्मको साक्षात्कार करनेमें अनीश्वराः=असमर्थ है वे लोग सविशेष-

निरूपणोंसे अनुकम्पित किये जाते हैं। इन्होंको सगुणब्रह्मके शीलन=व्यवधानरहित सत्कार-पूर्वक बहुकालपर्यन्त, सजातीय प्रत्ययोंके प्रवाहीकारणरूप शीलनसे मनके वशीकृत हुए तदेव=वह सगुण ब्रह्मही उपाधिकल्पनसे रहित हुआ आविर्भवेत्=स्वाभिन्नत्वेन अपरोक्ष होता है; प्रथमाध्यायके प्रथमपादके सप्तम अधिकरणका नाम है–अन्तरधिकरण। अतएव=अवान्तर तात्पर्यतः और मुख्य तात्पर्यतः बाध न होनेसेही स्मृति तथा सूत्र इन दोनोंके साथ विरोध नहीं, सूत्रपदसे अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् वे० । अ० १ । पा० १ । सू० २० इत्यादिका ग्रहण है, द्वैतीने इन्हें सगुणपरत्व बतलाया है। शङ्कते नचेति। सगुणे=सगुणब्रह्ममें 'परः पराणाम्' परोंमेंभी पर है, इत्यादि स्मृतिसे परसेभी परत्व स्मृत होता है, फलतः सगुणत्वबोधक वाक्योंको अपरब्रह्मविषयत्व कैसे है, इति नच वाच्यम्, क्यों? जड़की अपेक्षासे किञ्चिज्ज्ञ पर है, और तदपेक्षया=किञ्चिज्ज्ञकी अपेक्षासे शुद्धकी अपेक्षासे अपर होते हुएभी सर्वज्ञको परत्व होनेसे=यद्यपि उपासनीय सर्वज्ञ ब्रह्म शुद्धकी अपेक्षा अपरही है फिरभी बद्धजीवकी अपेक्षा उसमें परत्व कहा जाता है। 'सदेव सौम्य इदमग्र आसीत्' (छा० ६।२।१) 'असद्वा इदमग्र आसीत्' (छा० ६।२।१) ये दोनों श्रुतियाँभी परापरब्रह्मविषयक हों इति नच वाच्यम्; क्योंकि, अत्र=इन दोनों श्रुतिओंमें इदम्पदसे प्रपञ्चको प्रकृतत्व होनेसे इन श्रुतिओंके ब्रह्मपरत्वको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे, प्रपञ्चकेही उत्पत्तिसे पूर्वमें कारणात्मना सत्त्वको और कार्यात्मना असत्त्वको विषय करती हैं। जैसे ग्रहणाग्रहणवाक्य='अतिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति नातिरात्रे षोडशिनं गृह्णाति' ये दोनों वाक्यभी परापरयागविषयक हों यह कथन भी नहीं बन सकता है, क्यों? 'ऐन्द्रवायवं गृह्णाति' इत्यादिवत् षोडशिग्रहणवाक्यको यागपरत्व होनेपरभी अग्रहणवाक्यको तदभावबोधकतया=षोडशिग्रहणवाक्यप्रतिपाद्यार्थाभाव-बोधकत्व होनेसे यागविषयत्वके अभावसे।

ननु—'एवमसन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद' चेदिति श्रुतिरपि नासत्त्वसिद्धार्था, किन्तु शून्यतापत्तिरूपपरममोक्षपरेति स्यादिति–चेन्न; शून्यतायाः अपुरुषार्थत्वात्, आनन्दावाप्तिरूपमुक्तिप्रतिपादकविरोधाच्च। यद्वा इदानीं सगुणं दशान्तरे निर्गुणमिति वाक्याविरोधः। नच–एतावता अनित्यत्वमात्रं गुणानां न त्वदभिमतमिथ्यात्वसिद्धिरिति–वाच्यम्; त्वदभिमततात्त्विकत्वस्याप्यसिद्धेः। उपायान्तरानुसरणञ्च समानम्। यत्तु ब्रह्मेदानीं सत् दशान्तरे त्वसत् इत्यप्यापद्येत इति तन्न; दशान्तरे निर्गुणत्ववत् असत्त्वस्याबोधनेनाप्रसङ्गात्, नच–'ज्ञानं नित्यं क्रिया नित्या बलं नित्यं परात्मनः'। 'एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्ये'त्यादिश्रुत्या ब्रह्मज्ञानादीनां नित्यत्वप्रतिपादनात् सगुणत्वमिति वाच्यम्; ज्ञानादीनां स्वरूपतया गुणत्वासिद्धेः। स्वरूपातिरिक्तानान्तु चरमसाक्षात्कारपर्यन्तस्थायितया नित्यत्वोपचारात् 'अपाम सोमममृता अभूमे'त्यादौ अमृतशब्दस्याभूतसंप्लवस्थानममृतत्वं हि भाष्यत इति पौराणिकोक्तामृतत्ववत्।

शङ्कते नन्विति। इसी रीतिसे 'असन्नेव स भवति असद् ब्रह्मेति वेद चेत्' (तै० २.६.१) यह श्रुतिभी असत्त्वकी निन्दाके लिए न होगी किन्तु शून्यतापत्तिरूप जो परममोक्ष तादृश मोक्षपरा होगी, इति चेन्न; क्यों ? शून्यताको अपुरुषार्थत्व होनेसे। और आनन्दकी प्राप्तिरूप जो मुक्ति तादृशमुक्तिप्रतिपादकके साथ विरोधहेतुभी शून्यतारूप मुक्ति नहीं बन सकती है। अथवा–इस कालमें सगुण है और कालान्तरमें निर्गुण है, इस रीतिसे सगुणनिर्गुण प्रतिपादक वाक्योंका अविरोध है। एतावता गुणोंका सार्वदिकत्व न होनेसे गुणोंका अनित्यत्वमात्र सिद्ध होता है, त्वदभिमत जो मिथ्यात्व उसकी तो सिद्धि नहीं है=उक्त कथनसे गुण अनित्य हैं इतना अर्थ सिद्ध होता है परन्तु गुण मिथ्या हैं, यह अर्थ तो नहीं सिद्ध होता है, जो कि आपको अभिमत है, इति नच वाच्यम्, त्वदभिमत तात्त्विकत्वकीभी असिद्धिसे=अनित्यत्व सिद्ध होनेपर त्वदभिमत तात्त्विकत्वभी तो गुणोंमें नहीं सिद्ध होता है। यदि यों कहो कि हम गुणोंके तात्त्विकत्वसिद्धिके लिए अन्य उपायका अनुसरण करेंगे तो हमकोभी गुणोंमें मिथ्यात्व सिद्धिके लिए उपायान्तरका अनुसरण समान है। ब्रह्म इस कालमें सत् है, और कालान्तरमें असत् है, यहभी आपादित होगा इति यत् तत् न=ऐसा जो कथन है वह ठीक नहीं क्यों ? दशान्तरे=कालान्तरमें जैसे निर्गुणका बोधन होता है तैसे असत्त्वका बोधन न होनेसे उक्त प्रसङ्गके अभावसे। शङ्कते नचेति। 'ज्ञानं नित्यम्' इत्यादि श्रुतिसे ब्रह्मज्ञानादिकोंके नित्यत्वके प्रतिपादनसे ब्रह्ममें सगुणत्व है इति नच वाच्यम्; क्यों ? ज्ञानादिकोंको ब्रह्मस्वरूपता होनेसे ज्ञानादिकोंमें गुणत्वकी असिद्धिसे। और स्वरूपातिरिक्तोंमें तो चरमसाक्षात्कारपर्यन्तस्थायित्वप्रयुक्त नित्यत्वके उपचारसे=स्वरूपभूतज्ञानादिसे अतिरिक्त मायावृत्यात्मक ज्ञानादिक चरमसाक्षात्कारपर्य्यन्त रहते हैं=अधिककालतक रहते हैं अतः उनमें गौणविधया नित्यत्व कहा गया है, जैसे कि 'हम लोगोंने सोमको पिया और अमृत हुए' इत्यादिमें अमृतशब्दको आभूतसंप्लवस्थानम्=भूतप्रलयको मर्यादाकर जो अवस्थान वह अमृतत्व कहा जाता है, इस पुराणोक्त–अमृतत्वपरत्व है। ज्ञानं नित्यम्, इत्यादि श्रुतिमें क्रियापदसे जगत्कारणानुकूल प्रयत्नका ग्रहण है और बलपदसे विचित्र कार्यानुकूल शक्तिका ग्रहण है।

अतएव—'एष नित्यो महिमेत्यादिवाक्यस्य तैत्तिरीयशाखागतस्य नित्यगुणपरत्वमिति–निरस्तम्; बृहदारण्यकगतस्य तु 'स एष नेति नेती'ति वाक्यप्रतिषिद्धसर्वोपाधिकरूपस्य महिम्नः त्यक्तसर्वैषणपुरुषगतस्य प्रतिपादनेन ब्रह्मगतगुणपरत्वाभावात्। नच–सर्वस्य वशीत्यादौ ब्रह्मणः प्रकृतत्वेन तद्गतगुणपरत्वमिति–शङ्क्यम् योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु' इत्यादिवाक्योक्तजीवस्वरूपानुवादेन ब्रह्मस्वरूपताबोधनपरत्वेन ब्रह्मगतगुणपरत्वाभावात्। ब्राह्मणपदस्य तदधीते तद्वेदेतिसूत्रविहिताणन्तस्य ब्रह्मवित्। प्रतिपादकतया ब्रह्मपरत्वे लक्षणापत्तेश्च। किञ्च सगुणवाक्यानामौपाधिकगुणविषयत्वेन स्वाभाविकनिर्धर्मकत्वश्रुतेर्न विरोधः। नचौपाधिकत्वस्य सोपाधिकाध्यस्तरूपत्वे श्रुत्यप्रामाण्यापत्तिः वक्ष्यमाणसत्यत्वश्रुतिविरोधः उपाधिकल्पितरूपत्वे तूक्तनित्यत्वश्रुतिवि-

रोधः, अन्तःकरणादिरूपोपाधिसृष्टेः प्रागेव ईक्षितृत्वादिश्रुतेरुपाध्यसम्भवश्चेति—वाच्यम्; मायाविदर्शितमायानुवादिवाक्यवत् स्वतो भ्रमजनकत्वाभावेनाप्रामाण्यानापत्तेः; सत्यत्वश्रुतेरन्यथा नेष्यमाणत्वात् नित्यत्वश्रुतेरन्यथार्थस्योक्तेः, सृष्टेः पूर्वमन्तःकरणाभावेऽपि अविद्याया उपाधेः सत्त्वाच्च।

अतएव=उक्त कथनसे ही 'एष नित्यो महिमा' (तैत्तिरीयशा० बृ० ४।४।२३) इत्यादि तैत्तिरीयशाखागतवाक्यका नित्यगुणपरत्वभी निरस्त हुआ, और बृहदारण्यगतवाक्यको तो 'स एष नेति नेति (बृ० ३।९।२६) इस श्रुतिवाक्यसे प्रतिषिद्ध हैं, सर्व औपाधिकरूप=धर्म जिसमें एवम्भूत जो त्यक्तैषणपुरुषगत=त्यक्तैषणपुरुषाभिव्यक्त महिमपदबोध्य शुद्ध आत्मा, तादृश आत्माके प्रतिपादनसे ब्रह्मगतगुणपरत्वके अभावसे। 'सर्वस्य वशी' (बृ० ४।४।२२) इत्यादिमें ब्रह्मको प्रकृतत्व होनेसे ब्रह्मगतगुणपरत्व है, इति नच शङ्क्यम्, क्यों? 'योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु' (बृ० ४।४।२२) इत्यादिवाक्यसे उक्त जो जीवका स्वरूप उस जीवस्वरूपके अनुवादसे जीवकी ब्रह्मस्वरूपताबोधनपरत्व होनेसे ब्रह्मगतगुणपरत्वके अभावसे तदधीते तद्वेद—अष्टाध्यायी अ०४ पा० २ सू० ५९ इस सूत्रसे विहित जो 'अण्' प्रत्यय तादृश अण् प्रत्ययवान् ब्राह्मणपदको ब्रह्मवित्‌की प्रतिपादकता होनेसे ब्रह्मपरत्व होनेपर लक्षणाकी आपत्तिसे। किञ्च, सगुणबोधक वाक्योंको उपाधिप्रयुक्त जो गुण तादृशगुणविषयत्व होनेसे स्वाभाविक निर्धर्मकत्वबोधक जो श्रुति इसका विरोध नहीं है। शङ्कते नचेति। औपाधिकत्वको सोपाधिकमें अध्यस्तरूपत्व होनेपर श्रुतिके अप्रामाण्यकी आपत्ति है=सोपाधिमें अध्यस्तरूपत्वरूप यदि गुणोंमें औपाधिकत्व है तब तो सोपाधिकभी मिथ्या और उसमें अध्यस्तभी मिथ्या है तथाच मिथ्यार्थप्रतिपादकत्वेन गुणबोधक श्रुतिमें अप्रामाण्यकी आपत्ति है और आगे कही जानेवाली सत्यत्व श्रुतिके साथ विरोध है=गुणोंको सत्य बतलानेवाली जो श्रुति उस श्रुतिके साथ विरोध है, और अन्तःकरणादिरूप जो उपाधि उस उपाधिकी सृष्टेः=उत्पत्तिसे पूर्वही ईक्षितृत्वादिकी श्रुतिसे उपाधिका असम्भवभी है, इति नच वाच्यम्, क्यों? मायावीसे दिखलाई गई जो माया उस मायाका अनुवादी जो वाक्य उस वाक्यकी तरह स्वतः भ्रमजनकत्वके अभावसे श्रुतिके अप्रामाण्यकी अनापत्तिसे। और वक्ष्यमाणसत्यत्वश्रुतिको अन्यथा नेष्यमाणत्व होनेसे, और नित्यत्वश्रुतिके अन्यथा अर्थकी उक्ति होनेसे, और सृष्टिसे पूर्वमें अन्तःकरणरूप उपाधिके न होनेपरभी अविद्यारूप उपाधिके सत्त्वसेभी।

नचौपाधिकत्वे 'स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च' इत्यनेन विरोधः अस्मदादिवत् भौतिकोपाधिकत्वाभावेन योगिष्विव योगार्जितत्वाभावेन स्वाभाविकत्वोक्तेः। नच सङ्कोचकाभावः, निर्गुणवाक्यस्यैव सङ्कोचकत्वात्। नच स्वाभाविकज्ञानसमभिव्याहारविरोधः सार्वज्ञ्यादिरूपाविद्यापरिणतस्यैव ज्ञानपदेन विवक्षितत्वाद्बाधकसत्त्वासत्त्वाभ्यां समभिव्याहारेऽपि वैरूप्याङ्गीकरणात् पावको ब्राह्मण इतिवत्। किञ्च सगुणवाक्यानां न गुणसत्यत्वबोधकत्वम् सत्यत्वस्यापदार्थत्वात्। नच—नित्यत्वोक्तिसामर्थ्याद्विषयाबाधलक्षणस्य

प्रामाण्यस्यौत्सर्गिकत्वात् 'सत्यः सोऽस्य महिमा इत्यादिश्रुतेः स्वरूपतश्च तत्सिद्धिरिति–वाच्यम्, प्रथमस्यान्यथासिद्धेरुक्तत्वादुत्सर्गाख्यतर्कस्य व्यवहाराबाधमादायैवोपपादितत्वात्सत्यः 'सोऽस्य महिमेत्यादौ महिम्नः स्वरूपरूपत्वादविरोधात्, धर्मत्वे तु ब्रह्मसाक्षात्कारेतरानिवर्त्यत्वगुणयोगेन सत्यपदप्रवृत्त्युपपत्तेः।

गुणोंको औपाधिकत्व होनेपर स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च, (श्वेत० ६।६) इस वाक्यके साथ विरोध है=इस वाक्यमें ज्ञानादिकको स्वाभाविक बताया है और आप औपाधिक बताते हैं अतः विरोध है, नच=विरोध नहीं है; क्यों ? अस्मदादिगुणोंमें जैसे भौतिकत्व रहता है तैसे ईश्वरीय गुणोंमें भौतिकत्वके न रहनेसे और योगीके गुणोंमें जैसे योगसम्पादितत्व रहता है तैसे ईश्वरीय गुणोंमें योगसम्पादितत्वके अभावसे स्वाभाविकत्वकी उक्तिसे। सङ्कोचकका अभाव है, नच=सङ्कोचकका अभाव नहीं है, क्यों ? निर्गुणवाक्यकोही सङ्कोचकत्व होनेसे । स्वाभाविक=नित्यभूत जो ज्ञान उस ज्ञानके साथ समभिव्याहार=कथन है उसके साथ विरोध है=ज्ञानके साथमें प्रयत्नादिका समभिव्याहार है उन्होंमें ज्ञानको नित्य मानकर प्रयत्नादिकको अनित्य मानोंगे तो समभिव्याहारका विरोध होगा, नच=विरोध न होगा, क्यों ? सार्वज्ञ्यादिरूपसे परिणत अविद्याकोही ज्ञानपदसे विवक्षितत्व होनेसे, और बाधकके सत्त्वासत्वसे समभिव्याहार होनेपरभी पावको ब्राह्मणः= इसकी तरह वैरूप्यका अङ्गीकरण होनेसे='पावको ब्राह्मण' यहाँपर पावक पदका और ब्राह्मणपदका समभिव्याहार है परन्तु अभेदान्वय बाधित है, अतः ब्राह्मणपदका यथाश्रुतार्थ लिया जाता है, और पावकपदका पावकसदृश अर्थ किया जाता है; तैसे ज्ञानं नित्यं क्रिया नित्या यहाँपर ज्ञानपदसे यथाश्रुतार्थ लेनेमें भी किसी वचनेका बाध नहीं है, और तल्लक्षक क्रियादिको लेनेमें तो निर्गुण श्रुतिका विरोध है अतः क्रियापदबोध्य प्रयत्नरूप अर्थ नित्य नहीं लिया जा सकताहै। किञ्च=सगुणबोधक वाक्योंको गुणनिष्ठसत्यत्वबोधकत्व नहीं है, सत्यत्वको यहाँपर किसी भी पदका अर्थत्व न होनेसे। शङ्कते नचेति। नित्यत्वकी उक्तिके सामर्थ्यसे=अविनाशित्वरूप नित्यत्व मिथ्याभूतमें अनुपपन्न है, मिथ्याभूतको ज्ञानसे निवर्त्यत्व होनेसे तथा च नित्यत्वकी उक्तिके सामर्थ्यसे विषयाबाधलक्षण जो प्रामाण्य उस प्रामाण्यको औत्सर्गिकत्व होनेसे 'सत्यः सोऽस्य महिमा' (वृ०४।४।२३) इत्यादि श्रुतिसे और स्वरूपतश्च=स्वरूपभूत ब्रह्मके साथ अभिन्न होनेसे तत्सिद्धिः=गुणोंमें सत्यत्वकी सिद्धि है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? प्रथमस्य=नित्यत्व कथनकी अन्यथासिद्धिको उक्तत्व होनेसे और उत्सर्गाख्य तर्कको व्यवहारकालमें अबाधको लेकेही उपपादितत्व होनेसे और 'सत्यः सोऽस्य महिमा' इत्यादिमें महिमाको स्वरूपरूपत्व होनेसे अविरोधसे और स्वरूपाभिन्नगुणके सात्त्विकत्वको इष्ट होनेसे इसी समाधानसे स्वरूपभिन्नत्वपक्षभी निरस्त हुआ, और धर्मत्वे तु= महिमाको धर्मत्व होनेपर तो ब्रह्मसाक्षात्कारेतरानिवर्त्यत्वरूप धर्मके योगसे सत्यपदकी प्रवृत्तिकी उपपत्तिसे।

नच–एवं 'सत्यं ज्ञानं' 'तत्त्वमसि' इत्यादिश्रुत्युक्तब्रह्मसत्यत्वैक्यादिकमपि तात्त्विकं न स्यादिति–वाच्यम्, निर्गुणश्रुतिविरोधस्य तत्रेवात्राभावात् । ननु–श्रुत्योर्विरोधे नैकस्या अतात्त्विकविषयत्वम्, शास्त्रविरोधे सङ्कोचविकल्पादिना उभयप्रामाण्यस्य पूर्वतन्त्रे व्याकरणे च निर्णीतत्वात् । तथाहि–दशमाध्यायस्थे 'प्राप्तबाधे प्रकृतिवत् कुर्या' दित्यादिरूपक्लृप्तस्य चोदकस्य कृष्णलादाववघातवर्जमित्यादिरूपः सङ्कोच एव । एवं तार्तीयकेऽपि अप्राप्तबाधे गार्हपत्यमिति द्वितीयाश्रुत्यनुसारेण इन्द्रशब्दयुक्तमन्त्रलिङ्गस्य गार्हपत्ये गौणत्वादिकमेव । व्याकरणेऽपि यत्र परेण पूर्वस्य नित्येनानित्यस्येत्यादिबाध उक्तः तत्रापि सङ्कोच एव ।

शङ्कते नचेति । एवम्=इस रीतिसे सत्यं ज्ञानं (तै० २।१।१) तत्त्वमसि (छा० ६।८।७; ६।१०।३; ६।११।३; ६।१२।३; ६।१३।३; ६।१४।३; ६।१५।३; ६।१६।३;) इत्यादि श्रुतिओंसे उक्त जो ब्रह्ममें सत्यत्व ऐक्यादिक वे भी तात्त्विक न होंगे, इति नच वाच्यम्, क्यों ? तत्रेव जैसे गुणसत्यत्वमें निर्गुणश्रुतिका विरोध है वैसे ब्रह्मसत्यत्वादिकमें निर्गुणश्रुतिके विरोधके अभावसे । शङ्कते नन्विति श्रुत्योः=दो श्रुतिओंका परस्पर विरोध होनेपर एकको अतात्त्विकविषयत्व नहीं होता है, क्यों ? शास्त्रविरोधे=शास्त्रका मानान्तरके साथ विरोध होनेपर सङ्कोच विकल्पादिसे उभयप्रामाण्यस्य=शास्त्र और शास्त्रसे विरुद्धार्थावगाहि मान इन दोनोंके प्रामाण्यको पूर्वमीमांसामें और व्याकरणमें निर्णीतत्व होनेसे; तथाहि–दशमाध्यायस्थ प्राप्तबाधमें प्रकृतिवत्कुर्यात् इत्यादिरूप क्लृप्तातिदेशवाक्यका, कृष्णलादिमें अवघातको छोडकर इत्यादिरूप सङ्कोच ही है=जैमिनीय मीमांसाके दशमाध्यायके प्रथमपादके प्रथम अधिकरणमें 'प्राजापत्यं घृते चरुं निर्वपेत् । शतकृष्णलमायुष्कामः'=आयुष्की कामनावाला पुरुष शतकृष्णलम्=कृष्णला नाम है गुञ्जाफलका और रत्तिका नामक परिमाणकाभी है, फलतः शतगुञ्जाफलतुलित स्वर्णखण्ड हैं जिसमें और प्रजापति है देवता जिसका ऐसा जो चरु उसका घृतमें निर्वपन करे इस विधिवाक्यको लेकर विचार किया कि इस कर्मकी प्रकृतिमें 'व्रीहीनवहन्ति' इस वाक्यसे पुरोडाशहेतुभूत व्रीहिओंका अवघात विहित है वह यहाँपर चरुहेतुभूतकृष्णलोंका 'प्रकृतिवत्कुर्यात्' इस अतिदेशसे प्राप्त है या नहीं ऐसा संशय होनेपर पूर्वपक्ष किया गया कि यहाँपर अचरुभूतकृष्णलोंमें चरुशब्दका प्रयोग चरुधर्मके विधानके लिए है, अतः अवघातका फल जो वितुषीकरण वह यद्यपि यहाँपर नहीं है, तो भी अतिदेशवचनसे श्रपणवत् अवघात करना चाहिए ऐसा पूर्वपक्ष होनेपर उत्तर दिया गया कि–जिन्होंके फलका लोप नहीं है ऐसे जो प्रोक्षणादिक धर्म हैं उन्होंके योगसे और वैशद्यके योगसे कृष्णलोंमें चरुशब्द उपपन्न हो सकता है, अतः वह अवघातकी कल्पना करनेमें समर्थ नहीं, और रह गया श्रपण=पकाना वह तो घृते श्रपयति=घृतमें पकाता है सेकता है=इस रीतिसे साक्षात् विधानसे किया जाता है, अतः साक्षात् विहितके दृष्टान्तसे अतिदेशलभ्यकी प्रसक्ति नहीं हो सकती है, फलतः यहाँपर चोदक=

अतिदेश वाक्यका सङ्कोच किया जाता है। एवम्=इसी प्रकारसे तार्तीयकेऽपि=तृतीयाध्यास्थाप्राप्तबाधमेंभी गार्हपत्यम्, इस द्वितीयाश्रुतिके अनुसारसे इन्द्रशब्दयुक्त मन्त्रलिङ्गका गार्हपत्यमें गौणत्वादिकही है=तृतीयाध्यायमें जो श्रुत्यादिरूप पूर्वपूर्व प्रमाणोंसे लिङ्गादिरूप उत्तरोत्तरोंका बाध होता है वह अप्राप्तबाध कहा जाता है, क्योंकि शीघ्रप्रवृत्तश्रुत्यादिसे मन्त्रादिका विनियोग हो जानेसे आकाङ्क्षाकी शान्तिसे लिङ्गादिकी प्रवृत्ति ही नहीं होती है=इस अप्रवृत्तिका नाम ही अप्राप्त बाध है, जैसा कि न्यायरत्नमालामें पार्थसारथिमिश्रने कहा है—कल्प्यस्य शास्त्रस्य तु कल्पनं यन्निरुध्यते मूलनिकृन्तनेन। क्लृप्तेन शीघ्रेन फलापहारात् अप्राप्तबाधं तमुदाहरन्ति। क्लृप्तेन शास्त्रेण फलापहारात् मूलनिकृन्तनेन कल्प्यस्य शास्त्रस्य यत् कल्पनं निरुध्यते तमप्राप्तबाधमुदाहरन्ति इत्यन्वयः। जैमिनीय मीमांसाके तृतीयाध्यायके तृतीयपादके सप्तमाधिकरणमें विचार किया गया है—ऐन्द्र्या गार्हपत्यमुपतिष्ठते यहाँपर एतद्वाक्यगत द्वितीया श्रुतिसे ऐन्द्रीका विनियोग गार्हपत्यके उपस्थानमें प्रतीत होता है और अर्थप्रकाशनसामर्थ्यरूप लिङ्गसे इन्द्रोपस्थानमें=उक्त द्वितीया श्रुतिसे गार्हपत्यप्रधानक उपस्थानके प्रति ऐन्द्रीकी अङ्गता प्रतीत होती है, और अर्थप्रकाशनसामर्थ्यरूप लिङ्गसे इन्द्रप्रधानक उपस्थानके प्रति अङ्गता प्रतीत होती है इस रीतिसे श्रुतिलिङ्गका विरोध होनेपर दोनोंको प्रमाणता तुल्य है अतः यवव्रीहिवत् विकल्प उचित है=कभी लिङ्गसे इन्द्रप्रधानक उपस्थानमें ऐन्द्रीका विनियोग हो और कभी श्रुतिसे गार्हपत्यप्रधानक उपस्थानमें विनियोग हो यह पहला पूर्वपक्ष है, इन्द्र तथा गार्हपत्य इन दोनोंको प्रधानत्व अविशेष रूपसे होनेसे और उपस्थानको गुणत्व होनेसे। प्रतिप्रधानं गुणावृत्तिः। इस न्यायसे उपस्थानकी आवृत्तिसे श्रुति तथा लिङ्ग इन दोनोंका समुच्चय है=दोनों मिलकर उभयत्र ऐन्द्रीकी शेषता बोधन करते हैं यह दूसरा पूर्वपक्ष है, श्रुति, विनियोग करती हुई वस्तुके सामर्थ्यको अनुसरण कर ही विनियोग करती है, अन्यथा वह्निना सिञ्चेत्, वारिणा दहेत् ऐसाभी विनियोग करेगी, फलतः उपजीव्यत्वप्रयुक्त लिङ्गको प्रबलता होनेसे इन्द्रप्रधानक उपस्थानके प्रति ही ऐन्द्रीको शेषता है=इन्द्रोपस्थानमें ही इसका विनियोग होना उचित है, यह तीसरा पूर्वपक्ष है, सिद्धान्त यह है कि,—ऐन्द्रीको मुख्यवृत्तिसे गार्हपत्यकी बोधकता न होनेपरभी इन्द्रसादृश्यप्रयुक्त गौणी वृत्तिसे गार्हपत्यकी बोधकता है यह तृतीयाध्यायके द्वितीयपादके द्वितीयाधिकरणमें दिखला चुके हैं, फलतः सामर्थ्याभावकृत प्रतिबन्धके अभावसे निर्विघ्न हुई श्रुति शीघ्रही ऐन्द्रीका गार्हपत्योपस्थानमें विनियोग करती है और लिङ्ग विलम्बसे करता है, इत्यादि, कदाच नः स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। यजुर्वेद अ० ३ मं० ३४ इसका नाम है ऐन्द्री, और इन्द्रशब्दप्रयुक्तमन्त्रलिङ्गस्य=एतद्वाक्यघटकइन्द्रशब्दयुक्तमन्त्र, शब्दसेभी इसी मन्त्रका ग्रहण है, लिङ्गशब्दसे अर्थबोधकत्वका ग्रहण है, मन्त्रान्तका लिङ्गपदके साथ षष्ठी तत्पुरुष है=तथाच यह अर्थ हुआ,—द्वितीयाश्रुत्यनुसारेण इन्द्रशब्दयुक्तमन्त्रनिष्ठअर्थबोधकत्वस्य गार्हपत्ये गौणत्वादिकमेव। व्याकरणमेंभी जहाँ परसे पूर्वका, नित्यसे अनित्यका इत्यादि बाध कहा है, वहाँपरभी सङ्कोच ही है=व्याकरणमें जहाँपर तुल्यबलक दो शास्त्र प्राप्त होते हैं तहाँ परसे पूर्वका बाध होता है, जैसे कि ज्ञानाभ्यां यहाँपर

दीर्घत्व विधायक,–सुपिच (अष्टा० अ० ७ पा० ३ सू० १०२) यह शास्त्र सावकाश है, और ज्ञानेषु यहाँपर,–बहुवचने झल्येत् (अ० ७ पा० ३ सू० १०३) यह शास्त्र सावकाश है, और 'ज्ञानेभ्यः' यहाँपर दोनों शास्त्रोंका विरोध होनेपर इत्वविधायक पर शास्त्र जो बहुवचने झल्येत् है उससे दीर्घत्वविधायक पूर्वशास्त्र जो सुपिच है, उसका बाध होता है, यद्यपि तुल्यबल-वाले शास्त्रोंको सत्प्रतिपक्षन्यायसे परस्पर कार्यविघातकत्व मानना युक्त है न कि एकका अपरबाधाकत्व, तथापि–विप्रतिषेधे परं कार्यं (अष्टा० अ० १ पा० ४ सू० २) इस वचनके बलसे परकार्य्य होता है; रन्धयति यहाँपर रधिजभोरचि (अ० ७ पा० १ सू० ६१) इस शास्त्रसे विहित–नुम् कृताकृतप्रसङ्गित्व होनेसे नित्य है और अत उपधायाः (अ० ७ पा० २ सू० ११६) इस शास्त्रसे विहित वृद्धि अनित्य है क्योंकि नुम्के हो जानेपर अकारमें उपधात्व नहीं रहता है अतः इसकी प्राप्ति नहीं होती है यहाँपर पूर्वमें होनेवाला नुम् ही होता है, अतः नित्यसे अनित्यका बाध है, यहाँपर बाध्यबाधकभावका व्यवहार शास्त्रोंमें और शास्त्रीय कार्य्योंमें किया जाता है, बाधितकार्य्यकत्वेन और कार्य्यबाधकत्वेन शास्त्रोंमें होता है, तथाच यह बाधभी एकप्रकारका सङ्कोच ही है न कि सर्वथा बाध ।

दशमे विकृतिभूतमहापितृयज्ञप्रकरणस्थे 'नार्षेयं वृणीते' इत्यादि वाक्ये प्रकृतिवत्कुर्यादार्षेयवरणवर्जमिति महापितृयज्ञीयप्रकृतिवच्छब्दैकवाक्यतया पर्युदासार्थत्वमेवेत्युक्तम् । यत्र तु प्रकृतिभूतदर्शपूर्णमासप्रकरणस्थाज्यभाग–विधायकवाक्यसन्निहिते 'न तौ पशौ करोती' त्यादौ पाशुकप्रकृतिवच्छब्दैकवाक्यताऽयोगेन पर्युदासार्थत्वासम्भवात् 'प्रकृतिवत्कुर्यादाज्यभागौ तु न कुर्यादिति वाक्यभेदेन प्रसज्यप्रतिषेधार्थकत्वमेवेत्युक्तम्' तत्र पशावाज्यभागयोरन्येनाप्रसक्तेः शास्त्रप्रसक्तस्य सर्वथा बाधायोगाद्विकल्प इत्युक्तम् । तथाचोक्तं–'कोहि मीमांसको ब्रूयाद्विरोधे शास्त्रयोर्मिथः । एकं प्रमाणमितरत्त्वप्रमाणं भवेदिति ॥' इति चेन्न ।

दशमे=पूर्वमीमांसाके दशमाध्यायमें दर्शपूर्णमासका विकृतिभूत जो महापितृयज्ञ उस महापितृयज्ञके प्रकरणमें स्थित जो 'नार्षेयं वृणीते' इत्यादि वाक्य उस वाक्यमें; आर्षेयवरणसे भिन्न अङ्गोंका अनुष्ठान करे महापितृयज्ञमें प्रकृतिवत्=आर्षेयवरणसे भिन्न अतिदेशप्राप्त सर्व अङ्गोंका अनुष्ठान करे महापितृयज्ञमें; इति=इस रीतिसे महापितृयज्ञीय जो प्रकृतिवच्छब्द तादृश शब्दके साथ एकवाक्यतया=एकवाक्यतासे पर्य्युदासार्थही कहा है=नार्षेयं वृणीते एतद्वाक्यलक्षित जो आर्षेयवरणभिन्नार्थ तादृश.अर्थसे प्रकृतिवत्कुर्यात्, एतद्वाक्यार्थको घटित होनेसे पर्य्युदासार्थत्वही है, यह कहा है=दशमाध्यायके अष्टमपादके प्रथमाधिकरणमें विचार किया है दर्शपूर्णमासका विकृतिभूत जो महापितृयाग है उसमें अतिदेशतः वरणकी प्राप्ति है, और नार्षेयं वृणीते इस प्रत्यक्ष वचनसे वरणका प्रतिषेध प्राप्त है, तहाँ संशय होता है कि यहाँ-पर विकल्प है या नियमतः वर्जन ही है और तदर्थ यहभी चिन्ता होती है कि 'नार्षेयं वृणीते' यहाँपर प्रतिषेधात्मक नञर्थ है या पर्य्युदासात्मक, तहाँ पूर्वपक्ष यह है कि प्रतिषेधात्मक अर्थ

माननाही ठीक है क्योंकि इस अर्थके माननेमें आर्षेयपद तथा वृणोति धातु एवं नञ् पद ये तीनों यथाश्रुतार्थ ही रहते हैं और पर्युदासपक्षमें तो जैसे अब्राह्मणमानय यहाँपर नञ् शब्द तथा ब्राह्मण शब्द इन दोनोंसे ब्राह्मणभिन्न लक्षित होता है, तैसे यहाँपर भी आर्षेयशब्द और वृणोति धातु और नञ् इन तीनोंसे आर्षेयवरणभिन्न चोदकप्राप्त प्राकृताङ्ग लक्षित होंगे फलतः लक्षणाके प्रसङ्गसे पर्युदास पक्ष ठीक नहीं तथाच अब यह अर्थ स्पष्ट हो गया कि अतिदेश वाक्यसे वरण विहित है और प्रत्यक्षवचनेन प्रतिपिद्ध है अतः दोनोंके अवैयर्थ्यके लिए विकल्प मानना उचित है सिद्धान्त यह है कि, अष्ट दोपसे ग्रस्त होनेसे विकल्प मानना न्याय्य नहीं है अतः लक्षणासेभी पर्य्युदासार्थत्व ठीक है, तथाच एतद्वाक्यार्थसे घटित स्वार्थबोधकत्व यहाँपर अतिदेश वाक्यको है-दोनों वाक्योंसे सम्मिलित ऐसा बोध हुआ कि-वरणव्यतिरिक्तप्राकृतमङ्गजातमनुष्ठेयम्। विकल्पमें ये अष्ट दोप होते हैं,—

स्वार्थत्यागोऽन्यार्थकल्पनं: प्रकृत्यर्थेऽप्यनन्वयः।
अन्वयश्चाप्रकृत्यर्थे द्वयोरित्यष्ट दोपकाः॥

यत्र तु=और जहाँपर प्रकृतिभूत जो दर्शपूर्णमास उसके प्रकरणमें स्थित तो आज्यभागोंका विधायक वाक्य उस वाक्यके सन्निहितमें जो न तौ पशौ करोति=तौ=आज्य भाग इन दोनोंको पशौ=पशुबन्धकर्ममें न करे, इत्यादिरूपवाक्य उस वाक्यमें पाशुकप्रकृतिवत्=पशुबन्धके साथ सम्बन्धरखनेवाला जो प्रकृतिवच्छब्द उस शब्दके साथ एकवाक्यताके अयोगसे-स्वसमभिव्याहृतपदार्थमेंही परार्थका अन्वय होता है अतः भिन्नप्रकरणस्थ वाक्यके अर्थमें आज्यभागान्यरूप नञर्थके अन्वयका सम्भव न होनेसे पर्युदासार्थत्वके असम्भवसे प्रकृतिवत् करे और आज्य भागोंको न करे इत्यादिवाक्यभेदसे प्रसज्यप्रतिपेधार्थकत्वही कहा है, तत्र=तहाँपर पशुमें आज्य तथा भाग इन दोनोंकी अन्यसे प्रसक्ति न होनेसे और शास्त्रप्रसक्तके सर्वथा बाधके अयोगसे विकल्प है यह कहा है;=अष्टमाध्यायके अष्टमपादके द्वितीयाधिकरणमें यह विचार आया है। तथाच उक्त पर्युदासशास्त्रसे और प्रतिपेधशास्त्रसे अतिदेशशास्त्रका और विधिशास्त्रका सङ्कोचही है। किसी भी श्रौतार्थका सर्वथा बाध नहीं हो सकता है; इसमें वृद्धोक्तिको दिखलाता है को हीति। शास्त्रयोः=दो शास्त्रोंका परस्पर विरोध होनेपर एक शास्त्र प्रमाण होता है और दूसरा अप्रमाणम्=सर्वथा अप्रमाण होता है इति=इस रीतिसे कौन मीमांसक कहेगा; ननुसे लेकर यहाँतक पूर्वपक्ष है अब समाधान करते हैं-इति चेन्न; क्यों?

तत्र शास्त्रयोः प्रामाण्ये समानकक्ष्यतया एकतरस्यात्यन्तिकबाधायोगात्सङ्कोचेन विकल्पेन वा पाक्षिकप्रामाण्यमाश्रितम्, इहत्वेकतरस्य तत्परतया प्रबलत्वादितरस्य चातत्परत्वेन दुर्बलतया वैपम्यात्। यत्तु 'न तौ पशौ करोती' त्यादौ विकल्प उक्तः; तन्न; पशुप्रकरणस्थस्य पाशुकप्रकृतिवच्छब्दैकवाक्यतया पर्युदासार्थत्वात्, दर्शपूर्णमासप्रकरणस्थस्य तु 'पशावाज्यभागौ न स्तः' अत्र तौ स्तः इति स्तुत्यर्थत्वात् वार्तिककारैर्विकल्पे स्वीकृतेऽपि न दोपः उभयत्र तात्पर्य्यसत्त्वेन विशेषात्।

तत्र=उदाहृत स्थलोंमें दोनों शास्त्रोंका प्रामाण्य होनेपर समानकक्ष्यता होनेसे एकतरके आत्यन्तिकबाधके अयोगसे सङ्कोचसे या विकल्पसे पाक्षिकप्रामाण्य आश्रित किया है, और इह तु=प्रकृतमें तो एकतरस्य=निर्गुणबोधक शास्त्रको तत्परतया=स्वार्थपरता होनेसे प्रबलत्वसे और इतरस्य=सगुणत्वबोधकको स्वार्थपरता न होनेसे दुर्बलत्वसे विषमता होनेसे। और 'न तौ पशौ करोति' इत्यादिमें जो विकल्प कहा है वह ठीक नहीं क्यों ? पशुप्रकरणस्थस्य=पशुप्रकरणस्थ जो–न तौ पशौ, इत्याकारक वाक्य उस वाक्यको पशुकर्मसम्बन्धि जो प्रकृतिवच्छब्द उस शब्दके साथ पूर्ववत् एकवाक्यता होनेसे पर्युदासार्थत्व होनेसे, और दर्शपूर्णमासप्रकरणमें जो 'न तौ पशौ करोति, इत्याकारक वाक्य है उसको पशुमें आज्य भाग नहीं हैं, और अत्र=दर्शपूर्णमासमें तो हैं, इत्याकारक स्तुत्यर्थत्व होनेसे और मीमांसावार्त्तिककारसे यहांपर विकल्पके स्वीकृत होनेपरभी दोष नहीं है उभयत्र=विधिशास्त्र तथा प्रतिषेध शास्त्र इन दोनोंमें तात्पर्य्यसत्त्वेन=स्वार्थमें तात्पर्यका सत्त्व होनेसे विशेषात्=स्वार्थपर जो निर्गुणवाक्य और स्वार्थापर जो सगुणवाक्य इन दोनोंकी अपेक्षा बाध्यबाधकभावविरहरूप विशेषसे=स्वार्थपर निर्गुणवाक्योंसे जैसे स्वार्थापर सगुणवाक्योंका बाध होता है तैसे उक्तस्थलमें चाहे पर्युदासपक्ष मानें–जोकि भाष्यकारको सम्मत है, चाहे विकल्पपक्ष मानें जोकि वार्त्तिककारशास्त्रदीपिकाकारादिको सम्मत है परन्तु शास्त्रोंका बाध्यबाधकभाव नहीं है यह विशेष है।

यत्तु—अत्रापि 'विकारशब्दान्नेति चेत् प्राचुर्यात्' उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात्' 'गौण्यसम्भवादित्यादौ शास्त्रयोर्विरोधे तात्त्विकार्थान्तरपरतोक्ता, नत्वारोपितार्थता; अन्यथेक्षत्याद्यधिकरणेषु सिद्धान्तसाधकादीनामीक्षणादीना साङ्ख्याद्यभिमतप्रधानादावारोपसम्भवेन प्रधाननिराकरणादि न सिद्धयेदिति, तन्न; विकारशब्दादित्यादौ न विरोधेन तात्त्विकार्थान्तरपरत्वमर्थः; किन्तु स्वप्रधाने ब्रह्मणि अवयवत्वासम्भवेन पुच्छपदमुपचरितमित्यर्थः। तदुक्तं टीकायां–पुच्छेऽधिकरण इति। गौण्यसम्भवादिति पूर्वपक्षसूत्रेऽपि 'आत्मनः आकाशः सम्भूत इति श्रुतिस्तु गौणी। आकाशोत्पत्तिकारणासम्भवादित्यर्थः नतु तात्त्विकार्थान्तरविषयत्वम्।

अत्रापि=ब्रह्ममीमांसामेंभी विकारशब्दान्नेतिचेन्न; प्राचुर्य्यात्। (अ० १ पा० १ सू० १३) उपदेश भेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात्। (अ० १ पा० १ सू० ३७) गौण्यसंभवात् (अ० २ पा० ३ सू० ३) इत्यादि स्थलमें दो शास्त्रोंका परस्पर विरोध होनेपर तात्त्विक अर्थान्तरपरता कही है आरोपितअर्थता नहीं। अन्यथा=आरोपितार्थता होनेपर तो ईक्षतेर्नाशब्दम् (अ० १ पा० १ सू० ५) इत्यादि अधिकरणोंमें सिद्धान्तसाधक ईक्षणादिकोंके साङ्ख्याद्यभिमत प्रधानादिकोंमें आरोपका सम्भव होनेसे प्रधाननिराकरणादि न सिद्ध होगा=आपको ईक्षत्यादिकी तात्त्विकता तो कहीं पर भी इष्ट नहीं है यदि ऐसा ही अर्थ सूत्रकारादिको भी विवक्षित हो तब तो ईक्षत्याद्यनधिकरणत्वेन प्रधानका निराकरण नहीं बन सकता है क्योंकि आरोपित ईक्षत्यादिक प्रधानमें बन सकते हैं और तात्त्विक तो कहीं भी हैं ही नहीं यदनधिकरणत्वेन

प्रधानादिका निराकरण बनें इति यत् तत् तु न=ऐसा जो कहना है वह कहना भी ठीक नहीं क्योंकि विकारशब्दात् इत्यादिमें विरोधसे तात्त्विकअर्थान्तरपरत्व पुच्छपदको है, ऐसा सूत्रार्थ नहीं है किन्तु स्वप्रधानब्रह्ममें अवयवत्वके असम्भवसे 'ब्रह्म पुच्छम्' यहाँपर पुच्छपद उपचरित है; यह अर्थ है सो कहा है टीकामें-पुच्छे=अधिकरणमें=आधारत्वरूप गुणयोगसे पुच्छ शब्द ब्रह्ममें प्रवृत्त है अतः इसे तात्त्विक अर्थकता नहीं। गौण्यसंभवात्=इस पूर्वपक्ष सूत्रमेंभी आत्मासे आकाश उत्पन्न हुआ (तै०२।१) यह श्रुति गौणी है आकाशकी उत्पत्तिके कारणके असम्भवसे यह अर्थ है; न कि तात्त्विकार्थान्तरविषयत्व।

उपदेशभेदादित्यादौ दिवि दिव इति सप्तमीपञ्चमीभ्यामाधारत्वावधित्वयोः प्रतीतेरुपदेशभेदेन पूर्वनिर्दिष्टब्रह्मणः प्रत्यभिज्ञानमस्तीति प्राप्ते एकस्मिन्नपि श्येने 'वृक्षाग्रे श्येनः वृक्षाग्राच्छ्येन इति निर्देशदर्शनात् एकस्मिन्नेव ब्रह्मणि उभयरूपाविरोध इत्यर्थः, नतु तात्त्विकार्थान्तरपरत्वम् । नचारोपितर्माक्षणं प्रधाने सम्भवति; योग्यतामादायैवारोपदर्शनात् । नहि राजामात्ये राजात्वारोप इति स्तम्भादावपि तदारोपः। तथाच चेतन एव ईक्षितृत्वदर्शनाच्चेतने ब्रह्मणि तदारोपो युज्यते नाचेतन इति न सिद्धान्तक्षतिः। किञ्च निषेध्यसमर्पकतयैकवाक्यतयैव प्रामाण्यसम्भवे न वाक्यभेदेन गुणप्रापकता युक्ता-अत एव न 'को हि मीमांसक इत्यादिना विरोधः।

और उपदेशभेदात्=(ब्र० सू० १।१।२७) इत्यादिस्थलमें दिवि=त्रिपादस्यामृतं दिवि (छा० ३।१२।१।६) और दिवः परो दिवो ज्योतिः 'ब्राह्मण' यह जो सप्तमी तथा पञ्चमी है इन दोनोंसे क्रमशः आधारत्वकी और अवधित्वकी प्रतीतिसे उपदेशभेदे=उपदेशका भेद होनेपर पूर्वनिर्दिष्ट ब्रह्मका प्रत्यभिज्ञान नहीं है ऐसा पूर्व पक्ष होनेपर वृक्षाग्रसम्बद्ध एक ही श्येनमें-वृक्षाग्रे श्येनः, वृक्षाग्रात्परतः श्येनः, इस रीतिका द्विविध निर्देश देखनेसे एकही ब्रह्ममें उभयरूपोंका अविरोध है, इत्याकारार्थात्मक सिद्धान्त है, नकि तात्त्विक-अर्थान्तरपरत्व। आरोपित ईक्षण प्रधानमें सम्भवित है, नच=सम्भवित नहीं है, क्यों ? योग्यताको लेकरही आरोपको देखनेसे। क्योंकि राजाके अमात्यमें राजत्वका आरोप होता है अतः स्तम्भादिमेंभी राजत्वका आरोप हो ऐसा नहीं है, फलतः चेतनमें ही ईक्षितृत्वके देखनेसे चेतनरूपब्रह्ममें उसका आरोप युक्त है अचेतनमें नहीं, अतः सिद्धान्तकी हानि नहीं। और अचेतनमें ईक्षतिका आरोप होनेपरभी उसे प्रातिभासिक कहना पड़ेगा, और जब व्यावहारिक-ईक्षण-परत्व शास्त्रको बन सकता है तब प्रातिभासिक-ईक्षण-परत्व मानना युक्त नहीं। सगुणवाक्यको गुणप्रकारकोपासनापरत्व होनेपरभी गुणवैशिष्ट्यपरत्व नहीं है वाक्यभेदापत्तिसे यह कहा है, अब गुणनिषेधकवाक्यको अपेक्षित जो गुणरूप प्रतियोगी तादृश प्रतियोगीका अनुवादकत्व होनेसे सगुणवाक्योंको गुणपरत्वभी नहीं है यह दिखलाते हैं-किञ्चेति। सगुणवाक्योंको निषेध्यसमर्पकविधया निर्गुणवाक्योंके साथ एक वाक्यत्वेन ही प्रामाण्यका सम्भव होनेपर

वाक्यभेदसे गुणप्रापकता युक्त नहीं है। अतएव=गुणनिषेधपरत्वेन सगुणवाक्यके प्रामाण्यके स्वीकारसेही 'कोहि मीमांसकः' इत्यादि वृद्धोक्तिके साथ विरोध नहीं।

ननु—मृडमृदेत्यादेर्यथा 'न क्त्वासेडिति' निषेधनिषेधकत्वं, तद्वत् सगुणवाक्यानामपि निर्गुणवाक्यबाधकत्वं किं न स्यादिति–चेन्न; दृष्टान्ते पर्युदासाधिकरणन्यायेन मृडमृदेत्यादि–उत्तरविहितान्यसेट्क्त्वाप्रत्ययकित्त्वनिषेधपरत्वेनैकवाक्यतायां वाक्यभेदेन निषेधनिषेधकत्वाकल्पनात्। नच–प्रकृतेऽपि पर्युदासार्थकत्वम्; नेति नेतीति विप्सायाः प्रसक्तसर्वनिषेधकतया विशेषपरिशेषायोगेन पर्युदासस्य आश्रयितुमशक्यत्वात्। यत्तु जगत्कर्तृत्वेनाक्षिप्तसार्वज्ञ्यादेः निषेधायानुवादे श्रुतेन ज्ञाननिवर्त्यत्वेन जगदारोपाधिष्ठानत्वेन 'स एवेदं सर्वं मात्मैवेदं सर्वमिति' श्रुतेन जीव–ब्रह्मणोः सार्वात्म्येन चाक्षिप्तं विश्वमिथ्यात्वं ब्रह्मसत्त्वं जीवब्रह्मैक्यञ्च विश्वं सत्यमित्यनेन असद्वा इत्यनेन द्वासुपर्णे' त्यनेन च निषेद्धुं 'नेह नानेत्यनेन सत्यं ज्ञानमित्यनेन तत्वमसीत्यनेन चानूद्यते इति स्यादिति, तन्न।

शङ्कते नन्विति। मृडमृद–(अष्टा० अ० १ पा० २ सू० ७) इत्यादिको जैसे। नक्त्वासेट्, (अष्टा० अ० १ पा० २ सू० १८) इत्यादिरूप निषेधका निषेधकत्व है, तैसे सगुण वाक्योंकोभी निर्गुणवाक्योंका बाधकत्व क्यों न हो इति नच वाच्यम् क्यों? दृष्टान्तमें पर्युदासाधिकरण न्यायसे मृडमृदेत्यादि–उत्तर–सूत्रविहितसे अन्य जो सेट् क्त्वा प्रत्यय तन्निष्ठकित्त्वनिषेधपरत्वेन एकवाक्यताके होते हुए वाक्यभेदसे निषेधनिषेधकत्वके अकल्पनसे। प्रकृतेऽपि= सगुणवाक्यमेंभी पर्य्युदासार्थत्व=सार्वज्ञ्यादिभिन्नगुणनिषेधकत्व निर्गुणश्रुतिको है। लक्षणासे एतदर्थबोधकत्वरूप पर्य्युदासार्थत्व है, नच=ऐसा पर्युदासार्थत्व नहीं है, क्यों? नेति नेति (बृ० २।३।६) इस वीप्साको प्रसक्त सर्वका निषेधकत्व होनेसे विशेषके परिशेषके अयोगसे, पर्युदासको आश्रयण करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे। जगत्कर्तृत्वेन आक्षिप्त जो सार्वज्ञ्यादि उन सार्वज्ञ्यादिका निषेधके लिए अनुवाद होनेपर श्रुत जो ज्ञाननिवर्त्यत्व उससे, और जगत्का जो आरोप उस आरोपका जो अधिष्ठानत्व उससे और 'स एवेदं सर्वमात्मैवेदं सर्वमिति (छा० ७।२५।१०२) इस रीतिसे श्रुत जो विश्वमिथ्यात्व और ब्रह्मसत्त्व तथा जीवब्रह्मैक्य ये तीनों यथाक्रम 'विश्वं सत्यं' (ऋ० सं०) इससे और असद्वा (तै० २।७।१) इससे तथा 'द्वासुपर्णा' (ऋ० सं० मण्डल १ सू० १६४ मं० ८; श्वेता० ४।६; मु० ३।१।१) इससे–निषेध करनेके लिए नेह नाना (४।४।१९) इससे और सत्यं ज्ञानम् (तै० २।१।१) इससे तथा तत्त्वमसि (छा० ६।९।४) इससे अनूदित होते हैं इति=ऐसा हो इति यत् तत् तु न; क्यों?

'विश्वं सत्यं' द्वासुपर्णेत्यत्र च निषेधद्योतकपदाभावेन निषेधकत्वासम्भवात् असद्वा इत्यत्र तु नञ्सत्त्वेऽपि नामपदसमभिव्याहृतत्वेन निषेधकत्वासम्भवात्, 'द्वासुपर्णे' त्यस्य पैङ्गिरहस्यब्राह्मणे बुद्धिजीवपरतया व्याकृतत्वेन जीवब्रह्मभेदाबोधक-

त्वात्, फलतो निषेधत्वोपपादने दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकयोर्वैषम्यात्। तथाहि—सार्वज्ञ्यस्य निषेध-प्रतियोगितया मिथ्याभूतत्वेऽपि नाक्षेपानुपपत्तिः; आरोपितेनाप्याक्षेपकजगत्कर्तृत्वनिर्वाहात्, आक्षिप्तविश्वमिथ्यात्वब्रह्मसत्त्वजीवब्रह्मैक्यानां निषेधे तु ज्ञाननिवर्त्यत्वादीनां त्रयाणामाक्षेपकाणामसंभवः स्यात् सत्यस्य ज्ञानादनिवृत्तेः, असत्यस्य अधिष्ठानत्वायोगात् भेदे सार्वात्म्यायोगाच्च।

विश्वं सत्यं यहाँपर और द्वासुपर्णा यहाँपर निषेधद्योतक पदके अभावसे निषेधकत्वके असम्भवसे और असद्वै यहाँपर नञ्का सत्त्व होनेपरभी नञ्को नामपदके साथ समभिव्याहृतत्व होनेसे, निषेधकत्वके असम्भवसे, और द्वासुपर्णा इसको पैङ्गिरहस्यब्राह्मणमें बुद्धिजीवपरत्वेन व्याख्यातत्व होनेसे जीवब्रह्मके भेदका अबोधकत्व होनेसे, फलतः निषेधत्वके उपपादनमें दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक इन दोनोंका वैषम्य है अतः यह निरूपण ठीक नहीं। तथाहि सार्वज्ञ्यको निषेधप्रतियोगित्वेन मिथ्याभूतत्व होनेपरभी उसके आक्षेपकी अनुपपत्ति नहीं; क्यों ? आरोपितेनापि=व्यावहारिक सार्वज्ञ्यादिसेभी आक्षेपक जो जगत्कर्तृत्व उसके निर्वाहसे, और आक्षिप्त जो विश्वमिथ्यात्व और ब्रह्मसत्त्व तथा जीवब्रह्मैक्य इन तीनोंका निषेध होनेपर तो ज्ञाननिवर्त्यत्व जगदारोपाधिष्ठानत्व, सार्वात्म्य ये जो तीन आक्षेपक हैं इन तीनोंका असम्भव होगा, सत्यकी ज्ञानसे निवृत्ति न होनेसे, और असत्यको अधिष्ठानत्वके अयोगसे और भेद होनेपर सार्वात्म्यके अयोगसेभी।

एतेन——अद्वैतश्रुतेर्निर्गुणश्रुत्यन्तरस्य वा तात्पर्यपरिज्ञानप्राप्तनिर्गुणत्वमेव-सगुणवाक्येन निषेद्धुं निर्गुणवाक्येनानूद्यत—इति निरस्तम्; तात्पर्यपरिज्ञानप्राप्तयें निषेधार्थमनुवादायोगात्। ननु—'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्चेत्यादिना द्रष्टृत्वादिगुणविधानात् न तेन तन्निषेधः; तदर्थं च सगुणवाक्यं नानुवादकम्, अन्यथा सार्वज्ञ्यादेर्व्यावहारिकत्वमपि न स्यात्, नहि निषिद्धे ब्रह्महननादाववान्तरतात्पर्य्यम्। नच औपनिषदस्य ब्रह्मणः सार्वज्ञ्यादिकमनुमानादिसिद्धमिति—चेन्न; अविद्यासिद्धसाक्षित्वाद्यनुवादेन तटस्थलक्षणद्वारा ब्रह्मपरतया गुणपरत्वाभावात् गुणनिषेधकतोपपत्तेः। नच निषिद्धे ब्रह्महननादाववान्तरतात्पर्याभाववदत्रापि तदभावे सार्वज्ञ्यं व्यावहारिकमपि न स्यादिति—वाच्यम्, देवताविग्रहादौ विधिस्तुतिद्वारतयोपात्ते प्रमाणान्तरप्राप्तिविरोधयोरभावात्; तदत्यागमात्रेण तत्सिद्धिवदत्रापि निषेधौपयिकतयोपात्तस्य सार्वज्ञ्यादेर्मानान्तरादप्राप्तस्य व्यावहारिकप्रमाणानिषिद्धतया व्यवहारदशायामत्यागमात्रेण व्यावहारिकत्वोपपत्तेः।

एतेन=निषेधवाक्यको अपेक्षित जो प्रतियोगी तादृश प्रतियोगिसमर्पकत्वेन एकवाक्यताका सम्भव होनेपर वाक्यभेदके अन्याय्यत्वसे अद्वैतश्रुतिके या निर्गुणबोधक श्रुत्यन्तरके तात्पर्य्यका जो परिज्ञान उस परिज्ञानसे प्राप्त जो निर्गुणत्व वह निर्गुणत्व ही सगुणवाक्यसे

निषेध करनेके लिए अनूदित होता है यह कथन खण्डित हुआ; हेत्वन्तर दिखलाते हैं–तात्पर्य्यका जो परिज्ञान तादृश परिज्ञानसे निर्गुणत्वको प्राप्तत्व होनेपर निषेधार्थ उसके अनुवादके अयोगसे। शङ्कते नन्विति। 'साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च' (श्वे० ६।११) इत्यादिसे द्रष्टृत्वादि गुणोंका विधान होनेसे तेन=उक्तवाक्यसे तन्निषेधः=गुणोंका निषेध नहीं है; अन्यथा=निषेधार्थ अनुवाद्यत्व होनेपर सार्वज्ञ्यादिका व्यावहारिकत्व भी न होगा, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं–नहीति। क्योंकि निषिद्ध ब्रह्महननादिमें शास्त्रका अवान्तर तात्पर्य्यभी नहीं है, गुणोंको निषिद्धत्व होनेपर उन्होंमें अवान्तर तात्पर्य भी न होगा, अतएव व्यावहारिकत्व न सिद्ध होगा। और उपनिषद्वेद्यब्रह्मके सार्वज्ञ्यादिक अनुमानसे सिद्ध हैं ऐसा तो नहीं कहा जा सकता है, ननुसे लेकर यहाँतक शङ्का है, अत्र समाधान करते हैं–इतिचेन्न; क्यों ? उक्त वाक्यको अविद्यासे सिद्ध जो साक्षित्वादिक तादृशसाक्षित्वादिके अनुवादसे तटस्थलक्षणद्वारा ब्रह्मपरत्व होनेसे सगुणपरत्वके अभावसे गुणनिषेधकत्वकी उपपत्तिसे यदि यों कहो कि, जैसे ब्रह्महननादिमें अवान्तर तात्पर्यका अभाव है तैसे अत्रापि=गुणोंमेंभी अवान्तर तात्पर्य्यका अभाव होनेपर सार्वज्ञ्य व्यावहारिक भी न होगा तो ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्यों ? विधिस्तुतिद्वारतया उपात्त=श्रुतिबोधित जो देवताविग्रहादि तादृश देवताविग्रहादिमें प्रमाणान्तरतः प्राप्ति और प्रमाणान्तरका विरोध इन दोनोंके अभावसे तदत्यागमात्रेण=श्रुतिजन्यज्ञानमें विग्रहादिविषयत्वावच्छेदेन प्रामाण्यके अत्याग मात्रसे जैसे विग्रहकी सिद्धि होती है तैसे प्रकृतमेंभी निषेधोपचारभूतत्वेन उपात्त और मानान्तरसे अप्राप्त एवम्भूत जो सार्वज्ञ्यादि तादृश सार्वज्ञ्यादिका व्यावहारिक प्रमाणसे निषिद्धत्व न होनेसे व्यावहारिकदशामें अत्यागमात्रसे तद्विषयकज्ञानमें व्यावहारिक प्रामाण्यकी उपपत्तिसे।

ब्रह्महननादिकं मानान्तरप्राप्तमिति विशेषः। नच तद्बोधकत्वं तत्तात्पर्यनियतम्, विशिष्टविधेर्विशेषणबोधकत्वेऽपि विशेषणे अतात्पर्यात्, विशिष्टस्यातिरेकात् अन्यशेषतयोपात्तेऽपि सार्वज्ञ्यादौ तात्पर्ये वाक्यभेदापत्तेः। नच–तर्हि 'उपासनायाः कार्यत्वे विष्णोरात्मत्व एव च। उभयत्रापि तात्पर्यमात्मोपासादिके विधौ॥' इति स्मृतिविरोध इति वाच्यम्' देवताधिकरणन्यायेनोभयसिद्धिपरत्वात् उभयत्र तात्पर्ये स्मृतेरप्रमाणत्वात्, यः सर्वज्ञ इत्यादावुपासनाप्रकरणस्थत्वाभावेऽपि तटस्थलक्षणद्वारा ब्रह्मप्रतिपादने तात्पर्येण विशेषणे अतात्पर्यात् अन्यथा एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञाविरोधापत्तेः।

ब्रह्महननादिक तो मानान्तरसे प्राप्त हैं यह विशेष है। तद्बोधकत्व तत्तात्पर्य्यसे नियत है=तद्बोधकत्व तत्तात्पर्यका व्याप्त है नच=ऐसा नहीं है क्यों ? विशिष्टविधिको विशेषणबोधकत्व होनेपर भी विशिष्टविधिका विशेषणमें तात्पर्य न होनेसे; विशिष्टको विशेषणसे भिन्न होनेसे अन्यशेषतया उपात्त सार्वज्ञ्यादिमें तात्पर्य होनेपर वाक्यभेदकी आपत्तिसे। तब उपासनाको कार्यत्व हो या विष्णुस्वरूपत्व हो दोनों पक्षोंमें आत्मोपासनादिक विधिमें तात्पर्य है, इस स्मृतिके साथ विरोध है इति नच वाच्यम्; क्यों ? उक्त देवताधिकरण न्यायसे उभयसिद्धि-

परत्वेन उभयत्र तात्पर्य है, स्मृतिसे नहीं, उक्त स्मृतिको अप्रमाणिकत्व होनेसे। और यः सर्वज्ञः (मु० १।१।९) इत्यादिमें उपासनाप्रकरणस्थत्वके न होनेपर भी तटस्थलक्षणद्वारा ब्रह्मप्रतिपादनमें तात्पर्य होनेसे विशेषणमें अतात्पर्यसे। अन्यथा=विशेषणमेंभी तात्पर्य होनेपर एकके विज्ञानसे जो सर्वविज्ञानकी प्रतिज्ञा (छा० ६।१।२) उसके साथ विरोधकी आपत्ति है।

नच—'आत्मेत्येवोपासीते' त्यत्राद्वैतस्याप्युपास्यत्वेन उपासनाशेषतया अद्वैतासिद्धिः स्यादिति–वाच्यम्; अनेन 'ह्येतत् सर्वं वेदे' त्युत्तरवाक्यस्थविदिसमानार्थतया उपास्तिशब्दस्य क्रियावाचकत्वाभावात्। नच ज्ञाने विधिः तस्य निराकरिष्यमाणत्वात्। 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्त' इत्यादेर्न स वेदेत्युत्तरवाक्यपर्यालोचनया भेददर्शननिन्दापरतया उपास्तिपरतया शङ्कैव नास्ति। न चोपक्रमानुसारेण उपसंहारनयनम्; अनेन ह्येतत्सर्वं वेदेत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञाविरोधेनोपसंहारस्यैव प्राबल्यात्। यत्तु गुणोपसंहारपादे 'आनन्दादयः प्रधानस्ये'ति–सूत्रे 'आनन्दं ब्रह्मे' त्यादिश्रुतिनामानन्दादीनां 'व्यतिहार' इति सूत्रे 'यद्योऽहमिति श्रुत्युक्तस्य जीवे ईश्वरत्वस्य ईश्वरे वा जीवत्वस्य उपास्यतयोक्तत्वादुत्तरतापनीयादौ निर्गुणोपास्तेरुक्तत्वेऽपि यथानंदादेरैक्यस्य निर्गुणस्य च सिद्धिः, तथा सत्यकामत्वादेरपि तात्त्विकतास्त्विति, तन्न; आनन्दादय इति सूत्रेण लक्ष्याखण्डवाक्यार्थसिद्ध्यर्थं वाच्यवाक्यार्थोपसंहारस्य क्रियमाणत्वेन उपास्यत्वानुक्तेः।

शङ्कते नचेति। आत्मेत्येवोपासीत (बृ० १।४।७) इस रीतिसे इस श्रुतिमें अद्वैतकोभी उपास्यत्वेन उपासनाकी शेषता होनेसे अद्वैतकी असिद्धि होगी इति नच वाच्यम्, क्यों? अनेन हि एतत्सर्वं वेद (बृ० १।४।७) इत्याकारक जो उत्तरवाक्य तादृश उत्तरवाक्यस्थ जो विदि तादृश विदिके समानार्थकता होनेसे उपास्ति शब्दको क्रियावाचकत्वके अभावसे। ज्ञानमें विधि है, नच=नहीं है, क्यों? तस्य=ज्ञानमें विधिको निराकरिष्यमाण होनेसे, विधिश्रुत्यानर्थक्यम्=उपासीत इस विधि श्रुतिका आनर्थक्य है नच=नहीं है क्यों? उसको शब्दादिरूप बाह्यविषयसे निवृत्त होकर जो चित्तकी प्रत्यगात्मप्रवणता तादृश प्रवणताका सम्पादकत्व होनेसे और 'अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते' (बृ० १।४।१०) इत्यादिको 'न स वेद' (बृ० १।४।१०) इस उत्तरवाक्यकी पर्य्यालोचनासे भेददर्शनकी जो निन्दा तादृशनिन्दापरता होनेसे उपासनापरताकी शङ्का ही नहीं है। उपक्रमानुसारेण="आत्मेत्येवोपासीत" (बृ० १।४।७) इस उपक्रमके अनुसार उपसंहारनयनम्=य एवं वेद (बृ० १।४।१०) इत्याकारक उपसंहारका नयन है, नच=नहीं है, क्यों? अनेन हि 'एतत्' सर्वं वेद (बृ० १।४।७) इत्याकारक जो एकके विज्ञानसे सर्वके विज्ञानकी प्रतिज्ञा है उसके साथ विरोध होनेसे उपसंहारके प्राबल्यसे। गुणोपसंहारपादमें आनन्दादयः प्रधानस्य (अ०३ पा०३ सू०११) इस सूत्रमें "आनन्दं ब्रह्म" (तै० २।४।१) इत्यादि श्रुति आनन्दादिकोंको उपास्यतया उक्तत्व होनेपरभी जैसे आनन्दा-

दिकोंके तात्विकत्वकी सिद्धि है, और व्यतिहार=व्यतिहारो विंशिषन्ति हीतरवत् (अ० ३ पा० ३ सू० ३७) इस सूत्रमें 'तद्योऽहम्' (ऐत० आ०) इस श्रुतिसे उक्तजीवमें ईश्वरत्वको और ईश्वरमें जीवत्वको उपास्यतया उक्तत्व होनेपरभी जैसे ऐक्यके तात्त्विकत्वकी सिद्धि है और उत्तरतापनीयादिमें निर्गुणकी उपासनाका उक्तत्व होनेपरभी जैसे निर्गुणके तात्त्विकत्वकी सिद्धि है, तैसे उपास्यत्वेन उक्तत्व होनेपरभी सत्यकामत्वादिकोभी तात्विकत्व रहो; इति यत् तत् तु न; क्यों? आनन्दादयः प्रधानस्य इस सूत्रसे लक्ष्य जो अखण्डवाक्यार्थ उस वाक्यार्थकी सिद्धिके लिए वाच्य जो वाक्यार्थ उसके उपसंहारको क्रियमाणत्व होनेसे उपास्यत्वकी अनुक्तिसे=उक्तसूत्र अखण्डवाक्यार्थकी सिद्धिके लिए वाच्य वाक्यार्थका उपसंहार बताता है नकि आनन्दादिका उपास्यत्व।

व्यतिहारसूत्रे च 'तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौसोऽहमित्युक्तस्य जीवे ईश्वराभेदध्यानस्योश्वरे वा, जीवाभेदध्यानस्योपासनाप्रकरणपठितश्रुत्युक्तस्य जीवेश्वराभेदः, सगुणोपासनरूपेणापि दृढीकर्त्तव्य इत्येवंपरतया ऐक्यस्य उपासनाविषयत्वेऽपि न सत्यकामत्वादिवद्तात्त्विकत्वम्। नचैक्यवत् सत्यकामत्वादीनां तात्त्विकता, अनुपासनाप्रकरणस्थतत्परवाक्यबोधितत्वाबोधितत्वाभ्यां विशेषात्, उत्तरतापनीयादौ श्रुतोपास्तेर्ज्ञानपरत्वात्, उपास्तेर्विशिष्टविषयत्वेन निर्विशेषविषयत्वाभावात्। यत्तु यथाध्यानार्थेऽपि सत्यकामादिगुणोपदेशे तद्गुण ईश्वरः प्रसिद्ध्यति, तद्वदैक्यमिति भाष्यपर्यालोचनया ऐक्यवत् सत्यकामत्वादिसिद्धिरिति, तन्न; तत्र सगुणो यः स ईश्वरः प्रसिद्ध्यति इत्यर्थः, नतु गुणस्यापि प्रसिद्धिः, निर्गुणश्रुत्यनुसारेण अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहावेव तात्पर्य्यात्। तथा चैक्यसिद्धावीश्वरस्य निदर्शनत्वम् नतु गुणस्य। एवमेवार्थसिद्धं भवन्नोपेक्षामहे। सत्यकामादिगुणोपदेशात्, तद्गुणेश्वरादिसिद्धिरिति टीका नेया।

और उक्त व्यतिहार सूत्रमें तो तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोहम् इस रीतिसे उक्तस्य=उपासनाप्रकरण पठित जो श्रुति तादृश श्रुत्युक्त जीवमें ईश्वराभेद ध्यानको या ईश्वरमें जीवाभेद ध्यानको जीवेश्वरका अभेद सगुणोपासनारूप द्वारसेभी दृढीकर्त्तव्य है, इत्याकारक अर्थपरता होनेसे=उक्त ध्यानको उक्तविध अभिप्रेतार्थकता होनेसे ऐक्यको उपासनाविषयत्व होनेपरभी सत्यकामत्वादिवत् अतात्त्विकत्व नहीं है। इस पङ्क्तिमें 'इत्युक्तस्य' का विवरण—उपासनाप्रकरणघटितश्रुत्युक्तस्य है, सम्भवतः यह पाठ टिप्पणीसे मूलमें आगया है। और जैसे ऐक्यको तात्त्विकत्व है तैसे सत्यकामत्वादिको तात्त्विकता नहीं है, क्यों? अनुपासनाप्रकरणस्थ और तत्पर जो तत्त्वमस्यादिरूप वाक्य तादृशवाक्यसे बोधितत्व होनेसे और तादृशवाक्यसे बोधितत्व न होनेसे उभयत्र विशेषसे=अनुपासनाप्रकरणस्थ—तत्परवाक्यबोधितत्वेन ऐक्यका तात्त्विकत्व है, और तथाविध वाक्यसे बोधितत्व न होनेसे, सत्यकामत्वादिका तात्त्विकत्व नहीं है। और उत्तरतापनीयादिमें श्रुत जो उपासना उस उपासनाको ज्ञानपरत्व होनेसे उपासनाको विशिष्ट—

विषयकत्व होनेसे निर्विशेषविषयत्वके अभावसे तथाच निर्गुणका उपास्यत्व नहीं है; जैसे ध्यानार्थभी सत्यकामत्वादिरूप गुणोंका उपदेश होनेपर तद्गुण:=सत्यकामत्वादिगुणवाला ईश्वर प्रसिद्ध होता है तैसे ध्यानार्थ ऐक्यका उपदेश होनेपरभी ऐक्य प्रसिद्ध होता है, इति भाष्य-पर्य्यालोचनया=इस व्यतिहारसूत्रस्थ भाष्यकी पर्य्यालोचनासे, ऐक्यकी तरह सत्यकामत्वादि सिद्ध हैं,—इति यत् तत् तु न; क्योंकि तत्र=सक्तभाष्यघटक तद्गुणः यहाँपर सः गुणो यस्य सः तद्गुणः एवम्भूतः ईश्वरः प्रसिद्धयति=सत्यकामत्वादि गुण है जिसका एवम्भूत ईश्वर प्रसिद्ध होता हैं, यह अर्थ है, न कि गुणकीभी प्रसिद्धि; निर्गुण श्रुतिके अनुसार अतद्गुणसंविज्ञानबहुव्रीहिमें ही तात्पर्य्य होनेसे=जहाँपर समासघटकपदप्रतिपाद्यगुणोंका वैशिष्ट्य बहुव्रीहिप्रतिपाद्य अन्यपदार्थमें विवक्षित नहीं होता है वहाँपर अतद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि कहा जाता है। फलतः ऐक्यसिद्धिमें ईश्वरको दृष्टान्तत्व है, गुणको दृष्टान्तत्व नहीं है। एवम्=इसी रीतिसे अर्थतः सिद्ध होनेवाले ऐक्यको हमलोग उपेक्षित नहीं करते हैं। सत्यकामादिगुणोपदेशसे तद्गुणेश्वरादिसिद्धिः। यह तत्रत्य टीकाभी उक्तप्रकारसे उक्तार्थपरत्वेन नेय है।

ननु—आनन्दादिवाक्यसत्यकामादिवाक्ययोर्मानान्तराविरोधे। तदप्राप्तौ उपासनाविध्यश्रवणे निर्गुणश्रुतिविरोधे च तुल्येऽपि आनन्दादयस्तात्त्विकाः सत्यकामत्वादयस्त्वतात्त्विकाः इति कथं व्यवस्थेति—चेन्न; आनन्दादीनां ब्रह्मरूपत्वेन निर्गुणश्रुतिविरोधाभावस्य व्यवस्थापकत्वात्। नच एवं बलशक्त्यादीनामपि ज्ञानात्मको भगवान्बलात्मको भगवानिति श्रुतेः समस्तकल्याणगुणात्मक' इति श्रुतेश्च ब्रह्माभेद इति वाच्यम्; अस्माकमपि ब्रह्मातिरिक्तिगुणसद्भावप्रद्वेषात्, अभेदे गुणगुणिभावाङ्गीकारस्य पारिभाषिकत्वात्। यत्तु सगुणोपास्तेर्भ्रमत्वे निर्गुणोपास्तेरपि भ्रमतया सम्यक्फलासिद्धिर्ब्रह्मासिद्धिश्च स्यात्। नच—निर्गुणोपासनं यद्यपि भ्रमस्तथापि मणिप्रभायां मणिभ्रम इव सम्यक्फलप्रदम्। तदुक्तम्—स्वयंभ्रमोऽपि संवादी यथा—सम्यक्फलप्रदः। ब्रह्मतत्त्वोपासनापि तथा मुक्तिफलप्रदा॥ 'इति' नापि ब्रह्मासिद्धिः; उपासनस्य भ्रमत्वेऽपि शब्दाज्जायमानस्य ज्ञानस्य प्रमाणत्वादिति—वाच्यम्; प्रकृतेऽपि तथात्वापत्तेः मणिप्रभायां मणित्वस्येव ब्रह्मणो मिथ्यात्वाभावेन ध्यानस्यपि सत्यब्रह्मविषयत्वाच्चेति, तन्न, सगुणोपास्तेर्विशिष्टविषयत्वेन भ्रमत्वेऽपि निर्गुणाद्युपास्तेर्निर्विशेषविषयतया भ्रमत्वाभावात्।

शङ्कते नन्विति। आनन्दादिवाक्य और सत्य कामादिवाक्य इन दोनों वाक्योंमें मानान्तरके अविरोधके और उक्त वाक्योंकी अप्राप्तिमें उपासना विधिके अश्रवणके सगुणवाक्यमें कहींपर उपासनाविधिके श्रवण होनेपर भी कहींपर अश्रवणके और निर्गुणश्रुतिविरोधके तुल्य होनेपर भी आनन्दादिक तात्त्विक हैं और सत्यकामत्वादिक अतात्त्विक हैं यह व्यवस्था कैसे है=उक्त द्विविध वाक्योंमें मानान्तरका अविरोध समान है और उक्त वाक्योंके विना

विधिका अश्रवणभी एक प्रकारसे समान है और निर्गुणश्रुतिका विरोधभी समान है निर्गुणश्रुतिसे जैसे सत्यकामत्वादिकका निषेध प्रतीत होता है तैसे गुणत्वाविशेषसे आनन्दादिकाभी निषेध प्रतीत होता है, तथाच निर्गुणश्रुतिका विरोधभी उभयत्र समान है, ऐसा होनेपर सत्यकामत्वादिक मिथ्या है, और आनन्दादिक परमार्थ सत हैं, यह भेद किंप्रयुक्त है, इति चेन्न; क्यों ? आनन्दादिकोंको ब्रह्मरूपत्व होनेसे निर्गुणश्रुतिविरोधाभावको व्यवस्थापकत्व होनेसे=सत्यकामत्वादिको सत्य माननेमें निर्गुणश्रुतिका विरोध है और आनन्दादिकको ब्रह्मरूपता होनेसे निर्गुणश्रुतिका विरोध नहीं है, फलतः निर्गुणश्रुतिका विरोधाभाव उक्तार्थका व्यवस्थापक है । एवम्=ऐसा होनेपर बलशक्त्यादिकोंकाभी ब्रह्मके साथ अभेद होगा, ज्ञानात्मको भगवान् बलात्मको भगवान् इस श्रुतिसे और समस्तकल्याणगुणात्मकः इस श्रुतिसे इति नच वाच्यम्; क्यों हम लोगोंका भी ब्रह्मसे अतिरिक्तगुणोंके सद्भावमें प्रद्वेष होनेसे=ब्रह्मात्मक किसी भी गुणको कहलो इससे हमारे सिद्धान्तकी हानि नहीं, इसी भावको स्पष्ट करते हैं–अभेदमें गुणगुणिभावके अङ्गीकारको पारिभाषिकत्व होनेसे । सगुणोपासनाको भ्रमत्व होनेपर निर्गुणोपासनाकोभी भ्रमत्व होनेसे सम्यक् फलकी असिद्धि होगी और ब्रह्मकीभी असिद्धि होगी । यदि यों कहो कि-निर्गुणोपासना यद्यपि भ्रम है तथापि मणिप्रभामें मणिभ्रमकी नाईं सम्यक् फलको देनेवाली है, सो कहा है,-सम्वादी स्वयं भ्रम हुआ भी जैसे सम्यक् फल देनेवाला है, तैसे ब्रह्मतत्त्वोपासनाभी भ्रमरूप हुई भी मुक्तिरूपफलप्रदा है । और ब्रह्मकी असिद्धिभी नहीं है, उपासनाको भ्रमत्व होनेपरभी शब्दसे जायमान ज्ञानको प्रमात्व होनेसे तो ऐसा नहीं कहना, क्यों ? प्रकृतेऽपि=सगुणोपासनावाक्यमेंभी तथात्वापत्तेः=सगुणोपासनामें प्रमात्वका अभाव होनेपरभी सगुणवाक्यजन्यज्ञानको प्रमात्व होनेसे सगुणकी सिद्धिकी उपपत्तिसे मणिप्रभामें मणित्वको जैसे मिथ्यात्व है तैसे ब्रह्मणः=सगुणब्रह्मनिष्ठमिथ्यात्वके अभावसे ध्यानकोभी सत्यब्रह्मविषयत्व होनेसेभी इति यत् तत् तु न, क्यों ? सगुणोपासनाकोविशिष्टविषयत्वेन भ्रमत्व होनेपरभी निर्गुणोपासनाको निर्विशेषविषयत्व होनेसे भ्रमत्वके अभावसे ।

एवमेव शाब्दसगुणनिर्गुणज्ञानयोरपि सगुणवाक्यस्य विशेष्यांशसत्यविषयत्वेऽपि विशेषणांशासत्यविषयत्वात् । अतएव ब्रह्मविषयशाब्दधीजन्यस्य तदपरोक्षधीजनकस्य ब्रह्मध्यानस्य अब्रह्मविषयत्वे श्रवणादीनामपि तथात्वापत्तिरिति–निरस्तम्; तेषां विशिष्टाविषयत्वात्, उपास्तेश्चविशिष्टविषयत्वात् । नन्वीक्षतिकर्मे'ति सूत्रे ' ईक्षतिध्यानयोरेकः कार्यकारणभूतयोः । अर्थ औत्सर्गिकं तत्त्वविषयत्वं तथेक्षतेः ' ॥ इति भामत्यां परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षत इतीक्षति कर्मणः परब्रह्मण एव परं पुरुषमभिध्यायीतेति अभिध्यातव्यत्वेनोक्त्या तद्विरोध इति-वाच्यम्; त्रिमात्रोङ्कारावलम्बनोपाधिविशिष्टस्यैव ध्येयत्वोक्त्या शुद्धविषयत्वाभावेन विरोधाभावात, विशेष्यांशमादाय ईक्षतिसमानविषयत्वोपपत्तेश्च ।

इस रीतिसे शब्दसे उत्पन्न होनेवाला जो सगुणज्ञान और निर्गुणज्ञान इन दोनोंमेंभी निर्गुणज्ञानको प्रमात्व है और सगुणज्ञानको भ्रमत्व है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं-सगुण-वाक्यको विशिष्यांशको लेकर सत्यविषयत्व होनेपरभी विशेषणांशको लेकर असत्यविषयत्व होनेसे। अतएव, ब्रह्मविषयक जो शाब्दधी उस शाब्दधीसे जन्य और ब्रह्मविषयक अपरोक्ष धीका जनक एवम्भूत जो ब्रह्मध्यान उस ब्रह्मध्यानको अब्रह्मविषयत्व होनेपर श्रवणादिकोंकोभी अब्रह्मविषयत्वकी आपत्ति है, यह कथन निरस्त हुआ, अतएव, शब्दका अर्थ दिखलाते हैं-तेषाम्=श्रवणादिकोंको विशिष्टविषयक न होनेसे और उपासनाको विशिष्टविषयकत्व होनेसे। शङ्कते नचेति। ईक्षतिकर्मव्यपदेशात् (ब्र०अ० १ पा०३ सू० १३ इस सूत्रके पास 'कार्य्यका-रणभूत जो ईक्षति और ध्यान इन दोनोंका औत्सर्गिक एक अर्थ है, तैसे ईक्षतिकाभी तत्त्व-विषयत्वरूप औत्सर्गिक अर्थ है, यह भामतीमें स्थित है उसके साथ और परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते (प्र० ५।५) इस श्रुतिसे सिद्ध जो ईक्षतिकर्म पर ब्रह्म है उस परब्रह्मकेही 'परं पुरुषमभिध्यायीत (प्र० ५।५) इस श्रुतिसे जो अभिध्यातव्यकी उक्ति उस उक्तिके साथ विरोध है=उक्त प्रमाणोंसे ईक्षति और ध्यान ये दोनों समानविषयक प्रतीत होते हैं, और ईक्षति नाम ब्रह्मविषयक प्रमात्मक साक्षात्कारका है, फलतः जब ईक्षतिको शुद्धब्रह्मविषयता है तब ध्यानकोभी उक्त प्रमाणोंसे शुद्ध विषयता प्राप्त है, और आप ध्यानको भ्रमात्मक बतलाते हैं अतः उक्त भामतीवाक्यसे और उक्तश्रुतिसे आपका कथन विरुद्ध है; इति नच वाच्यम्; क्यों ? त्रिमात्र जो ओङ्कार उस ओङ्कारका आलम्बन अतएव उपाधिविशिष्ट=ओङ्काररूपोपाधिविशिष्ट जो ब्रह्म है उस ब्रह्मकेही ध्येयत्वकी उक्तिसे ध्यानको शुद्धविषयत्वाभाव होनेसे विरोधके अभावसे=जिस अर्थको हम कह चुके हैं वही अर्थ उक्त वाक्योंकाभी है अतः विरोध नहीं, ध्यानमें विशेष्यांशको लेकर ईक्षतिके समानविषयत्वकी उपपत्तिसे=स्वविषयका विशेष्यांशरूप एकदेश लेकर ध्यानमें ईक्षतिसमानविषयत्व है।

यत्तु ऐक्याद्युपासनस्य अप्रमाप्रवाहरूपत्वमाशङ्क्य सगुणोपासनसमत्वमुक्तं, तदयु-क्तम्; सगुणप्रकरणस्थैक्यैक्यवाक्यजन्यैक्यज्ञानस्य सगुणोपास्त्यन्तरगततया विशिष्ट-विषयत्वात्, स्वतन्त्रैक्यजन्यैक्यज्ञानस्य निर्विशेषविषयत्वेन विशिष्टविषय-सगुणोपा-स्तिवैषम्यात्। नच-ऐक्यादेर्विध्यविधिरूपवाक्यद्वयबोधितत्वेन ध्येयत्वज्ञेयत्ववत् सार्व-ज्ञ्यादेरुपास्तिविधिविषयस्यापि अविधिरूपवस्तुतत्त्वविषयः सर्वज्ञः इत्यादिवाक्यबो-धितत्वेन ज्ञेयत्वमप्यस्तीति-वाच्यम्; तस्य तटस्थलक्षणद्वारा परब्रह्मप्रतिपत्त्युपायत्वेन तत्त्वमसीत्यादेरिव तत्परत्वाभावात्। अतएव ब्रह्मणि कर्तृत्वादीनामारोप्योपास्यत्वे नाम्नि ब्रह्मवाक्यानामिव ब्रह्मण्यपि कारण-वाक्यानां समन्वयस्यावक्तव्यत्वेन समन्व-याद्यध्यायानारम्भापात इति-अपास्तम्; नाम्नो ब्रह्मविकारतया असमन्वयेऽपि ब्रह्म-णोऽविकारतया मुमुक्षुज्ञेयत्वेन कारणवाक्यानां तटस्थलक्षणकर्तृत्वादिबोधनद्वारा तत्रैव तात्पर्य्यसम्भवेन समन्वयादेरावश्यकतया तदध्यायारम्भसम्भवात्।

और जो ऐक्यादि-उपासनको अप्रमाप्रवाहरूपत्वकी आशङ्काकर सगुणोपासनासमत्व कहा है वह कथन अयुक्त है, क्यों ? सगुणप्रकरणस्थ जो ऐक्यवाक्य उस वाक्यसे जन्य जो ऐक्यज्ञान उस ज्ञानको सगुणोपासनाके अन्तर्गत होनेसे विशिष्टविषयत्व होनेसे स्वतन्त्र ऐक्यवाक्यसे जन्य जो ऐक्यज्ञान उस ज्ञानको निर्विशेषविषयत्व होनेसे विशिष्टविषयक जो सगुणोपासना उससे वैषम्य होनेसे। शङ्कते नचेति। ऐक्यादिको जैसे विध्यविधिरूपवाक्यद्वयबोधितत्वेन ध्येयत्व तथा ज्ञेयत्व है, तैसे उपासनाविधिविषयीभूतभी सार्वज्ञ्यादिको अविधिरूप और वस्तुतत्त्व विषयक जो—यः सर्वज्ञः (मु० १।१।९) इत्यादि वाक्य तादृशवाक्यसे बोधितत्त्व होनेसे ज्ञेयत्वभी है इति नच वाच्यम् क्यों ? उक्त श्रुतिवाक्यको तटस्थलक्षणद्वारा परब्रह्मप्रतिपत्तिके प्रति उपायत्व होनेसे, तत्त्वमसि (छा० ६।१०।३) इत्यादिकी तरह तत्परत्वके अभावसे=तत्त्वमसि जैसे ऐक्यपर है तैसे यह वाक्य सार्वज्ञ्यादिपर नहीं है, अतएव=ब्रह्मप्रतिपत्त्युपायत्वेन ही ब्रह्ममें कर्तृत्वादिका आरोपकर उपास्यत्व होनेपर नाममें जैसे ब्रह्मवाक्योंका समन्वय=तात्पर्य्य वक्तव्य नहीं है तैसे ब्रह्ममेंभी कारणवाक्योंके समन्वय=तात्पर्य्यको वक्तव्यत्व न होनेसे, समन्वयाध्यायके अनारम्भका आपात है=नाम ब्रह्म इति उपासीत (छा० उ० ५।७) इस श्रुतिमें नाममें ब्रह्मत्वका आरोपकर नामकी उपासना बतलाई है, अतः यहाँ ब्रह्मप्रतिपादकनिखिलवाक्योंका नाममें समन्वय करनेकी जैसे आवश्यकता नहीं है तैसे ब्रह्ममें कर्तृत्वादिका आरोपकर यदि ब्रह्मकी उपासना बताई गई है तो कारणवाक्योंका ब्रह्ममें समन्वय करना अनुचित है, और उस समन्वयके लिए उत्तरमीमांसाके प्रथमाध्यायके आरम्भकी भी आवश्यकता नहीं यह कथन खण्डित हुआ। अतएव शब्दके अर्थका विवरण करते हैं=नामको ब्रह्मका विवर्त्तरूप विकार होनेसे, नाममें ब्रह्मवाक्योंका समन्वय न होनेपरभी ब्रह्मको अविकारत्वेन मुमुक्षुओंसे ज्ञेयत्व होनेसे कारणवाक्योंके तटस्थलक्षण जो कर्तृत्वादि तादृश कर्तृत्वादिबोधनद्वारा तत्रैव=उक्त ब्रह्ममें ही तात्पर्य्यका सम्भव होनेसे समन्वयादिको आवश्यकत्व होनेसे=समन्वयाध्यायके आरम्भका सम्भव होनेसे=नाम एक साधारण ब्रह्मका विवर्त है, उसमें ब्रह्मवाक्योंका समन्वय सर्वथा अनुपपन्न है और ब्रह्म तो कार्य्यमात्रका विवर्त्तोपादान है और सकलकार्यका कर्तृत्वभी उसमें आरोपित है, ऐसी दशामें यदि कारणवाक्योंका ब्रह्ममें समन्वय न होगा तो किसमें होगा ? अतः समन्वयके लिए, समन्वयाध्यायका आरम्भ युक्त ही है।

नच—'य आत्मापहतपाप्मेत्यारभ्य 'सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्य इति सत्यकामत्वादीनामपहतपाप्मत्वादिभिः सह जिज्ञास्यत्वश्रवणात् ज्ञेयत्वमिति—वाच्यम्; अपहतपाप्मत्वादीनां स्वरूपतया जिज्ञास्यकोटिप्रवेशेऽपि सत्यकामत्वादीनां स्वरूपबहिर्भावेन जिज्ञास्यत्वायोगात्, तच्छब्देन तेषामपरामर्शात्, यश्चित्रगुर्लम्बकर्णश्च तमानयेत्यादौ योग्यविशेषणस्यैव तच्छब्देन परामर्शदर्शनात् अस्वरूपत्वे तेषामप्यपरामर्शे विशेष्यांशमात्रपरामर्शः यश्चित्रगुर्बहुधनस्तमानयेत्यादिवत्

अतएव–एष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिरित्यादिधर्मानुक्त्वा तेषां ‘ तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ती’ त्यादौ मुमुक्षुज्ञेयत्वेनोक्तेः ‘ यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्यैषमहिमा भुवी ’ त्युक्त्वा ‘ तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा ’ इत्यपरोक्षप्रमाविषयत्वस्योक्तेः ‘ तुरीयं सर्वदृक् सदेति तुरीयसार्वज्ञ्यश्रुतेश्च सर्वज्ञत्वादीनां सत्यत्वादिसिद्धिरिति–निरस्तम् ।

शङ्कते नन्विति । ‘य आत्माऽपहतपाप्मा (छा० ८।७।१) इस रीतिसे आरम्भकर ‘सत्यकामः’ सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः (छा० ८।१।५) इस रीतिसे सत्यकामत्वादिकोंके पापशून्यत्वादिकोंके साथ जिज्ञास्यत्वके श्रवणसे सत्यकामत्वादिकोंको ज्ञेयत्व है; इति नच वाच्यम्, क्यों ? अपहतपाप्मत्वादीनाम्=पापशून्यत्वादिकोंका स्वरूपभूतत्वेन जिज्ञास्य कोटिमें प्रवेश होनेपरभी सत्यकामत्वादिकोंके स्वरूपबहिर्भावसे=स्वरूपभूतता न होनेसे जिज्ञास्यत्वके अयोगसे सोऽन्वेष्टव्यः (छा० ८।१।५) इत्यादि तत् शब्दसे सत्यकामत्वादिकोंका परामर्श न होनेसे=सत्यकामत्वादिविशिष्टका परामर्श न होनेसे=जिसके अज्ञानसे जन्ममरणादिरूप संसार है वही जिज्ञास्य हो सकता है, और एवम्भूतता आनन्दात्मकाधिकरणस्वरूपत्वेन जीवब्रह्मैक्यको और पापशून्यत्वादिकको ही हो सकती है, न कि सत्यकामत्वादिको, आप्तकामत्व (बृ० ४।४।६; नृ० उ० ता० ५, श्वे० १।११) नित्यतृप्तत्वादि (गौ० पा० ४।२०) श्रुतिओंसे सत्यकामत्वादिकोंको आविद्यकत्व होनेसे=आप्तकाममें और नित्यतृप्तमें कामादिक प्रथम तो हो ही नहीं सकते, यदि हो सकते हैं तो आविद्यकही हो सकते हैं उन्हीं आविद्यक कामादिकोंका आरोपदशामें श्रुतिनिषेधके लिए समर्पण करती हैं । कई विशेषणोंका समभिव्याहार होनेपरभी प्रकृतक्रियान्वययोग्य विशेषणका ही तच्छब्दसे परामर्श होता है–इस अर्थको दृष्टान्तसे स्पष्ट करते हैं–जो चित्रगु है अथ च लम्बकर्ण है उसको ले आ, इत्यादिमें योग्यविशेषण=आनयनरूपक्रियान्वययोग्य लम्बकर्णरूप विशेषणका ही तच्छब्दसे परामर्श देखनेसे=यहाँपर चित्रगोभी अन्यपदार्थमें विशेषण है, और लम्बकर्णभी परन्तु तच्छब्दसे लम्बकर्णविशिष्टका परामर्श होता है चित्रगोविशिष्टका नहीं=तमानय इसको सुनकर प्रेष्यादिपुरुष लम्बकर्णवत्पुरुषको लाकर खडा कर देता है न कि साथमें चित्रगोकोभी, अस्वरूपत्वे=अभावको अधिकरणस्वरूपत्व न होनेपर तेषामपि=अपहतपाप्मत्वादिकाभी परामर्श न होनेपर विशेष्यांशमात्रका परामर्श होता है, जैसे कि जो चित्रगु है अथच बहुधन है उसे ले आ, यहाँपर तच्छब्दसे विशेष्यांशमात्रका परामर्श होता है=इस वाक्यको सुनकर प्रेष्यादिपुरुष पुरुषमात्रको ले आकर उपस्थित करता है,–न कि साथमें धनको और चित्रगोकोभी । अतएव=स्वरूपसे भिन्न सत्यकामत्वादिक जैसे मुमुक्षुको जिज्ञास्य नहीं है, तैसे सर्वेश्वरत्वादिभी जिज्ञास्य नहीं है, अतः वक्ष्यमाणवाक्यमें स्थित तत्पदको विशेष्यांशमात्रका परामर्शत्व होनेसे ही, एष सर्वेश्वर एष भूताधिपतिः (बृ० ४।४।२२) इत्यादि धर्मोंको कहकर तेषाम्=उन धर्मोंकी जो ‘तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति’ (बृ० ४।४।२२) इत्यादिमें मुमुक्षुज्ञेयत्वेन उक्ति है, उस उक्तिसे यः सर्वज्ञः सर्ववित् यस्यैष महिमा भुवि (मु० २।२।७) यह कहकर तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति

धीराः (मु० २।२।७) इत्याकारक अपरोक्षप्रमाविषयत्वकी उक्ति है उस उक्तिसे 'तुरीयं सर्वदृक् सदा' (गौ० का० १।१२) इस तुरीयके सार्वज्ञ्यकी श्रुतिसेभी सर्वज्ञत्वादिकोंमें सत्यत्वादिकी सिद्धि है—आदिपदसे मुमुक्षुज्ञेयत्वादिका ग्रहण है, यह कथन खण्डित हुआ।

यत्त्वपहतपाप्मत्वादीनामुपास्यत्वे तेषां भूताकाशेऽपि सम्भवेन दहराकाशस्य ब्रह्मत्वप्रतिपादकदहराधिकरणविरोध इति तन्न; चेतनधर्मात्यन्ताभावस्य पाप्मादिविरहस्याचेतने सम्भवेऽपि कामसङ्कल्पादेरचेतने सम्भावयितुमशक्यत्वेन विरोधाभावात्। यत्तु सत्यः सोऽस्य महिमे'त्यत्र होममात्रानुवादेनाहवनीयस्येव स इति श्रुत्युक्तमहिममात्रानुवादेन सत्यत्वविधानात् सार्वज्ञ्यादिकमपि सत्यः सोऽस्य महिमेत्यादेरैन्द्रसूक्तस्थत्वेऽपि 'तत्त्वायामि सुवीर्यं तद्ब्रह्मपूर्वं चित्तय' इति ब्रह्मश्रुत्या 'इन्द्रः सूर्यमरोचयत् इन्द्रेह विश्वा भुवनानि येमिरे इत्यादिसूर्यप्रकाशकत्वालिङ्गेन च—ज्योतिरधिकरणन्यायेन सूक्तस्य परमेश्वरपरत्वव्यवस्थितेरिति, तन्न; निर्गुणत्वश्रुतिविरोधेन स्वरूपमहत्त्वस्यैव सत्यत्वोक्तेः षष्ठ्या उपचरितत्वात्, धर्माणामपि व्यावहारिकसत्यत्वोक्तेः।

अपहतपाप्मत्वादिको उपास्यत्वे=दहरवाक्योक्त उपास्यत्व होनेपर तेपाम्=अपहतपाप्मत्वादिका भूताकाशमें भी सम्भव होनेसे दहराकाशके ब्रह्मत्वका प्रतिपादक जो दहराधिकरण (वे० १।३।५) उस दहराधिकरणका विरोध है, इति यत् तत् तु न; क्यों? चेतनधर्मका अत्यन्ताभावरूप जो पाप्मत्वादिका विरह उस विरहका अचेतनमें सम्भव होनेपरभी कामसङ्कल्पादिको अचेतनमें सम्भावना करनेके लिएभी अशक्यत्व होनेसे विरोधके अभावसे जैसे—यदाहवनीये जुहोति यहाँपर होममात्रका अनुवादकर आहवनीयका विधान है, तैसे सत्यः सोऽस्य महिमा यहाँपर सः इस पदसे श्रुत्यक्तमहिमामात्रके अनुवादसे सत्यत्वके विधानसे सार्वज्ञ्यादिकभी हैं। 'सत्यः सोऽस्य महिमा (बृ० १।१।२) इत्यादिको इन्द्रसम्बन्धिसूक्तस्थत्व होनेपरभी तत्त्वायामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये इस ब्रह्मश्रुतिसे और इन्द्रः सूर्यमरोचयत् इन्द्रेह विश्वा भुवनानि येमिरे। इत्यादि सूर्यप्रकाशकत्व लिङ्गसे ज्योतिरधिकरणन्याय (वे० १ १।१०) से सूक्तके परमेश्वरपरत्वकी व्यवस्थितिसे इति यत् तत् तु न; क्यों? निर्गुणबोधक श्रुतिके साथ विरोध होनेसे स्वरूपमहत्त्वकेही सत्यत्वकी उक्तिसे अस्य महिमा इस षष्ठीको राहोः शिरः, पुरुषस्य चैतन्यम्, इत्यादिवत् उपचरितार्थत्व होनेसे और धर्मोंकेभी व्यावहारिक सत्यत्वकी उक्तिसे कोई अनुपपत्ति नहीं।

नच—ब्रह्मसत्त्वमपि तथा; सत्यस्य सत्यमिति निरतिशयसत्त्वप्रतिपादनविरोधात्, अधिष्ठानत्वानुपपत्तेश्च। नच तत एव सविशेषत्वम्; निर्विशेषत्वेऽपि तत्त्वस्योपपादितत्वात्। नच—'पृथगात्मान' मित्यादिश्रुतिषु 'यो मामशेषदोषोत्थगुणसर्वस्ववर्जितम्। जानात्यस्मै प्रसन्नोऽहं दद्यां मुक्तिं न चान्यथा। भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्। सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छतीत्यादिस्मृतिषु च सविशेष-

ज्ञानादेव मोक्षोक्तौ सप्रकारकज्ञानस्यैव मोचकत्वमिति–वाच्यम् परममुक्तिहेतुनिर्गुणसाक्षात्कारोपयोगिसत्त्वशुद्ध्युपायसगुणोपासनाविध्यर्थवादतया साक्षान्मुक्तिहेतुत्वाप्रतिपादकत्वात् । नच निर्गुणज्ञानान्मुक्तिश्रुतिरपि तथा, तत्परत्वातत्परत्वाभ्यां वैषम्यात् सगुणज्ञानस्य फलान्तरश्रवणाच्च ।

ब्रह्मसत्त्वमपि=ब्रह्मका सत्त्वभी तथा=व्यावहारिक है, नच=ब्रह्मसत्त्व व्यावहारिक नहीं हैं, क्यों ? सत्यस्य सत्यम् (बृ०२।३।६) इस रीतिसे निरतिशयसत्त्वप्रतिपादनसे विरोध होनेसे, और ब्रह्मसत्त्वको अतात्त्विक होनेपर ब्रह्मको अधिष्ठानत्वकी अनुपपत्तिभी है, अतः उसको व्यावहारिकत्व नहीं है । ततः=उक्त अधिष्ठानत्वसेही सविशेषत्व ब्रह्ममें है नच=उक्त अधिष्ठानत्वसे सविशेषत्व ब्रह्ममें नहीं हैं क्यों ? ब्रह्ममें निर्विशेषत्व होनेपरभी तत्त्वस्य=अधिष्ठानत्वको उपपादितत्व होनेसे=निर्विशेषमेंभी कल्पितभेदवत्त्वेन ज्ञातत्वाज्ञातत्वका सम्भव है, अतः अधिष्ठानत्व निर्विशेषमें अनुपपन्न नहीं । शङ्कते नचेति । पृथगात्मानम् (श्वे० १।६) इत्यादि श्रुतिओंमें, और जो मुझको अशेषदोषोत्थ गुणसर्वस्वसे वर्जित जानता है उसके लिए मैं प्रसन्न हुआ मुक्ति देता हूँ अन्यथा नहीं, यज्ञतपोंका भोक्ता और सर्वलोकोंका महेश्वर और सर्वभूतोंका सुहृत एवम्भूत मुझको समझकर शान्तिको प्राप्त होता है (गी० ५।२९) इत्यादि स्मृतिओंमें सविशेषज्ञानसेही मुक्तिकी उक्तिसे सप्रकारक ज्ञानकोही मोक्षजनकत्व है इति नच वाच्यम्; क्यों ? उक्त श्रुति स्मृतिओंको परमोक्षका हेतुभूत जो निर्गुणविषयक साक्षात्कार उस साक्षात्कारमें उपयोगी जो सत्त्वकी शुद्धि उस शुद्धिकी उपायभूत जो उपासना उस उपासनाकी जो विधि तादृश विधिके प्रति अर्थवादता होनेसे साक्षात्मुक्तिहेतुत्वका अप्रतिपादकत्व होनेसे । निर्गुणज्ञानसे मुक्तिको प्रतिपादन करनेवाली श्रुतिभी तथा=निर्गुणोपासनाविधिशेषतया अर्थवादरूपा है, नच=ऐसा नहीं है, क्यों ? तत्परत्व तथा अतत्परत्व इन दोनोंसे वैषम्य होनेसे=सगुणश्रुति अतत्पर है अतः उसको सगुणउपासनाविधिकी शेषता होनेपर भी निर्गुणश्रुति स्वार्थपर है अतः उसको निर्गुणोपासनाविधिकी शेषता नहीं है और सगुणज्ञानके फलान्तरके श्रवणसेभी उसे साक्षात् मोक्षहेतुता नहीं है ।

यद्यपि 'नास्याब्रह्मवित्कुले भवति' इत्यादि फलान्तरश्रवणं निर्गुणज्ञानेऽपि, स्तुत्यर्थतयोपपादनमपि समानम्, संयोगपृथक्त्वन्यायेन उभयफलत्वोक्तिरपि समाना; तथापि अधिष्ठानतत्त्वावगाहित्वानवगाहित्वाभ्यां निर्गुणसगुणज्ञानयोर्विशेषात्, सगुणज्ञानजन्यमुक्तेरवान्तरमुक्तित्वाच्च । नच–'पुण्यपापे विधूये'तिसर्वकर्मनिवृत्त्युक्तेः परममुक्तित्वमेवेति–वाच्यम्; अस्य ब्रह्मतत्त्वसाक्षात्कारहेत्वतिरिक्तकर्मपरत्वात्, अविद्यानाशाभावाच्च परममुक्तित्वासिद्धेः । नच–निर्गुणज्ञानजन्याया अपि मुक्तेरवान्तरत्वम्; 'असन्नेवेति' श्रुत्युक्तशून्यतायाः परममुक्तित्वमितिवाच्यम् शून्यताया असुखरूपत्वेनापुरुषार्थत्वात्, असन्नेवेत्यादिवाक्यस्य शून्यत्वाप्रतिपादकत्वाच्च । यत्तु गुणविशेषविशिष्टस-

न्निहितस्य सामान्यनिषेधकस्य निष्प्रपञ्चवाक्यस्य विहितगुणनिषेधकत्वं नास्तीति तन्न, बाधकस्य निषेधकप्रामाण्यसमकक्ष्यत्व एव सङ्कोचादत्र तदभावात् ।

यद्यपि 'नास्याब्रह्मवित् कुले भवति' (माण्डूक्य १०) इस ज्ञानी पुरुषके कुलमें अब्रह्मवित् नहीं होता है इस श्रुतिसे फलान्तरका श्रवण निर्गुणज्ञानमेंभी है, और निर्गुणज्ञानस्तुत्यर्थत्वेन उपपादनभी समान है=एकस्य तूभयत्वे संयोगपृथक्त्वम् (जै० अ० ४ पा० ३ सू० ५)अर्थ—एकस्य=एकपदार्थके उभयत्वे=उभयार्थत्वमें संयोगस्य=विनियोजक प्रमाणका पृथक्त्वम्=उभयत्व नियामक है=एक पदार्थमें उभयार्थता प्रमाणभेदसे होती है जैसे एक खादिर=खदिरजन्य यूपकी क्रत्वर्थता और पुरुषार्थता 'खादिरो यूपो भवति' खादिरं वीर्य्यकामस्य यूपं कुर्वीत इन दो वाक्योंसे बोधित होती है, तैसे बोधक वाक्योंसे एक ज्ञानको मुक्त्यर्थताभी है, और अन्यार्थताभी रहो, तथापि अधिष्ठानतत्त्वावगाहित्वेन और अधिष्ठानतत्त्वानवगाहित्वेन निर्गुण सगुणज्ञानोंका विशेष होनेसे, और सगुणज्ञानजन्यमुक्तिको अवान्तर मुक्तित्व होनेसेभी। 'पुण्य पापे' विधूय (मु० ३।१।३) इस श्रुतिसे सर्वकर्मकी निवृत्तिकी उक्तिसे सगुणज्ञानजन्य मुक्तिको परममुक्तित्वही है=यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्। तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्य मुपैति, इस मुण्डकश्रुतिमें सगुणज्ञान और उसका फल मुक्ति बताई गई है और उस मुक्तिमें पुण्यपापका ध्वंस बताया गया है, अतः यह मुक्ति परम मुक्ति ही है, फलतः सगुणज्ञानका फल परममुक्ति है, नकि अवान्तर मुक्ति; यह द्वैतीका तात्पर्य्य है, इति नच वाच्यम् क्यों ? अस्य=इस वाक्यको ब्रह्मसाक्षात्कारका हेतुभूत जो कर्म=ब्रह्मसाक्षात्कारसे पूर्वमें अवश्य अभ्युपेय है स्थिति जिसकी एवम्भूत जो कर्म उस कर्मसे अतिरिक्त जो कर्म तादृशकर्मपरत्व होनेसे और अविद्याका नाश न होनेसे उक्त मुक्तिमें परममुक्तित्वकी असिद्धि है, असन्नेव (तै० २।६।१) इस श्रुतिसे उक्त जो शून्यता उस शून्यताको परममुक्तित्व है इति नच वाच्यम्; क्यों ? शून्यताको असुखरूपत्वप्रयुक्त अपुरुषार्थत्व होनेसे और असन्नेव इत्यादि वाक्यको शून्यत्वका अप्रतिपादकत्व होनेसेभी गुणविशेषकी जो विधि उस विधिके सन्निहित जो सामान्यनिषेधक निष्प्रपञ्च वाक्य उस वाक्यको विहित गुणका निषेधकत्व नहीं है, इति यत् तत् तु न; क्यों ? बाधकको=विशेषविधायक शास्त्रको निषेधकप्रमाणनिष्ठ प्रामाण्यका समकक्ष्यत्व होनेपरही सङ्कोचात्=निषेधक प्रमाणके विषयमें सङ्कोच होनेसे, अत्र=गुणनिषेधरूपप्रकृतविषयमें तदभावात्=विशेषनियामक शास्त्रनिष्ठ प्रामाण्यमें समकक्ष्यत्वके अभावसे=निर्गुणवाक्य स्वार्थपर है और सगुणवाक्य सगुणत्वपर नहीं है—उपासनापरत्वको आवश्यकत्व होनेसे उभयपरत्वमें वाक्य भेदकी आपत्ति है अतः इन दोनोंका प्रामाण्य सम नहीं है ।

यच्चूपासनाप्रकरणस्थत्वमात्रेण उपास्यत्वे उद्गीथोपासनास्थस्य 'स एषोऽनन्त' इति श्रुतानन्तत्वादेर्भूताकाश उपासनामात्रमिति सुवचत्वे नाकाशाद्यधिकरणे अनन्तत्वादि लिङ्गैर्ब्रह्मत्वोक्त्ययोग इति तन्न; उपासनाप्रकरणस्थत्वेऽयि निर्गुणश्रुतिविरोधाभावेन

तात्त्विकत्वाङ्गीकारात् तस्य चाकाशादावसम्भवेन तत्तदधिकरणारम्भसम्भवात्। यत्तु सत्यकामत्वादेरनुपास्तिप्रकरणे श्रवणमिति, तन्न; पूषाद्यनुमन्त्रणमन्त्रवत् प्रकरणादुत्कृष्टत्वस्य द्वादशोपसत्तावाक्यवत् स्तावकत्वस्य वा सम्भवात्। यत्तु वेधाद्यर्थभेदादित्यत्र 'सर्वं प्रविध्य' इत्यादिमन्त्राणामुपासनाप्रकरणादुत्कर्षस्योक्तत्वेन तन्न्यायेनानन्तादिवाक्यस्योत्कर्षः स्यात्, तस्य वाक्यस्योपास्तिपरत्वे वस्तुतत्त्वपरत्वे च सगुणवाक्यस्यापि तथा स्यादिति तन्न; स्वरूपपरसत्यंज्ञानमनन्तमित्यादिवाक्ये अनन्तत्वादेः स्वत एव सत्त्वेन उत्कर्षे प्रयोजनाभावात् तस्य वस्तुतत्त्वमात्रपरत्वेन उभयपरत्वाभावाच्च, उपास्तिप्रकरणस्थानन्तवाक्यस्य उभयपरत्वेऽपि निर्गुणश्रुतिविरोधेन सगुणवाक्यस्योभयपरत्वाभावात्।

उपासनाप्रकरणस्थत्वमात्रसे अतात्त्विक उपास्यत्व होनेपर उद्गीथोपासनाप्रकरणस्थ जो स एषोऽनन्तः (छा० १।९।२) इत्यादितः श्रुत अनन्तत्वादि उस अनन्तत्वादिका भूताकाशमें उपासनामात्र है, इस रीतिसे सुवचत्व होनेसे आकाशाद्यधिकरण (वे० १।१।८) में अनन्तत्वादि लिङ्गोंसे ब्रह्मकी उक्तिका अयोग है, इति यत् तत् तु न; क्यों? उपासनप्रकरणस्थत्वेऽपि=अनन्तत्वादिको उक्त उपासनाप्रकरणस्थत्व होनेपरभी निर्गुण श्रुतिके साथ विरोध न होनेसे अनन्तत्वादिकोंके तात्त्विकत्वका अङ्गीकार होनेसे, तस्य च=तात्त्विक अनन्तत्वादिका आकाशादिमें असम्भव होनेसे, तिस तिस अधिकरणके आरम्भके सम्भवसे। सत्यकामत्वादिका अनुपास्तिप्रकरणमेंभी श्रवण है, अतः उन्होंका तात्त्विकत्व आवश्यक है, इति यत् तत् तु न; क्यों? पूषाद्यनुमन्त्रणमन्त्रवत्=प्रकरणसे उत्कृष्टत्वका सम्भव होनेसे=दर्शपूर्णमासादिप्रकरणमें पठित पूषादिदेवतासम्बन्धिमन्त्रोंका दर्शपूर्णमासादिमें पूषादिदेवताओंका अभाव होनेसे जैसे पूषादिदेवताककर्ममें लिङ्गसे विनियोग पठित होता है, तैसे ज्ञेयब्रह्मप्रकरणत सत्यकामत्वादिका ज्ञानके साथ अन्वय न बन सकनेसे सगुणोपासनामें अन्वय है—पाठस्थानको छोड़कर स्वान्वयोचित देशमें जाना इसका नाम यहाँपर उत्कृष्टत्व हैं, यह उभयत्र समान है, स्वप्रकरणमें ही स्तावकत्वेन अन्वयका सम्भव होनेपर उत्कर्ष युक्त नहीं है, इस अभिप्रायसे कहते हैं—या द्वादशोपसत्तावाक्यवत् सत्ताकत्वका सम्भव होनेसे=तिस्र एव साह्नस्य उपसदो द्वादशाहीनस्य इस वाक्यमें अहर्गणरूपाहीनगत उपसदोंका द्वादशत्व होनेसे, अनुष्ठानगौरवद्वारा निन्दासे विधेय साह्नगत उपसत्त्रयमें द्वादशत्वके अभावसे जैसे साह्नगत उपसत्त्रयकी स्तुति है तैसे सगुण ब्रह्मके धर्म जो सत्यकामत्वादिक हैं उन्होंसे विधेयनिर्गुणात्माकी स्तुति है। वेधाद्यर्थभेदान् (वे० ३।३।२५) इत्यत्र=इस सूत्रमें सर्वं प्रविध्य (उक्त सूत्रका भाष्य देखना चाहिए)।इत्यादि मन्त्रोंके उपासनाप्रकरणसे उत्कर्षको उक्तत्व होनेसे तन्न्यायसे अनन्तादिवाक्यकाभी उत्कर्ष हो जायगा, और तस्य=अनन्तत्वादिवाक्यको उपासनापरत्व होनेपर और वस्तुतत्त्वपरत्व होनेपर सगुणवाक्यकोभी उपासनापरत्व और वस्तुतत्त्वपरत्व होगा, इति यत् तत् तु न; क्यों? स्वरूपपर जो 'सत्यं ज्ञानमनन्तम् (तै० २।१।१) इत्यादिवाक्य है उस वाक्यमें अनन्तत्वादिका

स्वत एव सत्त्व होनेसे उत्कर्षमें प्रयोजनके अभावसे, उसको वस्तुतत्त्वमात्रपरत्व होनेसे उभय-परत्वके अभावसेभी उपास्तिप्रकरणस्थ अनन्तवाक्यको उभयपरत्वेऽपि=तात्त्विकानन्तत्वादि और उपासनाकर्त्तव्यत्व एतदुभयबोधकत्व होनेपरभी निर्गुणश्रुतिविरोधसे सगुणवाक्यको उभयपरत्वाभावात्=तात्त्विकसत्यकामत्व और उपासनाकर्त्तव्यत्व एतयुभयपरत्वके अभावसे।

नचैवं सार्वज्ञ्यादीनां वाग्धेनुत्वादिवत् प्रातीतिकत्वापत्तिः। वाग्धेनुत्वादेर्बुद्धिपूर्वकारोपविषयतया प्रातीतिकत्वेऽपि सत्यकामत्वादेरीश्वरादन्यत्रासम्भवेन बुद्धिपूर्वकारोपविषयत्वाभावात्। ननु—असदुपासना न घटते; 'नाविद्यमानं ब्रुवते वेदा ध्यातुं न वैदिकाः। नच रमन्त्यहो असदुपासनयात्महन' इत्यादि स्मृत्या—अचेतनासत्यायोग्यान्यनुपास्यान्यफलत्वविपर्ययाभ्यामिति सङ्कर्षणसूत्रेणापि निषेधादिति चेन्न, स्मृतिसूत्रयोरत्यन्तासदुपास्तिनिषेधपरतया तद्विरोधाभावात् 'वाचं धेनुमुपासीते' त्यादौ प्रातीतिकस्याप्युपास्यत्वदर्शनाच्च। नच तत्र 'रात्रिं धेनुमिवायती' मिति श्रुत्यन्तराद्धेनुशब्दो गौणः;—योषितमग्निं ध्यायीतेत्यत्रापि 'रेतो जुह्वती'ति श्रुतेः रेतोरूपाहुत्याधारत्वेनाग्निशब्दो गौणः, भाष्योक्तरीत्या यौगिको वा, नत्वारोप इति वाच्यम्; आरोपेण मुख्यत्वसम्भवे गौणताया अन्याय्यत्वात्। नच गौण्युच्छेदः; यत्रोपासनाया अश्रवणं तत्रारोपस्य निष्प्रयोजनत्वेन गौण्युपपत्तेः रूढार्थस्य कथमपि सम्भवे यौगिकार्थत्वस्यान्याय्यत्वाच्च।

ऐसा होनेपर वाणीमें धेनुत्वादिकी तरह सार्वज्ञ्यादिके प्रातीतिकत्वकी आपत्ति है='वाचं धेनुमुपासीत (बृ० ५।८।१) यहाँपर जैसे वाणीमें धेनुत्व प्रातिभासिक होता है, तैसे सार्वज्ञ्यादिकभी प्रातिभासिकही सिद्ध होंगे, नच=सार्वज्ञ्यादिमें प्रातीतिकत्वकी आपत्ति नहीं है, क्यों? वाक्में धेनुत्वादिको बुद्धिपूर्वक आरोपविषयता होनेसे प्रातीतिकत्व होनेपरभी सत्यकामत्वादिका ईश्वरसे भिन्नमें असम्भव होनेसे बुद्धिपूर्वकआरोपविषयत्वके अभावसे=वागादिमें धेनुत्वादिको व्यावहारिकप्रमाणविषयत्व होनेसे प्रातीतिकत्व युक्त है। और सत्यकामत्वादिमें तो देवताधिकरण (ब्र० १।३।८) न्यायसिद्धव्यावहारिकप्रमाणताक जो श्रुति तादृश श्रुतिविषयत्व होनेसे प्रातीतिकत्व युक्त नहीं है यह भाव है। शङ्कते नन्विति। असत्‌की उपासना नहीं बन सकती है वेद तथा वैदिक लोग अविद्यमानको ध्यानके लिए नहीं कहते हैं। दुःखकी बात है कि असत्‌की उपासनासे आत्माको हनन करनेवाले इसमें रमण नहीं करते हैं। इत्यादि स्मृतिसे, अचेतन और असत्य तथा अयोग्य ये उपास्य नहीं हैं, क्यों? फलाभावसे और विपरीतफलसे इस सङ्कर्षणसूत्रसे भी निषेध होनेसे, इतिचेन्न; क्यों? उक्त स्मृति तथा सूत्र इन दोनोंके साथ विरोधके अभावसे और वाचं धेनुमुपासीत (बृ० ५।८।१) इत्यादिमें प्रातीतिकके भी उपास्यत्वके देखनेसे। शङ्कते नचेति। तत्र=उक्त प्रकरणमें रात्रिं धेनुमिवायतीम् इस दूसरी श्रुतिसे धेनुशब्द गौण है योषितमग्निं ध्यायीत (छा० २।८।२) यहाँपर भी रेतो

जुहति (छा० ५।८।२) इस श्रुतिसे रेतरूपाहुत्याधारत्वेन अग्निशब्द गौण है अथवा भाष्योक्त रीतिसे यौगिक है किन्तु वागादिमें धेनुत्वादिका आरोप नहीं है, इति न च वाच्यम्, क्यों ? आरोपसे धेनुप्रभृति शब्दोंके मुख्यत्वका सम्भव होनेपर गौणताको न्यायापेतत्व होनेसे; ऐसा होनेपर गौणीका उच्छेद है नच=उच्छेद नहीं है, क्यों ? जहाँपर उपासनाका श्रवण नहीं है वहाँपर आरोपको निष्प्रयोजनत्व होनेसे गौणीकी उपपत्तिसे, रूढार्थका कथमपि सम्भव होनेपर योगिकार्थत्वको अन्याय्यत्व होनेसेभी ।

एतेन—'नाम ब्रह्म' त्यत्र 'नामाभिमानिनी चोषा तस्यां ब्रह्म हरिं स्मरे' दिति स्मृत्यैव ब्रह्माधिष्ठाने नामादौ गौणो ब्रह्मशब्दः, नामेति प्रथमावचनं वसन्तो मारुत इतिवत् सप्तम्यर्थे ब्रह्मेति प्रथमा वा पञ्चम्यर्थे, 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदि' तिवत् सुपां सुलुगिति सूत्रात् अन्यथा 'श्रुतं ह्येव मे भगवद्दृशेभ्यस्तरति शोकमात्मवित्; इति पृष्टवन्तं नारदं प्रति नामोपास्त्युक्तिरयुक्ता स्यात्, प्रतिमायामपि देवतातत्त्वबुद्धित एव फलम्, नतु देवताऽतत्त्वबुद्धितः; 'शिलादेवतेति ज्ञानस्य भौम ईज्यधीरित्यादिना निषेधादिति निरस्तम्; आरोपेण मुख्यत्वसम्भवे गौणत्वस्यान्याय्यत्वात्, समानविभक्तिकत्वाभावे इति शब्दान्वयप्रसङ्गात् । एवं प्रतिमादावपि देवतात्वारोपेण मुख्यत्वे गौणत्वमन्याय्यमेव । नच भौम ईज्यधीरिति निषेधान्न तथा, तस्य भौमातिरिक्तश्चेतनो देवो नास्तीतिभ्रमव्युदासपरत्वेनारोपानिषेधकत्वात्, अनात्मोपास्तेस्तु मुख्यं ब्रह्मोपदेष्टुमेव शाखाचन्द्रन्यायेनावतारितत्वात्, तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते' इति गुणविशिष्टस्य उपास्यस्य ब्रह्मत्वनिषेधाच्च ।

एतेन–इस कथनसे नाम ब्रह्म (छा० ७।१।५) यहाँपर नामकी अभिमानिनी उषा है, तस्याम्=उस उषामें=उषःकालमें ब्रह्मरूप हरिका स्मरण करें इस स्मृतिसे ही, ब्रह्माधिष्ठान=ब्रह्माधिकरणनामादिमें ब्रह्म शब्द गौण है, नाम यह जो प्रथमा वचन है वह तो वसन्तो मारुतः यहाँकी तरह सप्तम्यर्थमें है=वसन्तो मारुतः इसका जैसे यह अर्थ है कि वसन्तमें बहनेवाला पवन, तैसे नाम ब्रह्म उपासीत इसका यह अर्थ हुआ कि उषामें ब्रह्मकी उपासना करें, अथवा 'ब्रह्म' यह प्रथमा पञ्चम्यर्थमें है, इस पक्षमें ब्रह्महेतुक नामकी उपासना करें, ऐसा अर्थ होगा, जैसे कि 'ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्' (यजुः संहिता अ० ३१ मंत्र ११) यहाँपर मुखम् यह प्रथमा पञ्चम्यर्थमें है, 'सुपां सुलुक्' (अष्टाध्यायी अ० ७ पा० १ सू० ३९) इस सूत्रसे अन्यथा=उपरोक्त व्यवस्थाके न करनेपर आप जैसोंसे सुना है मैंने कि, 'आत्मवित् शोकको तरता है (छा० ७।१।३) इस रीतिसे पूछनेवाले नारदके प्रति नामोपासनाकी उक्ति अयुक्त हो जायगी और प्रतिमामेंभी देवतातत्त्व बुद्धिसे ही फल होता है नकि अतत्त्वबुद्धितः=देवताधारत्वबुद्धिका नाम है, देवतातत्त्वबुद्धि और देवतातादात्म्यबुद्धिका नाम है देवताऽतत्त्वबुद्धि । शिला देवता है इस ज्ञानका भौमे इज्यधीः इत्यादि निषेध होनेसे यह खण्डित हुआ,

एतेन का विवरण करते हैं—आरोपसे मुख्यत्वका सम्भव होनेपर गौणत्वको अन्याय्यत्व होनेसे, और नाम ब्रह्मेति यहाँपर समानविभक्तिकत्वके न होनेपर इति शब्दके अन्वयके प्रसङ्गसे। ऐसेही प्रतिमादिमेंभी देवतात्वके आरोपसे मुख्यत्व होनेपर गौणत्व अन्याययुक्त ही है। भौम इज्यधीः, इस निषेधसे न तथा=देवतात्वका आरोप प्रतिमादिमें नहीं हो सकता है, नच= ऐसा नहीं कहना क्यों ? तस्य=उक्तवाक्यको भौमपदार्थसे अतिरिक्त चेतन देव नहीं है, इत्याकारक जो भ्रम उस भ्रमका जो व्युदास तादृश व्युदासपरत्व होनेसे आरोपके अनिषेधकत्वसे। और नारदके प्रति अनात्मोपासनाको तो मुख्यब्रह्मका उपदेश करनेके लिए ही शाखाचन्द्रन्यायसे अवतारितत्त्व होनेसे। तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते (केन ५।६) इसश्रुतिसे गुणविशिष्ट उपास्यके ब्रह्मत्वके निषेधसेभी सगुणवाक्य उपासना और सगुणत्व एतदुभयपर नहीं और आरोपपूर्व ही उपासना बन सकती है।

नच—अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि, इति श्रुतौ अश्रौतज्ञानस्याकार्त्स्न्येन ज्ञानस्य वा निषेध इति 'तदेव ब्रह्म त्वादावपि अश्रौतध्यानस्याकार्त्स्न्येन ध्यानस्य वा निषेधेन नोपास्यस्य ब्रह्मत्वनिषेधः। अन्यथा तस्याभिध्यनादिति' श्रुतिविरोधइति वाच्यम्; अन्यदेवेत्यादौ विदितात् प्रमेयात् घटादेरप्रमेयाच्छशविषाणादेर्वैलक्षण्येन स्वप्रकाशत्वप्रतिपादनपरतया त्वदुक्तार्थादृष्टान्तत्वात्। उपास्ये ब्रह्मत्वनिषेधेऽपि न 'तस्याभिध्यानादितिश्रुतिविरोधः अभिध्यानशब्दस्य निदिध्यासनवाचकत्वात्, ध्यानपरत्वेऽपि क्रममुक्त्यर्थत्वेन विरोधाभावात् तस्मात्साधकाभावान्निर्गुणं ब्रह्म; सगुणत्वे बाधकसद्भावाच्च। नचासिद्धिः मिथ्यात्वश्रुतेर्निर्गुणश्रुतेश्च बाधकत्वात्, मिथ्यात्वश्रुतेरबाधकत्वप्रकारस्य मिथ्यात्ववादे अखण्डार्थवादे च निरासात्।

अन्यदेव तद्विदितात् (केन ४।३) श्रुतिभिन्न प्रमाणसे विदित जो पदार्थ है उससे वह अन्य ही है इस श्रुतिसे जैसे अश्रौतज्ञानको असम्पूर्णता होनेसे अश्रौतज्ञानका निषेध है जैसे तदेव ब्रह्म, (केन ४।४) इत्यादिमेंभी अश्रौत ध्यानको असम्पूर्णता होनेसे अश्रौत ध्यानके निषेधसे उपास्यके ब्रह्मत्वका इस श्रुतिसे निषेध नहीं अन्यथा=उपास्यके ब्रह्मत्वका निषेध होनेपर 'तस्याभिध्यानात्' (श्वे० १।१०) इस श्रुतिसे विरोध है, इति नच वाच्यम् क्यों ? अन्यदेव (केन ४।३) इत्यादिश्रुतिमें विदितात्=घटादिरूप प्रमेयसे और अप्रमेय शशविषाणादिसे वैलक्षण्यपूर्वक स्वप्रकाशत्वप्रतिपादनपरता होनेसे त्वदुक्तार्थको दृष्टान्तत्व न होनेसे। और उपास्यमें ब्रह्मत्वका निषेध होनेपरभी 'तस्याभिध्यानात्' इस श्रुतिसे विरोध नहीं है, क्यों अभिध्यान शब्दको निदिध्यासनका वाचकत्व होनेसे, और ध्यानपरत्व होनेपरभी क्रममुक्त्यर्थत्व होनेसे विरोधके अभावसे। तस्मात् सगुणसत्यत्वके साधकके अभावसे निर्गुण ब्रह्म है, और सगुणसत्यत्त्वमें बाधकके सद्भावसेभी ब्रह्म निर्गुण है; असिद्धिः=सगुणसत्यत्वमें बाधककी असिद्धि है, नच=बाधककी असिद्धि नहीं है, मिथ्यात्वश्रुतिको और निर्गुणश्रुतिको बाधकत्व होनेसे मिथ्यात्वश्रुतिके अबाधकत्वप्रकारका मिथ्यात्ववादमें और अखण्डार्थवादमें निषेध होनेसे।

ननु—निर्गुणवाक्यं सगुणवाक्यं बाधते नतु सगुणवाक्यं तदिति किमत्र नियामकम् ? नच निषेधकतया निर्गुणवाक्यं प्रबलम् असद्वा इत्यादि वाक्यस्य सदेवेत्यादिवाक्यात् प्राबल्यापत्तेरिति—चेन्न; अपच्छेदन्यायेन प्राबल्यस्य प्रागेवोक्तेः। निषेधत्वाच्च प्राबल्यम्; 'असद्वा' इत्यत्रासच्छब्दस्यानभिव्यक्तपरत्वेनानिषेधाच्च नैतन्न्यायेन प्राबल्यम्। निर्गुणवाक्यस्य पुरुषार्थपर्यवसायितया तत्परत्वेन प्राबल्यात् सगुणवाक्यस्य तत्सन्निधिपठितस्य 'फलवत्सन्निधाविति' न्यायेन तदनुगुणतया नेयत्वात्। नच सगुणज्ञानस्य मोचकत्वम्; तस्य प्रागेव निरासात्। अतएव—सगुणत्वनिर्गुणत्वयोर्विरोधेन समुच्चयायोगात् अनुष्ठान इव च वस्तुनि विकल्पायोगात् एकस्य प्रतीतार्थत्यागरूपे बाधे वक्तव्ये निर्गुणवाक्यस्यैव स युक्तः, नतु प्रबलस्य सगुणवाक्यस्येति—निरस्तम्—प्राबल्यासिद्धेः।

शङ्कते नन्विति। निर्गुणवाक्य सगुणवाक्यको बाधित करता है, सगुणवाक्य तत्=निर्गुणवाक्यको बाधित नहीं करता है, यहाँपर क्या नियामक है ? निषेधकत्वेन निर्गुणवाक्य प्रबल है,—उसकी प्रबलता ही नियामक है, नच=निषेधकत्वेन निर्गुणवाक्य प्रबल नहीं है क्योंकि 'असद्वा' (छा० ६।२।१) इत्यादिवाक्यको 'सदेव' (छा० ६।२।१) इत्यादिवाक्यसे प्राबल्यकी आपत्तिसे=निषेधकत्वेन प्राबल्य होनेपर 'असद्वै' इसको निषेधकता होनेसे 'सदेव' से यही प्रबल हो जायगा, इति चेन्न; क्यों ? अपच्छेदन्यायसे (जै० मी० ६।५।१७) प्राबल्यकी पूर्वमें ही उक्ति होनेसे। निषेधत्वाच्च=परीक्षित निषेधक होनेसेभी निर्गुणवाक्यका प्राबल्य है—परीक्षित लगा देनेसे निषेधकाभासका अप्राबल्य होनेपरभी हानि नहीं। और 'असद्वै' यहाँपर असत् शब्दको अनभिव्यक्तपरत्व होनेसे निषेधकत्व न होनेसे एतन्न्यायसे प्राबल्य नहीं है। निर्गुणवाक्यको पुरुषार्थपर्य्यवसायिताप्रयुक्त तत्परत्व होनेसे प्राबल्य है अतः तत्सन्निधिपठित=निर्गुणवाक्यकी सन्निधिमें पठित सगुणवाक्यको फलवत्सन्निधौ इस न्यायसे तदनुगुणतया=निर्गुणवाक्यजन्यज्ञानानुकूल जो चित्तशुद्धयादि तत्फलक जो उपासना तादृश उपासनापरतया नेयत्व होनेसे। और उपास्यसमभिव्याहृत गुणवाक्य तो निषेधापेक्षित जो प्रतियोगि तादृशप्रतियोगिसमर्पकतया अन्यथा सिद्ध है, अतः अन्यथा नयन करनेके लिए शक्य है, सगुणज्ञानको मोक्षजनकत्व है, नच=नहीं है; तस्य=सगुणज्ञानके मोक्षजनकत्वका प्रथम ही निरास होनेसे, अतएव=सगुणज्ञानमें मोक्षजनकत्वके निराससेही सगुणत्व तथा निर्गुणत्व इन दोनोंका विरोध होनेसे समुच्चयके अयोगसे और अनुष्ठाने=क्रियाकी नाईं वस्तुमें विकल्पके अयोगसे एकके प्रतीतार्थका त्यागरूप बाधको वक्तव्यत्व होनेपर निर्गुणवाक्यकाही सः=बाध युक्त है, प्रबल जो सगुणवाक्य उसका नहीं यह कथन खण्डित हुआ,—प्राबल्यकी असिद्धिसे।

नच—उपक्रमाधिकरणन्यायेनानुपजातविरोधित्वात्, निर्गुणश्रुतेः प्रतियोगिज्ञानापेक्षतया विलम्बितत्वेन लिङ्गाच्छ्रुतेरिव शीघ्रगामित्वात् पदे जुहोतीतिवद्विशेषविषय-

त्वाच्च सगुणवाक्यस्य प्राबल्यमिति—वाच्यम्, उपक्रमाधिकरणन्यायस्यान्यथासिद्धोपसंहारविषयत्वात्, प्रकृतेच तदभावात्। सगुणवाक्यस्य प्रतियोग्युपस्थापकतया शीघ्रगामित्वेन प्राबल्ये ग्रहणवाक्यस्यापि प्राबल्यापत्त्या विकल्पाभावप्रसङ्गात्, सामान्यविषयप्रमाणसमकक्ष्यस्यैव विशेषविषयस्य प्राबल्यात्, प्रकृतेच तदभावात् एतेन-'दीक्षणीयायामनुब्रूयादितिवत् निरवकाशत्वेन प्राबल्यम् निर्गुणश्रुतिर्हि 'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढां' दैवीह्येषा गुणमयीत्यादिश्रुतिस्मृतिष्विव सत्त्वादिगुणे सावकाशेति—निरस्तम् सावकाश=निरवकाशन्यायस्य समकक्ष्यविषयत्वाच्च। अतएव। बहुत्वादपि न प्राबल्यम्, शतमप्यन्धानां न पश्यतीतिन्यायाच्च।

उपक्रमाधिकरणन्यायसे अनुपसंजातविरोधित्व होनेसे सगुणवाक्यका प्राबल्य है और निर्गुणश्रुतिको प्रतियोगिज्ञानापेक्षत्वप्रयुक्तविलम्बितत्व होनेसे, जैसे लिङ्ग तथा श्रुति इन दोनोंमें शीघ्रगामित्वेन श्रुतिका प्राबल्य है, तैसे शीघ्रगामित्व होनेसे सगुणवाक्यका प्राबल्य है तैसे 'पदे जुहोति' इस वाक्यकी नाईं विशेषविषयत्वेन सगुणवाक्यका प्राबल्य है; उक्त दृष्टान्तोंका विवरण प्रथमपरिच्छेदके बाधोद्धारप्रकरणमें हो चुका है, इति न च वाच्यम्; क्यों ? उपक्रमाधिकरणन्यायको अन्यथा सिद्ध जो उपसंहार तादृश उपसंहारविषयत्व होनेसे। प्रकृतमें अन्यथा सिद्धोपसंहारके अभावसे। और सगुणवाक्यको प्रतियोग्युपस्थापकत्वप्रयुक्तशीघ्रगामित्वसे प्राबल्य होनेपर ग्रहणवाक्यकोभी प्राबल्यकी आपत्तिसे, विकल्पाभावके प्रसङ्गसे फलतः निषेधक वाक्य प्रतियोगिज्ञापकतया वाक्यान्तरकी अपेक्षा नहीं करता है, निषेधक वाक्यकोही प्रतियोगीका उपस्थापकत्व होनेसे, और निषेधाधिकरणमें प्रतियोगिप्रसञ्जकतया अपेक्ष्यमाण हुआभी ग्रहणादिवाक्य अग्रहणादिवाक्यके सर्वथा प्रामाण्याभावमें हेतु नहीं किन्तु पाक्षिक अग्रहणादिवाक्यके प्रामाण्याभावका हेतु है, और निर्गुणवाक्यमें पुरुषार्थपर्य्यवसायित्वप्रयुक्त प्राबल्य होनेसे और वस्तुमें विकल्पके असम्भवसे निर्गुणवाक्यका सगुणवाक्यसे पाक्षिकभी बाध नहीं है किन्तु निर्गुणवाक्यानुगुणतया सगुणवाक्यका नयन होता है यह भाव है। सामान्य विषयक जो प्रमाण तादृशप्रमाणसमकक्ष्य जो विशेषविषयक प्रमाण उसकेही प्राबल्यसे प्रकृतमें तो उसके अभावसे प्राबल्य नहीं है=निर्गुणश्रुति और सगुणश्रुति इन्होंको समकक्ष्यत्व नहीं है, यह कह चुके हैं। एतेन=उक्त कथनसे दीक्षणीयायामनुब्रूयात् इस वाक्यकी तरह निरवकाशत्वेन प्राबल्य है निर्गुणश्रुति 'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् (श्वेत० १।३) दैवी ह्येषा गुणमयी (गी० ७।१४) इत्यादि श्रुतिस्मृतिओंकी तरह सत्त्वादिगुणोंमें सावकाश है=यत्किञ्चित्प्राचीनमग्निषोमीयात् तेनोपांशु चरति इस वाक्यको दिक्षणीयासे अन्यत्र सावकाशत्व होनेसे 'यावत्या वाचा कामयते तावत्या दीक्षणीयायामनुब्रूयात् यह वाक्य दीक्षणीयासे भिन्नमें निरवकाश हुआ जैसे दीक्षणीयामें कामस्वरका विधायक है तैसे सगुणवाक्यसे बोधित जो सार्वज्ञ्यादिगुण उन गुणोंसे भिन्न जो सत्त्वादि गुण उन सत्त्वादिगुणोंमें निर्गुणश्रुतिको सावकाशत्व होनेसे सगुण श्रुति सार्वज्ञ्यादिगुणपरा है यह कथन निरस्त हुआ, हेत्वन्तरका

समुच्चय करते हैं—सावकाशनिरवकाशन्यायको समकक्ष्यविषयत्व होनेसेभी । अतएव= समकक्ष्यत्व न होनेसेही सगुणवाक्योंको बहुत्व होनेसेभी प्राबल्य नहीं है अन्धोंका शतकभी नहीं देखता है इस न्यायसेभी ।

नच—प्रवृत्तिनिमित्तापेक्षैः ब्रह्मादिशब्दैः धर्मिणं निर्दिश्य क्रियमाणं धर्मनिषेधं प्रत्युपजीव्यतया गुणसमर्पकाणां प्राबल्यम् ग्रहैकत्ववदुद्देश्यविशेषणतया प्रवृत्तिनिमित्तानामविवक्षितत्वात् नच ग्रहैकत्वन्याये उद्देश्यस्वरूपे लब्धे यदधिकं तस्यैवाविवक्षेतिस्थितिः अन्यथा ग्रहत्वस्याप्यविवक्षा स्यात् । अत एवोक्तं हविरार्तिनये 'मृष्यामहे हविषा विशेषणम्, उभयत्वं तु न मृष्यामह' इतीति वाच्यम्, यच्छब्दो यत्र प्रवृत्तिनिमित्तमर्पयन् धर्मिणमुपस्थापयति तत्रायं न्यायः; यस्तु लक्षणयोपस्थापयति तत्र नायं प्रवर्तते । नच—लक्षकेणापि शब्देन इतरव्यावृत्तमसङ्कीर्णमेव वस्तुस्वरूपमुद्देष्टव्यम्, अन्यथा यत्र क्वचनधर्मनिषेधः स्यादिति—वाच्यम्, गङ्गायामित्यादावितरनदीतीरव्यावृत्ततीरलाभवदत्रापि स्वतो व्यावृत्तवस्तुनः एवोद्देश्यत्वसम्भवात् किं धर्मसमर्पणेन ? नच—निर्गुणस्यवाक्यस्य छागपशुन्यायेन 'त्रैगुण्यवर्जितं' 'विना हेयैर्गुणादिभि' रित्यादिविशेषोपसंहार इति वाच्यम्; नेतिनेतीत्यादिवीप्साबलेन प्रसक्तसर्वनिषेधे प्रतीते कतिपयविशेषपरिशेषस्य वक्तुमशक्यत्वात् ।

शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्त जो जातिगुणादिक उन्होंकी अपेक्षा है जिन्होंको ऐसे जो ब्रह्मादिशब्द उन ब्रह्मादिशब्दोंसे धर्मीको निर्दिष्टकर क्रियमाण जो धर्मका निषेध उस धर्म निषेधके प्रति उपजीव्यत्वेन गुणसमर्पकोंका निर्गुणवाक्योंकी अपेक्षा प्राबल्य हैं; नच प्राबल्य नहीं है क्यों ? ग्रहैकत्ववत्=ग्रहं सम्मार्ष्टि—यहाँपर सम्मार्जनके प्रति उद्देश्य जो ग्रह=यज्ञसम्बन्धिपात्र उन्होंमें विशेषणविधया प्रतीयमान जो द्वितीयैकवचनबोध्य एकत्व वह जैसे अविवक्षित है=सर्व ग्रहोंका यथायोग्य सम्मार्जन आवश्यक होनेसे एकत्व अविवक्षित है तैसे प्रकृतमेंभी प्रवृत्तिनिमित्तोंको अविवक्षितत्व होनेसे । शङ्कते नचेति । ग्रहैकत्वन्यायमें उद्देश्यस्वरूपके लब्ध होनेपर जो अधिक है उसीकी अविवक्षा है, ऐसी स्थिति है, अन्यथा=ऐसी स्थिति न होनेपर ग्रहत्वकीभी अविवक्षा होगी । इसी लिए कहा है, हविरार्त्तिनये=यस्योभयं हविरार्तिमार्छेत् स ऐन्द्रं पञ्चशरावमोदनं निर्वपेत् इस वाक्यके विचारमें हम आर्तिमें हवीरूपविशेषण सहन करते हैं उभयत्वको हम हविमें सहन नहीं करते हैं=उक्त वाक्यमें हविरार्तिनिमित्तक इन्द्रदेवताक पञ्चशरावसंस्कृत ओदनका निर्वापरूप कर्म बताया गया है, तहाँ नाशरूप आर्तिमात्रको और हविर्मात्रको सार्वदिकत्व होनेसे इन दोनोंको पृथक् पृथक् जो उक्त कर्मके प्रति निमित्तता नहीं बन सकती है, अतः हविर्नाशको निमित्तत्वका सम्भव होनेसे हविःपदार्थको निमित्तरूपोद्देश्यमें विशेषणत्व युक्त है=हविर्नाशको उद्देश्यकर उक्त कर्म विधेय है तहाँ हविर्नाशरूप उद्देश्यमें हविःपदार्थका विशेषणविधया भानकर लेना युक्त है, और उभयत्वका हविःपदार्थमें विशेषण-

विशया भान करना युक्त नहीं है उसके विनाभी उक्त कर्मके निमित्तका पर्य्यवसान होनेसे= उक्तकर्मनिष्ठविधेयतानिरूपित उद्देश्यतावच्छेदकत्व हविष्ट्वेन हविःपदार्थको है, न कि, उभयत्व-विशिष्ट हविष्ट्वेन। इति नच वाच्यम् क्योंकि यत् शब्द=जो शब्द जहाँपर प्रवृत्तिके निमित्तको अर्पण करता हुआ धर्मीको उपस्थापित करता है, तहाँ यह न्याय प्रवृत्त होता है। और जो शब्द लक्षणासे धर्मीको उपस्थापित करता है तहाँ यह न्याय नहीं प्रवृत्त होता है। लक्षक शब्दसेभी इतरसे व्यावृत्त असङ्कीर्ण ही लक्ष्यस्वरूप उद्देश्य हैं, अन्यथा जिस किस अधिकरणमें धर्मका निषेध होगा, इति नच वाच्यम् क्यों? 'गङ्गायाम्' इत्यादि स्थलमें जैसे इतर नदीका जो तीर तादृश तीरसे व्यावृत्त तीरका लाभ होता है, तथैव प्रकृतमेंभी स्वतः व्यावृत्त वस्तुको ही उद्देश्यत्वका सम्भव होनेसे धर्मसमर्पणसे क्या प्रयोजन है; शङ्कते नचेति। निर्गुणवाक्यका छागपशुन्यायसे (जै० मी० ६।८।९) त्रैगुण्यवर्जित है हेयगुणादिकोंसे रहित है इत्यादि वाक्यसे विशेषमें उपसंहार है=छागस्य वपाया मेदसोऽनुब्रूहि इस मन्त्रके बलसे अग्नीषोमीयं पशुमालभेत एतद्वाक्यस्थ पशुपद जैसे छागार्थक कहा है तैसे 'त्रैगुण्यवर्जितम्' इस वाक्यके अनुरोधसे निर्गुणम् एतद्वाक्यस्थ गुणपदकोभी सत्वादिगुणबोधकत्व मान लेना उचित है; इति नच वाच्यम्, क्यों? नेति नेति (बृ० २।३।६) इत्यादि वीप्साके बलसे प्रसक्तप्रतियोगिक निषेधके प्रतीत होनेपर कतिपय जो विशेष उन विशेषोंके परिशेषको करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे।

अतएव 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यतामितिवत् त्रैगुण्यादिनिषेधस्यैव सामान्यविषयत्वम्, सार्वज्ञ्यादौ श्रुतेरमानत्वेनाविरोधादत्रापि काकपद इव मानान्तरानुग्रहस्य तुल्यत्वात्, तथापि विशेषोपसंहारे न हिंस्यात् सर्वाभूतानीत्यस्य 'ब्राह्मणो न हन्तव्य' इत्यत्रोपसंहारापातात् व्यर्थहिंसायां विध्यभाववत् सार्वज्ञ्यादिगुणेष्वपि विध्यभावस्य समानत्वात् निषेधसाम्योपपत्तेः। अतएव-'धर्मान् पृथङ् न पश्यतीत्यादिश्रुतेः सविशेषणे हीति न्यायेन गुणानां पार्थक्यस्यैव-निषेधात्, तत्सामान्यादन्यत्रापि तथैव निषेधो युक्त इति-निरस्तम्; सविशेषणे हीति न्यायस्य विशेष्यबाधकावतार एव प्रवृत्तेः प्रकृते च बाधकाऽभावात्, सार्वज्ञ्यश्रुतेः बाधकत्वनिरासात् पार्थक्यनिषेधे ब्रह्ममात्रपरिशेषात् नामान्तरेणाद्वैतवादस्यैवोक्तेश्च।

अतएव=उक्त वीप्सासे कतिपयके परिशेषको अशक्यत्व होनेसेही 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' इसकी तरह त्रैगुण्यादिके निषेधको ही सामान्यविषयत्व है, सार्वज्ञ्यादिमें श्रुतिके अमानत्वेन=अतात्पर्य्यसे विरोधके न होनेसे अत्रापि=त्रैगुण्यादिवाक्यमेंभी काकपदकी नाईं मानान्तरके अनुग्रहको तुल्यत्व होनेसे=श्वादिकोंसे दध्यादिका रक्षण इष्टका साधन है, इस अर्थको प्रमाणान्तरसे जानकर काकपद दध्युपघातकसामान्यमें लाक्षणिक है यह निर्णीत होता है तैसे निर्गुणश्रुत्यादिको गुणमात्रनिषेधकत्व जानकर त्रैगुण्यादिपद गुणसामान्यका लक्षक है यह निर्णीत होता है यह अर्थ है। तथापि=मानान्तरका अनुग्रह होनेपरभी विशेषोपसंहारे=निर्गुणवाक्यको गुणविशेषका निषेधकत्व स्वीकार होनेपर 'न हिंस्यात् सर्वा भूतानि' इसके

'ब्राह्मणो न हन्तव्य:' यहाँपर उपसंहारके आपातसे=सर्वभूतपद ब्राह्मणपर ही हो जायगा। व्यर्थहिंसायां विध्यभावात्=व्यर्थ हिंसामें जैसे तात्पर्य्यका अभाव है, तैसे सार्वज्ञ्यादिगुणोंमें तात्पर्य्याभावको समानत्व होनेसे निषेधसाम्यकी उपपत्तिसे=न हिंस्यात् यह वाक्य और निर्गुणवाक्य ये जो दोनों निषेधवाक्य हैं इन दोनोंको व्यर्थहिंसाविषयकत्वेन और गुणसामान्यविषयकत्वेन साम्य है। अतएव 'धर्मान् पृथङ् न पश्यति' इत्यादिश्रुतिसे सविशेषणे हि= "सविशेषणे हि वर्त्तमानौ विधिनिषेधौ सति विशेष्यबाधके विशेषणमुपसङ्क्रामतः" इस न्यायसे गुणोंके पार्थक्यकाही निषेध होनेसे=पृथक्त्वेन गुण द्रष्टव्य नहीं है किन्तु ब्रह्माभिन्नत्वेन द्रष्टव्य हैं, इस रीतिसे गुणोंमें ब्रह्मावधिक पृथक्त्वकेही निषेधसे तत्सामान्यात्=तत्समानार्थकत्वका सम्भव होनेसे अन्यत्रापि=शाखान्तरीयनिर्गुणवाक्यमेंभी तथैव=गुणोंमें पार्थक्यकाही निषेध युक्त है—नकि गुणोंका, यह कथन निरस्त हुआ, अतएव शङ्काके अर्थका विवरण करते हैं—सविशेषणेहि=इस न्यायको विशेष्यमें बाधकका अवतार होनेपरही प्रवृत्त होनेसे प्रकृतमें तो बाधकके अभावसे=जहाँ विशेष्यमें विधिकी या निषेधकी प्रवृत्तिमें कोई बाधक होता है वहाँ यह न्याय प्रवृत्त होता है और यहाँ तो विशेष्यरूपगुणमें ही निषेधकी प्रवृत्ति हो सकती है, फिर पार्थक्यरूप विशेषणमें ही निषेधका पर्य्यवसान करना अनुचित है। सार्वज्ञ्यश्रुतिके बाधकत्वके निराससे और पार्थक्यका निषेध होनेपर ब्रह्ममात्रके परिशेषसे नामान्तरसे अद्वैतवादकी ही उक्तिसे=भेदका निषेध होनेपर भेद्य प्रपञ्चकाभी निषेध आर्थिक है, भेद्यप्रपञ्चको भेदका व्याप्यत्व होनेसे भेदरूपव्यापकका निषेध होनेपर व्याप्यभूतप्रपञ्चके निषेधको आवश्यकत्व होनेसे अतः ब्रह्ममात्रका परिशेष है।

यत्तु ज्ञानानन्दयोरभेदे एकतरपरिशेषाभावादत्रापि धर्मधर्मिणोर्नैकतरपरिशेषः, अन्यथा आनन्दस्फुरणयोरन्यतराभावात्, मुक्ति-रपुमर्थः स्यादिति, तन्न; ज्ञानानन्दव्यक्त्योरस्ति भेदगर्भैकतरशब्दस्य न प्रवृत्तिः। एवमेव त्वन्नये गुणगुणिव्यक्त्योरभेदसंभवात् अस्य परिभाषामात्रत्वात्। यत्तु साक्षिचैतन्यस्य पूर्वं पश्चादपि गुणोक्तेस्तन्मध्यस्थं निर्गुणवाक्यमपि उपांशुयाजन्यायेन तदनुगुणतया नेयमिति, तन्न, गुणान्तरस्थीकृत्य तेषां ब्रह्मपरत्वेन गुणे तात्पर्याभावात्। अतएव निर्गुणशब्देन गुणमात्रनिषेधो न युक्तः, साक्ष्यादिपदेन द्रष्टृत्वादिविधानव्याघातात्सङ्कोच एवेति-निरस्तम्; द्रष्टृत्वादावत्रापि अतात्पर्यात्। तथाच द्रष्टृत्वादिद्वारकब्रह्मरूपयुक्तार्थतैषां; आगमस्य तत्रैवप्रामाण्यसम्भवात्।

ज्ञानानन्दयोरभेदे=जैसे ज्ञान तथा आनन्द इन दोनोंका अभेद होनेपरभी एकतर=एकमात्रका परिशेष नहीं है तैसे अत्रापि='धर्मान् पृथङ् न पश्यति' इत्यादि श्रुतिसे बोध्य अभेदमेंभी धर्मधर्मिणोः=धर्म तथा धर्मी इन दोनोंमें एकतरका परिशेष नहीं है, अन्यथा आनन्द तथा स्फुरण इन दोनोंमेंसे अन्यतरका अभाव होनेसे मुक्ति अपुरुषार्थ होजायगी इति यत्तु तत् तु न; क्योंकि ज्ञानानन्द व्यक्तिओंमें भेदगर्भैकतरशब्दस्य=दो व्यक्तिओंमें एकसे भिन्न जो

अपरव्यक्ति तादृशव्यक्तिवाचक एकतरशब्दकी प्रवृत्ति नहीं है, तथाच ज्ञानानन्द स्वरूपमात्रका अत्यन्ताभेद होनेसे उसमें एकतर इस शब्दकी वृत्तिसे एकतरका परिशेष कहनेकेलिए अशक्य है। एवमेव=इसी रीतिसे तुम्हारे मतमें गुणगुणिके अभेदका सम्भव होनेसे=इस अभेदको अद्वैतकी परिभाषामात्रत्व होनेसे=हमारे जैसाही यदि अभेद विवक्षित है तब तो आप भङ्ग्यन्तरसे अद्वैतवादकाही प्रतिपादन कर रहे हैं कोई प्रकारका विरोध नहीं। शङ्कते यत्त्विति। साक्षिचैतन्यस्य=साक्षिचैतन्यप्रतिपादक साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च (श्वे० ६।११) इस वाक्यसे पूर्व और पश्चात्‌भी गुणोंकी उक्ति होनेसे मध्यस्थ निर्गुणवाक्यभी उपांशुयाजन्यायसे (जै० १०।८। १६) तदनुगुणतया=गुणवाक्यानुगुणतया नेय है इति यत् तत् तु न क्यों ? गुणोंको तटस्थीकृत्य=द्वार बनाकर तेषाम्=गुणवाक्योंको ब्रह्मपरत्वेन=शुद्धब्रह्मपरत्व होनेसे गुणोंमें तात्पर्यके अभावसे। अतएव=गुणोंमें किसी भी वाक्यका तात्पर्य न होनेसे–निर्गुणशब्दसे गुणमात्रका निषेध युक्त नहीं हैं, साक्षादिपदसे जो द्रष्टृत्वादिका विधान है उस विधानके व्याघातसे सङ्कोचही है यह निरस्त हुआ यहाँपरभी द्रष्टृत्वादिमें तात्पर्यके न होनेसे, तस्मात् साक्षादिपदोंकी यह द्रष्टृत्वादिद्वारकब्रह्मरूपयुक्तार्थता है आगमके प्रामाण्यका तत्रैव=उक्तविधब्रह्ममेंही सम्भव होनेसे।

एवञ्च ‘युक्तोऽयुक्तश्च यत्रार्थः आगमस्य प्रतीयते। स्याच्चत्र युक्त एवार्थ’ इत्याद्यस्मन्मत एवोपपन्नतरम्। तस्मादुपक्रमादिन्यायानामन्यविषयत्वात् न तद्बलेन सगुणत्वसिद्धिः। यत्तु ‘अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्’ ‘अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशादित्यादिसूत्रेषु धर्माणां तत्तदधिकरणसिद्धान्तसाधकतया आदृतत्वात् सगुणत्वसिद्धिरिति, तन्न; आरोपितब्रह्ममात्रसम्बन्धिगुणोपादानेन सिद्धान्त–सिद्ध्युपपत्तेर्गुणतात्त्विकत्व औदासीन्यात्। यच्च अहिंसाग्नीषोमीयवाक्ययोरिव सगुणनिर्गुणवाक्ययोरपि भिन्नविषयतयाऽविरोधे संभवत्यपि सगुणवाक्यस्यामानत्वाभिधानं सौगतसौहृदादिति, तन्न, निर्गुणवाक्यस्य तत्परत्वेन प्रबलतया बाधस्यावश्यकत्वेऽपि मानत्वाभिधानस्य ब्रह्मवादिविद्वेषमात्रत्वात्। तस्मान्निर्गुणवाक्य–बाधात् सगुणवाक्यमतत्परम्।

एवञ्च=सगुणवाक्योंको गुणपरत्व न होनेपर भी और निर्गुणवाक्योंको यथाश्रुतार्थपरत्व होनेपर यत्र=जहाँपर आगमका युक्त तथा अयुक्त अर्थ प्रतीत होता है तहाँपर युक्तही अर्थ होना चाहिए, इत्यादि वृद्ध विद्वानोंका कथन हमारे मतमेंही ठीक ठीक उपपन्न होता है, न कि कल्पितार्थाभिनिवेशी तुम्हारे मतमें। तस्मात् द्वैतिदर्शित उपक्रमश्रुतिलिङ्गादिन्यायोंको अन्यविषयत्व होनेसे उन्हींके बलसे सगुणत्वकी सिद्धि नहीं है। अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् (वे० १ १।२०) अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् (वे० १।२।१८) इत्यादि सूत्रोंमें धर्मोंको तिस तिस अधिकरणका जो सिद्धान्त तादृशसिद्धान्तसाधकतया आदृतत्व=आदरविषयत्व होनेसे सगुणत्वकी सिद्धि है, इति यत् तत् तु न; क्यों ? आरोपित जो ब्रह्ममात्रसम्बन्धि गुण

तादृश गुणोंके उपादानसे सिद्धान्तसिद्ध्युपपत्तेः=तत्तद्वाक्यको तत्तद्गुणविशिष्टउपासनापरत्व-रूपसिद्धान्तकी आपत्तिसे गुणोंके तात्त्विकत्वमें औदासीन्य होनेसे। अहिंसावाक्य और अग्नीषोमीयवाक्य इन दोनोंके अविरोधकी तरह सगुणनिर्गुणवाक्योंकेभी भिन्नविषयतया अविरोधका सम्भव होते हुए भी सगुणवाक्योंके अप्रमाणत्वका अभिधान सौगतके सौहृदसे है=बुद्धमतका और ब्रह्मवादका बहुत सान्निध्य माना जाता है इसका फल है, इति यत् तत् न; क्यों ? निर्गुणवाक्यको तत्परत्वप्रयुक्त प्राबल्य होनेसे बाधस्य=सगुणश्रुतिबाधको आवश्यकत्व होनेपरभी सगुणवाक्यके गुणसत्यत्वमें प्रमाणत्वाभिधानको ब्रह्मवादिविद्वेषमात्रत्व होनेसे=अनात्माभिमानिस्थूलदर्शि–द्वैती लोग बुद्धमतसे बहुत घबडाते हैं ऐसी दशामें जिस निर्विशेष चेतनके पासमें पहुँच बुद्धोंकीभी बुद्धि कुण्ठित होगई उसनिर्विशेष चेतनसे द्वैतिओंके डरनेमें या सर्वथा उसके सम्मुखीन न होनेमें आश्चर्य ही क्या है द्वैती लोग जो अपने स्थूलानुभवानुसार श्रुतिओंका अन्यथा अन्यथा अर्थ करते हैं उसमें उनकी बुद्धिका स्थौल्य=शुद्धपदार्थानवगाहित्व ही कारण है; फलतः ये सर्व द्वैतिओंकी कुचेष्टायें ब्रह्मवादका विद्वेषमात्र हैं। फलितार्थ दिखलाते हैं-तस्मात् निर्गुणवाक्यसे बाधितत्व होनेसे सगुणवाक्य सगुणत्वपर नहीं है।

अनुभूतिः निर्विशेपा, अनुभूतित्वादिति व्यतिरेक्यनुमानमबाधकम्; । नचात्राप्रसिद्धविशेषणत्वम्; यद्व्यतिरेके समीहितप्रसक्तिः, तन्मानयोग्यमिति सामान्यतः प्रसिद्धेः। विशेषत्वमभावप्रतियोगितावच्छेदकम्, अभावप्रतियोगिमात्रवृत्तित्वात्, घटत्ववदिति विशिष्यापि सत्त्वात्। नापि स्वव्याघातः निर्विशेषत्वस्यस्वरूपत्वेन विशेषत्वानङ्गीकारात्। नच स्वरूपस्य प्रागेवसिद्धेः स्यादनुमितेर्वैयर्थ्यम् तेन रूपेण ज्ञानस्योद्देश्यत्वात्। नापि श्रुतिबाधः प्रागेवनिरासात् प्रत्युत बहुतरश्रुत्यनुग्रहः। अतएव नाभाससाम्यम्। नाप्यप्रयोजकत्वम् भिन्नत्वे अभिन्नत्वे सम्बन्धत्वे चातिप्रसङ्गानवस्थानाभ्यां धर्मधर्मिभावानुपपत्तेरेव विपक्षबाधकत्वात्। नच सम्बन्धस्य मिथ्यात्ववत् स्वनिर्वाहकत्वान्नानवस्था अभेदवादे अतिरिक्तस्य वक्तुमशक्यत्वात्।

अनुभूति, निर्विशेप है, अनुभूतित्व होनेसे, यन्नैवम्, तन्नैवम् यथा घटः; यह व्यतिरेकि–अनुमानभी सगुणत्वमें बाधक है। अत्र=इस अनुमानमें अप्रसिद्धविशेषणत्व है, नच=नहीं है, क्यों ? यद्व्यतिरेके=जिसका अभाव होनेपर असमीहितकी प्रसक्ति हो वह मान योग्य है, इस रीतिसे सामान्यप्रसिद्धि होनेसे। विशेषत्व, अभावीयप्रतियोगिताका अवच्छेदक है, अभावप्रतियोगिमात्रमें वृत्तित्व होनेसे घटत्ववत्, इस रीतिसे विशेषरूपसेभी विशेषणकी प्रसिद्धि होनेसे। नापि व्याघातः=निर्विशेषत्वानुमितिको, विशेषसामान्याभावविषयकत्व होनेपर विशेषसामान्याभावरूप जो विशेष तादृश विशेषका अभावभी उस अनुमितिका विषय है तथाच स्वप्रामाण्यव्याघात है; नच=व्याघात नहीं है; उक्तानुमितिमें अबाधितविषयकत्वरूप प्रामाण्य विशेषसामान्याभावके स्वरूपमात्रांशमें है ही, और विशेषसामान्याभावत्वविशिष्टांशमें तो हमभी

प्रामाण्य अङ्गीकार नहीं करते हैं इस अभिप्रायसे कहते हैं–निर्विशेषत्वको स्वरूपत्वेन विशेषत्वका अनङ्गीकार होनेसे=निर्विशेषत्वको प्रथमसेही सिद्ध होनेसे अनुमितिका वैयर्थ्य होगा, नच= वैयर्थ्य नहीं है, क्यों ? तेन रूपेण=निर्विशेषत्वरूपसे ज्ञानको उद्देश्यत्व होनेसे, और श्रुतिसेभी बाध नहीं पूर्वमेंही श्रुतिबाधका निरास होनेसे, उलटा बहुतर श्रुतिओंका अनुग्रह है; अतएव= बहुतर श्रुतिओंका अनुग्रह होनेसेही आभाससाम्य नहीं। और अप्रयोजकत्वभी नहीं। धर्मधर्मिओंका भिन्नत्व तथा अभिन्नत्व होनेपर अतिप्रसङ्गसे धर्मको धर्मीके साथ सम्बद्धत्व होनेपर अनवस्थासे असम्बद्धत्व होनेपर अतिप्रसङ्गसे धर्मधर्मिभावकी अनुपपत्तिको ही विपक्षमें बाधकत्व होनेसे=परस्परभेदविशिष्ट दो पदार्थोंकाभी यदि धर्मधर्मिभाव होता हो तो घट तथा पट इन दोनोंकाभी परस्परधर्मधर्मिभाव हो जायगा करभ रासभका धर्म हो जायगा, नाग नगका धर्म हो जायगा, यह अतिप्रसङ्ग है, अभिन्नत्व होनेपर यदि धर्मधर्मिभाव होता हो तो घटकोभी घटका धर्म होना चाहिए यह अतिप्रसङ्ग है। धर्मको धर्मीके साथ असम्बद्धत्व होनेपर एक धर्मकोही सर्वका धर्म होना चाहिए=घटत्वघटके साथ असम्बद्ध होके यदि घटका धर्म होगा, तो पटभी घठका धर्म हो जायगा, क्योंकि असम्बद्धत्व अविशेष है, धर्मको धर्मीके साथ सम्बद्धत्व होकर धर्मता होनेपर तो सम्बन्धकाभी स्वानुयोगिप्रतियोगियोंके साथ सम्बन्ध कहना चाहिए= घटत्व घटके साथ सम्बद्ध होकर घटका धर्म है तहाँ घटत्व और घट इन दोनोंको सम्बद्ध बनानेवाला सम्बन्ध इन दोनोंसे सम्बद्ध है, या असम्बद्ध, यदि सम्बद्ध है, तब तो जैसे घटत्व और घटको परस्पर सम्बद्ध बननेके लिए मध्यमें एक सम्बन्धकी आवश्यकता होती है तैसे घटत्व और घटके मध्यमें रहनेवाला जो सम्बन्ध उस सम्बन्धकोभी घटत्वके साथ सम्बद्ध होनेके लिए और घटके साथ सम्बद्ध होनेके लिए स्व और घटत्वके मध्यमें स्वातिरिक्त सम्बन्धकी आवश्यकता है तथा स्व और घटके मध्यमें स्वातिरिक्त सम्बन्धकी आवश्यकता है इसी रीतिसे घटत्व और सम्बन्धके बीचमें जो सम्बन्ध माना गया है और घट और सम्बन्धके बीचमें जो सम्बन्ध माना गया है वहभी अपने सम्बन्धिओंसे असम्बद्ध हुआ तो उन्होंका सम्बन्ध न बन सकेगा, तथाच इसको अपने सम्बन्धिओंके साथ सम्बद्ध बननेके लिए तीसरा सम्बन्ध चाहिए, इस रीतिसे आगे २ बढनेमें अनवस्था है, यदि धर्मधर्मिके मध्यमें रहनेवाले सम्बन्धका धर्मधर्मिओंके साथ सम्बन्ध न माना जाय तब तो सर्वही सम्बद्ध हो जायँगे=घटत्व तथा घटके बीचमें रहनेवाला सम्बन्ध जैसे घटत्वके साथ असम्बद्ध हुआ ही घटत्वको घटके साथ सम्बद्ध कर देता है, तैसे पटत्वकोभी घटके साथ सम्बद्ध कर देगा, क्योंकि सम्बन्ध किसीको स्पर्श तो करता ही नहीं। यदि कहो कि सम्बन्धका सम्बन्ध धर्मका स्वरूप ही है, तब तो धर्मसे भिन्न सम्बन्ध कल्पना करनेकी आवश्यकता नहीं धर्म स्वरूपकोही धर्मकी सम्बन्धताका सम्भव होनेसे। शङ्कते नचेति। मिथ्यात्वकी नाईं सम्बन्धको स्वनिर्वाहकत्व होनेसे अनवस्था नहीं है=जैसे अनवस्थाके भयसे मिथ्यात्वमें मिथ्यात्वान्तर आप अङ्गीकार नहीं करते हैं तैसे हमभी अनवस्थाके भयसे सम्बन्धका सम्बन्धान्तर नहीं अङ्गीकार करते हैं और जैसे मिथ्यात्वका मिथ्यात्व मिथ्यात्वसेही व्यवहृत होता है, तैसे सम्बन्धका सम्बद्धत्व स्वसेही व्यवहृत

होता है, नव=ऐसा नहीं हो सकता है, क्यों ? सम्बन्धको भेदनिष्ठत्व होनेसे अभेदवादमें अ-रितिक्तस्य=अतिरिक्तसम्बन्धको कहने लिए अशक्यत्व होनेसे ।

नच—धर्माभावरूपधर्मभावाभावाभ्यां व्याघातेन कुतर्कतास्येति–वाच्यम्; धर्माभावस्य स्वरूपतयैव सत्त्वाङ्गीकारेण व्याघाताभावात्, अभेदेऽपि भेदकल्पनया धर्मधर्मिभावव्यवहारस्य त्वयापीष्टत्वात् । नच—एवमानन्दस्य ज्ञानमात्रत्वे दुःखज्ञानमप्यानन्दः स्यात्–भिन्नत्वे अखण्डत्वहानिः एवमेव ब्रह्मणो जगदभिन्नत्वे–मिथ्यात्वापत्तिः, भिन्नत्वे भेदसत्यत्वमित्यादितर्कबाधात् त्वदभिमतं ब्रह्मापि न सिद्ध्येदिति श्रुतिबाधात्तर्काणामाभासात्वं मन्मते समानमिति–वाच्यम्; दुःखज्ञानस्य वृत्तिरूपतया आनन्दस्य नित्यचिन्मात्रानतिरेके अतिप्रसङ्गाभावात्, आरम्भाधिकरणन्यायेन ब्रह्मव्यतिरेकेण जगतः अभावात् भेदाभेदविकल्पस्यानवकाशात् सगुणश्रुतेरतत्परतया श्रुतिबाधसाम्योक्तेरयुक्तेः, निर्गुणश्रुतेस्तु तत्परतया तदनुगृहीततर्के शुष्कत्वाभावाच्च ।

शङ्कते नचेति । धर्मोंका जो अभाव तादृश अभावरूप जो धर्म उस धर्मके भावसे तथा अभावसे व्याघात होनेसे=ब्रह्ममें धर्माभावरूप धर्म यदि है तब तो उसीसे सविशेषता आगई निर्विशेषताका कथन व्याघातयुक्त हुआ, यदि धर्माभावरूप धर्म नहीं है तब तो धर्माभावाभावको धर्मरूपता होनेसे निर्विशेषताका कथन व्याघातसे युक्त है, अतः धर्मका खण्डन करनेवाला जो आपका तर्क है उसमें शुष्कतर्कता है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? धर्माभावके स्वरूपत्वेन ही सत्त्वका अङ्गीकार होनेसे व्याघातके अभावसे और अभेद होनेपरभी भेदकल्पनया=धर्मधर्मिभावव्यवहारप्रयोजककी कल्पनासे धर्मधर्मिभावव्यवहारको तुमसेभी इष्टत्व होनेसे । शङ्कते–नचेति । इस रीतिसे आनन्दको ज्ञानमात्रत्व होनेपर दुःखज्ञानभी आनन्द होगा, भिन्नत्व=आनन्दको ज्ञानसे भिन्नत्व होनेपर अखण्डत्वकी हानि है, इसी रीतिसे ब्रह्मको जगत्से अभिन्नत्व होनेपर मिथ्यात्वकी आपत्ति है, भिन्नत्व होनेपर भेदका सत्यत्व है, इत्यादि तर्कोंसे बाध होनेसे त्वदभिमत ब्रह्मभी सिद्ध न होगा, और श्रुतिओंसे बाध होनेसे तर्कोंका आभासत्व तो मेरे मतमेंभी समान है, इति नच वाच्यम् क्यों ? दुःखज्ञानको वृत्तिरूपता होनेसे आनन्दका चिन्मात्रके साथ अनतिरेक होनेपर अतिप्रसङ्गके अभावसे=दुःखज्ञान वृत्तिरूप है, तदात्मक आनन्द नहीं है, किन्तु स्वरूपभूतचिन्मात्रात्मक है, वह तो दुःखज्ञान नहीं है अतः अतिप्रसङ्ग नहीं । और आरम्भाधिकरण (वे० २।१।६) न्यायसे ब्रह्मव्यतिरेकेण जगत्के अभावसे भेदाभेदविकल्पके अनवकाशसे सगुणश्रुतिको अतत्परता होनेसे श्रुतिबाधसाम्यकी उक्तिको अयुक्त होनेसे निर्गुणश्रुतिको स्वार्थपरता होनेसे निर्गुणश्रुतिसे अनुगृहीत तर्कमें शुष्कत्वके अभावसे=अबाधितार्थकश्रुत्यनुसारित्वप्रयुक्त तर्कमें स्निग्धता है नकि शुष्कता ।

यत्तु निर्विशेषत्वस्य भावाभावाभ्यां मूकोऽहमितिवत् स्वव्याघातः यदिनिर्विशेषस्वरूपविशेषोऽप्यनेनैव निषिध्यते, तर्हीयमपि वचनक्रिया मूकोऽहमित्यनेनैव निषिध्यत

इति सममिति, तन्न, निर्विशेषत्वस्य विशेषरूपत्वे विशेषत्वेनैव रूपेण तन्निषेधस्याद्वितीयवाक्ये द्वितीयाभावरूपद्वितीयनिषेधस्येवोपपत्तेः, अन्यथा विशेषत्वावच्छिन्ननिषेधप्रतीतेरनुपपत्तेः; अभावानतिरेके तु स्वरूपानतिरेकितया, मूकोऽहमितिवत्स्ववचनव्याघाताभावस्यैवोक्तत्वाच्च, मूकोऽहमित्यत्र वक्तृत्वतदभावयोरेकरूपेण निषेधाभावात् व्याघातोपपत्तेः।

निर्विशेषत्वके भावसे तथा अभावसे 'मूकोऽहम्' इसकी तरह व्याघात है; यदि निर्विशेषत्वरूपविशेषभी इससे ही निषिद्ध होता है तब तो 'मूकोऽहम्' यह वचनक्रिया 'मूकोऽहम्। इससे ही निषिद्ध होती है इस कथनके सम है; इति यत् तत् तु न, क्यों ? निर्विशेषत्वको विशेषरूपत्वे=ब्रह्मातिरिक्तत्व होनेपर विशेषत्वेनैव=ब्रह्मातिरिक्तत्वरूपसे ही उसके निषेधकी अद्वितीयवाक्यमें उपपत्ति होनेसे,—जैसे कि अद्वितीयवाक्यमें द्वितीयाभावरूप द्वितीयके निषेधकी उपपत्ति होती है। अन्यथा विशेषत्वावच्छिन्नप्रतियोगिक निषेधको प्रतीतिकी अनुपपत्ति होगी। अभावानतिरेके तु=अभावका अधिकरण स्वरूपसे भेद न होनेपर तो अभावको ब्रह्मस्वरूपसे अतिरिक्त न होनेसे। 'मुकोऽहम्' इसकी तरह जो स्ववचनव्याघात उसके अभावको ही उक्तत्व होनेसे 'मूकोऽहम्' यहाँपर वक्तृत्व और तदभाव इन दोनोंका एकरूपसे निषेध न होनेसे व्याघातकी उपपत्तिसे।

ननु—ब्रह्मणः शून्यानिर्वाच्यव्यावर्त्तकविशेषाभावे तुच्छत्वमिथ्यात्वाद्यापत्तेः तत्सत्त्वे सविशेषत्वमिति—चेत् व्यावर्त्त्यसमान—सत्ताकविशेषाभावेऽपि व्यावृत्तिबोधसमानसत्ताकधर्मेण भिन्नत्वनिर्विशेषत्वयोरुपपत्तेः। अतएव ब्रह्मणो निर्विशेषत्वे विचारविषयत्वानुपपत्तिः 'इदमित्थमितिज्ञानं जिज्ञासायाः प्रयोजनम्। इत्थंभावो हि धर्मोऽस्य न चेन्न प्रतियोगिता, ॥' इति निरस्तम्; विचारकाले आरोपितधर्मसम्भवात्। विचारोत्तरकाले च इत्थमितिव्यवहारस्य स्वरूपव्यावृत्त्यादेश्च कल्पितपार्थक्यमादायोपपत्तेः। ननु—धर्मारोपार्थमपि केचन धर्माः सत्याः स्वीकर्त्तव्याः; इदंत्वादिना ज्ञात एव रूप्याद्यारोपदर्शनात्। तदुक्तं—धर्मारोपोऽपि सामान्यधर्मादीनां हि दर्शने। सर्वधर्मविहीनस्य धर्मारोपः क दृश्यते, इति चेन्न इदन्त्वादेरपि सत्यत्वासम्प्रतिपत्तेः शुद्धेऽपि अध्यासस्योपपादितत्वाच्च, आरोप्यविलक्षणधर्मवत्त्वस्यानाद्यविद्यासम्बन्धेनैवोपपत्तेः अतएव—अभावरूपधर्माङ्गीकारे भावोऽप्यस्तु, प्रामाणिकत्वाविशेषात् इति निरस्तम्; स्वरूपातिरेकिणोऽभावस्याप्यनङ्गीकारात् धर्ममात्रे प्रामाणिकत्वस्य निराकृतत्वाच्च। तस्मान्निर्विशेषं परं ब्रह्म।

इति ब्रह्मणो निर्विशेषत्वनिर्गुणत्वोपपत्तिः।

ब्रह्मणः=ब्रह्ममें शून्यव्यावर्त्तक तथा अनिर्वाच्य—व्यावर्त्तक विशेषके न होनेपर तुच्छत्वमिथ्यात्वादिकी आपत्तिसे तत्सत्त्वे=विशेषका सत्त्व होनेपर ब्रह्ममें सविशेषत्व है; इतिचेत्; व्यावर्त्यसमानसत्ताक जो विशेष तादृश विशेषका अभाव होनेपरभी व्यावृत्तिबोधसमानसत्ताक

धर्मसे भिन्नत्व और निर्विशेपत्व इन दोनोंकी उपपत्तिसे। अतएव=उक्तविधप्रयोजकके विद्यमान होनेसे ही, ब्रह्मको निर्विशेपत्व होनेपर विचारविपयत्वकी अनुपपत्ति है। 'इदमित्थम्' इत्याकारक ज्ञान जिज्ञासाका प्रयोजन है। अस्य=इस ब्रह्ममें इत्थंभाव धर्म यदि नहीं है=ब्रह्म 'आनन्दरूपही है' इत्याकारक इत्थम्भूत धर्म यदि ब्रह्ममें नहीं है, तो न प्रतियोगिता= आनन्दादिसे व्यावृत्तताभी ब्रह्ममें न होगी, यह कथन निरस्त हुआ। विचारकालमें आरोपित धर्मका सम्भव होनेसे। और विचारोत्तरकालमें तो 'इत्थम्' इस व्यवहारको और स्वरूप-व्यावृत्त्यादिको कल्पित पार्थक्यको लेकर उपपन्न होनेसे। शङ्कते नन्विति। धर्मोंका आरोप करनेके लिएभी कितने ही सत्य धर्म स्वीकर्त्तव्य हैं इदन्त्वादिरूपसे ज्ञातमें ही रूप्यादिके आरोपके देखनेसे सो कहा है=सामान्यधर्मादिकोंका दर्शन होनेपर ही धर्मका आरोपभी होता है। और सर्वधर्मसे हीनमें धर्मोंका आरोप कहाँ देखा जाता है, इति चेन्न; क्यों ? इदन्त्वादि-केभी सत्यत्वकी असम्प्रतिपत्तिसे और शुद्धमेंभी अध्यासको उपपादितत्व होनेसेभी। और आरोप्यविलक्षण धर्मवत्त्वको अनाद्यविद्यासम्बन्धसे ही उपपन्न होनेसे। अतएव, अभावरूप धर्मका अङ्गीकार होनेपर भावभी रहो दोनोंमें प्रामाणिकत्वको अविशेप होनेसे, यह कथन निरस्त हुआ। अतएव शब्दका अर्थ लिखते हैं,—स्वरूपभेदविशिष्ट अभावका अङ्गीकार न होनेसे। और धर्ममात्रमें प्रामाणिकत्वके खण्डितत्वसेभी, फलतः निर्विशेप परब्रह्म है। यह सुस्थिर हुआ।

इति सरलायां ब्रह्मनिर्गुणत्वोपपत्तिः।

अथ ब्रह्मनिर्गुणत्वे प्रमाणोपपत्तिः।

ननु—निर्विशेपे किं प्रमाणमिति चेत्—स्फूर्त्यर्थं वा अज्ञाननिवृत्त्यर्थं वा प्रमाण-प्रश्नः। आद्ये स्वप्रकाशतया प्रमाणवैयर्थ्यम्। नच—विप्रतिपन्ने स्वतः सिद्धेर्वक्तुं शक्यतया अतिप्रसङ्गः, अभावव्यावृत्तिबोधकप्रमाणसत्त्वासत्त्वाभ्यां विशेपात्, द्वितीये उपनिपद एव प्रमाणत्वात्। अतएव प्रत्यक्षमनुमानंवेत्यादिविकल्पस्य नावकाशः। ननु—कथं तत्रो-पनिपत् मानम् ? जातिगुणक्रियादिरूपनिमित्ताभावेन मुख्यवृत्तेरयोगात्, अस्वीकाराच्च आरोपितनिमित्तविपयप्रतीतेर्निर्विशेपे प्रामाण्यायोगात् गौण्याश्च मुख्यार्थगुणयुक्ततयैव लक्षणायाश्च शक्यार्थसम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्तयैव स्वार्थोपस्थापकत्वात् पदस्यान्वयिता-वच्छेदकरूपेण स्वार्थोपस्थापकतया निर्विशेपे वृत्तिमात्रायोगात्, पदविधयावाक्यविध-याचोपनिपन्मानं न निर्विशेपे संसर्गागोचरत्वाच्चेतिचेन्न; मुख्यगौण्यसंभवेऽपि लक्ष-णायाः सम्भवात्।

अथ सरलायां ब्रह्मनिर्गुणत्वे प्रमाणोपपत्तिः।

शङ्कते—नन्विति। निर्विशेपमें प्रमाण क्या है, इतिचेत्—ऐसा यदि कहो तो यह प्रमाण-प्रश्न निर्विशेपकी स्फूर्तिकेलिए है, या निर्विशेपमें रहनेवाला जो अज्ञान उसकी निवृत्तिकेलिए

है=प्रमाणकी अपेक्षा क्या निर्विशेपके स्फुरणार्थ है-या अज्ञाननिवृत्त्यर्थ। यदि प्रथम पक्ष है तब तो निर्विशेपको स्वप्रकाशता होनेसे प्रमाणका वैयर्थ्य है। विप्रतिपन्ने=शब्दनित्यत्वादिमें विवादग्रस्त जो पुरुप है उसके प्रति शब्दनित्यत्वादिकी स्वतः सिद्धिको कहनेके लिए शक्यत्व होनेसे अतिप्रसङ्गः=शब्दनित्यत्वादिकी स्फूर्तिके लिए-प्रमाणके अनभिधानका प्रसङ्ग है= स्वप्रकाश कह देनेसे ही यदि विचार समाप्त हो जाता है तब तो प्रत्येक वादी स्वाभिप्रेत अर्थकी प्रतिज्ञाकर प्रमाण पूछनेपर कह सकता है कि, यह प्रतिज्ञात अर्थ स्वप्रकाश है, इसमें प्रमाणोपन्यास व्यर्थ है; नच=यह अति प्रसङ्ग नहीं है, क्यों ? अभावव्यावृत्तिबोधकप्रमाण-सत्त्वासत्त्वाभ्यां विशेपात्=अभावपदसे परप्रकाश्यत्वात्यन्ताभावका ग्रहण है, व्यावृत्तिपदसे परप्रकाश्यभेदका ग्रहण है,-अभावश्च व्यावृत्तिश्च इति अभावव्यावृत्ती, तयोः बोधकञ्च तत्प्रमाणञ्च इति अभावव्यावृत्तिबोधकप्रमाणम्, तस्य सत्त्वासत्त्वाभ्यां उक्तविधअभावबोधकप्रमाणका सत्त्व ब्रह्ममें है और उक्तविध व्यावृत्तिबोधक प्रमाणका सत्त्व निर्विशेपब्रह्ममें है, और शब्द-नित्यत्वादिमें उक्तविध अभावबोधक या उक्तविधभेदबोधक प्रमाणका सद्भाव नहीं है=शब्द-नित्यत्वादौ परप्रकाश्यत्वात्यन्ताभावः, परप्रकाश्यभेदः, इस अर्थका ग्राहक कोई प्रमाण नहीं है और निर्विशेपमें एवंविधअर्थग्राहक प्रमाण है यह स्वप्रकाशवादमें सम्यक्तया दिखलाया जायगा। द्वितीये=अज्ञाननिवृत्तिके लिए प्रमाणकी अपेक्षा है इस द्वितीय पक्षमें उपनिपदोंको ही प्रमाणत्व होनेसे=उपनिपज्जन्यज्ञानसे अज्ञानका ध्वंस हो जाता है। अतएव=उपनिपदोंको ही प्रमाणत्व होनेसे, प्रत्यक्षप्रमाण है, या अनुमानप्रमाण है, इत्यादि विकल्पका अवकाश नहीं। शङ्कते नन्विति। तत्र=निर्विशेपमें उपनिपत् प्रमाण कैसे हैं ? जाति गुण क्रिया सम्बन्धरूप जो शब्दप्रवृत्तिके निमित्त उन्होंके अभावसे मुख्यवृत्ति=शक्तिवृत्तिके अयोगसे, और ब्रह्ममें मुख्यवृत्तिसे शब्दप्रवृत्तिके अस्वीकारसेभी मुख्यवृत्तिसे निर्विशेपमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती है, और आरोपितनिमित्तक जो विपयकी प्रतीति उस प्रतीतिके निर्विशेपमें प्रामाण्यके अयोगसे=कभी ब्रह्ममें निमित्तका आरोपकर तद्धेतुक शब्दकी प्रवृत्ति कहो तो तादृशनिमित्तक शब्दजन्यज्ञानका निर्विशेपमें प्रामाण्य नहीं हो सकता है गौण्याश्च=शब्दकी गौणीवृत्तिको तो मुख्यार्थयुक्ततयैव=मुख्यार्थवृत्ति जो गुण तादृशगुणसजातीयगुणवत्त्वेन ही अर्थका उपस्थापकत्व होनेसे, और लक्षणाको शक्यार्थसम्बन्धितावच्छेदक जो रूप तादृशरूपवत्त्वेन ही अर्थोपस्थापकत्व होनेसे=गङ्गापदका शक्यार्थ है,-गङ्गाप्रवाह, उसका संयोग तीरके साथ है, सम्बन्धि हुआ तीर स्वसम्बन्धिता रही तीरमें सम्बन्धितावच्छेदक हुआ तीरत्व तादृश तीरत्व-रूपसे अर्थोपस्थापकत्व है लक्षणावृत्तिको। और पदको अन्वयितावच्छेदकरूपसे स्वार्थोपस्थापकता होनेसे=नीलो घटः। यहाँपर नीलपदको अन्वयितावच्छेदकरूप जो नीलत्व तादृशनीलत्वरूपसे नीलरूप स्वार्थोपस्थापकता होनेसे निर्विशेपमें वृत्तिमात्रके अयोगसे तैसे संसर्गागोचरत्व होनेसे= उपनिपज्जन्यनिर्विशेपविपयक ज्ञानमें आपकी रीतिसे संसर्गागोचरत्व होनेसे, उपनिपत् पदविधया या वाक्यविधया निर्विशेपमें प्रमाण नहीं है। इति चेन्न; क्यों ? मुख्यवृत्ति और गौणी-

वृत्ति इन दोनोंका असम्भव होनेपरभी=इन दोनों वृत्तिओंसे उपनिषदोंको ब्रह्मबोधकत्वका असम्भव होनेपरभी लक्षणाका सम्भव होनेसे=लक्षणावृत्तिसे बोधकत्वका सम्भव होनेसे।

नच लक्षकपदे शक्यार्थसम्बन्धित्वावच्छेदकरूपवत्तया पदमात्रेऽन्वयितावच्छेदकरूपवत्तया च उपस्थितिनियमः, संसर्गबोधकवाक्यस्थपदानामेव तथात्वात्। नच–संसर्गागोचरत्वे प्रमाणवाक्यत्वानुपपत्तिः; असन्दिग्धाविपर्यस्तबोधकतया निर्विकल्पकत्वेऽपि प्रामाण्यस्याकाङ्क्षादिमत्तया वाक्यत्वस्यचोपपत्तेर्वृत्तिमन्तरेणापि सुप्तोत्थापकवाक्यस्येव वेदान्तवाक्यस्य निर्विशेषे प्रामाण्यस्य वार्तिककृद्भिरुपपादितत्वाच, तथाहि–अगृहीत्वैव सम्बन्धमभिधानाभिधेययोः। हित्वा निद्रां प्रबुध्यन्ते सुषुप्ते बोधिताः परैः॥ जाग्रद्वन्नहि सम्बन्धं सुषुप्ते वेत्ति कश्चन॥ इत्यादिना ग्रन्थेन विनापि सम्बन्धं वाक्यस्य प्रामाण्यमुपपादितम्। लक्षणापक्षेऽपि तात्पर्यविशेषाग्रहेणैवातिप्रसङ्गभङ्गो वाच्यः। शक्यसम्बन्धस्यानेकत्र सम्भवात् तात्पर्यविशेषग्रहश्च पुरुषविशेषस्य भवति न सर्वस्य पुरुषगतविशेषः अन्तःकरणशुद्धिरूपः प्रतिबन्धाभावः। अन्तःकरणाशुद्धिरूपस्य पापस्य च प्रतिबन्धकत्वं 'ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः' इत्यादिशास्त्रसिद्धम्। तथाच प्रतिबन्धक्षये विनापि सम्बन्धं शब्दादात्मसाक्षात्कार इति निरवद्यम्।

लक्षकपदमें शक्यार्थसम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्त्वेन पदार्थोपस्थितिका नियम है और पदमात्रमें अन्वयितावच्छेदकरूपवत्त्वेन पदार्थोपस्थितिका नियम है; नच=ऐसा नियम नहीं है, क्यों? संसर्गबोधक जो वाक्य तादृशवाक्यघटक पदोंको तथात्वात्=उक्तविध नियमसे आक्रान्तत्व होनेसे। संसर्गका अगोचरत्व होनेपर=एतद्वाक्यजन्यज्ञानमें संसर्गका अगोचरत्व होनेपर वाक्यत्वकी अनुपपत्ति है, नच=वाक्यत्वकी अनुपपत्ति नहीं है, क्यों? असन्दिग्ध=मानान्तरसे अनिश्चित और अविपर्यस्त एवम्भूत जो अर्थ तादृशअर्थबोधकत्व होनेसे निर्विकल्पकत्वेऽपि=एतद्वाक्यजन्यज्ञानको निर्विकल्पकत्व होनेपरभी प्रामाण्यकी उपपत्तिसे और आकाङ्क्षादिपदत्वेन तादृशज्ञानजनकवाक्यमें वाक्यत्वकी उपपत्तिसे और वृत्तिके विनाभी सुप्तोत्थापकवाक्यकी तरह वेदान्तवाक्योंके निर्विशेषमें प्रामाण्यको वार्तिककारसे उपपादितत्व होनेसेभी, तथाहि=वार्तिककारका लेख दिखलाया जाता है=अभिधानाभिधेययोः=संज्ञासंज्ञिके सम्बन्धको न ग्रहण करकेही सुषुप्तावस्थामें अन्योंसे बोधित हुए लोग निद्राको छोडकर प्रबुद्ध होते हैं। सुषुप्तिमें जाग्रत् अवस्थाकी तरह कोइभी पदपदार्थके सम्बन्धको नहीं जानता है। इत्यादि ग्रन्थसे सम्बन्धके वृत्तिज्ञान और तात्पर्यज्ञानके विनाही वाक्यका प्रामाण्य उपपादित हुआ है। लक्षणापक्षमेंभी तात्पर्यविशेषके निश्चयसे ही अतिप्रसङ्गका भङ्ग वाच्य है, शक्यसम्बन्धका अनेकत्र सम्भव होनेसे और तात्पर्य्यविशेषका निश्चय तो पुरुषविशेषको होता है सर्वको नहीं। पुरुषगत विशेष है अन्तःकरणकी अशुद्धिरूप प्रतिबन्धका

अभाव। और अन्तःकरणकी अशुद्धिरूप जो पाप है उसको प्रतिबन्धकत्व 'पापकर्मके क्षयसे पुरुषोंको ज्ञान उत्पन्न होता है इत्यादि शास्त्रसे सिद्ध है। फलतः अन्तःकरणकी अशुद्धिरूप जो प्रतिबन्ध उस प्रतिबन्धका क्षय होनेपर सम्बन्धके विनाही शब्दसे आत्मसाक्षात्कार उत्पन्न होता है, यह कथन निर्दोष है।

विस्तृतमिदमस्माभिः गीतानिबन्धने। नच—अनिर्धारितैककोटिप्रकारकनिश्चयं प्रत्येव धर्मिज्ञानाधीनविचारस्य जनकत्वात् कथं विचारसध्रीचीनवेदान्तवाक्यजन्यज्ञानस्य निष्प्रकारकत्वमिति—वाच्यम् संशयनिवृत्तिक्षमज्ञानस्यैव विचारफलत्वात्। तस्याश्च विरोधिकोटिप्रतिक्षेपकोपलक्षितधर्मिज्ञानादप्युपपत्तेर्न तदर्थं सप्रकारकत्वनियमः। नच गौरवम्, प्रमाणवतो गौरवस्य न्याय्यत्वात्। नच निर्विशेषविषयकस्य ज्ञानस्य निष्प्रकारकत्वे निर्विशेषत्वासिद्ध्या तत्सिद्ध्यर्थं विशेषाभावरूपविशेषविषयत्वस्यावश्यकत्वमिति वाच्यम्; विशेषाभावस्य स्वरूपतया तत्स्फूर्त्तौ प्रमाणानपेक्षत्वात्। अखण्डार्थसिद्ध्यनुकूलपृथग्जातपदार्थोपस्थितिविषयत्वमात्रेण विशिष्टव्यवहारोपपत्तेः। तस्मात्सगुणत्वे साधकाभावात् बाधकसद्भावाच्च निर्गुणत्वे तदभावात् निर्गुणमेव ब्रह्म इति सिद्धम्।

इति अद्वैतसिद्धौ ब्रह्मणो निर्गुणत्वे प्रमाणोपपत्तिः।

गीताकी टीकामें यह निरूपण हमने विस्तृत किया है। अनिर्धारित जो एक कोटि तादृश कोटिप्रकारक जो निश्चय तादृशनिश्चयके प्रति ही धर्मिज्ञानके अधीन जो विचार तादृश विचारको जनकत्व होनेसे विचारसे सध्रीचीन=सहकृत जो वेदान्तवाक्य तादृशवेदान्तवाक्यजन्यज्ञानको निष्प्रकारकत्व कैसे है, इति नच वाच्यम्, क्यों? संशयकी निवृत्तमें क्षम=समर्थ एवम्भूत जो ज्ञान तादृश ज्ञानको ही विचारका फलत्व होनेसे। और तस्याश्च=संशयकी निवृत्तिको तो विरोधि कोटिका जो प्रतिक्षेप=निरसन तादृश प्रतिक्षेपसे उपलक्षित जो धर्मि तादृशधर्मि-विषयक जो ज्ञान उस ज्ञानसेभी उपपन्न होनेसे; तदर्थम्=संशयनिवृत्त्यर्थ सप्रकारकत्वका नियम नहीं है। गौरवम्=सप्रकारक और निष्प्रकारक इन दोनों ज्ञानोंको संशयनिवृत्तिके प्रति हेतुता सिद्ध ही है आपने निष्प्रकारकको भी हेतु मांन लिया अतः गौरव है, नच= ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों? प्रमाणवाले गौरवको न्यायानपेत होनेसे=निगदित रीतिसे श्रुतिके अविद्यानिवर्त्तकत्वको और निर्गुणबोधकत्वको सिद्धत्व होनेसे आविद्यक संशयादिका निवर्त्तकत्व प्रामाणिक है। शङ्कते नचेति। निर्विशेषविषयक ज्ञानको निष्प्रकारकत्व होनेपरभी निर्विशेषत्वकी असिद्धिसे तत्सिद्ध्यर्थम्=निर्विशेषत्वकी सिद्धिके लिए विशेषाभावरूप जो विशेष तादृशविशेषविषयत्वको उस ज्ञानमें आवश्यकत्व है इति न च वाच्यम्; क्यों? विशेषाभावको स्वरूपता होनेसे तत्स्फूर्त्तौ=विशेषाभावकी स्फूर्तिके निमित्त प्रमाणकी अपेक्षा न होनेसे। अखण्डार्थसिद्ध्यनुकूल जो पृथक् जात पदार्थोपस्थिति तादृशपदार्थोपस्थितिविषयत्वमात्रसे विशिष्टव्यवहारकी उपपत्तिसे। ततः ब्रह्मके सगुणत्वमें साधकके अभावसे और बाधकके सद्भावसे

और निर्गुणत्वमें तदभवात्=बाधकके अभावसे और साधकके सद्भावसे निर्गुण ही ब्रह्म है, यह सिद्ध हुआ।

इति सरलायां ब्रह्मनिर्गुणत्वे प्रमाणोपपत्तिः।

अथ ब्रह्मणो निराकारत्वोपपत्तिः।

एवं निराकारमपि ननु—आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं 'ऋतं सत्यं परंब्रह्म' पुरुषं कृष्णपिङ्गलम्। विश्वतश्चक्षुः सहस्रशीर्षा इत्यादिश्रुतिभिः 'पश्य मे पार्थ रूपाणि' 'सर्वतः पाणिपादं तत्' इत्यादिस्मृतिभिः ब्रह्म सविग्रहम्, स्रष्टृत्वात् पालयितृत्वादुपदेष्टृत्वादित्याद्यनुमानैश्च विग्रहसिद्धिरितिचेन्न; आदित्यवर्णमित्यस्याविद्याविलक्षणस्वप्रकाशस्वरूपप्रतिपादनपरतया उपास्यपरतया चोपपत्तेः। नच तमसः परत्वोक्त्योपासनापरत्वानुपपत्तिः, उपास्यविग्रहोपलक्षितस्य तमसः परत्वोक्तेः नतु रूपविशिष्टस्य। नच—एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यत इति—अत्र वर्त्तमानत्वेनापरोक्षज्ञानविषयत्वोक्तेरनारोप्यत्वं, नहि योषितोऽग्नित्वं दृश्यत इत्युच्यत इति—वाच्यम् प्रतीकोपासने उपास्यसाक्षात्कारनियमाभावेऽपि सगुणोपासने उपास्यसाक्षात्कारस्य तस्य स्यादद्धेति श्रुतिसिद्धस्य नियतत्वेन तस्यैव दर्शनशब्देनाभिधानात्, विश्वतश्चक्षुरित्यादिश्रुतिस्मृतीनां सर्वात्मकतया सर्वान्तर्यामितया च नियम्यजीवशरीरचक्षुःपाणिशिरःप्रभृत्यनुवादित्वोपपत्तेः सर्वतः पाणिपादत्वादेस्तु असम्भवात् त्वपाप्येवमेव वक्तव्यत्वात्।

अथ सरलायां ब्रह्मणो निराकारत्वोपपत्तिः।

इसी रीतिसे निराकारभी ब्रह्म है। शङ्कते नन्विति। 'आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् (श्वेता०३।८) यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णम् (मु० ३।१।३) ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् (महाना० १२।१) विश्वतश्चक्षुः (श्वेत० ३।३) सहस्रशीर्षा (य० सं० ३१।१) इत्यादि श्रुतिओंसे; 'पश्य मे पार्थ रूपाणि (गी०११।५) सर्वतः पाणिपादं तत् (गी०१३।१३) इत्यादि स्मृतिओंसे; ब्रह्म विग्रहके सहित है स्रष्टृत्व होनेसे, पालयितृत्व होनेसे, उपदेष्टृत्व होनेसे इत्याद्यनुमानोंसे विग्रहकी सिद्धि है; इति चेन्न; क्यों? आदित्यवर्णम् इत्यस्य=इस वाक्यको अविद्याविलक्षण स्वप्रकाश जो स्वरूप तादृशस्वरूपपरत्वेन और उपास्यपरत्वेन उपपन्न होनेसे। तमसे परत्वकी उक्ति होनेसे इस वाक्यको उपासनापरत्वकी अनुपपत्ति है नच=अनुपपत्ति नहीं है, क्यों? उपास्य जो करादिमान् विग्रह तदुपलक्षितके तमसः परत्वकी उक्तिसे रूपविशिष्टके तमसः परत्वकी उक्ति नहीं है 'एषोऽन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते' (छा० १।६।६) यहाँपर वर्त्तमानत्वेन अपरोक्षज्ञानविषयत्वकी उक्ति होनेसे विग्रहको आरोप्यत्व नहीं है, योषित्का अग्नित्व नहीं देखा जाता है=उक्तवाक्यमें सूर्य्यरूप अधिकरणमें हिरण्मयपुरुषका दर्शन बतलाया गया है यदि हिरण्मयविग्रह कल्पित होता तो उसका अपरोक्षरूप दर्शन नहीं

बतलाया जाता जैसे कि छान्दोग्यकी रीतिसे योपितमें अग्नित्वका आरोप होता है एतावता योपित्की अग्निरूपताका अपरोक्षात्मक दर्शन नहीं होता है, इति नच वाच्यम् क्यों? प्रतीकोपासने=नामादिमें ब्रह्मादिकी उपासनामें उपास्यके साक्षात्कारका नियम न होनेपरभी सगुणोपासनामें तस्य स्यादद्धा (छा० ३।१४।४) इस श्रुतिसिद्धि उपास्यके साक्षात्कारको नियतत्व होनेसे तस्यैव=उपास्यसाक्षात्कारकाही दर्शनशब्दसे अभिधान होनेसे और विश्वतश्चक्षुः इत्यादिश्रुतिस्मृतिओंको सर्वात्मकत्वेन या सर्वान्तर्यामित्वेन नियम्य जो जीवके शरीर-चक्षुःपाणिशिरःप्रभृति हैं तदनुवादित्वेन उपपन्न होनेसे सर्वतरफसे पाणिपादत्वादिके असम्भवसे तुमसेभी इसी रीतिसे वक्तव्यत्व होनेसे।

अन्यथा देशविशेषावच्छेदेन परममुक्तिप्रतिपादनं गम्यत्वप्रवेष्टृत्वाद्युपपादनं च त्वदीयमसङ्गतं स्यात्। अनुमानेऽपि एवमेव सिद्धसाधनम्। 'विकरणत्वान्नेतिचेत्तदुक्त' मिति सूत्रे अविद्यापरिणामस्य करणस्थानीयस्याङ्गीकारादविरोधात्। यत्तु—तदेवानुप्राविशत् ब्रह्मविदाप्नोतिपरमित्यादिश्रुतिसिद्धं सर्वगतस्य ब्रह्मणः प्रवेष्टृत्वं गम्यत्वञ्च विग्रहं विना न युज्यते—इति तन्न, स्वसृष्टकार्याभिव्यक्तत्वस्यैवानुप्रवेशशब्दार्थतया व्यापकस्य मुख्यप्रवेशासम्भवात्, स्वतः प्राप्तस्यापि अविद्यातिरोधाननिवृत्त्यपेक्षया प्राप्यत्वोपचारेण विग्रहानाक्षेपकत्वात्। यत्तु 'तमेवं विद्वानमृत इह भवति' 'यदा पश्य' इत्यादिश्रुतौ सर्वनाम्ना सविग्रहस्यैव परामर्शात् तज्ज्ञानस्यैव मोचकत्वे सविग्रहत्वमिति, तन्न, सगुणविद्यायाः क्रममुक्त्यर्थत्वेनान्यथासिद्धेः साक्षान्मुक्तिजनकत्वपक्षे तदुपलक्षितात्मज्ञानस्यैव मोचकत्वात्।

अन्यथा त्वदीयदेशविशेषावच्छेदेन परम मुक्तिका प्रतिपादन और गम्यत्व प्रवेष्टृत्वादिका उपपादन असङ्गत हो जायगा=जब कि, दशों दिशोंमें हाथपैरवाला ईश्वरका कुडङ्गा स्वरूप है तब उसका लोक विशेष कैसे बन सकता है इत्यादि; अनुमानमें भी इसी रीतिसे सिद्धसाधन है। विकरणत्वान्नेति चेत्तदुक्तम् (वे० २।१।३१) इस सूत्रमें करणस्थानीय अविद्यापरिणामको अङ्गीकार होनेसे अविरोधसे=ईश्वरमें चक्षुरादिरूप करणोंका अभाव होनेपरभी चक्षुरादिकार्यकारित्वेन चक्षुरादिस्थानीय अविद्यापरिणामरूप ईक्षणादि स्वीकार्य हैं पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः (श्वेत० ३।१९) इस श्रुतिसे इस अर्थका उक्त सूत्रमें स्वीकार है तदेवानुप्राविशत् (तै० २।६।१) ब्रह्मविदाप्नोति परम् (तै० २।१।१) इत्यादि श्रुतिसिद्ध जो सर्वगत ब्रह्मका प्रवेशकर्तृत्व और गमनकर्तृत्व वह विग्रहके विना युक्त नहीं होता है अतः विग्रह मानना ठीक है, इति यत् तत् तु न, क्यों? स्वसे सृष्ट जो कार्य तादृशकार्यमें अभिव्यक्तत्वको ही अनुप्रवेशशब्दका अर्थत्व होनेसे व्यापकके मुख्य प्रवेशके असम्भवसे; और स्वतः प्राप्तस्यापि=गमनकर्तृस्वरूपभूतत्वप्रयुक्त स्वतः प्राप्तकेभी अविद्यारूप तिरोधानकी निवृत्तिकी अपेक्षासे प्राप्यत्वके उपचारसे प्राप्यत्वको विग्रहानपेक्षत्व होनेसे=यदि वस्तुतः गमनकर्मत्वरूप प्राप्यत्व होता तो विग्रहकी अपेक्षा

होती परन्तु ब्रह्म तो स्वचित्का स्वरूपही है और अपना अपनेसे स्वरूप प्राप्य हो नहीं सकता, अतः गम्यत्वादिका व्यवहार आविद्यक है, उसके लिए विग्रहकी कल्पना नहीं की जा सकती है अथवा अविद्याकालमें विग्रह उपासनाके लिए कल्पित है तदुपलक्षितत्वेन उसका व्यवहार आगेभी किया जाता है परन्तु इन व्यवहारकल्पनाओंसे निर्विशेषमें किसी भी प्रकारकी अधिकता या न्यूनता नहीं होती है प्रमाताको मार्गपर लानेके लिए ये सर्व प्रकार हैं। तमेव विद्वान् (नृ० पू० ता० १।६) उस आत्माको इस रीतिसे जानता हुआ इस लोकमें अमृत हो जाता है यदा पश्यः (मु० ३।१।३) इत्यादि श्रुतिमें सर्वनामसे सविग्रहका ही परामर्श होनेसे तज्ज्ञानस्यैव=सविग्रहविषयक ज्ञानकोही मोचकत्व होनेपर ब्रह्ममें सविग्रहत्व है इति यत् तत् तु न; क्यों? सगुणविद्याको=सगुणविषयक ज्ञानको क्रममुक्त्यर्थता होनेसे अन्यथासिद्धिसे और साक्षात् मुक्तिजनकत्वपक्षमें विग्रहोपलक्षित जो आत्मा तादृश आत्मविषयकज्ञानकोही मोक्षका जनकत्व होनेसे।

अत एव—'देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः। इत्यादिस्मृतिरपि व्याख्याता। किञ्च विग्रहः किं भौतिकः, अभौतिको वा,। अभौतिकेऽपि मायिकः, अमायिको वा। अमायिकोऽपि ब्रह्मभिन्नः अभिन्नो वा,। भौतिकमायिकावपि स्वकर्मार्जितौ परकर्मार्जितौ वा आद्ये संसारित्वापत्तिः द्वितीये इष्टापत्तिः। ब्रह्मभिन्नत्वे तवापसिद्धान्तः नेति नेतीति श्रुतिविरोधः, अपाणिपाद इत्यादिश्रुतिविरोधश्च। अभौतिकामायिकब्रह्माभिन्नदेहाङ्गीकारे उक्तश्रुतिविरोधः, चार्वाकमतप्रवेशश्च, प्रमाणाभावश्च। नच 'नाभ्या आसीदन्तरिक्षमिति भूतकारणत्वोक्त्या अभौतिकत्वसिद्धिः। 'अग्निर्मूर्द्धे'त्यादि श्रुतिपर्य्यालोचनयान्तरिक्षादीनां नाभित्वादिपरिकल्पनया विराड्देहप्रतिपादकतया शरीरस्य भूतकारणत्वाप्रतिपादकत्वात् तमसः परस्तादित्यादेश्च विराड्देहोपलक्षितब्रह्मपरतया विग्रहस्य तमसः परत्वाप्रतिपादकत्वात्। नच 'एको नारायण आसीत् न ब्रह्मा नच शङ्करः इति श्रुत्या महाप्रलये नारायणस्थित्युक्त्या नित्यविग्रहसिद्धिः, नारायणशब्दस्य सदेव सौम्येदमग्र आसीत् इतिश्रुत्यनुसारेण मायोपहितब्रह्मपरत्वेन विग्रहपरत्वाभावात्।

अतएव=विग्रहोपलक्षित आत्मज्ञानको मोचकत्व होनेसे ही 'देवताभी इस रूपके दर्शनकी नित्य आकाङ्क्षावाले हैं (गी० ११।५२) यह स्मृतिभी व्याख्यात हुई। किञ्च= औरभी विचारणीय है; ब्रह्मका विग्रह क्या भौतिक=भूतकार्य्य है, या अभौतिक है। और अभौतिकभी मायिक है या अमायिक। और अमायिकभी ब्रह्मसे भिन्न है या ब्रह्मसे अभिन्न; और भौतिक तथा मायिक ये दोनों स्वकर्मार्जित हैं या परकर्मार्जित। आद्ये=स्वकर्मार्जित हैं इस पक्षको अङ्गीकार करनेपर ब्रह्मको संसारित्वकी आपत्ति है, द्वितीये=परकर्मार्जित हैं इस पक्षका अङ्गीकार होनेपर इष्टकी आपत्ति है। ब्रह्मभिन्नत्वे=विग्रहको ब्रह्मभिन्नत्व होनेपर तुम्हारे सिद्धान्तका भङ्ग है क्योंकि तुम्हारे मतमें विग्रहका ब्रह्ममें भेद नहीं है। और ब्रह्म-

भिन्नविग्रहका सत्यस्वरूप अमायिकत्व होनेपर नेति नेति (बृ० २।३।६) इस श्रुतिका विरोध है और अपाणिपादः (श्वे० ३।१९) इत्यादि श्रुतिकाभी विरोध है और अभौतिक तथा अमायिक ब्रह्मसे अभिन्न देहका अङ्गीकार होनेपरभी उक्त श्रुतिओंका विरोध है। और जीव तथा जीवका देह इन दोनोंकेभी अभेदकी आपत्तिसे देहात्मावादमें पर्य्यवसान होनेसे ही चार्वाकके मतमें प्रवेशभी है। प्रमाणाभावश्च=और अभौतिकत्वादिमें प्रमाणकाभी अभाव है। नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्-(य० । ३१ । १३) इस रीतिसे विग्रहको भूतकारणत्वकी उक्तिसे ब्रह्मविग्रहके अभौतिकत्वकी सिद्धि है नच=सिद्धि नहीं है अग्निर्मूर्द्धा (य० सं० ३ । १२; १३ । १४; १५ । २०; मु० २ । १ । ४ ।) इत्यादि श्रुतिओंके पर्य्यालोचनसे अन्तरिक्षादिकोंके नाभित्वादिकी परिकल्पनासे विराड्देहकी प्रतिपादकता होनेसे शरीरके भूतकारणत्वका प्रतिपादकत्व न होनेसे। एको नारायण आसीत न ब्रह्मा नच शङ्करः (महा० ना० १) इस श्रुतिसे महाप्रलयमें नारायणकी स्थितिकी उक्तिसे नित्यविग्रहकी सिद्धि है,-नच=नहीं है, क्यों ? नारायणशब्दको सदेव सौम्य इदमग्र आसीत् (छा० ६ । २।१) इस श्रुतिके अनुसार मायोपहितब्रह्मपरत्व होनेसे विग्रहपरत्वके अभावसे।

न चैतावता चेतनान्तरसाधारण्यम्; अखण्डमायोपहितस्यैव व्यावर्त्तकत्वात्। न च नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामितिविग्रहनित्यत्वाभावे विशेषोक्तिविरोधः, विग्रहानङ्गीकारेऽपि स्वरूपचैतन्यमादायोपपत्तेः। नापि पुराकल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतमित्यादौ महाप्रलये देहस्य साक्षात्स्थित्युक्त्या नित्यविग्रहसिद्धिः सर्वविकारमूलकारणाविद्यायाः संस्कारात्मनावस्थानस्य उदरीकरणशब्दार्थत्वात्। नच मुख्यार्थत्यागः, त्वयाप्यस्यार्थस्यैव वक्तव्यत्वात्, अन्यथा सकलस्य ब्रह्माण्डस्य तदनुप्रवेशमात्रेण प्रलयासिद्धेः। यत्तु सर्वे नित्याः शाश्वताश्च देहास्तस्य महात्मनः। परमानन्दसन्दोहा ज्ञानमात्राश्च सर्वदा। इत्यादौ साक्षान्नित्यत्वोक्तिविशेषः-इति, तन्न, प्रलयपर्य्यन्तस्थायिदुःखभोगानायतनज्ञानमात्रप्रधानदेहपरतया त्वद्विवक्षितपरत्वाभावात्। अतएव जडस्ततो भिन्नश्च।

ऐसा होनेपर चेतनान्तरके साथ ब्रह्मका साधारण्य है=ब्रह्मका विग्रह नित्य मानें और जीवोंका तो अनित्य है ही तभी नित्यविग्रहवत्त्वेन और अनित्यविग्रहवत्त्वेन असाधारण्य रह सकता है, समानविग्रहवत्त्व होनेपर साधारण्य है, नच=साधारण्य नहीं है, अखण्डमायोपहितत्वको ही चेतनान्तरोंसे व्यावर्त्तकत्व होनेसे=जीवोंमें मायाका प्रदेशरूप जो अविद्या तादृश अविद्योपहितत्व है, और ब्रह्ममें उक्तविध अखण्डमायोपहितत्व है, अथवा मायाश्रित्व है, ये धर्म व्यावर्त्तक हैं प्रलयकालमेंभी और सृष्टिकालमेंभी। नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम् (कठ० । ५ । १३) विग्रहका नित्यत्व न होनेपर इस विशेषोक्तिका विरोध है, नच=विरोध-नहीं है, क्यों ? विग्रहका अङ्गीकार न होनेपरभी स्वरूप चैतन्यको लेकर उपपत्तेः=कल्पमात्रस्थायित्वरूप जो आकाशादिमें नित्यत्व उसकी अपेक्षा जो उत्कृष्ट नित्यत्वादि तादृश

नित्यत्वादिके बोधकत्वकी उपपत्तिसे। प्रथमकल्पकी समाप्ति होनेपर स्वकृतविकृत=कार्यको उदरीकृत्य इत्यादिमें महाप्रलयमें उदरशब्दसे देहकी साक्षात् स्थितिकी उक्तिसे नित्यविग्रहकी सिद्धि है; इत्यपि न; क्यों ? सर्वविकारसंस्कार–विशिष्टात्मना अवस्थानको उदरीकरण-शब्दका अर्थत्व होनेसे, उक्त वाक्यका अर्थ यह हुआकि प्रलयकालमें स्वकृतविकृतको माया-रूपस्वोदरस्थीकृत्य। मुख्यार्थत्यागः=ऐसा करनेपर उदर शब्दके मुख्यार्थका त्याग है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? तुमसेभी एतत्कल्पअर्थको ही वक्तव्यत्व होनेसे, अन्यथा सकलब्रह्माण्डके तदनुप्रवेश=उदरप्रवेशमात्रसे कल्प्यकी असिद्धिसे। तस्य=उस महात्माके सर्व देह नित्य शाश्वत हैं। सर्वकालमें उसके देह परमानन्दसन्दोह और ज्ञानमात्र हैं। इत्यादिमें जो विग्रहके साक्षान्नित्यत्वकी उक्ति है उसके साथ विरोध है, इति यत् तत् तु न; क्यों ? प्रलयपर्य्यन्तरहनेवाले और दुःखसाक्षात्कारके अनायतन और ज्ञानमात्रप्रधान=आवरण-शून्य एवम्भूत जो देह तादृश देहपरत्व होनेसे उक्तवाक्यको त्वद्विवक्षितपरत्वके अभावसे=रामादिके शरीरमें जो आवरणका कार्य रोदनादि देखा गया है वह ब्राह्मणके शापका अवैयर्थ्य द्योतन करनेके लिए है। अतएव=उक्तविध देहपरत्व होनेसे ही ब्रह्मका विग्रह जड है और ब्रह्मसे भिन्न है।

'आनन्दरूपममृतं यद्विभाति' आप्रणखात् सर्व एवानन्दः मोदो दक्षिणः पक्षः "यदात्मको भगवान् तदात्मिका व्यक्तिः किमात्मको भगवान् ज्ञानात्मक ऐश्वर्यात्मक" इत्यादिश्रुतेर्भेदाभावेऽपि अहिकुण्डलन्यायेन विशेषबलाद्विग्रहत्वोपपत्तिरिति वाच्यम्, आत्मनो ज्ञानानन्दरूपत्वप्रतिपादनपरत्वेन विग्रहाप्रतिपादकत्वात्। 'विचित्रशक्तिः पुरुषः पुराणः' इत्यादिवाक्यस्य आत्मनि चैवं विचित्राश्चहीति सूत्रस्य च मायाशक्तिवैचित्र्यप्रतिपादकत्वेनात्मशक्ति अप्रतिपादकत्वात् आप्रणखादित्यादेश्च लीलाविग्रहावच्छेदेन दुःखाद्यभोक्तृतयोपपत्तेः। मोदो दक्षिण इत्यादेरानन्दमयकोशप्रतिपादकतया ब्रह्मपरत्वाभावात्। नहि श्रुत्युक्तत्वमात्रेण ब्रह्मणो विग्रहरूपता। ब्रह्मैवेदं सर्वं पुरुषमेवेदं सर्वमित्यादिश्रुत्या प्रपञ्चरूपतापि ब्रह्मण्यापद्येत। स्वरूपानन्दएव नित्यत्ववदपराधीनत्ववच्च विग्रहत्वकल्पनस्य परिभाषामात्रत्वात्। मन्मतेऽपि ब्रह्मातिरिक्तरूपब्रह्मसत्तासमानसत्ताकत्वाभिमतस्य ब्रह्मणि निषेधाङ्गीकारात्।

आनन्दरूपममृतं यद्विभाति (मु० २।२।७) आप्रणखात् सर्व एवानन्दः 'सुवर्णः' (छा० १।६।६) मोदो दक्षिणः पक्षः (तै० २।५।१) यदात्मको भगवान् तदात्मिका व्यक्तिः किमात्मको भगवान् ज्ञानात्मक ऐश्वर्यात्मकः इत्यादिश्रुतिओंसे भेदका अभाव होनेपर=ब्रह्म विग्रहमें भेदका अभाव होनेपरभी अहिकुण्डलन्यायसे विशेषबलसे ब्रह्ममें विग्रहत्वकी उपपत्ति है=वलयाकार अहिका कुण्डलके साथ अभेद होनेपरभी जैसे अहि तथा कुण्डल इन दोनोंमें भेदस्थानीय विशेषका सद्भाव होनेसे 'अहिः कुण्डली' इत्याकारक व्यवहार होता है वैसे ब्रह्म

और ब्रह्मका शरीर इन दोनोंमें विशेषके स्वीकारसे 'ब्रह्म शरीरि' ऐसा व्यवहार होता है, इति नच वाच्यम् क्यों ? उक्तवाक्योंको आत्मनिष्ठ जो ज्ञानानन्दरूपत्व तादृश ज्ञानानन्दरूपत्वप्रतिपादनपरत्व होनेसे विग्रहका अप्रतिपादकत्व होनेसे, और 'विचित्रशक्तिः पुरुषः पुराणः' इत्यादिवाक्यको और आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि (वे० २।१।२८) इस सूत्रको मायाकी शक्तिओंका प्रतिपादकत्व होनेसे चेतनकी शक्तिओंके अप्रतिपादकत्वसे। और आप्रणखात् (छा० १।६।६) इत्यादिको तो लीलयागृहीतरामादिविग्रहावच्छेदेन दुःखादिअभोक्तृत्वेनभी उपपन्न होनेसे=लीलागृहीतरामादिविग्रहावच्छेदेन ब्रह्मको दुःखादिका भोक्तृत्व नहीं है, अतः उसे आप्रणखात् सर्व एवानन्दः कहा है। मोदो दक्षिणः पक्षः (तै० २।५।१) इत्यादिको आनन्दमयकोशका प्रतिपादकत्व होनेसे ब्रह्मपरत्वके अभावसे और श्रुत्युक्तत्वमात्रसे ब्रह्मको विग्रहरूपता नहीं हो सकती है क्योंकि ऐसा होनेपर 'ब्रह्मैवेदं सर्वम्' (नृ० उ० ता०) पुरुष एवेदं सर्वम् (श्वे० ३।१५) इत्यादिश्रुतिसे प्रपञ्चरूपताभी ब्रह्ममें आपन्न होगी, ननु–नित्यत्वादिक ब्रह्मस्वरूप हैं यह तो आपकोभी कहना पडेगा, अन्यथा ब्रह्मको नित्यान्यस्वभावत्व हो जायगा, फलतः विग्रहकोभी ब्रह्मस्वरूपत्वका सम्भव होनेसे, इसके नित्यत्वसत्यत्वादिका सम्भव है। अतः विग्रहका खण्डन कैसे किया है, वहाँ कहते हैं–स्वरूपानन्द इति। स्वरूपानन्दमें नित्यत्ववत् और अपराधीनत्ववत् विग्रहत्वकल्पनको परिभाषामात्रत्व होनेसे=विग्रहभी आप एक सच्चिदानन्दपदार्थका पारिभाषिक नाम रखते हैं=चेष्टावदन्त्यावयवि सोपादानकद्रव्य शरीरपदका शक्यार्थ प्रसिद्ध है और ब्रह्ममें एवंस्वरूपताका असम्भव है, अतः ब्रह्ममें शरीरनाममात्र जो तुमने कल्पित किया है उससे हमारा किसीभी प्रकारका अनिष्ट नहीं। मेरे मतमेंभी ब्रह्मसत्तासमानसत्ताकत्वेन अभिमत जो ब्रह्मातिरिक्त तादृश ब्रह्मातिरिक्तके निषेधका ब्रह्ममें अङ्गीकार होनेसे।

नच—नैषा तर्केण मतिरापनेयेति तर्कागम्यत्वोक्त्या आत्मन एव विग्रहवत्त्वमिति–वाच्यम्; निर्विशेषात्मन एव तर्कागम्यत्वोक्त्या आत्मनो विग्रहवत्त्वस्य तर्कागम्यत्वानुक्तेररूपत्वेन चाक्षुषत्वाप्रसक्त्या पिशाचादिवदन्तर्धानशक्त्यानुपलम्भसमर्थनस्याप्रसक्तसमर्थनत्वात्, विग्रहपक्षे 'अपाणिपाद' इत्यादिश्रुतिविरोधस्योक्तत्वाच्च। नच–अदुःखमसुखमित्यादौ प्राकृतसुखनिषेधवदत्रापि प्राकृतावयवनिषेधपरता, अन्यथा शृणोति पश्यतीतिवाक्यशेषविरोधः स्यादिति–वाच्यम्; आनन्दादिरूपताप्रतिपादकश्रुतिविरोधेन तत्र सङ्कोचवदत्र सङ्कोचकारणाभावात्, श्रवणदर्शनयोः शब्दरूपसाक्षित्वमात्रेण उपपत्तेर्नतद्विरोधः। अन्यथा त्वन्मतेऽपि ब्रह्मणि चक्षुरादिसाध्यज्ञानानङ्गीकारेण तद्विरोधो दुष्परिहारः स्यात्। अतएव–'अरूपोऽप्राकृतश्चेतिस्मृत्यैवारूपश्रुतिगत्युक्तेः नामरूपमित्यनेन रूपमात्रनिषेध–इति निरस्तम्, स्मृतेरुपास्यपरत्वेन ज्ञेयब्रह्मप्रतिपादकायाः श्रुतेः सङ्कोचे कारणाभावात्, श्रुतिस्मृत्योरतुल्यबलत्वाच्च, प्रत्युत 'यत्तदद्रेश्य' मित्यादिना परविद्याविषयस्य विग्रहवत्त्वप्रतिपादनविरोधाच्च।

शङ्कते नचेति। नैषा तर्केण मतिरापनेया (क०२।९) इस श्रुतिसे तर्कागम्यत्वकी उक्तिसे आत्माको ही विग्रहवत्त्व है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? निर्विशेषप्रकरणस्थ उक्त श्रुतिसे निर्विशेष आत्माके ही तर्कागम्यत्वकी उक्तिसे आत्माके विग्रहवत्त्वको तर्कागम्यत्वकी अनुक्तिसे; ब्रह्मको अरूपत्व होनेसे चाक्षुषत्वकी अप्रसक्तिसे पिशाचादिवत् अन्तर्ध्यानकी शक्तिसे जो अनुपलम्भका समर्थन उस समर्थनको अप्रसक्तसमर्थनत्व होनेसे; निर्विशेषवलाद्विग्रहवत्त्वोपपत्तिरिति नच वाच्यम्; यह अर्थ ऊपरमें कहा है उसीमें ये सर्व हेतु दिये जा रहे हैं। और विग्रहपक्षमें 'अपाणिपादः' इत्यादि श्रुतिओंके विरोधको उक्तत्व होनेसेभी। शङ्कते नचेति। 'अदुःखमसुखम्' (परम० २) इत्यादिमें जैसे प्राकृत सुखका निषेध है तैसे अत्रापि=अपाणिपादः (श्वे० ३।१९) इत्यादि श्रुतिओंमेंभी प्राकृत जो अवयव तादृश अवयवका जो निषेध तादृश निषेधपरता है, अन्यथा=प्राकृतावयवोंका निषेध न मानकर अवयवसामान्यका निषेध मानों तो शृणोति पश्यति इस वाक्यशेषके साथ विरोध होगा, इति नच वाच्यम्; क्यों ? आनन्दरूपताप्रतिपादक श्रुतिके साथ विरोध होनेसे तत्र='असुखम्' यहाँपर जैसे सङ्कोच होता है तैसे अत्र=अपाणिपादः इत्यादिश्रुतिमें सङ्कोचके कारणके अभावसे और 'शृणोति पश्यति' से बोध्य श्रवण दर्शन इन दोनोंको शब्दसाक्षित्वमात्रसे और रूपसाक्षित्वमात्रसे उपपन्न होनेसे 'शृणोति पश्यति' इस श्रुतिका विरोध नहीं है अन्यथा=अस्मदुक्त अर्थको न मानकर यथा श्रुतार्थका ग्रहण होनेपर तुम्हारे मतमेंभी ब्रह्ममें चक्षुरादिजन्यज्ञानके अनङ्गीकारसे तद्विरोध='शृणोति पश्यति' इस श्रुतिका विरोध दुष्परिहर होगा 'अतएव अरूपो अप्राकृतश्च' इस स्मृतिसेही अरूपश्रुतिकी गतिका कथन होनेसे=अप्राकृतपदके समभिव्याहारसे अरूपपद प्राकृतरूपनिषेधपर है, एतद्रूप अरूपश्रुतिकी गतिके कथनसे अरूपम् अशब्दमस्पर्शमरूपम् (क० ३।१५) इस श्रुतिसे रूपमात्रका निषेध नहीं है इति यह कथन निरस्त हुआ अतएव शब्दके अर्थका विवरण करते हैं—स्मृतेरिति। स्मृतिको अरूपोऽप्राकृतश्च इस स्मृतिको उपास्यपरत्व होनेसे ज्ञेयब्रह्मप्रतिपादि जो अशब्दमस्पर्शमरूपम्' यह श्रुति है उसके सङ्कोचमें कारणके अभावसे। श्रुति तथा स्मृति इन दोनोंको तुल्यबलत्व होनेसेभी यत्तदद्रेश्यम् (मु० १।१।६) इत्यादिके साथ परविद्याविषयके विग्रहवत्त्वप्रतिपादनके विरोधसे भी=परविद्याका विषयीभूत जो पदार्थ उसमें यदि विग्रहवत्त्वका प्रतिपादन किया जायगा तो उस प्रतिपादनका यत्तदद्रेश्यम् (मु० १ १।६) इत्यादिके साथ विरोध होगा।

किञ्च भगवद्विग्रहो न नित्यः, महत्त्वे सति रूपवत्त्वात्, विग्रहत्वाद्वा, नित्यताबोधकत्वाभिमतश्रुतेरन्यथासिद्धेरुक्तत्वाच्च। नच प्राकृतत्वमुपाधिः साधनव्यापकत्वात् सावयवत्वादपि न नित्यत्वम्। नच श्रुतिबलात् कचित्सावयवोऽपि नित्यः, श्रुत्यन्यथासिद्धेरुक्तत्वात्। ननु—अवयव उपादानं चेत् ब्रह्मविग्रहे नास्त्येव, एकदेशमात्रं चेत्, गगनात्मादौ व्यभिचारः; तयोरप्येकदेशसत्त्वात्, नचोपादानातिरिक्तस्यैकदेशस्यैवाभावः उपादानतन्त्वन्यहस्तवितस्त्यादिपरिमाणदेशस्य पटादावनुभवादिति—चेन्न; उपादानत-

न्तूनामेव हस्तवितस्त्यादिपरिमाणवतामनुभवात् । गगनादौ संयोगित्वादिना यदेकदेशसाधनं तदिष्टमेव, अस्माभिस्तत्र सावयवत्वानित्यत्वयोरङ्गीकारात् यच्चु आत्मनि सुखदुःखयोर्देशभेदेन प्रतीतेरेकदेशसाधनं, तन्न, सुखदुःखयोरन्तःकरणगततया तद्गतत्वाभावात् नच 'गौरनाद्यन्तवती'त्यादिश्रुत्या अनादिनित्याया अपि प्रकृतेः सत्वरजस्तमोरूपैकदेशदर्शनाद्व्यभिचार इति–वाच्यम् प्रकृतौ नित्यत्वाभावात् अविद्यातिरिक्तप्रकृतेरभावाच्च ।

औरभी दिखलाते हैं–किञ्चेति । भगवत्का विग्रह नित्य नहीं है, महत्त्वविशिष्ट होकर रूपवाला होनेसे=यहाँपर महत्त्वमात्रको हेतु बनानेपर आत्मामें व्यभिचार है, और केवल रूपवत्त्वका अन्यमतमें परमाणुओंमें व्यभिचार है, अतः दोनों दल दिये गये हैं । अथवा विग्रहत्व होनेसे नित्याबोधकत्वेन द्वैतीको अभिमत जो श्रुति हैं, उसकी अन्यथासिद्धिको उक्तत्व होनेसे । अतः आगमसे इस अनुमानका बाध नहीं है । उक्तानुमानमें प्राकृतत्व उपाधि है, नच प्राकृतत्व उपाधि नहीं है क्यों ? 'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्' (श्वे० ४।१०) एतच्छ्रुतिकथित प्रकृतिजन्यत्व होनेसे उपाधिको साधनव्यापकत्व है । और सावयवत्वादपि=अवयवोपादानकत्व होनेसेभी विग्रहको नित्यत्व नहीं है । श्रुतिके बलसे कहींपर सावयवभी नित्य है नच=नहीं है, क्यों ? श्रुतिकी अन्यथासिद्धिको उक्तत्व होनेसे । शङ्कते नन्विति । अवयव यदि उपादान है तो वह तो ब्रह्मविग्रहमें नहीं ही है=अवयवशब्दसे यदि आपको उपादान विवक्षित हो तब तो ब्रह्मविग्रहमें कोईभी उपादान नहीं है यदि एकदेशमात्र अवयव है=अवयव शब्दसे एकदेशमात्र विवक्षित है, तब गगनमें और आत्मादिमें व्यभिचार है, व्यभिचारको स्पष्ट करते हैं तयोः=गगनमें और आत्मादिमेंभी एकदेशका सत्त्व होनेसे, यदि यों कहो कि–उपादानसे अतिरिक्त एकदेशकाही अभाव है तो ऐसा नहीं कहना क्योंकि पटके उपादान जो तन्तु उन तन्तुरूप उपादानोंसे अतिरिक्त हस्तवितस्त्यादिरूप परिमाणके देशका पटादिमें अनुभव होनेसे, इति चेन्न; क्यों ? हस्तवितस्त्यादि परिमाणवाले तन्तुओंका ही अनुभव होनेसे तथाच पटादिकी तरह विग्रहकोभी मध्यमपरिमाणवत्ता होनेसे परिणामिकारणरूपावयववत्त्वका अनुमान किया जाता है । और आकाशादिमें संयोगित्वादिरूप हेतुसे जो एकदेशका साधन है, वह तो हमको इष्टही है । हम लोगोंसे तत्र=आकाशादिमें सावयवत्व और अनित्यत्व इन दोनोंका अङ्गीकार होनेसे । और जो आत्मामें सुख तथा दुःख इन दोनोंको देशभेदसे प्रतीति होनेसे आत्मामें एक देशका साधन है वह ठीक नहीं क्यों ? सुख तथा दुःख इन दोनोंको अन्तःकरणगत होनेसे=अन्तःकरणके परिणाम होनेसे तद्गतत्व=आत्मगतत्वके अभावसे । गौरनाद्यन्तवती चू० इत्यादि श्रुतिसे अनादि और नित्यसिद्ध जो प्रकृति है उस प्रकृतिकेभी सत्त्वरूप रजोरूप तमोरूप एकदेशोंके देखनेसे व्यभिचार है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? प्रकृतिमें नित्यत्वके अभावसे–साध्यभी प्रकृतिमें है, और अविद्यासे अतिरिक्त प्रकृतिके अभावसे ।

नचाविद्यायामेव व्यभिचारः तस्या अप्यनित्यत्वेन व्यभिचाराभावात् । नच—

जीवानामपि 'द्रोणं बृहस्पतेर्भागं द्रौणिं रुद्रांशसम्भवम् । दुर्वासाः शङ्करस्यांश इत्यादि-नांशोक्तेः 'यस्यायुतायुतांशांशे विश्वशक्तिरयं स्थिता । परब्रह्मस्वरूपस्य प्रणमामि तमव्ययम् ॥ विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' । इत्यादिना ईश्वरस्याप्यंशोक्तेर्जीवेशयोर्व्यभिचार इति-वाच्यम्; आत्मनोऽशस्यौपाधिकतया स्वाभाविकत्वाभावात्, त्वन्मते जीवानामणुरूपतया स्वाभाविकांशाभावेन काल्पनिकांशस्यैव वक्तव्यत्वात् । एतेन भगवल्लोकादेरपि नित्यत्वमपास्तम् नच-'अतो हि वैष्णवा लोका नित्यास्ते चेतनात्मकाः । मत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥' इत्याद्यागमविरोधः तस्यावान्तरप्रलयस्थत्वपरत्वात् । तस्मान्निर्गुणं निराकारं ब्रह्मेति सिद्धम् ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ ब्रह्मणो निराकारत्वसिद्धिः ।

अविद्यामें ही व्यभिचार है, नच अविद्यामें व्यभिचार नहीं है, क्यों ? तस्या अपि= उस अविद्याकोभी अनित्यत्व होनेसे व्यभिचारके अभावसे । शङ्कते नचेति । जीवोंकेभी 'द्रोणम्' इत्यादिसे अंशोंके कथनसे जीवमें व्यभिचार है, और यस्यायुता, इत्यादिसे ईश्वरकेभी अंशोंके कथनसे ईश्वरमें व्यभिचार है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? आत्माके अंशोंको सोपाधिकता होनेसे स्वाभाविकत्वके अभावसे=द्रोणशरीरावच्छिन्न जो बृहस्पतिशरीरावच्छिन्नमनोजन्य मनश्चक्षुरादिक हैं तदुपाधिक आत्मा ही बृहस्पतिका अंश कहा जाता है=जो पुरुष उपासनाके महात्म्यसे अपने मनः-प्रभृति जैसे दूसरेमेंभी अपने मनः-प्रभृतिसे मनः-प्रभृतिको उत्पन्न करता दे वह तदंशित्वेन व्यवहृत होता है, और जिसमें उत्पन्न करता है वह उसका अंशत्वेन व्यवहृत होता है, यह अर्थ प्रदीपवदावेशस्तथाहि दर्शयति (वे० ४।४।१५) इस सूत्रमें दिखलाया गया है । ऐसे मायाकल्पित मनः-प्रभृति उपाधिओंसे ईश्वरका हिरण्यगर्भादिरूपसे बहुभवन बताया गया है, और हिरण्यगर्भादिमें तदंशताका व्यवहार होता है, वस्तुतः यह सर्व मायाका विजृम्भण है । तुम्हारे मतमें जीवोंको अणुरूपता होनेसे स्वाभाविक अंशोंके अभावसे काल्पनिक अंशोंकोही वक्तव्यत्व होनेसे । इस कथनसे भगवान्के लोकादिकाभी नित्यत्व खण्डित हुआ । अतः वैष्णव लोक नित्य हैं और चेतनात्मकाः=आवरणबाहुल्यसे शून्य हैं । मेरी कृपासे शाश्वत शान्ति-स्थानको तू प्राप्त होगा । इत्यादि आगमके साथ विरोध होगा नच=आगमविरोध नहीं है क्यों ? तस्य=उक्त आगमस्थ नित्यादिपदोंको अवान्तरप्रलयस्थपरत्व होनेसे । यस्मात् कोई दोष नहीं है तस्मात् निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म है, यह सिद्ध हुआ ।

इति सरलायां ब्रह्मणो निराकारत्वसिद्धिः ।

अथ ब्रह्मणो ज्ञानत्वानुपपत्तिः ।

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्, पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् । पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात् कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥ ननु निर्विशेषं चेत् ब्रह्म तर्हि ब्रह्मैवेकं ज्ञानात्मकमानन्दात्मकमद्वितीयं नित्यं साक्षी चेति नोपपद्यते । तथाहि तत्र

तावत्। ज्ञानत्वं किं जातिविशेषो वा साक्षाद्व्यवहारजनकत्वं वा जडविरोधित्वं वा जडान्यत्वं वा, अज्ञानविरोधित्वं वा अर्थप्रकाशात्मकत्वं वा, पराङ्गीकृतं वा। नाद्यः वृत्तिप्रतिबिम्बितज्ञानाभासेषु तत्सम्भवेऽपि अखण्डरूपब्रह्मज्ञाने तदयोगात्। न द्वितीयः, फलोपधानस्य सुषुप्त्यादावभावात्, शक्त्यादिरूपस्वरूपयोग्यताया अपि मुक्तावभावात्, न तृतीयः स्वरूपज्ञानस्य नित्यत्वेन तद्विरुद्धस्य जडस्य नित्यनिवृत्त्यापातात्। न चतुर्थः सत्यं ज्ञानमित्यादौ अनृतव्यावृत्तेरार्थिकत्वोक्तिविरोधात्। नच पञ्चमः, अज्ञानस्य नित्यनिवृत्त्यापातात्। न षष्ठः, मोक्षे अन्यार्थोल्लेखाभावात्, स्वरूपोल्लेखे च स्वविषयत्वापातात्। न सप्तमः पराङ्गीकृतजातेर्व्यवहारहेतुत्वादेर्वा त्वन्मतेऽसंभवात्, इति चेन्न; अर्थप्रकाशत्वमेवज्ञानत्वम्। मुक्तावर्थाभावेऽपि तत्संसृष्टप्रकाशत्वस्य कदाचिदर्थसम्बन्धेनाप्यनपायात्। अत एव—अर्थप्रकाशरूपत्वं ज्ञानत्वं ब्रह्मणः कथम् अन्यार्थाभावतो मोक्षे स्वेन स्वस्याप्यवदेनात्॥ 'इति निरस्तम्।'

अथ सरलायां ब्रह्मणो ज्ञानत्वाद्युपपत्तिः।

विदेहमुक्तिसे पूर्वमें ब्रह्मज्ञानीकोभी बाधितानुवृत्तिसे मायाकी और मायास्थित्यधीनस्थितिकपदार्थोंकी प्रतीति बन सकती है, और ज्ञानीकोभी कृतघ्नताकी निवृत्त्यर्थ ज्ञानके बादभी अभिप्रेतविग्रहावच्छिन्न भगवान्‌की उपासना करणीय है, इस अर्थको सूचन करते हुए स्वाभिप्रेतविग्रहावच्छिन्न ईश्वरका स्मरण करते हैं—वंशीति। वंशीसे सुशोभित हैं कर जिसके और नूतनजलदके समान है आभा जिसकी और विद्युल्लतावत् चाकचिक्यविशिष्ट पीत हैं वस्त्र जिसके और बिम्बफलके समान लालिमविशिष्ट अधर ओष्ठ है जिसका और पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर मुख है जिसका और कमलके समान निर्मल और तेजोविशेषविशिष्ट नेत्र हैं जिसके एवम्भूत जो कृष्ण भगवान् हैं उन्होंसे परे मैं किसीभी उपास्य तत्त्वको नहीं जानताहूँ=यहाँपर कृष्ण भगवान्‌के द्वारा आद्या भगवतीका स्मरण ग्रन्थकारने किया है,—क्योंकि कृष्णका अवतार आद्याशरीरावच्छिन्न चेतनसे हुआ है जैसाकि,—शक्तिसङ्गम ग्रन्थमें लिखा है 'कदाचिदाद्या ललिता पुंरूपा कृष्णविग्रहा। लोकसम्मोहनार्थाय स्वरूपं बिभ्रती परम्' वेणुनादसमारभ्य सर्वसम्मोहनक्षमम्। और आद्याके अवतार होनेसे ही कृष्ण भगवान् आद्याकी अंशभूत राधाजीके उपासक थे, जैसाकि,—नारदपञ्चरात्रमें लिखा है—राधाचर्विततांबूलं चखाद मधुसूदनः। रात्रि—२। अ० ६ श्लोक १३ इत्यादि। पुराणोंमें जो कृष्णभगवान्‌का रहस्य करना लिखा है.वहभी एक प्रकारकी आद्याकी उपासना ही थी परन्तु उपासनामार्गके गुप्त रखनेकी रीति प्रथमसे ही चली आती है इसी लिए पुराणवालोंने विशेष कुछ न कहकर रहस्य नामसे व्यवहार किया है, पश्चात् काव्यकर्त्ताओंने अपने मानस भावोंके अनुसार उस निगूढरहस्यको स्थूलरूप दिया और उपासना=तत्त्वके गूढत्वको देखतेहुए इन्होंके इस स्थूलरूप देनेको अनुचित नहीं कहा जासकता है। ईश्वरीके अनन्तविग्रहोंमें जो

दशविग्रह मुख्य हैं उन्होंमें प्रथमका नाम आद्या है इसीका नाम श्यामा तथा कालिका है। कितनेलोगोंका ऐसा कहना है कि, आद्या भगवतीकी उपासना वाममार्गसे ही हो सकती है और कलियुगमें वाममार्गसे उपासनाका निषेध है, इसी लिए कलियुगमें जीवोंके उद्धारके लिए श्यामाने कृष्णावतारको ग्रहण किया है, इस कथनमें यह कथन तो ठीक है कि,-कलियुगमें वाममार्गसे उपासनाका निषेध है; और जीवोंके उद्धारके लिए आद्याने अवतार लिया यहभी ठीक है, परन्तु श्यामाकी उपासना वाममार्गसे ही हो सकती है यह कथन ठीक नहीं, श्यामाकी उपासना दक्षिणमार्गसेभी हो सकती है, अन्यथा कलियुगका नाम लेकर जो आद्याके उपासनाकी फलश्रुति है वह व्यर्थ हो जायगी। इस विषयका सविशेष निरूपण तथा शक्तिसङ्गम-प्रभृति आगमग्रन्थोंके, महेश्वरप्रणीतत्वेन, या अप्ताप्रणीतत्वेन स्वतः प्रामाण्यका निरूपण 'ईश्वरवादमें' करेंगे। शङ्कते नन्विति। यदि निर्विशेष ब्रह्म है, तब एक ब्रह्म ही ज्ञानात्मक है, आनन्दात्मक है, अद्वितीय है नित्य है, साक्षि है, यह कथन उपपन्न नहीं हो सकता है, तथाहि-तत्र=ज्ञानात्मकादिमें ज्ञानत्व क्या जातिविशेष है, या साक्षाद्व्यवहारजनकत्वरूप है, या जडविरोधित्वरूप है या जडान्यत्वरूप है या अज्ञानविरोधित्वरूप है, या अर्थप्रकाशात्मकत्वरूप है या पराङ्गी-कृतरूप है। नाद्यः=आदिम पक्ष ठीक नहीं क्यों ? वृत्तिमें प्रतिबिम्बित जो ज्ञानाभास हैं, उन ज्ञानाभासोंमें तत्सम्भवेऽपि=ज्ञानत्वरूप जातिविशेषका सम्भव होनेपरभी अखण्डरूप ब्रह्मज्ञानमें तदयोगात्=ज्ञानत्वरूप जातिविशेषके अयोगसे। न द्वितीयः=साक्षाद्व्यवहारजनकत्वरूप द्वितीय पक्षभी ठीक नहीं क्यों ? फलोपधानरूप जनकत्वका सुषुप्त्यादिमें अभाव होनेसे। और शक्त्यादिरूप स्वरूपयोग्यताकाभी मुक्तिमें अभाव होनेसे। न तृतीयः=जडविरोधित्वरूप तृतीय पक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? स्वरूपभूत ज्ञानको नित्यत्व होनेसे तद्विरुद्ध जो जड उसकी नित्यनिवृत्तिके आपातसे न चतुर्थः= जडान्यत्वरूप चतुर्थ पक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? सत्यं ज्ञानम् (तै० २।१।१) इत्यादिमें अनृत जडकी व्यावृत्तिके आर्थिकत्वकी जो उक्ति है उस उक्तिके साथ विरोध होनेसे, नच पञ्चमः=पञ्चमपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? अज्ञानकी नित्य निवृत्तिके आपातसे। न षष्ठः=अर्थप्रकाशात्मकत्वरूप छठा पक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? मोक्षमें अन्य अर्थके उल्लेखके=विषयित्वके अभावसे, और स्वरूपका उल्लेख होनेपर तो स्वविषयत्वका आपात है। न सप्तमः=सप्तम पक्षभी ठीक नहीं, क्यों ? पराङ्गीकृत जातिका या पराङ्गीकृतव्यवहारहेतुत्वादिका तुम्हारे मतमें असम्भव होनेसे; इति चेन्न; क्योंकि अर्थ-प्रकाशत्व ही ज्ञानत्व है=अर्थ-व्यवहारजनकतावच्छेदकत्व या अर्थेच्छाजनकतावच्छेदकत्वका नाम अर्थप्रकाशत्व है और उक्त जनकतावच्छेदक ज्ञानत्व जाति है और वह जाति तत्तदर्थके असत्त्वका आपादक जो अज्ञान तादृश अज्ञानविरोधि जो चेतन उस चेतनमें वृत्ति है। और चेतनका जो उक्ताज्ञान-विरोधित्व है, वह घटादिमें तथा अविद्यमान सुखादिमें तत्तदान्तरवृत्तिविशिष्टत्वेन है, और विद्यमानसुखादिमें सुखादिविशिष्टत्वेन है, और विद्यमानसुखादिविषयक भी यदि वृत्तिका

अङ्गीकार हो तो सुखाद्याकारवृत्तिविशिष्टत्वेन है; यद्यपि उक्त ज्ञानत्वरूपजाति, विशिष्टचेतननिष्ठ है, और ज्ञाधातुवाच्यतावच्छेदिका है। तथापि उक्तजातिविशिष्टसे भिन्न और ज्ञानपदकी लक्ष्यभूत जो व्यक्ति तादृशव्यक्तिका मुक्तिमें सत्त्व होनेसे ज्ञानका स्वरूप अविनाशी है इस तात्पर्यसे कहते हैं, मुक्ताविति। मुक्तिमें अर्थका अभाव होनेपरभी तत्संसृष्टप्रकाशत्वस्य=अर्थप्रकाशत्वरूपका कदाचिदर्थसम्बन्धसेभी अपाय न होनेसे। अतएव=उक्त रूपका अपाय न होनेसेही, मोक्षे=मोक्षमें=विदेहमोक्षमें अन्यार्थाभाववतः=स्वातिरिक्त-अर्थाभाववाला जो ब्रह्म है उसमें अर्थप्रकाशरूपत्वज्ञानत्व कैसे हो सकता है, स्वसे स्वकेभी अवेदनसे यह कथन निरस्त हुआ।

यत्तु—आनन्दत्वं जातिविशेषो वा अनुकूलतया वेदनीयत्वं वा, अनुकूलवेदनत्वं वा, अनुकूलत्वमात्रं वा, ज्ञानात्मकत्वमेव वा, दुःखविरोधित्वं वा, दुःखाभावोपलक्षितस्वरूपत्वं वा, पराङ्गीकृतं वा,। नाद्यः अखण्डस्वरूपानन्दे तदभावात्, न द्वितीयः; मोक्षे वेदितुरभावात्, आत्मनोऽवेद्यत्वाच्च। किञ्चानुकूल्यं किंचित्सापेक्षं, न चान्यं प्रति तद्युक्तमिति स्वं प्रत्येव वक्तव्यत्वेन सविशेषत्वापातात्। अतएव न तृतीयः। किञ्च वेदनस्वभावादधिकस्यानुकूल्यस्य स्वभाविकत्वे सखण्डत्वापातः, औपाधिकत्वे कदाचिदानन्दनिवृत्त्यापातः; न चतुर्थः, उक्तरीत्या आनुकूल्यासंभवात्। अतएव निरुपाधीष्टत्वमानन्दत्वमिति–निरस्तम्। न पञ्चमः दुःखादिज्ञानस्यापि आनन्दत्वापातात्। विषयानुल्लेखि ज्ञानं तथेतिचेन्न, ज्ञानस्य सविषयत्वनियमात् 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्मेत्यादौ विज्ञानपदेनैव दुःखव्यावृत्तिसिद्धावानन्दपदवैयर्थ्यापाताच्च न षष्ठः, विरोधस्य निवर्त्तकत्वादिरूपत्वे दुःखस्य नित्यनिवृत्त्यापत्तेः तादात्म्यायोग्यत्वरूपत्वे घटादावप्यानन्दत्वापातात् 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्मेत्यादौ दुःखव्यावृत्तेरार्थिकत्वोक्त्ययोगाच्च न सप्तमः वैशेषिकमोक्षे त्वदुक्तस्य दुःखाभावे सत्यपि आनन्दाभावेनापुमर्थत्वस्य त्वन्मोक्षेऽप्यापातात्। नाष्टमः पराङ्गीकृतस्य निरुपाध्यनुकूलवेदनीयत्वादेस्त्वन्मते असम्भवात्। यदि चानन्दत्वादेर्दुर्निरूप्यत्वेऽपि तदधिकरणं ब्रह्माबाध्यमानन्दात्मकं च, तर्हि सत्यत्वादेर्दुर्निरूपत्वेऽपि तदधिकरणं जगदबाध्यं सदात्मकं स्यादिति–चेन्न, आनन्दत्वस्य निरूपाधिकेष्टत्वरूपत्वात्।

शङ्कते यत्त्विति, आनन्दत्व क्या जातिविशेषरूप है, या अनुकूलतया वेदनीयत्वरूप है, अथवा अनुकूलवेदनत्व है, या अनुकूलमात्रत्व है, या ज्ञानात्मकत्व ही है, या दुःखविरोधित्वरूप है, या दुःखाभावोपलक्षित स्वरूपत्व है। या पराङ्गीकृतरूप है। नाद्यः=जातिविशेषरूप प्रथम पक्ष ठीक नहीं है, क्यों? अखण्ड जो स्वरूपानन्द उस स्वरूपानन्दमें तदभावात्=जातिविशेषका अभाव होनेसे। न द्वितीयः=द्वितीयपक्षभी ठीक नहीं क्यों? मोक्षकालमें वेदिताके अभावसे। और आत्माको अवेद्यत्व होनेसेभी यह पक्ष ठीक नहीं। किञ्च आनुकूल्य किञ्चित्सापेक्ष होता है। और अन्यके प्रति तो आनुकूल्य युक्त नहीं है अतः स्वं प्रति ही वक्तव्यत्व होनेसे सविशेषत्वके आपातसे।

अतएव=आनुकूल्यके न बननेसे ही अनुकूलवेदनत्वरूप तृतीयपक्षभी नहीं बन सकता है। किञ्च वेदनस्वभावसे अधिक जो आनुकूल्य उस आनुकूल्यका स्वाभाविकत्व होनेपर सखण्डत्वका आपात है। न चतुर्थः=अनुकूलत्वमात्ररूप चतुर्थ पक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों? उक्त रीतिसे आनुकूल्यके असम्भवसे। अतएव=आनुकूल्यके असम्भवसे ही निरुपाधीष्टत्वरूप आनन्दत्व है यहभी निरस्त हुआ। न पञ्चमः=ज्ञानात्मकत्व ही आनन्दत्व है, यह पञ्चमपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों? दुःखादिविषयक ज्ञानकेभी आनन्दत्वके आपातसे। विषयका अनुल्लेखि ज्ञान तथा=आनन्दत्ववत् है इति चेन्न; क्यों? ज्ञानके सविषयत्वका नियम होनेसे और विज्ञानमानन्दं ब्रह्म (बृ० ३।९।२८) इत्यादिमें विज्ञानपदसे ही दुःखकी व्यावृत्तिके सिद्ध होनेपर आनन्दपदके वैयर्थ्यके आपातसेभी। न षष्ठः=दुःखविरोधित्वरूप छठा पक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों? विरोधको निवर्त्तकत्वादिरूपत्व होनेपर दुःखकी नित्यनिवृत्तिकी आपत्तिसे। और विरोधको तादात्म्यायोग्यत्वरूपत्व होनेपर घटादिमेंभी आनन्दत्वके आपातसे। 'विज्ञानमानन्दं ब्रह्म' इत्यादिमें दुःखव्यावृत्तिके आर्थिकत्वकी जो उक्ति है उस उक्तिकेभी अयोगसे। न सप्तमः= दुःखाभावोपलक्षित स्वरूपत्वरूप आनन्दत्व है, यह सप्तमपक्षभी नहीं बन सकता है क्यों? वैशेपिकमोक्षे=एकविंशतिदुःखध्वंसरूप वैशेपिकमोक्षमें दुःखाभावे सत्यपि=दुःखाभावके होनेपरभी आनन्दाभावसे त्वदुक्त अपुमर्थत्वका तुम्हारे मोक्षमेंभी आपात होनेसे। नाष्टमः= अष्टमपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों? पराङ्गीकृत जो निरुपाध्यनुकूलवेदनीयत्वादि तादृश निरुपाध्यनुकूलवेदनीयत्वादिका तुम्हारे मतमें असम्भव होनेसे। और यदि आनन्दत्वादिका दुर्निरूपत्व होनेपरभी तदधिकरणम्=आनन्दत्वादिका अधिकरण ब्रह्म अबाध्य है और आनन्दात्मक है, तब तो सत्यत्वादिका दुर्निरूपत्व होनेपरभी तदधिकरणम्=सत्यत्वका अधिकरण जगत् अबाध्य तथा सदात्मक रहो, इति चेन्न; क्यों? आनन्दत्वको निरुपाधिक-इष्टत्वरूपत्व होनेसे=अन्येच्छानधीनेच्छाविषयसुखत्वका नाम आनन्दत्व है, सुखत्वजाति, विषयसम्बन्धजन्य जो वृत्तिविशेप तादृशवृत्तिविशेपावच्छिन्नचेतनमें वृत्ति है, मोक्षमें इसका अभाव होनेपरभी एतदुपहिताभिन्न आत्मस्वरूप है ही अतः कोई हानि नहीं। शङ्का—ज्ञानत्वको और आनन्दत्वको कादाचित्कत्व होनेपर इन दोनोंको अस्वाभाविकत्व हो जायगा, जैसे कि जगत्कारणत्वको कादाचित्कत्व होनेसे अस्वाभाविकत्व है; समाधान—इन्होंका अस्वाभाविकत्व हमको इष्ट है, क्योंकि ऐसा होनेपरभी जगत्कारणत्व तटस्थ लक्षण है, और लक्षणासे बोध्य जो आनन्दत्वादिसे उपलक्षित व्यक्ति है, वह स्वरूप लक्षण है, इस विभागका सम्भव होनेसे सिद्धान्तमें किसीभी प्रकारका व्याघात नहीं है।

नच दुःखाभावे अतिव्याप्तिः; दुःखाभावस्यापि सुखशेपत्वात् अभावस्य विरोधिभावान्तरत्वाभ्युपगमात्। नच मुक्ताविच्छापाये आनन्दापायापत्तिः इष्टत्वोपलक्षितस्य स्वरूपस्यानपायात्, उपलक्ष्ये च तदवच्छेदकसत्त्वस्यातन्त्रत्वात्। नच—निरुपाधिकेष्टत्वं स्वाभाविकमौपाधिकं वा; नान्त्यः ब्रह्मणः आनन्दरूपत्वाभावापत्तेः, आद्ये

ज्ञानातिरेकि तदनतिरेकि वा, आद्ये सखण्डत्वापत्तिः; द्वितीये आनन्दपदवैयर्थ्यमिति-वाच्यम्, ज्ञानानन्दयोरभेदेऽपि कल्पितजातिभेदनिबन्धनप्रवृत्तिकतया पदद्वयप्रयोगस्य व्यावृत्तिभेदेन साफल्यात्। एतेन-विषयानुल्लेखि ज्ञानमेवानन्द इत्यपि युक्तम् ज्ञाने विषयोल्लेखनियमस्य प्रागेव निरासात्। एवञ्चानन्दत्वस्य सुनिरूपतया न तन्न्यायेन जगतश्च सदात्मकत्वापादनमिति किञ्च जगति सदाद्यात्मकत्वे बाधकं दृश्यत्वादिकं नत्वानन्दे, तस्य दृगनतिरेकात्। एतेन-निरुपाध्यनुकूलत्ववेदनीयं सुखं मतम्। निर्विशेषमवेद्यञ्च कथं ब्रह्म सुखात्मकमिति-निरस्तम्, परमप्रेमास्पदत्वेन वेद्यत्वात् सुखवेदन-भेदाभावात्। वेदनाभावेनासुखत्वापादनानुपपत्तेः।

दुःखाभावमें अतिव्याप्ति है, नच=अतिव्याप्ति नहीं है, क्यों ? दुःखाभावकोभी सुख-शेषत्वात्=सुखका व्यञ्जकत्व होनेसे। अभाव अधिकरणात्मक है इस पक्षको रखकर कहते हैं-अभावस्येति। अभावको विरोधि भावान्तरत्वका अभ्युपगम होनेसे। मुक्तिमें इच्छाका नाश होनेपर आनन्दके नाशकी आपत्ति है। नच=आनन्दके नाशकी आपत्ति नहीं है, क्यों ? इच्छोपलक्षित स्वरूपके अनपायसे=सुखत्वका नाश होनेपरभी सुखत्वोपलक्षित आनन्दपद-लक्ष्यार्थभूत स्वरूपत्वका नाश नहीं होता है। उपलक्ष्ये च=आनन्दपदलक्ष्यमें अवच्छेदकके सत्त्वको अतन्त्रत्व होनेसे; शङ्कते नचेति। निरुपाधिकेष्टत्व स्वाभाविक है या औपाधिक है, नान्त्यः=औपाधिक नहीं हो सकता है, क्यों ? ब्रह्मको आनन्दरूपत्वके अभावत्वकी आपत्तिसे। आद्ये=निरुपाधिकेष्टत्व स्वाभाविक है इस प्रथमपक्षमें निरुपाधिकेष्टत्व ज्ञानातिरेकि=ज्ञानत्वसे भिन्न है या तदनतिरेकि=ज्ञानत्वसे अभिन्न है। आद्ये=ज्ञानत्वसे भिन्न है इस प्रथम पक्षमें सखण्डत्वकी आपत्ति है=मोक्षमेंभी आनन्दत्वको वाच्यत्व होनेसे आनन्दत्वका सत्यत्व है अतः सत्यधर्मवत्त्वापत्ति है। द्वितीये=ज्ञानत्वसे अभिन्न है यह द्वितीयपक्ष कहो तो आनन्द पदका वैयर्थ्य है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? ज्ञान तथा आनन्द इन दोनोंका अभेद होनेपरभी ज्ञान-पद तथा आनन्द पद इन दोनोंको कल्पित जो जातिविशेष तादृश जातिविशेषाधीनप्रवृत्तिकत्व होनेसे, पदद्वयप्रयोगका व्यावृत्तिभेदसे साफल्य होनेसे। एतेन 'विषयानुल्लेखि' जो ज्ञान वही आनन्द है, यह कथनभी युक्त है; ज्ञाने=चैतन्यस्वरूपज्ञानमें विषयोल्लेखके नियमका प्रागेव=जडत्वहेतुनिर्वचनस्थलमें ही निरास होनेसे। इस रीतिसे आनन्दत्वको सुनिरूपता होनेसे आनन्दत्वके न्यायसे जगत्केभी सदात्मकत्वका आपादन नहीं बन सकता है। किञ्च जगन्निष्ठ सदाद्यात्मकत्वमें बाधक दृश्यत्वादिक हैं आनन्दे=आनन्दस्वरूपमें नहीं तस्य=आनन्दस्वरूपको ज्ञानसे अनतिरेक=अभेद होनेसे। एतेन निरुपाध्यनुकूलवेदनीय सुख माना जाता है। तथा निर्विशेष और अवेद्य जो ब्रह्म है वह सुखात्मक कैसे है। यह कथन निरस्त हुआ एतेनका= अर्थ स्पष्ट करते हैं-परमप्रेमास्पदत्वेन=अन्येच्छानधीनेच्छाविषयत्वेन वेद्यत्व होनेसे, सुख तथा वेदन इन दोनोंके भेदके अभावसे वेदनके अभावसे असुखत्वापादनकी अनुपपत्तिसे।

ननु—अद्वितीयत्वं, द्वितीयाभावविशिष्टत्वं, तदुपलक्षितत्वं वा, उभयथापि विशेषणमुपलक्षणं वा, द्वितीयाभावः प्रामाणिकश्चेत्, तदा तेन सद्वितीयत्वापत्तिः—अप्रामाणिकश्चेत् तदा द्वितीयेन सद्वितीयत्वापत्तिः । नचाभावे द्वितीयेऽपि न भावाद्वैतहानिः; अभाववद्दृश्यस्य धर्मादेरप्येवं प्रामाणिकत्वे बाधकाभावादिति—चेन्न; प्राभाकररीत्या द्वितीयाभावस्याधिकरणानतिरिक्तत्वेन प्रामाणिकत्वेऽपि तेन सद्वितीयत्वाभावात् । नच—एवमनुपलब्धेः पार्थक्येन प्रमाणत्वोक्तिरयुक्ता, प्रमेयानतिरेकादिति—वाच्यम्; अतिरिक्ताभाववादिमते एव तदुक्तेः; अतिरिक्ताभावानभ्युपगमेऽपि अभावत्वप्रकारज्ञाने तत्प्रामाण्योपपत्तेश्च । नचानृतव्यावृत्तेरपि ब्रह्ममात्रतया भेदसत्त्वापत्तिः; इष्टापत्तेः; अनृतनिरूपितत्वं परमनृतमिथ्यात्वान्मिथ्या । भेदो ब्रह्माभिन्नतया सत्य एवेति ।

शङ्कते नन्विति । अद्वितीयत्व द्वितीयाभावविशिष्टत्वरूप हो या द्वितीयाभावोपलक्षितरूप हो, उभयथापि=दोनों प्रकारसेभी विशेषण या उपलक्षण जो द्वितीयाभाव है वह यदि प्रामाणिक=तत्त्वावेदक प्रमाणसे सिद्ध=वेद्य है, तदा=तब तेन=विशेषणरूप या उपलक्षणरूप जो द्वितीयाभाव है उस द्वितीयाभावसे ब्रह्ममें सद्वितीयत्वकी आपत्ति है । यदि वह द्वितीयाभाव अप्रामाणिकः=तत्त्वावेदक प्रमाणसे वेद्य नहीं है तब तो तत्प्रतियोगिरूप सत्य द्वितीयसे तात्त्विक सद्वितीयत्वकी आपत्ति है । यदि यों कहो कि अभावरूप द्वितीयके होनेपरभी भावरूप अद्वैतकी हानि नहीं है, तो ऐसा नहीं कहना क्यों ? अभावकी तरह दृश्यभूत धर्मादिकेभी उक्त प्रकारसे प्रामाणिकत्वमें बाधकके अभावसे इतिचेन्न; क्यों ? प्राभाकरकी रीतिसे द्वितीयाभावका अधिकरणसे अतिरिक्तत्व न होनेसे अभावका प्रामाणिकत्व होनेपरभी उक्त अभावसे ब्रह्ममें सद्वितीयत्वके अभावसे । एवम्=अभावको अधिकरणस्वरूपता होनेपर पार्थक्येन=प्रत्यक्षादिभिन्नत्वेन अनुपलब्धिके प्रमाणत्वकी उक्ति अयुक्त है, अनुपलब्धिके प्रमेयको प्रत्यक्षादिके प्रमेयसे अतिरिक्त न होनेसे=अभावज्ञानके लिए ही तो अनुपलब्धिनामक एक भिन्न प्रमाण माना जाता है, और वह अभाव तो अधिकरणसे अतिरिक्त नहीं है तब तो अधिकरणग्राहक प्रमाणसेही अभावका ग्रहण हो जायगा फिर तदर्थ प्रमाणका मानना आपलोगोंका अयुक्त है इति नच वाच्यम्—क्यों ? अधिकरणसे अतिरिक्त अभाव जिस वादीके मतमें मानाजाता है उस वादीके मतमें ही पार्थक्येन अनुपलब्धिके प्रामाणिकत्वकी उक्ति होनेसे=जो वादी अभावको अधिकरणात्मक मानता है उसको अनुपलब्धिको भिन्न प्रमाण माननेकी आवश्यकता नहीं । और अधिकरणसे अतिरिक्त अभावका अभ्युपगम न होनेपरभी अधिकरणविषयक अभावत्वप्रकारक ज्ञानमें अनुपलब्धिके प्रामाण्यकी उपपत्तिसेभी । अनृतकी जो व्यावृत्ति=भेद उसको ब्रह्ममात्रत्व होनेसे भेदकके सत्त्वकी आपत्ति है=अभाव अधिकरणात्मक है तब तो भेदभी अभावही है, और ऐसा होनेपर ब्रह्ममें जो प्रपञ्चका भेद है वहभी ब्रह्मात्मक होनेसे सत्य हो जायगा, नच=ऐसी शङ्का मत करो,

क्यों ? इष्टापत्तेः=ब्रह्मात्मकत्वेन उसके सत्यत्वमें इष्टकी आपत्ति होनेसे ब्रह्मातिरिक्तत्वेन किसी-काभी तात्त्विकसत्त्व हमको सह्य नहीं है और ब्रह्मात्मकत्वेन भले निखिल जगत्का सत्त्व रहो तो हमको इष्टापत्ति ही है। उस भेदमें जो अनृतनिरूपितत्व है वह अनृतको मिथ्यात्व होनेसे मिथ्या है और भेद तो ब्रह्मके साथ अभिन्न होनेसे सत्यही है।

नच प्राभाकरमते प्रतियोगिमदधिकरणव्यावृत्त्यर्थं कैवल्यादिविशेषोऽवश्यमधिकरणे वक्तव्यः, तथाच स एवाभावः; अन्यथा तेषामपि अनुपपत्तिरेवेति—वाच्यम् ; यस्मिन्कदापि न प्रतियोगिसम्बन्धः तस्मिन्स्वरूपतोऽभेद एव कैवल्यम् । यस्मिंश्च कदाचित् सोऽपि तदा तस्मिन् प्रतियोगिमदधिकरणकालभिन्नकालावच्छिन्नमधिकरणमिति न कैवल्यस्याधिकरणानतिरेकः नवानुपपत्तिरिति, नच—एवं गुणगुण्यभेदवादिमते शौक्ल्यादेरिव शक्त्यादेरपि भावरूपधर्मस्य ब्रह्माभेदोऽस्त्विति—वाच्यम्; शक्त्यादिना सहाभेदग्राहकमानाभावात्। अस्तु वा द्वितीयाभावोपलक्षितस्वरूपत्वं अद्वितीयत्वम्, तस्य च प्रामाणिकत्वेऽपि तत्प्रतियोगिनो द्वितीयस्य स्वप्नोपभुक्तनिगरणादाविवप्रामाणिकत्वानापत्तेः। एतेन—द्वितीयाभावस्य प्रागभावादित्वे द्वितीयस्यानित्यत्वमात्रं स्यात् नतु मिथ्यात्वम् अत्यन्ताभावत्वे तूपलक्षणत्वानुपपत्तिः, सदातनत्वात्, श्रुतितात्पर्यविषयत्वादिकार्यानन्वयित्वेन उपलक्षणत्वेऽत्यन्ताभावासिद्धेः।

शङ्कते नन्विति। प्राभाकरके मतमें प्रतियोगीवाला जो अधिकरण उस अधिकरणकी व्यावृत्तिके लिए अभावाधिकरणमें कैवल्यादिरूप विशेष अवश्य वाच्य है, फलतः वह विशेष ही अभाव है, अन्यथा तेषाम्=प्राभाकरोंकोभी अनुपपत्ति है=अभावत्वप्रकारक प्रतीतिकी अनुपपत्ति है; इति नच वाच्यम्, क्योंकि जिस अधिकरणमें कभीभी प्रतियोगीका सम्बन्ध नहीं है उस अधिकरणमें तो स्वरूपरूप अभेद ही कैवल्य है। और जिस अधिकरणमें किसी कालमें सोऽपि=प्रतियोगीभी है तब तो प्रतियोगिमत्का अधिकरण जो काल तादृश कालसे भिन्न जो काल तादृश कालावच्छिन्नाधिकरण कैवल्य है, इस रीतिसे कैवल्यका अधिकरणसे भेद नहीं है, और कोई अनुपपत्तिभी नहीं है। इस रीतिसे गुण और गुणी इन दोनोंके अभेदको माननेवाले वादीके मतमें जैसे शौक्ल्यादिका अभेद है तैसे भावरूप शक्त्यादि धर्मकाभी ब्रह्मके साथ अभेद रहो, इति नच वाच्यम्, क्यों ? शक्त्यादिके अभेदग्राहक मानके अभावसे। अथवा—द्वितीयाभावत्वोपलक्षित स्वरूपत्व अद्वितीयत्व रहो और तस्य=द्वितीयाभावको प्रामाणिकत्व होनेपरभी तत्प्रतियोगिनः=द्वितीयाभावप्रतियोगि द्वितीयके स्वप्नोपभुक्तनिगरणादिकी नांई प्रामाणिकत्वकी अनापत्तिसे=जैसे स्वप्नमें प्रतीयमान निगरणकी नांई निगरण क्रियाका कर्म अन्नादिकभी प्रातीतिक ही है क्योंकि व्यावहारिक अन्नादिका वहाँ कोई प्रत्यायक सन्निकर्ष नहीं है, तैसे द्वितीयभी स्वकीय अभावकी तरह मिथ्या है दृश्यत्व होनेसे यह भाव है। एतेन=द्वितीयाभावको प्रागभावादिरूपता होनेपर द्वितीयका अनित्यत्वमात्र होगा, मिथ्यात्व नहीं। और

द्वितीयाभावको अत्यन्ताभावत्व होनेपर तो उसको उपलक्षणत्वकी अनुपपत्ति है, सदातन होनेसे। और अद्वैतश्रुतितात्पर्य्यविषयत्वरूप जो कार्य्य तादृश कार्य्यमें अनन्वितत्वेन उपलक्षणत्व होनेपर अत्यन्ताभावकी असिद्धि है='अद्वैतं ज्ञात्वा मुच्यते' इत्यादिश्रुतिजन्यज्ञानविषयत्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वविशिष्टविषयत्वानाक्रान्तत्वेन उपलक्षणत्व होनेपर श्रुति-तात्पर्यविषयत्वेन श्रुतिरूपप्रमाणसिद्धत्व द्वितीयात्यन्ताभावमें नहीं है, और अन्यप्रमाणसिद्धत्व तो प्रथमसेही नहीं है तथाच द्वितीयात्यन्ताभावकी असिद्धि है।

एवञ्च द्वितीयाभावस्तात्त्विकश्चेत् तेन स्यात् सद्वितीयता। अतात्त्विकश्चेत् द्वैतेन सद्वितीयत्वमापतेत्॥' इति-परास्तम्; स्वरूपातिरेकतया तत्प्रमाया अनुद्देश्यत्वात्; तद्बोधस्यावान्तरतात्पर्येण यथाकथञ्चित् संभवात्, तात्त्विकत्वे ब्रह्मानतिरेकात्, अतात्त्विकत्वे स्वप्ननिगरणन्यायस्योक्तत्वात्। उपपादितश्चैतत् विस्तरेण प्रागितिशिवम्।

इसी रीतिसे यह अर्थ निष्पन्न हुआ कि द्वैतका अभाव यदि तात्त्विक है तो उस द्वैताभावसे सद्वितीयत्व होगा। यदि द्वैताभाव अतात्त्विक है तो तत्प्रतियोगि द्वैतसे सद्वितीयत्व आपतित होगा, यह सर्व कथन परास्त हुआ, एतेनका विवरण करते हैं, स्वरूपातिरेकतया=ब्रह्मस्वरूपभिन्नत्वेन तत्प्रमायाः= द्वितीयाभावप्रमाको अनुद्देश्यत्वात्=श्रुतिमुख्यतात्पर्यका अविषयत्व होनेसे। और ज्ञानको अवान्तर तात्पर्यसे यथाकथञ्चित् सम्भव होनेसे। तात्त्विकत्व होनेपर ब्रह्मसे अनतिरेक होनेसे और अतात्त्विकत्वमें स्वप्ननिगरणन्यायको उक्तत्व होनेसे। यह विषय विस्तरसे व्युत्पादित हो चुका है प्रथम; इस रीतिसे प्रकृत निरूपण दोषशून्य है।

ननु—ब्रह्मण एव यन्नित्यत्वमभिमतं, तत् किं सर्वकालसम्बन्धित्वं वा; कालावच्छेदराहित्यं वा, ध्वंसाप्रतियोगित्वं वा, उभयावधिराहित्यं वा। नाद्यौ; अविद्यायां काले चातिव्याप्तेः, अविद्यायाः सर्वकालोपादानत्वेन तत्सम्बन्धनियमादिदानीमेव नान्यदेत्येवंरूपतदवच्छेदरहितत्वाच्च। न तृतीयः; ध्वंसेऽतिव्याप्तेः। नच ध्वंसोऽपि ध्वंसप्रतियोगी, प्रतियोग्युन्मज्जनं तु प्रागभावनिवृत्तिरूपस्य घटस्य निवृत्तावपि प्रागभावानुन्मज्जनवद्युक्तमिति-वाच्यम्, एवं सति मोक्षेऽप्यात्मान्यस्य कस्यचिद् ध्वंसस्य वक्तव्यतया लाघवार्थमाद्यध्वंसनित्यताया एव युक्तत्वात्। नच-ध्वंसस्य नित्यत्वेऽपि भावेषु ब्रह्मैव नित्यम्-इतिवाच्यम्; निष्प्रतियोगिकत्वेन भावस्य ध्वंसत्वादेरपि नित्यत्वावश्यंभावात्। न चतुर्थः एवं परिभाषायामपि ब्रह्मण एव नित्यत्वमित्येतत्फलस्य मुक्तावन्याभावस्यासिद्धिरिति-चेन्न; चतुर्थपक्षस्य क्षोदसहत्वात्।

शङ्कते। नन्विति। ब्रह्मका ही जो नित्यत्व अभिमत है वह क्या सर्वकालसम्बन्धित्वरूप है या कालावच्छेदराहित्यरूप है, अथवा ध्वंसका अप्रतियोगित्वरूप है, या उभयावधि=पूर्वावधि तथा उत्तरावधि एतदुभयावधिराहित्यरूप है। नाद्यौ=प्रथम और द्वितीय ये दोनों पक्ष नहीं बन सकते हैं, क्यों? अविद्यामें तथा कालमें अतिव्याप्ति होनेसे-अविद्याको सर्व-

कालका उपादानत्व होनेसे, अविद्यामें सर्वकालके सम्बन्धका नियम होनेसे, इस ही कालमें है अन्यकालमें नहीं, इत्याकारक जो कालकृत परिच्छेद तद्रहितत्वसेभी। न तृतीयः=ध्वंसाप्रतियोगित्वरूप तृतीय नित्यत्व भी नहीं बन सकता है, क्यों ? ध्वंसमें अतिव्याप्ति होनेसे; सिद्धान्तीकी शङ्काका अनुवादकर द्वैती दोष देता है–नचेति। ध्वंसभी ध्वंसका प्रतियोगी है और ध्वंसका ध्वंस होनेपरभी जो प्रतियोगीका अनुन्मज्जन है वह तो प्रागभावकी निवृत्तिरूप=प्रागभावका ध्वंसरूप जो घट उस घटकी निवृत्ति होनेपरभी प्रागभावके अनुन्मज्जनकी तरह युक्त है–जैसे प्रागभावके ध्वंसका ध्वंस होनेपरभी प्रागभावका उन्मज्जन नहीं होता है तैसे ध्वंसका ध्वंस होनेपरभी प्रतियोगीका उन्मज्जन नहीं बन सकता है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? ऐसा होनेपर मोक्षमेंभी आत्मासे अन्य किसी ध्वंसकी वक्तव्यता होनेपर लाघवके लिए आद्यध्वंसकी ही नित्यताको युक्तत्व होनेसे, ध्वंसका नित्यत्व होनेपरभी भावोंमें ब्रह्मही नित्य है इति नच वाच्यम्; क्यों ? निष्प्रतियोगिकत्व होनेसे, भावरूप जो ध्वंसादिनिष्ठ ध्वंसत्वादिरूप धर्म है, उसकेभी नित्यत्वका अवश्यंभाव होनेसे। न चतुर्थः=उभयावधिराहित्यरूप चतुर्थ पक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? एवं परिभाषायामपि=ब्रह्ममेंही अवधिद्वयराहित्य है, ऐसा कहनेपरभी इस कथनका फल जो मुक्तिमें अन्यका अभाव उसकी असिद्धि है=मुक्तिमें किसी अन्यका सत्त्व होनेपरभी ब्रह्ममें उक्तविधनित्यत्वका सम्भव है, ननुसे लेकर यहाँतक पूर्वपक्ष है अब समाधान करते हैं–चतुर्थ पक्षको विचारसहत्व होनेसे।

नच—अन्त्यावधिरहितस्य ब्रह्मान्यस्य मुक्तावसत्त्वं न सिद्धमिति–वाच्यम्; विशेषणान्तरस्यैव सिद्धेः। अत एव–'काले कालापरिच्छिन्ने ध्वंसे चाध्वंसयोगिनि नित्ये सति कथं नित्यं ब्रह्मैवेति मतं तव ॥' इति–निरस्तम्; कालस्याप्याविद्यकत्वेनान्त्यावधिमत्त्वात्, ध्वंसस्याध्वंसप्रतियोगीत्वेऽपि आद्यावधिमत्त्वाच्च। नच तावता सद्वितीयत्वम्; तात्त्विकस्य द्वितीयस्यैवमप्यभावात्। नचैवमतात्त्विकत्वे ध्वंसनिवृत्तिः; इष्टत्वात्। नच प्रतियोग्युन्मज्जनम्; तादृग्ध्वंसोपलक्षितस्वरूपस्यैव विरोधित्वात्, प्रागभावस्य प्रतियोगिध्वंसादाविव।

अन्त्यावधिरहितस्य=विनाशरहित ब्रह्मान्यका असत्त्व मुक्तिमें सिद्ध नहीं है, 'नित्य' इस विशेषणसे सिद्ध नहीं होता है; इति नच वाच्यम्, क्यों ? विशेषणान्तरकी ही सिद्धिके स्वीकारसे=जिस विशेषणसे मुक्तिमें ब्रह्ममें अन्य अविनाशीका असत्त्वसिद्ध होता है उस विशेषणसे भिन्न जो विशेषण तादृशभिन्नविशेषणकी ही सिद्धिका नित्यपदसे ब्रह्ममें स्वीकार होनेसे=जिस विशेषणसे मुक्तिकालावच्छेदेन ब्रह्ममें ब्रह्मान्याविनाशिका असत्त्व जाना जाता है तादृशविशेषणविषयकबोधोत्पादनके लिए ब्रह्ममें नित्यपदका प्रयोग नहीं है, क्योंकि उक्तविध अविनाशिपदार्थका असत्त्व ब्रह्ममें मुक्तिकालावच्छेदेन अद्वैताद्वितीयादिपदोंसे ही प्रतीत होता है यह भाव है। अतएव=नित्यत्वको ब्रह्ममेंही होनेसे और उसको उक्त रूपत्व होनेसेही, कालसे अपरिछिन्न कालके नित्य होतेहुए और ध्वंसाप्रतियोगि ध्वंसके नित्य होतेहुए ब्रह्मही नित्य है,

यह तुम्हारा मत कैसे संघटित होगा, यह कथन खण्डित हुआ। कालको भी अन्त्याद्यवधिमत्त्व=ध्वंसप्रतियोगित्व होनेसे और ध्वंसको ध्वंसका प्रतियोगित्व न होनेपरभी प्रागभावप्रतियोगित्व होनेसे। और तितनेसे सद्वितीयत्व नहीं हो सकता है, क्योंकि ऐसा होनेपरभी तात्त्विक जो द्वितीय उसके अभावसे। उक्त रीतिसे अतात्त्विकत्व होनेपर ध्वंसकी निवृत्ति होगी नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों? इष्टत्वात्=ध्वंसकी निवृत्तिको अद्वैतवादियोंको इष्टत्व होनेसे। ऐसा होनेपर प्रतियोगिका पुनरुज्जीवन होगा नच=नहीं होगा, क्यों? तादृग्ध्वंसोपलक्षित=ध्वंसध्वंसोपलक्षित स्वरूप=ब्रह्मकोही विरोधित्व होनेसे, जैसे कि,–प्रागभावको प्रतियोगिध्वंसादिमें विरोधित्व है, फलतः ध्वंसका ध्वंस अधिष्ठानभूतब्रह्म स्वरूपही है। तत्त्वज्ञानसे अजन्य जो ध्वंस है वह सूक्ष्मावस्थारूपसे उत्पन्न होता है और तत्त्वज्ञानप्रयुक्तध्वंस अधिष्ठानका स्वरूपही है।

ननु—कथं दृग्रूपस्य ब्रह्मणः साक्षाद्द्रष्टृत्वरूपं साक्षित्वम्? 'साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्' इत्यनुशासनात् इति चेत्, अविद्यातत्कार्यान्यतरप्रतिफलितचैतन्यस्यैव साक्षित्वात्। तथाच दृग्रूपस्यापि उपाधिना द्रष्टृत्वम्। नचोपाधेरपि साक्ष्यधीनसिद्धिकप्रातीतिकाविद्याकार्यत्वेन चक्रकाद्यापत्तिः उत्पत्तिज्ञप्तिप्रतिबन्धस्याभावादविद्यातदुपाधिकद्रष्टृत्वयोरुभयोरप्यनादित्वात्।

शङ्कते नन्विति। ज्ञप्तिरूप जो ब्रह्म है उस ब्रह्मको साक्षाद् द्रष्टृत्वरूप साक्षित्व कैसे है 'साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्' (अष्टाध्यायी अ० ५ पा० ३ सू० ९१) इस अनुशासनसे इस पाणिनीय अनुशासनसे यह सिद्ध होता है कि–साक्षाद् द्रष्टाका साक्षी नाम है, अविद्यामें प्रतिबिम्बित जो चित् वह साक्षी है, अथवा अविद्योपहितको साक्षित्व नहीं है, व्यवहारकालमें अविद्योपहितके नाशके अभावसे अविद्योपहितका नाशरूप जो संस्कार उसके असम्भवसे और संस्कारके न होनेपर पूर्वानुभूत शुक्तिरजतादिका स्मरण न बनेगा किन्तु अविद्याकी वृत्तिके नाशसे अविद्यावृत्त्युपहितके नाशका सम्भव होनेसे अविद्यावृत्तिमें प्रतिबिम्बित चित् ही साक्षी है इस आशयसे कहते हैं–इति चेत्; अविद्या और अविद्याका वृत्त्यात्मक कार्य्य इन दोनोंमें अन्यतरमें प्रतिफलित चैतन्यकोही साक्षित्व होनेसे। फलतः ज्ञानस्वरूपकोभी उपाधिसे द्रष्टृत्व है उपाधेरपि=साक्षिकी उपाधिरूप जो वृत्ति है उस वृत्तिकोभी, साक्षीके अधीन सिद्धि है जिसकी ऐसी जो प्रातीतिक अविद्या तादृश अविद्याका कार्यत्व होनेसे चक्रकादिकी आपत्ति है=साक्षीसे अविद्याकी सिद्धि होती है और अविद्याकी सिद्धिसे अविद्याका कार्य्यरूपवृत्तिकी सिद्धि होती है; और वृत्तिकी सिद्धिसे तदुपहित साक्षीका निर्वचन होता है, इस रीतिसे वृत्त्युपाधिपक्षमें चक्रका दोष है, और अविद्योपाधिपक्षमें अन्योन्याश्रय दोष है–साक्षीसे अविद्याकी सिद्धि और अविद्यारूपोपाध्यधीन साक्षीकी सिद्धि। नच=चक्रकादिदोष नहीं है, क्यों? उत्पत्ति ज्ञप्ति स्थितिमें प्रतिबन्धके अभावसे, अविद्या और अविद्योपाधिक द्रष्टृत्व इन दोनोंकेभी अनादित्वसे=साक्षीको अविद्यासे या अविद्याकी वृत्तिसे उपहितरूपत्व होनेसे,

साक्षिज्ञानमें अविद्याके या अविद्याकी वृत्तिके ज्ञानकी अपेक्षा होनेपरभी अविद्याविषयक ज्ञानको या अविद्यावृत्तिविषयक ज्ञानको साक्षिविषयकज्ञानकी अपेक्षा नहीं, अविद्याविषयक ज्ञानको तथा अविद्यावृत्तिविषयक ज्ञानको साक्षिस्वरूपत्व होनेसे-तथाच ज्ञप्तिमें अन्योन्याश्रय नहीं है। अविद्याकी उत्पत्तिमें साक्षीकी अपेक्षा नहीं और साक्षीकी उत्पत्तिमें अविद्याकी अपेक्षा नहीं दोनोंको अनादिता होनेसे, तैसे वृत्त्युपाधिपक्षमें वृत्तिकी उत्पत्तिमें साक्षीकी अपेक्षा नहीं और साक्षीकी उत्पत्तिमें वृत्तिकी अपेक्षा नहीं वत्सयुग्मशृङ्गवत् समसमयत्व होनेसे फलतः उत्पत्तिमेंभी अन्योन्याश्रय नहीं, तैसे उपहितरूप साक्षि उपाधिके आश्रित नहीं है, जिससे कि साक्षीको स्वस्थितिमें उपाधिकी अपेक्षा हो उपाधिको स्वोपहित जो साक्षि तदाश्रितत्व होनेपरभी उपहितचित्को शुद्धचितमें ही आश्रिततत्त्व होनेसे तथाच स्थितिमेंभी अन्योन्याश्रय नहीं।

ननु—साक्षि जीवकोटिर्वा, ब्रह्मकोटिर्वा, उभयानुगतं चिन्मात्रं वा,। नाद्यः; जीवो बुद्ध्युपाधिकोऽणुरितिपक्षे इदमंशावच्छिन्नचिद्वेद्यस्य शुक्तिरूप्यस्य साक्षिवेद्यत्वायोगाच्चाक्रकाद्यापातात्, अज्ञानोपाधिकः सर्वगत इति पक्षेऽप्यज्ञानस्यापि साक्ष्यधीनसिद्धिकत्वेनान्योन्याश्रयात्। न द्वितीयः; ब्रह्मण एव साक्षिसाक्षिवेद्यदुःखादिधीः न जीवस्येति वैपरीत्यापातात्, अन्यथा अनवच्छिन्नानन्दधीरपि जीवस्येति स्यात्, ब्रह्मचैतन्यं घटादिप्रकाशकमिति मते अज्ञानाभिभवद्वारा तस्य जीवचैतन्याभेदाभिव्यञ्जकान्तःकरणवृत्तिवत्तादृशवृत्त्यभावाच्च। न तृतीयः; ईश्वरेणेव चिन्मात्रेणापि संसारिदुःखस्य तद्गतत्वेन ग्रहणेऽपि यद्भागो मुक्तस्तस्य चिन्मात्रस्य दुःखाद्युल्लेखरूपोपप्लवापातात्। सुप्तमैत्रं प्रति मैत्रीयाज्ञानादेर्मैत्रीयतयेव जाग्रच्चैत्रीयदुःखादेरपि चैत्रीयतया सुप्तमैत्रं प्रति प्रतीतिप्रसङ्गेन मैत्रेणैतावन्तं कालं दुःखं नावेदिषमिति परामर्शायोगादिति—चेन्न; शुद्धब्रह्मातिरिक्तस्य बुद्ध्युपाधिकजीवातिरिक्तस्य साक्षिणोऽङ्गीकृतत्वेन तत्पक्षोक्तदोषाभावात्।

शङ्कते नन्विति। साक्षि जीव कोटि है, या ब्रह्मकोटि या इन दोनोमें अनुगत चिन्मात्ररूप है। नाद्यः=जीवकोटि साक्षी है यह प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों? जीव बुद्धिरूप उपाधिवाला है और अणुः=असर्वगत है, इस पक्षमें इदमंशावच्छिन्न चित्से वेद्य जो शुक्तिरूप्य है उस शुक्तिरूप्यको साक्षिवेद्यत्वके अयोगसे चक्रकादिका आपात होनेसे=बुद्ध्युपाधिक जीव है इस पक्षमें बुद्ध्युपहितका इदमंशावच्छिन्न चैतन्यके साथ अभेद मानकर शुक्तिरूप्यमें साक्षिवेद्यत्व कहना पडेगा, तथाच बुद्ध्युपहितको साक्षित्व सिद्ध होनेपर अभेदकी कल्पना होगी और अभेदकी कल्पना होनेपर शुक्तिरूप्यमें साक्षिवेद्यत्वकी सिद्धि है और शुक्तिरूप्यमें साक्षिवेद्यत्वकी सिद्धि होनेपर साक्षीकी सिद्धि है इस रीतिसे चक्रक दोष है, तैसे शुक्तिरूप्यमें साक्षिवेद्यत्वकी सिद्धि होनेपर चैतन्यद्वयके अभेदकी सिद्धि है और अभेदकी सिद्धि होनेपर साक्षिवेद्यत्वकी सिद्धि है अतः अन्योन्याश्रय है। अज्ञानोपाधिक सर्वगत जीव

है इस पक्षमेंभी अज्ञानको साक्ष्यधीनसिद्धिकत्व होनेसे अन्योन्याश्रय होनेसे-परस्पर साधकत्वेन अन्योन्याश्रय है। नद्वितीयः=ब्रह्मकोटि साक्षिपदार्थ है यह द्वितीय पक्षभी नहीं वन सकता है, क्यों ? तब तो ब्रह्मको ही साक्षीसे वेद्य दुःखादिकी धी हो जीवको नहीं, इस वैपरीत्यके आपातसे। अन्यथा=ब्रह्मवेद्यत्वसे ही जीववेद्यत्व होनेपर अनवच्छिन्न आनन्दकी धी भी जीवको है, यह होगा। ब्रह्म चैतन्य घटादिका प्रकाशक है, इस मतमें अज्ञानाभिभवद्वारा ब्रह्ममें जीव चैतन्यके अभेदकी अभिव्यञ्जक जो अन्तःकरणकी वृत्ति उस वृत्तिकी तरह तादृशवृत्त्यभावाच्च=अज्ञानाभिभवद्वारा तादृश मनोवृत्तिका सुखादिमें अभाव होनेसे। न तृतीयः=उभयानुगत चैतन्यमात्र साक्षि पदार्थ है यह तृतीय पक्षभी नहीं वन सकता है, क्यों ? ईश्वरकी नाई चिन्मात्रसेभी संसारीके दुःखका तद्गतत्वेन=संसारिगतत्वेन ग्रहण होनेपरभी जो भाग मुक्त है उस मुक्तरूप चिन्मात्रको दुःखादिका उल्लेखरूप जो उपद्रव उसके आपातसे। और सोयेहुए मैत्रके प्रति जैसे मैत्रीयाज्ञानादिकी मैत्रीयत्वेन प्रतीति होती है। यद्यपि सुप्तमैत्रके प्रति मैत्रीय अज्ञानादिकी मैत्रीयत्वेन प्रतीति नहीं होती है, केवल अज्ञानत्वेन प्रतीति होती है, फिरभी द्वैतावेशसे द्वैतीके मनमें जो कुछ आता है वह धडाधड लिखता चला जाता है, तैसे चैत्रीयसुखादिकीभी चैत्रीय तया सुप्तमैत्रके प्रति प्रतीतिके प्रसङ्गसे, मैत्रसे इतने कालतक मैंने दुःखको नहीं जाना इत्याकारक परामर्शके अयोगसे इतिचेन्न, क्यों ? शुद्ध ब्रह्मसे अतिरिक्त और बुद्ध्युपाधिक जीवसे अतिरिक्त साक्षीका अङ्गीकृतत्व होनेसे जीवपक्षोक्त और ब्रह्मपक्षोक्त दोषोंके अभावसे।

तथाचाविद्याप्रतिफलितं चैतन्यं साक्षी; सुप्तावप्यविद्यावृत्तिस्वीकारस्य प्रागुक्तेः। नचान्योन्याश्रयः, प्रागेव निरासात्, शुद्धस्य साक्षित्वाभावेन मुक्तोपप्लवापाताभावात्। यस्तु सुप्तमैत्रे चैत्रदुःखग्रहणापत्त्या एतावन्तं कालं दुःखं नावेदिषमिति परामर्शविरोध उक्तः, तन्न; साक्षिणः सर्वजीवसाधारण्येऽपि तत्तज्जीवचैतन्याभेदेनाभिव्यक्तस्य तत्तद्दुःखादिभासकतया अतिप्रसङ्गाभावात्। यच्च सुखादेः स्वानन्तरभाव्यविद्यावृत्तिप्रतिफलितचिद्वेद्यत्वे ज्ञातैकसत्त्वायोग इति तन्न; मानसत्ववादिमतेऽप्यस्य समानत्वात्। नहि तन्मते ज्ञातैकस्थितिकत्वातिरिक्तं ज्ञातैकसत्त्वमस्ति; दुःखादिसमसमयोत्पन्नवृत्त्यापि ज्ञातैकसत्त्वोपपत्तेश्च। तस्मात् ज्ञानानन्दैकरूपमद्वितीयं नित्यं साक्षि च ब्रह्मेति सिद्धम्॥

इत्यद्वैतसिद्धौ ब्रह्मणो ज्ञानत्वानन्दत्वाद्वितीयत्वनित्यत्वसाक्षित्वोपपत्तिः।

तथाच अविद्याकी वृत्तिमें प्रतिफलित चैतन्यका नाम साक्षी है, सुषुप्तिमेंभी अविद्यावृत्तिके स्वीकारको पूर्वमें उक्त होनेसे अन्योन्याश्रय है, नच=अन्योन्याश्रय नहीं है, क्यों ? प्रागेव= इस प्रकरणमें पूर्वमें निरास होनेसे। और शुद्धको साक्षित्वके अभावसे मुक्तमें उपद्रवके आपातके अभावसे, और जो सुप्तमैत्रमें चैत्रके दुःखके ग्रहणकी आपत्तिसे इतने कालतक दुःखको मैंने नहीं जाना इत्याकारक परामर्शका विरोध कहा है वह ठीक नहीं क्यों ? साक्षीको सर्वजीवसाधा-

रण्य होनेपरभी तत्तज्जीवचैन्तन्यके साथ अभेदसे अभिव्यक्तको तत्तत् दुःखादिकी भासकता होनेसे अतिप्रसङ्गके अभावसे। और जो कहा है कि–सुखादिको स्वसे अनन्तर होनेवाली जो अविद्यावृत्ति तादृश अविद्यावृत्तिमें प्रतिफलित जो चैतन्य उस चैतन्यसे वेद्यत्व होनेपर ज्ञातैक सत्त्वका अयोग है वह ठीक नहीं क्यों? सुखादिमनोजन्य प्रत्यक्षके विषय हैं। इस मतको माननेवाले वादीके मतमेंभी इस दोषको समानत्व होनेसे, मानसत्व वादीके मतमेंभी जो मनःसंयोग सुखादिका कारण है वही तद्विषयकज्ञानका कारण नहीं है किन्तु संयोगान्तर है, अतः दोष समान है इसी अभिप्रायसे कहते हैं–तन्मते=उक्त मानसत्ववादीके मतमें ज्ञातैकस्थितिकत्वसे अतिरिक्त ज्ञातैकसत्त्व नहीं है, और दुःखादिके समसमयमें उत्पन्नवृत्तिसेभी ज्ञातैकसत्त्वकी उपपत्तिसे–चाक्षुषादि वृतिओंमेंही विषयको हेतुता है अविद्यावृत्तिमें नहीं अतः समसमयत्व उपपन्न है, तस्मात् ज्ञानानन्दात्मक और अद्वितीय तथा नित्य एवं साक्षि ब्रह्म है यह सिद्ध हुआ।

इति सरलायां ब्रह्मणो ज्ञानत्वाद्युपपत्तिः।

अथ ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानत्वोपपत्तिः।

ननु—निर्विशेषं चेत् ब्रह्म कथं तदेव निमित्तमुपादानमिति अभिन्ननिमित्तोपादानकत्वं, जगतः? विकारवत्कारणस्यैवोपादानत्वात्, ब्रह्मणोऽविकारत्वात् अन्यथा 'निर्विकारो हरः शुद्धः इत्यादिश्रुतिविरोधापत्तेरिति–चेन्न; परिणामितयोपादानत्वाभावेऽपि विवर्ताधिष्ठानतयोपादानत्वसंभवात्। विवर्त्ताधिष्ठानत्वं च विवर्त्तकारणाज्ञानविषयत्वमेव। तदुक्तं वार्तिककृद्भिः–'अस्य द्वैतेन्द्रजालस्य यदुपादानकारणम्। अज्ञानं तदुपाश्रित्य ब्रह्म कारणमुच्यते ॥' इति॥ नचोपादानलक्षणाभावः; आत्मनि कार्यजनिहेतुत्वस्यैव उपादानलक्षणत्वात्, तस्य परिणाम्यपरिणाम्युभयसाधारणत्वात्।

अथ सरलायां ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानत्वोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। ब्रह्म यदि निर्विशेष है, तब वही निमित्त और उपादान कैसे है और तत्प्रयुक्त जगत्को अभिन्ननिमित्तोपादानत्व कैसे है? विकारवाले कारणकोही उपादानत्व होनेसे ब्रह्मको विकाररहितत्व होनेसे अन्यथा=ब्रह्ममें विकाररहितत्व न माननेपर निर्विकारो हरः शुद्धः इस श्रुतिके विरोधकी आपत्तिसे, इति चेन्न; क्यों? ब्रह्मको परिणामित्वेन उपादानत्व न होनेपरभी विवर्त्ताधिष्ठानत्वेन उपादानका सम्भव होनेसे, और विवर्त्ताधिष्ठानत्व तो विवर्त्तकारण जो अज्ञान तादृश अज्ञानविषयत्वही है। सो कहा है वार्त्तिककारने=इस द्वैतरूप इन्द्रजालका उपादान कारण जो अज्ञान है उस अज्ञानका उपाश्रयण कर ब्रह्म जगत्का कारण कहा जाता है। आत्मामें उपादानके लक्षणका अभाव है, नच=उपादानके लक्षणका आत्मामें अभाव नहीं है; क्यों? आत्मामें कार्यजन्महेतुत्वकोही उपादानका लक्षणत्व होनेसे। तस्य च=कार्य्यजनिहेतुत्वरूप उपादानत्वको परिणामि अपरिणामि एतदुभयसाधरणत्व होनेसे।

ननु—ब्रह्मैवोपादानमुताज्ञानमपि, आद्ये सत्योपादानत्वेन सत्यत्वापत्त्या अज्ञानोपादानकत्वकल्पनविरोधः, द्वितीये सूत्रद्वयस्य रज्जुं प्रतीव ब्रह्माज्ञानयोः समप्राधान्येन वा उपादानत्वम् निर्विकारश्रुतिरतु केवलब्रह्मपरेति विवक्षितं, उत मायाशक्तिमद्ब्रह्म उपादानम् निर्विकारश्रुतिस्तु तदनुपरक्तब्रह्मविषयेतिविवक्षितम् उत मायाद्वारा ब्रह्म कारणम् अंशुरिव तन्तुद्वारा पटं प्रति, निर्विकारश्रुतिस्तु अद्वारकविकारनिषेधिकेति विवक्षितम्। नाद्यः; उभयोः समतयैव विकारित्वेन ब्रह्मणो विशिष्य निर्विकारोत्वोक्त्ययोगात्, सितासितसूत्रारब्धपटे सितासितत्ववज्जगति पारमार्थिकत्वानिर्वचनीयत्वयोरापातात्, ब्रह्मस्वभावस्य पारमार्थिकत्वस्य उपादेयधीमात्रस्थत्वे अविद्यास्वभावस्यानिर्वाच्यत्वस्यापि धीमात्रस्थत्वापातात् तन्मात्रोपादानकत्वस्य तत्तत्सत्वप्रयोजकत्वे अनिर्वाच्यत्वस्यापि अभावप्रसङ्गात्। तन्मात्रोपादानकत्वाभावात्।

शङ्कते नन्विति। ब्रह्म ही जगत्का उपादान है, या अज्ञानभी; आद्ये=ब्रह्म ही उपादान है इस प्रथम पक्षमें सत्योपादानत्व होनेपर जगत्के सत्यत्वकी आपत्तिसे और ब्रह्ममात्रोपादानकत्वकी अनुपपत्तिसे अज्ञानोपादानकत्वके कल्पनमें विरोध है—अज्ञानोपादानकत्वका कल्पन बिलकुल इस पक्षमें होही नहीं सकता। द्वितीये=अज्ञानभी उपादान है, इस द्वितीयपक्षमें क्या जैसे दो सूत्रोंको रज्जुके प्रति तुल्य प्राधान्येन उपादानत्व है तैसे ब्रह्म तथा अज्ञान इन दोनोंकोभी समप्राधान्येन प्रपञ्चके प्रति उपादानत्व है, और निर्विकारश्रुति केवल ब्रह्मपरा है यह विवक्षित है; या मायाशक्तिवाला ब्रह्म जगत्का उपादान है और निर्विकारश्रुति मायाशक्तिसे अनुपरक्त जो ब्रह्म तादृश ब्रह्म विषया है, ऐसा विवक्षित है। अथवा मायाद्वारा ब्रह्म जगत्का कारण है जैसे कि,-तन्तुओंद्वारा अंशु पटके प्रति कारण होते हैं और निर्विकारश्रुति अद्वारक विकारकी निषेधिका है=मायारूप द्वारके विना साक्षात् ब्रह्ममें विकार नहीं है, एतदर्थिका निर्विकार श्रुति है यह विवक्षित है। नाद्यः=आद्यपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों? ब्रह्म तथा अज्ञान इन दोनोंको समत्वेन ही विकारित्व होनेसे ब्रह्मणो विशिष्य=ब्रह्ममें विशेषरूपसे निर्विकारत्वकी उक्तिके अयोगसे=जैसे केवल ब्रह्म परिणामको नहीं प्राप्त होता है, तैसे केवल मायाभी परिणामको नहीं प्राप्त होती है, ऐसी दशामें केवल ब्रह्ममें ही परिणामित्वरूप विकारका निषेध करना अयुक्त है। और सितासित सूत्रोंसे आरब्धपटमें जैसे सितासितत्व रहता है तैसे जगतमें पारमार्थिकत्व तथा अनिर्वचनीयत्व इन दोनोंके आपातसे। ननु जगत्में पारमार्थिकत्वका सम्बन्ध प्रातीतिक प्रतीत होता है, पारमार्थिक उपादानके सम्बन्धसे जगत्में पारमार्थिकत्वके भ्रमका सम्भव होनेसे तहाँ कहते हैं—ब्रह्मस्वभावस्येति ब्रह्मस्वभावरूप पारमार्थिकत्वको उपादेयधीमात्रस्थत्वे=उपादेयविशेष्यकपारमार्थिकत्वप्रकारकधीविषयक प्रातिभासिकसम्बन्धप्रतियोगित्व होनेपर अविद्यास्वभाव अनिर्वाच्यत्वकेभी धीमात्रस्थत्वके आपातसे, धीमात्रस्थत्वका जो अर्थ ऊपर किया है वही यहाँपरभी है—भावार्थ यह कि यदि पारमार्थिकत्वका जगत्में भान भ्रमात्मक है तो अनिर्वचनीयत्वका भानभी भ्रमात्मक रहो। और तन्मात्रोपादानकत्वको तत्तत्

सत्त्वका प्रयोजकत्व होनेपर अनिर्वाच्यत्वकेभी अभावके प्रसङ्गसे तन्मात्रोपादानकत्वके अभावसे=यदि यों कहो कि पारमार्थिकत्वावच्छिन्नमात्रोपादानकत्व होनेपर ही जगत्में पारमार्थिकत्व हो सकता है और वैसे प्रकृतमें नहीं है क्योंकि प्रकृतमें अज्ञानकोभी उपादानत्व है, तो हमभी कह सकते हैं कि अनिर्वचनीयत्वावच्छिन्नमात्रोपादानकत्व होनेपरही जगत्में अनिर्वचनीयत्व हो सकता है सो तो प्रकृतमें नहीं है, क्योंकि ब्रह्मकोभी उपादानत्व आपने कहा है।

द्वितीये ब्रह्मणो मायाख्यहेतूपरागमपेक्ष्य विकारित्वे मृदादिवत् परिणामित्वापत्तिः, विशिष्टस्य ब्रह्मत्वे निर्विकारश्रुतिविरोधः अब्रह्मत्वे ब्रह्मणः कारणत्वासिद्धिः; विशिष्टस्य मृदादिवत् धर्मिसमसत्ताकरूपान्तरापत्तिरूपपरिणामाद्विवर्त्तमतहानिश्च। नच—विशिष्टापेक्षया परिणामत्वं शुद्धापेक्षया विवर्तत्वमिति—वाच्यम्, शुद्धेऽपि विवर्तार्थमारोपितविकारस्यावश्यकत्वेन निर्विकारश्रुतेः तत्परत्वाभावप्रसङ्गात्। तस्या विशेष्ये तात्त्विकविकाराभावपरत्वे विशिष्टे विकारोक्त्ययोगः; तत्त्वतो निर्विकारे आरोपितविकाराविरोधात्। न तृतीयः अंशोस्तन्तुं प्रतीव ब्रह्मणो मायां प्रत्युपादानत्वाभावादिति—चेन्न; उभयापरिणामित्वेन तयोः कारणत्वाङ्गीकारात्। नच—तत्पक्षोक्तदोषावकाशः, उभयोः परिणामितया कारणत्वानङ्गीकारात्। किन्त्वज्ञानस्यैव। अतएवासाधारण्येन निर्विकारत्वमपि। नह्यविद्यासाहित्येऽपि ब्रह्म परिणमते किन्तु विवर्त्तत इति।

द्वितीय पक्षमें ब्रह्मको मायानामक जो हेतु उस हेतुके उपरागकी अपेक्षाकर विकारित्व होनेपर मृत्तिकादिवत् परिणामित्वकी आपत्ति है विशिष्टको ब्रह्मत्व होनेपर निर्विकारश्रुतिका विरोध है। और विशिष्टको अब्रह्मत्व होनेपर ब्रह्ममें कारणत्वकी असिद्धि है। और मृदादिवद् विशिष्टका धर्मिसमसत्ताकरूपान्तरापत्तिरूप परिणाम होनेसे विवर्त्तमतकी हानिभी है। विशिष्टकी अपेक्षासे परिणामत्व है और शुद्धकी अपेक्षासे विवर्त्तत्व है, इति नच वाच्यम्, क्यों? शुद्धमेंभी विवर्त्तके लिए आरोपित विकारका आवश्यकत्व होनेसे निर्विकारश्रुतिको विकाराभावपरत्वके अभावके प्रसङ्गसे। तस्याः=निर्विकारत्वश्रुतिको विशेष्यमें तात्त्विकविकाराभावपरत्व होनेपर विशिष्टमें विकारकी उक्तिका अयोग है, तत्त्वतः निर्विकारमें आरोपित विकारके अविरोधसे। न तृतीयः=तृतीयपक्षभी ठीक नहीं क्यों? अंशुओंको जैसे तन्तुओंके प्रति उपादानत्व है तैसे ब्रह्मको मायाके प्रति उपादानत्वके अभावसे, ननुसे लेकर यहाँतक शङ्का पक्ष है, अब समाधान करते हैं—इति चेन्नेति। उभयापरिणामित्वेन तयोः=ब्रह्म तथा अज्ञान इन दोनोंके कारणत्वका अङ्गीकार होनेसे। तत्पक्षोक्तदोषावकाशः=ब्रह्म तथा अज्ञान एतदुभयोपादानकत्वपक्षमें जो दोष कहे हैं, उन्होंको अवकाश है, नच=अवकाश नहीं है, क्यों? उभयोः=ब्रह्म तथा अज्ञान इन दोनोंमें परिणामित्वेन कारणत्वका अङ्गीकार न होनेसे। किन्तु अज्ञानको ही परिणामित्वेन कारणत्वका अङ्गीकार है। अतएव=अज्ञानको ही परिणामितया कारणत्व होनेसे ही ब्रह्ममें परिणामित्वेन अज्ञानके साधारण्यके अभावसे निर्विकारत्वभी है।

इसीका विवरण करते हैं—अविद्याका साहित्य होनेपरभी ब्रह्म परिणममान नहीं होता है, किन्तु विवर्त्तमान होता है—ब्रह्मका परिणाम जगत् नहीं है किन्तु विवर्त है ।

नचाविद्यापरिणामत्वेऽपि सत्यत्वापत्तिः; परिणाम्युपादानसमसत्ताकत्वरूपस्य सत्यत्वस्य परिणामत्वनिर्वाहकत्वात्, ब्रह्मसमसत्ताकत्वाभावेन तदपेक्षया परिणामत्वाभावात्, स्वसमानसत्ताकविकाराहेतुतया निर्विकारत्वोपपत्तेश्च । नच सत्योपादानत्वे सत्यत्वापत्तिः, परिणाम्युपादानधर्माणामेवमृत्त्वसुवर्णत्वादानां कार्येऽन्वयदर्शनात् सत्यासत्यधूमानुगतधूमत्वस्येव सत्यासत्यानुगतोपादानत्वस्यैकस्याभाव=इति वाच्यम्; स्वनिष्ठकार्यजनिहेतुत्वस्य उक्तत्वात् । नहि सत्यासत्यवैधर्म्यं साधर्म्यविरोधि, अन्यथा किञ्चिद्वैधर्म्यस्यैव साधर्म्यविरोधित्वे साधर्म्यकथोच्छेदापत्तेः, अनाभासविषयसंस्कारजन्यज्ञानविषयत्वादेराभासानाभाससाधारणस्य दृष्टान्तेऽपि सत्त्वाच्च ।

नचेति । जगत्को अविद्याका परिणामत्व होनेपरभी सत्यत्वकी आपत्ति है, नच=नहीं है, क्यों ? परिणामि जो उपादान तादृश—उपादानसमसत्ताकत्वरूप जो सत्यत्व तादृश सत्यत्वको परिणामत्वका निर्वाहकत्व होनेसे । जगत्में ब्रह्म—समसत्ताकत्वके अभावसे, ब्रह्मापेक्षया परिणामत्वके अभावसे और स्वसमानसत्ताक जो विकार तादृश विकारका अहेतुत्व होनेसे ब्रह्ममें निर्विकारत्वकी उपपत्तिसे । जगत्को सत्योपादानत्व होनेपर सत्यत्वकी आपत्ति है । नच=सत्योपादानत्व होनेपर ही सत्यत्वकी आपत्ति नहीं है; क्यों ? परिणामी जो उपादान तादृश उपादानके धर्म जो मृत्तिकात्व सुवर्णत्वादि हैं उन्होंका ही घटादिरूप कार्यमें अन्वय देखनेसे, प्रपञ्चमें ब्रह्मरूपसत्योपादानकत्व होनेपरभी असत्यत्वकी उपपत्तिसे । सत्यासत्य जो धूम तादृश धूमानुगत धूमत्वकी तरह सत्यासत्यानुगत एक उपादानत्वका अभाव है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? स्वनिष्ठकार्यजननहेतुत्वको अनुगतत्वेन उक्तत्व होनेसे । क्योंकि सत्यत्व और असत्यत्वरूप जो क्रमशः ब्रह्ममें तथा अज्ञानमें वैधर्म्य है, वह उक्त साधर्म्यका विरोधि नहीं है, अन्यथा=सत्यासत्यरूप वैधर्म्यको स्वनिष्ठकार्यजनिहेतुत्वरूप साधर्म्यका विरोधित्व होनेपर साधर्म्यकी कथाके उच्छेदकी आपत्तिसे । ऊपर सत्यासत्यधूमका धूमत्वरूप साधर्म्य बताया है, तहाँ सत्य पदसे अनाभासरूप धूमका ग्रहण होता है और असत्यपदसे धूमाभासका ग्रहण है, और प्रकृत द्वैतीके मतमें आभास—पदार्थ अलीक है उसमें धूमत्वका योग नहीं बन सकता है, अतः आभासानाभासका दूसरा साधर्म्य दिखलाते हैं—आभासानाभाससाधारण जो अनाभासविषयसंस्कारजन्यज्ञानविषयत्वादि तादृशविषयत्वादिका दृष्टान्तेऽपि=धूममेंभी सत्त्व होनेसे=अनाभास=सत्यधूमविषयक जो संस्कार उन संस्कारोंसे जन्य जो सत्यधूमविषयकस्मृति तादृशस्मृतिसे असत्यधूमका आरोप होता है अतः सत्यधूमविषयकसंस्कारजन्यज्ञानविषयत्व दोनोंका साधर्म्य है ।

ननु—अविद्योपादानत्वकल्पना न युक्ता; ब्रह्मणएव रूप्याकाशाद्युपादानत्वसम्भवात्, अविद्यान्वयव्यतिरेकस्य निमित्ततामात्रेणान्यथासिद्धेरिति—चेन्न; घटकुण्डलादेः

परिणाम्यपेक्षादर्शनेन गगनादावप्यविद्यायाः परिणाम्युपादानत्वस्यावश्यकत्वात् । नच-असत्यस्य रूप्यादेः सत्यरूपापत्तिमत्परिणाम्यपेक्षा नास्तीति न सर्वत्रोपादेये तदपेक्षा-नियम इति-वाच्यम्; स्वविषयकाज्ञानानपेक्षस्य तद्भाव इत्येव सत्यरूपापत्तिपदेन विवक्षितत्वात् नहि ब्रह्माज्ञानस्य रूपादिभावापत्तौ स्वविषयकाज्ञानं व्यवधायकमस्ति । किञ्च विकारित्वेनाप्यविद्याया उपादानत्वकल्पनम् । नच-ब्रह्मण एवातात्त्विकविकारसम्भवात् न तत्कल्पनमिति-वाच्यम् तद्विषयकाज्ञानपरिणामत्वव्यतिरेकेण विकारे अतात्विकत्वानिर्वाहात् । किञ्च कार्यापेक्षितस्वसमानसत्ताकोपादानत्वेनाप्यविद्योपादानत्वम् । समानसत्ताकत्वं च रूप्यस्थले सत्त्वद्वैविध्येन वा ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वरूपप्रातिभासिकत्वमादाय वोपपद्यते । तस्माद्रूप्यतत्तादात्म्ययोरविद्याविकारत्वेऽपि इदमो रूप्यरूपापत्तिरूपो विकारः कथम् ? इदं रूप्यरूपमापन्नमिति अप्रतीतेः आरोपितस्यारोपं विना अयोगादिति—निरस्तम्, रूप्याकारपरिणताज्ञानाधिष्ठानचैतन्यावच्छेदकमात्रतयेदमो रूप्यापत्तेरनङ्गीकारात् ।

शङ्कते नन्विति । जगत्में अविद्योपादानकत्वकी कल्पना युक्त नहीं है, ब्रह्मको ही रूप्यके और आकाशादिके उपादानत्वका सम्भव होनेसे, अविद्याके अन्वयव्यतिरेकको निमित्तमात्रसे अन्यथा सिद्ध होनेसे; इति चेन्न, क्यों ? घटकुण्डलादिमें परिणाम्युपादानकी अपेक्षा देखनेसे आकाशादिमेंभी अविद्यानिष्ठ परिणाम्युपादानत्वको आवश्यकत्व होनेसे । असत्यभूत रूप्यादिको सत्यरूपापत्तिमान् जो परिणामी तादृश परिणामीकी अपेक्षा नहीं है, अत; सर्वत्र उपादेयमें परिणामी उपादानकी अपेक्षाका नियम नहीं है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? स्वविषयक अज्ञानकी जिसको स्वकार्यकरनेमें अपेक्षा नहीं है उसका नाम है-स्वविषयकाज्ञानानपेक्ष तादृश स्वविषयकाज्ञानानपेक्षका तद्भावः=रूप्यादिरूपकार्यभावापत्ति, इत्येव=इतने अर्थको ही सत्यरूपापत्तिपदसे विवक्षितत्व होनेसे । इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं नहीति । ब्रह्माज्ञानस्य=शुद्धचिन्निष्ठ अज्ञानका रूप्यादिभावापत्तिमें विषयका अज्ञान व्यवधायक=अपेक्षणीय नहीं है । किञ्च अविद्यामें विकारित्व होनेसेभी अविद्याको उपादानत्वका कल्पन है । ब्रह्मण एव=ब्रह्ममें ही अतात्त्विकविकारका सम्भव होनेसे अविद्यामें उपादानत्व कल्पन नहीं है, इति नच वाच्यम्,-क्यों ? तद्विषयक=ब्रह्मविषयक जो अज्ञान तादृश-अज्ञानपरिणामत्वके विना विकारमें अतात्त्विकत्वके अनिर्वाहसे । किञ्च कार्य्यको अपेक्षित जो स्वसमानसत्ताकोपादानत्व तादृश उपादानत्वेन भी जगत्में अविद्योपादानत्व है । रूप्यस्थलमें अविद्यामें समानसत्ताकत्व तो सत्त्वके द्वैविध्यसे उपपन्न होता है या ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वरूप प्रातिभासिकत्वको लेकर उपपन्न होता है=पारमार्थिकसत्त्व और सत्त्वेन व्यवहारविषयत्व यह दो प्रकारका सत्त्व है, तहाँ सत्त्वेन व्यवहारविषयत्वरूप सत्त्वको लेकर उक्त स्थलमें अविद्यामें कार्यसमानसत्ताकत्व है, अथवा ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वको लेकर है, क्योंकि ब्रह्मज्ञानेतरज्ञानसे जैसे शुक्तिरूप्यका बाध

होता है वैसे तूलाविद्याकाभी बाध होता है। तस्मात्=अविद्याके उपादानत्वको आवश्यक होनेसे रूप्य और रूप्यका तादात्म्य इन दोनोंको अविद्याका विकारत्व होनेपरभी इदम्पदार्थको रूप्यरूपापत्तिरूप विकार कैसे है, 'इदम्–रूप्यरूपको प्राप्त हुआ' इत्याकारिका प्रतीतिके न होनेसे आरोपितका आरोपके विना अयोग होनेसे, यह कथन निरस्त हुआ–रूप्याकारसे परिणत जो अज्ञान तादृशाज्ञानाधिष्ठान जो चैतन्य तादृश चैतन्यावच्छेदकमात्रत्व होनेसे (इदम) को रूप्यरूपापत्तिका अङ्गीकार न होनेसे।

यत्तु किमिदमुपादानत्वं रूपान्तरापत्तिप्रतीतिं प्रति विषयत्वं वा रूपान्तराभेदधीविषयत्वं वा कार्याभेदधीविषयत्वं वा। नाद्यः असिद्धेः 'शुक्ती रूप्यभावमापन्ना ब्रह्माकाशभावमापन्न' मित्यप्रतीतेः। न द्वितीयः तत्त्वंपदार्थयोः क्षीरनीरयोर्मुण्डगोत्वयोश्चोपादानोपादेयतापत्तेः। न तृतीयः सदृशे सन्निहिते निमित्तेऽपि कार्याभेदभ्रमसम्भवेनातिव्याप्तेरिति, तदनुक्तोपालम्भनतया अपास्तम् यदपि भ्रमाधिष्ठानत्वेन ब्रह्मणो नोपादानत्वम्, अतीतासतोरनुपादानयोरपि भ्रमाधिष्ठानत्वदर्शनात्, भ्रमाधिष्ठानेऽपि शुक्त्यादावुपादानत्वाव्यवहाराच्चेति, तन्न, चैतन्यस्यैवाधिष्ठानत्वेनातीतादेरनधिष्ठानत्वात्। किञ्च नहि व्यवहाराभावमात्रेण वस्तुव्यतिरेकः वृक्षादिषु पृथिवीति व्यवहाराभावेऽपि पृथिवीत्वसत्त्वात् यत्तु मायोपादानमीश्वरो निमित्तं शुद्धं ब्रह्माधिष्ठानमिति पक्षे अभिन्ननिमित्तोपादानत्वाभावेन त्वन्मते तदर्थस्य–प्रकृत्यधिकरणादेरनुपपत्तिरिति, तन्न, एकस्यैवाविद्योपहितत्वेनोपादानत्वस्याविद्यापरिणामेच्छाकृत्याद्याश्रयत्वेन निमित्तत्त्वस्यापि संभवात्।

इति ब्रह्मणो जगदुपादानत्वोपपत्तिः।

नन्विति। यह विचार्यमाण उपादानत्व क्या है, क्या रूपान्तरापत्तिविषयक जो प्रतीति तादृश प्रतीतिके प्रति विषयत्वरूप है या रूपान्तराभेदधीविषयत्वरूप है, या कार्याभेदधीविषयत्वरूप है। नाद्यः=प्रथम पक्ष नहीं कह सकते हो, क्यों? असिद्धि होनेसे, असिद्धिको ही स्पष्ट करते हैं–शुक्ति रूप्यभावको प्राप्त हुई, ब्रह्म आकाशभावको प्राप्त हुआ, इत्यादिरूप प्रतीतिके न होनेसे। न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी अच्छा नहीं, क्यों? तत्पदार्थ तथा त्वंपदार्थ इन दोनोंको उपादानोपादेयताकी आपत्तिसे, क्षीर तथा नीर इन दोनोंमें, मुण्ड तथा गोत्व इन दोनोंमें उपादानोपादेयताकी आपत्तिसे। न तृतीयः, तृतीयपक्षभी ठीक नहीं, क्यों? सदृशरूप निमित्तके सन्निहित होनेपरभी कार्यके अभेदभ्रमका सम्भव होनेसे अतिव्याप्ति होनेसे; इति यत्=इत्याकारक जो कथन है वह अनुक्तोपालम्भनतया खण्डित हुआ, जब कि ब्रह्मवादी लोक उक्तविध उपादानत्वको मानते ही नहीं, और कहींपर वैसा लेखभी उपादेयबुद्धया उपलब्ध नहीं होता है, तब उसको लेकर परमार्थवादमें दोष देना अनुचित है। भ्रमाधिष्ठानत्वेन ब्रह्मको उपादानत्व नहीं है, अनुपादानभूत जो अतीत तथा असत् इन दोनोंकोभी भ्रमका अधिष्ठानत्व देख-

नेसे, और भ्रमाधिष्ठानभूत शुक्त्यादिमें उपादानत्वके अव्यवहारसेभी, इति यत् तत् अपि न; क्यों ? चैतन्यको ही अधिष्ठानत्व होनेसे अतीतादिको अधिष्ठानत्वके अभावसे, किञ्च व्यवहाराभावमात्रसे वस्तुका अभाव नहीं हो जाता है, वृक्षादिमें 'पृथिवी' इत्याकारक व्यवहारके न होनेपरभी पृथिवीत्वका सत्त्व होनेसे। 'माया जगत्का उपादान है' ईश्वर निमित्त है, शुद्धब्रह्म अधिष्ठान है, इस पक्षमें अभिन्ननिमित्तोपादानत्वके अभावसे तुम्हारे मतमें तदर्थस्य= अभिन्ननिमित्तोपादानार्थक जो प्रकृत्यधिकरणादि (ब्र० १।४।७) तादृश प्रकृत्यधिकरणादिकी अनुपपत्ति है, इति यत् तत् तु न; क्यों ? एकको ही अविद्योपहितत्वेन उपादानत्वका और अविद्यापरिणाम जो इच्छाकृत्यादि तादृश-इच्छाकृत्याद्याश्रयत्वेन निमित्तत्वकाभी सम्भव होनेसे,-उत्तर मीमांसाके प्रथमाध्यायके चतुर्थपादके सप्तमअधिकरणका नाम-प्रकृत्यधिकरण है।

इति सरलायां ब्रह्मणो जगदुपादानत्वोपपत्तिः।

अथ ब्रह्मणो विश्वकर्तृत्वोपपत्तिः।

ननु—एवं कुलालादिवदुपादानगोचरप्रयत्नादिमत्त्वं कर्तृत्वमुक्तं स्यात्, तच्च कार्यस्य कल्पितत्वे न घटते, कुलालादेरकल्पितं प्रत्येव कर्तृत्वदर्शनात्, कल्पितं च रूप्यादिकं प्रति भ्रान्तस्यान्यस्य वा कर्तृत्वादर्शनाच्चेति—चेन्न; कुलालकार्यघटादावप्यकल्पितत्वस्यासम्प्रतिपत्तेः; रूप्यादेरप्यकर्तृकत्वासिद्धेश्च, तत्रापि साक्षिण एव कर्तृत्वात्, नह्यदर्शनमात्रेण कर्त्रपलापः, त्वन्मतेऽपि सर्वज्ञकर्तुरसिद्ध्यापत्तेः। एतेनाधिष्ठानत्वं न कर्तृत्वम्, एवं सत्यतिरिक्तोपादानत्वाभावेन कर्तृत्वोपादानत्वयोः सामानाधिकरण्योक्त्ययोगात्, नापि भ्रान्तवदध्यासद्रष्टृत्वम्; भ्रान्तस्य प्रेक्षापूर्वकमारोपितकर्तृत्वस्याभावात्। नापि मायाविवद्व्यामोहकत्वमेव कर्तृत्वम्। व्यामोहनीयजीवादर्शने व्यामोहकत्वाभावात्, तद्दर्शने भ्रान्त्यापत्तेः; व्यामोहकत्वस्याप्यारोपितत्वेनान्योन्याश्रयाच्च, 'नामरूपे व्यकरवाणी'ति श्रुत्यनुपपत्तेश्च।

अथ सरलायां ब्रह्मणो विश्वकर्तृत्वोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। एवम्—उक्तप्रकारसे कुलालादिकी तरह उपादान-गोचर जो प्रयत्नादि तादृश प्रयत्नादिमत्त्वरूप कर्तृत्व उक्त होगा, तच्च=और उक्त कर्तृत्व कार्य्यको कल्पितत्व होनेपर संघटित नहीं होता है, कुलालादिकोंको अकल्पितके प्रति ही कर्तृत्व देखनेसे, और कल्पित जो रूप्यादिक तादृश रूप्यादिके प्रति भ्रान्तके या अन्यके कर्तृत्वको न देखनेसे-सर्वसाधारणको कर्तृत्वका दर्शन न होनेसे; इति चेन्न, क्यों ? कुलालका कार्य्य जो घटादि उस घटादिमेंभी अकल्पितत्वकी असंप्रतिपत्तिसे और रूप्यादिनिष्ठ अकर्तृत्वकीभी असिद्धिसे, तत्रापि=उक्त रूप्यादिमेंभी साक्षीको ही कर्तृत्व होनेसे; अदर्शनमात्रसे कर्त्ताका अपलाप नहीं हो सकता है, तुम्हारे मतमेंभी सर्वज्ञ कर्त्ताकी असिद्धिकी आपत्तिसे। एतेन—अधिष्ठानत्वरूप कर्तृत्व नहीं हो

सकता है, ऐसा होनेपर अतिरिक्त उपादानत्वके अभावसे कर्तृत्व तथा उपादानत्व इन दोनोंमें सामानाधिकरण्यकी जो उक्ति उसके अयोगसे। तैसे भ्रान्तकी तरह अध्यासद्रष्टृत्वरूपभी कर्तृत्व नहीं बन सकता है, भ्रान्तमें प्रेक्षापूर्वक आरोपितके कर्तृत्वके अभावसे। और मायावीकी तरह व्यामोहकत्वरूपभी कर्तृत्व नहीं बन सकता है, क्यों ? व्यामोहनीय जो जीव उस जीवका ब्रह्मको दर्शन न होनेपर व्यामोहकत्वके अभावसे, और जीवका दर्शन होनेपर भ्रान्तिकी आपत्तिसे=भ्रान्तपदार्थके देखनेसे भ्रान्तिकी आपत्तिसे। और व्यामोहकत्वकोभी आरोपितत्व होनेसे अन्योन्याश्रयसेभी। और 'नामरूपको व्यवहार योग्य करूँ' (छा० ।६।३।२) इस श्रुतिकी अनुपपत्तिसेभी इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं—

नहि मायावी जगदादिकं करवाणीति सङ्कल्प्य करोति, किन्तु दर्शयानीति सङ्कल्प्य दर्शयति। पक्षत्रयेऽपि जन्मादिसूत्रेऽर्थलब्धसार्वज्ञ्यादिस्फुरणार्थं 'शास्त्रयोनित्वा'दिति सूत्रमिति यत् परमतं तद्भङ्गः स्यात्, भ्रमाधिष्ठानत्वादिना सार्वज्ञ्यालाभात्। नाप्युपादानगोचरप्रयत्नादिमत्त्वम्, कल्पितं प्रति तदयोगात्। तस्मात् 'अधिष्ठाने तथा भ्रान्ते भ्रामके च न कर्तृता। लौकिकी कृतिमत्ता तु न दृष्टा कल्पितं प्रती'ति निरस्तम्; अभिमतचतुर्थपक्षस्य समर्थितत्वात्। यत्तूक्तं तृतीयपक्षे व्यामुग्धजीवद्रष्टृत्वे भ्रान्तत्वापत्तिरिति, तद्भूषणमेव; भ्रान्तिज्ञस्य भ्रान्तत्वात्। यदपि मायाविनः सङ्कल्पपूर्वककर्तृत्वादर्शनेन व्याकरवाणीति श्रुत्यनुपपत्तिरिति, तन्न; तादृशसङ्कल्पादर्शनस्य मायाविन्यसम्प्रतिपत्तेः। यदप्युक्तं जन्मादिसूत्रार्थसिद्धसार्वज्ञ्यस्फोरकं 'शास्त्रयोनित्वादि'ति सूत्रमिति परमतभङ्गः स्यदिति, तन्न; मायावित्वेऽपि स्रक्ष्यमाणमायिकविश्वाकारमायासत्त्वांशपरिणामाधारतया सार्वज्ञ्यलाभात्। तस्मात् ब्रह्मणो निमित्तत्वमुपादानत्वञ्च ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ ब्रह्मणो विश्वकर्तृत्वोपपत्तिः।

'मायावी जगदादिको करूँ' इत्याकारक सङ्कल्पको कर नहीं करता है, किन्तु जगत्को दिखलाऊँ ऐसा सङ्कल्प कर करता है। पक्षत्रयेपि=उक्त तीनों पक्षोंमें जन्मादिसूत्रे=जन्माद्यस्य यतः। (वे० १।१।२) इस सूत्रमें अर्थतः लब्ध जो सार्वज्ञ्यादि उस सार्वज्ञ्यादिके फोडनेके लिए 'शास्त्रयोनित्वात्' (वे० १।१।३) यह सूत्र है ऐसा जो परमत है वह भङ्ग हो जायगा। भ्रमाधिष्ठानत्वादिसे सार्वज्ञ्यके अलाभसे। और उपादानगोचरप्रयत्नादिमत्त्वरूपभी कर्तृत्व नहीं बन सकता है, कल्पितके प्रति प्रयत्नके अयोगसे। तस्मात् अधिष्ठानमें और भ्रामकमें तथा भ्रान्तमें कर्तृता नहीं देखी गई है; और लौकिकी कृतिमत्ता कल्पितके प्रति नहीं देखीगई है, यह कथन निरस्त हुआ। अभिमत चतुर्थपक्षको समर्थितत्व होनेसे। और जो तृतीय पक्षमें कहा है कि व्यामुग्ध जो जीव तादृश जीवका द्रष्टृत्व ब्रह्मको होनेपर ब्रह्मको भ्रान्तत्वकी आपत्ति है वह कथन ठीक ही है,-व्यामुग्ध जीवका द्रष्टृत्व यह कथन ठीक है रह गई ब्रह्मको भ्रान्तत्वकी आपत्ति वह ठीक नहीं क्यों ? भ्रान्तिज्ञको अभ्रान्तत्व होनेसे।

मायावीको सङ्कल्पपूर्वककर्तृत्वके न देखनेसे 'व्याकरवाणि' (छा० ६।२।३) इस श्रुतिकी अनुपपत्ति है इति यत् तत् अपि न; क्यों ? तादृश सङ्कल्पके अदर्शनको मायावीमें सम्मत न होनेसे=मायावीमें 'करवाणि' ऐसा सङ्कल्प कार्य्यसे पूर्वमें नहीं होता है 'ऐसा नहीं माना जा सकता है। 'जन्मादिसूत्रसे' सिद्ध जो सार्वज्ञयादि तादृश सार्वज्ञयादिका फोडनेवाला 'शास्त्रयोनित्वात्' यह सूत्र है इत्याकारक जो परमत वह भङ्ग हो जायगा; इति यत् उक्तम् तत् अपि न; क्यों ? सृक्ष्यमाण=बनाया जानेवाला जो मायिक विश्व तादृश विश्वाकार जो मायाके सत्त्वांशका परिणाम तादृशपरिणामकी आधारता होनेसे सार्वज्ञयके लाभसे। तस्मात् ब्रह्मको उपादानत्व और निमित्तत्व है।

इति सरलायां ब्रह्मणो विश्वकर्तृत्वोपपत्तिः।

अथ ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानत्वे प्रमाणोपपत्तिः।

'यतोवा इमानि भूतानि जायन्त' इति जनिकर्त्तुः प्रकृतिरिति सूत्रप्रकृत्यर्थ-विहितपञ्चमीश्रुत्या यत्प्रयन्त्यभिविशन्तीति स्थितिलयाधारत्वलिङ्गाच्चोपादानत्वसिद्धिः, 'तदैक्षत व्याकरवाणी'ति ईक्षणाद्याधारतया कर्तृत्वसिद्धिश्च। अथ–वृत्तौ 'पुत्रात् प्रमोदो जायत' इत्यादावनुपादानेऽपि पञ्चमीदर्शनात् प्रकृतिपदं हेतुमात्रपरमित्युक्तम्, न्यासेऽपि इदमेवाश्रित्य 'असति प्रकृतिग्रहणे उपादानस्यैवापादानसंज्ञा स्यात्, प्रत्यासत्तेः नेतरस्य। प्रकृतिग्रहणात् कारणमात्रस्य भवतीति प्रकृतिपदमनुपादानेऽपि अपादानसंज्ञा-सिद्धयर्थमित्युक्तम्। महाभाष्येऽपि 'अयमपि योगः शक्योऽवक्तुम्। गोलोमाजलोमा-विलोमभ्यो दूर्वा जायन्ते अपक्रामन्ति तास्तेभ्यः' इत्यादिना लोमादीनां दूर्वादीन् प्रत्यवधीत्वात् 'ध्रुवमपायेऽपादान' मित्यनेनैवापादानसंज्ञासिद्धेः इदंसूत्रमनारम्भणी-यमिति सूत्रं प्रत्याख्यातम्। कैयटेऽपि अपक्रमणावधित्वे लोमादिषु कार्यस्य प्रतीतिर्न-सम्भवतीति आशङ्क्य विलान्निष्क्रामतो दीर्घभोगस्य भोगिनः अवच्छिन्नतया तत्रोपल-ब्धिवत् कार्यस्यापि दुर्वादेस्तत्रोपलब्धिरित्यवधित्वमेव तत्रोपपादितम्। ततश्च मतद्वयेऽपि 'जनिकर्तुः प्रकृतिरित्यनेन उपादान एव पञ्चमीति नियमो न सिद्धयतीति चेत्–मैवम्'

अथ सरलायां ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानत्वे प्रमाणोपपत्तिः।

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' (तै०।३।१।१) इति=एतद्वाक्यघटक जो 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' (अष्टाध्यायी १।४।३०) इस सूत्रसे प्रकृत्यर्थमें विहित पञ्चमी श्रुति है उस श्रुतिसे, प्रकृत्यर्थका अर्थ है उपादानार्थ तथाच प्रकृत्यर्थमें इसका अर्थ हैकि–उपादानरूप अर्थमें। तथा 'यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति' (तै०।३।१।१) एतद्वाक्यबोधित स्थित्याधारत्व और लयाधारत्वरूप लिङ्गसे ब्रह्ममें उपादानत्वकी सिद्धि है और तदैक्षतव्याकर-वाणि। एतद्वाक्योक्त जो ईक्षणादि तादृश–ईक्षणाद्याधारत्वेन ब्रह्ममें कर्त्तृत्वकी सिद्धि है

शङ्कते अथेति। वृत्तौ=उक्त सूत्रकी काशिका वृत्तिमें 'पुत्रसे प्रमोद उत्पन्न होता है' इत्यादि स्थलोंमें अनुपादानमेंभी पञ्चमीके देखनेसे सूत्रघटक प्रकृतिपद हेतुमात्रपर है, यह कहा है; न्यासेऽपि=न्यासनामक व्याकरणके ग्रन्थमेंभी इदमेवाश्रित्य=उक्त सूत्रको ही उद्देशकर शब्दलाघवसे 'जनिकर्तुर्हेतुः' इतना ही कहना चाहिए इत्याकारक शङ्काको उक्त ग्रन्थमें कर असतिप्रकृतिग्रहणे=प्रकृतिग्रहणके न होनेपर और हेतुग्रहणके होनेपर उपादानकी ही अपादान संज्ञा होगी प्रत्यासत्तेः='जनिकर्तुः इसषष्ठीसे कार्य्यके तादात्म्यरूप अन्तरङ्गसम्बन्धके बोधनसे, अन्यकी नहीं' और प्रकृतिग्रहणसे कारणमात्रकी अपादानसंज्ञा होती है, अतः प्रकृतिपद अनुपादानमेंभी अपादानसंज्ञाकी सिद्धिके लिए है, यह कहा है। भाष्यमेंभी अयम्='जनिकर्त्तुः प्रकृतिः' यहभी योगः=सूत्र अवक्तुम्=न कहनेको शक्य है। गोके लोमोंसे अजलोमोंसे अविलोमोंसे दूर्वाएँ उत्पन्न होती हैं; वे दूर्वायें तेभ्यः=उक्तलोमोंसे विभक्त होती हैं इत्यादिसे लोमादिकोंको दूर्वादिकोंके प्रति अवधित्व होनेसे 'ध्रुवमपायेऽपादानम्' (अ० १।४।२४) अपाये=विश्लेषे=विभागमें जो ध्रुवमवधिभूत है–जिससे विभाग होता है वह अपादान संज्ञक है इस सूत्रसे ही अपादानसंज्ञाकी सिद्धिसे उक्त सूत्र आरम्भणीय नहीं है इस रीतिसे 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' यह सूत्र प्रत्याख्यात है। कैय्यटमेंभी अपक्रमणावधित्वे=विभागका अवधित्व होनेपर उपादानरूप लोमादिमें कार्य्यकी प्रतीति सम्भवित नहीं है, ऐसी आशङ्का कर–बिलसे निकलते हुए दीर्घशरीरधारी सर्पकी जैसे अवच्छिन्नतया=बिलसंयुक्तत्वेन तत्र=बिलमें उपलब्धि=प्रत्यक्ष होती है, तैसे तस्य=कार्य्यभूत दूर्वादिकीभी तत्र=लोमादिकोंमें उपलब्धिः=प्रत्यक्ष होती है; इस रीतिसे अवधित्व ही तत्र=लोमादिकोंमें उपपादित है। तस्मात् मतद्वयमेंभी=वृत्तिकारीय और भाष्यकारीय एतन्मतद्वयमेंभी 'जनिकर्त्तुः प्रकृतिः' इस सूत्रसे उपादानमें ही पञ्चमी है यह नियम नहीं सिद्ध होता है=वृत्तिकारके मतमें प्रकृतिपद कारणसामान्यपर है और भाष्यकारके मतमें इस सूत्रका प्रत्याख्यान होनेसे कारणसामान्यमेंभी पञ्चमीका सम्भव है अतः उपादानकी ही अपादान संज्ञा है ऐसा नियम नहीं है इति चेत्, मैवम्; क्यों?

पशुना यजेते' त्यादौ पशुशब्दस्य पशुमात्रवाचकत्वेऽपि 'छागस्य वपाया' इति वाक्यशेषानुसारेण पशुविशेषपरत्ववदत्रापि कारणमात्रार्थत्वेऽपि उपादानपरत्वोपपत्तेः, अवधिपञ्चमीपक्षे 'शृङ्गाच्छर' इत्यादौ शृङ्गादिपदस्य नियामकाभावात् निमित्तपरत्वेऽपि प्रकृते नियामक-सत्त्वेन निमित्तपरत्वाभावात्। अतएव आत्मनः आकाशःसम्भूतः इत्यादावपि प्रकृतिपञ्चमी 'सच्चत्यच्चाभवदिति' वाक्यशेषेण 'सोऽकामयते'त्येतच्छाखान्तरस्थितवाक्येन च प्रतीतिसामानाधिकरण्यस्य नियामकत्वात्। नच–'स तपो अतप्यत। स तपस्तप्त्वा। इदंसर्वमसृजत। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य। सच्चत्यच्चाभवदित्यादि'श्रुत्या सदादिभवनस्य जगत्सृष्टितदनुप्रवे-

शानन्तरभावित्वेन जगत्स्रष्टित्वानुपपत्तौ परमेश्वरस्य सत्त्वादिगुणाभिव्यक्तिपरत्वेन ब्रह्मोपादानत्वे नास्य प्रामाण्यम् अन्यथा कथमभवदित्युक्तं स्यात्? नहि शुक्तिः रूप्यमभवदित्युच्यत इति–वाच्यम् सदादिभवनस्यैव जगत्स्रष्टिरूपतया तदानन्तर्याभावात्, तदनुप्रविश्येत्यस्य मुखं व्यादायेतिवदुपपत्तेः ।

पशुना यजेत इत्यादिमें पशुशब्दको पशुमात्रवाचकत्व होनेपर भी 'छागस्य वपाया' इस वाक्यशेषानुसारसे जैसे छागरूपपशुविशेषपरत्व है वैसे यहाँ भी आपाततः कारणमात्रार्थत्वकी प्रतीति होनेपर भी वक्ष्यमाण वाक्यशेषसे उपादानपरत्वकी उपपत्तिसे । अवधिपञ्चमीपक्षे=अवधिमें पञ्चमी है इस पक्षका स्वीकार होनेपर 'शृङ्गाच्छरः' इत्यादिमें नियामकके अभावसे शृङ्गादिपदको निमित्तपरत्व होनेपर भी प्रकृतमें नियामकके सत्वसे निमित्तपरत्वके अभावसे अतएव=नियामकका सत्त्व होनेसे ही 'आत्मनः आकाशः सम्भूतः' (तै० २।१।१) इत्यादिमें भी प्रकृतिपञ्चमी है, सर्वत्र प्रकृतिपञ्चमीमें नियामक दिखलाते हैं–'सच्च त्यच्चाभवत्' (तै० २।६।१) इस वाक्यसे और 'सोऽकामयत' (तै० २।६।१) इससे और शाखान्तरस्थितवाक्यसे=तदैक्षत बहुस्याम् (छा० ६।२।३) इस वाक्यसे प्रतीतसामानाधिकरण्यस्य=ब्रह्म और ब्रह्मसृज्य इन दोनोंका प्रतीत जो अभेद उस अभेदको नियामकत्व होनेसे । शङ्क्ते नचेति । 'स तपोऽतप्यत' (तै० २।६।१) इत्यादि श्रुतिसे सदादि भवनको जगत्की सृष्टि=उत्पत्ति और जगत्के प्रति अनुप्रवेश इन्होंसे पश्चात् भावित्व होनेसे जगत् स्रष्टित्वकी अनुपपत्ति होनेपर अस्य=उक्त सामानाधिकरण्यको ब्रह्मोपादानत्वमें प्रामाण्य नहीं है, अन्यथा 'अभवत्' ऐसा कैसे कहा जायगा क्योंकि शुक्तिः रूप्यमभवत् ऐसा नहीं कहा जाता है, इति नच वाच्यम् क्यों? सदादि–भवनकोही जगत्की सृष्टिरूपता होनेसे सदादि–भवनमें सृष्टिके आनन्तर्यके अभावसे और तदनुप्रविश्य=इसकी 'मुखं व्यादाय स्वपिति' इसकी तरह उपपत्ति होनेसे=जैसे मुखं व्यादाय स्वपिति यहाँपर मुखका व्यादान और सुषुप्ति दोनों एक कालावच्छेदेन हैं इन्होंका पूर्वापरीभाव नहीं है, फिर भी ऐसा व्यवहार होता है, वैसे प्रकृतमें भी तदनुप्रवेश और सदादिभवन इन दोनोंमें पूर्वापरीभाव नहीं है, फिर भी वैसा व्यवहार किया गया है ।

नचेदं सर्वमसृजतेत्यनेन पौनरुक्त्यम्, निमित्तत्वमात्रभ्रान्तिव्युदासपरत्वात् । यच्च शुक्तिः रूप्यमभवदित्यनुभवादर्शनमुक्तं, तच्छुक्तेरनुपादानत्वप्रयुक्तमिति तददर्शनस्यानुदाहरणत्वात् । नच मूर्तामूर्तप्रपञ्चस्य सत्यत्पदाभ्यामेवोक्तत्वेन निरुक्तादिपदवैयर्थ्यमिति शङ्क्यम्; संग्रहविवरणरूपतयोपपत्तेः । ननु सोऽकामयत बहुस्यामिति वाक्यं न सृज्यसाहचर्यमाह येन तत्सामानाधिकरण्यमीश्वरस्य प्रतीयते किन्तु परमेश्वरस्य 'अजायमानो बहुधा विजायते यदेकमव्यक्तमित्यादिश्रुतिसिद्धतत्तदनन्तपदार्थप्रेरकानन्तरूपैर्बहुभावसङ्कल्पमाह । नच स्वस्यानन्तरूपैर्बहुभावं सङ्कल्प्य इदं सर्वमसृजते'ति

जगत्सर्जनानुपपत्तिः;—नियामकरूपैर्बहुभावस्य नियम्यसापेक्षत्वात्, नियम्यं सर्वं सृष्ट्वा नियामकरूपैः प्रवेशोक्त्युपपत्तेः। अन्यथा स्यामिति सत्त्वोक्तिर्नस्यात्, सृष्टेः प्रागन्तःकरणाभावेन तद्विशिष्टाहमर्थाभावेन उत्तमपुरुषानुपपत्तिश्च स्यादिति—चेन्न; स्यामित्यनेन सुखी स्यामित्यादिवत् भाविसत्त्वोक्तौ तदनुपपत्त्यसंभवात् अन्यथा सङ्कल्पविषयत्वानुपपत्तेः सिद्धे इच्छाविरहात्।

इदं सर्वमसृजत (तै० २।६।१) इस वाक्यसे 'सच्च त्यच्चाभवत्' (तै० २।६।१) इत्यादिमें पौनरुक्त्य है, नच पौनरुक्त्य नहीं है, क्यों ? निमित्तत्वमात्रकी जो भ्रान्ति तादृशभ्रान्तिव्युदासपरत्व होनेसे='इदं सर्वमसृजत' इससे ब्रह्ममें निमित्तत्वमात्रकी भ्रान्ति हो सकती है वह 'सच्च त्यच्चाभवत्' इस वाक्यसे जो ब्रह्मको कार्य्यके तादात्म्यका लाभ है उससे निवृत्त होती है,—क्योंकि कार्य्यका तादात्म्य उपादानके साथ ही होता है। और जो 'शुक्तिः रूप्यमभवत्' इत्याकारक अनुभवका अदर्शन कहा है वह शुक्तिके अनुपादानत्वप्रयुक्त है=शुक्ति रूप्यका उपादान नहीं है, अतः उक्तविध अनुभव नहीं होता है। तदर्शनस्य=उक्तविध अनुभवके अदर्शनको उदाहरणत्व न होनेसे मूर्त्तामूर्त्तप्रपञ्चस्य=मूर्त्त= पृथिवी जल तेज, अमूर्त्त=पवन, आकाश एतदात्मकप्रपञ्चको सत् तथा त्यत् इन दोनों पदोंसे ही उक्तत्व होनेसे निरुक्तादि पद='निरुक्तं चानिरुक्तञ्च' (तै० २।६।१) इत्यादि पदोंका वैयर्थ्य है, इति शङ्क्यम्; नच= इस रीतिसे शङ्क्य नहीं है, क्यों ? संग्रहरूपत्वेन और विवरणरूपत्वेन उपपत्ति होनेसे=सच्च त्यच्च इत्यादि संग्रहवाक्य है 'निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च' इत्यादि विवरणवाक्य है। शङ्कते नन्विति। सोऽकामयत बहुस्याम् यह वाक्य सृज्यसाहचर्य्यम्=सृज्यात्मना ब्रह्मके भवनको नहीं कहता है, जिससे कि तत्सामानाधिकरण्य=सृज्यका सामानाधिकरण्य ईश्वरमें प्रतीत होता है, किन्तु परमेश्वरके अजायमानो बहुधा विजायते (य०सं० ३१।१९) यदेकमव्यक्तम् (म० ना० १।५) इत्यादि श्रुतिओंसे सिद्ध जो तत्तदनन्तपदार्थोंके प्रेरक अनन्त रूप उन अनन्तरूपोंसे बहुभावके सङ्कल्पको कहता है। यदि यों कहोकि अपने अनन्तरूपोंसे बहुभावका सङ्कल्पकर इदं सर्वमसृजत (तै० २।६।१) एतद्वाक्योक्त जो जगत्का सर्जन उसकी अनुपपत्ति है; तो ऐसा नहीं कहना, क्यों ? नियामकरूपोंसे जो बहुभाव होता है उस बहुभावको नियम्यसापेक्षत्व होनेसे नियम्यभूतसर्वको बनाकर नियामक रूपोंसे प्रवेशकी उक्तिकी उपपत्तिसे। अन्यथा 'स्याम्' इत्याकारिका सत्त्वकी उक्ति न होगी। और सृष्टिसे पूर्वमें अन्तःकरणके अभावसे अन्तःकरणविशिष्ट अहमर्थका अभाव होनेसे उत्तमपुरुषकी अनुपपत्तिभी होगी, इति चेन्न; क्यों ? 'स्याम्' इससे 'सुखी स्याम्' इत्यादिकी तरह भाविसत्त्वकी उक्ति होनेसे 'स्याम्' इस व्यवहारकी अनुपपत्तिके असम्भवसे अन्यथा=भाविसत्त्वोक्तिके न होनेपर सङ्कल्पविषयत्वकी अनुपपत्तिसे, सिद्धमें इच्छाके अभावसे।

इदमेव च बहुपदस्य सृज्यपरत्वे विनिगमकम्; नियामकरूपाणां च तवापि मते ईश्वराभिन्नतया सिद्धत्वात्। तथा चेच्छाया नियम्य एव त्वन्मतेऽपि पर्यवसानात्।

तथाचेच्छायास्तेजःप्रभृतिविषयत्वेन बहुस्यामिति सङ्कल्प्य तेजःप्रभृतिसर्जनं गुरुः स्यामितिसङ्कल्प्य शिष्यसम्पादनादिति निरस्तम्। यच्चोक्तमुत्तमपुरुषानुपपत्तिरिति तन्न, तादृशाविद्यापरिणामविशिष्टे अहमिति प्रयोगसम्भवेन उत्तम-पुरुषोपपत्तेः। एवमेव तदैक्षतबहुस्या' मित्याद्यत्र मानं बोध्यम्।

और यही सङ्कल्पविषयत्व ही बहुपदके सृज्यपरत्वमें विनिगमक है नियामक रूपोंको तुम्हारे मतमें भी ईश्वराभिन्नतया सिद्धत्व होनेसे। फलतः इच्छाका नियम्यमें ही तुम्हारे मतमें भी पर्य्यवसान होनेसे। तथा च इच्छाको तेजः प्रभृतिविषयत्व होनेसे 'बहु स्याम्' ऐसा सङ्कल्प कर तेजः प्रभृतिका जो सर्जन है वह 'गुरुः स्याम्' ऐसा सङ्कल्पकर शिष्यसम्पादनादि जैसा है यह निरस्त हुआ। और जो कहा है कि, उत्तमपुरुषकी अनुपपत्ति है वह ठीक नहीं; क्यों ? 'बहु स्याम्' इत्याकारक जो अविद्याका परिणाम तादृशपरिणामविशिष्टमें 'अहम्' इत्याकारक प्रयोगका सम्भव होनेसे उत्तम पुरुषकी उपपत्तिसे। इस रीतिसे 'तदैक्षत बहुस्याम्' (छा० ६।२।३) इत्यादि भी प्रकृतार्थमें मान समझना।

ननु—यत्तेजःप्रभृति सृज्यं, तदात्मना हि त्वया बहुभावो वाच्यः; तेषां तु तेज-आदीनामीक्षितृत्वस्रष्टृत्वदेवतात्मत्वश्रवणात्तानि चेतनानि, नच चेतनं प्रत्युपादानं नामेति-चेत् सत्यम्, सृज्यानामीक्षितृत्वाद्यसम्भवेन ईक्षणादिकर्तृप्रतिपादकतेजआदि-पदैस्तेजआद्यवच्छिन्न आत्मा बोध्यते। पूर्वपूर्वकार्यावच्छिन्नस्य तस्यैवोत्तरोत्तरकार्य-निमित्तत्वात्। तथा चावच्छेदके तेज आदौ न चैतन्यनिबन्धनदोषावकाशः। 'असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत तदात्मानं स्वयमकुरुत' त्याद्यप्युक्तार्थे प्रमाणम्। न चात्मनः करणे अकुरुतेति सत्वोक्त्यनुपपत्तिः; आकाशाद्यात्मनां क्रियमाणत्वेऽपि स्वरूपेण सत्त्वोपपत्तेः। एतदर्थमेवात्मानमाकाशाद्यात्मना अकुरुतेत्यश्रूयमाणोऽप्यर्थः कल्प्यते। एवं तदात्मानं सृजाम्यह' मित्यादिस्मृतिषु धर्मस्थापकशरीराद्यात्मनेति व्याख्येयम्।

शङ्कते नन्विति। जो तेजः प्रभृति सर्जनके योग्य पदार्थ हैं तत्स्वरूपसे ही तुमसे बहुभाव कहना चाहिए। और उन तेज आदिकोंमें, तत्तेज ऐक्षत तदपोऽसृजत तिस्रो देवताः (छा० ६।२।३) इस श्रुतिसे ईक्षितृत्व स्रष्टृत्व देवतात्मत्वके श्रवणसे तानि=तेज आदिक चेतन हैं और चेतनके प्रति तो उपादान नहीं हो सकता है; इति चेत् सत्यम्; सृज्य जो तेजः प्रभृति हैं उन्होंमें ईक्षितृत्वादिके असम्भवसे ईक्षणादिके कर्त्ताओंके प्रतिपादक जो तेज आदि पद हैं उन पदोंसे तेज आदिसे अवच्छिन्न जो आत्मा वह आत्मा बोधित होता है। पूर्व पूर्व कार्यावच्छिन्न उस आत्माको ही उत्तरोत्तर कार्यके प्रति निमित्तत्व होनेसे। फलतः अवच्छेदक तेज आदिमें चैतन्यनिबन्धन दोषका अवकाश नहीं 'असद्वा इदमग्र आसीत्' (तै० २।७।१) ततो वै सदजायत (तै०।२।७।१) तदात्मानं स्वयमकुरुत (तै०।२।७।१) इत्यादि भी उक्तार्थमें प्रमाण हैं; आत्माका करना होनेपर 'अकुरुत' इससे जो आत्माके

सत्त्वकी उक्ति है उसकी अनुपपत्ति है, नच=अनुपपत्ति नहीं है क्यों ? आकाशादिरूपसे आत्माको क्रियमाणत्व होनेपर भी स्वरूपसे सत्त्वकी उपपत्तिसे। इसलिए ही आत्माको आकाशादिरूपसे किया जाता है। इस रीतिसे 'तदात्मानं सृजाम्यहम्' (गी० ४।७) इत्यादि स्मृतिमें भी धर्मस्थापक शरीरादिरूपसे आत्माको बनाता हूँ। इस रीतिसे व्याख्येय है।

नच ततो वै सदजायतेति तच्छब्दोपात्तब्रह्मणः प्रपञ्चोत्पत्तेः—प्राक्सिद्धत्वात्तदात्मानमिति व्यर्थमिति—वाच्यम्; निमित्तत्वे पूर्ववाक्येन लब्धेऽपि उपादानत्वबोधनेनास्यापि सफलत्वात् ननु—यदुक्तं ब्रह्मण्येवसृष्टिलयश्रवणात् ब्रह्मोपादानमिति, तन्न; ऊर्णनाभौ तन्तुनिमित्ते तन्तुलयस्य दर्शनात्, तत्रहि यथा पुत्रं प्रति पितृदेहधातोरुपादानत्वेऽपि न पिता तदुपादानम्, किन्तु निमित्तमात्रम्, तथा ऊर्णनाभिधातोस्तदुपादानत्वेपि तस्य निमित्तत्वमेव, ब्रह्मणोऽपि ऊर्णनाभिवदेव संहर्तृत्वस्य यथोर्णनाभिरित्यादिना श्रवणाच्चेति चेन्न; यद्यप्यूर्णनाभेर्न तन्तूपादानत्वम्, तस्मिन्नष्टेऽपि तन्तूपलम्भात्, किन्तु भुक्ताहारस्यैव, तथापि तत्र न तन्तोर्लयः; किन्तु बहिष्टस्यान्तः प्रवेशमात्रम्। अतएव—यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते चेत्युक्तम्। नच ब्रह्मणस्तन्न्यायेन संहर्तृत्वोक्त्या तद्वदेव तदस्त्विति वाच्यम्, तज्जलानित्यादिना तत्र लयश्रवणात्, तिरोभावमात्रेच तस्य निदर्शनत्वात्। सर्वसाम्यस्य दृष्टान्तत्वाप्रयोजकत्वाच्च।

नचेति। ततो वै सदजायत (तै० २।७।१) इस श्रुतिमें तच्छब्दसे उपात्त जो ब्रह्म है उस ब्रह्मको प्रपञ्चकी उत्पत्तिसे पूर्वमें सिद्धत्व होनेसे तदात्मानमकुरुत (तै० २।७।१) यह व्यर्थ है इति नच वाच्यम् क्यों ? पूर्ववाक्यसे निमित्तत्वको लब्ध होनेपरभी उपादानत्वके बोधनसे इसकोभी सफलत्व होनेसे। शङ्कते नन्विति। यह जो कहा है कि—ब्रह्ममें ही सृष्टिका तथा लयका श्रवण होनेसे ब्रह्म प्रपञ्चका उपादान है, तन्न=वह ठीक नहीं, क्यों ? तन्तुओंका निमित्तभूत जो ऊर्णनाभि उस ऊर्णनाभिमें तन्तुओंके लयको देखनेसे=उपादानमें ही कार्य्यका लय होता है यह नियम यदि अव्यभिचारी होता तब तो ऐसा कह सकते थे कि प्रपञ्चका ब्रह्ममें लय बतलाया गया है अतः ब्रह्म प्रपञ्चका उपादान कारण है, परन्तु इस प्रतिबन्धका तो ऊर्णनाभिमें व्यभिचार है अतः उक्त कल्पना नहीं की जा सकती है। उक्तार्थकाही स्पष्टीकरण करते हैं—तत्रहि=उक्त दृष्टान्तस्थलमें जैसे पुत्रके प्रति पितृदेहीय वीर्य्यरूप धातुको उपादानत्व होनेपरभी पिता पुत्रका उपादान नहीं है—पिताके नष्ट होनेपरभी पुत्रके देखनेसे, किन्तु निमित्तमात्र है वैसे और्णनाभलालारूपधातुको तदुपादानत्वेऽपि=तन्तुओंकेप्रति उपादानत्व होनेपरभी तस्य=ऊर्णनाभिको निमित्तत्व ही है। और ऊर्णनाभिकी ही तरह ब्रह्मनिष्ठ संहर्तृत्वकोभी 'यथोर्णनाभिः' (बृ० २।१।२०) इत्यादिसे श्रवण होनेसेभी, इति चेन्न; क्योंकि यद्यपि ऊर्णनाभिको तन्तुओंका उपादानत्व नहीं है, तस्मिन्नष्टेऽपि=ऊर्णनाभिके अदृष्ट होनेपरभी तन्तुओंका उपलम्भ होनेसे किन्तु ऊर्णनाभिसे भुक्तक्षुद्रजन्तुरूपाहारको ही तन्तुओंका

उपादानत्व है, तथापि तत्र=ऊर्णनाभिमें तन्तुओंका लय नहीं है, किन्तु शरीरबहिर्देशस्थका शरीरान्तः प्रवेशमात्र है, अतएव=अन्तः प्रवेशमात्र होनेसे ही यथोर्णनाभि सृजते गृह्णते च (मु० १।१।७) यह कहा है। ब्रह्मको तन्न्यायेन=ऊर्णनाभिके दृष्टान्तसे संहारकर्तृत्वकी उक्तिसे तद्वदेव=दृष्टान्तकी ही तरह तद्वस्तु=प्रपञ्चका अन्तः प्रवेशमात्र रहो इति नच वाच्यम् क्यों? तज्जलान् (छा० ३।१४।१) इत्यादिसे तत्र=ब्रह्ममें लयके श्रवणसे। तिरोधानमात्रमें तस्य=ऊर्णनाभिको दृष्टान्तत्व होनेसे सर्वसाम्यको दृष्टान्तत्वका प्रयोजकत्व न होनेसे।

'तद्भूतयोनिमि'ति योनि–श्रुत्याचोपादानत्वम्। नच–योनिष्ट 'इन्द्रसदने' त्यादौ-निमित्तेऽपि योनिशब्दप्रयोगात्, न तेनोपादानत्वसिद्धिः 'मुख्यस्तुशब्दस्वरसादिति न्यायेन कदाचिदन्यत्र कथञ्चिन्निमित्ते प्रयोगेऽपि औत्सर्गिकमुख्यार्थत्यागस्य प्रकृतेऽयोगात्। एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानश्रुतिरप्युपादानत्वे मानम्। यथाच न सादृश्यप्राधान्याभ्यामुपपत्तिस्तथोक्तं प्राक्। सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति सामानाधिकरण्यश्रुतिरपि तत्र मानम् नच सर्वं समाप्नोपि ततोऽसि सर्वं' इति स्मृत्याऽन्यथाव्याख्याततत्वान्न तत्र मानतेति–वाच्यम्; अधिष्ठानतया सर्वव्यापित्वस्य सर्वशब्दप्रयोगनिमित्तत्वात्, अन्यथा आकाशेऽपि सर्वपदप्रयोगापत्तेः। अनुपादानत्वे प्रकृत्यधिकरणविरोधापत्तेश्च उपादानत्वम्। श्रुत्यनुगृहीतानुमानमप्यत्र विवरणोक्तमध्यवसेयम्। तथाहि–' महाभूतानि ' सद्वस्तुप्रकृतिकानि सत्स्वभावानुरक्तत्वे सति विविधविकारत्वात् मृदनुस्यूतघटादिवदिति।

तद्भूतयोनिम् (तै० १।७) इस योनिश्रुतिसे ब्रह्मको उपादानत्व है योनिष्टे इन्द्रसदने हे इन्द्र, ते=तुम्हारे सदने=बैठनेके निमित्त योनिः=स्थान किया है इत्यादिमें निमित्तेऽपि=उपवेशन क्रियामें निमित्तभूत जो स्थान उस स्थानमें भी योनिशब्दका प्रयोग होनेसे तेन=योनिशब्दसे ब्रह्ममें उपादानताकी सिद्धि नहीं है; नच=ऐसा नहीं कहना क्यों? मुख्यस्तु शब्दस्वरसात्, शब्दस्य=शब्दका स्वरसात्=अर्थान्तरमें अनुपपत्तिके प्रतिसन्धानके विनाही जो अर्थ प्रतीत होता है वह मुख्यः=मुख्य है, मुख्यार्थका सम्भव होनेपर अन्य अर्थ गृहीत नहीं होता है मुख्यार्थमें अन्वयानुपपत्त्यादिमूलक जो लक्षणा उसके कल्पनमें गौरव होनेसे, इस न्यायसे कभी अन्यत्र=स्थानादिरूपान्यार्थमें कथंचित्=उपादानवृत्ति आधारत्वादिरूप गुणके योगसे योनिशब्दका प्रयोग होनेपर भी प्रकृतमें उत्सर्गसिद्ध जो मुख्यार्थ उसके त्यागके अयोगसे 'योनिश्चहि गीयते' (वे० १।४।२४) इस सूत्रसे भी यही अर्थ सूचित किया है। तैसे एक विज्ञानसे सर्व विज्ञानकी (छा० ६।१।२) श्रुति भी ब्रह्मके उपादानत्वमें प्रमाण है। ननु–एक विज्ञानश्रुतिका ब्रह्मको सर्व दृश्यरूपत्व होनेसे ब्रह्मके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान हो जाता है, यह अर्थ नहीं है किन्तु सर्व दृश्यमें सद्रूपादिसे ब्रह्मका सादृश्य होनेसे और सर्वदृश्यको ब्रह्मके अधीन होनेसे ब्रह्मके प्राधान्यसे ब्रह्मके ज्ञानसे सर्वका ज्ञान होता है यह अर्थ है, तथाच उपादानत्वकी सिद्धि उक्त श्रुतिसे कैसे हो सकती है तहाँ कहते हैं जिस रीतिसे सादृश्यसे

तथा प्राधान्यसे एकके ज्ञानसे सर्वके ज्ञानकी उपपत्ति नहीं है तैसे हमने कहा है पूर्वमें—अद्वैत-श्रुतिबाधोद्धार प्रकरणमें यह विषय आचुका है । सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छा० ३।१४।१) यह सामानाधिकरण्य श्रुति भी तत्र=उपादानत्वमें प्रमाण है ' सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ' (गी० ११।४०) इस स्मृतिसे श्रुतिको अन्यथा व्याख्यानत्व होनेसे उक्त श्रुतिको तत्र=उपादानत्वमें प्रमाणता नहीं है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? अधिष्ठानतया=अधिष्ठानत्वहेतुक सर्वव्यापित्वस्य=सर्वतादात्म्यको सर्वशब्दके प्रयोगका निमित्तत्व होनेसे=अधिष्ठानत्वहेतुक सर्वव्यापित्व कहनेसे ही विवर्त्तोपादानत्व सूचित किया है, अन्यथा=अधिष्ठानत्वविधया सर्व-व्यापित्वको सर्वशब्दप्रयोगके प्रति निमित्तत्वके न माननेपर आकाशमें भी सर्वशब्दके प्रयोगकी आपत्तिसे । और अनुपादानत्व होनेपर प्रकृत्यधिकरणविरोधापत्तेश्च='प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा-दृष्टान्तानुपरोधात् ' (वे० १।४।२३) इस प्रकृत्यधिकरणके साथ विरोधापत्तिसे भी ब्रह्मको उपादानत्व है । और उक्त श्रुतिओंसे अनुगृहीत विवरणोक्त अनुमान भी अत्र=उपादानत्वमें ज्ञातव्य है । तथाहि=अनुमान दिखलाते हैं—महाभूतानि=कार्य, सद्वस्तुप्रकृतिकानि=सत्-स्वरूपोपादानक है, सत्स्वभावसे अनुरक्तत्व होकर विविधविकारत्व होनेसे मृत्तिकासे अनुस्यूत घटादिवत् ।

नच—विवर्त्तमत्ते उपादानत्वानुपपत्तिः; सत्प्रधानप्रकृतिकत्वेनार्थान्तरता वा; आदावेव तदुपादानत्वस्य स्थापितत्वात् । प्रकृतेः सत्त्वाभावस्य प्रसाधितत्वेनार्थान्तरानवकाशाच्च । नच खण्डो गौर्मुण्डो गौरिति गोत्वानुरक्तखण्डादौ व्यभिचारः तदनुरक्तत्वे सति तद्विकारत्वादित्यत्र तात्पर्यात् सदतिरिक्तगोत्वाद्यनभ्युपगमाच्च । अतएव—सन् घटः इतिवदत्रेदानीमसन् घटः असन्नृशृङ्गमित्यादिप्रतीत्यनुसारेण घटनृशृङ्गादेरसदुपादानत्वापत्तिरिति–निरस्तम्, नापि ब्रह्म न द्रव्योपादानम् चेतनत्वात् चैत्रवत्, जगन्नानन्दप्रकृतिकम्, तत्स्वभावाननुरक्तत्वात् यत् यत्स्वभावाननुरक्तं तत् न तत्प्रकृतिकम्, यथा घटस्वभावाननुरक्तं पटादि न घटोपादानकमित्यादिना सत्प्रतिपक्षत्वम्, व्याप्तिपक्षधर्मतयोरापातप्रतीत्या साम्येपि श्रुत्यनुग्रहेण स्थापनाया बलवत्त्वात् । द्वितीयानुमाने कपालस्वभावाननुरक्ते घटे व्यभिचारः 'कपालं घट ' इत्यप्रतीतेः, नच–मृत्त्वेन तदनुरक्तत्वमस्तीति–वाच्यम्, सत्त्वेनात्राप्यनुरक्तत्वस्य समानत्वात् ।

नचेति । विवर्त्तमतमें उपादानत्वकी अनुपपत्ति है, और सद्रूप जो प्रधान तादृश प्रधान-प्रकृतिकत्वेन अर्थान्तरता है नच=ये दोनों बातें नहीं है, क्यों ? आदिमें ही विवर्तोपादानत्वको ब्रह्ममें स्थापितत्व होनेसे, और प्रकृतिके सत्त्वाभावको प्रसाधितत्व होनेसे अर्थान्तरके अनवकाशसे ' खण्डो गौर्मुण्डो गौः ' इत्याकारक ज्ञानका विषयीभूत जो गोत्वानुरक्तखण्डादि तादृश गोत्वानुरक्त खण्डादिमें व्यभिचार है=जो कार्य्य जिससे अनुरक्त होता है वह कार्य तदुपादानक होता है, इस सामान्यव्याप्तिमें व्यभिचार है=गोत्वसे अनुरक्त खण्डादि गोरूप कार्य प्रतीत

होता है परन्तु खण्डादि गोरूप कार्य्य गोत्वोपादानक नहीं है; नच=व्यभिचार नहीं है, क्यों? तदनुरक्तत्वे सति=सत्त्वरूपतादात्म्यवत् होकर तद्विकारत्वात्=सत्त्वरूपकार्यत्व होनेसे इस अर्थमें विवरणका तात्पर्य्य होनेसे। और सत्से अतिरिक्त गोत्वादिके अनभ्युपगमसेभी। अतएव=जो यत् तादात्म्यवत् होके यत् कार्य होता है वह तदुपादानक होता है, इस व्याप्तिमें यत्कार्यत्वके निवेशसेही सन् घट इतिवत्=सन् घटः इस प्रतीतिसे जैसे घटमें सदुपादानकत्व सिद्ध होता है तैसे 'असन् घटः' 'असत् नृशृङ्गम्' इत्यादिरूप प्रतीतिके अनुरोधसे घट नृशृङ्गादिको असदुपादानत्वकी आपत्ति है, यह निरस्त हुआ—घटादिमें असत्कार्यत्व नहीं है, अतः यह कथन निरस्त हुआ। द्वैती सत्प्रतिपक्षानुमानको दिखलाता है—ब्रह्म, द्रव्यका उपादान नहीं है, चेतनत्व होनेसे चैत्रवत्। जगत्, आनन्दप्रकृतिक नहीं है, आनन्दस्वभावसे अननुरक्तत्व होनेसे, जो जिसके स्वभावसे अननुरक्त होता है वह तत्प्रकृतिक नहीं होता है, जैसे कि, घटके स्वभावसे अननुरक्त पटादि घटोपादानक नहीं हैं, इत्यादिसे आपके अनुमानमें सत्प्रतिपक्षत्व है, नापि=जैसे उपरितन दोष नहीं है तैसे सत्प्रतिपक्षत्वभी नहीं है, क्यों? व्याप्ति तथा पक्षधर्मता इन दोनोंका आपातप्रतीतिसे साम्य होनेपरभी श्रुत्यनुग्रहसे स्थापनारूप विवरणानुमानको बलवत्त्व होनेसे। प्रतीतिके आपातत्वका विवरण करते हैं द्वितीयेति। द्वितीयानुमानमें=जगत्पक्षक द्वितीयानुमानमें कपालके स्वभावसे अननुरक्त घटमें व्यभिचार है, क्यों? 'कपालं घटः' इत्याकारक प्रतीतिके न होनेसे। मृत्त्वेन कपालानुरक्तत्व घटमें है, इति नच वाच्यम्, क्यों? सत्त्वेन अत्रापि=जगद्रूपपक्षमेंभी आनन्दानुरक्तत्वको समानत्व होनेसे।

एवञ्च जगदभिन्ननिमित्तोपादानकम्, प्रेक्षापूर्वकजनितकार्यत्वात्सुखदुःखादिवदित्यभिन्ननिमितोपादानं ब्रह्म सिद्ध्यति। नच—व्यर्थविशेषणत्वम्; प्रेक्षापूर्वकत्वात्, कार्यत्वादिति हेतुद्वये तात्पर्यात्। नच—त्वन्मते दुःखादीनामन्तः करणोपादानकत्वेन साध्यवैकल्यमिति—वाच्यम्; अस्मन्मते अन्तःकरणस्य परिणाम्युपादानत्वेऽपि अन्तःकरणरूपेण परिणताज्ञानाधारतया विवर्त्तोपादानत्वस्यानपायात्, कार्यत्वादितिहेतौ सर्वकार्यनिमित्तकालघटसंयोगस्य उभयवादिसम्मतिपन्नस्य दृष्टान्तस्य लाभाच्च। नच जगदुपादानं न कर्तृ, द्रव्योपादानत्वात् मृद्वत्, जगत्कर्ता वा न द्रव्योपादानम्, कर्तृत्वात् कुलालादिवत्, इत्यादिना सत्प्रतिपक्षत्वम्, श्रुतिविरोधेन हीनबलत्वात् आद्ये अनुमाने जडत्वस्य द्वितीयानुमाने सर्वान्तर्यामित्वस्य चोपाधित्वात्। बाधोन्नीततया पक्षेतरत्वेऽपि दोषत्वात्। तस्माज्जगदुपादानं ब्रह्म कर्तृ चेति सिद्धम्।

इत्यद्वैतसिद्धौ ब्रह्मणो जगदभिन्ननिमित्तोपादानत्वे प्रमाणोपपत्तिः।

एवञ्च, जगत्, अभिन्ननिमित्तोपादानक हैं प्रेक्षापूर्वकजनितकार्य्यत्व होनेसे, सुखदुःखादिवत् इस अनुमानसे अभिन्ननिमित्तोपादान ब्रह्म सिद्ध होता है। न्यायमतमें आत्मा सुखदुःखका उपादानकारणभी है और निमित्तकारणभी है अतः सुखदुःखमें अभिन्ननिमित्तोपादा-

नत्व है, व्यर्थविशेषणत्वम्=अनुमानमें व्यर्थविशेषणत्व है, 'प्रेक्षापूर्वक' इस विशेषणका व्यावर्त्य न होनेसे व्यर्थविशेषणत्व है, नच=व्यर्थविशेषणत्व नहीं है, क्यों? प्रेक्षापूर्वकत्वात्, और कार्य्यत्वात्, इस रीतिसे हेतुद्वयमें तात्पर्य्य होनेसे। नचेति। तुम्हारे मतमें दुःखादिकोंको अन्तःकरणोपादानकत्व होनेसे साध्यका वैकल्य है, इति नच वाच्यम्: क्यों? हमारे मतमें अन्तःकरणको परिणामी उपादानत्व होनेपरभी अन्तःकरणरूपसे परिणत जो अज्ञान तादृश अज्ञानका आधारत्व होनेसे विवर्त्तोपादानत्वके अनपायसे। कार्य्यत्वात्। इस हेतुमें सर्वकार्यका निमित्त जो काल तादृश काल घटका जो संयोग तादृश संयोगरूप उभयवादिसम्प्रतिपन्न जो दृष्टान्त तादृश दृष्टान्तका लाभ होनेसे=काल तथा घट इन दोनोंका जो परस्पर संयोग है उस संयोगमें कार्यत्वरूप हेतु रहता है क्योंकि घटके उत्पन्न हो जानेके बाद वह होता है और इसमें अभिन्ननिमित्तोपादानत्वरूप साध्यभी है, क्योंकि घटकालका संयोग है अतः कालभी उसका उपादान है और काल कार्य्यमात्रमें निमित्त तो मानाही जाता है। जगदुपादान, कर्त्ता नहीं है, द्रव्यका उपादानत्व होनेसे, मृत्तिकावत्=मृत्तिकामें द्रव्योपादानत्वभी है, और कर्तृत्वाभावभी है। अथवा जगत्का कर्त्ता द्रव्यका उपादान नहीं है, कुलालादिवत्, इत्यादिसे सत्प्रतिपक्षत्व है, नच=सत्प्रतिपक्षत्व नहीं है, क्यों? वेदके साथ विरोध होनेसे त्वदुपन्यस्त अनुमानोंको हीनबलत्व होनेसे। आद्यानुमानमें जडत्वको और द्वितीयानुमानमें सर्वान्तर्यामित्वको उपाधित्व होनेसे=मृत्तिकामें जडत्वके और कुलालादिमें सर्वान्तर्य्यामित्वके रह जानेसे उपाधिओंमें साध्य व्यापकत्व है, उपादानत्व और कर्तृत्व ये दोनों हेतु ब्रह्ममें है परन्तु जड़त्व और सर्वान्तर्यामित्व ब्रह्ममें नहीं, अतः साधनाव्यापकत्व है। बाधोन्नीतत्वेन पक्षेतरत्वके तुल्य होनेपरभी दोषत्व होनेसे=यद्यपि ये उपाधियाँ पक्षेतरत्व जैसी हैं फिरभी पक्षमें स्वत्साधनसाध्यका जो श्रुतिओंसे बाध है उस बाधको देखकर इन उपाधिओंका उन्नयन किया गया है, अतः इन्हें दूषकता है, जैसे कि,–'वह्निः अनुष्णः कृतकत्वात् जलवत्' यहाँपर वह्नीतरत्व उपाधि है। तस्मात् जगत्का उपादान ब्रह्म है और जगत्का कर्त्ताभी ब्रह्म है, यह सिद्ध हुआ।

इति सरलायां ब्रह्मणोऽभिन्ननिमित्तोपादानत्वे प्रमाणोपपत्तिः।

अथ ब्रह्मणः स्वप्रकाशत्वलक्षणोपपत्तिः।

ननु–परिणममानाविद्याधिष्ठानत्वेनोपादानत्वं वाच्यम्; अधिष्ठानत्वं तु नावेद्यस्य; तद्वेदनार्थं प्रमाणापेक्षायामन्योन्याश्रयात्। नच–स्वप्रकाशतया तदनपेक्षमेवाधिष्ठानत्वमिति–वाच्यम्; स्वप्रकाशताया वक्तुमशक्यत्वात्। तथाहि–किमिदं स्वप्रकाशत्वं वृत्त्यव्याप्यत्वं फलाव्याप्यत्वं वा, अवेद्यत्वे सत्यपरोक्षविषयत्वं वा, तद्योग्यत्वं वा, तद्योग्यत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वं वा, नाद्यः; ब्रह्मणोप्यावरणभङ्गाय चरमवृत्तिव्याप्यत्वात्, न द्वितीयः; अतीतादौ नित्यातीन्द्रिये चातिव्याप्तेः। न तृतीयः सुषुप्त्यादौ व्यवहाराभावेनाव्याप्तेः न चतुर्थः; योग्यत्वरूपधर्मस्य मोक्षकालेऽभावेन तदा

ब्रह्मण्यव्याप्तेः । नापि पञ्चमः अनधिकरणत्वस्यापि धर्मत्वेन मोक्षदशायां तस्याप्यभावेनाव्याप्तेः । अतएव—न तादृगनधिकरणत्वोपलक्षितमपि तत्, तस्यापि धर्मत्वे मुक्तावभावात् इतिचेन्न; पञ्चमपक्षस्यैव क्षोदसहत्वात् ।

अथ सरलायां स्वप्रकाशत्वलक्षणोपपत्तिः ।

शङ्कते नन्विति । परिणामको प्राप्त होती हुई जो अविद्या तादृश अविद्याधिष्ठानत्वेन ब्रह्मको उपादानत्व वाच्य है, और अधिष्ठानत्व तो अवेद्यस्य=अवेद्यका नहीं होता है तद्वेदनार्थम्=मनोऽध्यासानुकूल जो अधिष्ठानरूप ब्रह्मका वेदन उस वेदनके लिए प्रमाणकी अपेक्षा होनेपर अन्योन्याश्रय होनेसे=मनका अध्यास होनेपर प्रमाणरूपा वृत्तिका सम्भव है, और अधिष्ठानज्ञानविधया=अधिष्ठानज्ञानत्वेन कारणीभूत उस प्रमाणवृत्तिके होनेपर मनका अध्यास बनता है अतः अन्योन्याश्रय है स्वप्रकाशत्वेन तदनपेक्ष=उक्त प्रमाणवृत्त्यनपेक्ष ही अधिष्ठानत्व है=मन आदिके अध्यासमें अधिष्ठानविषयक प्रमाणवृत्तिकी आवश्यकता नहीं है; अधिष्ठानको स्वप्रकाशत्व होनेसे—अधिष्ठानको स्वप्रकाशत्व होनेपर मन आदिके अध्यासकी अनुपपत्ति नहीं है क्योंकि अधिष्ठानके अनावरणको ही अध्यासके प्रति हेतुता है वहाँ पूर्णानन्दत्वेन अधिष्ठानमें आवरणके रहनेपरभी चित्वेन अनावरण है तथात्व=स्वप्रकाशत्व होनेसे, अध्यासकी उपपत्ति है; इति नच वाच्यम्; क्यों ? स्वप्रकाशताको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे । तथाहि=अशक्यत्वको दिखलाते हैं=किमिदम्=विचार्यमाणत्वेन प्रस्तुत यह स्वप्रकाशत्व=क्या है ? वृत्त्यव्याप्यत्वम्=वृत्त्यविषयत्वरूप है, या फलाव्याप्यत्वरूप है, या अवेद्यत्वे सत्यपरोक्षव्यवहारविषयत्वयोग्यत्वरूप है, या अवेद्यत्वे सति अपरोक्षव्यवहारविषयत्व—योग्यत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वरूप है=यहाँपर अवेद्यत्वं स्वप्रकाशत्वम् । इतना ही यदि लक्षणकरें तो अतीतानागतपदार्थोंमें और नित्यानुमेयपरमाणुप्रभृतिओंमें और धर्मादिकोंमेंभी लक्षण चला जायगा—अतिव्याप्ति होगी, यद्यपि आगमवेद्यत्व उक्त पदार्थोंमें है और योग्यतानुसार अनुमानवेद्यत्वभी है अतः अवेद्यत्व नहीं कहा जा सकता है तथापि यहाँपर अवेद्यत्वेन फलाव्याप्यत्व विवक्षित है वह तो उक्त पदार्थोंमें है ही अतः अतिव्याप्ति है, उसके वारणकरनेके लिए अपरोक्षव्यवहारविषयत्व कहा । केवल अपरोक्षव्यवहारविषयत्व ही कहें और 'अवेद्यत्वे सति' इतना न कहें तो घटादिमें अतिव्याप्ति है, अतः अवेद्यत्वे सति कहा । इसके कहनेसे घटादिमें अतिव्याप्ति नहीं है, क्योंकि घटादिमें फलव्याप्यत्वरूप वेद्यत्व ही है । व्यवहारमें अपरोक्षत्व विशेषण न दें तो भी अतीतादिमें अतिव्याप्ति है । अतः व्यवहारमें अपरोक्षत्व विशेषण है यदि 'अवेद्यत्वे' सति अपरोक्षव्यवहारविषयत्व ही कहें और योग्यत्व विशेषण न दें तो सुषुप्तिकालावच्छेदेन आत्मामें अव्याप्ति है अतः योग्यत्व कहा, यदि योग्यत्वान्त ही कहें तो भी मुक्तात्मामें अव्याप्ति है क्योंकि उसमें योग्यत्वरूप धर्म नहीं है अतः योग्यत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्व कहा—जिसमें कभीभी योग्यत्व रह जायगा उसमें योग्यत्वात्यन्ताभावाधिकरणत्व नहीं रहेगा ।

विकल्पकर अब द्वैती दोष देता है—नाद्यः=वृत्त्यव्याप्यत्वरूप प्रथम पक्ष नहीं बन सकता है; क्यों ? ब्रह्मकोभी आवरण भङ्गके लिए चरमवृत्तिविषयत्व होनेसे। न द्वितीयः=फलाव्याप्यत्व-रूप द्वितीय पक्षभी नहीं बन सकता है; क्यों ? अतीतादिमें और नित्यातीन्द्रियमें अतिव्याप्ति होनेसे। न तृतीयः=तृतीयपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? सुषुप्तिप्रलयादिमें व्यवहारके अभावसे अव्याप्ति होनेसे। न चतुर्थः चतुर्थपक्षभी ठीक नहीं क्यों ? योग्यत्वरूपधर्मका मोक्षकालमें अभाव होनेसे तदा=मोक्षकालावच्छेदेन ब्रह्ममें अव्याप्ति होनेसे। पञ्चमपक्षभी समीचीन नहीं, क्यों ? अनधिकरणत्वकोभी धर्मत्व होनेसे मोक्ष दशामें अनधिकरणत्वकेभी अभावसे अव्याप्ति होनेसे। अतएव=अव्याप्तिको तदवस्थ होनेसे ही तादृगनधिकरणत्वोप-लक्षितत्वभी तत्=स्वप्रकाशत्व नहीं है; अव्याप्तिको दिखलाते हैं तस्यापि=उपलक्षितत्वकोभी धर्मत्व होनेसे मुक्तिमें उसके अभावसे इति चेन्न; क्यों ? पञ्चमपक्षको ही विचारसहत्व होनेसे। यद्यपि चतुर्थपक्षमेंभी दोष नहीं है क्योंकि लक्ष्यमें लक्षणके असत्त्वका नाम अव्याप्ति है और ब्रह्ममें तो उक्तरूपयोग्यत्व कदाचित् रहता ही है, अतः अव्याप्तिका असम्भव है, तथापि स्वप्र-काशत्वको ब्रह्मस्वरूपतालाभके लिए पञ्चमपक्षका ही अङ्गीकार करते हैं। और वस्तुतः प्रमाणवृत्तिके विना भी व्यवहार्य्यत्वके लिए स्वप्रकाशत्व कहा जाता है और उस स्वप्रकाशत्वको ब्रह्मस्वरूपता न होनेपरभी व्यवहार दशामें उसके सत्वसे ही ब्रह्ममें स्वप्रकाशत्वकी उपपत्ति है, अतः चतुर्थपक्षभी युक्त ही है।

नच मोक्षेऽव्याप्तिः अनधिकरणत्वस्य स्वरूपतया तदापि सत्वात्। नच स्वरूपत्वे लक्षणत्वानुपपत्तिः; त्वन्नये ब्रह्माभिन्नानन्दादौ गुणत्वव्यवहारवत् स्वरूपभूतेऽप्यनधि-करणत्वे लक्षणत्वव्यवहारात्। नच—त्वन्मते योग्यत्वमपि ब्रह्मणि मिथ्येति तदत्यन्ता-भावोऽपि वाच्यः, तथाच कथं तदत्यन्ताभावानधिकरणत्वमिति—वाच्यम्। योग्यत्ववि-रोध्यन्त्यन्ताभावस्य विवक्षितत्वात् स्वाश्रयनिष्ठात्यन्ताभावस्य मिथ्यात्वप्रयोजकस्य स्वाश्रयनिष्ठत्वेनैवाविरोधात्। यद्वा व्यावहारिकात्यन्ताभावो विवक्षितः, ब्रह्मणि च योग्यतात्यन्ताभावस्य ब्रह्मस्वरूपत्वेन तात्त्विकत्वात्। नाप्यवेद्यत्वानिरुक्तिः; फलाव्या-प्यत्वस्यैव तत्त्वात्, आवरणभङ्गे चित एव फलत्वात्। नच—एवं घटादेरपि वृत्तिवेद्य-तया फलविषयत्वाभावात् रूप्यसुखादेरपि अपरोक्षव्यवहारयोग्यतया विशिष्टलक्षणस्या-तिव्याप्तिरिति—वाच्यम्; घटादौ फलव्याप्यत्वस्य समर्थितत्वाद्रूप्यसुखादौ साक्षिभास्य-तयाऽपरोक्षव्यवहारेऽपि प्रमाणजन्यापरोक्षवृत्तिविषयत्वाभावात्।

मोक्षमें उक्त लक्षणकी अव्याप्ति है, नच=अव्याप्ति नहीं है, क्यों ? अनधिकरणत्वको ब्रह्मस्वरूपता होनेसे तदापि=मोक्षमेंभी सत्त्व होनेसे। स्वप्रकाशत्वको स्वरूपता होनेपर लक्षण-त्वकी अनुपपत्ति है, नच=लक्षणत्वकी अनुपपत्ति नहीं है क्यों ? तुम्हारे मतमें ब्रह्मसे अभिन्न आनन्दादिमें जैसे गुणत्वव्यवहार होता है, तैसे स्वरूपभूत अनधिकरणत्वमेंभी लक्षणत्वके

व्यवहारसे। त्वन्मते=तुम्हारे मतमें योग्यत्वभी ब्रह्ममें मिथ्या है अतः योग्यत्वका अत्यन्ताभावभी वाच्य है; फलतः योग्यत्वके अत्यन्ताभावका अनधिकरणत्व कैसे है; इति नच वाच्यम्, क्यों? योग्यत्वविरोधि अत्यन्ताभावको—योग्यान्यवृत्तित्वविशिष्ट अत्यन्ताभावको विवक्षितत्व होनेसे, मिथ्यात्वप्रयोजकस्वाश्रयनिष्ठात्यन्ताभावको स्वाश्रयनिष्ठत्व होनेसे ही अविरोधित्व होनेसे। अथवा व्यावहारिकस्वरूपात्यन्ताभाव विवक्षित है, और ब्रह्ममें योग्यताके अत्यन्ताभावको ब्रह्मस्वरूपत्वसे तात्त्विकत्व होनेसे। तैसे अवेद्यत्वकीभी अनिरुक्ति नहीं है। फलाव्याप्यत्वको ही अवेद्यत्व होनेसे। आवरणभङ्ग होनेपर चित्कोही फलत्व होनेसे। शङ्कते नचेति। घटादिकोभी वृत्तिवेद्यत्व होनेसे, फलव्याप्यत्वके अभावसे और रूप्यसुखादिकोभी अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्व होनेसे विशिष्टलक्षणस्य=समग्रलक्षणकी घटादिमें तथा रूप्यसुखादिमें अतिव्याप्ति है, इति नच वाच्यम्, क्यों? घटादिमें फलव्याप्यत्वको समर्थितत्व होनेसे और रूप्यसुखादिमें साक्षिभास्यतया अपरोक्षव्यवहारके होनेपरभी प्रमाणजन्य जो अपरोक्षवृत्ति तादृशवृत्तिविषयत्वके अभावसे=फलतः घटादिमें अवेद्यत्व नहीं है और शुक्तिरूप्यादिमें प्रमाणजन्यापरोक्षवृत्तिविषयत्वरूप अपरोक्षव्यवहारविषयत्व नहीं है अतः अतिव्याप्ति नहीं।

तथाच फलाव्याप्यत्वसमानाधिकरणतद्वत्त्वस्य पर्यवसिततया सकलदोषनिरासात्। नच ब्रह्मणोऽपि वृत्तिप्रतिबिम्बितचिद्रूपफलभास्यत्वेनासम्भवः, तस्य फलरूपत्वेन तद्विषयत्वाभावात्। नच चित्सुखाचार्यैः तत्स्वभावस्यापि स्फुरणस्य तद्विषयत्वमित्युक्तेरसम्भवः; तस्याचार्यवचसस्तत्प्रयुक्तव्यवहारविषयतया तद्विषयत्वोपचारनिबन्धनत्वात् अयमत्र निष्कर्षः—वृत्तिप्रतिबिम्बितचिज्जन्यातिशययोगित्वं वृत्त्या तत्प्रतिफलितचिता वा अभिव्यक्त्यधिष्ठानचिद्विषयत्वं वा फलव्याप्यत्वम्। चिज्जन्यातिशयश्च नावरणभङ्गः नापि व्यवहारो विवक्षितः, किन्तु भग्नावरणचित्सम्बन्धः। सच घटादावस्ति, नात्मनि; सम्बन्धस्य भेदगर्भत्वात्। एवमुक्तचिद्विषयत्वमपि, भेदघटितं घटादावस्ति नात्मनीति स्थितं प्रतिकर्मव्यवस्थायाम्।

तथाचेति। फलाव्याप्यत्वाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वविशिष्ट जो तत्=प्रमाणजन्यापरोक्षवृत्तिविषयत्वरूप अपरोक्षव्यवहारविषयत्व तद्वत्त्वको स्वप्रकाशत्वेन पर्य्यवसितता होनेसे सकल दोषोंके निराससे। उक्त स्वरूप स्वप्रकाशत्वमें कोई दोष नहीं। ब्रह्मकोभी वृत्तिमें प्रतिबिम्बित जो चिद्रूपफल तादृशफलभास्यत्व होनेसे असम्भव है=लक्षणमें असम्भव दोष है, नच=नहीं है, क्यों? तस्य=ब्रह्मको फलरूपत्व होनेसे, फलविषयत्वके अभावसे। चित्सुखाचार्य्यसे तत्स्वभावस्यापि=चैतन्यस्वरूपज्ञानस्वभाव ब्रह्मकोभी तद्विषयत्वम्=ज्ञानस्वरूपस्फुरणविषयत्व है इस रीतिसे कहा होनेसे असम्भव दोष है, नच=नहीं है, क्यों? तस्य=उक्त आचार्य्यके वचनको तत्प्रयुक्त=स्फुरणप्रयुक्तव्यवहारविषयत्व होनेसे जो तद्विषयत्वका उपचार तादृश—उपचारनिबन्धनत्व होनेसे=ज्ञानप्रयुक्त जो अभिलापरूप व्यवहार होता है तद्विषयत्व ब्रह्ममें है तत्प्रयुक्त

ज्ञानविपयत्वका उपचार है तादृश उपचारको लेकर उक्त चित्सुखाचार्यका वचन है। यह यहाँपर निचोडार्थ है, वृत्तिमें प्रतिविम्बित जो चित् तादृशचिज्जन्य जो अतिशय तादृश अतिशययोगित्व फलव्याप्यत्व है। अथवा वृत्तिसे, या वृत्तिप्रति–फलितचित्से अभिव्यक्त जो अधिष्ठानचित् तादृश–चिद्विपयत्व फलव्याप्यत्व है। और चिज्जन्यातिशय आवरणभङ्गरूप विवक्षित नहीं है तथा व्यवहाररूपभी विवक्षित नहीं है; किन्तु भग्नावरण जो चित् तादृश चित्का सम्बन्धरूप है। सच=वह सम्बन्ध तो घटादिमें है आत्मामें नहीं, सम्बन्धको भेदगर्भत्व होनेसे। इसरीतिसे भेदघटित उक्तचिद्विपयत्वभी घटादिमें है आत्मामें नहीं, यह प्रतिकर्मव्यवस्थामें स्थित है।

नाप्यपरोक्षव्यवहारो दुर्वचः, अपरोक्ष इति शब्दप्रयोगस्यैव विवक्षितत्वात्। नचालौकिकप्रत्यक्षविपयधर्माधर्मादौ तादृशव्यवहारयोगितया अतिव्याप्तिः योगजधर्मातिरिक्तालौकिकप्रत्यासत्तेरनङ्गीकारात् तस्यापि स्वयोग्यव्यवहित एव सामर्थ्यापादकत्वात्, नतु धर्मादौ। तदुक्तं–यत्राप्यतिशयो दृष्ट इत्यादि। एतेन–कश्चायमपरोक्षव्यवहारो नाम? अपरोक्षज्ञानजन्यो वा, अपरोक्षवस्तुविपयो वा, अपरोक्ष इत्याकारो वा, नाद्यः; धर्मादावप्यपरोक्षयोगिज्ञानानुव्यवसायव्याप्तिज्ञानजन्यव्यवहारसत्त्वेनातिव्याप्तेः, न द्वितीयः वस्तुनः आपरोक्ष्यं अपरोक्षज्ञानविपयत्वं चेत्, आत्मनोऽपि घटादिवत् वेद्यत्वापातात्, अपरोक्षव्यवहारविपयत्वं चेत् वस्तुव्यवहारयोरापरोक्ष्ये अन्योन्यसापेक्षतयाऽन्योन्याश्रयात्, न तृतीयः, निराकारशुद्धब्रह्मविपयस्य अखण्डार्थनिष्ठवेदान्तजन्यव्यवहारस्यापरोक्ष इत्याकारायोगादिति–निरस्तम् व्यवहारपदेनाभिवदनस्य विवक्षितत्वेन चरमवृत्तेस्तदनाकारत्वेऽपि क्षत्यभावात्।

तैसे अपरोक्षव्यवहार भी दुर्वच नहीं है; क्यों? (अपरोक्ष,) इत्याकारक शब्दप्रयोगको ही अपरोक्षव्यवहारपदसे, विवक्षितत्व होनेसे अलौकिक प्रत्यक्षके विपय जो धर्माधर्मादिक हैं उन्होंमें (अपरोक्षः) इत्याकारकशब्दप्रयोगरूपव्यवहारयोगित्व होनेसे अतिव्याप्ति है; नच= अतिव्याप्ति नहीं है, क्यों ? योगज–धर्मसे अतिरिक्त सामान्यलक्षणादिरूप अलौकिक प्रत्यासत्तिके अनङ्गीकारसे, तस्यापि=योगजधर्मकोभी स्वयोग्यव्यवहितमें ही सामर्थ्यका आपादकत्व होनेसे धर्मादिमें नहीं=जिस इन्द्रियके योग्य जो पदार्थ हो उस इन्द्रियसे उसी पदार्थका ग्रहण होता है योगजधर्ममें विशेषता यह है कि विप्रकृष्टव्यवहितकाभी ग्रहण होता है परन्तु अन्धे योगीको रूप दीखनेलगे अथवा किसीभी योगीको श्रोत्रसे रूप दीखनेलगे ऐसा नहीं है। सो कहा है–यत्रेति (श्लो० वा० सू० २ श्लो० ११४) एतेन–अपरोक्षव्यवहार नामधारी क्या है ? क्या अपरोक्षज्ञानसे जन्य जो व्यवहार उसका नाम अपरोक्षव्यवहार है या अपरोक्षविपयकव्यवहारका नाम अपरोक्षव्यवहार है, नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है क्यों ? धर्मादिमेंभी अपरोक्ष जो योगिओंका ज्ञान तादृश ज्ञानजन्यव्यवहारका सत्त्व होनेसे और

अपरोक्ष जो अनुव्यवसाय तादृश अनुव्यवसायजन्यव्यवहारका सत्त्व होनेसे, तैसे अपरोक्ष जो व्याप्तिज्ञान तादृश व्याप्तिज्ञानजन्यव्यवहारका सत्त्व होनेसे अतिव्याप्तिसे। न द्वितीयः= अपरोक्षवस्तुविषयरूप द्वितीयपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? वस्तुका आपरोक्ष्य यदि अपरोक्षज्ञानविषयत्वरूप है तब तो आत्माकोभी घटादिवत् वेद्यत्वका आपात है, अतः। और अपरोक्षव्यवहारविषयत्वरूप यदि वस्तुका आपरोक्ष्य है तब तो वस्तु तथा व्यवहार इन दोनोंको आपरोक्ष्यमें परस्पर सापेक्षत्व होनेसे अन्योन्याश्रय है अतः। न तृतीयः=तृतीयपक्षभी ठीक नहीं; क्यों ? निराकार–शुद्धब्रह्मनिष्ठ जो अखण्डार्थनिष्ठवेदान्तजन्यव्यवहार उस व्यवहारमें (अपरोक्षः) इस आकारके अयोगसे, यह कथन खण्डित हुआ, एतेन शब्दका अर्थ दिखलाते हैं–व्यवहार पदसे अभिवदनको विवक्षितत्व होनेसे चरमवृत्तिमें 'अपरोक्षः' इत्याकारत्वके न होनेपरभी क्षतिके अभावसे।

नचानुपलब्धिगम्यतया अवेद्ये अपरोक्ष इति लोकव्यवहारसत्त्वेनाभावेऽतिव्याप्तिः; प्रमाणिकव्यवहारस्य विवक्षितत्वात् ननु–अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वं न तावत्सर्वान्प्रति; चैत्रज्ञाने मैत्रस्य तदभावात्, नापि ज्ञानं प्रति; तस्याव्यवहर्तृत्वात् नापि ज्ञानाश्रयं प्रति; ज्ञानस्य चितोऽनाश्रितत्वादिति–चेन्न; प्रमातारं यं कश्चित् प्रत्येवापरोक्षव्यवहार-योग्यत्वं विवक्षितम् प्रमाता चाहमर्थ एव सर्वसम्मतः। यत्तूक्तं चैत्रस्य ज्ञाने मैत्रस्याव्य-वहार इति, तस्य चैत्रज्ञाननिमित्तको मैत्रस्य व्यवहार इति वार्थः चैत्रज्ञानविषयको मैत्र-स्याव्यवहार इति वार्थः। आद्ये चैत्रज्ञानेन मैत्रस्याव्यवहारेऽपि स्वज्ञानेनैव घटे ब्रह्मणि चापरोक्षव्यवहारसम्भवेन व्यर्थविशेषणत्वासम्भवयोरभावात्। द्वितीये चैत्र-ज्ञाने तादृक्व्यवहाराभावेऽपि क्षत्यभावात्। अस्माकमपि हि चितिरेव स्वप्रकाशा नतु चैत्रज्ञानत्वेन व्यपदिश्यमानवृत्त्युपहितचिदपि वृत्तेरस्वप्रकाशत्वात्। एवञ्च सर्वप्रमातॄन् प्रति तादृग्व्यवहारविषयतायोग्यत्वमपि सङ्गच्छत एव।

नचेति। अनुपलब्धिप्रमाणसे गम्यत्व होनेसे फलाव्याप्यत्वविशिष्ट जो अवेद्यरूप अभाव है उस अभावमें (अपरोक्षः) इत्याकारक लोकव्यवहारका सत्व होनेसे अतिव्याप्ति है, नच=अतिव्याप्ति नहीं है, क्यों ? व्यवहारपदसे प्रामाणिक व्यवहारको विवक्षितत्व होनेसे। शङ्कते नन्विति। अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्व सर्वके प्रति नहीं हो सकता है, चैत्रके ज्ञानमें मैत्रके आपरोक्ष्यव्यवहार–योग्यत्वके अभावसे; ज्ञानके प्रतिभी नहीं हो सकता है, ज्ञानको व्यवहर्तृत्व न होनेसे। तैसे ज्ञानाश्रयके प्रतिभी नहीं बन सकता है ज्ञानको चित्के आश्रितत्व न होनेसे। इति चेन्न; क्योंकि जिस किस प्रमाताके प्रति ही अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्व विवक्षित है और प्रमाता तो सर्वसम्मत अहमर्थरूप ही है। 'चैत्रके ज्ञानमें मैत्रका अव्यवहार है' यह जो कहा है, तस्य=उस कथनका क्या–' चैत्रज्ञाननिमित्तक मैत्रका अव्यवहार है, यह अर्थ है, अथवा चैत्रज्ञानविषयक मैत्रका अव्यवहार है यह अर्थ है, आद्ये=आदिमपक्षमें चैत्रज्ञानसे

मैत्रका व्यवहार न होनेपरभी स्वज्ञानेनैव=मैत्रज्ञानसे ही घटमें और ब्रह्ममें अपरोक्षव्यवहारका सम्भव होनेसे, व्यर्थविशेषणत्व और असम्भव इन दोनोंके अभावसे। द्वितीय पक्षमें चैत्रज्ञानमें तादृग्व्यवहारका अभाव होनेपरभी हानिके अभावसे। क्षत्यभावको ही स्पष्ट करते हैं–हमारे मतमेंभी 'चिति ही स्वप्रकाशा है' नकि चैत्रज्ञानत्वेन व्यपदिश्यमानवृत्त्युपहितचित् भी, वृत्तिको अस्वप्रकाशत्व होनेसे। और ऐसा होनेपर सर्व प्रमाताओंके प्रति अपरोक्षव्यवहारविषयत्वयोग्यत्व भी सङ्गत होता ही है=चैत्रज्ञानत्वेन मैत्रज्ञानत्वेन, इत्यादिके निकाल देनेसे उक्तविषयोग्यत्व सङ्गत होता ही है।

ननु—अवेद्यत्वे सत्यपरोक्षव्यवहारविषयत्वं तद्योग्यत्वं च व्याहतम्; तदपरोक्षव्यवहारे तद्विषयकस्फुरणस्य हेतुत्वादितिचेन्न; अन्यत्र तद्विषयस्य तद्व्यवहारजनकत्वेऽपि स्फुरणस्य स्वाविषयस्य स्वस्मिन् व्यवहार जनकत्वम्; स्वभावभेदात्,। नच घटादावपि तथैवास्तु, तेषामस्फुरणरूपत्वेन तद्विषयत्वं विना नियामकान्तराभावात्, तार्किककल्पितस्यानुव्यवसायस्यापि घटज्ञानज्ञानत्वापेक्षया लघुना घटज्ञानत्वेनैव घटज्ञानव्यवहारहेतुत्वकल्पनाच्च ननु अनवस्थाभिया स्फुरणान्तरानङ्गीकारात् स्वस्यैव स्वविषयत्वमस्तु; अन्यत्र क्लृप्तस्य तद्विषयत्वस्य नियामकस्य त्यक्तुमयुक्तत्वात्, अन्यथा प्रमेयत्वस्य स्ववृत्तित्वं विनैव स्वत एव प्रमेयमिति व्यवहारजनकत्वोपपत्त्या केवलान्वयित्व-भङ्ग-प्रसङ्ग इति–चेन्न; अनवस्थया स्फुरणान्तरत्यागवदभेदे भेदनियतस्य विषयविषयिभावस्याप्ययुक्ततया त्यागोपपत्तेः प्रमेयत्वादौ केवलान्वयित्वभङ्गस्येष्टत्वात्।

शङ्कते नन्विति। अवेद्यत्वे सति अपरोक्षव्यवहारविषयत्व या अवेद्यत्वे सति अपरोक्षव्यवहारविषययोग्यत्व ब्रह्ममें व्याहत है, क्यों? तद्विषयक अपरोक्षव्यवहारमें तद्विषयक स्फुरणको हेतुत्व होनेसे–तदपरोक्षव्यवहारे=ब्रह्मविषयक (अपरोक्षम्) इत्याकारक शब्दप्रयोगमें ब्रह्मविषयक स्फुरणको हेतुत्वात्=व्यवहार विषयत्वेन अपेक्षितत्व होनेसे='घटः अपरोक्षः' इस व्यवहारमें जैसे विषयत्वेन घट अपेक्षित होता है तैसे 'ब्रह्मापरोक्षम्' इस व्यवहारमेंभी ब्रह्मस्फुरणका तादात्म्यविषयत्वेन अपेक्षित है यह भाव है। इति चेन्न; क्यों? अन्यत्र तद्विषयको तद्व्यवहारजनकत्व होनेपरभी स्वाविषयक स्फुरणको स्वमें 'स्फुरणमपरोक्षम्' इत्याकारकव्यवहारजनकत्व है। उक्त पङ्क्तिओंका सरलार्थ यह है कि,–अवेद्यत्व कहकर जो अपरोक्षव्यवहारविषयत्व कहा है, वह ठीक नहीं क्योंकि जो पदार्थ वेद्य होता है, वही अपरोक्षव्यवहारका विषय होता है, यह घटादिमें देखा गया है और आपने ब्रह्ममें 'अपरोक्षम्' इत्याकारक शब्दप्रयोगरूप जो अपरोक्ष व्यवहार माना है वहभी ब्रह्मविषयक ज्ञान–जन्य माना है, ऐसी दशामें ब्रह्मविषयक स्फुरणात्मक अपरोक्षव्यवहारकोभी ब्रह्मविषयक स्फुरणजन्य मानना चाहिए, फलतः यदि अवेद्यत्व कहते हो तो अपरोक्षव्यवहारविषयत्व व्याहत है और अपरोक्षव्यवहारविषयत्व कहते हो तो वेद्यत्वको गलग्रहन्यायसे आजानेसे अवेद्यत्व व्याहत है, ऐसी शङ्का

होनेपर समाधान यह किया कि, अन्यत्र तद्विषयकव्यवहारमें तद्विषयकज्ञानकी आवश्यकता होनेपरभी स्फुरणात्मकव्यवहारमें स्फुरणको स्वेतर स्फुरणकी अपेक्षा नहीं होती है,–विषयान्तर-सञ्चाराभावसे, सुषुप्त्याद्यभावापत्तिसे, और अननुभवसे, तथा अनवस्थाकी आपत्तिसे, और कहीं परभी स्फुरणोंकी धाराकी विश्रान्ति होनेपर विषयपर्य्यन्त संशयाकान्तिसे । इसी अर्थको दिखलाते हैं–स्वभावभेदात्=पदार्थोंके स्वभाववैचित्र्यसे । घटादावपि तथैवास्तु=जैसे स्फुरण स्वाविषयक हुआ भी स्वभाववैचित्र्यसे अपरोक्षव्यवहारका हेतु होता है, तैसे घटादिकभी स्वाविषयक होकर स्वभावविशेषसे अपरोक्षव्यवहारको उत्पन्न करें, घटादिविषयक ज्ञानके माननेकी क्या आवश्यकता है, नच=ऐसा नहीं हो सकता है, क्यों ? तेषाम्=घटादिकोंको स्फुरणरूपत्व न होनेसे तद्विषयत्वके विना नियामकान्तरके अभावसे यद्विषयक ज्ञानसे यद्विषयक व्यवहार होता है तद्विषयकज्ञान तद्विषयकव्यवहारका जनक है, घटविषयक ज्ञानको यदि घटविषयकव्यवहारके प्रति हेतु न मानें तो तो घटविषयकव्यवहार ही न होगा, अन्य नियामकके अभावसे । ननु–तथापि स्फुरणको स्वविषयत्व आवश्यक है, यदि स्वविषयत्व न होगा तो स्फुरणविषयकवृत्त्यभावकालमें स्फुरणविषयकव्यवहार न होगा, तार्किक लोगभी ज्ञानविषयकव्यवहारके प्रति ज्ञानज्ञानत्वेन हेतुता मानते हैं, तहाँ कहते हैं–तार्किकोंसे कल्पित अनुव्यवसायकोभी घटज्ञानज्ञानत्वकी अपेक्षासे लघुभूतघटज्ञानत्वेन ही घटज्ञानविषयकत्वव्यवहारमें हेतुत्वकल्पनका औचित्य होनेसे । फलतः अनुव्यवसायका अङ्गीकार निष्फल है व्यवसायको ही स्वप्रकाशत्वका सम्भव होनेसे । ज्ञानविषयक व्यवहारके अन्यकारणोंके होनेपर ज्ञानविषयक ज्ञानके न होनेपरभी ज्ञानविषयक व्यवहार होता है, इस लिएभी व्यवसायसे ही व्यवसायविषयकव्यवहार मानना उचित है । अनुव्यवसायकी आवश्यकता नहीं । शङ्कते नन्विति । अनवस्थाभिया=अनवस्थादिके भयसे स्फुरणविषयकस्फुरणान्तरके अनङ्गीकारसे स्वको ही स्वविषयत्व रहो । व्यवहारके प्रति अन्यत्र क्लृप्त जो तद्विषयत्वरूप नियामक उस नियामकको त्यागनेके लिए अयुक्तत्व होनेसे। अन्यथा प्रमेयत्वको स्ववृत्तित्वके विना ही स्वतः ही (प्रमेयम्) इत्याकारक व्यवहारके प्रति जनकत्वकी उपपत्तिसे, केवलान्वयित्वके भङ्गका प्रसङ्ग है, इति चेन्न; क्यों ? अनवस्थादिके भयसे जैसे स्फुरणविषयक स्फुरणान्तरका त्याग है, तैसे अभेदमें भेदव्याप्य विषयिविषयभावकोभी अयुक्तता होनेसे उसके त्यागकी उपपत्तिसे । और प्रमेयत्ववाच्यत्वादिमें केवलान्वयित्वके भङ्गको इष्टत्व होनेसे ।

एवं गतिरपि ग्राम इव स्वस्मिन्नपि स्वकार्यं करोत्विति–वाच्यम्, भेदाविशेषात्तन्तुरिव मृदपि पटं करोत्विति अस्याप्यापत्तेः। स्वभावभेदेन परिहारश्च सर्वत्र समानः। यद्वा–चिदविषयस्वरूपत्वमेव स्वप्रकाशत्वम्, चिदन्यस्य सर्वस्य चिद्विषयत्वात्तुच्छस्य निःस्वरूपत्वेन नातिव्याप्तिशङ्का । नाप्यसंभवः स्वात्मनि वृत्तिविरोधेन छिदाया अच्छेद्यत्ववत् स्वस्य स्ववेद्यत्वायोगात् । नच–एवं मिथ्यात्वानुमितेरपि अस्वविषयत्वापत्तिरिति–वाच्यम्; स्वपरसाधारणस्यैकस्य विषयतानियामकस्य तत्र सत्वेन विशेषात् ।

नचेति। गति भी ग्रामकी तरह स्वमेंभी स्वकार्य करे=ज्ञानविषयकज्ञानके न होनेपरभी जैसे ज्ञान स्वकार्य्यरूप व्यवहारको स्वमें करता है तैसे गतिविषयक गतिके न होनेपरभी गति जैसे ग्राममें ग्रामपुरुषसंयोगरूपकार्य्यको करती है, तैसे स्वमेंभी ग्रामपुरुषसंयोगरूपकार्यको करे, क्योंकि स्वाविषयत्वसमान है; इति न च वाच्यम्; क्यों ? उभयत्र भेदके अविशेषसे तन्तु जैसे पटको करते हैं तैसे मिट्टीभि पटको करे, इस अर्थकीभी आपत्तिसे। और स्वभावभेदसे परिहार तो सर्वत्र समान है=जैसे तन्तुओंसे पट भिन्न है तैसे मृत्तिकासेभी पट भिन्न है, तहाँ तन्तुओंसे ही पट होता है मृत्तिकासे क्यों नहीं होता है। यदि प्रागभावको नियामक कहा जाय तो भी प्रश्न बना ही रहता है कि पटका प्रागभाव तन्तुओंमें ही क्यों रहता है मृत्तिकामें क्यों नहीं रहता है यही प्रश्न शक्ति और योग्यतादिमेंभी बन सकता है, अतः अन्तमें व्यवहारनिर्वाहार्थ निरनुयोज्य स्वभाव मानना पडता है, इस विषयका सङ्क्षेपसे उल्लेख हमने 'आत्मनिरूपण' नामक ग्रन्थमें किया है।—तथाच ज्ञानमें ही ऐसा स्वभाव माना जाता है कि, स्वाविषय हुआभी स्वविषयक व्यवहारको उत्पन्न करता है। गत्यादिमें नहीं। स्वप्रकाशत्वका अन्य लक्षण दिखलाते हैं यद्वेति। चिद्विषयस्वरूपत्व ही स्वप्रकाशत्व है; 'चिद्विषय' इतना ही कहें और स्वरूपत्व न कहें तो शशशृङ्गादिमें अतिव्याप्ति है, अतः स्वरूपत्व कहा, स्वरूपत्वमात्र ही कहें तो घटादिमें अतिव्याप्ति है, अतः चिद्विषयत्वकहा; इसी अर्थको दिखलाते हैं—चित्से अन्य सर्वको चिद्विषयत्व होनेसे उसमें, और तुच्छको निःस्वरूपत्व होनेसे तुच्छमें, अतिव्याप्तिकी शङ्का नहीं है। इस लक्षणमें असम्भव दोषभी नहीं है, क्यों ? स्वात्मनि=स्वस्वरूपमें वृत्तिके विरोधसे जैसे छिदाको छेद्यत्व नहीं है तैसे स्वको स्ववेद्यत्वके अयोगसे। ऐसा होनेपर मिथ्यात्वानुमितिकोभी स्वविषयत्वाभावकी आपत्ति है=जैसे ज्ञानविषयकज्ञान नहीं होता है=ज्ञान स्वको विषय नहीं करता है तैसे मिथ्यात्वसाधिका अनुमितिभी स्वके मिथ्यात्वको न विषय करेगी तथा च उसीको लेकर द्वैतापत्ति होगी इति नच वाच्यम्; क्यों ? स्वपरसाधारणब्रह्मज्ञानान्याबाध्यत्वविशिष्टतुच्छब्रह्मान्यत्वरूप जो एक, विषयता=अनुमितिविषयताका नियामक तादृशनियामकका तत्र=मिथ्यात्वानुमितिस्थलमें सत्व होनेसे विशेष है, अतः। स्वशब्दसे अनुमितिका ग्रहण है।

अतएव यथा छिदादौ पराशुसंयोगो न स्वपरसाधारण इति स्वस्मिन्वृत्तिविरोधः, तथा प्रकृतेऽपि। नच—तर्हि छिदाकार्यस्य छिदायामिव चिज्जन्यव्यवहारस्य चित्यनापत्तिरिति—वाच्यम्, फलदर्शनस्यैव छिदापेक्षया स्वभावभेदनियामकत्वात्। यद्वा स्वव्यवहारे स्वातिरिक्तसंविदनपेक्षत्वं स्वावच्छिन्नसंविदनपेक्षत्वं वा स्वप्रकाशत्वम्। नच—स्ववेद्यत्वेऽप्युपपत्त्या स्वाभिमतप्रकाशत्वानुपपत्तिः; स्ववेद्यत्वस्य बाधितत्वेन तदादायोपपत्त्यसंभवात्। ननु—स्वप्रकाशत्वधर्मस्य तात्विकत्वे अद्वैतव्याघातः; अतात्त्विकत्वे अस्वप्रकाशत्वस्यैव—तात्विकत्वापत्त्या तत्साधकानुमानादेर्बाध इति—चेन्न; स्वरूपत्वस्योक्तत्वात्। नच—परेषामिदमिष्टम्; वेद्यत्वविरोधिस्वरूपस्य परैरनङ्गीकारात्।

इत्यद्वैतसिद्धौ ब्रह्मस्वप्रकाशत्वलक्षणोपपत्तिः।

अतएव छिदादौ=छिदां छिनत्ति इत्यादिमें परशुसंयोगः=च्छिदाकर्मत्व स्वपरसाधारण नहीं है, अतः स्वस्मिन्=छिदामें वृत्तिविरोधः=छिदाके प्रति अकर्मत्व है तैसे ज्ञानमें भी ज्ञानके प्रति अकर्मत्व है। तर्हि=तब तो जैसे छिदाकार्यस्य=द्वैधीभावरूप छिदाकार्यका छिदामें अभाव है तैसे चितिजन्यव्यवहारकी भी चितिमें अनापत्ति है इति नच वाच्यम् क्यों? फलदर्शनको ही छिदाकी अपेक्षा स्वभावभेदका नियामकत्व होनेसे=छिदामें छिदाकार्य प्रत्यक्षादिक तो विषयता सम्बन्धसे होते ही हैं, द्वैधीभावादिरूप कार्य नही होता है, तैसे ही चितिमें भी सर्वचित्कार्य नहीं होता है चिज्जन्यघटादिव्यवहारका चितिमें अभाव होनेसे तस्मात् फलदर्शनही नियामक है जहाँपर जो फल देखनेमें आवे वहाँपर तदनुकूल स्वभावकी कल्पना कर लेनी चाहिए एकत्रत्य दर्शनादर्शनसे सर्वत्रत्यदर्शनादर्शनकी कल्पना नहीं करनी। लक्षणान्तर दिखलाते हैं–यद्वेति। अथवा स्वव्यवहारमें स्वातिरिक्तसम्विदनपेक्षत्वरूप स्वप्रकाशत्व है, या स्वव्यवहारमें स्वावच्छिन्नसम्विदनपेक्षत्वरूप स्वप्रकाशत्व है। स्ववेद्यत्वेऽपि उपपत्त्या= स्ववेद्यत्व होनेपर भी 'स्वव्यवहारे' इत्यादि लक्षणद्वयकी उपपत्ति होनेसे स्वाभिमतस्वप्रकाशत्वकी सिद्धि नहीं है इति नच वाच्यम्, क्यों? स्ववेद्यत्वको बाधितत्व होनेसे। स्ववेद्यत्वको लेकर उपपत्तिके अभावसे। शङ्कते नन्विति। स्वप्रकाशत्वरूपधर्मका तात्त्विकत्व होनेपर अद्वैतमें व्याघात है और स्वप्रकाशत्वका अतात्त्विकत्व होनेपर अस्वप्रकाशत्वके ही तात्त्विकत्वकी आपत्तिसे स्वप्रकाशत्वसाधक अनुमानादिका बाध है इति चेन्न, क्यों? स्वरूपत्वको उक्तत्व होनेसे स्वप्रकाशत्वको ब्रह्मस्वरूपता है यह इस प्रकरणमें भी कह चुके हैं। परेषाम्=द्वैतिओंको इदम्= स्वरूपभूत स्वप्रकाशत्व इष्ट है; नच=इष्ट नहीं है; क्यों? वेद्यत्वविरोधिस्वरूपका परोंसे अङ्गीकार न होनेसे।

इति सरलायां स्वप्रकाशत्वलक्षणोपपत्तिः।

अथानुभूतिस्वप्रकाशत्वोपपत्तिः।

नच प्रमाणाभावः। अनुभूतित्वहेतोर्व्यतिरेकिण एव प्रमाणत्वात्। ननु–अत्र साध्याप्रसिद्धिः, नच–वेद्यत्वं किञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि, धर्मत्वादित्यनुमानेन सामान्यतः प्रसिद्धिरिति–वाच्यम् अवेद्यत्वप्रसिद्धावपि 'विशिष्टसाध्याप्रसिद्धेः' तदवस्थत्वात्। नच–अनुभूतित्वेनापि तावदेव साध्यम्, वेद्यत्वस्य वृत्तिव्याप्यत्वरूपत्वे तदभावस्य चरमवृत्तिव्याप्यानुभूतौ बाधात्, फलव्याप्यत्वरूपत्वे तु तदभावस्य मम घटादौ तव धर्मादौ शुक्तिरूप्यादौ च पक्षभिन्ने प्रसिद्धत्वेनासाधारणनैकान्तिकतापत्तेः, अस्वप्रकाशत्वरूपत्वे प्रतियोग्यप्रसिद्ध्याऽप्रसिद्धिरेव। किञ्चात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं कुतश्चिद्व्यावर्त्तते चेत् तत्रैव व्यभिचारः, नचेदत्र व्यभिचार इति चेन्न; चिदविषयस्वरूपत्वरूपं स्वप्रकाशत्वमनुभूतित्वेन यदा साध्यते, तदा वेद्यत्वं चिद्विषयत्वमेव चिदन्यमात्रवृत्तिपक्षः; अत्यन्ताभावप्रतियोगिस्वरूपत्वं साध्यम्।

अथ सरलायामनुभूतिस्वप्रकाशत्वोपपत्तिः ।

नचेति । प्रमाणाभावः=स्वप्रकाशत्वमें प्रमाणका अभाव है, नच=प्रमाणका अभाव नहीं है; क्यों ? अनुभूतित्व हेतुरूप व्यतिरेकिको ही प्रमाणत्व होनेसे=' अनुभूतिः स्वप्रकाशा, अनुभूतित्वात्, यन्नैवम्, तन्नैवम् यथा घटः ' इस व्यतिरेकि अनुमानको ही प्रमाणत्व होनेसे । शङ्कते नन्विति । अत्र=उक्त व्यतिरेक्यनुमानमें साध्यकी अप्रसिद्धि है; सिद्धान्तीके अनुमानको दिखलाकर द्वैती दोष देता है–नचेति । वेद्यत्वरूपधर्म यत्किञ्चिन्निष्ठ जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका प्रतियोगि है, धर्मत्व होनेसे शौक्ल्यवत्, इस अनुमानसे सामान्यतः साध्यकी प्रसिद्धि है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? इस अनुमानसे अवेद्यत्वकी प्रसिद्धि होनेपरभी विशिष्टसाध्यकी अप्रसिद्धिको तदवस्थ होनेसे । यदि यों कहोकि–अनुभूतित्वरूप हेतुसेभी तावदेव=अवेद्यत्वमात्र ही साध्य है–अनुभूतिः, अवेद्या, अनुभूतित्वात् इस रीतिसे अनुमान करणीय है, तो ऐसा नहीं कहना, क्यों ? वेद्यत्वको वृत्तिव्याप्यत्वरूपत्व होनेपर तद्भावस्य=वृत्तिव्याप्यत्वरूप–वेद्यत्वाभावको चरमवृत्तिकी व्याप्य जो अनुभूति तादृश अनुभूतिमें बाध होनेसे=चरमवृत्तिव्याप्यत्वरूप वेद्यत्व अनुभूतिमें है । अतः वृत्तिव्याप्यत्वरूप वेद्यत्वाभाव नहीं है तथा च पक्षमें साध्याभावरूप बाध है । और वेद्यत्वको फलव्याप्यत्वरूपत्व होनेपर तो मेरे मतमें पक्षसे भिन्न घटादिमें और तुम्हारे मतमें पक्षसे भिन्न धर्मादिमें और पक्षसे भिन्न शुक्तिरूप्यादिमें तद्भावस्य=फलव्याप्यत्वरूप वेद्यत्वके अभावको प्रसिद्धत्व होनेसे, असाधारणानैकान्तिकताकी आपत्तिसे=वेद्यत्वाभावरूप अवेद्यत्व हमारे मतसे घटादिमें और आपके मतसे धर्मादिमें है ही तथा च घटादि तथा धर्मादि सपक्ष हुए; परन्तु सपक्षरूप उक्त पदार्थोंमें अनुभूतित्वरूप हेतु नहीं है, तथा च इसमें असाधारणानैकान्तिकता दोष है । अस्वप्रकाशत्वरूपत्वे=वेद्यत्वको अस्वप्रकाशत्वरूपत्व होनेपर स्वप्रकाशत्वरूप प्रतियोगीकी अप्रसिद्धिसे अप्रसिद्धि ही है । किञ्च अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व किसीसे व्यावृत्त होता है या नहीं, यदि कहींसे व्यावृत्त होता है तो तत्रैव=जिससे व्यावृत्त होता है तदवच्छेदेन व्यभिचार है, यदि कहींसे नहीं व्यावृत्त होता है तो अत्रैव=अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वमें ही व्यभिचार है= अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व सकल धर्मोंमें रहता है या इसका किसीभी धर्ममें अभावभी रहता है, यदि अन्तिम पक्षका अङ्गीकार हो तो जिस धर्ममें अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वका अभाव रहता है तदवच्छेदेन व्यभिचार है क्योंकि धर्मत्वरूप हेतुतो उस धर्ममेंभी है, परन्तु अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप साध्य नहीं । यदि प्रथमपक्षका अङ्गीकार हो तब तो धर्मधर्मिभावको कामचारता होनेसे, अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व केवलान्वयि सिद्ध हुआ, तब अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वमें अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप साध्य नहीं है, और धर्मत्वरूप हेतु उसमेंभी है, फलतः अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वमें व्यभिचार है । इति चेन्न; क्यों ? चिद्विषयस्वरूप स्वप्रकाशत्व जब अनुभूतित्वरूप हेतुसे सिषाधयिषित होता है तब वेद्यत्व चिद्विषयत्वरूप ही है और तद्रूपही चिदन्य मात्रमें वृत्ति साध्यप्रसिद्धिकरत्वेन प्रस्तुत अनुमानमें पक्ष है=चिद्विषयस्वरूपत्वरूप

स्वप्रकाशत्व है। इस लक्षणको सामने रखकर 'वेद्यत्वं यत्किञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि धर्मत्वात्' इस अनुमानमें चित्प्रतियोगिकभेदविशिष्टकृत्स्नपदार्थवृत्ति चिद्विषयत्वरूपवेद्यत्व पक्षत्वेन लेना, तथा च उपरि प्रदर्शितनिश्चितसाध्यवद्व्यावृत्तत्वरूप असाधारणानैकान्तिकत्व नहीं है। और अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपत्व साध्य है।

यथाच वृत्तिप्रतिफलितचिद्विषयता घटादौ न ब्रह्मणि, तथोपपादितमिति नासाधारण्यबाधौ। नाप्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वे व्यभिचारः, अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य मिथ्यात्वेनात्यन्ताभावप्रतियोगिन्येव अत्यन्ताभावप्रतियोगितया यन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं तस्य केवलान्वयित्वाभावात्। नचैवं ब्रह्मणि चिद्विषयत्वेऽपि तदत्यन्ताभावोपपत्त्याऽर्थान्तरं घटादावप्येवं साध्यसत्वेनासाधारण्यश्चेति–वाच्यम् चिद्विषयत्वविरोध्यत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपस्य साध्यत्वान्नार्थान्तरासाधारण्ये, घटादौ तयोः सहावस्थित्या अविरोधात्, ब्रह्मणि विरोधात्, नच तर्हि विरोधित्वांशमादाय पुनरप्रसिद्धिः वेद्यत्वं विरोध्यत्यन्ताभावप्रतियोगि, अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वात् घटत्ववदिति प्रसिद्धिसम्भवात्।

और जिस रीतिसे वृत्तिप्रतिफलितचित्की विषयता घटादिमें है ब्रह्ममें नहीं है, तिस रीतिसे उपपादित हो चुका है अतः उपर्युक्त बाध तथा असाधारण ये दोनों दोष नहीं हैं अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वको अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व होनेपर यन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वमें अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व है उसमें व्यभिचारभी नहीं है–अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वप्रतियोगिकात्यन्ताभावाधिकरणमें व्यभिचार भी नहीं है; क्यों? अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वको मिथ्यात्व होनेसे, अत्यन्ताभावप्रतियोगिनिष्ठ जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावकाही प्रतियोगित्व होनेसे अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वमें यन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्व है उसको केवलान्वयित्वके अभावसे। शङ्कते नचेति। ऐसा होनेपर ब्रह्ममें चिद्विषयत्वके होनेपर भी तदत्यन्ताभावोपपत्त्या=चिद्विषयत्वके अत्यन्ताभावकी उपपत्तिसे अर्थान्तर है=चिद्विषयत्वरूप वेद्यत्वके रहते हुए भी उसका अत्यन्ताभाव एक पारिभाषिकही अत्यन्ताभाव होगा और उससे हमारे इष्टमें किसी भी प्रकारका व्याघात नहीं उपस्थित होता है, अतः अर्थान्तरता है;–और ऐसा होनेपर घटादिमें भी साध्यका सत्त्व होनेसे प्रथमोक्त असाधारण्य भी है इति नच वाच्यम्, क्यों? चिद्विषयत्व विरोधि जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपको साध्यत्वात्=चिद्विषयत्वरूप-पक्षमें साध्यत्व होनेसे अर्थान्तरता और असाधारण्य ये दोनों नहीं है घटादिमें तयोः=चिद्विषयत्व और चिद्विषयत्व–अत्यन्ताभाव इन दोनोंकी सह अवस्थिति होनेसे; इन दोनोंके अविरोधसे घटादिमें जो चिद्विषयत्वका अत्यन्ताभाव रहता है वह सिषाधयिषितसाध्यका घटक नहीं अतः असाधारण्य नहीं, ब्रह्ममें रहनेवाले अत्यन्ताभावका चिद्विषयत्वके साथ विरोध होनेसे उस अत्यन्ताभावको पारिभाषिकमात्र नहीं कह सकते हैं अतः अर्थान्तरता नहीं है। तब

विरोधित्वांशको लेकर पुनः अप्रसिद्धि है; नच=अप्रसिद्धि नहीं है; क्यों ? वेद्यत्व, विरोधि जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका प्रतियोगी है, अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व होनेसे घटवत्, इस अनुमानसे प्रसिद्धिका सम्भव होनेसे।

यदा तु अवेद्यत्वे सति अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वरूपं स्वप्रकाशत्वं पूर्वानुमाने साध्यं, तदा, फलव्याप्यत्वरूपं वेद्यत्वं पक्षः, अपरोक्षव्यवहारयोग्यकिञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वं साध्यम् तथाचापरोक्षव्यवहारयोग्यत्वसमानाधिकरणावेद्यत्वस्य सामान्यतः प्रसिद्ध्या नाप्रसिद्धविशेषणत्वासाधारण्ये। अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वं किंचिन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगीत्यादिविकल्पनिबन्धनदोषः परिहृत एव।

और जब अवेद्यत्वे सत्यपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वरूप स्वप्रकाशत्व पूर्वानुमाने='अनुभूतिः स्वप्रकाश' इत्यादिरूप पूर्वानुमानमें साध्य है, तब फलव्याप्यत्वरूप वेद्यत्व पक्ष है। और अपरोक्षव्यवहारयोग्य जो किञ्चित् तन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्व साध्य है, तथाच अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वसमनाधिकरण जो अवेद्यत्व तादृश अवेद्यत्वकी सामान्यतः प्रसिद्धि होनेसे अप्रसिद्धविशेषणत्व असाधारण्य ये दोनों नहीं। अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व किञ्चिन्निष्ठप्रतियोगित्यन्ताभावप्रतियोगि न वा, एतद्रूप जो विकल्प तादृशविकल्पनिबन्धन जो दोष=अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व यदि किञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगी है तो यन्निष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगि है उसमें व्यभिचार है यदि नहीं है तो अत्यन्ताभावप्रतियोगित्वमें व्यभिचार है एतद्रूप दोष वह तो परिहृत ही है।

एतेन—अयं घटः; एतद्घटान्यत्वे सति वेद्यत्वानधिकरणान्यः, पदार्थत्वादित्यादिमहाविद्ययापि साध्यप्रसिद्धिः। नच वेद्यत्वानिरुक्तिः, चिदविषयत्वमात्रस्य स्वप्रकाशरुपत्वे—चिद्विषयत्वस्यैव वेद्यत्वरूपता, प्रथमपक्षे तु फलव्याप्यत्वमेव वेद्यत्वम्। नच तर्हि अतीन्द्रियान्यत्वेनार्थान्तरं सिद्धसाधनं वा, अपरोक्षव्यवहारविषयत्वसमानाधिकरणस्यैव विवक्षितत्वात्। न चायं घटः; एतद्घटान्यत्वे सति वेद्यत्वानधिकरणान्यत्वानधिकरणम्, पदार्थत्वादिति प्रकरणसमता; श्रुत्यादिरूपानुकूलतर्कसद्भावेन स्थापनाया अधिकबलत्वात्, प्रतिपक्षनिबन्धनसाध्यसन्देहेऽपि संशयरूपसाध्यप्रसिद्धेरनिवारणाच्च।

एतेन—यह घट, एतद्घटान्यत्वे सति=एतद्घटभेदविशिष्ट जो वेद्यत्व=सामानाधिकरण्यरूपसम्बन्धसे एतद्घटप्रतियोगिकभेदविशिष्ट जो वेद्यत्व तादृशवेद्यत्वका जो अनधिकरण तादृश अनधिकरणसे अन्य है=तादृश अनधिकरणप्रतियोगिकभेदविशिष्ट है, पदार्थत्व होनेसे पटवत्। यहाँ पटादिरूप दृष्टान्तमें साध्यकी प्रसिद्धि पक्षीभूतघटप्रतियोगिकभेदको लेकर है, क्योंकि पक्षीभूतघटप्रतियोगिकभेदविशिष्टवेद्यत्व एतद् घटेतर पटादिमें रहेगा, तदधिकरण पटादि होंगे अनधिकरण पक्षीभूत घट होगा, तत्प्रतियोगिक भेद दृष्टान्तरूप पटादिमें है ही। और पक्षमें साध्यकी प्रसिद्धि पक्षके भेदको लेकर तो नहीं हो सकती है क्योंकि पक्षमें पक्षका भेद बाधित है, और दृष्टान्तभूत पटके भेदको लेकरभी नहीं हो सकती है, क्योंकि पटतो एतद्घटभेदविशिष्ट

वेद्यत्वका अधिकरण ही है अनधिकरण नहीं, और अतीन्द्रियके भेदको लेकरभी पक्षमें साध्यकी प्रसिद्धि नहीं हो सकती है, क्योंकि अपरोक्षप्रमाणवृत्तिविषयत्वविशिष्टानधिकरणत्ववदनधिकरण हमको विवक्षित है=अतीन्द्रियमें एतद्धटभेदविशिष्टफलव्याप्यत्वरूपवेद्यत्वानधिकरणत्व तो है, परन्तु अपरोक्षप्रमाणवृत्तिविषयत्वविशिष्ट उक्त अनधिकरणत्व नहीं है, अतः उसके भेदको लेकर पक्षमें साध्यप्रसिद्धि नहीं हो सकती है, किन्तु अपरोक्षप्रमाणवृत्तिविषयत्वसमानाधिकरणउक्तविधअनधिकरणत्ववत्–ब्रह्मप्रतियोगिकभेदको लेकर पक्षीभूत घटमें साध्यकी प्रसिद्धि है–इत्यादि महाविद्यासेभी साध्यकी प्रसिद्धि है–जिन अनुमानोंकी रचना पण्डितरूपही कर सकते है, और पण्डितरूपही जिन्होंके ऊपर तर्क-वितर्क कर सकते हैं, अतएव जो रचयिताकी महती विद्याके द्योतक हैं उन अनुमानोंको महाविद्यानुमान कहा जाता है। इस अनुमानका पदकृत्य तत्त्वप्रदीपिकाकी प्रथमपरिच्छेदस्थ स्वप्रकाशवादकी टीकामें देखना चाहिए यहाँ विस्तारके भयसे नहीं लिखते। वेद्यत्वकी अनिरुक्ति है; नच=वेद्यत्वकी अनिरुक्ति नहीं है, क्यों? चिद्विषयत्वमात्रको स्वप्रकाशरूपत्व होनेपर चिद्विषयत्वकोही वेद्यत्वरूपता है प्रथमपक्षे तु=अवेद्यत्वे सति अपरोक्षव्यवहारविषयत्वरूप प्रथमपक्षमें तो फलव्याप्यत्वही वेद्यत्व है। तर्हि=तब तो अतीन्द्रियान्यत्वेन=एतद्धटरूपपक्षमें एतद्धटभेदविशिष्टवेद्यत्वानधिकरणरूप अतीन्द्रियसे अन्यत्व होनेसे अर्थान्तर या सिद्धसाधन है नच=नहीं है क्यों? अपरोक्षव्यवहारविषयत्वसमानाधिकरण अनधिकरणत्वको ही विवक्षितत्व होनेसे यह घट एतद्धटभेदविशिष्ट जो वेद्यत्व तादृश वेद्यत्वका जो अनधिकरण तादृश अनधिकरणप्रतियोगिक जो अन्यत्व=भेद तादृश भेदका अनधिकरण है पदार्थत्वात्=एतद्धटनिरूपितवृत्तित्वविशिष्टपदार्थत्वात्=यहाँपर पदार्थत्वमात्रको ही हेतु करें तो पटादिमें व्यभिचार है, अतः एतद्धटनिरूपितवृत्तित्वरूप विशेषण दिया है। इस विशेषणके देनेसे अब यह हेतु पटादिमें नहीं अतः व्यभिचार नहीं लघुचन्द्रिकाकारने 'एतद्धटत्वात्' यह 'पदार्थत्वात्' का अर्थ किया है वहभी इसके जैसाही है। खण्ड्यमान ग्रन्थके ऊपर टीका टिप्पणी बनानेवालोंने इस अनुमानके स्वरूपकोही बिगाड़ डालनेकी चेष्टाकी है वह ठीक नहीं, यह लघुचन्द्रिकामें स्पष्ट है, इति=इस रीतिसे प्रकरणसमता=सत्प्रतिपक्षता है नच=प्रकरणसमता नहीं है, क्यों? श्रुत्यादिरूप अनुकूलतर्कका सद्भाव होनेसे स्थापनाको अधिकबलत्व होनेसे। और प्रतिपक्षहेतुकसाध्यका सन्देह होनेपरभी संशयरूपसाध्यप्रसिद्धिके अनिवारणसेभी।

नाप्यसिद्धिः; अनुभूतित्वजातेः कल्पितव्यक्तिभेदमादाय शुद्धेऽपि सत्त्वात्। नच जातेर्धर्मिसमसत्ताकभेदवद्व्यक्तिसापेक्षत्वनियमः जात्यन्यूनसत्ताकभेदवद्व्यक्तिसापेक्षतयैवातिप्रसङ्गनिरासे धर्मिसमसत्ताकभेदवद्व्यक्तिसापेक्षत्वस्य गौरवकरत्वात्, समत्वस्यान्यूनानतिरिक्तार्थकत्वात्। नचानुभाव्याभावे अनुभूतित्वायोगः; कदाचिदनुभाव्यसत्त्वेनैव तदुपपत्तेः, अन्यथा आसीदित्यादिवाक्यजन्यज्ञानस्याननुभूतित्वापत्तेः। नच–अनुभूतित्वं विपक्षाद्व्यावृत्तम्, अनुभूतिशब्दवाच्यानात्मनि सत्त्वादिति–वाच्यम्

अनात्मनि अनुभूतिशब्दवाच्यत्वस्यैवाभावात्, वृत्तौ ज्ञानपदस्येवानुभूतिपदस्य गौणत्वात्; अतएव–परोक्षानुभवस्य पक्षत्वे बाधः अपरोक्षस्य पक्षत्वे तत्र व्यभिचार इति–निरस्तम्; चित्त्वरूपानुभूतित्वस्य विवक्षितत्वात्। नचाप्रयोजकत्वम्; श्रुत्यनुग्रहसत्त्वात्।

नेति–असिद्धिः=स्वप्रकाशत्वसाधक अनुभूतित्वरूप हेतुकी असिद्धि है=अनुभूतिको एकव्यक्तिता होनेसे, जातिमत्त्वका उसमें असम्भव है और कल्पितभेदसे व्यक्तिभेद होनेपरभी वृत्त्युपहितचैतन्यमें ही अनुभूतित्वका सत्त्व होनेसे शुद्धमें अनुभूतित्वके अभावसे हेतुकी असिद्धि है; नापि=असिद्धिभी नहीं है, क्यों ? कल्पितव्यक्तिभेदको लेकर अनुभूतित्व जातिका शुद्धमेंभी सत्त्व होनेसे–उपहितवृत्तिधर्मकी शुद्धमेंभी वृत्ति अविरुद्ध है=उपहितमें रहनेवाला धर्म शुद्धमेंभी रह सकता है। जातिको धर्मिसमसत्ताक जो भेद तादृश भेदवद्व्यक्तिसापेक्षत्वका नियम है, नच=ऐसा नियम नहीं है, क्यों ? जातिसे अन्यूनसत्ताक जो भेद तादृश भेदवत् जो व्यक्ति तादृश व्यक्तिसापेक्षत्वसे ही अतिप्रसङ्गका निरास होनेपर धर्मिसमसत्ताक जो भेद तादृश भेदवद्व्यक्तिसापेक्षत्वको गौरवकरत्व होनेसे=समत्वको अन्यूनानतिरिक्तकालार्थकत्व होनेसे। अनुभाव्यका अभाव होनेपर अनुभूतित्वका अयोग है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों ? कभी अनुभाव्यका सत्त्व होनेसे ही तदुपपत्तेः=अनुभूतित्वकी उपपत्तिसे। अन्यथा 'आसीत्' इत्यादिवाक्यजन्यज्ञानको अननुभूतित्वकी आपत्तिसे, अनुभूतित्वरूप हेतु विपक्षसे व्यावृत्त नहीं है अनुभूतिशब्दसे वाच्य जो अनात्मा उसमें सत्त्व होनेसे इति नच वाच्यम्; क्यों ? अनात्मामें अनुभूतिशब्दवाच्यत्वके ही अभावसे=उपहित चित्कोभी आत्मस्वरूप स्वप्रकाशसे अभिन्नत्व होनेसे उपहित चित्में व्यभिचार नहीं है। वृत्तिमें जैसे ज्ञानपद गौण है तैसे वृत्तिमें अनुभूतिपदकोभी गौणत्व होनेसे। अतएव परोक्षानुभवको पक्षत्व होनेपर बाध है और अपरोक्षको पक्षत्व होनेपर तत्र=परोक्षानुभवमें व्यभिचार है यह कथन निरस्त हुआ, अतएव–शब्दका अर्थ करते हैं–चित्त्वरूप=उपहितानुपहितचिन्मात्रवृत्ति अनुभूतित्वको विवक्षितत्व होनेसे अप्रयोजकत्वम्=इस अनुमानमें व्यभिचारशङ्कानिवर्त्तकतर्कशून्यत्व है–नच=ऐसा नहीं है, क्यों ? श्रुतिके अनुग्रहका सत्त्व होनेसे=जब साक्षात् श्रुति ही इसकी अनुग्राहिका है तब तर्ककी आवश्यकता नहीं।

नच—अपरोक्षानुभवमप्यपरोक्षतो जानामीत्यात्मनो वेद्यत्वग्राहिणा प्रत्यक्षेण तदात्मानमेवावेदिति श्रुत्या च बाध इति–वाच्यम्। आद्यस्य साक्ष्यनुभवस्य वृत्तिरूपगुणानुभवविषयत्वात्। नच 'जानामी'ति ज्ञप्तिविषयत्वमेवानुभूयत इति–वाच्यम्, अहमर्थस्य ज्ञप्त्याश्रयत्वायोगेन ज्ञानपदस्य वृत्तौ गौणत्वात् 'दुःखं जानामी' त्यादावपि दुःखाद्याकाराविद्यावृत्तेरेव विवक्षितत्वाच्च, द्वितीयस्य चाहमर्थविषयत्वात्तदनात्मत्वस्योक्तत्वात्, श्रुतेश्चोपनिषज्जन्यवृत्तिरूपवित्तिविषयत्वावगाहितया चिद्विषयत्वस्य फलव्याप्यत्वस्य विषयीकरणात्। नाप्यनुभूतिः; स्फुरणविषयः, अपरोक्षव्यवहारविषयत्वात्

घटवत्, चैत्रीयानुभूतिः, चैत्रापरोक्षव्यवहारयोग्यापरोक्षज्ञप्तिविषयः, चैत्रापरोक्षव्यवहारविषयत्वाद्धटवत्, चैत्रीयानुभूतिश्चैत्रापरोक्षव्यवहारयोग्यापरोक्षज्ञस्यविषयो नावतिष्ठते चैत्रं प्रत्यप्रकाशमानत्वरहितत्वात्, चैत्रेच्छावदिति–सत्प्रतिपक्षत्वम्, स्फुरणप्रयुक्तव्यवहारशालित्वरूपस्य विषयत्वस्य मयाप्यङ्गीकारेण सिद्धसाधनात् तदन्यस्य स्वस्मिन्वृत्तिविरोधेन बाधात्, जडत्वस्योपाधित्वाच्च, परवेद्यत्वे अनवस्थानात् स्ववेद्यत्वस्य विरुद्धत्वात्।

शङ्कते नचेति। अपरोक्षानुभवको भी 'अपरोक्षतः' जानता हूँ इत्याकारक जो प्रत्यक्ष उस प्रत्यक्षसे तथा 'मामहं जानामि'=मुझको मैं जानता हूँ इत्याकारक जो आत्मनिष्ठवेद्यत्वग्राहिप्रत्यक्ष उस प्रत्यक्षसे तथा तदात्मानं वेद (बृ० १।४।९) इत्याकारक जो श्रुति है उस श्रुतिसे बाध है इति नच वाच्यम्; क्यों ? साक्ष्यात्मक आद्यानुभवको वृत्तिरूप जो गौणानुभव तादृश अनुभवविषयत्व होनेसे। 'जानामि' इस रीतिसे ज्ञप्तिविषयत्व ही अनुभूत होता है इति नच वाच्यम् क्यों ? अहमर्थको ज्ञप्तिविषयत्वके अयोगसे ज्ञानपदको वृत्तिमें गौणत्व होनेसे 'दुखं जानामि' इत्यादिमें भी दुःखाद्याकार अविद्यावृत्तिको ही विवक्षितत्व होनेसे द्वितीयस्य च= 'मुझको मैं जानता हूँ' इत्याकारक द्वितीयप्रत्यक्षको अहमर्थविषयत्वात्=अहमर्थगोचरवृत्तिविषयक साक्षिरूपत्व होनेसे अहमर्थके अनात्मत्वको और वृत्तिके अनात्मत्वको उक्तत्व होनेसे और उक्त श्रुतिको तो उपनिषज्जन्यवृत्तिरूप जो वित्ति तादृशवित्तिविषयत्वकी अवगाहिता होनेसे चिद्विषयत्वका या फलव्याप्यत्वका अविषयीकरण होनेसे, अनुभूतिस्फुरणका विषय है अपरोक्षव्यवहारका विषयत्व होनेसे, घटवत्, चैत्रीयानुभूति, चैत्रके अपरोक्षव्यवहारयोग्य जो अपरोक्षज्ञप्ति तादृश ज्ञप्तिका विषय है चैत्रके अपरोक्षव्यवहारका विषयत्व होनेसे घटवत्, चैत्रीय अनुभूति चैत्रके अपरोक्षव्यवहार योग्य जो अपरोक्ष ज्ञप्ति तादृश ज्ञप्तिकी अविषय होकर नहीं अवस्थान करती है, चैत्रकेप्रति अप्रकाशमानत्वरहितत्व होनेसे चैत्रमें रहनेवाली इच्छावत्, इति सत्प्रतिपक्षत्वमपि न=इस रीतिसे सत्प्रतिपक्षत्व भी नहीं है, क्यों ? स्फुरणप्रयुक्त व्यवहारशालित्वरूप विषयत्वको मुझसे भी अङ्गीकार होनेसे सिद्धसाधनसे और तदन्यस्य=उक्तविध विषयत्वसे अन्यका स्वमें वृत्तिविरोधसे बाध होनेसे; और जडत्वको उपाधित्व होनेसे; जडत्वरूप उपाधिमें साध्यव्यापकत्व और साधनाव्यापकत्व स्पष्ट ही है। और अनुभूतिको परसे वेद्यत्व होनेपर अनवस्था होनेसे और स्ववेद्यत्वको विरुद्धत्व होनेसे इन असमबलानुमानोंसे प्रकरणसमता नहीं है।

ननु—स्वस्मिन्स्ववेद्यत्वं कथं विरुद्धम्। न तावत् स्वजनकेन्द्रियासन्निकृष्टत्वात् स्वाजनकत्वाद्वा; नित्यचिद्विषयत्वस्य तद्द्वयं विनैव घटादौ सत्वात्, नापि विषयविषयिभावसम्बन्धस्य द्विष्ठत्वात्, अतीतारोपितात्यन्तासतां ज्ञानदर्शनेन तस्य उभयनिष्ठत्वात् नापि क्रियात्वकर्मत्वयोर्विरोधात्; कृत्यादिविशेषस्य कार्यत्वादिदर्शनात्, नापि विषयिणो विषयत्वे कर्तुः कर्मतापातात् मिथ्यात्वानुमित्यादेर्विषयिण्या एव विषयत्वदर्शनात्,

मामहं जानामीत्यनुभवदर्शनेन च 'तदात्मानमेवावेदिति श्रुत्या च कर्तुः कर्मत्वाविरोधात्। एवञ्च परसमवेतक्रियाफलशालित्वं न कर्मत्वम्, किन्तु क्रियाविषयत्वादिकम् तच्चाभेदेऽप्युपपाद्यमिति—चेत्, मैवम्; विषयविषयिभावस्य सम्बन्धत्वेन भेदनियततया स्वस्मिन् स्ववेद्यत्वस्य विरुद्धत्वात्। नन्वुक्तातीतादिस्थले भेदो नास्ति अतएव कृतिः कृत्यन्तरं प्रति इच्छा इच्छान्तरं प्रति व्यवहृतिः व्यवहृत्यन्तरं प्रति अभिधा अभिधान्तरं प्रत्येव विषयः, नतु स्वात्मानं प्रति इति न स्वविषयत्वे किञ्चिदुदाहरणमस्ति।

शङ्कते नन्विति। स्वमें स्ववेद्यत्व विरुद्ध कैसे है। स्वजनक जो इन्द्रिय तादृश—इन्द्रिय-असन्निकृष्टत्वसे या स्वके प्रति स्वके विषयत्वेन अजनकत्वसे तो स्वमें स्ववेद्यत्व विरुद्ध नहीं हो सकता है, क्यों? तद्वयं—विनैव=उक्त स्वजनकेन्द्रियासन्निकृष्टत्व और स्वाजनकत्व इन दोनोंके विना ही नित्य जो चित् तादृश चिद्विषयत्वका घटादिमें सत्त्व होनेसे। विषयविषयिभावसम्बन्धको, द्विनिष्ठत्व होनेसे स्वमें स्ववेद्यत्व विरुद्ध है, यहभी नहीं कह सकते हो; क्यों? अतीत और आरोपित तथा अत्यन्त असत् इन्होंकाभी ज्ञान देखनेसे तस्य=विषयविषयिभावको उभयमें अनिष्ठत्व होनेसे। स्वमें स्ववेद्यत्व होनेपर क्रियात्व और कर्मत्व इन दोनोंका विरोध होगा, अतः स्वमें स्ववेद्यत्व नहीं है, यहभी नहीं कह सकते हो क्यों? कृत्यादिविशेषनिष्ठ कृतिकर्मत्वादिरूप कार्यत्वादिके देखनेसे=पुण्यसाधनीभूत श्रीकाशीनिवासरूपयत्नविशेष गमनादिरूपयत्नविशेषसे साध्य है, इस प्रतीतिसे जैसे कृतिमें कर्मत्व और क्रियात्व सिद्ध होता है तैसे ज्ञप्तिमेंभी क्रियात्व और कर्मत्व ये दोनों बन सकते हैं। विषयिको विषयत्व होनेपर कर्त्ताको कर्मताका आपात है और कर्तृकर्मभाव भेदसे गर्भित है अतः स्वको स्ववेद्यत्व नहीं बन सकता है यहभी नहीं कह सकते हो, क्यों? मिथ्यात्वसाध्यकानुमित्यादिरूप विषयिणीको ही विषयत्व देखनेसे—मिथ्यात्वसाध्यकानुमिति स्वविषयकभी होती है अन्यथा उससे स्वमें मिथ्यात्व न होगा, 'मुझको मैं जानता हूँ' ऐसा अनुभव देखनेसे और 'तदात्मानमावेद' (बृ० १।४।९) इस श्रुतिसे कर्त्ताको कर्मत्वका अविशेष होनेसे। एवञ्च=जबकि ऐसा है तब परसमवेत जो क्रिया तादृश क्रियाजन्य जो फल तादृशफलशालित्वरूप कर्मत्व नहीं है किन्तु क्रियाविषयत्वादिरूप है, तच्च=और वह कर्मत्व तो अभेद होनेपरभी उपपाद्य है, ननुसे लेकर यहाँतक शङ्का—पक्ष है, अब समाधान दिखलाते हैं,—इति चेन्मैवम्, क्यों? विषयविषयिभावको सम्बन्धत्व होनेसे, भेदका व्याप्यत्व होनेसे स्वमें स्ववेद्यत्वको विरुद्धत्व होनेसे। और उक्तातीतादि स्थलमें भेद नहीं है ऐसा नहीं है किन्तुविषयविषयीका भेद है ही। अतएव=विषयविषयिभावको भेदनियतत्व होनेसे ही कृति अन्यकृतिके प्रति विषय है, और इच्छा अन्येच्छाके प्रति विषय है, और व्यवहृति व्यवहृत्यन्तरके प्रति विषय है, और अभिधा अभिधान्तरके प्रति विषय है, नतु स्वात्मानं प्रति=स्वमात्रके प्रति नहीं। अतः स्वविषयत्वमें कोईभी उदाहारण नहीं है।

ननु—गत्यादौ गत्यन्तराविषयत्वेऽपि वस्तूनां विचित्रस्वभावत्वात् कृत्यादौ कृत्यन्तरादिविषयत्ववत् अनुभूतेरपि, स्वविषयत्वमस्तु, अन्यथा स्वस्मिन् व्यवहारजनकत्वमपि न स्यात् व्याप्तिज्ञानानुमित्यादेः स्वाविषयत्वे सर्वोपसंहारवती व्याप्तिरनुमितिमिथ्यात्वं च न स्यादिति—चेन्न; व्यवहारोपपादनार्थं स्वविषयत्वस्वभावकल्पनापेक्षया स्वाविषयत्वेपि स्वव्यवहारजनकत्वस्वभावत्वमेव कल्प्यताम्, लाघवात्, तावतैव तदुपपत्तेः, व्याप्त्यनुमित्यादेस्तु अवच्छेदकैक्यलाभात्तथात्वमित्युक्तत्वाच्च। एवञ्च क्रियाकर्मत्वविरोधादपि न स्वस्मिन् स्ववेद्यत्वम्। मिथ्यात्वानुमितेश्च न स्वकर्मता परोक्षस्याकर्मत्वात् यदुक्तं कर्त्तुरेव कर्मत्वम् तदयुक्तम्; उदाहृतमिथ्यात्वानुमित्यादेरकर्मत्वात्, मामहं जानामीत्यादौ साक्षिणः कर्तृत्वादहमर्थस्य कर्मत्वात् तदात्मानमित्यादौ चाहमर्थस्य कर्तृत्वाच्चित्कर्म। अभेदे तद्द्वयादर्शनात्। अतएव न भेदघटितकर्मलक्षणपरित्यागः क्रियाविषयत्वं तु न कर्मत्वम्, आसनादिक्रियाया अपि आधारादिविषयत्वेन सकर्मत्वापत्तेः।

शङ्कते नन्विति। गत्यादिमें गत्यन्तराद्यविषयत्व होनेपरभी वस्तुओंको विचित्र–स्वभावत्व होनेसे जैसे कृत्यादिमें कृत्यन्तरादिविषयत्व है तैसे अनुभूतिकोभी स्वविषयत्व रहो अन्यथा=स्वविषयत्वके न होनेपर स्वमें स्वको व्यवहारका जनकत्वभी न होगा, और व्याप्तिज्ञानानुमित्यादिको, 'यद् यदभिधेयम् तत्तन्मेयम्' इत्यादि ज्ञानको और 'प्रपञ्चो मिथ्या' इत्यादि अनुमितिको स्वविषयत्व न होनेपर सर्वोपसंहारवती=सर्वाभिधेयादिघटित व्याप्ति न होगी, और मिथ्यात्वसाध्यक अनुमितिका मिथ्यात्व न होगा, इति चेन्न; क्यों ? व्यवहारोपपादनके लिए स्वविषयत्वका जो स्वभाव तादृश स्वभावकी जो कल्पना उस कल्पनाकी अपेक्षा स्वविषयत्व न होकरभी स्वव्यवहारजनकत्वका स्वभावत्व ही कल्पन किया जाय, लाघवसे तितनेसे ही व्यवहारकी उपपत्तिसे। और व्याप्त्यनुमित्यादिको तो अवच्छेदकैक्यके लाभसे तथात्वम्=स्वविषयत्व है,–इसको उक्तत्व होनेसे। एवञ्च क्रियाकर्मत्वके विरोधसेभी स्वमें स्ववेद्यत्व नहीं है। और मिथ्यात्वानुमितिको स्वकर्मता नहीं है परोक्षको अकर्मत्व होनेसे। और जो कहा है कि कर्त्ताको ही कर्मत्व है वह अयुक्त है; क्यों ? उदाहृतमिथ्यात्वानुमित्यादिरूपकर्त्ताको अकर्मत्व होनेसे। 'मुझको मैं जानता हूँ' इत्यादिमें साक्षीको कर्तृत्व होनेसे अहमर्थके कर्मत्वसे 'तदात्मानम्' (बृ० १।४।९) इत्यादिमें अहमर्थको कर्तृत्व होनेसे चित् कर्म=वृत्त्युपहित चित् कर्म है। अभेदे=अभेदस्थलमें कर्तृत्व तथा कर्मत्व एतद्द्वयके अदर्शनसे। अतएव=अभेद होनेपर उक्तद्वयके अभावसेही भेदसे घटित परसमवेत–क्रियाफलशालित्वरूप कर्मके लक्षणका परित्याग नहीं है, और क्रियाविषयत्वरूप जो कर्मत्व द्वैतीने कहा है वह ठीक नहीं क्यों ? संयोगविशेषादिरूप आसनादि क्रियाकोभी आधारादिविषयत्व होनेसे, सकर्मकत्वकी आपत्तिसे।

अथ—अवेद्यत्वेऽवेद्यत्वसाधकप्रमाणवेद्यत्वावेद्यत्वाभ्याम्–व्याघातः, वेदान्तानां ब्रह्मणि प्रामाण्यायोगः, ब्रह्मविचारविधिवैयर्थ्यं ब्रह्माज्ञाननिवृत्त्ययोगः इत्यादिप्रतिकू-

लतर्कपराहतिरिति-चेन्न, चिदविषयत्वं फलाव्याप्यत्वं वा, अवेद्यत्वम्, तस्य तत्साधक-प्रमाणजन्यवृत्तिवेद्यत्वेन व्याहत्यभावात् वृत्तिविषयत्वमात्रेणैव वेदान्तप्रामाण्यविचारविध्य-ज्ञाननिवृत्तीनां सम्भवाच्च। एतेन-अज्ञाननिवर्तकत्वमात्रेण वेदान्तप्रामाण्ये आत्मनो-ऽसिद्धिप्रसङ्ग इति-निरस्तम् आत्मनः स्वतःसिद्धत्वात्।

शङ्कते अथेति। अवेद्यत्व होनेपर अवेद्यत्वसाधक जो प्रमाण तादृश प्रमाणके वेद्यत्वसे तथा अवेद्यत्वसे व्याघात है=ब्रह्ममें अवेद्यत्व होनेपर ब्रह्मनिष्ठ अवेद्यत्वसाधक जो प्रमाण उस प्रमाणका वेद्यत्व ब्रह्ममें है या नहीं? यदि उस प्रमाणका वेद्यत्व है तो व्याघात है अर्थात् अवेद्यत्व न रहा यदि उस प्रमाणका अवेद्यत्व है तब तो अवेद्यत्वसाधक प्रमाणका वेद्यत्व न रहनेसे अवेद्यत्वकी असिद्धि है, अतः व्याघात है, तथा वेद्यत्वके न रहनेपर ब्रह्ममें वेदान्तोंके प्रामाण्यका अयोग है=ब्रह्मको अवेद्यत्व होनेपर वेदान्तोंमें ब्रह्मप्रमाजनकत्वरूप प्रामाण्य सिद्ध न होगा, तैसे ब्रह्मविचार की जो विधि है उसका वैयर्थ्य है जैसे ब्रह्मको अवेद्यत्व होनेपर ब्रह्मा-ज्ञानकी निवृत्तिका अयोग है इत्यादि रूप प्रतिकूल तर्कोंसे आपके स्वप्रकाशत्वसाधक अनु-मानकी पराहति है, इति चेन्न; क्यों? चिद्विषयत्व या फलाव्याप्यत्वरूप अवेद्यत्व है तस्य= उस अवेद्यत्वका प्रमाणजन्यवृत्तिवेद्यत्व होनेसे व्याहतिके अभावसे=ब्रह्ममें उक्तरूप अवेद्यत्वके रहनेपर भी प्रमाणजन्यवृत्तिविषयत्वके रहनेसे व्याघात नहीं और वृत्तिविषयत्वसेही वेदान्तोंके प्रामाण्यका और विचारविधिका तथा अज्ञानकी निवृत्तिका सम्भव होनेसे। एतेन अज्ञान-निवर्तकत्वमात्रसे वेद्यत्वका प्रामाण्य होनेपर आत्माकी असिद्धिका प्रसङ्ग है यह कथन निरस्त हुआ आत्माको स्वतः सिद्धत्व होनेसे।

ननु—स्वत इत्यस्य स्वेनैवेत्यर्थे स्वविषयकत्वापत्तिः, प्रमाणं विनेत्यर्थे उपाया-न्तरस्यानुपन्यासेनासिद्ध्यापत्तिः; अन्यथा नृशृङ्गादेरपि सिद्ध्यापात इति=चेन्न; माना-नपेक्षसिद्धेरेव स्वतः सिद्धिशब्दार्थत्वात्। नच-नृशृङ्गादावेवं प्रसङ्गः तदासत्त्वव्याप्तृ-त्तिफलकप्रमाणाभावात्, प्रकृते च वृत्तिविषयतामात्रेण तत्सत्वात् सिद्धिरूपात्मनि सिद्ध इति व्यवहारस्य सिद्धिप्रयुक्तव्यवहारविषयतया गौणत्वात् नचैवं मुक्तौ वेद्याभावे वित्ति-त्वानुपपत्तिः, अनुभूतिन्यायस्यात्रापि सुलभत्वात्। नच-स्वाविषयत्वे स्वविषयकसंशय-निवर्तकत्वायोगः स्वमहिम्नैव स्वधर्मिणि व्यवहारवत्, संशयादिविरोधित्वोपपत्तेः। नचा-ननुगमः, तत्र विषयतायामिवाननुगतस्यैव नियामकत्वात् स्वकर्मत्वाभावेऽपि स्वनिर्वा-हकतया स्वस्मिन् व्यवहाराद्युपपत्तेश्च।

शङ्कते नन्विति। स्वतः इसका स्वसे ही इत्याकारक अर्थ होनेपर स्वविषयकत्वकी आपत्ति है; और प्रमाणके विना इत्याकारक अर्थ होनेपर सिद्धिके उपायान्तरके अनुपन्याससे असिद्धिकी आपत्ति है, अन्यथा=प्रमाणके विना और उपायान्तरके उपन्यास विना भी सिद्धि होनेपर, नृशृङ्गादिकेभी सिद्धिकी आपत्ति है, इति चेन्न; क्यों? प्रमाणानपेक्ष जो सिद्धि है उस सिद्धिको

ही स्वतः सिद्धिशब्दार्थत्व होनेसे। नृशृङ्गादिमेंभी ऐसा प्रसङ्ग है। नच=नहीं है, क्यों ? तदसत्त्वव्यावृत्तिफलकप्रमाणाभावात्=तस्य=नृशृङ्गादिके असत्वकी जो व्यावृत्ति=अस्तित्व फलक=ग्राहक=नृशृङ्गादिके अस्तित्वका ग्राहक जो प्रमाण तादृश प्रमाणके अभावसे-असत्में असत्त्वापादकाज्ञानका जो अभाव तादृश अभावोपहित जो चित् तादृश चित्का ग्राहक कोई प्रमाण नहीं है। और प्रकृते च=पूर्णानन्दस्वरूपमें तो वृत्तिविषयतामात्रेण=वेदान्तवाक्यजन्य वृत्तिविषयतामात्रसे तत्सत्वात्='पूर्णानन्दरूपमस्ति' इत्याकारक अस्तित्वव्यवहारका सत्त्व होनेसे। और सिद्धिस्वरूपात्मामें 'सिद्धः' इत्याकारक जो व्यवहार होता है उस व्यवहारको आत्मामें सिद्धिप्रयुक्तव्यवहारविषयत्वसे गौणत्व होनेसे=आत्माको सिद्धिरूपता होनेसे उसमें सिद्धिविषयत्व नहीं है, फिरभी आत्मामें जो 'सिद्धः' इत्याकारक व्यवहार होता है वह सिद्धिप्रयुक्तव्यवहारविषयत्वप्रयुक्त गौण है। ऐसा होनेपर मुक्तिमें वेद्यत्वका अभाव होनेपर वित्तित्वकी अनुपपत्ति है, नच=अनुपपत्ति नहीं है, क्यों ? अनुभूतिन्यायको यहाँपरभी सुलभत्व होनेसे=जैसे कदाचिद्विषयसम्बन्धसे अनुभूतित्वव्यवहार होता है तैसे कदाचित्कवेद्यसम्बन्धसे वित्तित्वव्यवहार होता है। नचेति। स्वाविषयत्वे=स्वविषयत्व न होनेपर स्वविषयक जो संशय तादृश संशयके निवर्त्तकत्वका अयोग है; नच=अयोग नहीं है, क्यों ? स्वमहिम्नैव=अज्ञानाभावोपहित जो स्वमहिमा तादृश स्वमहिमासेही जैसे स्वधर्मिमें अस्तित्वव्यवहारजनकत्व है तैसे स्वविषयक संशयादिके विरोधित्वकीभी उपपत्तिसे। संशयादिशब्दसे 'अस्ति न वा' इत्याकारक संशयका और 'नास्त्येव' इत्याकारक विपरीत निश्चयका ग्रहण है-अस्तित्वादिव्यवहारमें विषयतया चितिको प्रयोजकता है, और नास्तित्वादिविषयक जो संशयादि तादृश संशयादिके अनुत्पादमें विषयाभावसम्पादकतया चितिको प्रयोजकता है; क्योंकि संशयादिमें अज्ञानोपाहित चितिको विषयत्व है, और वेदान्तवाक्यजन्यवृत्त्युपरक्त चितिको अज्ञानका नाशकत्व है, और अज्ञानका नाश होनेपर उसके कवे बचे संशयादि ठहर नहीं सकते। अननुगमः=चितिधर्मिकास्तित्वादिव्यवहारमें अज्ञानशून्यचितिको प्रयोजकत्व होनेसे और नास्तित्वादिविषयकसंशयके अनुत्पादमें अज्ञानशून्यचितिके तादात्म्यको प्रयोजकत्व होनेसे अननुगम है, नच=अननुगम नहीं है, क्यों ? तुह्मारे मतमें विषयताकी नाई अननुगतको ही नियामकत्व होनेसे=तुम्हारे मतमें जैसे-अननुगतविषयतामें उक्तव्यवहारप्रयोजकत्व है तैसे हमारे मतमेंभी अननुगत उक्तविधचिति और उक्तविध चितितादात्म्यको ही उक्त कार्य्योंके प्रति प्रयोजकत्व है और स्वकर्मत्वका अभाव होनेपरभी स्वनिर्वाहकत्वेन व्यवहारादिकी उपपत्तिसेभी।

नच—स्वनिर्वाहकपदेन निर्वहणक्रियाकर्तृत्वकर्मत्वोक्त्या विरोधः, स्वातिरिक्तनिर्वाहकानपेक्षत्वमात्रेण स्वनिर्वाहकत्वोपचारात्। 'स्वयं दासास्तपस्विन' इत्यादौ स्वातिरिक्तदासाभावमात्रेण स्वदासत्वव्यपदेशवत् नच स्वनिर्वाहकाध्ययनविधिर्दीपप्रभादौ स्वस्मिन् कार्यकरत्वं स्वविषयत्वेन व्याप्तमित्यत्रापि तथेति—वाच्यम्; अध्ययनविधावेकावच्छेदकमात्रेणात्माश्रयानवकाशात् दीपप्रभादौ स्वविषयत्वासिद्धेः। तदुक्तं खण्डने—

गाङ्कुटादिभ्य इत्यत्र बहुव्रीहिः ' स्वाविषये कुटेऽपि स्वकार्यं करोति । तथेहापीति । नच–उद्भूतावयवभेदः समुदायः समासार्थः' इति कैयटोक्तरीत्या कुटघटितसमुदाय एव बहुव्रीहिविषयः सच वैयाकरणानां मीमांसकानां च शक्त्या अन्येषां लक्षणयेत्यन्यदेतत्; यथा ' चैत्रशालीया आनीयन्तामित्यत्र उपलक्षणस्यापि चैत्रस्य स्वशालास्थस्य तच्छब्दविषयत्वम् तथा कुटस्यापि पुटादिवदन्यपदार्थभूतसमुदायान्तर्गतस्य बहुव्रीहिविषयत्वोपपत्तेः । तथाच दृष्टान्तासिद्धिरिति–वाच्यम्; स्वाविषय इत्यस्य औत्सर्गिकविषयान्यपदार्थभिन्न इत्यर्थकत्वम् । तथाच स्वपदार्थसम्बन्धादन्यत्रेव स्वपदार्थेऽपि यथा तत्र फलं तथा स्वसम्बन्धादन्यत्रेव स्वस्मिन्नपि चित्फलमित्यत्र दृष्टान्तपर्यवसानात् । स्वविषयव्यतिरेकेण समुदायप्रयोजकरूपेण विषयत्वेऽपि समुदायिताप्रयोजकरूपेणाविषयत्वात्, स्वाविषयत्वोक्तेर्वा ।

नचेति । स्वनिर्वाहकपदसे निर्वहणक्रियाकर्तृत्व तथा निर्वहणक्रियाकर्मत्व इन दोनोंकी उक्तिसे विरोध है, नच=विरोध नहीं है, क्यों ? स्वातिरिक्त जो निर्वाहक तादृशनिर्वाहकानपेक्षत्व मात्रसे स्वनिर्वाहकत्वके उपचारसे जैसे ' स्वयं दासास्तपस्विनः ' इत्यादिमें स्वातिरिक्तदासाभावमात्रसे स्वदासत्वका व्यपदेश होता है । शङ्कते नचेति । स्वनिर्वाहक जो 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' इत्याकारक अध्ययनविधि है उसमें तथा प्रदीपप्रभादिमें स्वमें कार्यकरत्व स्वविषयत्वेन व्याप्त है, अतः प्रकृतमें भी तथा है, इति नच वाच्यम्, अध्ययनविधिमें स्वाध्यायत्वरूप एक अवच्छेदकमात्रसे आत्माश्रयके अनवकाशसे । और दीपप्रभादिमें स्वविषयत्वकी असिद्धिसे । सो कहा है खण्डनमें ' गाङ्कुटादिभ्यः ' (अष्टा० १।२।१) यहाँपर बहुव्रीहि स्वका अविषय जो कुट उस कुटमें भी स्वकार्य करता है=तैसे ज्ञान भी स्वाविषय हुआ स्वमें कार्य करता है, शङ्कते नचेति । उद्भूत अवयवनिष्ठ जो विशेष है वह समुदाय है और वह समुदाय बहुव्रीहि समासका अर्थ है, इस कैयटोक्तरीतिसे कुटसे घटित जो पुटादिका समुदाय है वही बहुव्रीहिका विषय है सच=और वह समुदाय वैयाकरणोंके मतमें तथा मीमांसकोंके मतमें समासकी शक्तिसे बोध्य है, और अन्येषाम्=तार्किकोंके मतमें लक्षणासे बोध्य है । जैसे ' चैत्रशालीया आनीयन्ताम् ' यहाँपर उपलक्षणीभूतभी स्वशालास्थितचैत्रको उक्त शब्दविषयत्व है तैसे पुटादिवत् अन्यपदार्थभूत जो समुदाय तादृश समुदायान्तर्गत कुटको भी बहुव्रीहिविषयत्व है=समुदायान्तर्गत पुटादिको जैसे बहुव्रीहिविषयत्व है तैसे कुटको भी समुदायान्तर्गतत्वेन है, फलतः दृष्टान्तकी असिद्धि है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? स्वाविषये=बहुव्रीहि स्वाविषयमें कार्यकरता है, इसको बहुव्रीहिका औत्सर्गिक जो अन्यपदार्थरूप अर्थ तादृश अर्थसे भिन्न जो अर्थ उस अर्थमें भी बहुव्रीहि कार्य करता है, इत्याकारक अर्थकत्व है । तथाच स्वपदार्थसम्बन्धात्=बहुव्रीहिघटक कुटपदार्थके सम्बन्धसे, अन्यत्र=पुटादिकी नाईं जैसे स्वपदार्थेऽपि=कुटपदार्थमें भी तत्र=' गाङ्कुटादिभ्यः ' इस सूत्रमें फलम्=ङित्वविधान है तैसे

स्वसम्बन्धसे अन्यत्रकी नांई स्वमें भी चित्का फल है इस अर्थमें दृष्टान्तका पर्यवसान होनेसे। या स्वविषयसे भिन्न जो समुदायप्रयोजकरूप=बहुव्रीहिघटक कुटपदार्थादिसे अघटित जो रूप उस रूपसे विषयत्व होनेपर भी समुदायिताप्रयोजकरूपसे=कुटत्वेन अविषयत्व होनेसे स्वाविषयत्वकी उक्तिसे।

ननु—एतावता स्वस्मादन्यत्र व्यवहारजनने तद्विषयत्वं स्वस्मिन् स्वाभेद एवेति पर्यवसितोऽर्थः स चायुक्तः पक्षादन्यत्रैवायं नियम इत्यस्य सर्वत्र सुवचत्वात्, स्वाभेदे सत्यपि स्वविषय इव स्वस्मिन्विषयत्वव्यतिरेकेण द्वेष इच्छाविरोधित्वस्याज्ञाने स्वावारकत्वस्य स्मृत्यादिरूपे परोक्षज्ञाने स्वव्यवहारजनकत्वस्य मैत्रचैतन्ये सुषुप्तौ चैत्रचैतन्येन पारमार्थिककाल्पनिकभेदयोराहित्येऽपि तद्व्यवहारजनकत्वस्यादर्शनाच्च। आत्मानं जानामीत्यात्मभिन्नज्ञाने स्वविषयत्वानुभवाच्चेति—चेन्न; तर्हि द्वेषादौ स्वाभेदेऽपि स्वविषयत्वादर्शनात्, प्रकृतेऽपि तथा स्यात्। अथ—व्यवहाररूपफलदर्शनात् प्रकृत एव स्वाभेदस्यान्यत्रादृष्टमपि स्वविषयतानियामकत्वं कल्प्यते इति चेत्, तर्हि स्वव्यवहाररूपफलदर्शनादत्रैव स्वाभेदस्य स्वकार्य्यजनकतानियामकत्वम्, न द्वेषादौ तथा फलादर्शनादिति समः समाधिः। नच—अत्र गृहीततद्विषयत्वस्य तूष्णीं त्यागे सर्वत्रैवं प्रसङ्ग इति—वाच्यम्, तद्विषयत्वत्यागबीजस्य बाधकस्य प्रागेवोक्तत्वात् सर्वत्र तस्याभावात्। यत्तूक्तं मैत्रचैतन्य इत्यादि तन्न, तदैकविरहकाले मैत्रचैतन्य इत्यस्यैवाभावात्, साक्षिचैतन्येन व्यवहारापादनस्येष्टत्वात्। यदि च संस्कारात्मनाऽवस्थितान्तःकरणं तदापि भेदकम्, तदाभेदस्यैव सत्त्वाच्च।

शङ्कते नन्विति। एतावता=इस कथनसे स्वसे भिन्न वस्तुओंमें व्यवहारजननमें ज्ञानविषयत्व प्रयोजक है और स्वमें होनेवाले व्यवहारमें स्वाभेद ही प्रयोजक है, यह पर्य्यवसित अर्थ हुआ, सच=सो अयुक्त है, क्यों ? पक्षसे भिन्नस्थलमें ही यह नियम है, इस कथनको सर्वत्र सुवचत्व होनेसे स्वाभेद होनेपरभी स्वविषयकी नांई स्वमें स्वविषयत्वके अभावसे, द्वेषमें इच्छाविरोधित्वके अदर्शनसे=द्वेष स्वविषयरूप दुःखादिमें इच्छाका विरोध करता है, परन्तु स्वाभेद होनेपरभी स्वमें इच्छाका विरोध नहीं करता है, क्योंकि स्वमें स्वविषयत्व नहीं है इसी रीतिसे आगेभी ब्रह्माच्छादकाज्ञानमें स्वविषयब्रह्मकी नांई स्वमें स्वविषयत्वके व्यतिरेकसे स्वाकारत्वके अदर्शनसे=अज्ञान स्वविषयीभूत ब्रह्मका आच्छादक होनेपरभी स्वविषयत्वके अभावसे स्वका आवरक नहीं होता है। स्मृत्यादिरूप परोक्षज्ञानमें स्वविषयविषयक व्यवहारजनकत्व होनेपरभी स्वमें स्वविषयत्वके अभावसे, स्वमें व्यवहारजनकत्वके अदर्शनसे। मैत्र चैतन्यके सुषुप्त होनेपर चैत्रचैतन्यसे पारमार्थिक तथा काल्पनिक इन दोनों भेदोंका राहित्य होनेपरभी मैत्रविषयत्वके अभावसे सपक्षचैत्रव्यवहारके जनकत्वके अदर्शनसेभी स्वाभेद स्वमें होनेवाले व्यवहारका प्रयोजक नहीं है=चैत्र तथा मैत्र ये दोनों जिसकालमें सो गये हैं उस-

कालमें मैत्रचैतन्यरूपज्ञानका चैत्रचैतन्यरूपज्ञानसे अभेद है चैत्रचैतन्यमें सुपुप्तमैत्रचैतन्यको व्यवहार करना चाहिए परन्तु व्यवहार होता तो नहीं है, यदि होता हो तो सुप्तोत्थितको उसका अनुसन्धान होना चाहिए अतः आपकोभी यह कहना चाहिएकि स्वव्यवहारमें स्वाभेद प्रयोजक नहीं है किन्तु स्वविषयत्व प्रयोजक है और 'आत्मानं जानामि' इस रीतिसे आत्मा-भिन्नज्ञानमें स्वविषयत्वके अनुभवसेभी; ननुसे लेकर यहाँतक पूर्वपक्ष है अब उत्तरपक्ष दिखलाते हैं–इति चेन्न; क्यों ? तब तो द्वेषादिमें स्वाभेद होनेपरभी स्वविषयत्वके अदर्शनसे प्रकृतमेंभी स्वविषयत्व न होना, । शङ्कते अथेति । व्यवहाररूप फलके देखनेसे अन्यत्र अदृष्टभी स्वाभेदको प्रकृतमें ही स्वविषयतानियामकत्व कल्पना किया जाता है=स्वाभेदको अन्यत्र स्वविषयताका नियामकत्व न देखनेपरभी व्यवहाररूप फलके देखनेसे ज्ञानमें ही अभेदको स्वविषयताका नियामकत्व है, इति चेत्=ऐसा यदि है तब तो स्वविषयकव्यवहाररूप फलके देखनेसे अत्रैव= ज्ञानमें ही स्वाभेदको स्वकार्य्यजनकतानियामकत्व है, द्वेषादिमें नहीं ज्ञानकी तरह फलके अदर्शनसे इस रीतिसे समान समाधान है । अत्र=प्रस्तुत ज्ञानमें तद्विषयकव्यवहारके प्रति प्रयोजकत्वेन गृहीत जो तद्विषयत्व उसको चुपचाप त्याग देनेपर सर्वत्र ही त्यागका प्रसङ्ग होगा; इति न च वाच्यम्, क्यों ? तद्विषयत्वके त्यागका बीज जो अनवस्थादिरूपबाधक उसको प्रथम ही उक्त होनेसे, सर्वत्र उस बाधकके अभावसे । और जो 'मैत्रचैतन्ये' इत्यादि कहा है वह ठीक नहीं क्यों ? भेदकविरहकाले=भेदक जो उपाधियाँ उन्होंके विरहकालमें 'मैत्रचैतन्ये' इसका ही अभाव होनेसे । साक्षिचैतन्यसे तथाविधव्यवहारापादनको इष्टत्व होनेसे । और यदि संस्कारात्मना अवस्थित अन्तःकरण तहाँभी भेदक है, तब तो भेदका ही सत्त्व होनेसे अभेदोक्ति असङ्गत है ।

यच्चूक्तमात्मानमित्यादि, तदपि न, अहमर्थाश्रितवृत्तिरूपज्ञानविषयत्वस्यैव तत्रानुभवात् । नच घटः स्वप्रकाशः घटत्वादित्याभाससाम्यम्, प्रयोजकत्वपरिहारेण परिहृतत्वात्, घटे स्फुरणाभेदतद्विषयत्वयोरभावे व्यवहाराभावप्रसङ्गेन साम्याभावाच्च । ननु-अनुभूतिपदेन वृत्तेः पक्षत्वे बाधः तदन्यस्याश्रयासिद्धिरिति चेन्न; वृत्तेर्जडतया अप्रकाशत्वे प्रकाशत्वं यत्र विश्राम्यति तस्यैव पक्षत्वात्, प्रतिकर्मव्यवस्थायामेव वृत्त्यतिरिक्तानुभवस्य साधनाच्च । एवञ्च त्वदीयापरोक्षव्यवहारयोग्यत्वज्ञानं त्वदीयापरोक्षव्यवहारयोग्यत्वे सति वेद्यत्वानधिकरणं ज्ञानत्वात्, मदीयज्ञानवत्, विवादपदानि ज्ञानानि घटज्ञानान्यत्वे सति वेद्यत्वानधिकरणानि ज्ञानत्वात् घटज्ञानवत् इत्यपि साधु । नच त्वज्ज्ञानं त्वदपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वे सति अवेद्यत्वानधिकरणम् ज्ञानत्वात् मदीयज्ञानवत्, घटज्ञानं, पटज्ञानान्यत्वे सति चिदविषयत्वानधिकरणं ज्ञानत्वात्, पटज्ञानवदिति च यथायोग्यं प्रकरणसमतेति वाच्यम्, विपक्षे बाधकस्योक्तत्वेन स्थापनाया अधिकबलत्वात् ।

इत्यद्वैतसिद्धावनुभूतेः स्वप्रकाशत्वोपपत्तिः ।

और जो 'आत्मानं जानामि' इत्यादि कहा है वहभी ठीक नहीं क्यों? अहमर्थाश्रित जो वृत्तिरूपज्ञान तादृश ज्ञानविषयत्वको ही वहाँपर अनुभव होनेसे। घट, स्वप्रकाश है घटत्व होनेसे इस अनुमानाभासका आपके अनुमानमें साम्य है नच=साम्य नहीं है क्यों? अप्रयोजकत्वपरिहारसे परिहृतत्व होनेसे=आत्माके स्वप्रकाशत्वमें श्रुतिस्मृत्यादिका अनुग्रह है घटके स्वप्रकाशत्वमें नहीं अतः आभाससाम्य नहीं। और घटमें स्फुरणका अभेद तथा स्फुरणविषयत्व इन दोनोंका अभाव होनेपर व्यवहाराभावके प्रसङ्गसे साम्यके अभावसे। शङ्कते नन्विति। अनुभूतिपदसे वृत्तिको पक्षत्व होनेपर बाध दोष है वृत्तिमें स्वप्रकाशत्वके न होनेसे साध्याभावरूप बाध है, तदन्यस्य=वृत्तिसे अतिरिक्त अनुभवको पक्षत्व होनेपर आश्रयासिद्धि है=वृत्तिसे अतिरिक्त अनुभवमें प्रमाण न होनेसे आश्रयासिद्धि है, इति चेन्न; क्यों? वृत्तिको जडत्व होनेसे अस्वप्रकाशत्व होनेपर प्रकाशत्व जहाँपर विश्रान्त होगा, उसीको पक्षत्व होनेसे, और प्रतिकर्मव्यवस्थामें ही वृत्तिसे अतिरिक्त अनुभवके साधनसेभी। एवञ्च=ऐसा होनेपर त्वदीयापरोक्षव्यवहारयोग्यत्वज्ज्ञान त्वदीयापरोक्षव्यवहारयोग्यत्वविशिष्टवेद्यत्वका अनधिकरण है, ज्ञानत्व होनेसे मदीयज्ञानवत्=मदीयज्ञानमें ज्ञानत्वरूप हेतु है, और त्वदीयापरोक्षव्यवहारयोग्यत्वविशिष्ट जो वेद्यत्व उसका अनधिकरणत्वभी है। विवादास्पदीभूतज्ञान, घटज्ञानभेदविशिष्टवेद्यत्वके अनधिकरण हैं ज्ञानत्व होनेसे घटज्ञानवत्। यह कथनभी निर्दोष है, इन दोनों अनुमानोंका सविस्तर निरूपण चित्सुखीमें देखना चाहिए। सत्प्रतिपक्षं शङ्कते नचेति। त्वज्ज्ञान त्वदपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वविशिष्ट जो अवेद्यत्व तादृश अवेद्यत्वका अनधिकरण है, ज्ञानत्व होनेसे, मदीयज्ञानवत्, घटज्ञान, पटज्ञानभेदविशिष्टचिद्विषयत्वका अनधिकरण है ज्ञानत्व होनेसे पटज्ञानवत्, इस रीतिसे यथायोग्य प्रकरणसमता है इति नच वाच्यम्, क्यों? विपक्षमें, अनवस्थादिरूप बाधकका उक्तत्व होनेसे, स्थापनाको अधिकबलत्व होनेसे।

इति सरलायामनुभूतेः स्वप्रकाशत्वोपपत्तिः।

अथ आत्मस्वप्रकाशत्वोपपत्तिः।

एवञ्च चिदभिन्नस्यात्मनोऽपि स्वप्रकाशत्वं चिद्रूपत्वात् साधनीयम्। यथाच नात्मनि चिद्रूपत्वासिद्धिः; तथोपपादितम्। उपपादयिष्यते च श्रुत्या। नच 'विज्ञाता प्रज्ञातेति' श्रुतिविरोधे, वक्ष्यमाणानेकश्रुतिविरोधेन तस्याः वृत्तिरूपज्ञानाश्रयत्वपरत्वात्। यत्तु विद्यासागरोक्तं विमतं ज्ञानं भिन्नाश्रयविषयकं, ज्ञानत्वात् ज्ञानान्तरवत्, विमतं, न स्वाश्रयविषयकं गुणत्वात् अग्न्यौष्ण्यादिवदिति स्वप्रकाशत्वसाधनं, तत् परास्तं, अस्मन्मते स्वप्रकाशे ज्ञानत्वस्यात्मन्यभावात्, तादृज्ज्ञाने गुणत्वाभावाच्च, 'मामहं जानामीति' प्रत्यक्षस्य वृत्तिविषयतयोपपादितत्वेन विरोधाभावात्। नच—अज्ञान इव स्वाश्रयविषयत्वोपपत्त्या अप्रयोजकमिति वाच्यम्; वेद्यत्वे आत्मनो वेदनाभावादज्ञानदशायामात्मनि संशयविपर्ययव्यतिरेकनिर्णयप्रसङ्गात् नचात्मन्यहमनहंवेति

कश्चित्सन्दिग्धे, अन्यएवेति वा विपर्यस्यति नाहमिति वा व्यतिरेकं निर्णयतीत्यस्वप्रकाशत्वे बाधकसत्वात् ।

अथ सरलायामात्मस्वप्रकाशत्वोपपत्तिः ।

एवञ्चेति । ज्ञानको स्वप्रकाशत्व सिद्ध होनेपर चिद्रूपज्ञानाभिन्न आत्माकाभी स्वप्रकाशत्व चिद्रूपत्वरूप हेतुसे साधनीय है । और जिस रीतिसे आत्मामें चिद्रूपत्वकी असिद्धि नहीं है तैसे उपपादित है । और श्रुतिसे उपपादान कियाभी जायगा । विज्ञाता (छा० ७।८।१; बृ० ३।७।२३;) प्रज्ञाता=विज्ञानका आश्रय है, प्रज्ञानका आश्रय है इस श्रुतिके साथ विरोध है=इस श्रुतिसे आत्मा ज्ञानाश्रय प्रतीत होता है और आप ज्ञानरूप बताते हैं अतः श्रुतिके साथ विरोध है, नच=श्रुतिके साथ विरोध नहीं है, क्यों ? आत्मस्वप्रकाशत्वमें वक्ष्यमाण जो अनेक श्रुतियाँ उन श्रुतिओंके साथ विरोध होनेसे तस्याः=' विज्ञाता प्रज्ञाता इस श्रुतिको वृत्तिरूप ज्ञानाश्रयपरत्व होनेसे=आत्मा ज्ञानाश्रय है–इसका अर्थ यह है कि आत्मा वृत्तिरूप ज्ञानका आश्रय है इससे बहुप्रमाणसिद्ध आत्माकी ज्ञानरूपता निवृत्त नहीं होती है अब खण्डनके व्याख्याता विद्यासागरके अनुमानोंकी व्यवस्था करते हैं–विमतं ज्ञानं=' मामहं जानामि ' इत्याकारक ज्ञान भिन्नाश्रयविषयकम्=आश्रयश्च विषयश्च इति आश्रयविषयौ भिन्नौ आश्रयविषयौ यस्य तत् भिन्नाश्रयविषयकम्=भिन्नाश्रयविषयक है, ज्ञानत्व होनेसे ज्ञानान्तरवत्=घटादिज्ञानवत्; विमतम्=उक्तज्ञान स्वाश्रयविषयक नहीं है, गुणत्व होनेसे, वह्निसमवेत औष्ण्यवत् इति यत् विद्यासागरोक्तम् स्वप्रकाशत्वसाधनम्=ऐसा जो विद्यासागरोक्त स्वप्रकाशत्वका साधन है वह परनीत्या=तार्किकप्रभृतिकी रीतिसे है क्यों ? हमारे मतमें स्वप्रकाशशुद्धस्वरूप आत्मामें ज्ञानत्वके अभावसे और तादृग्ज्ञाने=शुद्ध आत्मस्वरूपज्ञानमें गुणत्वके अभावसेभी ' मामहं जानामि ' इस प्रत्यक्षको वृत्तिविषयत्वेन उपपादितत्व होनेसे, इस प्रत्यक्षके साथ विरोधके अभावसे । नचेति । अज्ञानकी तरह स्वाश्रयविषयत्वकी उपपत्तिसे ज्ञानत्वरूप साधन अप्रयोजक है, नच=अप्रयोजक नहीं है, क्यों ? आत्मरूपज्ञानको वेद्यत्व होनेपर ज्ञानाभावसे अज्ञानदशामें संशयके प्रसङ्गसे तथा व्यतिरेकनिर्णयके प्रसङ्गसे संशयादि तीनोंका विभक्तस्वरूप क्रमशः दिखलाते हैं–नचेति । मै हूँ या अन्य हूँ इस रीतिसे आत्मामें कोई सन्देह नहीं करता है अथवा ' अन्य ही है ' इस रीतिसे कोई आत्मामें विपर्यस्त नहीं होता है; अथवा मैं नहीं हूँ इस रीतिसे कोई आत्मामें अभावका निर्णय नहीं करता है, इस रीतिसे अस्वप्रकाशत्वमें बाधकका सत्त्व होनेसे ।

नच—त्वन्मते सन्देहाद्यविषयस्याहमर्थस्यानात्मत्वात्तदन्यस्मिन् छब्दैकगम्यात्मनि सन्देहादिसत्त्वादप्रयोजकत्वम् तदवस्थमेवेति–वाच्यम् ; अहमर्थस्य चिदचिद्ग्रन्थिरूपतया, अहन्त्वावच्छेदेनाचिदंशे सन्देहाद्यभाववत् चिदंशेऽपि सन्देहाद्यभावात् नच–शब्दजान्तःकरणविषयतद्वृत्तौ व्यभिचारिज्ञानत्वमिति–वाच्यम् ; तस्य स्फुरणार्थकत्वात् । नचद्वितीय-

हेतोस्तेजोरूपस्य घट इव स्वाश्रयेऽपि तमोनिवर्तकतया तद्विषये व्यभिचारः; रूपस्य ज्ञानादिवत् सविषयत्वाभावात् ।

शङ्कते नचेति । तुम्हारे मतमें सन्देहादिका अविषय जो अहमर्थ उस अहमर्थको अनात्मत्व होनेसे उससे भिन्न जो शब्दैकगम्य आत्मा उस आत्मामें सन्देहादिका सद्भाव होनेसे, अप्रयोजकत्व तदवस्थ है इति नच वाच्यम् क्यों ? अहमर्थको चिदचिन्की जो ग्रन्थि तादृश ग्रन्थिरूपता होनेसे अहन्त्वावच्छेदेन अचिदंशमें जैसे संशयादिका अभाव है तैसे चिदंशमें भी संशयादिका अभाव होनेसे शब्दसे जायमान जो अन्तःकरणविषयक अन्तःकरणकी वृत्ति है. उस वृत्तिमें ज्ञानत्वहेतु व्यभिचारि है=ज्ञानत्वरूपहेतु उक्तवृत्तिमें है, परन्तु भिन्नाश्रयविषयकत्व रूप साध्य नहीं है अतः व्यभिचार है । स्वाश्रयविषयकत्व होनेसे व्यभिचार है; नच= व्यभिचार नहीं है क्यों ? तस्य=ज्ञानत्वको स्फुरणार्थकत्वात् प्रत्यक्षार्थकत्व होनेसे उक्त वृत्तिमें परोक्षार्थकत्व है न कि प्रत्यक्षार्थकत्वरूप स्फुरणार्थकत्व तथाच उसमें साध्याभाववत् हेतुका भी अभाव है अतः व्यभिचार नहीं है । विमतं न स्वाश्रयविषयकम्, गुणत्वात्, इस द्वितीयानुमानमें व्यभिचार दिखलाते हैं—नचेति । द्वितीयगुणत्वरूप हेतुका वन्हिरूपको घटकी तरह स्वाश्रयमें भी तमोनिवर्त्तकत्व होनेसे तद्विषये=तत्=स्वाश्रयभूत तेजः विषयो यस्य तत् तद्विषयम्=तेजोरूपमिति यावत् तस्मिन्=तेजोरूपमें व्यभिचार है नच=व्यभिचार नहीं है, क्यों ? ज्ञानादिवत् रूपको स्वविषयत्वके अभावसे ।

'अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योति' रित्यादिश्रुतिरप्यत्र प्रमाणम् । तथाहि—'अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्येत्यादिना किं ज्योतिरेवायं पुरुष इत्यनेन ज्ञानसाधनालोकाद्यभावे जीवस्य कथं स्फुरणमित्युक्ते 'आत्मैवास्य ज्योतिः स्वयंज्योतिरित्यादिना स्वातिरिक्तानपेक्षतया स्वप्रकाशत्वमुक्तम् । न चात्मशब्दस्य परमात्मपरत्वम् पूर्ववाक्ये आत्मनि नाडीसम्बन्धप्रतिपादनात्, उत्तरवाक्ये च, 'कतम आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिरित्युत्तरवाक्यपर्यालोचनया संदंशन्यायेन जीवपरत्वात् । नच द्युभ्वाद्यधिकरणन्यायेनात्मशब्दस्य तत्रैव मुख्यत्वम् । प्रधानाद्यनात्मनिराकरणार्थतया स्वशब्दादिस्यात्मशब्दो हेतुत्वेनोक्तः; नतु मुख्यत्वाभिप्रायेण जीवस्याप्रसक्तेः मुख्यत्वस्योभयसाधारण्याच्च । अत एव—'अत्रायं पुरुषः स्वयमित्युपसंहारस्य अस्येति पदानुषङ्गेण अयमीश्वरो जीवस्य स्वयमेव ज्योतिर्ज्ञानहेतुरित्येवं परत्वम्—निरस्तम् उक्तन्यायेन उपक्रमविरोधात् ।

'अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिः' (बृ० ४।३।९) इत्यादिश्रुतिभी आत्माके स्वप्रकाशत्वमें प्रमाण है, तथाहि—'अस्तमित आदित्ये याज्ञवल्क्य' (बृ०।४।३।२) यहाँसे लेकर 'किं ज्योतिरेवायं पुरुषः' (बृ० ४।३।२) यहाँतक ज्ञानके साधन जो आलोकादि उन आलोकादिका

अभाव है, जिसमें एवम्भूत जो स्वप्न उस स्वप्नमें जीवका कैसे स्फुरण है, इस रीतिसे उक्त होनेपर 'आत्मैवास्य ज्योतिः (बृ० ४।३।६) स्वयंज्योतिः (बृ० ४।३।९) इत्यादिसे स्वातिरिक्तानपेक्षत्वेन स्वप्रकाशत्व कहा है। आत्मशब्दस्य=आत्मैवास्य ज्योतिः—एतद्घटक आत्मशब्दको परमात्मपरत्व है नच=परमात्मपरत्व नहीं है, क्यों? पूर्ववाक्ये=अथैतयोरेषा सृतिः सञ्चरणी यैषा हृदयादूर्ध्वं नाड्युच्चरती' (बृ० ४।२।३) इत्यादिरूप पूर्ववाक्यमें आत्मामें नाडीके सम्बन्धके प्रतिपादनसे-नाडीसम्बन्धका जीवात्मामें ही सम्भव है नकि परमात्मामें, और उत्तरवाक्यमें 'कतम आत्मा योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु हृद्यन्तर्ज्योतिः' (बृ० ४।३।७) इत्याकारक जो उत्तरवाक्य है उसके पर्यालोचनसे संदंशन्यायसे आत्मशब्दको तत्रैव=परमात्मामें ही मुख्यत्व है। नच ऐसा नहीं है, क्यों? प्रधानादिरूप जो अनात्म तादृशानात्मनिराकरणार्थत्वेन स्वशब्दात्=द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् (वे० १।३।१) एतत्सूत्रघटक जो स्वशब्दरूप आत्मशब्द है वह हेतुत्वेन उक्त है, मुख्यत्वाभिप्रायसे नहीं है, क्यों? जीवस्य=जीवको अप्रसक्तेः=द्युभ्वादिके अधिकरणत्वकी अप्रसक्तिसे, और मुख्यत्वको जीवात्मपरमात्म एतदुभयसाधारण्य होनेसेभी। अत्रायं पुरुषः स्वयम् (बृ० ४।२।९) इस उपसंहारको अस्य इस पदके अनुषङ्गसे यह ईश्वर जीवका स्वयं ही ज्योतिः=ज्ञानका हेतु है, एतदर्थपरत्व निरस्त हुआ, उक्तन्यायसे उपक्रमके साथ विरोध होनेसे।

नच—वाचैवायं ज्योतिषास्त इति ज्योतिःशब्दस्य वाचि ज्ञानसाधने प्रयोगादत्रत्यज्योतिःशब्दस्यापि ज्ञानसाधनपरत्वम्, नतु ज्ञानपरत्वमिति—वाच्यम्; लौकिकज्योतिषि रूढस्य ज्योतिःशब्दस्य वाचि ज्ञानसाधनत्वेन प्रवृत्तिवदत्रापि तमोविरोधित्वेन रूपेणाज्ञानविरोधिन्यपि प्रयोगसम्भवात्, नच स्वप्रकाशपरत्वे सदा स्वप्रकाशत्वेन श्रुतावत्रेत्यस्य वैयर्थ्यम्, जाग्रदवस्थायामादित्यादिज्योतिःसम्भवेन दुर्विवेकतयास्यामवस्थायां सुविवेकतया अत्रेति विशेषणसाफल्यात् नचास्येतिषष्ठ्या विषयत्वाभिधानम् स्वयंदासाइत्यादाविवानन्यवेद्यत्वपरत्वात्। नचामुख्यार्थत्वापत्तिः; मुख्यविषयासम्भवेनेष्टत्वात्। नच प्रदीपादौ स्वविषयत्वेन स्वप्रकाशत्वव्यवहारः; सजातीयप्रकाशाप्रकाश्यप्रकाशत्वस्यैव तत्रापि व्यवहारनिदानत्वात्, अतएव न घटादावप्रकाशे अतिप्रसङ्गः।

नचेति। 'वाचैवायं ज्योतिषास्ते' (बृ० ४।३।५) यहाँपर ज्योतिः शब्दका ज्ञानसाधनीभूतवाचामें प्रयोग होनेसे, अत्रत्य=अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिः एतद्वाक्यघटकज्योतिःशब्दकोभी ज्ञानसाधनपरत्व है नकि ज्ञानपरत्व, इति नच वाच्यम् क्यों? लौकिकज्योतिमें रूढ जो ज्योतिःशब्द है उस ज्योतिःशब्दकी जैसे तुम्हारे मतमें ज्ञानसाधनीभूत वाक्में प्रवृत्ति होती है, तैसे हमारे मतमें तमोविरोधित्वरूपसे अज्ञानके विरोधीमेंभी प्रयोगका सम्भव होनेसे। स्वप्रकाशपरत्वे=ज्योतिःशब्दको स्वप्रकाशपरत्व होनेपर सदा स्वप्रकाशत्व होनेसे श्रुतौ 'अत्रायं पुरुषः स्वयं ज्योतिः (बृ० ४।३।९) इस श्रुतिमें स्वप्नवाचक 'अत्र' इस पदका

वैयर्थ्य है, नच=वैयर्थ्य नहीं है, क्यों ? जाग्रदवस्थामें आदित्यादिरूप अन्यज्योतिओंका सम्भव होनेसे आत्माके स्वप्रकाशत्वको दुर्विवेकत्व होनेसे, अत्र इस विशेषणका साफल्य होनेसे । अस्येति षष्ठ्या='आत्मैवास्य ज्योतिः' (बृ० ४।३।६) एतद्घटक षष्ठीसे विषयत्वाभिधानम्=स्वविषयत्वका अभिधान है, नच=स्वविषयत्वका अभिधान नहीं है, क्यों ? 'स्वयं दासाः' इत्यादिकी नांई अन्यवेद्यत्वाभावपरत्वहोनेसे='स्वयं दासास्तपस्विनः' यहाँपर स्वमें स्वसेवानिचन्धनदासत्वको विरुद्धता होनेसे स्वेतरदासशून्यत्वहीमें उक्तवाक्यका तात्पर्य है, तैसे 'स्वयं ज्योतिः' इसकाभी अन्यावेद्यत्वमें तात्पर्य्य है स्वविषयकत्वमें नहीं, स्वमें स्वविषयकत्वको विरुद्धता होनेसे अमुख्यार्थत्वापत्तिः=अन्यवेद्यत्वाभावपरत्वमाननेमें अमुख्यार्थत्वकी आपत्ति है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? मुख्यविषयत्वके असम्भवसे अमुख्यार्थत्वको इष्टत्व होनेसे प्रदीपादिमें स्वविषयत्वेन स्वप्रकाशत्वका व्यवहार है, नच=नहीं है क्यों ? सजातीयप्रकाशाप्रकाश्यत्वविशिष्ट जो प्रकाशत्व तादृश प्रकाशत्वकोही तत्रापि=प्रदीपादिमेंभी स्वप्रकाशत्वव्यवहारका निदानत्व होनेसे। अतएव=सजातीयप्रकाशाप्रकाश्यत्वविशिष्टप्रकाशत्वको स्वप्रकाशत्व व्यवहारके प्रति निदानत्व होनेसेंही अप्रकाशरूप घटादिमें अतिप्रसङ्ग नहीं है ।

विवरणानुमानानि च—आत्मा स्वयंप्रकाशः, स्वसत्तायां प्रकाशव्यतिरेकविधुरत्वात्, प्रकाशाश्रयत्वात्, प्रकाशकर्तृत्वात् प्रदीपवत् । ननु च—अवेद्यत्वं चेत् साध्यं, साध्यवैकल्यम्, सजातीयप्रकाशाप्रकाशत्वं चेदर्थान्तरम्; घटादाविवास्वप्रकाशत्वेऽप्युपपत्तेः, ज्ञानप्रभानुगतप्रकाशत्वासिद्धिश्च, ज्ञातैकसति दुःखादावाद्यहेतोर्व्यभिचारः, द्वितीयतृतीययोस्त्वन्मत आत्मनः प्रकाशत्वेनासिद्धिरिति—चेन्न; स्वप्रकाश्यत्वस्य बोधिततया तदप्रकाश्यत्वेन पक्षस्य विशेषिततया वार्थान्तराभावात् । सजातीयप्रकाशाप्रकाश्यप्रकाशत्वमेव साध्यम् । एवञ्च न घटादिवदस्वप्रकाशत्वेनोपपत्तिः; स्वाप्रकाश्यसजातीयाप्रकाश्यत्वेनावेद्यत्वस्य लाभात् विजातीयस्याप्रकाशत्वात् । ज्ञानप्रभानुगतं च प्रकाशत्वमावरणाभिभावकत्वम् । तच्च ज्ञानस्य चित्त्वेनान्यत्र तेजोविशेषत्वादिनेत्यन्यदेतत् ।

विवरणानुमानानि च=विवरणोक्त अनुमानभी आत्माके स्वप्रकाशत्वमें प्रमाण हैं—आत्मा स्वप्रकाश है, स्वसत्तामें प्रकाशव्यतिरेकशून्यत्व होनेसे, प्रकाशाश्रयत्व होनेसे, प्रकाशकर्तृत्व होनेसे, प्रदीपवत् । शङ्कते नन्विति । यदि अवेद्यत्व साध्य है तब तो साध्यका अभाव है—चक्षुरादिसे वेद्यत्व होनेसे दृष्टान्तमें साध्यका अभाव है यदि सजातीयप्रकाशाप्रकाश्यत्वरूप साध्य है, तो अर्थान्तर है, अर्थान्तरको ही स्पष्ट करते हैं—घटादिकी तरह अस्वप्रकाशत्वके होनेपरभी स्वप्रकाशत्वकी उपपत्तिसे=घटादिमें अस्वप्रकाशत्व होनेपर जैसे त्वदुक्त सजातीयप्रकाशाप्रकाश्यत्वरूप स्वप्रकाशत्व है तैसे प्रकृतमेंभी स्वप्रकाशत्वकी उपपत्तिसे अर्थान्तर है। और ज्ञान तथा प्रभा इन दोनोंमें अनुगतप्रकाशत्वकी असिद्धिभी है और ज्ञातैकसत् जो दुःखादिक हैं उन दुःखादिकोंमें आद्य हेतोः=स्वसत्तायां प्रकाशव्यतिरेकविधुरत्वरूप आद्य हेतुका व्यभि-

चार है, द्वितीयतृतीययोः=प्रकाशाश्रयत्व और प्रकाशकर्तृत्वरूप जो द्वितीय तथा तृतीय हेतु है उन दोनोंकी तुम्हारे मतमें आत्माको प्रकाशत्व होनेसे असिद्धि है=प्रकाशको प्रकाशाश्रयत्व तथा प्रकाशकर्तृत्व नहीं बन सकता है, अतः दोनोंकी असिद्धि है इति चेन्न, आत्मामें स्वप्रकाश्यत्वको बाधितत्व होनेसे, अथवा तदप्रकाश्यत्वेन=स्वाप्रकाश्यत्वेन पक्षको विशेषितत्व होनेसे अर्थान्तरके अभावसे। सजातीयप्रकाशाप्रकाश्यका प्रकाशत्व ही स्वप्रकाशत्व है। एवञ्च=स्वप्रकाशत्वको उक्तरूपता होनेपर घटादिवत् अस्वप्रकाशत्वेन स्वप्रकाशत्वकी उपपत्ति नहीं है, स्वाप्रकाश्यत्वेन तथा सजातीयाप्रकाश्यत्वेन अवेद्यत्वका लाभ होनेसे। स्वाप्रकाश्य=स्वविषयभेद-विशिष्टत्व सजातीयाप्रकाश्य–स्वान्यचिद्विषयभेदविशिष्टत्व एतद्द्वयवत्त्वेन अवेद्यत्वका लाभ होता है, यह भावार्थ है। ननु तथापि आत्मामें चिदन्यविषयत्वका निषेध नहीं हुआ है, तहाँ कहते हैं–विजातीयस्य=वृत्तिज्ञानादिको अप्रकाशत्व होनेसे–फलतः वृत्तिरूपज्ञानविषयत्व होनेपरभी स्वप्रकाशत्वकी हानि नहीं। और ज्ञान तथा प्रभा एतदुभयानुगत प्रकाशत्व आवरणाभिभावकत्वरूप है, और तच्च=वह आवरणाभिभावकत्व तो ज्ञानको चित्त्वेन है और अन्यत्र प्रौढप्रकाशतेजोविशेषत्वादिरूपसे है, यह दूसरी बात है।

आवरणत्वं चाज्ञानतमसोः अर्थव्यवहारप्रतिबन्धकत्वमनुगतमेव तच्चाज्ञानस्यसाक्षात् तमसो ज्ञानप्रतिबन्धद्वारेत्यदेन्यतत्। नच दुःखे व्यभिचारः, तस्याद्यक्षणे प्रकाशव्यतिरेकसत्त्वात्, प्रकाशत्वेन विशेषणाच्च। नापि द्वितीयतृतीययोरसिद्धिः पररीत्या तयोरुक्तेः, प्रतिबिम्बस्य बिम्बाधीनतया तदाश्रितत्वेन बिम्बज्ञानहेतुत्वोपपत्तेश्च। अतएवात्मा स्वान्तरोत्पत्तिकप्रकाशाश्रयो न; प्रकाशाश्रयत्वादादित्यवदित्यपि साधु। नच सिद्धसाधनम्, घटादिविषयकज्ञानस्य त्वयापि जन्यत्वस्वीकारात्। आनन्दबोधोक्तं च विवादाध्यासिता संवित्, स्वसमानाश्रयस्वसमानकालस्वगोचरज्ञानविरहप्रयुक्तव्यवहारविरहवती न भवति, संवित्त्वादनन्तरव्यवह्रियमाणसंविद्वत्। नच स्ववेद्यत्वेनोपपत्त्या सिद्धसाधनम्; अस्य परवेद्यताङ्गीकर्तृविषयत्वात्, स्वाविषयत्वरूपपक्षविशेषणमहिम्ना तत्रानभिमतपर्यवसानात्। अवेद्यत्वं तु ब्रह्मणः श्रुतिसिद्धमेव। नच साकल्येनावेद्यत्वपरा सङ्कोचे कारणाभावात्।

अज्ञानतमसोः=अज्ञान तथा तम एतदुभयनिष्ठ आवरणत्व तो अर्थविषयक जो व्यवहार तादृश व्यवहारका प्रतिबन्धकत्वरूप अनुगत ही है तच्च=अर्थव्यवहारप्रतिबन्धकत्व अज्ञानको साक्षात् है और तमको ज्ञान–प्रतिबन्धद्वारा है। यह दूसरी बात है। दुःखमें व्यभिचार है, विवरणोक्त आद्यहेतुका दुःखमें व्यभिचार है; नच=दुःखमें व्यभिचार नहीं है क्यों? आद्यक्षणमें तस्य=दुःखके प्रकाशके व्यतिरेकका सत्त्व होनेसे=आद्यक्षणमें दुःखका प्रकाश नहीं होता है, किन्तु द्वितीयक्षणमें होता है तथाच आद्यक्षणमें प्रकाशव्यतिरेकविधुरत्व नहीं है किन्तु प्रकाशव्यतिरेकही है अतः व्यभिचार नहीं। और प्रकाशत्वेन विशेषणसे भी व्यभिचार नहीं.

है। प्रकाशत्वे सति स्वसत्तायां प्रकाशव्यतिरेकविधुरत्वात् यह हेतु या स्वरूप विवक्षित है अतः व्यभिचार नहीं। द्वितीय तथा तृतीय इन दोनोंकी भी असिद्धि नहीं है क्यों? अन्यकी रीतिसे उन दोनोंकी उक्ति होनेसे और उक्त आश्रयत्व तथा कर्तृत्व इन दोनोंकी प्रतिबिम्बस्य=साक्षीरूप प्रकाशको बिम्बाधीनतया=बिम्बस्वरूप शुद्धचित्–साध्य–होनेसे तदाश्रितत्वेन=बिम्बस्वरूपशुद्धचिदाश्रयत्वसे और बिम्बज्ञानहेतुत्व=बिम्बस्वरूपशुद्धचिन्निष्ठहेतुसे उपपत्ति होनेसे। अतएव=उक्त उपपत्तिके होनेसे ही आत्मा स्वसे अनन्तर है उत्पत्ति जिसकी ऐसा जो प्रकाश तादृश प्रकाशका आश्रय नहीं है, प्रकाशका आश्रय होनेसे आदित्यवत्, यह अनुमान भी निर्दोष है। सिद्धसाधन है=नित्यप्रकाशका आश्रयत्व होनेसे, उत्पद्यमान प्रकाशका आश्रय नहीं है अतः सिद्धसाधन है नच=सिद्धसाधन नहीं है क्यों? घटादिविषयकज्ञानका तुमसे भी जन्यत्वका स्वीकार होनेसे; आनन्दबोधाचार्योक्त अनुमान भी आत्माके स्वप्रकाशत्वमें प्रमाण है–विवादाध्यासिता संवित्=आत्मस्वरूपसंवित्, स्वसमानाश्रय और स्वसमानकाल तथा स्वगोचर जो ज्ञान तादृशज्ञानविरह–प्रयुक्त जो व्यवहारविरह तादृश व्यवहारविरहवती नहीं होती है सम्वित्त्व होनेसे, अनन्तर व्यवह्रियमाणसंवित्वत्=स्वगोचर जो ज्ञान तादृश ज्ञानका जो विरह तादृशविरहप्रयुक्त जो विरह तादृश विरहप्रतियोगी जो व्यवहार तादृशव्यवहार विरहवती नहीं है स्वगोचर ज्ञानके न होनेपर भी स्वगोचर व्यवहारवाली है. फलतः स्वव्यवहारमें सम्विदन्तरानपेक्षत्वरूप स्वप्रकाशत्वकी सिद्धि है पूर्वकालीन ज्ञानका अभाव होनेपर भी इदानींतन ज्ञानसे व्यवहारको जायमानत्व होनेपर स्वागोचरज्ञानविरहप्रयुक्त व्यवहारविरहके विरहको सिद्धत्व होनेसे सिद्धसाधन है उसके वारणके लिए ज्ञानमें स्वसमानकालीनत्व विशेषण है=अतीत कालीन स्वगोचरज्ञानके न होनेपर भी वर्त्तमानकालीनस्वगोचरज्ञानजन्यव्यवहारवत्त्वेन सिद्धसाधन है अतः स्वसमानकालीनत्व विशेषण है इतना कहनेपर भी स्वसमानकालीन–स्वगोचर यज्ञदत्तीयज्ञानका विरह होनेपर भी देवदत्तका व्यवहार देवदत्तीयज्ञानसे होता ही है अतः यज्ञदत्तीयज्ञानविरहप्रयुक्तव्यवहारविरहके विरहको सिद्धत्व होनेसे सिद्धसाधन है=स्वसमानकालीन स्वगोचर यज्ञदत्तीयज्ञानका विरह होनेपर भी देवदत्तीयस्वसमानकालीनस्वगोचरज्ञानजन्यव्यवहारवत्त्वेन सिद्धसाधन है उसके वारणार्थ स्वसमानाश्रय कहा है अनन्तरव्यवह्रियमाण सम्वित्वत्=प्रथमव्यवसायात्मक ज्ञान होता है उसके बाद अनुव्यवसायात्मकज्ञान होता है उसके बाद व्यवसायविषयकव्यवहार होता है, तथाच व्यवसायानन्तरभावि जो अनुव्यवसाय तदनन्तर व्यवह्रियमाण जो आद्यव्यवसायात्मक ज्ञान यह दृष्टान्त है, उसमें स्वगोचरानुव्यवसायरूपज्ञानप्रयुक्तव्यवहारका ही सत्त्व होनेसे स्वगोचरज्ञानविरहप्रयुक्त व्यवहारविरह नहीं है। नचेति। स्ववेद्यत्वेनोपपत्त्या=आत्मरूपसंवित्में स्ववेद्यत्वसे ही उक्त साध्यकी उपपत्तिसे सिद्धसाधन है नच=सिद्धसाधन नहीं है क्यों? अस्य=इस अनुमानको परवेद्यत्वाङ्गीकर्तृविषयत्वात्=ज्ञान ज्ञानान्तरसेही विषयीकृत होता है स्वसे नहीं इस रीतिसे जो तार्किकप्रभृति मानते हैं उन्होंके प्रतिही इस अनुमानकी प्रवृत्तिसे। और स्वाविषयत्वरूप

जो पक्षमें विशेषण तादृश विशेषणकी महिमासे तुम्हारे अनभिमतमें पर्य्यवसान होनेसे=प्रकृत माध्यद्वैती साक्षिज्ञानको स्वाविषयक और स्वान्यविषयक मानता है अतः पक्षीभूतासंवित्में स्वविषय जोड देनेसे द्वैतीके अभिमतकी सिद्धि नहीं है और ब्रह्मका अवेद्यत्व तो श्रुतिसिद्ध ही है। साकल्येनावेद्यत्वपरा=श्रुति साकल्येन ब्रह्म नहीं जाना जाता है एतदर्थपरा है नच= नहीं क्यों ? सङ्कोचमें कारणके अभावसे ।

एतेन—ज्ञाततालिङ्गानुमेयत्वे 'अहं सुखीतिवत् अहं जानामीति परोक्षानुभवविरोधः, गुरुमते अयंघट इत्यस्यैव स्वविषयत्वे स्वजनकेन्द्रियसन्निकर्षाश्रयत्वप्रसङ्गः, व्यवसायानुव्यवसाययोः पार्थक्यानुभवविरोधश्च न्यायमते अनुव्यवसायस्यापि परवेद्यत्वे ज्ञानस्य प्रत्यक्षात्मविशेषगुणत्वेन इच्छादिवदवश्यवेद्यत्वात् ज्ञानधारानुभवापत्तिः विच्छेदे चरमस्य निष्प्रामाणिकत्वापत्तिः; सामान्यप्रत्यासत्तेरभावात् । एवञ्च व्यवसायसुखादिगोचरं स्वविषयं नित्यमेव ज्ञानं सिध्यति । स्वविषयतायां च न स्वजनकसन्निकर्षाद्यपेक्षा, सन्निकर्षाद्यनपेक्षेश्वरसर्वविषयनित्यज्ञानवत् । तथाचैवं प्रयोगः—चैत्रसुखादिकं चैत्रीयनित्यापरोक्षज्ञानविषयः तं प्रति ज्ञातैकसत्त्वात्, यद्यं प्रति ज्ञातैकसत् तत् तं प्रति तादृग्ज्ञानविषयः यथेश्वरप्रयत्न इति नित्यज्ञानसिद्धौ तत्, स्वविषयं, नित्यज्ञानत्वात् स्वव्यवहारे अन्यानपेक्षत्वात्, स्वसंशयादिविरोधित्वाच्च । ईश्वरज्ञानवदिति । तस्मादात्मनो नित्यगुणभूतज्ञानं स्वविषयत्वरूपस्वप्रकाशत्ववत्, आत्मापि तद्विषयः, यावद्द्रव्यभाविना तेनाभिन्नत्वात्, मामहं जानामीत्यनुभवात् आत्मस्वरूपा संवित्, स्वविषया स्वजन्यव्यवहारविषयत्वात्, उक्तासंवित्, स्वविषयिणी स्वसमानाधिकरणस्वत्वप्रकारकस्वविशेष्यैकसंशयविरोधित्वात् उक्तविशेषणवद्विपर्ययविरोधित्वाद्वेति—निरस्तम् ।

अब प्रस्तुत माध्वद्वैती स्वाभिमतज्ञानमें स्वविषयत्व और नित्यत्वको दिखलानेके लिए ज्ञानविषयक भाट्टादिके मतोंका अनुवादकर दूषण देता हुआ आगे बढता है—एतेन—इसका व्यवहित 'निरस्तम्' के साथ सम्बन्ध है। ज्ञानको ज्ञाततालिङ्गानुमेयत्वे=घट घटधर्मिक-घटत्वप्रकारक ज्ञानका विषय है, घटवृत्तिघटत्वप्रकारकज्ञाततावत्त्व होनेसे इत्यादिरूप अनुमानमात्र विषयत्व होनेपर 'अहं सुखी' 'अहं जानामि' इत्याकारक जो अपरोक्षानुभव होता है उसके साथ विरोध है='अहं सुखी' इस सुखविषयक ज्ञानको जैसे अपरोक्षता है तैसे 'अहं जानामि' इस ज्ञानविषयक ज्ञानकोभी अपरोक्षता है उसके साथ विरोध है, यदि भट्टकी रीतिसे ज्ञानको केवल अनुमेय मानें तो और गुरुमतमें 'अयं घटः' इस ज्ञानको ही स्वविषयत्व होनेपर स्वजनक जो इन्द्रिय तादृश इन्द्रियके सन्निकर्षके आश्रयत्वका प्रसङ्ग है। तैसे गुरुमतमें व्यवसायानुव्यवसाययोः='अयं घटः' इत्याकारक जो व्यवसाय और 'घटं जानामि' इत्याकारक जो अनुव्यवसाय इन दोनोंका जो क्रमिकत्वप्रयुक्त पार्थक्यानुभव होता

है उसके साथभी विरोध है । न्यायमतमें अनुव्यवसायकोभी परवेद्यत्वे=स्वभिन्नज्ञानवेद्यत्व होनेपर ज्ञानको प्रत्यक्षात्मविशेषगुणत्वेन=प्रत्यक्षयोग्य आत्मगुणत्व होनेसे इच्छादिकी नांई अवश्य वेद्यत्वसे=अवश्य प्रत्यक्षत्वसे ज्ञानधाराके अनुभवकी आपत्ति है; विच्छेदे=ज्ञानधाराका कहींपर विच्छेद होनेपर अन्तिमके निष्प्रामाणिकत्वकी आपत्ति है, सामान्यप्रत्यासत्तिके अभावसे एवञ्च=उक्तमतोंकी निस्सारताके सिद्ध होनेपर, व्यवसाय सुखादिविषयक तथा स्वविषयक नित्य ही ज्ञान सिद्ध होता है। और ज्ञानको स्वविषयतामें स्वजनकके सन्निकर्षादिकी अपेक्षा नहीं है यहाँपर 'स्वजनक तथा सन्निकर्ष इन दोनों पदोंमें षष्ठीतत्पुरुषभी हो सकता है और कर्मधारयभी हो सकता है, क्योंकि जनकत्वव्यापारवत्में तथा व्यापारमें समान हैं। सन्निकर्षाद्यपेक्षाशून्य सर्वविषयक ईश्वरीयनित्यज्ञानवत्। तथाच इस रीतिसे प्रयोग है= चैत्रवृत्ति सुःखदुःखादिक, चैत्रनिष्ठ जो नित्य तथा अपरोक्ष ज्ञान तादृशज्ञानके विषय हैं, तं प्रति=चैत्रके प्रति ज्ञातैकसत्त्व होनेसे यत्=जो यं प्रति=जिसके प्रति ज्ञातैक सत् है तत्=वह तं प्रति=उसके प्रति तादृग्भानविषयः=तन्निष्ठनित्यापरोक्षज्ञानविषय है, जैसे ईश्वरका प्रयत्न, इस रीतिसे नित्यज्ञानके सिद्ध होनेपर– तत्=वह नित्यज्ञान स्वविषयक है, नित्यज्ञानत्व होनेसे स्वव्यवहारमें अन्यानपेक्षत्व होनेसे, स्वमें संशयादिका विरोधित्व होनेसे ईश्वरज्ञानवत्। फलितार्थ दिखलाते हैं तस्मादिति। आत्माका नित्यगुणभूत जो ज्ञान है वह स्वविषयत्वरूप स्वप्रकाशत्ववाला है आत्माभी उसका विषय है, यावद्द्रव्यभावि उसज्ञानरूपगुणके साथ अभिन्नत्वात्=भेदशून्यत्व होनेसे 'मुझको मैं जानताहूँ' इत्याकारक अनुभव होनेसे। आत्मस्वरूपसम्वित्, स्वविषया है स्वजन्यव्यवहारविषयत्व होनेसे। जहाँ यज्जन्यव्यवहारविषयत्व रहता है वहाँ तद्विषयत्वभी रहता है घटवत्। उक्ता संवित्=आत्मस्वरूप सम्वित्, स्वविषयिणी है स्वसमानाधिकरणस्वत्वप्रकारक स्वविशेष्यक जो संशय तादृश संशयका विरोधित्व होनेसे, वा=या उक्तविशेषण=स्वसमानाधिकरणस्वत्वप्रकाशस्वविशेष्यक जो विपर्यय तादृश विपर्ययका विरोधित्व होनेसे, जो यद्विशेष्यक उक्तविध संशयका विरोधी होता है या यद्विशेष्यक उक्तविध–विपर्ययका विरोधी होता है, वह तद्विषयक होता है घटसंविद्वत्= 'आत्मा अस्ति न वा' इत्याकारक जो सत्वप्रकारक आत्मधर्मिकसंशय तादृशसंशयविरोधित्व होनेसे। यहाँपर आत्मस्वरूप संवित्को पटादिधर्मिक संशयका विरोधित्व न होनेसे असिद्धि हो जायगी उसके वारणार्थ स्वविशेष्यकत्व संशयांशमें विशेषण दिया है, और आत्मा आनन्दरूपो नवा इत्याकारक जो संशय उसको आत्मधर्मिक होनेपरभी आत्मरूप संवित्में तद्विरोधित्व नहीं है अतः सत्त्वप्रकारकत्व विशेषण दिया है–संशयांशमें। और सत्त्वप्रकारक तथा आत्मधर्मिक जो पुरुषान्तरीय संशय है अथवा स्वनिष्ठ ही जो तादृश भिन्नकालिक संशय है तद्विरोधित्वके अभावसे स्वसमानाधिकरणरूप विशेषणदिया है–संशयांशमें इसी प्रकारको विपर्ययमेंभी घटाना मैं नहीं हूँ। यह विपर्ययका आकार दिखला चुके हैं। यह कथन निरस्त हुआ; क्योंकि—

आद्यानुमाने साक्षिरूपापरोक्षनित्यज्ञानविषयत्वेन सिद्धसाधनम्, सहोत्पन्नज्ञानेनापि ज्ञातैकसत्त्वोपपत्त्या ज्ञानगतनित्यतापर्यन्त–साधने तस्यासामर्थ्यं च । नच चैत्रस्य तादृग्ज्ञानाभावे सुप्तोत्थितस्य परामर्शानुपपत्तिः संस्कारेण तदुपपत्तेः नित्यज्ञानस्य परामर्शविरोधित्वाच्च स्वविषयत्वानुमाने च दृष्टान्तासिद्धिः; ईश्वरेऽपि स्वविषयकनित्यज्ञानासिद्धेः अप्रयोजकत्वं च । स्वाविषयत्वेऽपि व्यवहारादेरुपपादितत्वात् । किंच चैत्रनित्यज्ञानस्य स्वविषयत्वे नैकं नियामकम्; ईश्वरज्ञानस्य न्यायमते वस्तुत्ववत् सर्वविषयत्वोपपत्तेः नाप्यभेदः दुःखादावभावात् नापि समानाधिकरणत्वम्, आत्मन्यभावात्, धर्मादौ तत्सद्भावाच्चेत्यननुगतमेव वाच्यम् ।–तथाच किमपराद्धं व्यवसायस्वप्रकाशत्ववादिना गुरुणा ? अन्यत्र सन्निकर्षस्य नियामकत्वेऽपि स्वस्मिन्नभेदस्य संभवात्, पार्थक्यानुभवाननुभवरूपस्यानुभवकलहस्य त्वन्मतसमानत्वात् । तस्माद्व्यवहार एवाननुगतं कारणमस्तु । तत्प्रयोजकानुगमार्थं किमिति निर्बन्धः ? पश्चादप्यननुगम एव पर्यवसानात् । एवञ्च न स्वविषयत्वरूपं स्वप्रकाशत्वं, किन्त्ववेद्यत्वे सत्यपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वमिति सिद्धम् ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ आत्मनः स्वप्रकाशत्वोपपत्तिः ।

आद्यानुमाने=चैत्रसुखदुःखादिपक्षक आद्यानुमानमें साक्षिरूप जो अपरोक्ष नित्यज्ञान तादृशज्ञानविषयत्वेन सिद्धसाधन है, और सुखदुःखादिके साथमें उत्पन्न ज्ञानसेभी ज्ञातैकसत्त्वकी उपपत्तिसे ज्ञानगतनित्यतापर्य्यन्तसाधनमें तस्य=ज्ञातैकसत्त्वका असामर्थ्य भी है । चैत्रको तादृज्ज्ञानाभावे=नित्यज्ञानाभाव होनेपर सुप्तोत्थितपुरुषको परामर्शानुपपत्तिः=स्वप्नमें प्रत्यक्षजनकेन्द्रियसन्निकर्षादिके अभावसे 'स्वप्ने मया गजादिकं दृष्टम्' इत्याकारक स्मरणकी अनुपपत्ति है, नच=उक्तरूप स्मरणकी अनुपपत्ति नहीं है, क्यों ? संस्कारेण=जन्यज्ञानजन्यसंस्कारसे परामर्शकी उपपत्ति होनेसे 'नित्यज्ञानको' परामर्शका विरोधित्व होनेसेभी=ज्ञाननाशमें ही लाघवसे संस्कारका स्वीकार होनेसे नित्यज्ञानके नाशके अभावसे स्वनाशरूपसंस्कारद्वारकस्मरणका विरोधित्व है । स्वविषयत्वानुमानमें दृष्टान्तकी असिद्धि है असिद्धिको ही दिखलाते हैं–ईश्वरमेंभी स्वविषयक जो नित्यज्ञान तादृशज्ञानकी असिद्धिसे=ईश्वरज्ञान हमारे मतमें ईश्वरस्वरूपही है अथवा मायावृत्त्यवच्छिन्न चिद्रूप है, आद्यपक्षमें ईश्वरस्वरूपज्ञानका विषय ईश्वरसे भिन्नही है और द्वितीयपक्षमेंभी सर्वविषया एकवृत्ति नहीं है, किन्तु भविष्यपदार्थोंमें अनुमितिरूपा वृत्ति है, और भूत पदार्थोंमें स्मृतिरूपा वृत्ति है और वर्त्तमान पदार्थोंमें प्रत्यक्षरूपा वृत्ति है, तथा उक्त वृत्तिओंको स्वविषयकत्व न होनेपरभी अन्यवृत्तिओंसे ही इन्होंका ग्रहण है, यह भाव है । और अप्रयोजकत्वभी है, स्वविषयत्वके न होनेपरभी व्यवहारादिको उपपादित्व होनेसे । किञ्च, चैत्रका जो नित्यज्ञान उस नित्यज्ञानको स्वविषयत्वमें नैकं नियामकम्=एकव्यापक नहीं है; ईश्वरज्ञानको न्यायमतमें वस्तुत्ववत् सर्वविषयत्वकी उपपत्तिसे,

अभेदभी नियामक नहीं है दुःखादिमें अभावसे । समानाधिकरणत्व भी नियामक नहीं है, आत्मामें समानाधिकरणत्वका अभाव होनेसे और धर्मादिमें समानाधिकरणत्वके सद्भावसे= चैत्रज्ञानका समानाधिकरणत्व चैत्रीयधर्मादिमेंभी है, परन्तु उसमें चैत्रीयनित्यज्ञानविषयत्व नहीं है अतः अननुगतमेव=स्वनिष्ठ चैत्रनित्यज्ञानविषयत्वमें स्वाभेदनियामक है, दुःखादिनिष्ठ चैत्र नित्यज्ञानविषयत्वमें दुःखसमानाधिकरणत्व नियामक है इत्यादिरूपअननुगत ही व्यापक कहना होगा, तथाच क्या अपराध किया है व्यवसायस्वप्रकाशत्ववादि गुरुने ? अन्यत्र सन्निकर्षको नियामकत्व होनेपरभी स्वमें अभेदको नियामकत्वका सम्भव होनेसे, और पार्थक्यके अनुभव तथा अननुभवरूप अनुभवके कलहको त्वन्मतसमानत्व होनेसे । तस्मात् व्यवहारमें ही अननुगत कारण रहो । व्यवहारका जो प्रयोजक उस प्रयोजकके अनुगमके लिए क्यों ? आग्रह है, पश्चात्भी अननुगममें ही पर्य्यवसान होनेसे । फलतः स्वविषयत्वरूप स्वप्रकाशत्व नहीं है, किन्तु अवेद्यत्वे सति अपरोक्षव्यवहारयोग्यत्वरूप है यह सिद्ध हुआ ।

इति सरलायामात्मनः स्वप्रकाशत्वोपपत्तिः ।

अथ ब्रह्मणः शब्दावाच्यत्वोपपत्तिः ।

निर्धर्मकतया अवेद्यतया च ब्रह्म आनन्दादिपदलक्ष्यम्, न वाच्यम्, प्रवृत्तिनिमित्ताभावादिति । ननु—अवाच्यशब्देनोच्यते चेत् वाच्यत्वसिद्धिः, लक्ष्यते चेत् अवाच्यारूपमुख्यार्थस्याभावात् कथं लक्षणा ? भावे वा ब्रह्म नावाच्यं, किन्तु तीरवद्वाच्यरूपमुख्यार्थसम्बन्धिमात्रमिति स्यात् । मुख्यार्थहीनस्यापि ब्रह्मलक्षकत्वे घटपदमपि पटलक्षकं स्यादिति—चेन्न, अवाच्यरूपमुख्यार्थाभावेऽपि नञ्समभिव्याहृतवाच्यशब्देन वाच्यत्वात्यन्ताभावबोधनद्वारा स्वरूपे लक्षणयैव पर्यवसानात्, एवं निर्विशेषपदमपि अखण्डपदलक्षकतायामेव मुख्यार्थावश्यंभावनियमात् । ननु—एवं लक्ष्यपदेनापि लक्ष्यत्वे तीरस्यागङ्गात्ववत् ब्रह्मणोऽलक्ष्यत्वापत्तिरिति—चेन्न; इष्टत्वात्, सर्वथा निर्धर्मकत्वात् लक्ष्यव्यवहारस्य च वाच्यत्वाभावनिबन्धनत्वात्, तथा प्रतिपादितं प्राक् ।

अथ सरलायां ब्रह्मणः शब्दावाच्यत्वोपपत्तिः ।

निर्धर्मकत्व होनेसे और अवेद्यत्व होनेसे ब्रह्म आनन्दादिपदोंका लक्ष्य है, प्रवृत्तिनिमित्ताभावात्=शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्त जो जात्यादि उन्हींके अभावसे । शङ्कते नन्विति । अवाच्यशब्दसे यदि ब्रह्म कहा जाता है तो ब्रह्ममें वाच्यत्वकी सिद्धि है, लक्ष्यते चेत्=अवाच्यशब्दसे यदि ब्रह्म लक्षित होता है, तो अवाच्यरूप अन्यमुख्यार्थके अभावसे लक्षणा कैसे है ? भावेवा= ब्रह्मातिरिक्तअवाच्यरूपमुख्यार्थका भाव होनेपर ब्रह्म अवाच्य नहीं है; किन्तु तीरकी तरह अवाच्यरूपमुख्यार्थका सम्बन्धिमात्र है=तीरसे भिन्न गङ्गाशब्दके मुख्यार्थरूपप्रवाहका सद्भाव होनेसे तीर मुख्यार्थका सम्बन्धिमात्र है—तीरमें गङ्गात्व नहीं है, इसी रीतिसे ब्रह्मातिरिक्तावाच्यरूपमुख्यार्थका सद्भाव होनेसे ब्रह्म तत्सम्बन्धिमात्र सिद्ध होगा नकि अवाच्य । मुख्यार्थहीन-

स्यापि=मुख्यार्थसे रहित अवाच्यपदकोभी ब्रह्मका लक्षकत्व होनेपर घटपदभी पटका लक्षक होगा, इति चेन्न; क्यों ? अवाच्यरूप शक्यार्थका अभाव होनेपरभी नञ्के साथ पठित वाच्य-शब्दसे वाच्यत्वका जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावबोधनद्वारा स्वरूपमें लक्षणासे ही पर्य्यवसान होनेसे। इसी रीतिसे निर्विशेषपदभी ब्रह्ममें पर्य्यवसित है। अखण्डपदलक्षकताया-मेव=वाचकपदोंको लक्षकता होनेपरही मुख्यार्थके अवश्यम्भावका नियम होनेसे। शङ्कते नन्विति। इस रीतिसे लक्ष्यपदसेभी लक्ष्यत्व होनेपर तीरको अगङ्गात्वकी नाई ब्रह्मकोभी अलक्ष्यत्वकी आपत्ति है, इति चेन्न, क्यों ? इष्टत्वात्=तात्पर्य्यके विषयको शुद्धत्व होनेसे लक्ष्यत्व-विशिष्टाघटितत्वेन इष्टत्व होनेसे=लक्ष्यत्वविशिष्टत्वेन लक्ष्यत्वाभाव हमको इष्ट है। सर्वथा धर्म-रहितत्व होनेसे। और लक्ष्यव्यवहारको वाच्यत्वाभावनिबन्धनत्व होनेसे, तिस रीतिसे प्रति-पादित है पूर्वमें।

नचैवं लक्ष्यत्वाभावेन वाच्यत्वव्यवहारप्रसङ्गः, गौणस्य तस्यापीष्टत्वात्, सत्य-ज्ञानादिपदानां च कल्पितधर्मवाचिनां ब्रह्मरूपव्यक्तिलक्षकतयाऽखण्डार्थत्वानपायात्। नच सत्त्वादिधर्माश्रयतया लक्ष्यत्वाभावे मञ्चसम्बन्धित्वमात्रेण लक्ष्यस्य पुंसः अमञ्च-त्ववत् सत्वादिसम्बन्धित्वमात्रेण लक्ष्यस्य ब्रह्मणः असत्त्वाद्यापत्तिरिति–वाच्यम्। कल्पितचन्द्रत्वादिजातेः, परमार्थ–चन्द्रादिव्यक्तितादात्म्येनाचन्द्रत्वाभाववदत्रापि सत्वाद्य-भावानापत्तेः। तदुक्तं 'लक्ष्यव्यक्तिरपि ब्रह्मेति'। अतएव–स्वप्रकाशादेरब्रह्मत्वे यद्यत् ब्रह्मतयेष्टं तत्तद्ब्रह्मेति साधु समर्थितो ब्रह्मवाद इति–निरस्तम् यत्तु निर्विशेपादिपदानां च समासपदतया लक्ष्यादिपदानां यौगिकतया वाक्यतुल्यत्वान्न वाचकतेति वक्तुमश-क्यम्, अन्विताभिधानपक्षे तेषामपि वाचकत्वात्, अभिहितान्वयपक्षेऽपि वाक्य एवाभि-हितान्वयस्वीकारेण प्रकृतिप्रत्यययोरन्विताभिधायकत्वात् वाक्यतुल्यस्यापि वाचकत्वात् ब्रह्मणः पदार्थसंसर्गरूपत्वे सखण्डत्वापत्त्या पदार्थत्वे वाच्यत्वापरिहारादिति, तन्न; पद-लक्ष्यत्वेऽप्यपदार्थत्वोपपत्तेः; अखण्डत्वेऽपि वाक्यार्थत्वस्योपपादितत्वादन्विताभिधाने अन्वितवाचकस्यापि स्वरूपे लक्षणाङ्गीकारात्।

एवम्=ऐसा होनेपर लक्ष्यत्वके अभावसे वाच्यत्वके व्यवहारका प्रसङ्ग है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? गौणस्य=गौणभूत वाच्यत्वके व्यवहारकोभी इष्टत्व होनेसे। और कल्पितधर्मवाचि सत्यादिपदोंको ब्रह्मस्वरूपव्यक्तिलक्षकता होनेसे उन्होंके अखण्डार्थत्वके अन-पायसे। सत्त्वादिरूपधर्माश्रयत्वेन ब्रह्मको लक्ष्यत्व न होनेपर मञ्चसम्बन्धित्वमात्रसे लक्ष्यपुरुषको जैसे अमञ्चत्व है तैसे सत्वादिसम्बन्धित्वमात्रसे लक्ष्य जो ब्रह्म उस ब्रह्मको असत्त्वादिकी आपत्ति है, 'मञ्चः क्रोशति' यहाँपर मञ्चत्वरूपधर्माश्रयत्वेन पुरुष लक्ष्य नहीं है, किन्तु मञ्च-सम्बन्धित्वमात्रसे लक्ष्य है अतएव उसमें अमञ्चत्व है तैसे 'सत्यं ब्रह्म' (बृ० ५।४।१; ५।५।१;) यहाँपर सत्त्वाश्रयत्वेन ब्रह्म लक्ष्य नहीं है किन्तु सत्वसम्बन्धित्वमात्रसे लक्ष्य है,

तथाच ब्रह्ममें सत्त्वविरोधि असत्त्वकी आपत्ति है; इसी रीतिसे 'ज्ञानं ब्रह्म' इत्यादिमेंभी समझना चाहिए, इति नच वाच्यम् क्यों ? कल्पितचन्द्रत्वादिजातेः=कल्पित है चन्द्रत्वादिरूप जाति जिसमें ऐसा जो प्रातिभासिकचन्द्रादि तादृश प्रातिभासिकचन्द्रादिका परमार्थचन्द्रादि व्यक्तिके साथ तादात्म्य होनेसे जैसे उसमें अचन्द्रत्वका अभाव है तैसे अत्रापि=ब्रह्ममेंभी सत्त्वादिके अभावकी अनापत्तिसे=सत्त्वादिका आश्रयरूप जो कल्पित धर्मी है उस धर्मीको परमार्थ सद्रूप ब्रह्ममें कल्पितत्व होनेसे ब्रह्ममेंभी सत्त्वादिके आश्रयत्वका व्यवहार है, और वस्तुतः उसे सत्वादिका आश्रयत्व नहीं है किन्तु त्रिकालाबाध्यत्व सद्रूपत्व है । सो कहा है 'लक्ष्यव्यक्तिभी ब्रह्म है' अतएव=स्वप्रकाशाश्रयत्वेन कल्पितव्यक्तिके तादात्म्यका शुद्धमेंभी सत्त्व होनेसे ही स्वप्रकाशादिको ब्रह्मत्व न होनेपर जो जो ब्रह्मत्वेन इष्ट है वह वह अब्रह्म है, इस रीतिसे अच्छा समर्थित किया ब्रह्मवाद, यह निरस्त हुआ, और जो यह कहा है कि निर्विशेषादिपदोंको समासपदत्व होनेसे और लक्ष्यादिपदोंको यौगिकत्व होनेसे वाक्यतुल्यत्वसे वाचकता नहीं है । इस रीतिसे कहनेके लिए शक्य नहीं है; क्यों ? अन्विताभिधानपक्षमें वाक्योंकोभी वाचकत्व होनेसे, अभिहितान्वयपक्षमेंभी वाच्यमें ही अभिहितान्वयका स्वीकार होनेसे प्रकृति प्रत्ययोंका अन्विताभिधायकत्व होनेसे वाक्यतुल्यकोभी वाचकत्व होनेसे, ब्रह्मको पदार्थसंसर्गरूपत्व होनेपर सखण्डत्वकी आपत्तिसे पदार्थत्व होनेपर वाच्यत्वके अपरिहारसे यत्तुसे लेकर यहाँतक द्वैतीने सिद्धान्तीके मतका अनुवादकर खण्डन किया, अब द्वैतीके कथनका परासन किया जाता है—तन्नेति । क्यों ? पदलक्ष्यत्व होनेपरभी अपदार्थत्वकी उपपत्तिसे अखण्डत्व होनेपरभी वाक्यार्थत्वको उपपादितत्व होनेसे । अन्विताभिधान होनेपर अन्वितवाचककीभी स्वरूपमें लक्षणा स्वीकार होनेसे ।

नच तर्ह्यवाच्यत्वासिद्धिः, अखण्डब्रह्मसिध्युपायत्वेन प्राप्तस्यावाच्यत्वादेः निवारकाभावेनानुपङ्क्तिकतया सिद्धेः । यतो वाचो निवर्त्तन्ते, अशब्दमस्पर्शमित्यादिश्रुतयश्चात्रानुसन्धेयाः, अवाच्यशब्दवदशब्दशब्देऽपि व्याघाताभावात् । नचेयं श्रुतिरद्भुतत्वाभिप्राया; श्रूयमाणार्थत्वे बाधकाभावात् । नच यतो वाच इत्यत्रापि मनसा सहेति श्रुतमनोवृत्तेरिवान्तःकरणवृत्तिव्याप्ये ब्रह्मणि वाग्वृत्तेरपि सर्वथा निषेधायोगः लक्षणायाः स्वीकारेण शक्तिमात्रस्यैव निराकरणात् । नच—आनन्दाद्यनेकपदामुख्यार्थत्वापेक्षया निवर्त्तन्त इत्येकपदार्थामुख्यत्वमेव युक्तमिति—वाच्यम्; ब्रह्मणो निर्धर्मकतया तत्र शक्त्यभावेन बहुत्वस्याप्रयोजकत्वाद्वाच्यत्वविरोध्यर्थद्वारैवाखण्डार्थपरतया तद्विरोधतादवस्थ्यात् । अतएव कस्मादुच्यते परं ब्रह्मेत्यादिश्रुतेः परमात्मेति चाप्युक्त इत्यादिस्मृतेश्च तत्तच्छब्दबोध्यत्वमात्रेण वाच्यत्वाभिलापः । नतु शक्यत्वाभिप्रायेणेति ताभ्यां न विरोधः ।

नचेति । तब अवाच्यत्वकी असिद्धि है नच=असिद्धि नहीं है; क्यों ? ब्रह्मसिद्ध्युपायत्वेन प्राप्त जो अवाच्यत्वादि तादृश अवाच्यत्वादिके निवारकका अभाव होनेसे आनु-

पङ्क्तिकत्वेन अवाच्यत्वादिकी सिद्धिसे। 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते' (तै० २।४।१) अशब्दम-स्पर्शमरूपमव्ययम् (क० ३।१५) इत्यादि श्रुतियाँ भी अवाच्यत्वमें अनुसन्धेय हैं। जैसे अवाच्यशब्दमें व्याघात नहीं है, वैसे अशब्द शब्दमें भी व्याघातके अभावसे। उक्तश्रुति अद्भु-तत्वाभिप्रायवाली है—ब्रह्म अद्भुत है इसलिए श्रुतिने उसे अवाच्य तथा अशब्द कह दिया है अतः अद्भुताभिप्राया श्रुति है, नच=नहीं, क्यों? यथाश्रुतार्थमें बाधकके अभावसे। नचेति। 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते यहाँपर भी 'मनसा सह' मनोवृत्तिके सर्वथा निषेधका जैसे अयोग है वैसे अन्तःकरणवृत्तिव्याप्य जो ब्रह्म तादृश ब्रह्ममें योगवृत्तिके भी सर्वथा निषेधका अयोग है= 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्यमनसा सह' यहाँपर जैसे मनोवृत्तिमात्रका निषेध नहीं है किन्तु मलिनमनोवृत्तिका निषेध है वैसे वाग्वृत्तिका भी सर्वथा निषेध नहीं होना चाहिए; नच= ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों? लक्षणावृत्तिका स्वीकार होनेसे शक्तिमात्रके ही निषेधसे= ठीक ही कहते हो सर्वथा वाग्वृत्तिका निषेध नहीं है किन्तु शक्तिवृत्तिका निषेध है। आन-न्दादिरूप अनेक पदोंके अमुख्यार्थत्वकी अपेक्षा 'निवर्तते' इस एक पदका साकल्येन प्रतिपाद-नान्निवर्ततेरूप अमुख्यार्थत्वही युक्त है; इति नच वाच्यम्, क्यों? ब्रह्मको निर्धर्मकत्व होनेसे तत्र=ब्रह्ममें शक्त्यभावेन=शक्तिके असामर्थ्यसे बहुत्वको अप्रयोजकत्व होनेसे वाच्यार्थविरोध्य-र्थद्वारैव=वाच्यत्वका विरोधि जो वाच्यत्वाभाव तद्वाराही उक्त श्रुतिको अखण्डार्थपरत्व होनेसे तद्विरोध=उक्तश्रुतिविरोधका तदवस्थत्व होनेसे। अतएव=उक्त श्रुतिको वाच्यत्वका विरोधित्व होनेसे 'कस्मादुच्यते परंब्रह्म। अथर्वशीर्षं' इत्यादि श्रुतिके और परमात्मेति चाप्युक्तः (गी०१३।२२) इत्यादिस्मृतिके वाच्यत्वका अभिलाप तत्तच्छब्दबोध्यत्वमात्रसे है—उच्यते उक्तः, इत्यादि शब्दोंसे जो बोध्यता है इसका नाम है—श्रुतिस्मृतिके वाच्यत्वका अभिलाप। नत्विति। शब्दत्वाभि-प्रायसे वाच्यत्वाभिलाप नहीं है, अतः ताभ्याम्=उक्तश्रुतिस्मृतिओंसे विरोध नहीं है।

तात्पर्यविषयो ब्रह्म वाच्यं वस्तुत्वाल्लक्ष्यत्वाच्च तीरवदिति—चेत् निर्धर्मकतया वाच्यत्वबाधात्, तदुन्नीतसधर्मकत्वाद्युपाधिसम्भवाच्च। परमार्थसत्यपदादिकं कस्यचि-द्वाचकं पदत्वादित्यपि न। किमत्र पदत्वम्, न तावत्सुप्तिङन्तत्वम्; समासपदस्याशक्त-त्वेन राजपुरुषादौ व्यभिचारात् नापि शक्यत्वम् साध्याविशेषात्, अवयवद्वारा समास-पदस्य वाचकत्वं चेत् इष्टमेव। नापि सत्यज्ञानादिवाक्यं वाच्यार्थतात्पर्यवच्छब्दयुक्तं वाक्यत्वादित्यपि विषं भुङ्क्ष्वेत्यादौ व्यभिचारात्। ननु—अवाच्यत्वे लक्ष्यत्वानुपपत्तिः वाच्यार्थसम्बन्धित्वेन ज्ञातस्यैव लक्ष्यत्वात् तज्ज्ञानं च न शब्दभिन्नेन; उपनिषन्मात्रगम्य-त्वात्, नापि स्वप्रकाशतया; नित्यसिद्धे शब्दवैयर्थ्यात्। अवाच्यशब्दस्य च लक्षकस्यैव वक्तव्यत्वात्तत्रापि वाच्यसम्बन्धित्वेन ज्ञेयत्वे अनवस्थेति—चेन्न; तथा ज्ञानमुपस्थितावु-पयोगि। ब्रह्म स्वप्रकाशतया स्वत एवोपस्थितमिति किं तेन? नचैवं शब्दवैयर्थ्यम्; आवरणाभिभावकवृत्तावुपयोगात्।

तात्पर्यका विषय ब्रह्म वाच्य है, वस्तुत्व होनेसे, लक्ष्यत्व होनेसे तीरवत्; इति चेत्= ऐसा नहीं बन सकता है क्यों ? निर्धर्मकता होनेसे वाच्यत्वके बाधसे, और तदुन्नीत=बाधो-न्नीतसधर्मकत्वादिरूप उपाधिके सम्भवसे भी=तीरमें वाच्यत्व है और सधर्मकत्वरूप उपाधि भी है अतः उपाधिमें साध्यव्यापकत्व है, हेतु ब्रह्ममें है, परन्तु वहाँ सधर्मकत्वरूप उपाधि नहीं है, अतः साधनकी अव्यापक है हेतुशब्दसे दोनों हेतुओंका ग्रहण है, परमार्थसत्यादिपद किसीके भी वाचक हैं पदत्व होनेसे, गङ्गादिपदवत् यह भी ठीक नहीं यहाँपर पदत्व क्या है; सुब-न्तत्व तिङन्तत्व तो पदत्व नहीं हो सकता है, समासपदको अशक्तत्व होनेसे राजपुरुषादिमें व्यभिचार होनेसे=सुबन्तत्वरूप पदत्वतो 'राजपुरुषः' इस समासमें भी है परन्तु इसमें वाच-कत्व नहीं है, अतः व्यभिचार है। शक्तत्वरूप भी पदत्व नहीं हो सकता है साध्यके साथ अविशेष होनेसे=वाचकत्व और शक्तत्वमें भेद नहीं अतः साध्याविशेष है, यदि यों कहो कि अवयवद्वारा समासपदको वाचकत्व है, तब तो इष्ट ही है=अवयवद्वारा सत्यज्ञानादिवाक्य भी किसीका वाचक है यह बतलाचुके हैं। सत्यादिवाक्य वाच्यार्थमें तात्पर्य है जिसका एवम्भूत जो शब्द तादृश शब्दसे युक्त है वाक्यत्व होनेसे गामानय इत्यादि वाक्यवत्, इत्यपि न= यह भी युक्त नहीं क्यों ? 'विषं भुङ्क्ष्व' इत्यादिमें व्यभिचार होनेसे=वाक्यत्व इसमें है परन्तु उक्तविध शब्दप्रयुक्त नहीं है। शङ्कते नन्विति। ब्रह्मको अवाच्यत्व होनेपर लक्ष्यत्वकी अनुपपत्ति है, वाच्यार्थसम्बन्धित्वेन ज्ञातको ही लक्ष्यत्व होनेसे और ब्रह्मका ज्ञान तो शब्दसे भिन्न प्रमा-णसे नहीं बनसकता है, ब्रह्मको उपनिषत्मात्रगम्यत्व होनेसे। स्वप्रकाशत्वेन भी लक्ष्यत्व नहीं हो सकता है, नित्यसिद्धमें शब्दके वैयर्थ्यसे, और अवाच्यमें लक्षक शब्दको ही वक्तव्यत्व होनेसे लक्षकपदमें भी वाच्यसम्बन्धित्वेन ज्ञेयत्व होनेपर अनवस्था है—इति चेत्—न तथा= वाच्यसम्बन्धित्वेन ज्ञान उपस्थितिमें उपयोगी नहीं है; स्वप्रकाश होनेसे ब्रह्म स्वतएव=वाच्य-सम्बन्धित्वेन ज्ञानके विनाही उपस्थितम्=निर्विकल्पकस्मृतिका विषय है, अतः किं तेन= वाच्यसम्बन्धित्वेन ज्ञानकी क्या आवश्यकता है। ऐसा होनेपर शब्दका वैयर्थ्य है=नच=वैयर्थ्य नहीं है क्यों ? आवरणकी अभिभावक जो वृत्ति उस वृत्तिमें उपयोग होनेसे।

अतएव नानावस्था। तस्मात् प्रवृत्तिनिमित्तस्य दुर्निरूपत्वादवाच्यत्वम्। तदुक्तं—'दृष्टा गुणक्रियाजातिसम्बन्धाः शब्दहेतवः। नात्मन्यन्यतमो ह्येषां तेनात्मा नाभिधीयते ॥' इति नचारोपितगुणाश्रयतया वाच्यता; तस्य तात्पर्याविषयतया तात्पर्यविषये अवाच्य-त्वस्य स्थितत्वात्। नच सत्यादिपदानां लक्षकत्वे सिद्धे निमित्ताभावः तस्मिंश्च लक्षक-त्वमिति परस्पराश्रयः। निर्विशेषवाक्येन नेतिनेतीत्यनेनैव निमित्ताभावस्य सिद्धत्वात्। नच—निर्विशेषवाक्यस्य स्वरूपमात्रपरत्वे प्रवृत्तिनिमित्ताविरोधः, निर्विशेषत्वविशिष्टपरत्वे च तस्यैव सत्त्वेन निर्विशेषपदवाच्यत्वस्यैव प्रसङ्ग इति—वाच्यम्; द्वारतया उपस्थितस्य स्वपरविरोधित्वान्निर्विशेषस्य वाच्यत्वासंभवाच्च। तस्मान्निर्विशेषत्वादेव जीवब्रह्माभेदः

सिद्धः भेदकासंभवात्। तथाच—ब्रह्मण्यवाच्ये यो विद्वान्वाच्यतामधिगच्छति। स निरूपो निमित्तानां विरहैः प्रतिबोध्यताम् ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ ब्रह्मणः शब्दावाच्यत्वोपपत्तिः।

अतएव=वाच्यसम्वन्धित्वेन ब्रह्मज्ञानका उपस्थितिमें उपयोग न होनेसे ही अनवस्थान नहीं है। तस्मात् शब्दकी प्रवृत्तिके निमित्तको दुर्निरूपत्व होनेसे ब्रह्मका अवाच्यत्व है। सो कहा है—गुण, क्रिया, जाति, सम्बन्ध, ये चार शब्दकी प्रवृत्तिके हेतु देखे गये हैं। इन्होंमेंसे कोईभी आत्मामें नहीं है ततः आत्मा शब्दका वाच्य नहीं है। आरोपित जो गुण तादृश गुणाश्रयतया वाच्यता है नच=ऐसा नहीं है, क्यों? तस्य=गुणाश्रयको तात्पर्याविषयतया=मुख्यतात्पर्य्यका अविषयत्व होनेसे मुख्यतात्पर्य्यके विषयमें अवाच्यत्वको स्थितत्व होनेसे सत्यादिपदोंको लक्षकत्व सिद्ध होनेपर निमित्तका अभाव है, तस्मिंश्च=निमित्ताभाव होनेपर लक्षकत्व है, अतः अन्योन्याश्रय है, नच=अन्योन्याश्रय नहीं है, क्यों? नेति नेति (बृ० २।३।६) इत्याकारक जो निर्विशेष वाक्य है उससे ही निमित्ताभावको सिद्धत्व होनेसे। 'शङ्कते नचेति' निर्विशेषवाक्यको स्वरूपमात्रपरत्व होनेपर प्रवृत्तिनिमित्तके साथ उसका विरोध नहीं है, और निर्विशेषत्वविशिष्टपरत्व होनेपर तस्यैव=निमित्तकाही सत्त्व होनेसे निर्विशेषपदवाच्यत्वके ही प्रसङ्गसे इति नच वाच्यम्; क्यों? द्वारतया उपस्थितको स्वपरविरोधित्व होनेसे और निर्विशेषको वाच्यत्वके असम्भवसे। तस्मात् निर्विशेषत्व होनेसे जीवब्रह्मका अभेद सिद्ध हुआ। भेदकके असम्भवसे। फलतः अवाच्यब्रह्ममें जो पण्डितम्मन्य वाच्यताको प्राप्त होता है। वह निरूप निमित्तोंके विरहसे समझानेके लायक है।

इति सरलायां ब्रह्मणः शब्दावाच्यत्वोपपत्तिः

अथ सामान्यतो भेदखण्डनम्।

स्यादेतत्—इदमयुक्तम्, भेदस्य प्रमाणसिद्धत्वात्। नच भेदस्य स्वरूपत्वे अनपेक्षत्वापत्त्या धर्मत्वम्; तथाचानवस्था; स्तम्भकुम्भयोः परस्परभेदग्रहोऽन्योन्यभेदग्रहसापेक्ष इति अन्योन्याश्रयश्च, एवञ्च भेदासिद्धिरिति—वाच्यम्; तत् किं भेदे प्रतीतिरेव नास्ति, कारणाजन्या वा, बाध्यविषया वा,। नाद्यः विकल्पाधिकरणरूपव्यवहारविप्लवापत्तेः। नहि भिन्नतया अज्ञाते विकल्पः न द्वितीयः; अकारणकोत्पत्तेर्व्याहतत्वेन नित्यत्वापत्त्या तन्निरासकमोक्षोपायाननुसरणापत्तेः। न तृतीयः; उक्तशुष्कतर्कस्याबाधकत्वात्। अन्यथा ऐक्यस्य स्वरूपत्वे अनपेक्षत्वापत्तिः, धर्मत्वे अद्वैतहानिरित्यादिना, ऐक्यबुद्धिरपि बाधितविषया स्यात्। नच मम वैतण्डिकस्य परपक्षमात्रं खण्डनीयमिति—वाच्यम्; स्वपक्षत्वेऽपि तत्र तथात्वे ममापि तथात्वाविरोधात्। नच मम परपक्षखण्डनमात्रेण स्वमतभूतैक्यसिद्धिः, ममापि तावन्मात्रेण स्वगतभूतभेदसिद्धिसम्भवात्। नच—मां प्रति भेदखण्डनमात्रेण नियोगे ममैव वैतण्डिकत्वमिति—वाच्यम्; मां प्रत्यप्यैक्यखण्ड-

नमात्रनियोगसंभवात् मध्यस्थस्य त्वदनधीनत्वात्। अस्वव्याघातकैरेव त्वयैक्यं दुष्यमिति यदा तदा अस्वव्याघातकैरेव त्वया भेदो दुष्य इत्यपि स्यादिति–चेत् मैवम् नहि वयं भेदप्रतीतेः स्वरूपं कारणं वाऽपलपामः।

अथ सरलायां सामान्यतो भेदखण्डनम्।

रहो यह–भेदकका असम्भव है, अतः जीवब्रह्मका भेद नहीं है, यह कथन अयुक्त है–भेदग्राहक प्रमाणके अभावसे भेद नहीं है यह कथन अयुक्त है, भेदको प्रमाणसे सिद्धत्व होनेसे द्वैती अद्वैतीके मतका अनुवादकर दोष देता है, नचेति। भेदस्य=घटादिनिष्ठभेदको स्वरूपत्वे=घटादिस्वरूपत्व होनेपर अनपेक्षत्वापत्त्या=स्वविषयकप्रतीतिमें प्रतियोगी तथा अनुयोगी इन दोनोंके ज्ञानके अनपेक्षत्वकी आपत्तिसे, और आश्रयविधया घटादिके अनपेक्षत्वकी आपत्तिसे धर्म है=यदि घटादिमें रहनेवाला भेद घटादिका स्वरूप होगा तो उसको स्वविषयक ज्ञानमें अनुयोगीके तथा प्रतियोगीके ज्ञानकी अपेक्षा न होगी और आश्रयविधया घटादिकीभी अपेक्षा न होगी, परन्तु भेदको इन तीनों पदार्थोंकी अपेक्षा तो होती है अतः घटादिकी स्वरूपता उसमें नहीं है किन्तु धर्मत्व है, तथाच=जब कि धर्मत्व सिद्ध हुआ, तब अनवस्था है=घटका धर्मभूत जो भेद है तादृशभेदप्रतियोगिक घटानुयोगिक भेदान्तर मानना पडेगा, इससे आगे भेदप्रतियोगिकघटानुयोगिकभेदप्रतियोगिकघटानुयोगिक भेदान्तर मानना; पडेगा, यों ही आगे बढनेसे अनवस्था है, इस भेदप्रवाहकी कहींपर अनुयोग्यन्तर्भावसे विश्रान्ति माननेपर सभी भेदोंका स्वरूपमें पर्य्यवसान होता है और स्वरूपपक्षमें प्रथम ही दोष बतला चुके हैं अतः भेदकी असिद्धि है स्तम्भकुम्भयोःपरस्परभेदाग्रहः=स्तम्भप्रतियोगिक कुम्भानुयोगिक जो भेद तादृश भेदका ग्रह परस्पर भेदग्रहसापेक्ष है, अतः अन्योन्याश्रयभी है=घटपटका अभेदग्रह होनेपर घटप्रतियोगिकत्वविशिष्ट पटानुयोगिकत्वविशिष्ट भेदका या पटप्रतियोगिकत्वविशिष्ट घटानुयोगिकत्वविशिष्टभेदका ग्रह नहीं होता है और एक ही लम्बमानवंशादिमें भेदभ्रम होनेपर अनुयोगिकत्वप्रतियोगिकत्वविशिष्टत्वेन भेदग्रह होता है=भेदनिरूपितानुयोगिताश्रयत्वेन तथा भेदनिरूपितप्रतियोगिताश्रयत्वेन जो दो पदार्थोंका ज्ञान होता है वह परस्परभेदज्ञानसे होता है, और भेदज्ञान उक्तविध प्रतियोगिताश्रयत्वविशिष्टके तथा उक्तविध अनुयोगिताश्रयत्वविशिष्टके ज्ञानसे होता है, अतः अन्योन्याश्रय है, अतोऽपि भेदकी असिद्धि है, इति नच वाच्यम्, विकल्पकर द्वैती दोष देता है–तदिति। सो क्या भेदे=भेदविषयक प्रतीति ही नहीं है, या वह कारणसे अजन्या है=प्रतीति तो है परन्तु वह कारणसे जन्य नहीं है, अथवा बाधविषया है=भेदकी प्रतीतिभी है, और वह कारणसे जन्यभी है परन्तु वह बाधनीयविषया है–उसका विषय बाध्य है। नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है; क्यों? प्रतीतिजन्य जो विकल्पाधिकरणरूपव्यवहार उसके अभावकी आपत्तिसे=भेद घटादिका स्वरूप है या घटादिका धर्म है इत्याकारक जो विकल्प तादृश विकल्पके प्रति अधिकरणरूपता न बनेगी, क्योंकि भिन्नतया अज्ञात पदार्थमें कोई विकल्प नहीं करता है–जैसे कि 'शशशृङ्ग सरल है या वक्र है' ऐसा विकल्प नहीं होता है।

तैसे स्वपक्ष परपक्षका भेदज्ञान न होनेपर 'त्वदीयपक्ष दूषित है' मदीयपक्ष भूषित है। त्वदीय कथन प्रलापकलापात्मक है मदीय कथन संलापकलापात्मक है, इत्यादिरूप व्यवहारभी न होगा। न द्वितीयः=भेदविषयक प्रतीति कारणसे अजन्य है, यह द्वितीय पक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों? अकारणक उत्पत्तिको व्याहतत्व होनेसे नित्यत्वापत्त्या=भेदकी प्रतीतिको नित्यत्वकी आपत्तिसे=तन्निरासक=भेदप्रतीत्युच्छेदक जो मोक्षोपाय उसके अननुसरणकी आपत्तिसे। न तृतीयः=बाध्यविषया प्रतीति है यह तृतीयपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों? उक्तशुष्कतर्कस्य=श्रुत्याद्यनपेक्ष उक्त अनवस्थादिरूप तर्कको भेदका अबाधकत्व होनेसे। अन्यथा=शुष्क तर्कको बाधकत्व होनेपर ऐक्यस्य=अभेदको स्वरूपत्व होनेपर अनपेक्षत्वकी आपत्ति है और धर्मत्व होनेपर अद्वैतकी हानि है, इत्यादि तर्कसे ऐक्यबुद्धिभी बाधितविषया होगी। मुझ वैतण्डिकको परपक्षमात्र खण्डनीय है इति नच वाच्यम्, क्यों? स्वपक्षका सत्त्व होनेपरभी तुमको परपक्षखण्डनीयत्व होनेपर मुझकोभी तथात्वे=परपक्षखण्डनीयत्वमें बाधकके अभावसे। मुझको परपक्षखण्डनमात्रसे स्वमतभूत ऐक्यकी सिद्धि है; नच=ऐसा नहीं कह सकते हो, क्यों? मुझकोभी परपक्षखण्डनमात्रसे स्वमतभूत भेदकी सिद्धिका सम्भव होनेसे। मेरे प्रति भेदखण्डनमात्रका नियोग होनेपर मुझको ही वैतण्डिकत्व है, इति नच वाच्यम्, क्यों? मेरे प्रतिभी ऐक्यखण्डनमात्रके प्रति नियोगका=मध्यस्थकी आज्ञाका सम्भव होनेसे। मध्यस्थको त्वदधीनत्व न होनेसे। यदि यों कहो कि—अस्वव्याघातक तर्कोंसे ही तुमसे ऐक्य दूष्य है तब अस्वव्याघातक तर्कोंसे तुमसे भेद दूष्य है यहभी होगा, यहाँतक द्वैतीका पूर्वपक्ष है अब सिद्धान्त दिखलाते हैं—इति चेन्मैवम्; क्योंकि वयम्=हम लोग भेदप्रतीतिके स्वरूपका या भेदप्रतीतिके कारणका अपलाप नहीं करते हैं।

किन्तु बाधितविषयत्वं ब्रूमः व्याप्तिसध्रीचीनतया अशुष्कैस्तर्कैरेवानन्यपरया श्रुत्या स्मृत्या च भेदस्य बाधितत्वात् विषयभेदादिना प्रत्यक्षविरोधस्य परिहृतत्वेन श्रुत्यादावुपचरितार्थत्वाभावात्। यत्त्वभेदस्याप्येवं निरासः। नचाभेदखण्डनयुक्तीनां स्वस्य स्वाभेदोऽपि न सिध्येदिति स्वव्याघातादाभासता, भेदखण्डनयुक्तीनामपि भूषणयुक्त्यभेदेन स्वव्याघातकतायाः समानत्वादिति तन्न; भेदखण्डनयुक्तीनां तत्त्वतो भेदनिवारकत्वेऽपि व्यावहारिकभेदस्यानिराकरणेन, स्वाव्याघाततोपपत्तेः। नचैवं ब्रह्मण्यनृतभेदस्य तत्त्वतो निषेधे तत्र तत्तादात्म्यापत्तिः; घटे कल्पितघटान्तरभेदभ्रमस्थले तत्तादात्म्यादर्शनात्। नचैवमभेदोऽपि तत्त्वतो निषेध्यः, तर्हि स्वरूपापर्यवसानेन शून्यवादापत्तेः। किंच ब्रह्मातिरिक्तमैक्यमस्माकं नास्त्येव। तस्य च तथानिषेधे श्रुतिविरोधः। नच मम घटातिरिक्तो भेदो नास्त्येव तस्य निषेधे प्रत्यक्षविरोध इति वाच्यम् प्रत्यक्षस्य पारमार्थिकसत्त्वाविषयत्वेनाविरोधित्वस्य प्रागेवोक्तत्वात्।

किन्तु भेदविषयक प्रतीतिको बाधितविषयत्व कहते हैं व्याप्तिसध्रीचीनतया=निर्दोषत्वेन अशुष्कतर्कोंसे और अनन्यपर श्रुतिसे तथा तथाभूतस्मृतिसे भेदको बाधितत्व होनेसे

विषयभेदादिना=प्रत्यक्षको व्यावहारिक भेदकी विषयता है और 'नात्र काचन भिदा' (नृ० उ ता० ८) इत्यादि श्रुतिओंको तो तात्त्विकत्वेन भेदकी निषेधकता है, इत्यादिसे प्रत्यक्षके विरोधको परिहृतत्व होनेसे श्रुत्यादिमें उपचरितार्थत्वके अभावसे। अभेदकाभी इस रीतिसे निरासहै; स्वस्य=अभेदखण्डनयुक्तिका स्वाभेदः=अभेदखण्डनयुक्तिके साथ अभेद भी न सिद्ध होगा, अतः स्वका व्याघात होनेसे अभेदखण्डनकी युक्तियोंको आभासता है; नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों ? भेदखण्डनकी युक्तिओंको भी भूषणयुक्त्यभेदेन=भेदसाधकयुक्तिओंके साथ अभेद होनेसे स्वव्याघातकताको समानत्व होनेसे इति यत् तत् तु न; क्यों ? भेदखण्डनयुक्तिओंको तत्त्वतः=तात्त्विकत्वरूपसे भेदनिषेधकत्व होनेपर भी व्यावहारिक भेदका निराकरण न करनेसे स्वके अव्याघातकत्वकी उपपत्तिसे ऐसा होनेपर ब्रह्ममें अनृतभेदका तत्त्वतः निषेध होनेपर तत्र=ब्रह्ममें तत्तादात्म्यापत्तिः=अनृतके तादात्म्यकी आपत्ति है, नच= तादात्म्यकी आपत्ति नहीं है, क्यों ? कल्पितघटान्तरभेदभ्रमस्थले=कल्पित जो घटान्तर उस घटान्तरका भेदभ्रमस्थलरूप घटमें तादात्म्यके अदर्शनसे=एकघटमें कल्पित घटान्तरके भेदका भ्रम हुआ पश्चात् उस भेदभ्रमका निषेध होनेपर कल्पितघटान्तरका तादात्म्य उस घटमें नहीं देखाजाता है, तैसे ब्रह्ममें कल्पितानृतका भेदनिषेध होनेपर ब्रह्ममें कल्पितका तादात्म्य नहीं हो सकता है। इसी रीतिसे अभेद भी तत्त्वतः निषेध्य है नच=नहीं, क्यों ? तव स्वरूपमें पर्य्यवसान न होनेसे शून्यवादकी आपत्तिसे। किञ्च ब्रह्मसे अतिरिक्त ऐक्य हम लोगोंके मतमें नहीं है। तस्य=उस ब्रह्मका तथा=तत्त्वतः निषेध होनेपर श्रुतिके साथ विरोध है। मेरे मतमें घटसे अतिरिक्त भेद नहीं है, तस्य=घटका निषेध होनेपर प्रत्यक्षका विरोध है इति नच वाच्यम्, क्यों ? पारमार्थिकसत्त्वाविषयत्वेन प्रत्यक्षके अविरोधित्वको पूर्वमें ही उक्तत्व होनेसे।

ननु—भेदबाधकं न भेदविषयमेव तत्साधकतापत्तेः; नाप्यभेदविषयम्, एवं हि तदन्यः तद्विरोधि तदभावो वा नञर्थो विषयो वाच्यः। सर्वथा च भेदो दुष्परिहरः तदनन्यत्वे तद्विरोधतदभावत्वयोरयोगात्, भेदाभावग्राहिणापि प्रतियोगिविलक्षणतयैवाभावस्य ग्रहणाच्च, औदासीन्येन प्रवृत्तस्य इदमिति ज्ञानवदबाधकत्वाच्चेति—चेन्न; पारमार्थिकत्वाकारेण भेदाभावविषयस्यैव बाधकत्वात्। नच भेदे दुष्परिहरता व्यावहारिकभेदेनैव व्यावहारिकतद्विरोधित्वतदभावत्वयोरुपपत्तिसंभवात् यक्षानुरूपो बलिरिति न्यायात्। भेदभ्रमाधिष्ठानतत्त्वगोचरं ज्ञानं भ्रमबाधकमित्युपपन्नम्, उक्तरीत्या भेदवैलक्षण्येन तद्ग्रहणोपपत्तेः।

शङ्कते नन्विति। भेदबाधकम्=भेदका बाध करनेवाला प्रमाण भेदविषयक तो नहीं है; क्यों ? तत्साधकतापत्तेः=भेदविषयक प्रमाणको भेदके साधकताकी आपत्तिसे। अभेदविषयकभी प्रमाण भेदका बाधक नहीं हो सकता है एवंहि=बाधकको अभेदविषयत्व होनेपर अभेदघटक नञका अर्थ तदन्यः=भेदान्यरूप या भेदविरोधिरूप अथवा भेदाभावरूप बाधक

विषय कहना चाहिए=भेदबाधकप्रमाण यदि अभेदको विषय करता है तो अभेदघटक जो नञ् है, उसके तीन अर्थोंमें किस अर्थको विषय करताहै—नञ्के तीन अर्थ प्रसिद्ध हैं—भिन्न, विरोधि, अभाव ये तीन अर्थ हैं ' अब्राह्मणोऽयं यस्तिष्ठन् मूत्रयति '=यह अब्राह्मण है जोकि खडा हुआ मूतता है, यहाँपर ब्राह्मणाभावमें खडा होकर मूतना असम्भव है अतः अब्राह्मणका अर्थ ब्राह्मणभिन्न है ' अधर्मः ' यहाँपर नञ्का अर्थ विरुद्ध, ' अघटा स्थली ' यहाँपर नञ्का अर्थ अभाव है—धर्मसे विरुद्धका नाम अधर्म है और घटाभाववती स्थलीका नाम—अघटा स्थली है । सर्वथाच=बाधक नञ्के किसीभी अर्थको विषय करे भेद दुष्परिहर ही है=बाधक यदि प्रथम नञर्थको विषय करे तो भेद दुष्परिहर है—प्रथमपक्षमें अभेद पदका अर्थ हुआ, भेदभिन्न तथा च भेदभिन्नविषयकत्वेन बाधकको बाधकता फलित हुई परन्तु बाधकको भेदविषयकत्व आगया तथा च भेदबाधकता न होगी किन्तु साधकता होगी । शङ्का—जिसपक्षमें नञ्का अर्थ विरोधित्व है या अभावत्व है उस पक्षमें भेदबाधकत्वेन अभिमत अभेदविषयक ज्ञानको भेद-विषयत्व कैसे है; समाधान,—तद्विरोधित्व और तदभावत्व ये दोनों तद्भेदके व्याप्य हैं—जैसेकि घटविरोधित्व जहाँपर है वहाँपर घटभेद अवश्य है और जहाँपर घटाभावत्व है वहाँपरभी घटभेद आवश्यक है,—घटाभावत्व घटाभावमें है और घटाभावमें घटभेदभी है, तथाच भेदवि-रोधित्व जहाँ रहेगा वहाँपर भेदका भेद अवश्य रहेगा और जहाँपर भेदाभावत्व रहेगा तहाँपरभी भेदका भेद अवश्य ही रहेगा, फलतः विरोधित्व और अभावत्वको भेदसे व्याप्यत्व होनेसे नञ्के उक्त अर्थद्वयाङ्गीकारपक्षमेंभी भेद दुष्परिहर है इस अर्थको द्वैती कहता है—तदनन्यत्वे इति । तदभेद होनेपर तद्विरोध तथा तदभावत्व इन दोनोंके अयोगसे=घटमें घटानन्यत्व है—घटमें घटका अभेद है तो घटमें घटविरोधित्वका अयोग है और घटाभावत्वका अयोग है—फलतः तदन्यत्व जहाँपर होगा तहाँहीपर तद्विरोधित्व और तदभावत्व होगा, प्रतीक रखनेसे पूर्व ही इस अर्थका विवरणकर दिया है । भेदाभावग्राहिणापि=भेदाभावग्राहकबाध-कसेभी, प्रतियोगिविलक्षणतयैव=प्रतियोगिभूतभेदभेदव्याप्यत्वेन ही अभावस्य=भेदाभावके ग्रहणसेभी, इसका विवरणभी ऊपर हो चुका है । ननु— बाधकज्ञान विशेषरूपसे किसीभी पदार्थको विषयकरता हुआ नहीं बाधक है किन्तु औदासीन्यसे प्रवृत्त हुआ बाधक है तहाँ कहते हैं—औदासीन्येनेति । औदासीन्येन=प्रतियोगिभेदादिरूप—प्रकारानवगाहित्वेन प्रवृत्त ज्ञानको ' इदम् ' इस ज्ञानकी नांई अबाधकत्व होनेसे , ननुसे लेकर यहांतक पूर्वपक्ष है अब-समाधान दिखलाते हैं—इति चेन्न क्यों ? पारमार्थिकत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक जो भेदाभाव तादृश भेदाभावविषयक ज्ञानको ही बाधकत्व होनेसे । भेदमें दुष्परिहरता है, नच=नहीं है क्यों ? व्यावहारिक भेदसे ही व्यावहारिक जो तद्विरोधित्व और तदभावत्व इन दोनोंकी उपपत्तिका सम्भव होनेसे ' यक्षानुरूपो बलिः ' इस न्यायसे । शङ्का—भेदभ्रमका अधिष्ठान जो शुद्ध ब्रह्म उस शुद्ध ब्रह्मका ज्ञान तुह्मारे मतमें बाधक है, क्योंकि जिस भ्रमका जो अधिष्ठान होता है, उस अधिष्ठानके ज्ञानसे उस भ्रमका बाध होता है, और भ्रमस्थलमें यह नियम है कि,

अधिष्ठानमें अधिष्ठानसमसत्ताक बाध्यका भेद रहता है–जैसे शुक्तिमें कल्पित रजतका शुक्तिरूप अधिष्ठानके ज्ञानसे बाध होता है और वहाँपर अधिष्ठानभूत शुक्तिमें, स्वसमानसत्ताक–व्यावहारिक बाध्यभूत रजतका भेदभी रहता है, क्योंकि शुक्तिज्ञानसे जैसे कल्पित रजतका बाध होता है तैसे कल्पित रजतके भेदका तो शुक्तिमें बाध नहीं होता है, तैसे अधिष्ठानभूत ब्रह्म ज्ञानसे बाध्य जो भेद तादृश भेदका अधिष्ठानसमसत्ताक भेद ब्रह्मरूपाधिष्ठानमें रहना चाहिए तथाच भेदमें पारमार्थिकत्व सिद्ध हुआ। समाधान।–अधिष्ठानमें बाध्यका अधिष्ठानसमसत्ताक भेद रहता है, यह नियम कहींपरभी अनुभूत नहीं है और आपने जो दृष्टान्त दिया है उसे दृष्टान्तता ही नहीं है, क्योंकि वहाँपरभी चैतन्य ही अधिष्ठान है और कल्पितका भेद व्यावहारिक है, तथाच कल्पितका स्वाधिष्ठानमें व्यावहारिक भेद रहता है यह नियम ठीक है, हमभी व्यावहारिक भेद मानते हैं, अतः शुद्ध ब्रह्मज्ञानसे भेदभ्रमकी निवृत्ति युक्त ही है, इस अर्थको दिखलाते हैं–भेदभ्रमेति। भेदभ्रमका जो अधिष्ठान उस अधिष्ठानका जो तत्त्व= अनात्मविविक्त शुद्ध स्वरूप तद्विषयकज्ञान भ्रमबाधक है, यह उपपन्न हुआ–उक्तरीतिसे भेदवैलक्षण्येन बाध्यभूतभेदप्रतियोगिकव्यावहारिकभेदवत्त्वेन तद्ग्रहण=अधिष्ठानग्रहणकी उपपत्तिसे।

'यत्तु नायं भेदो नास्त्यत्र भेदोऽन्यदेव भेदात्मना प्रत्यभा'दित्येवमाकारकं बाधकज्ञानं वाच्यम् 'नेदं रजतमितिवत् इदञ्च सर्वथा भेदावगाहीति कथं तत्र बाधकमिति तन्न, प्रतियोगितया तद्ग्रहणस्य तद्बाधकत्वाविरोधित्वात्। नच अत्र भेदो नास्तीति धीः सर्वथा न भेदाभावमवगाहत इति–वाच्यम्। अन्यत्र भेदसत्त्वे तद्भेदस्यात्रावश्यकत्वेनात्र भेदो नास्तीत्यस्यैव कुत्रापि नास्तीत्यत्र पर्यवसानात् एकमेव नानात्मना अभादित्यादिबाधकमनुसन्धेयम्। कोट्योर्व्यावहारिकभेदेन तद्वत्तया ग्रहणाच्च यथा बाधकत्वयोगः तथोक्तमेव। एतेन–भेदात् भिन्नतया स्वार्थे बाधधीर्गति नवा, आद्ये भेदः स्थिरः, अन्त्ये तु न सा स्यात् भेदबाधकेति–निरस्तम् स्वरूपेण स्थैर्येऽपि तत्त्वतोऽस्थिरत्वसंभवात्। एवञ्चाक्लृप्तविषयत्वादन्योन्याश्रयत्वादेरुत्थानम्। उत्थितस्य च नाभासत्वम्। किंचायं देशाभासोनिर्वचनवादिनः प्रति। नास्मान् वयं हि भासमानो यो भेदः स स्वरूपादिपक्षान्तर्भावबहिर्भावाभ्यां वा अन्येन वा धर्मान्तरेणानिर्वाच्य इति ब्रूमः। नच तर्काभासेनानिर्वाच्यत्वे ऐक्यस्यापि तत्प्रसङ्गः; भेदबाधकस्यानाभासतया उक्तत्वात्, ऐक्यभेदयोः श्रुत्यनुग्रहाननुग्रहाभ्यां विशेषाच्च।

यत्त्विति। अयम्=सद्रूप आत्मा भेद नहीं है यहाँ भेद नहीं है, अन्यत्=भेदसे भिन्न ब्रह्म ही भेदरूपसे प्रतीत हुआ इत्याकारकही बाधक ज्ञान कहना होगा, 'नेदं रजतम्' इतिवत्= इत्यादिवत्=प्रथमज्ञान, भेदः सन् इस ज्ञानमें बाधक है, और द्वितीयज्ञान अत्र भेदः इस ज्ञानमें बाधक है और 'नायं भेदः' इस बाधकज्ञानको ही भेदभ्रमका अनुवादकर 'अन्यदेव' इत्यादि कहा है इतिवत्का अर्थ–इत्यादि किया है वहाँपर आदिशब्दसे 'नात्र रजतम्' इत्याकारक

बाधकज्ञानको लेना, इदं च=बाधकत्वेन अभिमत उक्तविध ज्ञान सर्वथा भेदका अवगाही है, अतः तत्र=भेदमें बाधक कैसे है ? इति यत् तत् तु न, क्यों ? प्रतियोगिविधया तद्ग्रहणस्य= भेदग्रहणको भेदबाधकत्वके प्रति अविरोधित्व होनेसे। नचेति। यहाँ भेद नहीं है। यह भेदधी भी सर्वथा भेदाभावका अवगाहन नहीं करती है=उक्तधी यत्किञ्चित् अधिकरणमें भेदाभावको ग्रहण करती है सर्वाधिकरणोंमें नहीं इति नच वाच्यम् क्यों ? अन्यत्र भेदका सत्व होनेपर तद्भेदस्य=अन्यत्रस्थित भेदके भेदको यहाँ आवश्यकत्व होनेसे। यहाँ भेद नहीं है, इसीका कहींपर भेद नहीं है इस अर्थमें पर्यवसान होनेसे। एकमेव=ब्रह्मही नानात्मना=अनेकात्मना प्रतीतहुआ इत्यादिबाधक अनुसन्धेय है। दो कोटियां हैं, स्वरूपभूत शुद्धचैतन्यकोटि, और भ्रमसे भासमान प्रपञ्चात्मक कोटि, इन दो कोटिओंमेंसे प्रथमकोटिविषयक यथार्थज्ञानसे द्वितीय कोटिका बाध होता है यह वस्तुस्थिति है यहाँपर द्वैतीका यह कथन है कि-प्रपाञ्चात्मक कोटिके भेदका ज्ञान स्वरूपकोटिमें अवश्य होता है=प्रपञ्चात्मककोटिभिन्नत्वेन स्वरूपकोटिका ज्ञान अवश्य चाहिए क्योंकि भ्रमका विषयीभूत जो पदार्थ है तत्प्रतियोगिकभेदप्रकारकाधिष्ठानविशेष्यकज्ञानके विना कल्पितकी निवृत्ति नहीं होती है तथाच प्रपञ्चप्रतियोगिक भेद ब्रह्ममें सिद्ध हो गया, यहाँपर सिद्धान्तीका कथन है कि–हम व्यावहारिक भेद दोनों कोटियोंका मानते हैं और व्यावहारिकत्वेन भेदका निषेध नहीं करते हैं, और व्यावहारिकत्वावच्छिन्नप्रयोगिताकभेदाभावावगाहित्वेन बाधकज्ञानको बाधकता नहीं मानते हैं, किन्तु पारमार्थिकत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदाभावावगाहित्वेन बाधक ज्ञानको बाधकता मानते हैं, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं, इसी अर्थको मनमें लाकर कहते हैं–कोटयोः=उक्त कोटिओंका व्यावहारिक भेद होनेसे तद्वत्तया=व्यावहारिकभेदवत्तया ग्रहण होनेसे, जैसे बाधकत्वका योग है तैसे कहा ही है। एतेन–बाधधी भेदसे भिन्नत्वेन स्वार्थका अवगाहन करती है, या नहीं, आद्ये= प्रथमपक्ष होनेपर भेद स्थिर ही है, और अन्त्यपक्षमें वह बाधिका न होगी, यह कथन निरस्त हुआ। एतेन शब्दका अर्थ करते हैं–स्वरूपेण=व्यावहारिकत्वेन स्थैर्य्य होनेपरभी पारमार्थिकत्वेन अस्थिरत्वके सम्भवसे। प्रथम द्वैतीने कहा है कि–यहाँ अन्योन्याश्रयको दूषकता नहीं हो सकती है–उस कथनको अब दूषित करते हैं एवञ्च=उक्त अर्थके व्यवस्थित होनेपर अक्लृप्तविषयत्वात्=तत्त्वतः अप्रमितविषयत्व होनेसे अन्योन्याश्रयत्वादिका उत्थान भेदमें है। और उत्थितका आभासत्त्व नहीं है। खण्डनकारोक्त समाधान दिखलाते हैं, किञ्चेति। अपदेश्याभासः=पूर्वपक्षाभास निर्वचनवादिओंकेप्रति हो सकता है; हम लोंगोंकेप्रति नहीं; हमलोग तो भासमानभेदे स्वरूपादिपक्ष=अधिकरणका स्वरूप भेद है या अधिकरणका धर्म है, इत्यादि पक्षोंके अन्तर्भावसे या वहिर्भावसे या अन्यधर्मान्तरसे भेद अनिर्वाच्य है, यह कहते हैं। तर्काभाससे भेदको अनिर्वाच्यत्व होनेपर ऐक्यकोभी अनिर्वाच्यत्वका प्रसङ्ग है। नच= ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? भेदके बाधककी अनाभासताको उक्तत्व होनेसे। ऐक्य तथा भेद इन दोनोंमें श्रुत्यनुग्रहप्रयुक्त और श्रुत्यननुग्रहप्रयुक्त विशेष होनेसेभी।

ननु—ब्रह्मण्यनृतादिव्यावृत्तिः ब्रह्मज्ञानाबाध्या वाच्या, शून्याद्यनात्मकघटादौ शून्यादितः स्वज्ञानाबाध्यभेददर्शनादिति—चेत्, ब्रह्म घटयोरधिष्ठानाध्यस्तत्वाभ्यां विशेषात् अनृतत्वस्य मृषात्वेन तद्व्यावृत्तेरपि मृषात्वस्य युक्तत्वेन घटेऽतज्ज्ञानबाध्यत्वस्य उभयोः समानत्वात्। नचैवं प्रातिभासिकरूप्यादिव्यावृत्तेरपि प्रातिभासिकत्वापत्तिः; तथाच भ्रान्तिबाधव्यवस्था न स्यादिति—वाच्यम्, विशेषदर्शनजन्यत्वतदजन्यत्वाभ्यां बाधभ्रान्तिव्यवस्थोपपत्त्या प्रातिभासिकत्वस्येष्टत्वात्। नचैवं सत्यादिवाक्यस्यानृतव्यावृत्तिबोधकस्याप्रामाण्यापत्तिः, तस्या आर्थत्वात्। नच—एवं व्यावृत्तिवन्मृषाप्रतियोगिकस्यात्यन्ताभावस्यापि मृषात्वेनाधिष्ठानज्ञानाबाध्यात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूपमिथ्यात्वं न स्यादिति—वाच्यम्; अधिष्ठानज्ञानाबाध्यत्वस्य तत्रा विशेषणत्वात्। नचैवमात्मनि देहभेदस्य बाध्यत्वे देहात्मैक्यस्य मिथ्यात्वं न स्यादिति—वाच्यम्; भेदमिथ्यात्वस्य प्रतियोग्यैक्यमिथ्यात्वाप्रयोजकत्वस्योक्तत्वात्। नच—नित्यानित्यवस्तुविवेकस्य साधनचतुष्टयान्तर्गतस्य ज्ञानं भ्रमः स्यात्, तथाच तेनानित्यपरिहारेण नित्ये प्रवृत्तिर्न स्यादिति—वाच्यम्; हानोपादानोपयुक्तरूपावगाहिबुद्धेर्व्यावहारिकप्रामाण्यशालितया व्यावहारिकहानोपादानस्य निवर्त्तयितुमशक्यत्वात्।

शङ्कते नन्विति। ब्रह्ममें जो अनृतादिकी व्यावृत्ति है वह ब्रह्मज्ञानसे अबाध्य कहनी चाहिए, शून्याद्यनात्मक घटादिमें शून्यादिसे स्वज्ञानाबाध्यभेदके देखनेसे घटमें घटज्ञानसे अबाध्य शून्यादिका भेद देखा जाता है—स्वशब्दसे घटका ग्रहण है इति चेत्=ऐसा नहीं कहना क्यों ? ब्रह्ममें तथा घटमें अधिष्ठानत्वेन और अध्यस्तत्वेन क्रमशः विशेष होनेसे अनृतत्वस्य=अनृतको मिथ्यात्व होनेसे उसकी व्यावृत्तिकेभी मिथ्यात्वको युक्तत्व होनेसे घटे=घटनिष्ठ शून्यकी व्यावृत्तिके अतज्ज्ञानबाध्यत्वस्य=घटज्ञानाबाध्यत्वको उभयोः=हम तुम दोनोंको समानत्व होनेसे। नचेति। ऐसा होनेपर प्रातिभासिक जो रूप्यादि हैं उन्होंकी व्यावृत्तिकोभी प्रातिभासिकत्वकी आपत्ति है तथाच भ्रान्तिबाधकी व्यवस्था न होगी=रूप्य और रूप्यकी व्यावृत्ति इन दोनोंको समानसत्ताकत्व होनेसे रूप्यकी नाईं रूप्यकी व्यावृत्तिभी बाधित हो जायगी—व्यावृत्ति नाम है—भेदका। इति नच—वाच्यम्, क्यों ? विशेषदर्शनजन्यत्वसे और विशेपदर्शनाजन्यत्वसे क्रमशः बाध—भ्रान्तिकी व्यवस्थाकी आपत्तिसे, रूप्यादिकी व्यावृत्तिके प्रातिभासिकत्वके इष्टत्वसे—वस्तुतः रूप्यसामान्यप्रतियोगिकभेदभेदज्ञानही बाधक है; और वह भेद प्रातिभासिक नहीं है, क्योंकि व्यावहारिक रूप्यभी रूप्यसामान्यप्रतियोगिक भेदका प्रतियोगी है, और प्रातिभासिक भेद तो प्रातिभासिक प्रतियोगिकही होता है अतः कोई आपत्ति नहीं, और प्रातीतिकत्वमें आगन्तुकदोषजन्यत्व प्रयोजक है, और रूप्यभेदज्ञान तो विशेपदर्शनजन्य है अतः उसमें प्रातीतिकत्व नहीं है, किन्तु प्रमात्व है, और ज्ञानमें प्रमात्व होनेसे उसके विषयरूपरूप्यभेदमेंभी प्रातीतिकत्व नहीं है और भेदसामान्यका मिथ्यात्व

दृश्यत्वादिरूपहेतुमत्त्वेन है, फलतः ब्रह्मघटका भेद या ब्रह्ममात्रका भेदभी मिथ्या है, अतः कोई अव्यवस्था नहीं। नचेति। भेदको मिथ्यात्व होनेपर ब्रह्ममें अनृतभेदबोधक जो सत्यादिवाक्य उसके अप्रामाण्यकी आपत्ति है, नच=अप्रामाण्यकी आपत्ति नहीं है; क्यों? तस्याः= व्यावृत्तिको अर्थलभ्यत्व होनेसे। नचेति। एवम्—मृषाप्रतियोगिकव्यावृत्तिको जैसे मिथ्यात्व है तैसे मृषाप्रतियोगिकात्यन्ताभावकोभी मृषात्व होनेसे अधिष्ठानके ज्ञानसे अबाध्य जो अत्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्वरूप मिथ्यात्व प्रपञ्चको न होगा, इति नच वाच्यम्, क्यों? अधिष्ठानज्ञानाबाध्यत्वको तत्र=मिथ्यात्वघटक अत्यन्ताभावमें विशेषणत्व न होनेसे। नचेति। उक्तरीतिसे आत्मामें देहभेदको बाध्यत्व होनेपर, देहात्माके ऐक्यका मिथ्यात्व न होगा, इति नच वाच्यम्, क्यों? भेदके मिथ्यात्वको प्रतियोगीका जो ऐक्य उस ऐक्यका जो अमिथ्यात्व उस अमिथ्यात्वके प्रति अप्रयोजकत्वको उक्तत्व होनेसे=कल्पितघटके भेदका मिथ्यात्व होनेपरभी कल्पित घटका ऐक्य मिथ्या है, यह कह चुके हैं। नचेति। विवेकवैराग्य-षट्सम्पत्तिमुमुक्षुतारूपसाधनचतुष्टयान्तर्गत नित्यानित्यवस्तुभेदविषयकज्ञान भ्रम होगा, तथाच तेन=नित्यानित्यवस्तुभेदज्ञानसे अनित्यपरिहारपूर्वक नित्यमें प्रवृत्ति न होगी, इति नच वाच्यम्, क्यों? हानोपादानमें उपयुक्त जो रूप तादृशरूपावगाहिबुद्धिको व्यावहारिकप्रामाण्यशालिता होनेसे, व्यावहारिक हानोपादानको निवर्त्त करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे।

एतेन प्रपञ्चे सद्वैलक्षण्यस्य मिथ्यात्वे सदैक्यापत्तिः, जगन्मिथ्यात्वप्रमाणानां चातत्त्वावेदकत्वापात इति—निरस्तम् मिथ्यात्वनिरुक्तावुक्तोत्तरत्वाच्च। एतेन—भेदाद्-भेदस्य भेदाभावे अन्यतरखण्डनसाधनाभ्यामुभयखण्डनसाधने इति—निरस्तम् तात्त्विकाभेदाभावेऽपि कल्पितभेदेन व्यवस्थोपपत्तेः। नच कल्पितेनाकल्पितकार्यप्रति-बन्धायोगः; अविद्यया स्वप्रकाशरूपब्रह्मकार्यप्रतिबन्धदर्शनात्, कल्पितकान्तया विश्ले-षकार्यप्रतिबन्धदर्शनाच्च। ननु—भेदस्य व्यावहारिकसत्त्वार्थमपि त्वया अन्योन्याश्रया-दिकमुद्धरणीयम्; परस्परसापेक्षेण व्यवहारस्याप्यभावात् नहि व्यावहारिकमृदः स्वज-न्यघटसापेक्षत्वम्, किञ्चात्र न भेदमात्रेण तद्दर्शनमात्रेण वा अन्योन्याश्रयाद्यापादनम्; तथासति व्यावहारिकयोरपि तयोरसिद्धिः स्यात्, नापि तत्प्रतीतिवास्तवत्वेन तदापत्तिः चरमवृत्त्यवास्तवत्वेऽपि तद्विषयवास्तवत्ववत् उपपत्तेः, वास्तवे अन्योन्याश्रयादर्शनेन व्याप्त्यसिद्धेश्च।

एतेन=इस कथनसे प्रपञ्चमें सद्वैलक्षण्यका मिथ्यात्व होनेपर सत्‌के साथ ऐक्यकी आपत्ति है। और जगत्‌के मिथ्यात्वके साधक प्रमाणोंमें अतत्त्वावेदकत्वका आपात है। यह खण्डित हुआ, और मिथ्यात्वनिरुक्तिमें इस कथनको उक्तोत्तरत्व होनेसेभी यह कथन ठीक नहीं—प्रपञ्चमिथ्यात्वबोधक प्रमाणोंका व्यावहारिक ही प्रामाण्य है। और प्रपञ्चात्यन्ताभा-वको अधिष्ठानस्वरूपत्व होनेसे तदंशमें तत्त्वावेदकत्व है इत्यादि कह चुके हैं एतेन=भेदसे

अभेदका भेद न होनेपर भेद तथा अभेद इन दोनोंमेंसे अन्यतरके खण्डनसे तथा अन्यतरके मण्डनसे उभयका खण्डन तथा उभयका मण्डन होगा, यह कथन खण्डित हुआ, 'एतेन'-पदका विवरण करते हैं-तात्त्विक भेदका अभाव होनेपरभी कल्पित भेदसे व्यवस्थाकी उपपत्तिसे। कल्पितसे अकल्पितके कार्यके प्रतिबन्धका अयोग है, नच=अयोग नहीं है, क्यों? कल्पित अविद्यासे स्वप्रकाशरूप ब्रह्मके कार्यका प्रतिबन्ध देखनेसे। और कल्पित कान्तासे विश्लेषकार्यका प्रतिबन्ध देखनेसेभी। शङ्कते नन्विति। भेदके व्यावहारिकसत्त्वके लिएभी तुमसे अन्योन्याश्रयादिक उद्धरणीय हैं परस्पर सापेक्षसे व्यवहारकेभी अभावसे, क्योंकि व्यावहारिक मृत्तिकाको स्वजन्यघटसापेक्षत्व नहीं है-स्वशब्दसे मृत्तिकाका ग्रहण है, किञ्च यहाँपर भेदमात्रसे या भेदके दर्शनमात्रसे अन्योन्याश्रयादिका आपादन नहीं है, क्योंकि वैसा होनेपर व्यावहारिकयोरपि=व्यावहारिक भेद और व्यावहारिकतद्दर्शन इन दोनोंकीभी असिद्धि होगी। तत्प्रतीतिवास्तवत्वेन=भेदविषयक प्रतीतिके वास्तवत्वसेभी अन्योन्याश्रयादिकी आपत्ति नहीं है-चरमवृत्तिका अवास्तवत्व होनेपरभी तद्विषयवास्तवत्ववत् उपपत्ति होनेसे=चरमवृत्तिको अवास्तवत्व होनेपरभी वैसे तद्विषयब्रह्मका वास्तवत्व है जैसे भेदप्रतीतिका अवास्तवत्व होनेपरभी भेदका वास्तवत्व बन सकता है=भेदधी यदि वास्तवी हो तो स्वप्रमात्वविरोध्यन्योन्याश्रयादिवाली हो, अतः भेदधी वास्तवी नहीं अतएव तद्विषय भेदभी मिथ्या है, इस रीतिसे अद्वैतीकी तरफसे शङ्का कर द्वैती समाधान करता है-कि प्रतीतिमें अवास्तवत्व होनेपर विषयमें अवास्तवत्व नहीं आसकता है, इसमें व्यभिचार है, जैसेकि ब्रह्मविषयक चरमप्रतीतिमें अवास्तवत्व होनेपरभी तद्विषयमें अवास्तवत्व नहीं है, किन्तु वास्तवत्व है वैसे अवास्तवप्रतीतिविषयीभूत भेदमेंभी वास्तवत्व उपपन्न हो सकता है, और वास्तवे=प्रतीतिवास्तवस्थलमें अन्योन्याश्रयके अदर्शनसे व्याप्तिकी असिद्धिसेभी।

नच प्रमारूपतत्प्रतीत्या तदापादनम्; प्रतीतिसामान्ये एव त्वयान्योन्याश्रयस्योक्तत्वेन प्रमात्वपर्यन्ते तत्र दोषाभावात्। नापि तत्प्रतीतेर्धर्मिप्रतियोगिसापेक्षत्वेन तदापादनम्; तावतापि तत्सापेक्षतामात्रस्यैव निवृत्तिरिति-चेन्न; अस्माकमविद्यासामर्थ्यात् सर्वानुपपत्तिविधूननोपपत्तेः। नहि मायाया असंभावनीयं नाम। तथाच परस्पराश्रितमपि इन्द्रजालवद्दर्शयिष्यति। नच-ईश्वरसामर्थ्यात्तादृशमपि सत्यं स्यादिति वाच्यम्, उभयसिद्धमृषाभूतेन्द्रजालस्थले कारणादिव्यवस्थोल्लङ्घिकार्यादिदर्शनवदन्यत्र तथा अदर्शनात्, दर्शने च मृषात्व एव पर्यवसानात्। आपादनं च भेदस्तत्प्रतीतिश्च यदि मायिकी न स्यात्, सर्वव्यवस्थोल्लङ्घिनी न स्यात्। सर्वव्यवस्थोल्लङ्घिनी चेयम्; तस्मान्मायिकीति विपर्ययपर्यवसानात्। मायिके व्यवस्थोल्लङ्घनस्य दर्शनेन व्याप्तिसिद्धेः। उक्तश्रुत्या अस्वव्याघातकयुक्त्या च भेदस्य बाधादभेदस्याबाधाच, स्वाभेदस्वभेदयोर्व्यावहारिकत्वे समानेऽपि स्वभेदं परित्यज्य भेद एव सर्वथा प्रद्वेषो नाकारणकः॥

इत्यद्वैतसिद्धौ सामान्यतो भेदखण्डनम्॥

नचेति। प्रमारूप भेदकी प्रतीतिसे तदापादनम्=अन्योन्याश्रयादिका आपादन है;नच=ऐसा आपादन नहीं होसकता है, क्यों? प्रतीतिसामान्यमें ही तुमसे अयोन्याश्रयत्वको उक्तत्व होनेसे प्रमात्वपर्यन्त तत्र=प्रत्ययमें दोपके अभावसे=आपत्तिके अभावसे-ज्ञानमात्रको लेकर तुमने अन्योन्याश्रय कहा है, उससे यदि भेदप्रतीति प्रमा स्यात् तर्हि अन्योन्याश्रयादिवती स्यात् ऐसी आपत्ति नहीं हो सकती है। तत्प्रतीतेः=भेदप्रतीतिको धर्मिप्रतियोगिसापेक्षत्व होनेसेभी तदापादनम्=अन्योन्याश्रयादिका आपादन नहीं हो सकता है क्योंकि तावता धर्मिप्रतियोगिसापेक्षत्वमात्रकी निवृत्ति होगी=यदि 'भेदप्रतीतिर्धर्मिप्रतियोगिसापेक्षा स्यात् तर्हि अन्योन्याश्रयादिवती स्यात्' इत्याकारक आपादनसे फलित यह होगा कि=धर्मिप्रतियोगिसापेक्षा नास्ति, इस फलितसे भेदमें या भेदकी प्रतीतिमें मिथ्यात्व तो नहीं सिद्ध होता है, ननुसे लेकर यहाँतक पूर्वपक्ष है, आगे समाधान दिखलाते हैं इति चेन्न; क्यों? हमलोगोंके मतमें अविद्याके सामर्थ्यसे सर्व आपत्तिओंके विधूननकी उपपत्तिसे। मायामें असंभावनीय कुछ नहीं है। तथाच परस्पराश्रितको भी इन्द्रजालवत् दिखलादेगी=मृदादिको घटादिरूपकार्यकी अपेक्षा न होनेपर भी भेदधीको जो अन्वयव्यतिरेकसे भेदधीसापेक्षत्व है वह अविद्यासेही कल्पना किया गया है। जैसे भेदधीके विना भी किसी भेदधीकी उत्पत्ति भूपणही है न कि दूपण। जैसे कि इन्द्रजालस्थलमें क्लृप्तकारणके विना कार्य्यकी उत्पत्ति देखते हैं। अतएव विचारकालमें कारणीभूतभेदबुद्धिमें बुद्ध्यन्तरकी अपेक्षा होनेपर अन्योन्याश्रय है। और कार्यभूत भेदबुद्धिको कारणभूतभेदबुद्धिकेप्रति हेतुत्व होनेपर अन्योन्याश्रय है इत्यादि तर्कोंसे भेदके आविद्यकत्वका निश्चय होनेसे, भेदविपयक बुद्धिका तात्त्विक प्रामाण्य न होनेपर भी व्यावहारिक प्रामाण्य अव्याहत है, यह भाव है। ईश्वरके सामर्थ्यसे इन्द्रजालसदृश भी सत्य होगा, इति नच वाच्यम्, क्यों? अप्रसिद्धमृपाभूत इन्द्रजालस्थलमें जैसे कारणादिव्यवस्थाको उल्लङ्घन करनेवाला कार्य्य देखा जाता है तैसे अन्यत्र न देखनेसे। और दर्शने=इन्द्रजालादिमें तादृशव्यवस्थोल्लङ्घनके देखनेपर मृपात्वमेंही पर्य्यवसान होनेसे। और आपादन तो-भेद तथा भेदका ज्ञान यदि मायिक न हों तो सर्व व्यवस्थाको उल्लङ्घन करनेवाले न हों इत्याकारक है। और सर्वव्यवस्थाको उल्लंघन करनेवाले तो ये दोनों हैं, तस्मात् ये दोनों मायिक हैं, इस रीतिसे पर्य्यवसान होनेसे। ऐन्द्रजालिकादिरूप मायिकमें व्यवस्थोल्लङ्घनके देखनेसे व्याप्तिकी सिद्धि होनेसे। उक्तश्रुत्या=नात्र काचन भिदा (नृ० उ० ता० ८) इत्यादि श्रुतिसे तथा अस्य=व्याघातक युक्तिसे भेदके बाधसे और अभेदके अबाधसे स्वाभेद और स्वभेद इन दोनोंको व्यावहारिकत्व समान होनेपर भी स्वाभेदको छोडकर भेदमेंही सर्वथा विद्वेप अकारणक नहीं है।

इति सरलायां सामान्यतो भेदखण्डनम्।

अथ विशेषतो भेदखण्डनम्।

ननु—निरपेक्षत्वस्वरूपत्वे सापेक्षत्वानुपपत्तिरिति यदुक्तं तत्तावदयुक्तम्, 'अविद्यानिवृत्तेर्जीवब्रह्मैक्यस्य च तव मते मतद्वयेऽपि स्थितौ व्यक्तिसापेक्षस्य जातिमात्रस्य

प्रतीतौ सापेक्षस्य नीलतरत्वादेरिवार्थप्रकाशात्मकज्ञानस्य ब्रह्मणि ब्रह्माभेदस्य 'अस्ति ब्रह्म'त्यादौ कालसापेक्षस्यास्तित्वस्य निरपेक्षब्रह्मव्यक्त्यादिरूपताया दर्शनादिति—चेन्न; अविद्यानिवृत्तिजीवब्रह्मैक्ययोः प्रतीतौ सापेक्षत्वस्याविद्यकतया तात्त्विकनिरपेक्षत्वविरोधित्वाभावात्। जातिमात्रस्य व्यक्त्यभेदासिद्धिः; व्यक्तिसमानसत्ताकघटत्वादौ तदभावात्, व्यक्त्यसमानसत्ताकसत्तादिजातौ तु सापेक्षत्वस्य काल्पनिकत्वात् नीलतरत्वादेर्व्यक्तिरूपत्वासिद्धौ हेतोरेभावादर्थप्रकाशात्मकज्ञानस्य ब्रह्माभेदस्य च सापेक्षतायाः काल्पनिकत्वात् अस्तिब्रह्मेत्यादावप्येवमेव। तथाच तत्त्वतो निरपेक्षस्य सामानाधिकरण्यासिद्ध्या न तर्काभासताव्याप्तिसिद्धिः।

अथ सरलायां विशेषतो भेदखण्डनम्।

शङ्कते नन्विति। निरपेक्षस्वरूपत्वे=भेदको घटादिरूप जो निरपेक्ष पदार्थ तत्स्वरूपत्व होनेपर सापेक्षत्वकी अनुपपत्ति है, यह जो कहा है, वह अयुक्त है, क्यों? प्रतीतिमें सापेक्ष जो अविद्याकी निवृत्ति उसको तथा तथा प्रतीतिमें सापेक्ष जो जीवब्रह्मैक्य उसको तुम्हारे मतमें निरपेक्षब्रह्मरूपत्व देखनेसे, और मतद्वयेऽपि=मदीयत्वदीयमतद्वयमेंभी प्रतीतिमें सापेक्ष नीलतरत्वादिकी तरह स्थितिमें सापेक्ष जातिमात्रको निरपेक्षव्यक्तिरूपता देखनेसे, और प्रतीतिमें सापेक्ष अर्थ—प्रकाशात्मकज्ञानको तथा प्रतीतिमें सापेक्ष ब्रह्ममें ब्रह्माभेदको निरपेक्षब्रह्मरूपता देखनेसे=अर्थप्रकाशात्मज्ञान अर्थज्ञानाधीन है और ब्रह्माभेदभी ब्रह्मज्ञानाधीन है; और 'अस्ति ब्रह्म' इत्यादिमें कालसापेक्ष अस्तित्वको निरपेक्षब्रह्मरूपत्व देखनेसे; इति चेन्न; क्यों? अविद्याकी निवृत्ति और जीवब्रह्मैक्य एतदुभयनिष्ठप्रतीतिनिरूपित सापेक्षत्वको आविद्यकत्व होनेसे तात्त्विक निरपेक्षत्वके प्रति विरोधित्वके अभावसे। और व्यक्तिके साथ जातिमात्रके अभेदकी असिद्धि है; व्यक्तिसमसत्ताक जो घटत्वादि तादृश घटत्वादिमें अभेदके अभावसे=घटत्वादिरूपव्यक्तिसमानसत्ताक जातियाँ स्वाश्रयभूतव्यक्तिओंसे अभिन्न नहीं हैं। और व्यक्तिसे असमानसत्ताक जो ब्रह्मरूप सत्ताजाति है, उसमें सापेक्षत्वको काल्पनिकत्व होनेसे। नीलतरत्वादिमें व्यक्तिरूपत्वकी असिद्धि होनेपर सापेक्षत्वरूप हेतुके अभावसे। और अर्थप्रकाशात्मक ज्ञानके तथा ब्रह्माभेदके सापेक्षत्वको काल्पनिकत्व होनेसे। इसी रीतिसे 'अस्ति ब्रह्म' यहाँभी सापेक्षत्वको काल्पनिकत्व ही है, तथाच तत्त्वतः निरपेक्षको तत्त्वतः सापेक्षके सामानाधिकरण्यकी असिद्धिसे। तथा च तर्काभासता नहीं है, किन्तु=भेद यदि तत्त्वतः निरपेक्षघटादिस्वरूप होगा तो तत्त्वतः सापेक्ष न होगा, और परमतमें तत्त्वतः सापेक्ष तो भेद है अतः निरपेक्षघटादिस्वरूप नहीं है, एतद्रूपसे तर्कसध्रीचीनता है, अतः 'यत्र तत्त्वतः सापेक्षत्वं न तत्र तत्त्वतः निरपेक्षत्वम्' यह व्याप्ति सिद्ध हुई।

अत एव—ऐक्यस्यास्वरूपत्वे अद्वैतहानिः, मिथ्यात्वे भेदस्य सत्यत्वप्रसङ्गः, यत्र यदध्यस्तं, तत्र तद्विरोधि तज्ज्ञानाबाध्यम्। यथा शुक्तावरूप्यत्वम्। यत्र यदैक्यं बाध्यम्

तत्र तद्भेदस्तज्ज्ञानाबाध्यः। यथा दूरस्थवनस्पत्योर्भेद इति वा। यत्र यदध्यस्तं तत्र तद्विरोधि तात्त्विकम्, यथा ब्रह्मण्यनृतत्वस्याध्यस्तत्वे सत्यत्वं तात्त्विकमिति वा व्याप्तिरिति–निरस्तम्। ऐक्यस्य ब्रह्मभेदानङ्गीकारात्, विरोध्यनुरोधिनां सर्वेषां ब्रह्मणि कल्पितत्वेन तज्ज्ञानबाध्यत्वेन व्याप्तीनामसिद्धेः। ननु–ऐक्यस्य निरपेक्षत्वे तत्त्वंपदार्थपराणां 'सत्यं विज्ञानघन' इत्यादीनामैक्यपरमहावाक्यैकवाक्यत्वाभावेन वैयर्थ्यं स्यादिति–चेन्न; ऐक्यस्य स्वप्रकाशब्रह्माभिन्नतया स्थितिप्रतीत्यादौ निरपेक्षत्वेऽपि यथा लक्षितार्थभेदभ्रमनिवर्त्तकवृत्ति–जनने पदार्थसापेक्षतया स्वरूपपरवाक्यानामेकवाक्यतायाः सत्त्वात्, भेदरूपप्रतियोगिसापेक्षत्वेन तत्र सापेक्षत्वव्यवहारात्। नच घटः पटो नेति नञर्थस्य भेदस्यैव तादात्म्यनिषेधरूपत्वेन वैपरीत्यम्। तादात्म्यस्य तन्निष्ठासाधारणधर्मरूपत्वे भेदस्याभेदानपेक्षत्वात्। अभेदरूपत्वे भेदसापेक्षत्वेनैव तस्य तदनपेक्षत्वात्। नचैतावता ऐक्यस्य सापेक्षत्वापत्तिः, काल्पनिकस्येष्टत्वात्।

अत एवेति, ऐक्यको ब्रह्मस्वरूपत्व न होनेपर और सत्यत्व होनेपर अद्वैतकी हानि है मिथ्यात्वे=ऐक्यका मिथ्यात्व होनेपर भेदके सत्यत्वका प्रसङ्ग है=ऐक्यका मिथ्यात्व होनेपर भेदके सत्यत्वके प्रसङ्गको दिखलानेके लिए कई व्याप्तियाँ दिखलाते हैं–यत्रेति। जहाँ जो पदार्थ अध्यस्त=मिथ्या होता है वहाँ उसका विरोधि तज्ज्ञानाबाध्य=अध्यस्तका जो अधिष्ठान उसके ज्ञानसे अबाध्य होता है, जैसे शुक्तिमें रजतत्व अध्यस्त है तो वहाँपर रजतत्वका विरोधि अरजतत्व शुक्तिज्ञानसे अबाध्य है, प्रकृतमें यत्र=ब्रह्ममें यदध्यस्तम्=ऐक्य अध्यस्त है तत्र=ब्रह्ममें तद्विरोधि=ऐक्यविरोधिभेद तज्ज्ञानाबाध्य=ब्रह्मज्ञानाबाध्य है। दूसरी व्याप्ति दिखलाते हैं–यत्र=जहाँपर यदैक्यम्=जिसका ऐक्य बाध्यम्=ज्ञानसे निवर्त्त्य है वहाँपर उसका भेद तज्ज्ञानाबाध्यः=बाध्याधिष्ठानज्ञानाबाध्य है=जैसे दूरे स्थित दो वनस्पतिओंका भेद; यत्र=दूरस्थित दो वनस्पतिओंमें यदैक्यम्=दो वनस्पतिओंका ऐक्य बाध्यम्=ज्ञानसे निवर्त्य है तत्र=दूरेण स्थित दो वनस्पतिओंमें तद्भेदः=दूरस्थित दो वनस्पतिओंका भेद तज्ज्ञानाबाध्यः=दूरात् स्थित दो वनस्पतिओंके ज्ञानसे अबाध्य है इसी रीतिसे प्रकृतमें भी घटाना। तीसरी व्याप्ति दिखलाते हैं जहाँपर जो पदार्थ अध्यस्त है, वहाँपर तद्विरोधि=अध्यस्तविरोधि तात्त्विक है–ज्ञानसामान्यसे अनिवर्त्य है, जैसे ब्रह्ममें अनृतत्वको अध्यस्तत्व होनेपर तद्विरोधि सत्यत्व तात्त्विक है इत्याकारक व्याप्तिओंसे, यह कथन निरस्त हुआ अतएव=शब्दका विवरण करते हैं–ऐक्यस्य=ऐक्यनिष्ठ ब्रह्मभेदके अनङ्गीकारसे=ब्रह्मसे भिन्न होकर ऐक्यका सत्यत्व भी नहीं है और मिथ्यात्वभी नहीं है, किम्बहुना ऐक्यको ही ब्रह्मभिन्नत्व नहीं है, अतः त्वदुक्त दोषोंको अवकाश नहीं है। और विरोध्यनुरोधिनाम्=विरोधित्वेन त्वदुक्त सकलपदार्थोंको ब्रह्ममें कल्पितत्व होनेसे तज्ज्ञानबाध्यत्वेन=ब्रह्मज्ञानबाध्यत्वसे व्याप्तिओंकी सिद्धि न होनेसे=ब्रह्ममें रहनेवाला ब्रह्मसे अतिरिक्त यदि कोई भी पदार्थ ब्रह्मज्ञानसे अबाध्य उभयसम्प्रतिपन्न हो तो

उक्त व्याप्तियाँ बन सकती हैं, परन्तु ऐसा पदार्थ तो अभीतक कोई सिद्ध नहीं हुआ है, अतः व्याप्तिओंकी असिद्धि है। शङ्कते नन्विति। ऐक्यको निरपेक्षत्व होनेपर, तत्त्वंपदार्थपर जो 'सत्यं विज्ञानघनः' इत्यादि वाक्य हैं उन्होंका ऐक्यपर जो महावाक्य उन महावाक्योंके साथ एकवाक्यत्वके अभावसे वैयर्थ्य होगा=ऐक्यको अपेक्षित जो जीवब्रह्मका स्वरूप तत्प्रतिपादकत्वेन तत्त्वमस्यादिवाक्योंके साथ सत्यादिवाक्योंका एकवाक्यत्व प्रतिपाद्य है, और आप तो ऐक्यको निरपेक्ष बतलाते हैं अतः उक्त एकवाक्यता न होगी अतएव सत्यादिवाक्योंका वैयर्थ्य है, इति चेन्न; क्यों ? ऐक्यको स्वप्रकाश जो ब्रह्म तादृश ब्रह्मके साथ अभिन्नत्व होनेसे, स्थितिमें तथा प्रतीत्यादिमें निरपेक्षत्व होनेपर भी यथालक्षित जो अर्थ तादृश अर्थमें जो भेदभ्रम तादृशभेदभ्रमनिवर्त्तक जो वृत्ति तादृश वृत्तिके उद्भवमें पदार्थसापेक्षत्व होनेसे, स्वरूपपर जो सत्यादिवाक्य उन वाक्योंकी एकवाक्यताका सत्त्व होनेसे भेदरूपप्रतियोगि-सापेक्षत्वेन=भेदाभावात्मक जो ऐक्यरूप ब्रह्म उस ऐक्यरूपब्रह्मका भेदरूप जो प्रतियोगि तादृश प्रतियोगीको सापेक्ष्य होनेसे=तत्र=ब्रह्मरूप ऐक्यमें प्रतियोगिसापेक्षताका व्यवहार होनेसे जीवब्रह्मणोरभेदः इत्यादिमें प्रतियोगिघटितरूपसे व्यवहार होनेसे, ऐक्यकोही सापेक्षत्व होनेसे ऐक्यनिषेधरूप भेदमें सापेक्षत्ववत् व्यवहार होता है; इस द्वैतीकी शङ्काका अनुवादकर खण्डन करते हैं—नचेति। 'घटः पटो न' यहाँपर नञर्थ भेदको ही तादात्म्यनिषेधरूपत्व होनेसे वैपरीत्यम्=तादात्म्यको सप्रतियोगिकत्व होनेसे भेदमें सप्रतियोगिकत्व जैसा व्यवहार है, तथा च वैपरीत्य है=नच वैपरीत्य नहीं है; क्यों ? तादात्म्यस्य=तादात्म्यको तन्निष्ठ=घटादिनिष्ठ असाधारणधर्मरूपत्व होनेपर भेदस्य=भेदको=' तदपेक्षत्वेऽपि ' इति शेषः असाधारणधर्मरूप तादात्म्यका अपेक्षत्व होनेपर भी अभेदानपेक्षत्वात्=भेदाभावरूप ऐक्यात्मकब्रह्मानपेक्षत्व होनेसे। अभेदरूपत्वे=तादात्म्यको अभेदरूपत्व होनेपर भेदसापेक्षत्वेनैव=भेदकोही सापेक्षत्व होनेसे तस्य=उक्त ऐक्यको तदनपेक्षत्वात्=भेदप्रतियोगीका अनपेक्षत्व होनेसे=भेदका जो प्रतियोगी तादृशप्रतियोग्यनपेक्षत्व होनेसे। एतावता प्रतियोगिसापेक्षभेदसापेक्षत्वेन ऐक्यस्य=ऐक्यको सापेक्षत्वापत्तिः=भेदप्रतियोगिसापेक्षत्वकी आपत्ति है नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों ? काल्पनिक सापेक्षत्वको इष्टत्व होनेसे।

अतएव—अज्ञानहानिवद्ब्रह्मरूपधीवद्भेदवत्स्वरूपत्वेऽपि भेदस्य सापेक्षत्वं हि युज्यत इति—निरस्तम्; तत्र सापेक्षत्वनिरपेक्षत्वयोरतात्त्विकतया दृष्टान्तवैषम्यात्। नच भेदेऽप्येवमेवास्तु; भेदस्य निषेधप्रतियोगितया श्रुतत्वेन ब्रह्मरूपत्वाभावात्। नच तत्राभेदश्रुतिरस्ति। एतेन—स्वरूपेण निरपेक्षस्याप्यभेदस्याभेदत्वेन सापेक्षत्ववत् स्वरूपेण निरपेक्षस्यापि घटस्य भेदत्वेन सापेक्षत्वमस्तु, अवच्छेदकभेदेन सप्रतियोगित्वाप्रतियोगित्वे अपि यथा तद्वदिति—निरस्तम्; भेदस्य स्वरूपतो निरपेक्षत्वे निष्प्रतियोगित्वे च परान् प्रतीव स्वमपि प्रति अविशिष्टतया स्वव्याघातः। नचैवमभेदस्यापि स्वान् प्रतीव परान् प्रति

तथासति तथात्वापत्तिः इष्टापत्तेः। घटत्वादिना भेदः परं कल्पितः स्वरूपतस्त्वभेद एव। तथासति परत्वं परं व्याहतम्; न स्वरूपत्वमपि। यत्तु सप्रतियोगिकत्वनिष्प्रतियोगिकत्वव्यवस्था तु यत्साधारण्येन स्ववाचकप्रवृत्तिनिमित्तावच्छेदेन प्रतीतौ प्रतियोगिप्रतीतिसापेक्षं, तत्सप्रतियोगिकम्, अन्यत्तु निष्प्रतियोगिकमिति तन्न; भेदस्य स्वरूपत्वे तदन्यत्वासिद्धेः।

अत एवेति। अज्ञानकी निवृत्तिको तथा ब्रह्मस्वरूप ज्ञानको और अभेदको स्वरूपत्व होनेपरभी जैसे सापेक्षत्व युक्त है, तैसे भेदको स्वरूपत्व होनेपरभी सापेक्षत्व युक्त है यह कथन उदस्त हुआ; अतएव शब्दका अर्थ दिखलाते हैं—तुम्हारे मतमें सापेक्षत्व तथा निरपेक्षत्व इन दोनोंको तात्त्विकत्व होनेसे दृष्टान्तके वैषम्यसे=हमारे मतमें अज्ञाननिवृत्तिस्वरूपको निरपेक्षत्व होनेपरभी उससे अतिरिक्त कल्पित तथा अज्ञाननिवृत्तित्वविशिष्ट रूप सापेक्ष है ऐसी व्यवस्था है, परन्तु तुम्हारे मतमें ऐसा नहीं कहा जा सकता है—कि घटप्रतियोगिकभेदस्वरूप सापेक्ष है उससे अतिरिक्त अकल्पित निरपेक्षघटादिस्वरूप है। अतः दृष्टान्तोंमें वैषम्य है। भेदमेंभी अभेदवत् व्यवस्था हो; नच=ऐसी व्यवस्था नहीं हो सकती है। क्यों ? भेदको निषेधप्रतियोगित्वेन 'नात्र काचन भिदास्ति' (नृ० उ०ता० ८) नेहनानास्ति किञ्चन (बृ० ४।४।१९ इत्यादि श्रुतिओमें बोधितत्व होनेसे ब्रह्मरूपत्वके अभावसे तत्र=भेदमें अभेदश्रुति है नच= नहीं है। एतेन—स्वरूपसे निरपेक्ष अभेदकोभी जैसे अभेदत्वेन सापेक्षत्व है तैसे स्वरूपसे निरपेक्ष घटकोभी भेदत्वेन सापेक्षत्व रहो। और अवच्छेदकभेदसे घटप्रतियोगित्वाप्रतियोगित्व ये दोनों जैसे अभेदस्थलमें है, तैसे भेदस्थलमेंभी हो यह कथन निरस्त हुआ। एतेन शब्दका अर्थ करते हैं—भेदको स्वरूपसे निरपेक्षत्व और निष्प्रतियोगित्व होनेपर, अन्योंके प्रति जैसे उसको भेदता है तैसे स्वके प्रतिभी अविशिष्टता होनेसे स्वका व्याघात होगा,=स्वरूपतः निरपेक्ष तथा निष्प्रतियोगिकभेदको यदि घटका भेद कह सकते हैं, तो भेदका भेदभी कह सकते हैं स्वको ही स्वसे भिन्नत्वकी आपत्ति होनेसे स्वका व्याघात है। नचेति। अभेदस्यापि=ब्रह्मस्वरूप ऐक्यकोभी स्वान् प्रतीव=जीवोंके प्रति तथा ईश्वरके प्रति जैसे ऐक्य है, तैसे परान् प्रति= अविद्यादिकोंके प्रति तथासति=निरपेक्षत्व होनेपर तथात्वापत्तिः=एकत्वकी आपत्ति है; नच= ऐसी आशङ्का नहीं करना, क्यों ? इष्टापत्तेः=इष्टकी आपत्ति होनेसे; ब्रह्मरूप एक पदार्थमें घटत्वपटत्वादिरूपसे भेद कल्पित है। और घटादिका स्वरूप तो ब्रह्मही है। अतः ब्रह्मका घटादिके साथ ऐक्य अव्याहत है फलतः पटादिमें ब्रह्मपरत्व=ब्रह्मभिन्नत्व व्याहत है, ब्रह्मस्वरूपत्व व्याहत नहीं है घटादिको ब्रह्ममें कल्पितत्व होनेसे। यत्त्विति। सप्रतियोगिकत्व और निष्प्रतियोगिकत्व इन दोनोंकी व्यवस्था तो यत्=जो अभावादिक स्ववाचकप्रवृत्तिनिमित्तावच्छेदेन= स्ववाचक=अभावादिपद उसकी प्रवृत्तिका निमित्त=अभावत्वादिरूप निमित्त तादृशनिमित्तावच्छेदेन=तादृशनिमित्तावच्छिन्न प्रतीतिमें प्रतियोगिप्रतीतिसापेक्ष है, तत्=वह अभावादिक

सप्रतियोगिक है, असाधारण्येनका विवरण स्ववाचक इत्यादि है अन्यत् निष्प्रतियोगिक है। इति यत् तत् तु न; क्यों ? भेदस्य स्वरूपत्वे=भेदको पटादिका स्वरूपत्व होनेपर तदन्यत्वासिद्धेः=घटादिस्वरूपमें सप्रतियोगिकत्वविशिष्टान्यत्वकी असिद्धिसे-जबकि घटमें सप्रतियोगिकत्वविशिष्ट जो भेद तादृश भेदस्वरूपता है, तब उसमें तदन्यत्वरूप नित्यप्रतियोगिकत्व कैसे रह सकता है।

एतेन—एकस्यार्थस्य लघुत्वकठिनत्वादिना उल्लेखेन निरपेक्षत्वेऽपि अगुरुत्वाद्रवत्वादिना उल्लेखेन सापेक्षत्वमपि यथा, तथा घट इत्युल्लेखेन निरपेक्षस्यापि भेद इत्युल्लेखे सापेक्षत्वोपपत्तिरिति—निरस्तम्; शब्दानुल्लेखे सापेक्षनिरपेक्षयोरनुभवाच्च। लयादिवत् नञनुल्लेखमात्रेण दृष्टान्तासम्प्रतिपत्तेश्च, नच—एकस्यैव गमनस्य गच्छतिचलतिशब्दोल्लेखाभ्यामेकस्यैव च प्रयत्नस्य करोति प्रवर्त्तते इति शब्दोल्लेखाभ्यां कर्मसापेक्षत्वनिरपेक्षत्वयोः शब्दस्वभावप्रयुक्तिदर्शनादत्रापि घटभेदशब्दोल्लेखेन सापेक्षत्वनिरपेत्वे स्यातामिति वाच्यम्, अर्थगतसकर्मकत्वादीनां शब्दस्वभावानधीनत्वात्। प्रत्युत एकस्मिन्नेव तपधातावर्थभेदेन तयोर्दर्शनात् तपति ऋपिस्तपति पृथिवीं सवितेत्यादौ। एवञ्च दृष्टान्तेषु अर्थभेद एव; फलं धात्वर्थ इति मते संयोगरूपार्थभेदात् मतान्तरे तूत्तरसंयोगावच्छिन्नस्पन्दस्य गम्यर्थत्वं, पूर्वविभागफलकस्पन्दस्य चलत्यर्थत्वम्। अनुकूलयत्नस्य करोत्यर्थत्वं यत्नमात्रस्य यत्यर्थत्वमिति। नच—भेदत्वमेव सापेक्षम्; नतु भेद इति—वाच्यम्; सापेक्षतया विशेष्यस्यैवानुभवात् अन्यथा घटप्रतियोगिकं भेदत्वमित्युल्लेखः स्यात्।

एतेन—एक अर्थका लघुत्वकठिनत्वादिरूपसे उल्लेख होनेसे, निरपेक्षत्व होनेपरभी अगुरुत्वसे और अद्रवत्वादिसे उल्लेख होनेसे, जैसे सापेक्षत्वभी है तैसे 'घटः' इत्याकारक उल्लेखसे निरपेक्ष घटकोभी। 'भेदः' इत्याकारक उल्लेख होनेपर सापेक्षत्वकी उपपत्ति है यह कथन खण्डित हुआ, एतेन शब्दका विवरण करते हैं शब्दसे उल्लेख न होनेपरभी सापेक्ष निरपेक्षका अनुभव होनेसे। और लयादिवत्, नञ्के अनुल्लेखमात्रसे दृष्टान्तकी असम्प्रतिपत्तिसेभी=नञ्के न होनेपरभी जैसे लयादिपदसे कारणमें कार्यका ध्वंसत्वरूप अर्थ प्रतीत होता है, तैसे लघुकठिनादि पदोंसेभी गुरुत्वशून्यत्वरूप और द्रवत्वादिशून्यत्वरूप अर्थ प्रतीत होता है, तथाच सापेक्षत्व वहाँपरभी है अतः दृष्टान्तकी असिद्धि है। शङ्कते नचेति। जैसे गमनरूप एक क्रियाको सकर्मक गच्छतिशब्दसे उल्लेख होनेपर कर्मसापेक्षत्व प्रतीत होता है और अकर्मक चलतिशब्दसे उल्लेख होनेपर कर्मनिरपेक्षत्व प्रतीत होता है; और जैसे एकही यत्नको सकर्मक शब्दके योगसे कर्मसापेक्षत्व प्रतीत होता है और अकर्मकताके योगसे कर्मनिरपेक्षत्व प्रतीत होता है और भेदशब्दसे सापेक्षत्व प्रतीत होता है। इस अर्थको द्वैती दिखलाता है। एकही गमनको गच्छतिशब्दोल्लेखसे तथा चलतिशब्दोल्लेखसे शब्दस्वभावप्रयुक्त क्रमशः सापेक्षत्वके तथा

निरपेक्षत्वके देखनेसे और एकही प्रयत्नका करोति शब्दोल्लेखसे, शब्दस्वभावयुक्त तथा प्रवर्त्तते शब्दोल्लेखसे शब्दस्वभावप्रयुक्त क्रमशः सापेक्षत्वके और निरपेक्षत्वके देखनेसे अत्रापि=प्रकृतमेंभी घटशब्दोल्लेखसे और भेदशब्दोल्लेखसे एकही पदार्थमें निरपेक्षत्व और सापेक्षत्व ये दोनों रहे इति नच वाच्यम् ; क्यों ? अर्थगतसकर्मकत्वादिकोंको शब्दस्वभावके अधीनत्व न होनेसे । एक शब्दसे प्रतिपाद्यत्व होनेपरभी सकर्मकत्व तथा अकर्मकत्व इन दोनोंके देखेनेसेभी, सकर्मकत्व अकर्मकत्वको शब्दस्वभावाधीनत्व नहीं है, इस अर्थको कहते हैं, प्रत्युतेति । एकही तपधातुमें अर्थभेदसे 'तपति ऋषिः' 'तपति पृथिवीं सविता' इत्यादिमें तयोः=सकर्मकत्व तथा अकर्मकत्व इन दोनोंके देखनेसे । और ऐसा होनेपर दृष्टान्तमें अर्थभेदही है–फलं धात्वर्थ इति मते=फल ही धातुसे वाच्य है, और व्यापार आख्यातका अर्थ है, इस मण्डनमिश्रके मतमें, तथा फल व्यापार ये दोनों धातुसे वाच्य हैं इस वैयाकरणमतमें संयोगरूपार्थभेदात्=संयोगरूप जो गम्यर्थ उसको चलिके अर्थसे भिन्न होनेसे । मतान्तरे=तार्किकादि मतमें उत्तरसंयोगावच्छिन्न जो क्रिया तादृश क्रियाको गम्यर्थत्व है=संयोगानुकूलक्रियात्वेन गमिवाच्यत्व है; और पूर्वदेशका विभाग फल नहीं है, जिस स्पन्दका तादृश स्पन्दक्रियाको चलत्यर्थत्व है=पूर्वदेशविभागाफलकक्रियात्वेन क्रिया चलिवाच्या है=चलिको स्पन्दिसमानार्थकत्व है, और स्पन्दिको ईषच्चलनार्थकत्व है और विभागाफलक क्रियाको ही ईषच्चलनरूपता है, और पूर्वदेशविभागसे पूर्वदेशीयोत्पत्तिक विभाग लेना चाहिए ऐसा होनेपर क्रियामात्रको पूर्वदेशसे विभागजनकत्व होनेपरभी हानि नहीं । अतएव वैयाकरणोंने 'दधि स्पन्दते' यह उदाहरण दिया है, जब दधि पूर्वदेशसे विभक्त होकर भी पुनः पूर्वदेशसे संयुक्त होता है, तब कहा जाता है, 'दधि स्पन्दते' अनुकूलयत्नको करोतिका अर्थत्व है और यत्नमात्रको यत्यर्थत्व है । नचेति । भेदत्व ही सापेक्ष है, भेद सापेक्ष नहीं है, इति नच वाच्यम् क्यों ?सापेक्षत्वेन, विशेषस्यैव=भेदस्वरूपका ही अनुभव होनेसे । अन्यथा=भेदत्वको ही सापेक्षत्व होनेपर घटप्रतियोगिक भेदत्व है, ऐसा उल्लेख होगा ।

एतेन—भावाभावस्वरूपत्वान्नान्योन्याभावता पृथक् इत्युक्तेः न स्वरूपमात्रं भेदः; किन्त्वन्योन्याभावः; स च वस्तुनः सविशेषोऽभिन्न इत्युक्तेश्च घटादिरेव भावाभावरूपतया भेद इति निरस्तम्; घटतदभावस्थले भावत्वाभावत्वयोर्विरुद्धत्वेन कल्पनात् कथं तदाश्रयैक्यं ? नच—अविद्यानिवृत्तिअद्वैतयोरपि कथं ब्रह्मैक्यमिति—वाच्यम् अस्मन्मते तत्र अभावत्वस्य कल्पितत्वेन मायिकतया विरोधाभावात् तव तु द्वयोरपि तात्त्विकत्वेन विरोधस्य दुष्परिहारत्वात् अत एव—तत्तादात्म्यायोग्यत्वं वा, तदैक्यप्रमित्यविषयत्वं वा, यत्र यद्दर्शनं तत्र तत्तादात्म्याध्यासविरोधित्वं वा, स्वावृत्तियत्किञ्चिद्धर्मानाधारनिष्ठयत्किञ्चित्धर्मानाधारत्वस्वरूपं वा स्वावृत्तियत्किञ्चिद्धर्माधारानिष्ठधर्माधारत्वरूपं वा स्वरूपत्वं तदभेदत्वम्; अनाधारत्वं चाधारराहित्यम्, नत्वाधारादन्यत्वमिति नान्योन्याश्रय इति—निरस्तम्; स्वरूपत्वे सापेक्षत्वानुपपत्तेः अतिरेके अनवस्थानात् अत्यन्ता-

भावान्योन्याभावयोरैक्यापत्तेः प्रमितिदर्शनादिघटितत्वेन चक्षुराद्यगम्यतापत्तेश्च। किञ्च भेदस्य घटस्वरूपत्वे तन्निरूपकप्रतियोगिनोऽपि तत्स्वरूपतापत्तिः नहि भेदस्वरूपमात्रं घटः किन्तु पटप्रतियोगिकभेद इति।

एतेन-पृथक्=घटसे पृथक्-भूत वस्तुमें अन्योन्याभावता=घटान्योन्याभावत्व न=नहीं है, भाव तथा अभाव एतदुभयरूप होनेसे, इस उक्तिसे और स्वरूपमात्र भेद नहीं है, किन्तु अन्योन्याभाव है, सच=वह अन्योन्याभाव तो वस्तुना=वस्तुके साथमें अविशेष हुआ, अभिन्न है, इस उक्तिसे घटादि ही भावाभावरूपत्वेन भेद है=' विशेषनामक एक भिन्नपदार्थ द्वैती मानता है, इसका निरूपण तथा खण्डन आगे आनेवाला है, ' यह कथन निरस्त हुआ; एतेन शब्दका अर्थ दिखलाते हैं घटस्थलमें और घटाभावस्थलमें भावत्व तथा अभावत्व इन दोनोंको विरुद्धत्वेन कल्पन होनेसे, तदाश्रय=भावत्व तथा अभावत्व एतदुभयाश्रयका ऐक्य कैसे है=भावत्व तथा अभावत्व इन दोनोंका विरोध अनुभव सिद्ध है, अतः एक आश्रयमें इन दोनोंकी कल्पना नहीं की जा सकती है, तब इन्होंके आश्रयका ऐक्य कैसे हो सकता है और जब आश्रयका ऐक्य नहीं बन सकता है तब भेदको घटस्वरूपताभी नहीं है। अविद्यानिवृत्त्यद्वैतयोरपि=अभावरूप जो अविद्याकी निवृत्ति तथा अभावरूप जो अद्वैत इन दोनोंकीभी भावरूप ब्रह्मके साथ एकता कैसे है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? हमारे मतमें तत्र=ब्रह्ममें अभावत्वको कल्पितत्व होनेसे मायिकत्वसे विरोधके अभावसे। और तुह्मारे मतमें तो भावत्व अभावत्व इन दोनोंको तात्त्विकत्व होनेसे, विरोधको दुष्परिहरत्व होनेसे। जिस अन्योन्याश्रयकी घटादिस्वरूपता द्वैती सिद्धकर रहा है और सिद्धान्ती खण्डनकर रहा है, उस अन्योन्याश्रयके अन्य लक्षणोंका अनुवादकर दूषित करते हैं-अतएवेति। तत्तादात्म्यायोग्यत्वम्, तद्भेदत्वम्, इसी रीतिसे आगेभी अन्वय करना चाहिए; घटमें पटका भेद, पटतादात्म्यायोग्यत्वरूप है, पटमें घटका भेद घटतादात्म्यायोग्यत्वरूप है, वा=अथवा-तदैक्य=पटैक्यप्रमित्यविषयत्वरूप घटमें पटका भेद है, या यत्र=घटमें यद्दर्शनम्=पटभेदका दर्शन है, तत्र=घटमें तत्तादात्म्याध्यास=पटतादात्म्याध्यासविरोधित्व है, वही पटका घटमें भेद है=जहाँपर जिसका दर्शन जिसके तादात्म्याध्यासका विरोधि हो, वहाँपर तत्तादात्म्यविरोधित्वका नाम तद्भेदत्व है-जैसेकि घटमें पटके भेदका दर्शन पटतादात्म्याध्यासका विरोधी है, उस घटमें जो जो पटतादात्म्यविरोधित्व है, वही पटका भेदत्व है। अथवा स्ववृत्ति जो यत्किञ्चित् धर्म तादृश धर्मका जो अनाधार तादृश अनाधारनिष्ठ जो यत्किञ्चित् धर्म तादृश धर्मानाधारत्वरूप तद्भेदत्व है=स्ववृत्ति=घटवृत्ति जो यत्किञ्चिद्धर्म=घटत्वरूप धर्म तादृश धर्मका जो अनाधार=पटपदार्थ, तन्निष्ठ=पटनिष्ठ जो यत्किञ्चिद्धर्म=पटत्वरूप धर्म तादृश धर्मानाधारत्व घटमें है यही घटमें पटभेदत्व है; अथवा स्वावृत्ति जो यत्किञ्चिद्धर्म तादृश धर्मका जो आधार तादृश आधारमें अनिष्ठ जो धर्म तादृश धर्माधारत्व ही तद्भेदत्व है=स्वावृत्ति=घटमें अवृत्ति जो यत्किञ्चिद्धर्म=पटत्वरूपधर्म, उस धर्मका जो आधार=पटवस्तु तदनिष्ठ जो धर्म=घटत्वरूप धर्म तदाधारत्व

घटमें है, यह घटमें पटभेदत्व है, और अनाधारत्व आधारराहित्यरूप है, आधारान्यत्वरूप नहीं अतः अन्योन्याश्रय नहीं है; यह कथन निरस्त हुआ। अत एव शब्दके अर्थका विवरण करते हैं– स्वरूपत्वे=उक्त अयोग्यत्वादिको घटादिका स्वरूपत्व होनेपर सापेक्षत्वकी अनुपपत्तिसे, और भेद होनेपर अनवस्था होनेसे। और उक्त अयोग्यत्वादिको योग्यत्वादिका अत्यन्ताभावरूपत्व होनेपर अत्यन्ताभाव तथा अन्योन्याभाव इन दोनोंके ऐक्यकी आपत्तिसे। और भेदके स्वरूपोंको प्रमितिसे तथा दर्शनादिसे घटितत्व होनेसे चक्षुरादिसे अगम्यत्वकीभी आपत्तिसे, अब इस पक्षमें दूषणान्तरका उद्भावन करते हैं–किञ्चेति। भेदको घटस्वरूपत्व होनेपर='पटप्रतियोगिको भेदः घटस्वरूपः' यहाँपर पटभेदको घटस्वरूपत्व होनेपर तन्निरूपक=भेदनिरूपक प्रतियोगीकोभी तत्स्वरूपता=घटस्वरूपताकी आपत्ति है क्योंकि भेदरूप ही घट नहीं है किन्तु पटप्रतियोगिक भेदरूप घट है।

ननु—नायं दोषः; भेदप्रतियोगिन उपलक्षणत्वेन स्वरूपतायामनन्वयात् अन्यथा दुःखनिवृत्तेः पुमर्थतया दुःखस्यापि पुमर्थत्वम् दोषाभावस्य साधकताप्रयोजकत्वे दोषस्यापि साधकताप्रयोजकत्वं, अनृतव्यावृत्त्यज्ञाननिवृत्त्योरज्ञानादिप्रकाशरूपज्ञानस्य च ब्रह्मरूपत्वे अनृतादीनामपि तद्रूपत्वम्, अज्ञाननिवृत्तेर्मोक्षत्वे अज्ञानस्य च मोक्षत्वं च स्यात्। नच लम्बकर्णादौ कर्णादेर्विशेषणतयान्वयदर्शनादत्रापि तथा, चित्रग्वादिषु अनन्वयात्तथैव किं न स्यात्? अन्यथोदाहृतस्थले अगतेः। नच प्रतियोगिनः उपलक्षणत्वे तदज्ञानेऽपि काकाज्ञाने गृहज्ञानवत्तज्ज्ञानापत्तिः; इष्टापत्तेः, अन्यथोदाहृतागतेश्च। केचित्त प्रतियोगिनोऽनन्वयेऽपि 'शब्दः अनित्यः' इत्यादौ शब्दत्वादेर्विशेषणत्वमिवात्रापि प्रतियोगितया निरूपकत्वमात्रेण वा पटस्य घटरूपतामापादयामः; किन्तु समानाधिकरणप्रतीतिविषयस्वरूपं प्रतिप्रतियोगितया निरूपकत्वेन अभेदनिरूपकप्रतियोगिवत्। नचाज्ञाननिवृत्त्यादयः न समानाधिकरणप्रतीतिविषयाः। भेदस्तु घटः पटो नेति समानाधिकरणप्रतीतिविषयः। अन्यथा समानाधिकरणनिषेधबुद्धिविषयत्वं भेदलक्षणं न स्यात्।

शङ्कते नन्विति। यह दोष नहीं है, प्रतियोगीको उपलक्षणत्व होनेसे स्वरूपतामें अनन्वयसे। अन्यथा=उपलक्षणत्वके होनेपरभी स्वरूपतामें अन्वय होनेपर दुःखकी निवृत्तिको पुरुषार्थता होनेसे दुःखकोभी पुरुषार्थत्व होगा, और दोषाभावको साधकतामें प्रयोजकत्व होनेपर दोषकोभी साधकताके प्रति प्रयोजकत्व होगा, और अनृतकी व्यावृत्तिको तथा अज्ञानकी निवृत्तिको एवं अज्ञानादिप्रकाशरूपज्ञानको ब्रह्मरूपता होनेपर अनृतादिकोभी ब्रह्मरूपत्व होगा, और अज्ञानकी निवृत्तिको मोक्षत्व होनेपर अज्ञानकोभी मोक्षत्व होगा। लम्बकर्णादिमें कर्णादिका विशेषणतया अन्वय देखनेसे अत्रापि=भेदप्रतीतिस्थलमेंभी तथा=विशेषणतया प्रतियोगीका भान है, नच=तथा नहीं है। क्यों? चित्रग्वादिषु=चित्रगुः, काशीवासी समागतः इत्यादिमें विशेषणतया अन्वय न देखनेसे किन्तु उपलक्षणविधया भान देखनेसे तथैव=उपलक्षणविधयैव क्यों न अन्वय

हो। अन्यथा=उपलक्षणविधया अन्वय न मानों तो दुःखनिवृत्त्यादिरूप उदाहृत स्थलमें अगतिसे। कोई लोग तो प्रतियोगीका अन्वय न होनेपरभी 'शब्दः अनित्यः' इत्यादिमें शब्दत्वादिको जैसे विशेषणत्व है, तैसे यहाँपरभी विशेषणत्व है, ऐसा कहते हैं इति चेन्न; क्योंकि हमलोग 'पटभेदो घटस्वरूपम्' इस रीतिसे अन्वयनिष्ठत्वेन पटको घटरूपत्वका आपादन नहीं करते हैं; अथवा प्रतियोगितया निरूपकत्वमात्रसे पटको घटरूपताका आपादन नहीं करते हैं, किन्तु समानाधिकरण जो प्रतीति तादृश प्रतीतिका विषय जो स्वरूप तादृश विषयस्वरूपके प्रति प्रतियोगितया निरूपकत्वेन, अभेदनिरूपकप्रतियोगिवत्='नीलं महत् सुरभि सरोजम्' इत्याकारक जो सामानाधिकरणप्रतीति तादृशप्रतीतिविषयीभूत जो अभेदस्वरूप उस स्वरूपके प्रति प्रतियोगितया निरूपक नीलादिको जैसे सरोजरूपता होती है, तद्वत्। अज्ञाननिवृत्त्यादिक समानाधिकरणप्रतीतिके विषय नहीं है='अज्ञाननिवृत्तिः ब्रह्म' 'कपालं घटनाशः' इत्यादिरूप समानाधिकरणप्रतीति नहीं होती है, किन्तु 'कपाले घटो नष्टः' ब्रह्मणि अज्ञानं नष्टम् ऐसी प्रतीति होती है अतः अज्ञानको ब्रह्माभिन्नत्वकी आपत्ति नहीं है, और भेदको 'घटः पटो न' इस रीतिसे समानाधिकरणप्रतीतिका विषयत्व है अन्यथा समानाधिकरण जो निषेधबुद्धि तादृशबुद्धिविषयत्वरूप भेदका लक्षण न होगा।

एतेन—पुरुषार्थे दुःखमिव ब्रह्मण्यज्ञानवत्तथा मोक्षे च मोहवन्नान्तर्गतं कुम्भादिकं पटे। तटस्थत्वेऽपि कुम्भादेरप्रतीतौ न भेदधीः। अज्ञानादेरप्रतीतौ तन्निवृत्यादिप्रतीतिवत् इति-निरस्तम्। किञ्च विदारणात्मनो भेदस्य घटस्वरूपत्वे घटस्यापि विदारणं स्यात्। एवं तदवयवानामपीति परमाणुरपि नैक इति शून्यतापत्तेः; एकाभावे तत्समाहाररूपानेकस्याप्यभावात्।

एतेन=उक्त कथनसे पुरुषार्थमें जैसे दुःखअन्तर्गत नहीं है, और ब्रह्ममें जैसे अज्ञान-अन्तर्गत नहीं है और मोक्षमें जैसे मोहरूप अज्ञान-अन्तर्गत नहीं है तैसे कुम्भादिक पटमें अन्तर्गत नहीं है, और जैसे तटस्थभूत अज्ञानादिकी प्रतीति न होनेपर अज्ञानादिकी निवृत्तिकी प्रतीति नहीं होती है तैसे कुम्भादिको तटस्थत्व होनेपर भी कुम्भादिकी अप्रतीति होनेपर भेद भी प्रतीत नहीं होता है यह कथन निरस्त हुआ। किञ्च विदारणात्मक भेदको घटस्वरूपत्व होनेपर घटकाभी विदारण होगा=स्वसे भेद होगा ऐसेही उसके अवयवोंका भी स्वसे भेद होगा=परमाणु भी एक नहीं है इस रीतिसे शून्यताकी आपत्तिसे। एकका अभाव होनेपर एकसमाहाररूप अनेकके भी अभावसे।

ननु—अविदारणात्मकस्याभेदस्य ब्रह्मरूपत्वे पारमार्थिकब्रह्मणो व्यावहारिकप्रातिभासिकशून्यैरपि अविदारणे तदैक्यमपि स्यात् नच जीवाभेद एव स्वरूपम् नतु घटाद्यभेदः, तत्रापि पटादिभ्यो भेद एव घटस्वरूपम्, नतु स्वस्मादिति सममिति—चेन्न; स्वरूपत्वे भेदस्य स्वज्ञानाप्रतिबध्यज्ञानप्रतियोगिकत्वे स्वस्वरूपत्वेनाभेदवत्स्वप्रति-

योगित्वनियमेन स्वविदारकत्वस्यावश्यकत्वात्। घटधर्मेषु पटप्रतियोगिकभेदत्ववत् घट-प्रतियोगिकभेदत्वस्यापि अभ्युपगमात् पटात् भिन्नो घट इतिवत् घटाद्भिन्नो घट इति प्रतीतेर्वज्रलेपाच्च। यत्तु स्वस्माद्विदारकत्वे अवयवानां विभागेन सूक्ष्मत्वमेव स्यात्, नतु शून्यत्वम् नहि शून्यसंयोगात् किंचिदुत्पन्नमिति तन्न; विभाजकत्वं न विदार-कत्वम्। किन्त्वेकत्वविरोधित्वम् तथाचैकस्याभावे अनेकस्य सुतरामभावाच्छून्यतायामेव पर्यवसानाच्च।

शङ्कते नन्विति। अविदारणात्मक अभेदको ब्रह्मस्वरूपत्व होनेपर पारमार्थिक ब्रह्मका घटादिरूप व्यावहारिकके साथ और शुक्तिरूप्यादिरूप प्रातिभासिकके साथ तथा शून्यके साथ अविदारण होनेपर–तदैक्यमपि=व्यावहारिकादिके साथ ऐक्यभी होगा, यदि यों कहो कि जीवका अभेद ही स्वरूप है घटादिका अभेद स्वरूप नहीं तब तो हमारे मतमेंभी पटादिकोंसे भेदही घटका स्वरूप है घटसे घटका भेद घटका स्वरूप नहीं इस रीतीसे समाधान समान ही है, इति चेन्न; क्यों? स्वरूपत्वे भेदस्य=घटादिनिष्ठभेदको घटादिस्वरूपत्व होनेपर स्वज्ञाना-प्रतिबध्यज्ञानप्रतियोगिकत्वे=स्वस्य ज्ञानम् स्वज्ञानम्; स्वज्ञानेन अप्रतिबध्यं ज्ञानं यस्य तत् स्वज्ञानाप्रतिबध्यज्ञानम्, तत्प्रतियोगिकत्वे,–स्वशब्दसे भेदका ग्रहण है, उसके ज्ञानसे, अप्रति-बध्यज्ञान उसीका है तत्प्रतियोगिकत्व होनेपर स्वस्वरूपत्वेन=स्वप्रतियोगीको स्वस्वरूपत्व होनेसे अभेदवत् स्वप्रतियोगिकत्वके नियमसे स्वविदारकत्वको आवश्यकत्व होनेसे। घटधर्मोंमें पटप्रतियोगिभेदत्ववत् घटप्रतियोगिकभेदत्वकाभी अभ्युपगम होनेसे। पटात् भिन्नो घटः। इस प्रतीतिकी तरह 'घटाद्भिन्नो घटः' इस प्रतीतिको वज्रलेपत्व होनेसे। स्वस्माद्विदारकत्वे= स्वसे विदारकत्व होनेपर अवयवोंके विभागसे सूक्ष्मत्व होगा, शून्यत्व नहीं होगा, क्योंकि शून्यके संयोगसे कोई वस्तु उत्पन्न तो नहीं हुई है, यतः उस वस्तुके विभागसे शून्य रह जाय जैसे कि परमाणुसंयोगसे द्व्यणुक उत्पन्न होता है तो द्व्यणुकके विभागसे परमाणु अवशेष रह जाते हैं, इति यत् तत् तु न; क्यों? विभाजकत्वरूप विदारकत्व नहीं है, किन्तु एकत्व-विरोधित्वरूप है। तथाच एकका अभाव होनेपर अनेकका सुतरां अभाव होनेसे शून्यतामें ही पर्य्यवसान होनेसे।

एतेन विदारकत्वविरहादेः स्वसम्बन्धिन्येव विदारकत्वम् नतु स्वस्मिन्निति भेद-श्चेत् स्वरूपं तदा स्वं न विदारयेत्, किंच भेदस्य न विदारकत्वम्; भावव्युत्पत्त्या विदारणत्वात्। तथाच स्वरूपभेदेन घटस्य न विदारणं स्यात्; स्ववृत्तिविरोधादिति–निरस्तम् भेदस्य विदारणरूपविभागात्मकत्वेन विभागस्य विभज्यमानवृत्तित्वनियमेनावय-वानवस्थया शून्यतापत्तेस्तादवस्थ्यात्। अत एव विभागरूपविदारणात्मा न भेदः किंत्व-न्योन्याभावः धातूनामनेकार्थत्वात्। तदुक्तं क्रियावाचित्वमाख्यातुमेकोऽप्यर्थः प्रदर्श्यते। 'प्रयोगतोऽनुसर्त्तव्या अनेकार्था हि धातवः।' इति अन्यथा संयुक्तयोर्भिन्नाविति

व्यवहारो न स्यादिति–निरस्तम्; अन्योन्याभावस्वरूपत्वे कपालादिरूपाश्रयप्रतियोगिकभेदस्य, घटादिरूपाश्रितरूपतया स्वप्रतियोगिकभेदाश्रयत्वादेकत्वं कपालादिषु भज्येतेत्यवयवानवस्थया शून्यतायामेव पर्यवसानात् ।

एतेनेति—विदारक जो लवित्रादिक हैं उन्होंको स्वसम्बन्धिमें ही विदारकत्व है, स्वमें विदारकत्व नहीं, अतः भेद यदि स्वरूप है तो स्वको विदारित न करेगा किञ्च भेदको विदारकत्व नहीं है, 'भेदनं भेदः' इस भावव्युत्पत्तिसे भेदको विदारणत्व होनेसे, फलतः स्वरूप भेदसे घटका विदारण न होगा, स्वमें स्ववृत्तिके विरोधसे=घटीभूत भेदसे स्वात्मभूत घटका विदारण न होगा, स्वमें स्ववृत्तिताके विरोधसे यह कथन निरस्त हुआ, एतेन शब्दका विवरण करते हैं–भेदको विदारणरूप जो, विभाग=भिदा तदात्मकत्व होनेसे विभागस्य=भिदाको विभज्यमान=भिद्यमानमें वृत्तित्वके नियमसे अवयवोंकी अनवस्थासे शून्यतापत्तिका तादवस्थ्य होनेसे । अत एवेति । विभागरूप विदारणात्मा भेद नहीं है । किन्तु अन्योन्याभाव है, धातुओंको अनेकार्थत्व होनेसे । सो कहा है क्रियावाचित्व कहनेके लिए एकभी अर्थ दिखलाया जाता है प्रयोगसे अर्थानुसरणीय हैं, क्योंकि धातु अनेकार्थ होते हैं अन्यथा भिदिर् विदारणे (रु० उभ० अ०) इस उक्तिसे विदारणरूपही अर्थ होनेपर संयुक्त दो पदार्थोंमें 'भिन्नौ' इत्याकारक जो व्यवहार होता है वह न होगा, यह निरस्त हुआ; अतएव–शब्दका अर्थ दिखलाते हैं–अन्योन्याभावरूपत्वे=भेदको अन्योन्याभावस्वरूपत्व होनेपर कपालादिरूपाश्रयप्रतियोगिकभेदस्य=घटादिका कपालादिरूप जो आश्रय तादृश आश्रयप्रतिक जो भेद–कपालादिका भेद उस भेदको घटादिरूपाश्रितरूपतया=घटादिरूप जो कपालादिके आश्रित पदार्थ तद्रूपतया=घटादिरूपता होनेसे, स्वप्रतियोगिकभेदाश्रयत्वात्=स्वप्रतियोगिक जो घटादिरूप भेद तादृश घटादिरूपभेदाश्रयत्व होनेसे कपालादिमें एकत्वभी न होगा=एकत्व सिद्ध न होगा=इस रीतिसे अवयवोंकी अनवस्थासे शून्यत्वमें ही पर्य्यवसान होनेसे । स्वशब्दसे कपालका ग्रहण है ।

अतएव—नानेकत्वैकार्थसमवायिना भेदेन एकत्वं निराकृत्य तेन पुनरेकत्वनिराकरणं युज्यते, उपजीव्यविरोधादिति–निरस्तम्, अनेकत्वमस्पृष्ट्वैव स्वप्रतियोगिकभेदमात्रेण ऐक्यविरहस्यापाद्यत्वात् । अतएवोक्तमाचार्यैः–अभेदेनैकार्थसमवायिन्या एकताया भेदेन विरोधादिति । यदुक्तं स्वस्मिन्वृत्तिविरोधादिति, तन्न, विभागादिरूपव्यापारस्यानङ्गीकारात्, इतरविरोधितादिरूपव्यापारस्य सर्वत्र सत्वात् किंच स्वरूपत्वे भेदस्य संशयादिर्न स्यात्, धर्मिज्ञाने भेदज्ञानाभावात्, तदज्ञाने हेतोरेवाभावात् । ननु–अभेदस्यापि स्वरूपत्वे संशयाद्यनुपपत्तिस्तवापि समा, यदि चाभेदत्वेनाज्ञानात्तथा, ममापि भेदत्वेनाज्ञानात्तदिति–चेन्न; भेदस्य स्वरूपत्वे शून्यतापादकयुक्त्या कोटीनामेवोच्छेदात् ।

नच–अभेदस्यापि स्वरूपत्वे भेदकोट्युच्छेदस्तत्रापीति–वाच्यम्; कल्पितकोटिमादाय संशयोपपत्तेः। नच तत्रापि भेदकसत्त्वादिकोटिः कल्पिता; शून्यतापत्तेरित्युक्तत्वात्।

अतएवेति। अनेकत्वैकार्थसमवायिना=अनेकत्वसमानाधिकरण जो भेद उस भेदसे एकत्वका निराकरणकर तेन=उक्तविध भेदसे पुनः अनेकत्वका निराकरण युक्त नहीं है, उपजीव्यका विरोध होनेसे=सामानाधिकरण्यरूपसम्बन्धसे अनेकत्व भेदका उपजीव्य है–एकत्वके निराकरणमें पुनः भेद उसीका–निराकरण करेगा तो उपजीव्य विरोध होगा, यह निरस्त हुआ, अत एव–शब्दका अर्थ दिखलाते हैं–अनेकत्वमिति। अनेकत्वको न छूकरही स्वप्रतियोगिक भेदमात्रसे ऐक्यके विरहको आपाद्यत्व होनेसे=स्वप्रतियोगिकभेदाश्रयत्वेन ऐक्यविरहको आपाद्यत्व होनेसे। अतएव कहा है चित्सुखाचार्यने=अभेदके साथ एक अर्थमें समवायसम्बन्धसे वर्तनेवाली जो एकता उस एकताका भेदसे विरोध होनेसे। और जो स्वमें स्ववृत्तिके विरोधसे। यह कहा है वह ठीक नहीं क्यों ? क्रियाजन्यविभागादिरूप व्यापारके अनङ्गीकारसे; इतरविरोधितादिरूप जो व्यापार उसका सर्वत्र सत्त्व होनेसे। किञ्च भेदको घटादिस्वरूपत्व होनेपर भेदस्य=भेदविषयक संशयादि न होगा,=पूर्वमें देवदत्तको देखकर कालान्तरमें यज्ञदत्तको देखकर अयं देवदत्तो न वा, इत्याकारक संशय होता है, वह न होगा, क्यों ? धर्मिज्ञाने=धर्मिका ज्ञान होनेपर भेदके अज्ञानके अभावसे जबकि धर्मिस्वरूप ही भेद है तब तो धर्मिज्ञान ही भेदज्ञान है, फिर संशयका अवकाश कहाँ है, तदज्ञाने=धर्मिज्ञानके न होनेपर हेतोरेव=संशयका हेतु जो धर्मिज्ञान, उसके ही अभावसे संशय न बनेगा,। शङ्कते नन्विति। अभेदकोभी स्वरूपत्व होनेपर संशयादिकी अनुपपत्ति तुमकोभी समान ही है, यदि यों कहोकि अभेदत्वेन ज्ञान न होनेसे संशयादि की अनुपपत्ति नहीं है–संशयादि बन सकते हैं–आदिशब्दसे विपर्ययका ग्रहण है। इति चेन्न; क्यों ? भेदस्य स्वरूपत्वे=भेदको घटादिस्वरूपत्व होनेपर शून्यताऽऽपादक युक्तिसे कोटियोंका ही उच्छेद होनेसे। अभेदकोभी स्वरूपत्व होनेपर भेदकोटिका उच्छेद तुमकोभी समान है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? कल्पित कोटिको लेकर संशयकी उपपत्ति होनेसे, और तुह्मारे मतमेंभी भेद और भेदसत्त्वादिकी कोटि कल्पिता नहीं है, शून्यताकी आपत्तिसे, इस अर्थको उक्तत्व होनेसे।

यत्तु प्राक् चैतन्ये स्वयंभातेऽपि तदभिन्नस्यैक्यस्यानवच्छिन्नस्यानन्दस्य चाप्रकाशवद्धर्मिणः प्रकाशेऽपि तदभिन्नस्य भेदस्याप्रकाशो भविष्यति। किञ्चैक्यप्रकाशे तत्र विप्रतिपत्तिर्न स्यात् तदुपदेशानर्थक्यं च स्यादिति तन्न; ऐक्यादीनां स्वप्रकाशस्वरूपत्वेऽपि तस्याज्ञानतत्कार्यविप्रतिपत्त्यादीन् प्रति अविरोधितया तद्गोचरविरोधिवृत्तिपर्यन्तमुक्तानुपपत्त्यभावात्। नच तर्हि प्रत्यगर्थेऽपि विप्रतिपत्तिः स्यात्, चार्वाकादीनां तस्याऽपि दर्शनात्। तस्मादज्ञानाश्रयत्वादिना प्रत्यगर्थप्रकाशमुपजीव्यं नाविद्यावृणोति। ऐक्याद्यंशत्वावृणोत्येवेति तत्र विप्रतिपत्त्यादयः नचैवं साहश्यादिदोषादत्रापि भेदांश आवृत

इति-वाच्यम्; कोट्यनुपस्थितेः प्रधानपूर्वकारोपवादिनः तव तदसंभवात्। यत्तु स्वरूपभेदो भेदत्वेन भासते एव, प्रायः सर्वभिन्नत्वेनैव प्रतीतेः, अन्यथा सर्वकोटिकः संशयः स्यात्। तत्र च घटप्रतियोगिकत्वादिरूपा अनेकधर्माः सादृश्यादिवशादगृहीताः संशयविषया भविष्यन्ति नचानेकनिरूप्यस्य भेदस्य निरूपकानेकत्वादनेकत्वापत्तिः तादृशस्यापीश्वरज्ञानादेरनेकद्वैतनिरूप्याद्वैतस्य चैक्यदर्शनात्, एकनिरूप्यप्रागभावध्वंसयोरनैक्यदर्शनाच्च।

यत्त्विति। जैसे प्राक्=वेदान्तविचारसे पूर्वमें चैतन्यको स्वयं प्रकाश होनेपर भी तदभिन्न=चैतन्याभिन्न जो ऐक्य उस ऐक्यका तथा निरवच्छिन्न आनन्दका प्रकाश नहीं होता है तैसे धर्मिका प्रकाश होनेपर भी तदभिन्नस्य=धर्मिसे अभिन्न जो भेद उस भेदका प्रकाश न होगा, किञ्च चैतन्यका प्रकाश होनेपर ही वेदान्तविचारसे पूर्वमें ऐक्यका प्रकाश होनेपर तत्र=ऐक्यमें विप्रतिपत्ति न होगी। और ऐक्यके उपदेशका आनर्थक्य भी होगा। इति यत् तत् तु न; क्यों ? ऐक्यादिकोंको स्वप्रकाशस्वरूपत्व होनेपर तस्य=उस स्वप्रकाश स्वरूपको अज्ञान और अज्ञानके कार्य जो विप्रतिपत्ति आदिक हैं उन्होंके प्रति विरोधित्व न होनेसे ऐक्यादिविषयक जो वेदान्तविचारजन्य विरोधिवृत्ति उस वृत्तिके उदयपर्यन्त उक्त अनुपपत्त्यादिके अभावसे। तर्हि=तव स्वप्रकाशको अविद्यादिके प्रति विरोधित्व न होनेपर प्रत्यगर्थमें भी विप्रतिपत्ति होगी नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों ? चार्वाकादिकोंमें प्रत्यगर्थविषयविप्रतिपत्तिके भी देखनेसे। तस्मात् अज्ञानाश्रयत्वादिरूप प्रत्यगर्थरूप स्वप्रकाशका उपजीव्य है, उसको अविद्या आवृत नहीं करती है, और ऐक्याद्यंशको आवृत करती ही है अतः तत्र=ऐक्याद्यंशमें विप्रतिपत्त्यादिक हैं। नचेति। सादृश्यादि दोषसे अत्रापि=संशयस्थलमें भी भेदांश आवृतः=निश्चित नहीं होता है; इति नच वाच्यम्; क्यों ? कोटिओंकी अनुपस्थितिसे प्रधानपूर्वक आरोप होता है, ऐसा कहनेवाले तुम्हारे मतमें तदसंभवात्=अनिश्चयका असम्भव होनेसे सादृश्यको स्वरूपसे संशयके प्रति हेतुता नहीं है किन्तु कोट्युपस्थापकविधया है और तुम्हारे मतमें आरोप प्रधानपूर्वक होता है तथाच भेद तथा अभेद ये दोनों कोटियाँ यदि कहींपर तात्त्विकत्वेन प्रमित हों तव उन्होंका कहींपर संशय बन सकता है वे तो आपके मतमें हैं ही नहीं क्योंकि आप भेदको घटादिस्वरूप बतला रहे है अतः संशय अनुपपन्न है। यत्त्विति। स्वरूपभेद भेदत्वेन प्रतीत ही होता है प्रायः सर्वे भिन्नत्वेन ही प्रतीत होनेसे। अन्यथा 'इदं सर्वं न वा' इत्याकारक सर्वकोटिक संशय होगा तत्र च=उस स्वरूपरूप भेदमें घटप्रतियोगिकत्वादिरूप अनेक धर्म घटसादृश्यादिवशतः अगृहीत हुए संशयके विषय होते हैं यदि यों कहों कि अनेक निरूप्यको निरूपकोंके अनेकत्वसे अनेकत्वकी आपत्ति है तो ऐसा नहीं कहना-अनेक निरूप्य जो ईश्वरज्ञानादि उसका ऐक्य देखनेसे और अनेक द्वैतसे निरूप्य अद्वैतका ऐक्य देखनेसे, आदिपदसे ईश्वरीय इच्छादिको लेना चाहिए और एकसे निरूप्य जो प्रागभाव तथा प्रध्वंस इन दोनोंका अनैक्य देखनेसे।

तन्न, न वयं निरूपकभेदेन भेदं ब्रूमः किन्तु प्रतियोगितावच्छेदकभेदेनाभावभेदस्यावश्यकतया, अन्यथा एकघटप्रतियोगिनां चतुर्णां ध्वंसादीनामैक्यापत्तेः। नचाधिकरणरूपाभाववादिनामधिकरणभेदेनैवाभावभेदः; ध्वंसप्रागभावयोरैक्यापत्तौ विलक्षणव्यवहारानापत्तेः। नचैवमद्वैतेऽप्यैक्यानुपपत्तिः; ब्रह्मेतरत्वरूपप्रतियोगितावच्छेदकस्यैक्यात्, प्रतियोगिभेदाभेदयोरतन्त्रत्वात्। यदपि भेदज्ञानं न भ्रमविरोधि, किन्त्वधिष्ठानआरोप्यविरुद्धधर्मादिज्ञानमिति, तन्न, शब्दाभेदभ्रमस्य शाब्दभेदज्ञानादनिवृत्त्यापत्तेः। यदपि कैश्चिदुक्तं—अदोपमूला ताद्रूप्येणाप्रतीतौ प्रतीतिः स्वरूपभेदलक्षणम्। शुक्तेश्च शुक्त्यात्मना अप्रतीतिः दोपमूलेति न तत्रातिव्याप्तिः। अदोपमूलेत्यस्य यद्यपि सप्तम्यन्तविशेपणत्वं न संभवति तथापि विशिष्टविशेपणत्वेन तद्विशेपणत्वपर्यवसानादिति, तन्न, ताद्रूप्येणाप्रतीतौ प्रतीतेरभेदसाधारण्येनादोपमूलत्वपर्यन्तज्ञानं भेदव्यवहारकारणं वाच्यम्।

इति यत् तत् तु न; क्यों ? हम निरूपकके भेदसे भेद नहीं कहते हैं, किन्तु प्रतियोगितावच्छेदकके भेदसे अभावके भेदको आवश्यकता होनेसे, प्रतियोगितावच्छेदकके भेदसे भेद कहते हैं,—अन्यथा=प्रतियोगितावच्छेदकके भेदसे अभावका भेद न होनेपर एकघटप्रतियोगिकध्वंसादिक चार अभावोंके ऐक्यकी आपत्तिसे। 'अधिकरणस्वरूप' अभाव है, ऐसा कहनेवालोंके मतमें अधिकरणके भेदसे ही अभावका भेद है, नच=ऐसा नहीं हो सकता है, क्यों ? ध्वंस तथा प्रागभाव इन दोनोंके ऐक्यकी आपत्ति होनेपर विलक्षणव्यवहारकी उपपत्तिके अभावसे=अधिकरणभेदसे ही अभावका भेद मानें तो प्रागभाव तथा प्रध्वंस इन दोनोंका प्रतियोग्यधिकरणरूप एकही अधिकरण है, तथाच इन्होंका भेद न होगा, और ऐसा होनेपर 'घटो भविष्यति' 'घटो ध्वस्तः' इत्यादिरूप जो विलक्षणव्यवहार होता है वह न होगा, और प्रतियोगितावच्छेदकके भेदसे अभावका भेद मानें तब तो प्रतियोगितावच्छेदकोंका भेद होनेसे कोई अनुपपत्ति नहीं—अत्यन्ताभावीयप्रतियोगिताका अवच्छेदक संयोगादिरूप सम्बन्ध है अन्योन्याभावीय प्रतियोगितावच्छेदक तादात्म्य है प्रध्वंसीय प्रतियोगितावच्छेदक पूर्वकालीन तद्व्यक्तित्व है, और प्रागभावीय प्रतियोगितावच्छेदक उत्तरकालीन तद्व्यक्तित्व है। नचेति, ऐसा होनेपर अद्वैतमेंभी ऐक्यकी अनुपपत्ति है नच=नहीं है; क्यों ? ब्रह्मेतरत्वरूप प्रतियोगितावच्छेदकका ऐक्य होनेसे प्रतियोगिके भेदाभेदको अभावभेदके प्रति अतन्त्रत्व होनेसे। भेदज्ञान भ्रमका विरोधि नहीं है किन्तु अधिष्ठानमें आरोप्यसे विरुद्ध जो धर्मादि तादृश धर्मादिका ज्ञान भ्रमका विरोधि है इति यत् तदपि न; क्यों ? शब्दजन्य अभेदभ्रमको शब्दजन्यभेदज्ञानसे अनिवृत्तिकी आपत्तिसे यदपीति। ताद्रूप्येण=शुक्तित्वादिरूपसे प्रतीतिके न होनेपर=जिसकालमें शुक्तित्वादिरूपसे शुक्तिकी प्रतीति नहीं होती है उसकालमें होनेवाली जो अदोपमूला प्रतीति वही स्वरूपभेदका लक्षण है—उक्त प्रतीतिका नाम है—शुक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद। और शुक्तिकी जो शुक्त्यात्मना अप्रतीति है वह दोपमूला है अतः उसमें अतिव्याप्ति नहीं 'अदोपमूला' इसको यद्यपि सप्तम्यन्तका विशेपणत्व नहीं बन सकता

है। अर्थात् सप्तम्यन्तके साथ इसका स्वातन्त्र्येण अन्वय नहीं बन सकता है तथापि विशिष्ट-विशेषणत्वेन=ताद्रूप्येण प्रतीत्यभावकालीन प्रतीतिरूप जो विशिष्ट तादृशविशिष्टविशेषणत्वेन तद्विशेषणत्व=सप्तम्यन्तविशेषणत्वका पर्यवसान होनेसे; इति यत् कैश्चिदुक्तं तदपि न; क्यों ? ताद्रूप्येणाप्रतीतौ=ताद्रूप्येण प्रतीतिके न होनेपर प्रतीतिको अभेदसाधारण्य होनेसे अदोप-मूलस्वपर्यन्तज्ञान भेदव्यवहारका कारण कहना चाहिए।

तत्रादोपमूलत्वं फलैकोन्नेयमिति चाक्षुपत्वं न स्यात्; प्रतीतिघटितत्वात्, अप्र-त्ययकाले च भेदो न स्यात्। किंच रजतात्मना शुक्तेः प्रतीतिसमये तत्र तद्भेदस्ते न स्यात्। अदोपमूलेत्यस्याभावविशेषणत्वेनाव्याप्तिवारणेऽसामर्थ्यात्, विशेष्यानधिक-रणस्य सुतरां विशिष्टानधिकरणत्वात्। नहि पुरुषहीने दण्डिपुरुषसंभवः। नचादोपमू-लेति अशरीरजन्यत्वमित्यत्र शरीरमिव प्रतियोगिविशेषणं बाधितसंग्रहार्थं; तत्र समस्तप्र-तीतेरसमस्तेनानन्वयात्। नब्राह्मणः समीचीन इत्यनेन समीचीनविप्राभावः प्रतीयते। अदोपमूलतादात्म्यप्रकारप्रतीत्यभावोक्तौ च शुक्ते रूप्यात्मना अप्रतीतिकाले सामग्रीवि-रहात् शुक्त्यात्मना चाप्रतीतौ स्वभेदापत्तेः तादवस्थात्। नच–तदापि प्रतीयमानशुक्त्या-त्मना प्रतीयमानत्वमीश्वरज्ञानमादायास्त्येवेति–वाच्यम्। एवं सत्यप्रतीतिदशाविरहेण प्रती-यमानपदवैयर्थ्यात्। नचान्योन्याभावत्वं तत्; तस्यानिरूपणात्। तदुक्तमाचार्यैः–सापे-क्षत्वात्सावधेश्च तत्त्वेऽद्वैतप्रसङ्गतः। एकाभावादसन्देहान्नरूपं वस्तुनो भिदा॥ इति।

तत्रेति। उक्त स्वरूपभेदमें अदोपमूलत्व, दोपानुपलब्धिरूप फलसेही अनुमेय है; और उक्तस्वरूपभेदको चाक्षुपत्व न होगा, क्यों ? प्रतीतिसे घटितत्व होनेसे और प्रतीत्यभाव-कालमें भेद न होगा, किञ्च रजतात्मना शुक्तिकी प्रतीतिके समयमें तत्र=शुक्तिमें तद्भेदः=रजतभेद न होगा, अदोपमूला इसको अभाव विशेषणत्व होनेसे अव्याप्तिवारणमेंऽसामर्थ्यसे। विशेष्यानधिकरणस्य=ताद्रूप्यसे प्रतीतिके अनधिकरणको विशिष्टानधिकरणत्वात्=अदोप-मूलत्वविशिष्ट प्रतीतिका अनधिकरणत्व होनेसे। क्योंकि पुरुषसे रहितस्थलमें दण्डिपुरुषका सम्भव नहीं है। 'अदोपमूला' 'अशरीरजन्यत्वम्' यहाँपर शरीरकी नाईं प्रतियोगिका विशेषण है बाधितके संग्रहके लिए; नच=नहीं क्यों ? नञ्से समस्तकी प्रतीतिसे समस्तेन=मूलान्तके साथमें अनन्वयसे। 'अब्राह्मणः समीचीनः' इसमें समीचीन विप्रका अभाव नहीं प्रतीत होता है। ननु=उक्त वाक्यार्थभेदका लक्षण मत रहो तथापि अदोपमूला जो तद्धर्मप्रकारिका प्रतीति तादृश प्रतीत्यभावकालीना जो प्रतीति वह तद्धर्मावच्छिन्न भेद है; यह लक्षण रहो; वहाँ कहते हैं–अदोपमूला जो तादात्म्य प्रकारिका प्रतीति तादृशप्रतीतिका अभाव भेद है, ऐसी उक्ति होनेपर शुक्तिकी रूप्यात्मना प्रतीति जिसकालमें नहीं होती है, उस कालमें स्वभेदापत्तेः=शुक्तिमें शुक्तित्वावच्छिन्नके भेदकी आपत्तिका तादवस्थ्य होनेसे, तथा सामग्री-विरहात्=शुक्तित्वव्यञ्जक जो नीलपृष्ठादि तदवच्छिन्न सन्निकर्षरूप जो सामग्री उस सामग्री

के विरहसे शुक्त्यात्मना प्रतीतिके न होनेपर स्वभेदापत्तिका तादवस्थ्य होनेसे। तदापि=उस कालमेंभी प्रतीयमान जो शुक्ति तादृश शुक्त्यात्मना प्रतीयमानत्व ईश्वरज्ञानको लेकर है ही, इति नच-वाच्यम् क्यों ? एवं सति=ईश्वरीयज्ञानको लेकर प्रतीयमानत्व होनेपर तो अप्रतीतिदशाके अभावसे प्रतीयमानपद=प्रतीतिपदके वैयर्थ्यसे। अन्योन्याभावत्वरूप भेदका स्वरूपलक्षण है; नच=नहीं है, क्यों ? तस्य=अन्योन्याभावत्वका अनिरूपण होनेसे। वस्तुस्वरूप भेद नहीं होसकता है इस अर्थकी सिद्धिमें जिन चार हेतुओंका विवेचन किया है उन चारोंकी संग्राहिका चित्सुखाचार्य्यकी कारिका लिखते हैं-सो कहा है-चित्सुखाचार्य्यने भिदा=भेद वस्तुनः=वस्तुका रूपम्=स्वरूप न=नहीं है, क्यों ? सापेक्षत्वात्=भेदको सापेक्षत्व होनेसे और वस्तुस्वरूपको निरपेक्षत्व होनेसे द्वितीय हेतु दिखलाते हैं-सावधेश्च तत्त्वेऽद्वैतप्रसङ्गतः= सावधेः=सप्रतियोगिक भेदको तत्त्वे=वस्तुस्वरूपत्व होनेपर भेदद्वारा प्रतियोगीकोभी धर्मि-स्वरूपता होनेसे अद्वैतके प्रसङ्गसे। तृतीय हेतु दिखलाते हैं-एकाभावात्=विदारणात्मक भेदको वस्तुस्वरूपत्व होनेपर वस्तुकोभी विदीर्ण हो जानेसे एकका अभाव है और एकके न होनेपर तन्निमित्तक अनेककाभी अभाव है, फलतः शून्यवादके आपातसे। चतुर्थ हेतु दिखलाते हैं-असन्देहात्=भेदको धर्मिस्वरूपत्व होनेपर धर्मिज्ञानमात्रसे ही तत्स्वरूपभूत भेदकाभी ज्ञान हो जानेपर सन्देहके अभावसे। सन्देह, विपर्ययकाभी उपलक्षण है (तत्त्वप्रदीपिका, परि-च्छेद २ का० १)।

किञ्च घटस्य भेदत्वे एकतरपरिशेषापत्तिः। ननु-ऐक्यस्य ज्ञानस्यानन्दस्य च ब्रह्मस्वरूपत्वे एकतरपरिशेषापत्तिस्तत्रापि समाना, नच वस्तुनः एकत्वेनेष्टापत्तिः; प्रकृतेऽपि साम्यादिति-चेन्न; एकतरपरिशेषापत्त्या घट इति भेद इति विलक्षणव्यवहाराभावस्यापादनात्। नच प्रवृत्तिनिमित्तघटत्वभेदत्वयोर्भेदात्तदुपपत्तिः भेदत्वस्य निर्वक्तुमशक्यत्वात्। तथाहि-न तावज्जातिः जात्यादिसाधारणत्वात् नोपाधिः तादात्म्यावच्छिन्न-प्रतियोगिताकाभावत्वादिरूपः; तादात्म्यस्य भेदविरहरूपत्वे अन्योन्याश्रयात्, तन्निष्ठासाधारणधर्मरूपत्वे तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावेऽतिव्याप्तेः, तस्यापि स्वरूपत्वे अनुगतव्यवहारानापत्तेः। नच ज्ञानानन्दावपि विलक्षणव्यवहारो न स्यात् इति वाच्यम्; कल्पितधर्मभेदमादायोपपत्तेः। न चभेदत्वमपि तथास्त्विति-वाच्यम्। तद्धनिराकार्योऽसि।

किञ्चेति। घटको भेदता होनेपर एकतरके परिशेषकी आपत्ति है। शङ्कते नन्विति। ऐक्यको, ज्ञानको तथा आनन्दको ब्रह्मस्वरूपता होनेपर एकतरके परिशेषकी आपत्ति तुमकोभी समान है यदि यों कहोकि-वस्तुका एकत्व होनेसे इष्टापत्ति है तब तो प्रकृतमेंभी साम्य होनेसे इष्टापत्ति है; इति चेन्न; क्यों ? एकतरके परिशेषकी आपत्तिसे 'घटः' इत्याकारक और 'भेदः=' इत्याकारक जो विलक्षणव्यवहार होता है, उसके अभावका आपादन होनेसे। उक्त-

व्यवहारके प्रवृत्तिके निमित्त जो घटत्व तथा भेदत्व इन दोनोंके भेदसे तदुपपत्तिः=उक्तविध विलक्षणव्यवहारकी उपपत्ति है; नच=उपपत्ति नहीं है क्यों ? भेदत्वको निर्वचन करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे अशक्यत्व दिखलाते हैं–तथाहि–भेदत्व जातिरूप तो नहीं है, क्यों ? जाति-विशेषादिमेंभी रहनेवाला होनेसे । तादात्म्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वादिरूप उपाधिभी नहीं है, क्यों ? तादात्म्यको भेदविरहरूपत्व होनेपर अन्योन्याश्रय होनेसे । और तादात्म्यको तन्निष्ठ=प्रतियोगीनिष्ठासाधारणधर्मत्व होनेपर तदवच्छिन्न=उक्तधर्मरूपतादात्म्यावच्छिन्नप्रति-योगिताक जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावमें अतिव्याप्ति होनेसे । तस्यापि=भेदत्व-कोभी स्वरूपत्वे=घटादिस्वरूपत्व होनेपर तत्तद्व्यक्तिरूप जो भेदत्व तादृश भेदत्वके तादात्म्यको ही भेदपदप्रवृत्तिनिमित्तत्व होनेसे व्यवहारवैलक्षण्यका उपपादन होनेपरभी अनुगतव्यवहारकी अनापत्तिसे=ऐसा होनेपर भेदविषयक अनुगतव्यवहार न बनेगा । ज्ञानमें तथा आनन्दादिमेंभी विलक्षणव्यवहार न होगा, इति नच वाच्यम्; क्यों ? कल्पित जो धर्म–भेद उस धर्मभेदको ले-कर विलक्षणव्यवहारकी उपपत्तिसे । भेदत्वमपि=भेदत्वभी तथास्तु=कल्पित रहो, इति नच वाच्यम् क्यों ? तत्र निराकार्य्यं नहीं है=यदि तुम भेदको कल्पित मानते हो तो भले मानो हमको खण्डन करनेकी आवश्यकता नहीं हम तो ब्रह्मसे अतिरिक्त सभीको कल्पित मानते हैं ।

किञ्च भेदस्य स्वरूपत्वे इदं भिन्नस्य भेद इति सम्बन्धित्वेन धीर्न स्यात् । न चानन्दो ब्रह्मण इतिवदुपपत्तिः; प्रमाणसिद्धे ह्यैक्ये भेदव्यवहारस्योपचारिकत्वं कल्प्यते राहोः शिर इत्यादिवत् । नच प्रकृते तथा, ऐक्ये मानाभावात्, बाधकाच्च । नच–पक्षा-न्तरानुपपत्तेरेव पक्षान्तरपरिग्रहः शशशृंगादौ भावत्वाभावत्वयोरन्यतरानुपपत्त्याऽन्यतर-ग्रहणोपपत्तेः । नच–तत्रोभयत्र बाधकालिकत्वेनोपपत्तिः । प्रकृतेऽप्युभयत्र बाधकादा-विद्यकत्वेनोपपत्तेः सम्भवात् ।

किञ्चेति । भेदको स्वरूपत्व होनेपर ‘ यह भिन्न है ’ इसका भेद है, इत्याकारिका सम्ब-न्धित्वेन धी न होगी ‘ ब्रह्मका आनन्द है ’ इत्याकारिका धीकी जैसे उपपत्ति होती है तैसे इसकी भी होगी; नच=नहीं होसकती है, क्यों प्रमाणसे सिद्ध जो ऐक्य उस ऐक्यमें भेद-व्यवहारका औपचारिकत्व कल्पन किया जाता है–‘ राहुका शिर है ’ इसकी तरह । और प्रकृतमें तथा=भेदव्यवहार औपचारिक नहीं है ऐक्यमें प्रमाणके अभावसे और बाधकसे भी नचेति । पक्षान्तरानुपपत्तेरेव=धर्मिसे भिन्न भेदकी अनुपपत्तिसे ही पक्षान्तरपरिग्रहः=धर्मिस्वरूपत्वरूप पक्षान्तरका परिग्रह है, नच=ऐसा नहीं होसकता है, क्यों ? शशशृङ्गादिमें भावत्व तथा अभावत्व इन दोनोंमें अन्यतरकी अनुपपत्तिसे अन्यतरके ग्रहणकी आपत्तिसे । तत्र=शशशृङ्गा-दिमें, उभयत्र=भावत्व तथा अभावत्व इन दोनोंमें बाधक होनेसे, अलीकत्वेन शशशृङ्गादिकी उपपत्ति है; नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों ? प्रकृतेऽपि=भेदमें भी उभयत्र=स्वरूपत्व तथा धर्मत्व इन दोनोंमें बाधक होनेसे आविद्यकत्वेन भेदकी उपपत्तिका सम्भव होनेसे=भेद वस्तुका

स्वरूप भी नहीं वन सकता है और वस्तुका धर्म भी नहीं वन सकता है, किन्तु आविद्यत्व वन सकता है।

ननु-अस्ति भेदस्य स्वरूपत्वे मानं मृद्धट इतिवत् घटः पटात्मको नेति पटतादात्म्यनिपेधरूपस्य भेदस्य घटसामानाधिकरण्येनाभेदप्रत्यक्षं, तथा घटभेदयोरेकैकस्य प्रतीतावितरस्य नियमेन प्रतीयमानत्वादिकं लिङ्गम्। 'सत्यं भेदस्तु वस्तूनां स्वरूपं नात्र संशयः' इत्याद्यागमश्चेति-चेन्न, घटः पटात्मको नेत्यादेरन्योन्याभावभेदविपयतया भेदाभेदविपयत्वात् अन्यथा नीलो घट इत्यादेरपि रूपाभेदविपयत्वापत्तेः। लिङ्गस्य चाभेदसिद्धेः पूर्वमसिद्धत्वात् सामान्यव्याप्तेर्जातिव्यक्त्यादौ समानसंवित्संवेद्ये व्यभिचाराद्विशेपव्याप्तावपि प्रतियोगिनि व्यभिचाराच्च, आगमस्य चाधिष्ठानातिरेकेणासत्त्वपरत्वात्।

शङ्कते नन्विति। भेदके स्वरूपत्वमें प्रमाण है 'मृद् घटः' यहाँपर जैसे मृत्सामानाधिकरण्यसे घटका अभेद मृत्तिकाके साथ प्रत्यक्ष है, तैसे घटः पटात्मको न इत्याकारक पटतादात्म्यनिपेधरूप भेदका घटसामानाधिकरण्येन अभेद-प्रत्यक्ष है। तैसे घट तथा घटभेद इन दोनोंमेंसे एकएककी प्रतीति होनेपर इतरका नियमसे प्रतीयमानत्वादिकरूप लिङ्गभी है। भेद वस्तुओंका स्वरूप है, यह ठीक है=इसमें कुछ संशय नहीं है, इत्यादि आगमभी भेदके स्वरूपत्वमें प्रमाण है, इति चेन्न; क्यों? 'घटः पटात्मको न' इत्यादिको अन्योन्याभावरूपभेदविपयत्व होनेसे भेदाभेदविपयत्व न होनेसे=भेदका-जो धर्मिके साथ अभेद है उसका नाम है, भेदाभेद, तादृश भेदाभेदका अविपयत्व होनेसे-भेदका स्वाधिकरणके साथ अत्यन्ताभेद होनेपर आधारत्वके अनुभवकी अनुपपत्ति होगी अतः अभावका अधिकरणके साथ विशेपणता नामधारी सम्बन्ध अतिरिक्त ही मानना उचित है। अन्यथा 'नीलो घटः' इत्यादिकोभी रूपका जो अत्यन्ताभेद तादृश अभेदविपयत्वकी आपत्तिसे। और लिङ्गको तो अभेदकी सिद्धिसे पूर्वमें असिद्धत्व होनेसे, समानसंवित्संवेद्य जातिव्यक्त्यादिमें सामान्यव्याप्तिका व्यभिचार होनेसे और विशेपव्याप्ति होनेपरभी प्रतियोगीमें व्यभिचार होनेसे=यत्र तथा तत्त्व इन्होंका अनुगम न होनेसे सामान्यव्याप्ति नहीं वन सकती है, अतः-घटः पटभेदाभिन्नः पटसमानाधिकृतत्वात् 'पटभेदवत्' इत्याकारक विशेपव्याप्ति कहनी, होगी, तथाच घटादिमें व्यभिचार है, उसमेंभी भेदवाचक जो नञ्पद तत्समानविभक्तिकपदप्रतिपाद्यत्वरूप समानाधिकृतत्व होनेसे त्वदभिमत अर्थका साधकत्व नहीं है। और आगमको अधिष्ठानसे अतिरिक्त भेदका असत्त्व है एतत्परत्व होनेसे।

किंच पटात्भेदः घटमात्ररूपं वा, घटकुड्यादिसर्वरूपं वा। आद्ये कुड्यादिः पटभेदो न स्यात्। द्वितीये स्वरूपाणामननुगतत्वात् पटभेदानुगतप्रतीतिर्नस्यात्। नच-पटज्ञानेच्छादौ, यथा पटविपयत्वेनानुगतेनानुगतव्यवहारः तथा पटप्रतियोगिकत्वेनात्राप्यनुगतव्यवहार इति-वाच्यम्, एतावताहि ज्ञानादिपु पटविपयं ज्ञानं पटविपयेच्छेति

पटविषयत्वांशे अनुगमवत् पटप्रतियोगिकत्वांश एवानुगमः स्यात्, न भेदांशेऽपि। नच भेदत्वमप्येकमित्युक्तम्; किञ्चेदमस्मात् भिन्नमितिवाऽस्यामुष्मात् भेद इति वा धर्मिप्रतियोगिघटितत्वेन भेदग्रहणे परस्पराश्रयः धर्मिप्रतियोगिज्ञाने भेदज्ञानं तस्मिंश्च सत्यस्यामुष्मादिति विलक्षणधर्मिप्रतियोगिज्ञानमिति घटपटौ भिन्नाविति। घटपटविशेषणतया तयोर्भेद इति तद्विशेष्यतया वा ग्रहणेऽपि अन्योन्याश्रय एव घटपटप्रतीतौ तद्विशेष्यत्वादिना भेदग्रहः; भेदग्रहेच द्वित्वावच्छिन्नघटपटप्रतीतिरिति।

किञ्चेति। पटसे भेद क्या घटमात्ररूप है या घटकुड्यादिसर्व रूप है। आद्ये=घटमात्ररूप है इस पक्षमें कुड्यादिरूप पटभेद न होगा। द्वितीये=कुड्यादिसर्वरूप है इस द्वितीय पक्षमें कुड्यादिके स्वरूपोंको अननुगतत्व होनेसे पटभेदविषयक अनुगत प्रतीति न होगी। पटज्ञानमें तथा पटेच्छादिमें जैसे अनुगतभूतपटविषयत्वेन अनुगत व्यवहार होता है वैसे पटप्रतियोगिकत्वेन प्रकृतभेदमें भी अनुगतव्यवहार होगा, इति नच वाच्यम्, क्योंकि इतनेसे ज्ञानादिकोंमें 'घटविषयं ज्ञानं' 'घटविषयेच्छा' इत्याकारक जैसे पटविषयत्वांशमें अनुगम है, वैसे पटप्रतियोगिकत्वांशमेंही अनुगम होगा, भेदांशमें भी नहीं और भेदत्वरूप एकधर्म भी नहीं है यह कहा है। किञ्चेति। यह उससे भिन्न है, इस रूपसे या इसका उससे भेद है। इस रूपसे धर्मि तथा प्रतियोगि एतदुभयघटितत्वेन भेदका ग्रहण होनेपर अन्योन्याश्रय है, अन्योन्याश्रयको स्पष्ट करते हैं धर्मिप्रतियोगिज्ञान इति। धर्मि तथा प्रतियोगि इन्होंका ज्ञान होनेपर भेदज्ञान होता है और तस्मिंश्च सति=भेदज्ञान होनेपर अस्य=इसका उससे भेद है इत्याकारक विलक्षणधर्मिप्रतियोगिज्ञान है इत्याकारक ज्ञान होता है। 'घटपटौ भिन्नौ' इस रीतिसे घटपटविशेषणतया भेदका ग्रहण होनेपर या तयोः=घटपट इन दोनोंका भेद है इस रीतिसे तद्विशेष्यतया= भेदविशेष्यतया भेदका ग्रहण होनेपर भी अन्योन्याश्रय है, अन्योन्याश्रयको दिखलाते हैं, घटपटकी प्रतीति होनेपर घटपटविशेष्यकत्वरूपसे या घटपटविशेषणत्वरूपसे भेदका ग्रह है और भेदग्रह होनेपर द्वित्वावच्छिन्न घटघटकी प्रतीति है।

नच—भेदस्य स्वरूपत्वात् स्वरूपप्रतीतिरेव भेदधीत्वेन धीद्वयाभावान्नोक्तदोष इति—शङ्क्यम्; स्वरूपज्ञानस्य द्वितीयत्वाभावेऽपि प्रतियोगिज्ञानस्य स्वरूपज्ञानातिरिक्तस्य द्वितीयस्यापेक्षणात्। नच—सर्वात्मकमिदमिति विपर्ययादर्शनेनेदं न सर्वात्मकमिति सामान्यतः सर्वतो व्यावृत्तं वस्त्वनुभूयत इति प्रतियोगिविशेषज्ञानानपेक्षणान्नान्योन्याश्रय इति—वाच्यम्। सर्वात्मकं नेत्यत्र सर्वत्वं वा प्रतियोगितावच्छेदकं स्वेतरसर्वत्वं वा। आद्ये स्वस्माद्वैलक्षण्ये स्वासिद्धिप्रसङ्गात्, द्वितीये अन्योन्याश्रयस्य स्पष्टत्वात्। नच—सर्वं खल्विदंब्रह्मेत्यत्र यथा ब्रह्मात्मत्वेनाप्रतीतं सर्वमुच्यते तद्वदत्रापि सर्वस्मादित्यनेन तदात्मकत्वेनाज्ञातं सर्वं विवक्ष्यत इति वाच्यम्; स्वग्रहात् पूर्वं स्वस्यापि स्वात्मनाऽज्ञात-

त्वात्, स्वस्यप्रतियोगितापत्तेः दृष्टान्ते सर्वशब्दस्यासङ्कुचितत्वे तवासंप्रतिपत्तेश्च। नच-वस्तुतो भेदाश्रयस्याभेदेनाज्ञानस्य ज्ञानं प्रतियोगिज्ञानत्वेन कारणम् नतु भिन्नत्वप्रकारकज्ञानत्वेनेति-वाच्यम्- एवं हि चन्द्रे द्वित्वभ्रमो न स्यात् वस्तुतो भेदाभावात्।

नचेति। भेदको स्वरूपत्व होनेसे स्वरूपप्रतीतिको ही भेदप्रतीतित्व होनेसे प्रतीतिद्वयके अभावसे उक्त अन्योन्याश्रयरूप दोप नहीं है, इति नच शङ्क्यम्; क्यों ? स्वरूपज्ञानमें द्वितीयत्वका अभाव होनेपरभी स्वरूपज्ञानसे अतिरिक्त प्रतियोगिज्ञानरूप द्वितीयका अपेक्षण होनेसे। नचेति। सर्वात्मकमिदं,=यह सर्वात्मक है, इत्याकारक विपर्ययके न देखनेसे 'इदं न सर्वात्मकं' इस रीतिसे सामान्यतः सर्वतः व्यावृत्त वस्तु अनुभूत होती है अतः प्रतियोगिविशेपके ज्ञानकी अपेक्षा न होनेसे अन्योन्याश्रय नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? 'सर्वात्मकं न' यहाँपर सर्वत्व प्रतियोगितावच्छेदक है, या स्वेतरसर्वत्व, आद्ये=आद्यपक्ष होनेपर स्वस्माद्वैलक्षण्ये=स्वसे स्वका भेद होनेपर स्वासिद्धिः=घटादिके अभेदकी असिद्धिके प्रसङ्गसे। द्वितीये=स्वेतरसर्वत्व प्रतियोगितावच्छेदक है, इस द्वितीयपक्षमें अन्योन्याश्रयको स्पष्टत्व होनेसे। नचेति। सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छा० ३।१४।१) यहाँपर जैसे ब्रह्मात्मत्वेन अप्रतीत सर्व कहा जाता है। तद्वत् यहाँपरभी 'सर्वस्मात्' इससे तदात्मत्वेन अप्रतीत सर्व विवक्षित होता है इति नच वाच्यम्; क्यों ? स्वग्रहसे पूर्व स्वकोभी स्वात्मना अज्ञातत्व होनेसे स्वको प्रतियोगित्वकी आपत्तिसे। और दृष्टान्तमें सर्वशब्दके असङ्कुचितत्वमें तुम्हारी सम्प्रतिपत्ति न होनेसेभी। नचेति। वस्तुतः अभेदेन अज्ञात भेदाश्रयक ज्ञान प्रतियोगिज्ञानत्वेन कारण है, भिन्नत्वप्रकारकज्ञानत्वेन नहीं इति नच वाच्यम्; क्यों ? ऐसा होनेपर चन्द्रमें द्वित्वभ्रम न होगा, चन्द्रमें वस्तुतः भेदके अभावसे।

ननु—अस्तीदं न जानामि। सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादिपु साक्षिसिद्धकालविषयसर्वैः सह वस्त्वज्ञानाभेदानामिवेहापि साक्षिसिद्धेन प्रतियोगिना सहैव व्यावृत्तेः प्रतीतेर्नान्योन्याश्रय इति-चेन्न; विशिष्टज्ञानस्य विशेषणज्ञानाजन्यत्वेऽपि प्रतियोगिसविकल्पकस्याभावज्ञानं प्रत्यन्वयव्यतिरेकाभ्यां जनकत्वात्। साक्षीच प्रमाणमनपेक्ष्य प्रतियोगिपटादिकं धर्मिभिन्नतया न गृह्णातीति कथं साक्षिसिद्धप्रतियोगिना भेदग्रहोपपत्तिः स्यात् ? तदुक्तं चिन्तामणौ अन्यथा निर्विकल्पकादपि घटो नास्तीति वृत्त्यापत्तेरिति। नच-एतावता प्रतियोगितावच्छेदकपटत्वादिप्रकारकज्ञानमात्रमर्थनीयम्, नतु-धर्मिभिन्नत्वज्ञानपर्यन्तमिति-वाच्यम्; धर्मितावच्छेदकभेदाज्ञाने प्रतियोगितावच्छेदकतया अभावनिरूपकत्वस्यैवाभावात् अन्योन्यधर्मभेदज्ञाने च विशिष्यस्तम्भात् कुम्भस्य भेदप्रतीतौ कुम्भात् स्तम्भस्य भेदधीरित्यन्योन्याश्रयतादवस्थ्यात्।

शङ्कते नन्विति। 'अस्ति इदं' न जानामि। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि स्थलोमें साक्षिसिद्ध जो वर्तमानकाल, अज्ञानका विषय, सर्व, ये तीन पदार्थ हैं उन्होंके साथ क्रमशः

वस्तुकी और अज्ञानकी तथा अभेदकी प्रतीति होती है, तैसे प्रकृतमेंभी साक्षिसिद्ध प्रतियोगिके साथ ही व्यावृत्तिकी प्रतीति होनेसे अन्योन्याश्रय नहीं है, इति चेन्न, क्यों ? विशिष्टज्ञानको विशेपणज्ञानसे जन्यत्व न होनेपरभी प्रतियोगीके सविकल्पकज्ञानको अभावज्ञानके प्रति हेतुत्व होनेसे। और साक्षी तो प्रमाणकी अपेक्षा न कर प्रतियोगिभूत पटादिको धर्मिभूत घटादि-भिन्नतया नहीं ग्रहणकरता है अतः साक्षिसिद्ध प्रतियोगिसे भेदग्रहणकी उपपत्ति कैसे होगी। सो कहा है–तत्त्वचिन्तामणिमें–प्रतियोगिविपयक निर्विकल्पक ज्ञानसेभी 'घटो नास्ति' इत्याकारक प्रतीतिकी आपत्तिसे प्रतियोगिविपयक सविकल्पकज्ञानको अभावज्ञानके प्रति जनकत्व मानना चाहिए। नचेति। एतावता, प्रतियोगितावच्छेदक जो पटत्वादि तादृश पटत्वादि-प्रकारक ज्ञानमात्रकारणत्वेन अपेक्षणीय है, नकि धर्मिभिन्नत्वज्ञानपर्यन्त अर्थनीय है, इति नच वाच्यम् क्यों ? धर्मितावच्छेदकभेदाज्ञाने=प्रतियोगितावच्छेदकमें धर्मितावच्छेकके भेदका ज्ञान न होनेपर प्रतियोगितावच्छेदकत्वेन अभावनिरूपकत्वके ही अभावसे। अन्योन्यधर्मभेदज्ञानेच= अन्योन्यवृत्ति जो धर्मितावच्छेदकधर्म एवं प्रतियोगितावच्छेदकधर्म इन धर्मोंका जो भेद उस भेदका जो ज्ञान तादृशज्ञानका आवश्यकत्व होनेपर विशेपरूपसे स्तम्भप्रतियोगिक कुम्भानुयोगिक भेद प्रतीतिमें कुम्भप्रतियोगिकस्तम्भानुयोगिक भेद प्रतीति हेतु है, इस रीतिसे अन्योन्याश्रयका तादवश्य होनेसे।

ननु—त्वन्मतेऽपि विम्वब्रह्मजीवानां प्रतिविम्वब्रह्माभेदे 'इदमनेनाभिन्नमस्यामुष्मादभेदः एतयोरभेद, इत्येवं प्रतीतिः स्यात्, तथाच धर्मिप्रतियोगिभावधीद्वित्वावच्छिन्नधीश्च भेदज्ञानाधीनेति तद्विरुद्धाभेदज्ञानानुपपत्तिरिति–चेन्न, काल्पनिकभेदज्ञानस्य धर्मिप्रतियोगिभावद्वित्वावच्छिन्नज्ञाननिर्वाहकस्य तात्त्विकाभेदज्ञानप्रतिवन्धकत्वायोगात्। किंचाभेदज्ञाने न धर्मिरूपप्रतियोगिज्ञानापेक्षा तस्य निष्प्रतियोगिकवस्तुस्वरूपत्वात्, सप्रतियोगिकत्वव्यवहारस्तु निरूपकभेदसप्रतियोगिकत्वेन। अत एव–जीवस्य प्रतियोगितया ब्रह्माभेदनिरूपकत्वं तदभिन्नतया ज्ञातस्यैवेत्यन्योन्याश्रयः, धर्मिणा सहाभेदेन प्रतीतस्यैवाभेदप्रतियोगित्वात्, अन्यथा दहनस्यापि तुहिनाभेदसप्रतियोगिकत्वापत्तेरिति–निरस्तम्। भेदग्रहस्य तत्र प्रतिवन्धकत्वाच्च।

शङ्कते नन्विति। तुह्मारे मतमेंभी विम्व और ब्रह्म तथा जीव इन्होंका प्रतिविम्व और ब्रह्म इन्होंके साथ अभेद होनेपर 'यह इससे अभिन्न है' 'इसका उससे अभेद है इन दोनोंका अभेद है' इत्याकारिका प्रतीति होगी तथाच धर्मिभावधी, प्रतियोगिभावधी और द्वित्वावच्छिन्नधी भेदज्ञानके अधीन है, फलतः भेदज्ञानके न बननेसे, तद्विरुद्ध=भेदविरुद्ध जो अभेद उस अभेदके ज्ञानकी अनुपपत्ति है, इति चेन्न; क्यों ? धर्मिभाव प्रतियोगिभाव और द्वित्वावच्छिन्नका ज्ञान इन सबका निर्वाहक जो काल्पनिक भेदका ज्ञान है उस ज्ञानको तात्त्विक जो अभेदज्ञान तादृश ज्ञानके प्रति प्रतिवन्धकत्वके अयोगसे किंच, अभेदज्ञानमें धर्मिरूपप्रतियो-

गीके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं है तस्य=अभेदको निष्प्रतियोगिक वस्तुस्वरूपत्व होनेसे। और अभेदमें सप्रतियोगिकत्वका जो व्यवहार होता है वह तो अभेदका निरूपक जो भेद उस भेदके सप्रतियोगिकत्वसे है। अत एव तद्भिन्नतया=ब्रह्माभिन्नतया ज्ञात जीवको ही प्रतियोगितया=ब्रह्माभेदका निरूपकत्व है, अतः अन्योन्याश्रय है=ब्रह्माभिन्नतया ज्ञात होनेपर ब्रह्माभेदनिरूपकत्व हो सकता है, और प्रतियोगिविधया ब्रह्माभेदनिरूपकत्व होनेपर ब्रह्माभिन्नतया ज्ञान होगा, अतः अन्योन्याश्रय है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं-धर्मीके साथ अभेदरूपसे प्रतीतिको ही अभेदका प्रतियोगित्व होनेसे अन्यथा दहनकोभी तुहिनके अभेदमें सप्रतियोगिकत्वकी आपत्तिसे, यह कथन निरस्त हुआ। और तत्र=दहनतुहिनस्थलीयाभेदग्रहमें दहनतुहिनके भेदग्रहको प्रतिबन्धकत्व होनेसेभी।

'अतएव-तत्त्वमसी'त्यत्र त्वंपदवाच्यस्य विशिष्टस्य ब्रह्माभेदप्रतियोगित्वप्रसङ्गनिवारणाय, विद्यमानाभेदस्यासति प्रतिबन्धके अभेदयोग्यचित्त्वादिरूपेण प्रतीतिरभेदधीहेतुः। भेदभ्रमे तु दोषः प्रतिबन्धक इति नाभेदधीरिति परसिद्धान्तं परिकल्प्य-स्वरूपभेदपक्षे वस्तुतोऽन्योन्यप्रतियोगिकयोर्घटपटस्वरूपभेदयोरन्योन्यप्रतियोगित्वयोग्यघटपटत्वादिरूपेण प्रतीतयोरसतिप्रतिबन्धेऽन्योन्यप्रतियोगितया विशिष्टधीः धर्मभेदपक्षेऽपि विद्यमानभेदस्यासति प्रतिबन्धके भेदयोग्यनीलपीतत्वादिरूपेण प्रतीतिर्भेदहेतुः, दूरस्थवनस्पत्यादौ तु दूरादिदोषः प्रतिबन्धक इति न भेदधीरिति साम्येन समाधानं निरस्तम्; वैषम्यस्योक्तत्वात्।

अत एवेति। तत्त्वमसि (छा० ६।८।४) यहाँपर त्वंपदवाच्य जो विशिष्ट चेतन है उसको ब्रह्माभेदके प्रतियोगित्वका जो प्रसङ्ग उस प्रसङ्गके विनिवारणके लिए विद्यमान है अभेद जिसका ऐसा जो पदार्थ है उसकी प्रतिबन्धकके न होनेपर अभेदयोग्यचित्त्वादिरूपसे जो प्रतीति है वह अभेदधीकी हेतु है। और भेदभ्रम होनेपर तो दोष प्रतिबन्धक है अतः अभेदधी नहीं होती है इस रीतिसे अद्वैतीके सिद्धान्तकी कल्पनाकर स्वरूपभेद पक्षमें वस्तुतः अन्योन्यप्रतियोगिक घटपटस्वरूपभेद हैं उन दो भेदोंको अन्योन्यप्रतियोगित्वयोग्य जो घटत्वपटत्वादिरूप उस रूपसे प्रतीत होनेपर प्रतिबन्धकके न होनेपर अन्योन्यप्रतियोगिकत्वेन विशिष्ट धी होती है। धर्मभेदपक्षेऽपि=धर्मरूप भेद है इस पक्षमेंभी विद्यमान है भेद जिसका ऐसा जो पदार्थ उस पदार्थकी, प्रतिबन्धकके न होनेपर भेदयोग्य जो नीलत्व पीतत्वादिरूप उस रूपसे प्रतीति भेदधीका हेतु है और दूरस्थ वनस्पत्यादिकमें तो दूरादिरूप दोष प्रतिबन्धक है अतः भेदधी नहीं होती है, इस रीतिसे साम्यसे जो समाधान कहा है, वह निरस्त हुआ, अतएवका अर्थ दिखलाते हैं वैषम्यस्योक्तत्वात्=अभेदज्ञानमें धर्मिरूप प्रतियोगिके ज्ञानकी अपेक्षा नहीं है, अभेदको निष्प्रतियोगिकवस्तुस्वरूपत्व होनेसे एतद्रूप वैषम्यको उक्तत्व होनेसे, और भेदप्रतियोगिकत्वेन अभेदज्ञानमें भेदज्ञानकी अपेक्षा होनेपरभी कोई दोष नहीं भेदप्रतियोगिकत्वेन अभेदके मिथ्यात्वको इष्टत्व होनेसे।

ननु—यथा गौर्गवयसदृशीत्यादौ गवयादीनां गवादिभ्यो भेदः सन्नेव प्रतियोगित्वहेतुः नतु ज्ञातः; नहि गौर्गवयसदृशीति प्रत्यक्षधीरपि नियमेन गवयो गोभिन्न इति धीपूर्विकाऽनुभूयते। सुतरां शाब्दधीः; तत्रभेदवाचिशब्दाभावात्। तथा प्रकृतेऽपि। अन्यथा चैत्रस्य मैत्रपितृत्वादौ ज्ञात एव मैत्रस्य चैत्रपुत्रत्वादिज्ञानं, गवयस्य गोसादृश्ये ज्ञात एव गौर्गवयसदृशीति ज्ञानमिति सप्रतियोगिकपदार्थमात्रे अन्योन्याश्रयः स्यादिति—चेन्न; इष्टापत्तेः; अतएव सप्रतियोगित्वेन निष्प्रतियोगित्वेन च भेदसादृश्यादि दुर्वचं; सर्वत्र बाधकसत्त्वादिति अस्माकं सिद्धान्तः। यच्चूक्तं—प्रतियोगिधर्मिभेदग्रहपूर्वकत्वनियमो नानुभूयत इति तदिष्टमेव तस्यैव सप्रतियोगित्वे बाधकत्वात्। प्रत्यक्ष एव सप्रतियोगिकपदार्थग्रहे एवमन्योन्याश्रयस्यापाद्यत्वे शाब्दे भेदवाचकपदासत्त्वस्यास्मान् प्रत्यदूपणत्वात्। एवञ्च प्रतियोगिधीमात्रं न भेदधीहेतुः—तन्निर्विकल्पकादपि तदापत्तेः, किन्तु प्रतियोगित्वेन। तत्रापि नान्यं प्रति प्रतियोगित्वेन किन्तु भेदं प्रति। तथाच नान्योन्याश्रयः। नच सप्रतियोगिकसादृश्यादावेवं स्यात्, इष्टापत्तेः अभेदश्च न सप्रतियोगिक, इत्युक्तत्वाच।

शङ्कते नन्विति। जैसे 'गौर्गवयसदृशी' इत्यादिरूप जो गवानुयोगिक गवयप्रतियोगिक सादृश्यका प्रत्यक्ष है उस प्रत्यक्षमें गवयादिकोंका गवादिकोंसे भेद स्वरूपसे विद्यमान हुआ ही प्रतियोगित्वमें हेतु है, ज्ञात हुआ नहीं; 'गौर्गवयसदृशी' इत्याकारक प्रत्यक्ष ज्ञानभी नियमसे 'गवय गोसे भिन्न है' इत्याकारक ज्ञानपूर्वक अनुभूत नहीं होता है; और उक्तविध शाब्दज्ञान तो सुतराम् उक्तज्ञानपूर्वक अनुभूत नहीं होता है; तत्र=गौर्गवयसदृशी इस वाक्यमें भेदवाचक शब्दके अभावसे। अन्यथा चैत्रनिष्ठ मैत्रपितृत्वादिके ज्ञात होनेपर ही मैत्रनिष्ठ चैत्रपुत्रत्वादिका ज्ञान होगा, और गवयनिष्ठ गोसादृश्यको ज्ञात होनेपरही 'गौर्गवयसदृशी' यह ज्ञान होगा, फलतः सप्रतियोगिक पदार्थमात्रमें अन्योन्याश्रय होगा, इति चेन्न; क्यों ? इष्टापत्तेः= सप्रतियोगिकपदार्थमात्रमें अन्योन्याश्रयमें इष्टापत्ति होनेसे। अतएव सप्रतियोगित्वेन और निष्प्रतियोगित्वेन भेदसादृश्यादिक दुर्वच हैं। सर्वत्र बाधकका सत्त्व होनेसे यह हम लोगोंका सिद्धान्त है; और जो कहा है कि—प्रतियोगिधर्मिका जो भेद तादृशभेदग्रहपूर्वकत्वका नियम नहीं अनुभूत होता है सो इष्ट ही है; तस्यैव=उक्तविध नियमके अनुभवाभावको ही सप्रतियोगित्वमें बाधकत्व होनेसे। प्रत्यक्षमें ही सप्रतियोगिक पदार्थग्रहमें उक्त रीतिसे अन्योन्याश्रयका आपाद्यत्व होनेपर शब्दजन्यज्ञानमें भेदवाचकपदके असत्त्वको हम लोगोंके प्रति अदूपणत्व होनेसे। एवञ्च=ऐसा होनेपर प्रतियोगिधीमात्र भेदधीकी हेतु नहीं निर्विकल्पप्रतियोगिज्ञानसेभी भेदधीकी आपत्तिसे। किन्तु प्रतियोगित्वेन प्रतियोगिको हेतुता है तत्रापि=प्रतियोगित्वेन हेतुताके होनेपरभी अन्यके प्रति प्रतियोगित्वेन हेतुता नहीं है, किन्तु भेदके प्रति है फलतः अन्योन्याश्रय है=भेदके सिद्ध होनेपर तन्निरूपितत्वेन प्रतियोगित्वकी सिद्धि है और प्रतियोगित्वके सिद्ध होनेपर तदधीन भेदकी सिद्धि है। अतः अन्योन्याश्रय नहीं है।

नचेति। सप्रतियोगिक सादृश्यादिमें उक्त रीतिसे अन्योन्याश्रय होगा, नच=ऐसी आशङ्का नहीं करना, क्यों ? इष्टापत्ति होनेसे। और अभेद तो सप्रतियोगिक नहीं है। इस अर्थको उक्तत्व होनेसे।

यत्तु यत्र धर्मिप्रतियोगिनौ सन्निहितौ, तत्र धर्मिप्रतियोगिसद्भावयोस्तद्भेदस्य च युगपद्धीः इदमनेन सदृशमितिवत्। तथा विशेषणविशेष्यभावस्य च युगपद्धीः, इमौ सदृशावितिवत्; सर्वस्य योग्यस्य इन्द्रियसन्निकर्षेण युगपत्सर्वविषयैकज्ञानसंभवात् नहि मन्मते दण्डीति धीरपि दण्डज्ञानसाध्या। उक्तं चैतत् यत्र धर्मिप्रतियोगिनोरन्यतर-स्यासन्निधानं, तत्रापि संस्कारसचिवेन्द्रियसन्निकर्षेण एकमेव ज्ञानमुत्पद्यते, तदनेन सदृशमित्यादिवत्। अन्यथा अभेदज्ञानमपि न स्यात्। तथाचान्योन्याश्रयः। तदुक्तम्— धर्मित्वप्रतियोगित्वतद्भावा युगपद्यदि। विशेषणं विशेष्यं च तद्भावश्चैव गृह्यत। इति तन्न; प्रमेयत्वादिना घटे ज्ञातेऽपि घटाभाव इत्यप्रतीतेः घटत्वादिना घटस्य पूर्वमवश्यं ज्ञेयत्वेन युगपदेव धर्मिप्रतियोग्यादिबुद्ध्यसिद्धेः। नच—तत्र घटत्वादिज्ञानसामग्रीवि-लम्बादेव विलम्बः; तत्सत्त्वे इष्टापत्तिरिति—वाच्यम्; प्रतियोग्यविषयकाभावप्रत्ययापाद-नस्यैवमप्यपरिहारात्। नच तादृक् प्रतियोगिग्रहसामग्रीकारणम् तदपेक्षया प्रतियोगि-ग्रहस्यैव लघुत्वात्।

यत्त्विति। जहाँपर धर्मी तथा प्रतियोगी ये दोनों सन्निहित होते हैं वहाँ धर्मी तथा प्रतियोगीकी और इन दोनोंके सद्भावकी और धर्मीप्रतियोगीके भेदकी युगपद्धी होती है= इन सर्वको विषयकरनेवाला ज्ञान एकही कालमें उत्पन्न होता है जैसे कि,-यह इसके सदृश है, यह ज्ञान है, तैसे जहाँपर धर्मि तथा प्रतियोगि ये दोनों सन्निहित होते हैं वहाँपर धर्मिप्रतियोगिको तथा इन दोनोंके सद्भावोंको और विशेष्यविशेषणभावको विषयकरनेवाली युगपद्धी होती है, जैसे कि—इमौ सदृशौ यह धी है, योग्यसर्वका इन्द्रियके साथ सन्निकर्षसे युगपत् सर्वविषयक ज्ञानका सम्भव होनेसे। मेरे मतमें 'दण्डी' यह धी भी दण्डज्ञानसे साध्य नहीं है कहाभी है यह—जहाँपर धर्मी तथा प्रतियोगी इन दोनोंमेंसे अन्यतरका असन्निधान है तहाँपरभी संस्कार—सहकृत जो इन्द्रिय उस इन्द्रियके सन्निकर्षसे एक ही ज्ञान उत्पन्न होता है। तत्=वह इसके सदृश है 'इत्यादिकी तरह' अन्यथा अभेदज्ञानभी न होगा। तथाच= उक्त प्रकारको न माननेपर अभेदज्ञानमें अन्योन्याश्रय है। सो कहा है—धर्मित्व प्रतियोगित्व और इन दोनोंका सद्भाव तथा विशेष्य तथा विशेषण और इन्होंका सद्भाव युगपद्गृहीत होता है; इति यत् तत् तु न; क्यों ? प्रमेयत्ववाच्यत्वादिरूपसे घटके ज्ञात होनेपरभी 'घटाभावः' इत्याकारक प्रतीतिके न होनेसे घटत्वादिरूपसे घटको अभावज्ञानसे पूर्वमें अवश्य ज्ञेयत्व होनेसे, एककालमें ही धर्मिप्रतियोग्यादिविषयक बुद्धिकी असिद्धिसे। नचेति। तत्र= घटाभावादिग्रहणस्थलमें घटत्वादिविषयक जो ज्ञान तादृश ज्ञानकी जो सामग्री उस सामग्रीके

विलम्बसे ही विलम्ब होता है, तत्सत्त्वे, उक्त सामग्रीका सत्त्व होनेपर युगपद्ग्रहणमें इष्टापत्ति है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? प्रतियोग्यविषयक जो 'न' इत्याकारक अभावप्रत्यय उसके आपादनका ऐसा कहनेपरभी परिहार न होनेसे । तादृक्=अभावग्रहानुकूल जो प्रतियोगिग्रह तादृशप्रतियोगिग्रहकी सामग्री अभावज्ञानमें कारण है, नच=नहीं है, क्यों ? उक्त सामग्रीकी अपेक्षा सामग्रीघटक प्रतियोगिग्रहको ही लघुत्व होनेसे ।

ननु—अन्यत्वाग्रहणे प्रोक्तः कथमन्योन्यसंश्रयः । अन्यत्वं यदि सिद्धं स्यात् कथमन्योन्यसंश्रयः । इत्युभयतः पाशा रज्जुरिति—चेन्न, नहि अन्यत्वबुद्धिं व्यवहारक्षमामपि, निराकुर्मः; किन्त्वनाविद्यकत्वं नोपपद्यत इति ब्रूमः । किञ्च भेदस्य विशेष्यविशेषणभावेनैव ज्ञेयत्वात् तत्तद्भावप्रतीतेश्च, भेदप्रतीत्यनधीनतया दण्डचैत्रादौ दृष्टत्वेन भेदप्रतीतिपरम्परानवस्था स्यात् । नच, ब्रह्म जीवाभिन्नं, जगन्मिथ्येत्यादावप्यभेदादेर्विशेषणतया भेदज्ञानस्यापेक्षणीयतयाऽनवस्थापत्तेः न प्राथमिकाभेदादिधीरिति तवापि समानमिति—वाच्यम् । अविद्याकल्पितभेदेनाज्ञातेनापि विशेषणत्वाद्युपपत्तेः । नचैवं तवापि भेदभेद्ययोः स्वरूपतो भेदाभावात् , भेदस्याधिकरणानतिरेकात् , धर्मो भेद इति पक्षे तु प्रतीत्यनवस्थोद्धारेऽपि विषयानवस्थाया दुष्परिहरत्वापत्तेः । नचाविद्यकभेदपक्षेऽपि अनवस्थादिदोषः; अनुपपत्तेरलङ्कारत्वात् ।

शङ्कते नन्विति । अन्यत्वका ज्ञान न होनेपर अन्योन्याश्रय कैसे कहा है । और यदि अन्यत्व सिद्ध है तो अन्योन्याश्रय कैसे है । अतः उभयतः पाशारज्जु है, इति चेन्न; क्योंकि व्यवहारमें समर्थ ऐसी जो भेदबुद्धि है, उसकाभी हम निराकरण नहीं करते हैं किन्तु, उस भेद बुद्धिमें या तद्विषयीभूतभेदमें अनाविद्यकत्व उपपन्न नहीं होता है, यह हम कहते हैं; किञ्च भेदको विशेष्यविशेषणभावेनैव=धर्मिप्रतियोगिसंसृष्टत्वेन ही ज्ञातत्व होनेसे तद्भावप्रतीतेश्च=तयोः धर्मिप्रतियोगिनोः भावः तद्भावः धर्मि तथा प्रतियोगिका जो संसर्ग उस संसर्गकी प्रतीतिको भेदप्रतीत्यधीनत्वेन दण्डचैत्रादिमें दृष्टत्व होनेसे भेदप्रतीतिकी परम्परारूप अनवस्था होगी=दण्डका तथा चैत्रका भिन्नत्वेन ज्ञान होनेपर ही उन दोनोंके संसर्गका ज्ञान होता है, वैसे भेदका धर्मिप्रतियोगिके साथ संसृष्टत्वेनभी तभी ज्ञान बनेगा, जब कि भेदप्रतियोगिक धर्मिप्रतियोग्यनुयोगिक भेदज्ञान होगा, और योंही आगेभी संसृष्टतया भान करनेके लिए भेद माननेपर अनवस्था है । शङ्कते नचेति । ब्रह्म जीवसे अभिन्न है जगत् मिथ्या है, इत्यादिमेंभी अभेदादिमें भेदको विशेषणता होनेसे भेदज्ञानके अपेक्षणीयत्वसे अनवस्थाकी आपत्तिसे प्राथमिकाभेदादिकी धी न होगी=अभेदादिमें भेदको विशेषणता होनेसे, भेदविशिष्टत्वेन अभेदके ज्ञान विना उक्त धी नहीं बन सकती है, और भेदविशिष्टज्ञान भेदविशिष्टज्ञानान्तरकी अपेक्षा रखता है अतः अनवस्था है, अतः तुमको समान दूषण है; इति नच वाच्यम् , क्यों ? अविद्यासे कल्पित अज्ञातभेदसेभी विशेषणत्वादिका उपपत्ति होनेसे, और तुम्हारे मतमेंभी इस रीतिकी

व्यवस्था नहीं हो सकती है, भेद तथा भेद्य इन दोनोंका तुम्हारे मतमें स्वरूपसे भेद न होनेसे भेदका अधिकरणसे अतिरेक न होनेसे; और धर्म भेद है इस पक्षमें भेदज्ञानको हेतुता न माननेसे प्रतीतिको लेकर होनेवाली अनवस्थाका उद्धार होनेपरभी विषयकी अनवस्थाका दुष्परिहरत्व होनेसे। आविद्यक भेद है, इस पक्षमेंभी अनवस्थादिरूप दोष है; नच=नहीं है, क्यों? अविद्यामें अनुपपत्तिको अलङ्कारत्व होनेसे।

अतएव अभिन्नं ब्रह्मेत्यत्राभेदस्य भिन्नतया ज्ञातस्य विशेषणत्वेन तेन सह ब्रह्माभेदबोधनानुपपत्तिः, प्राचीनभेदधिया प्रतिबन्धादिति–निरस्तम्, अनिर्वचनीयभेदज्ञानस्य तात्त्विकाभेदज्ञानाप्रतिबन्धकत्वात्। किञ्च धर्मभेदपक्षे, प्रत्यक्षं किं भेदमेव गोचरयति उत वस्त्वपि। नाद्यः भेद इत्येवाप्रतीतेः। द्वितीयेऽपि किं भेदपूर्वकं वस्तु गोचरयेत्, उत वस्तुपूर्वकं भेदं, युगपद्वा उभयम्। नाद्यः भेद इत्येवाप्रतीतेः, विरम्य व्यापारायोगाच्च। अतएव न द्वितीयः न तृतीयः; वस्तुग्रहस्य भेदग्रहजनकतायाः स्थापितत्वात् नच वस्तुमात्रज्ञानानन्तरभाविना विशिष्टज्ञानेन युगपदुभयग्रहः प्रतियोगित्वादिना ज्ञानस्यैव भेदधीहेतुत्वात्, अन्यथा पञ्चमीप्रयोगाद्यनुपपत्तेः, तत्र च प्रागुक्तो दोषः। अतएव–विशिष्टधियो विशेषणज्ञानजन्यत्वमते अनयोर्भेद इति ज्ञानानन्तरमिमौ भिन्नाविति धियः सम्भवः, विशेषणज्ञानाजन्यत्वेऽपि युगपदेव उभयगोचरधियः सम्भव इति–निरस्तम्, अनयोर्भेद इत्यादौ षष्ठ्योल्लिख्यमानसम्बन्धग्रहार्थं भेदग्रहस्य पूर्वमवश्यमपेक्षणीयतया अनवस्थाया दुष्परिहरत्वात्।

अत एवेति। 'अभिन्नं ब्रह्म' यहाँपर भिन्नतया ज्ञात अभेदको विशेषणत्व होनेसे अभेदके साथ ब्रह्मके अभेदबोधनकी अनुपपत्ति है, पूर्व रहनेवाली भेदधीसे प्रतिबन्ध होनेसे यह कथन निरस्त हुआ, अनिर्वचनीयभेदज्ञानको तात्त्विकाभेदज्ञानके प्रति प्रतिबन्धकत्व न होनेसे। किञ्च, धर्मरूप भेद है, इस पक्षमें प्रत्यक्ष क्या भेदको ही विषय करता है या वस्तुकोभी विषय करता है, तहां भेदको ही विषय करता है, यह पक्ष नहीं बन सकता है, क्यों 'भेदः' इतनी ही प्रतीतिके न होनेसे। द्वितीयेऽपि=वस्तुकोभी भेदावगाहिप्रत्यक्ष विषय करता है, इस द्वितीय पक्षमेंभी क्या भेदपूर्वक वस्तुको विषय करता है, अथवा वस्तुपूर्वक भेदको विषय करता है या एक कालमें दोनोंको विषय करता है। नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों? 'भेदः' इतनी ही प्रतीतिके न होनेसे विरम्य व्यापारायोगाच्च=भेदके ग्रहणकालमें वस्तुके न ग्रहणमें बीजके अभावसे। अतएव=विरम्य व्यापाराभावसे ही वस्तुपूर्वकभेदको विषयकरता है; यह द्वितीयपक्षभी नहीं बन सकता है, न तृतीयः=एक कालमें दोनोंको विषय करता है यह तृतीयपक्ष भी ठीक नहीं, क्यों? वस्तुग्रहमें भेदग्रहजनकताका स्थायित्व होनेसे=वस्तुग्रह भेदग्रहमें हेतु है, अतः एकही कालमें दोनोंका उत्पन्न होना अयुक्त है। वस्तुमात्रका जो ज्ञान तादृश ज्ञानके पश्चात् होनेवाला जो विशिष्ट ज्ञान उस ज्ञानसे एक कालमें वस्तु तथा भेद इन

दोनोंका ग्रहण है, नच=ऐसा नहीं हो सकता है क्यों ? प्रतियोगीत्यादिरूपसे ज्ञानको ही भेदधीका हेतुत्व होनेसे अन्यथा कारणीभूतज्ञानमें पञ्चमीप्रयोगादिकी अनुपपत्ति होनेसे= कारणीभूतज्ञानका 'प्रतियोगिज्ञानात् भेदज्ञानम्' इत्याकारक पञ्चमीसे उल्लेख न होगा, आदि शब्दसे तृतीया लेनी चाहिए; और उक्त पक्षमें प्रथम अन्योन्याश्रय दोष कहा है। अत एवेति। विशिष्टधीको विशेषण ज्ञानजन्यत्व है, इस मतमें 'अनयोर्भेदः' इस ज्ञानके बाद 'इमौ भिन्नौ' इस धीका सम्भव है, और विशेषणज्ञानसे जन्यत्व न होनेपरभी एककालमें ही उभयगोचर ज्ञानका सम्भव है, यह कथन निरस्त हुआ, अतएव=शब्दका अर्थ करते हैं–'अनयोर्भेदः' इत्याकारक षष्ठीसे उल्लिख्यमान जो सम्बन्ध उस सम्बन्धके ग्रहके लिए भेदग्रहको पूर्वमें अवश्य अपेक्षणीयता होनेसे अनवस्थाका दुष्परिहरत्व होनेसे।

नच—बिम्बप्रतिबिम्बयोर्जीवब्रह्मणोश्चाभेदग्राहिप्रत्यक्षं शब्दश्च किमभेदमेव गोचरयेदित्यादिविकल्पसाम्यम्, अभेदस्य वस्तुस्वरूपत्वेनेदृग्विकल्पानवकाशात्। किञ्च भेदस्यान्योन्याभावत्वे तत्प्रतियोगिनोः स्तम्भकुम्भयोस्तादात्म्यस्याप्रामाणिकत्वेनान्योन्याभावस्याप्रामाणिकत्वं स्यात्; नचद्वैतादेरप्रामाणिकत्वे तद्विरहस्याप्रामाणिकत्वापत्तिः; अतिरेकपक्षे इष्टापत्तेः, अनतिरेकपक्षे अधिकरणप्रामाणिकत्वस्यैव प्रामाणिकत्वे तन्त्रतया प्रतियोग्यप्रामाणिकत्वेऽपि प्रामाणिकत्वोपपत्तेः। नच—अन्योन्याभावेऽपि तत्पक्षे तथाङ्गीक्रियतामिति—वाच्यम्; तस्याधिकरणरूपतायां शून्यवादाद्यापत्तेरुक्तत्वात्। यत्त्वप्रामाणिकस्य निषेधप्रतियोगित्वमित्युक्तं परैः, तन्नवारयामः किन्त्वधिकरणातिरिक्ते निषेधस्याप्रामाणिकत्वमात्रं ब्रूमः।

नचेति। बिम्ब तथा प्रतिबिम्ब इन दोनोंके अवगाहि, तथा जीव और ब्रह्म इन दोनोंके अभेदका अवगाहि प्रत्यक्ष तथा शब्द क्या अभेदको ही विषय करते हैं या वस्तुकोभी इत्यादि विकल्पोंका साम्य है; नच=विकल्पोंका साम्य नहीं है, क्यों ? अभेदको, वस्तुस्वरूपत्व होनेसे ईदृक् विकल्पके अनवकाशसे, किञ्च भेदको अन्योन्याभावत्व होनेपर तत्प्रतियोगिनोः= अन्योन्याभावके प्रतियोगी जो स्तम्भ तथा कुम्भ इन दोनोंके तादात्म्यको अप्रामाणिकत्व होनेसे, अन्योन्याभावका अप्रामाणिकत्व होगा द्वैतादिको अप्रामाणिकत्व होनेपर तद्विरहस्य= द्वैतके विरहको अप्रामाणिकत्वकी आपत्ति है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? अतिरेकपक्षे=द्वैताभावादिका ब्रह्मसे अतिरेक है इस पक्षमें उस अप्रामाणिकत्वमें इष्टापत्ति होनेसे और ब्रह्मसे अनतिरेक है, इस पक्षमें अधिकरणनिष्ठ प्रामाणिकत्वको ही उसके प्रामाणिकत्वमें तन्त्रता होनेसे, प्रतियोगीका अप्रामाणिकत्व होनेपर भी अभावके प्रामाणिकत्वकी उपपत्ति होनेसे। नचेति। अन्योन्याभावमेंभी तत्पक्षे=अधिकरणानतिरेक पक्षमें तथाङ्गीक्रियताम्=अधिकरणके प्रामाणिकत्वसे ही अन्योन्याभावका प्रामाणिकत्व अङ्गीकार करना चाहिए नच=ऐसा नहीं हो सकता है क्यों ? तस्य=अन्योन्याभावको अधिकरणरूपता होनेपर शून्यवादादिकी आपत्तिको

उक्तत्व होनेसे; अप्रामाणिकत्वको निषेधप्रतियोगित्व है यह जो परोंने कहा है, उसको हमलोग वारण नहीं करते हैं, किन्तु अधिकरणसे भिन्न होनेपर निषेधका अप्रामाणिकत्व है इतनाही हम कहते हैं ।

ननु—अत्र न कुम्भस्तम्भोभयतादात्म्यं निषेधप्रतियोगि, किन्तु स्तम्भतादात्म्यं। स्तम्भे प्रमितं कुम्भगतं निषिध्यत इति न प्रतियोग्यप्रामाणिकत्वमिति—चेन्न; तादात्म्यमात्रस्य निषेधप्रतियोगित्वे दूरस्थवनस्पत्योरिव बाधोत्तरकालमिमौ वनस्पती इतिवदिमे शुक्तिरजते इति प्रतीत्यापत्तेः । नचासन्निधानकृतो विशेषः; एतावतापि शुक्तितद्रजते इति प्रतीत्यापत्तेः । यत्त्वन्योन्याभावसंसर्गाभावयोर्लक्षणं यत्राधिकरणे प्रतियोगितावच्छेदकमारोप्य—निषेधावगमः सोऽन्योन्याभावः यत्राधिकरणे प्रतियोगिनमारोप्य निषेधावभासः स संसर्गाभाव इति तन्न; अतीन्द्रिये भेदे संसर्गाभावे च तन्मते अव्याप्तेः । शब्दजन्याभावबुद्धौ व्यभिचारेणारोपस्याभावबुद्धावहेतुत्वाच्च । किञ्च भेदे स्वेतरभेदस्य वक्तव्यतया स्ववृत्तिविरोधोऽनवस्था वा । नच ब्रह्माभेदेऽपि स्वाभेदस्य वक्तव्यतया—स्ववृत्तित्वं समानमिति—वाच्यम्। अभेदस्य स्वनिर्वाहकत्वादित्यवेहि । नच भेदे तथा भेदाधिकरणकभेदव्यवहारस्य स्वरूपेण निर्वाहे घटेऽपि तथात्वे धर्मपक्षकभेदानुपपत्तेः ।

शङ्कते नन्विति । यहाँपर कुम्भ तथा स्तम्भ इन दोनोंका तादात्म्य निषेधका प्रतियोगी नहीं है, किन्तु स्तम्भका तादात्म्य स्तम्भमें प्रमित हुआ कुम्भगतत्वेन निषिद्ध होता है । अतः प्रतियोगित्वका अप्रामाणिकत्व नहीं है, इति चेन्न; क्यों ? तादात्म्यमात्रको निषेधका प्रतियोगित्व होनेपर दूरे स्थित वनस्पतिओंमें जैसे बाधसे उत्तरकालमें 'इमौ वनस्पती' इत्याकारिका प्रतीति होती है तैसे 'इमे शुक्तिरजते' इत्याकारक निषेधकी आपत्तिसे । नचेति । असन्निधानकृत रजतमें विशेष है नच=ऐसी शङ्का नहीं करना 'इतनेसे भी शुक्तितद्रजते' इत्याकारक प्रतीतिकी आपत्तिसे । और जो अन्योन्याभावका तथा संसर्गाभावका लक्षण किया है कि 'जहाँपर अधिकरणमें प्रतियोगितावच्छेदकका आरोपकर निषेधका अवगम होता है वह अन्योन्याभाव है, और जहाँपर अधिकरणमें प्रतियोगीका आरोपकर निषेधका अवगम होता है वहाँपर यह निषेध संसर्गाभाव है, वह ठीक नहीं, क्यों ? अतीन्द्रियभेदमें और अतीन्द्रियसंसर्गाभावमें तदीय मतमें अव्याप्ति होनेसे । और शब्दजन्यअभावविषयकज्ञानमें, व्यभिचार होनेसे आरोपको अभावबुद्धिमें अहेतुत्व होनेसे । किञ्च भेदमें स्वेतरभेदको वक्तव्यत्व होनेसे 'स्ववृत्तित्वविरोध' या अनवस्था है=घटभेदमें घटभेदान्तरका स्वीकार होनेपर अनवस्था है और स्वसे ही स्वविषयक भेदव्यवहारका जनकत्व माननेपर स्वमें स्ववृत्तित्वका विरोध है । नचेति । ब्रह्मके अभेदमेंभी स्वाभेदको वक्तव्यत्व होनेसे स्ववृत्तित्व समान है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? अभेदको स्वनिर्वाहकत्व होनेसे इस रीतिसे समझ; भेदे तथा=भेदमें स्वनिर्वाहकत्वेन

अनुपपत्ति नहीं है नच, क्यों ? भेदाधिकरणकभेदव्यवहारका स्वरूपसे निर्वाह होनेपर घटमेंभी स्वरूपसे भेदव्यवहारका निर्वाह होनेपर धर्मपक्षक भेदकी अनुपपत्तिसे।

किञ्च भेदे भेदत्वमुपाधिरूपं जातिरूपं वा वाच्यम् तत्र पुनर्भेदो वाच्यः अन्यथा भेदत्वस्यान्यस्मात् भेदो न स्यात् तथाचान्योन्यवृत्त्या स्ववृत्त्यापत्तेः स्ववृत्तित्ववत्तस्यापि विरुद्धत्वात् नच—अभेदेऽप्यभेदत्वं वाच्यम्, तत्र पुनरभेदो वाच्यः, अन्यथा, तस्य स्वाभेदो न स्यादिति तत्रापि ताथात्वापत्तिः; प्रमेयत्वाभिधेयत्वादिवदन्योन्यवृत्तित्वस्याभेदे अदोषत्वे भेदेऽपि साम्यमिति—वाच्यम्; अस्माकमभेदमात्रस्याभेदत्वस्य च ब्रह्माभेदाभिन्नतया अन्योन्यमित्यस्यैवाभावेनान्योन्यवृत्तित्वस्यैवापादयितुमशक्यत्वात्। नच तर्हि घटे घटाभेदस्य जीवे जीवाभेदस्य वा जीवब्रह्माभेदत्वे वेदान्तवैयर्थ्यम्; भेदभ्रमनिवर्त्तकवृत्तेर्महावाक्यं विनानुपपत्तेरुक्तत्वात्। यत्तु प्रमेयत्वादौ प्रमितत्वादन्योन्यवृत्तिरदोषः इति, तन्न; आत्माश्रयादितत्त्वदोषेण तत्रापि प्रमितत्त्वासिद्धेः, अतएव न कश्चित् केवलान्वयी।

शङ्कते किञ्चेति। भेदमें भेदत्व उपाधिरूप या जातिरूप कहना चाहिए तत्र=भेदत्वमें पुनः भेद कहना चाहिए, अन्यथा भेदत्वका अन्यपदार्थसे भेद न होगा तथाच परस्पर वृत्तिसे स्ववृत्तित्वकी आपत्तिसे स्ववृत्तित्ववत् परस्पर वृत्तित्वकोभी विरुद्धत्व होनेसे=भेदत्व भेदमें रहता है और भेद भेदत्वमें रहता है, तथाच स्वविशिष्टको स्वमें रह जानेसे स्ववृत्तित्वकी आपत्ति है, यदि भेदत्व और भेदके बीचमें धर्मिरूपभेदसे अतिरिक्तभेद माना जाय तो अनवस्थाकी प्रसक्ति है,। शङ्कते नचेति। अभेदमेंभी अभेदत्व कहना चाहिए, तत्र=अभेदत्वमें पुनः अभेद कहना चाहिए अन्यथा तस्य=अभेदत्वका स्वके साथ अभेद न होगा, अतः तत्रापि= अभेदस्थलमेंभी तथात्वापत्तिः=स्ववृत्तित्वकी आपत्ति है, यदि यों कहोकि जैसे प्रमेयत्व तथा अभिधेयत्व ये दोनों परस्पर वृत्ति हैं तैसे अभेदत्व और अभेदभी परस्पर वृत्ति हैं अतः अभेदस्थलमें परस्परवृत्तित्वको दोषत्व नहीं है तो इस रीतिसे अदोषत्व होनेपर भेदमेंभी उक्त न्यायसे दोषाभावका साम्य है; इति नच वाच्यम्; क्यों ? हम लोगोंके मतमें अभेदमात्रको और अभेदत्वको ब्रह्मरूप अभेदके साथ अभिन्नत्व होनेसे। 'अन्योन्यम्' इसके ही अभावसे अन्योन्यवृत्तित्वको ही आपादन करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे। नचेति। तब घटमें पटके अभेदको और जीवमें जीवके अभेदको जीवब्रह्माभेदत्व होनेसे वेदान्तका वैयर्थ्य है नच= वेदान्तका वैयर्थ्य नहीं है, क्यों ? भेदभ्रमनिवर्त्तकवृत्तिकी अनुपपत्तिको महावाक्यके विना उक्तत्व होनेसे=भेदभ्रमनिवृत्तिके लिए जिस वृत्तिकी आवश्यकता है तद्धेतुत्वेन वेदान्तोंका साफल्य है यह अखण्डार्थवादमें दिखला दिया है। यत्त्विति। प्रमेयत्वादौ=प्रमेयत्व तथा अभिधेयत्व इन्होंमें अन्योन्यवृत्तित्वको प्रमितत्व होनेसे अन्योन्यवृत्तित्व दोष नहीं है,

इति यत् तत् तु न; क्यों ? आत्माश्रयादिरूप जो तत्त्वदोप=पदार्थको स्वरूपसे च्युत करनेवाला दोप उस दोपसे तत्रापि=प्रमेयत्व अभिधेयत्व इन्होंकी अन्योन्यवृत्तितामेंभी प्रमितत्वकी असिद्धिसे। अतएव कोईभी व्यक्ति केवलान्वयी=सर्ववृत्ति नहीं है।

किञ्च भेदः किं भिन्ने निविशते अभिन्ने वा, आद्ये आत्माश्रयोऽन्योन्याश्रयो वा। द्वितीये विरोधः। नच—अभेदानिर्वाच्यत्वादिकं किं तद्वति तदभाववति चैत्यादिविकल्पस्यात्रापि साम्यमिति—वाच्यम्; अभेदस्य स्वरूपत्वेन तत्र तद्विकल्पानवकाशात्, अनिर्वाच्यादावस्य विकल्पस्यानिर्वाच्यत्वप्रयोजकस्यास्माकमनुकूलत्वात्। नच भेदोऽपि स्वरूपम्, प्रागेवनिरासात्। नच—भेदः स्वाश्रयत्वयोग्ये वर्तते, योग्यताच प्रमारूपफलैकोन्नेया इति—वाच्यम्; योग्यताया भेदं विना वक्तुमशक्यत्वात्। नह्यभिन्ने कदापि तद्योग्यता धर्मान्तरस्यापि भेदमपुरस्कृत्य योग्यत्वाप्रयोजकत्वात् भेदाभेदावज्ञात्वा भ्रमप्रमारूपफलभेदस्यैवाज्ञानेन भेदयोग्यतायाः प्रमारूपफलभेदानुन्नेयत्वाच्च। 'अस्वव्याघातकैरेव जातिभिन्नैः सदुत्तरैः निरस्तं भेदमादाय स्वात्माभेदो निपीदति॥'

इत्यद्वैतसिद्धौ विशेपतो भेदखण्डनम्।

किञ्चेति। भेद क्या भेदविशिष्टमें निविष्ट होता है या भेदरहितमें आद्ये=भेदविशिष्टमें निविष्ट होता है इस आद्यपक्षमें आत्माश्रय है और अन्योन्याश्रय है=यदि स्वाधिकरणमें प्रकारीभूत भेदभी स्वरूप ही है तो आत्माश्रय है और स्वसे अतिरिक्त हुआभी यदि प्रकारीभूत भेद स्वापेक्ष है तो अन्योन्याश्रय है; जो भेद निविष्ट होता है उसीका चारों स्थलोंमें स्वशब्दसे ग्रहण है। द्वितीये=भेदरहितमें भेद निविष्ट होता है इस द्वितीयपक्षमें विरोध है=घटभेदका घटभेदशून्यमें स्वीकार होनेपर घटमेंभी घटभेदकी आपत्ति है, अतः विरोध है। शङ्कते नचेति। अभेद और अनिर्वाच्यादिक क्या अभेदविशिष्टमें और अनिर्वाच्यत्वादिविशिष्टमें निविष्ट होते हैं या अभेदरहितमें और अनिर्वाच्यादिरहितमें निविष्ट होते हैं, आद्यपक्षमें आत्माश्रयादि हैं द्वितीयपक्षमें विरोध है, इत्यादि विकल्पका इस विषयमेंभी साम्य है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? अभेदको स्वरूपता होनेसे तत्र=अभेदमें उक्त विकल्पके अनवकाशसे और अनिर्वाच्यत्वादिमें अनिर्वाच्यत्वप्रयोजक इस विकल्पको हम लोगोंको अनुकूलत्व होनेसे। भेदभी भेदवत् स्वरूप है, नच=स्वरूप नहीं हो सकता है, प्रागेव निरासात्=सापेक्षत्वादिरूप हेतुओंसे पूर्वमें ही स्वरूपपक्षके निराससे। नचेति। भेद स्वाश्रयत्वके योग्यमें रहता है और योग्यता प्रमारूप फलसे ही उन्नेय है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? योग्यताको भेदके विना कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे। क्योंकि अभिन्नमें कदापि भेदाश्रयत्वकी योग्यता नहीं है, अन्य धर्मकोभी भेदको न आगेकर योग्यत्वके प्रति अप्रयोजकत्व होनेसे। और भेद तथा अभेद इन दोनोंको न समझकर भ्रम तथा प्रमारूप जो फल उसके भेदके ही अज्ञानसे भेदकी योग्यताको प्रमारूप फलभेदसे उन्नेयत्व न होनेसेभी। स्वपक्षके अव्याघातक और जातिसे भिन्न एव-

म्भूत जो सदुत्तर तादृश सदुत्तरोंसे निरस्त जो भेद तादृशभेदको लेकर स्वात्माका अभेद सुस्थिरताको प्राप्त होता है।

इति सरलायां विशेषतो भेदखण्डनम्।

अथ विशेषखण्डनम्।

ननु—अस्माकं भेदो न स्वरूपमात्रम्, किन्त्वन्योन्याभावः, सच—वस्तुनः सविशेषाभिन्नः, ततश्चाभिन्नत्वान्नानवस्थादिः। भेदप्रतिनिधेर्विशेषस्य विद्यमानत्वान्न पर्यायत्वादिकं विशेषश्च भेदहीनेऽपि एकतरपरिशेषाभावादिनिर्वाहक इति—चेन्न; पर्यायत्वादिप्रमाजनकस्य स्वरूपातिरिक्तस्य विशेषस्याङ्गीकारे तस्यैव भेदत्वेन भेदस्य धर्मभेदोक्त्ययोगात्, विशेषस्यापि भेदः सविशेषाभिन्न एव वाच्यः। तथाचानवस्थातादवस्थ्यम्। नच वैशेषिकाभिमतविशेषवत्तस्य स्वपरनिर्वाहकत्वम्; एतादृशविशेषे मानाभावात्, ननु—विज्ञानमानन्दं ब्रह्मेत्यादिवाक्यबोध्यविज्ञानानन्दादीनां त्वन्मतेऽपि भेदस्य भेदाभेदयोः वाऽखण्डार्थकत्वेन 'एकधैवानुद्रष्टव्य' मित्यादिश्रुतिविरोधेन चाङ्गीकर्तुमशक्यतया भेदप्रतिनिधेर्विशेषस्यापर्यायत्वाद्यर्थमवश्यं स्वीकार इति अर्थापत्तिरेव मानम्, इति चेन्न; भेदे ऐकरस्यश्रुतिविरोधवत् अत्रापि तत्तादवस्थ्यात्।

अथ सरलायां विशेषखण्डनम्।

शङ्कते नन्विति। हमारे मतमें भेद स्वरूपमात्र नहीं है किन्तु अन्योन्याभावरूप है सच=वह अन्योन्याभाव तो वस्तुके साथ विशेषके सहित अभिन्न है फलतः अभिन्नत्व होनेसे अनवस्थादिरूप दोष नहीं है। और भेदका प्रतिनिधि जो विशेष उसके विद्यमानत्वसे घटभेदादिका पर्यायत्वभी नहीं है; और विशेष तो भेदहीनमेंभी एकतरके परिशेषका जो अभावादि तादृश अभावादिका निर्वाहक है (घटः) इत्याकारक जो व्यवहार उस व्यवहारसे (भेदः) इत्याकारक जो व्यवहार उस व्यवहारमें जो वैलक्षण्य उस वैलक्षण्यका निर्वाहक विशेष है; इति चेन्न; क्यों ? स्वरूपातिरिक्तस्य=घटादिका जो स्वरूप उस स्वरूपसे अतिरिक्त अपर्यायत्वादिप्रमाजनक विशेषका अङ्गीकार होनेपर तस्यैव=उस विशेषको ही भेदत्व होनेसे भेदस्य=भेदविषयक धर्मभेदोक्तिः=धर्मरूपभेद है इस उक्तिके अयोगसे। विशेषस्यापि=घटादिनिष्ठ विशेषकाभी भेदः=घटादिभेद सविशेषके साथ अभिन्नही वाच्य हैं=विशेषनियमितभेदभी विशेषान्तरवत् घटमें कहना चाहिए तथाच=घटादिप्रतियोगिकविशेषान्तरोंकी धारा माननेपर अनवस्थाका तादवस्थ्य है। नचेति। वैशेषिकाभिमतविशेषकी तरह तस्य=मदभिमतविशेषको स्वनिर्वाहकत्व तथा परनिर्वाहकत्व है, नच=ऐसा नहीं हो सकता है, क्यों ? एतादृशविशेषमें प्रमाणके अभावसे शङ्कते। नन्विति। विज्ञानमानन्दं ब्रह्म (बृ० ।३।९।२८) इत्यादि वाक्यसे बोध्य जो विज्ञान तथा आनन्दादिक हैं उन्होंके परस्परभेदको या भेदाभेद इन दोनोंको

वेदान्तका अखण्डार्थकत्व होनेसे तथा एकधैवानुद्रष्टव्यम् (बृ०४।४।२०) इस श्रुतिके साथ विरोधसे तुह्मारे मतमेंभी अङ्गीकार करनेलिए अशक्यत्व होनेसे भेदका प्रतिनिधि जो विशेष तादृश विशेषका विज्ञान आनन्दादिकोंके अपर्यायत्वादिके लिए अवश्य स्वीकार है इस रीतिसे उक्तविधविशेषमें अर्थापत्ति ही प्रमाण है; इतिचेन्न; क्यों ? जैसे भेदपक्षमें ऐकरस्यश्रुतिका विरोध है तैसे अत्रापि=विशेषपक्षमेंभी उस विरोधका तादवस्थ्य होनेसे।

लक्ष्यार्थभेदेऽपि वाच्यार्थभेदेनापर्यायत्वस्य व्यावर्त्यभेदाद्वैयर्थ्यस्य चान्यथैवोपपत्तेः। किंच तवापि ज्ञानानन्दत्वादिनिमित्तभेदादेवापर्यायत्वमस्तु किं विशेषेण ? नच एवं धर्मानिति श्रुत्या तयोरपि भेदनिषेधात् नैवमिति–वाच्यम्, तर्हि विशेषस्यापि आश्रितत्वेन धर्मतयाऽस्यापि भेदनिषेधात्तेनाप्यनुपपत्तिः। नच–ज्ञानत्वानन्दत्वयोरर्थप्रकाशत्वनिरुपाधिकेष्टरूपाश्रयविशेष आवश्यक इति–वाच्यम्; ज्ञानत्वानन्दत्वयोर्जातिरूपत्वेन उक्तरूपत्वाभावात्। नचाकाशशब्दाश्रयशब्दयोः प्रवृत्तिनिमित्ताभेदेन पर्यायत्वापत्तिः; तत्परिहाराय विशेषो वाच्य इति वाच्यम्–पर्यायत्वेऽपि सहप्रयोगस्य व्याख्यानव्याख्येयभावादिनाप्युपपत्तेः। नचैवं ज्ञानानन्दयोरेकतरपरिशेषेण मोक्षे आनन्दप्रकाशो न स्यादिति–वाच्यम्; तयोर्भेदाभावेन एकतरत्वस्यैवाभावात्, द्वयोर्वचने तद्विधानात्।

लक्ष्यार्थका अभेद होनेपरभी वाच्यार्थके भेदसे अपर्यायत्वको अन्यथैव उपपन्न होनेसे और व्यावर्त्योंके भेदसे विज्ञानादि पदोंके अवैयर्थ्यको अन्यथैव उपपन्न होनेसे 'किंच' तुह्मारे मतमेंभी ज्ञानत्व आनन्दत्वादिरूप निमित्तोंके भेदसे ही अपर्यायत्व रहो विशेषसे क्या प्रयोजन है। नचेति। एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविनश्यति (क० ४।१४) इस श्रुतिसे तयोरपि= ज्ञानत्व तथा आनन्दत्व इन दोनोंकेभी भेदके निषेधसे नैवम्=निमित्तभेदसे अपर्यायत्वकी उपपत्ति नहीं है इति नच वाच्यम् क्योंकि तवतो विशेषकोभी आश्रितत्व होनेसे धर्मत्व है और धर्मत्व होनेसे इसकेभी भेदके निषेधसे विशेषसेभी अपर्यायत्वकी उपपत्ति नहीं है शङ्कते नचेति–अर्थप्रकाशत्वरूप तथा निरुपाधिक इष्टत्वरूप जो ज्ञानत्व तथा आनन्दत्व है इन दोनोंका जो अर्थ प्रकाशरूप तथा निरुपाधिक इष्टरूप आश्रय है तादृश आश्रयप्रतियोगिक विशेष आवश्यक है इतिनच वाच्यम् क्यों ? ज्ञानत्व तथा आनन्दत्व इन दोनोंको जातिरूपत्व होनेसे त्वदुक्तरूपत्वके अभावसे। नचेति आकाशशब्द तथा शब्दाश्रयशब्द इन दोनोंको प्रवृत्तिनिमित्तके अभेदसे पर्यायत्वकी आपत्ति है उस पर्यायत्वकी आपत्तिके परिहारकेलिए विशेषकरना चाहिए इति न च वाच्यम् क्यों ? पर्यायत्व होनेपरभी सह प्रयोगको व्याख्यान-व्याख्येयभावादिसेभी उपपन्न होनेसे=आकाशं शब्दाश्रयः इस वाक्यमें शब्दाश्रयः यह व्याख्यान है और आकाशम् यह व्याख्येय है और स्वसमानार्थकत्वका बोधक जो पद है उसको व्याख्यान कहते हैं तथाच आकाशपदं शब्दाश्रयपदार्थबोधकम् ऐसा वाक्यार्थबोध होता है। और आकाशपदके अर्थको जो नहीं जानता है और शब्दाश्रयपदके अर्थको जानता है

उसके प्रति यह व्याख्यान युक्त होता है। नचेति। ऐसा होनेपर ज्ञान तथा आनन्द इन दोनोंमें एकतरका परिशेष होनेसे मोक्षमें आनन्दका प्रकाश न होगा, इति नच वाच्यम् क्यों ? ज्ञान तथा आनन्द इन दोनोंमें भेदके अभावसे एकतरत्वके ही अयोगसे दोके वचनमें तरप् प्रत्ययका विधान होनेसे।

एतेन—शोधिततत्पदार्थादैक्यस्य न भेदः, नापि भेदाभेदौ, किंत्वत्यन्ताभेदः; एवञ्च विशेपानङ्गीकारे स्वप्रकाशचैतन्यभाने ऐक्याभावापत्तिः, तत्प्रकाशस्य भेदभ्रमाविरोधित्वेऽप्यैक्यप्रकाशस्य तद्विरोधः तस्य निरपेक्षत्वेऽपि ऐक्यस्य सापेक्षत्वं च नोपपद्य इति—निरस्तम्; आवारकाज्ञानकल्पितांशमादाय सर्वस्योपपत्तेः। नच—एकस्या एव शुक्तेरावृतानावृतत्वे शुक्त्यंशभेद एवं स्यादिति—वाच्यम्; तदंशकल्पकस्य फलस्याभावात्। ननु—एवं धर्मानितिश्रुतिरस्तु मानम्; अत्रहि ब्रह्मधर्मानुक्त्वा भेदो निषिध्यते। नच भेदप्रतिनिधिरभावे धर्मधर्मिभावो धर्माणामनेकत्वं च युक्तमिति—चेन्न, धर्मानित्यस्य निषेधानुवादत्वेन धर्मत्वानेकत्वादौ तात्पर्याभावात्। नच श्रुतितोऽन्यतो ब्रह्मधर्माः प्राप्ताः आविद्यकमात्रस्य साक्षिसिद्धतया प्राप्तेः।

एतेनेति। शोधित जो तत्पदार्थ तादृश तत्पदार्थसे ऐक्यका भेद नहीं है, और भेद तथा अभेद ये दोनोंभी नहीं हैं, किन्तु अत्यन्त अभेद है, एवञ्च विशेपका अङ्गीकार न होनेपर स्वप्रकाशचैतन्यका भान होनेपर ऐक्यके अभानकी आपत्ति है—तत्प्रकाशस्य=चैतन्यप्रकाशको भेदभ्रमका विरोधित्व न होनेपरभी ऐक्यप्रकाशका भेदभ्रमके साथ विरोध है, यह न उपपन्न होगा, और तस्य=स्वप्रकाशचैतन्यको निरपेक्षत्व होनेपरभी ऐक्यको सापेक्षत्व है यह न उपपन्न होगा, यह कथन निरस्त हुआ, एतेन शब्दका अर्थ करते हैं—आवरणकरनेवाला जो अज्ञान उस अज्ञानसे कल्पित जो अंश उस अंशको लेकर सर्वकी उपपत्ति होनेसे=चिद्रूपसे आनन्दरूपका अनादि कल्पित भेद है उस भेदसे चिदंशका ज्ञान होनेपरभी आनन्दरूप ऐक्यका ज्ञान नहीं है और आनन्दरूप ऐक्यके ज्ञानको ही अधिष्ठानज्ञानत्व होनेसे सकल भ्रमका विरोधित्व है। और चिद्रूपको निरपेक्षत्व होनेपरभी भेदाभाव स्वरूप एकत्वरूपसे कल्पितभेदप्रयुक्त सापेक्षत्व है। नचेति। एकही शुक्तिको आवृतत्व तथा अनावृतत्व होनेपर शुक्तिमें अंशभेद होगा, इति नच वाच्यम् क्यों ? शुक्तिमें अंशकल्पकफलके अभावसे=चिद्रूपका ज्ञान होनेपरभी 'परिपूर्णानन्दं न जानामि' इत्याकारक व्यवहारसे जैसे चेतनमें अंशभेदकी कल्पना की जाती है तैसे शुक्तिमें अंशभेदकी कल्पनामें कोई हेतु नहीं। शङ्कते नन्विति। 'एवं धर्मान्पृथक् पश्यन्' यह श्रुति विशेपमें प्रमाण रहो, अत्रहि=इस श्रुतिमें धर्मोंको कहकर भेदका निपेध किया जाता है और भेदका प्रतिनिधि जो विशेप उस विशेपका अभाव होनेपर धर्मधर्मिभाव या धर्मोंका अनेकत्व युक्त नहीं है, इति चेन्न; क्यों ? धर्मान् इस निपेधके लिए अनुवादत्व होनेसे धर्मत्वमें और धर्मोंके अनेकत्वादिमें तात्पर्यके अभावसे। नचेति। श्रुतिसे अन्य जो प्रमाण तादृश प्रमाणसे

धर्मोंकी अप्राप्ति है; नच=अप्राप्ति नहीं है, क्यों ? आविद्यकमात्रको साक्षिसिद्धत्वेन प्राप्त होनेसे=श्रुतिसे भिन्न साक्षिसे धर्मोंकी प्राप्ति है।

ननु—गुणगुणिनोरभेदपक्षे घटोपलम्भे शुक्लाद्यनुपलम्भार्थं भेदाभेदपक्षे तयोरविरोधार्थं अत्यन्तभेदपक्षेऽपि समवायः सम्बन्धः सत्ता सती, अन्त्यविशेषो व्यावृत्तः, कालः सदास्ति, देशः सर्वत्रास्ति—इत्यबाधितव्यवहारार्थं विशेषोऽङ्गीकार्यः अभावादावप्यस्तित्वादिर्नाभावादितो भिन्नः गुणादिष्वनन्तर्भावेन षडेव पदार्था इति नियमभङ्गापत्तेः, अनियमपक्षेऽप्यस्तित्वेऽप्यस्तित्वान्तरमित्यनवस्थापत्तेः; तत्रापि सोऽङ्गीकार्य इति—चेन्न; स्वभावविशेषादेव सर्वस्योपपत्तेः। नच—तर्हिविशेषस्याङ्गीकारेण मन्मतप्रवेश इति—इति—वाच्यम्; तत्तदसाधारणस्वरूपस्यैव स्वभावविशेषशब्दार्थत्वेन त्वदुक्तविशेषानुक्तेः, तत्तदसाधारणरूपेण समवायादेः स्वनिर्वाहकत्वात्। अतएव—स्वनिर्वाहकत्वं हि स्वकर्मनिर्वहणकर्तृत्वम्, तच्चैकस्मिन्विरुद्धमिति तदुपपादनायापि विशेषाङ्गीकार इति निरस्तम् स्वनिर्वाहकशब्दस्य स्वेतरानपेक्षव्यवहारविषयत्वमात्रार्थकत्वात्, अन्यथा विशेषोऽपि अनवस्थाभिया वस्त्वभिन्न इति तत्राङ्गीकारेण तद्दूषणापातात् स्वरूपभेदपक्षोक्तैकतरपरिशेषादिदूषणतादवस्थ्यापत्तेश्च।

शङ्कते नन्विति। गुण तथा गुणी इन दोनोंका अभेद है इस पक्षमें घटका उपलम्भ होनेपर शुक्लादिरूप गुणोंके अनुपलम्भके लिए विशेष अङ्गीकार्य्य है, 'गुण तथा गुणी' इन दोनोंका भेदाभेद है इस पक्षमें तयोः=भेद तथा अभेद इन दोनोंके अविरोधके लिए विशेष अङ्गीकार्य है; अत्यन्तभेदपक्षेऽपि=गुण तथा गुणी इन दोनोंका अत्यन्त भेद है, इस पक्षमेंभी समवाय सम्बन्ध है, सत्ता सती है अन्त्यविशेष व्यावर्त्तक है काल सर्वकालविशिष्ट है, देश सर्वदेश विशिष्ट है इत्याकारक जो अबाधित व्यवहार होता है उसके लिए विशेष अङ्गीकार्य है, और अभावादिमें रहनेवाला अस्तित्वादिभी अभावादिकोंसे भिन्न नहीं है, क्योंकि अस्तित्वादिका गुणादिकमें अन्तर्भाव न होनेसे 'द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायरूप' षट् ही पदार्थ हैं इस नियमके भङ्गकी आपत्तिसे। अनियमपक्षेऽपि=षट् ही पदार्थ हैं इत्याकारक नियम जिस पक्षमें नहीं है उस पक्षमेंभी अस्तित्वमेंभी अस्तित्वान्तर है ऐसा अङ्गीकार होनेपर अनवस्थाकी आपत्तिसे तत्रापि=अस्तित्वमेंभी वह विशेष अङ्गीकरणीय है, इति चेन्न; क्यों ? स्वभावविशेषसे ही उक्त सर्वकी उपपत्ति होनेसे। नचेति। तर्हि=तब स्वभावविशेष शब्दसे विशेषका अङ्गीकार होनेसे मेरे मतमें तुह्मारा प्रवेश है, इति नच वाच्यम् क्यों ? तिस तिस पदार्थके असाधारणस्वरूपको ही स्वभावविशेष शब्दका अर्थत्व होनेसे त्वदुक्तविशेषकी उक्ति न होनेसे, तिस तिस असाधारणस्वरूपसे समवायादिको स्वनिर्वाहकत्व होनेसे=विशेषके विना ही स्वविशेष्यप्रमामें विशेषणत्व होनेसे। अतएवेति। अतएव=विशेषके अङ्गीकारसे ही स्वकर्मक जो निर्वहण तादृश—निर्वहणकर्तृत्व स्वनिर्वाहकत्व है और वह तो एकमें विरुद्ध है,

अतः तदुपपादनम्—स्वनिर्वाहकत्वके उपपादनके लिएभी विशेषका अङ्गीकार है यह कथन निरस्त हुआ अतएव शब्दका अर्थ करते हैं—स्वनिर्वाहक शब्दको स्वेतरानपेक्ष जो व्यवहार तादृश व्यवहारविषयत्वमात्रार्थकत्व होनेसे। अन्यथा विशेषभी विशेषान्तरके विना ही अनवस्थाके भयसे वस्तुके साथ अभिन्न है, ऐसा तुमको अङ्गीकार होनेसे, तद्दूषणापातात्=स्वनिर्वाहकत्वकी अनुपपत्तिरूप दूषणके आपातसे। और स्वरूपरूप भेद है इस पक्षमें उक्त जो एकतरपरिशेषादिरूप दोष उसके तादवस्थ्यकी आपत्तिसेभी।

नच—अन्त्यविशेषवदस्य धर्मिग्राहकमानेन तादृक्स्वभावतया सिद्धेः पर्यनुयोगायोग इति—वाच्यम्। दृष्टान्त इव दार्ष्टान्तिके स्वरूपातिरेकस्य त्वयैवानङ्गीकारेण वैषम्यात्। यत्तु यत्रैव भेदाभावोऽभेदकार्यं च प्रमितं, तत्रैव विशेषः कल्प्यते, नतु प्रतिभेदे घटपटादौ विशेषमादाय भेदत्यागः, नहि सोमाभावे पूतीक इति तल्लाभेऽपि स इति तन्न; मुख्यत्वनियामकस्य तत्रेवात्राभावात्, विशेषभेदयोरुभयोरपि स्वरूपपर्यवसन्नत्वेन त्वद्वाग्भङ्ग्यनवकाशात्। किंच भेदः स्वयमेव स्वकार्यं करोतु। अभेदकार्यार्थं तत्प्रतिनिधिरस्त्वित्याद्यापत्तेश्च। नचानन्दादावभेदवत् भेदस्य बोधाभावः अलौकिकस्थले द्वयोः साम्यात्।

नचेति। अन्त्यविशेषकी तरह अस्य=मदभिप्रेतविशेषको धर्मिग्राहकप्रमाणसे तादृक्स्वभावतया=स्वनिर्वाहकस्वभावत्त्वेन सिद्ध होनेसे पर्य्यनुयोगका अयोग है, इति नच वाच्यम्, क्यों? दृष्टान्तकी तरह दार्ष्टान्तमें स्वरूपातिरेकका तुमसे ही अङ्गीकार न होनेसे वैषम्यसे=वैशेषिकसम्मत अन्त्यविशेष जैसे अतिरिक्त माना जाता है तैसे तुम अपने विशेषको वस्तुके स्वरूपसे अतिरिक्त नहीं मानते हो अतः वैषम्य है, उस वैषम्यसे। यत्रैव=जहाँपर विशेषका अभाव है और अभेदकार्यप्रमित है वहींपर विशेष कल्पित होता है और प्रमित है भेद जिन्होंमें ऐसे जो घटपटादि उन घटपटादिमें विशेषको लेकर भेदका त्याग नहीं होता है क्योंकि सोमलताका अभाव होनेपर पूतीक लता तत्प्रतिनिधित्वेन ली जाती है अतः तल्लाभेऽपि=सोमलताका लाभ होनेपरभी सः=पूतीक नहीं लिया जाता है, इति यत् तत् तु न, क्यों? तत्रैव=सोमकी नांई अत्र=विशेषमें मुख्यत्वके नियामकके अभावसे। और विशेष तथा भेद इन दोनोंको स्वरूपमें पर्य्यवसन्नत्व होनेसे तुम्हारी वाग्भङ्गीके अनवकाशसे। किञ्चेति। भेद स्वयं ही स्वकार्य करे, अभेदकार्यके लिए अभेदका प्रतिनिधि विशेष रहो इत्यादिकी आपत्तिसे नचेति। आनन्दादिमें अभेदकी तरह भेदके बोधका अभाव भेदके प्रतिनिधित्वमें बाधक है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना; क्यों? अलौकिकस्थले=ज्ञानपूर्णानन्दादिस्थलमें द्वयोः=भेद तथा विशेष इन दोनोंका साम्य होनेसे=अप्रत्यक्षप्रयुक्त कल्पनार्हत्वेन साम्य होनेसे।

ननु—अनुमानमत्र मानम्, तथाहि ब्रह्मस्वरूपभूतयोर्विज्ञानानन्दयोर्ब्रह्माभेदयोश्च एकतरपरिशेषाभावः प्रमेयत्वादेः स्वाश्रितत्वं वा भेदान्यनियम्यम् भेदानियम्यत्वे सति नि-

यम्यत्वात् यत् यदनियम्यत्वे सति नियम्यम्, तत् तदन्यनियम्यम्। यथा सम्मतम् ब्रह्मस्वरूपभूतं विज्ञानानन्दादिकं वा, भेदान्यैकतरापरिशेपनिर्वाहकवत्, भेदहीनत्वे सत्याश्रयाश्रयिभावरूपनिर्वाह्यवत्त्वात्, यथा सम्मतमित्यादिकमिति चेन्न; त्वदभिमतविशेपादन्यस्यैवाविद्यादेः सर्वत्र नियामकत्वसम्भवेनार्थान्तरात्, आविद्यकभेदनियम्यत्वेन बाधादसिद्धेश्च।

शङ्कते नन्विति। अत्र=प्रस्तुतविपयमें अनुमान प्रमाण है, तथाहि ब्रह्मस्वरूपभूत जो विज्ञान तथा आनन्द है, इन दोनोंमें और ब्रह्म तथा अभेद इन दोनोंमें एकतरके परिशेपका जो अभाव है, वह या प्रमेयत्वादिनिष्ठ जो स्वाश्रितत्वादिक है वह, भेदसे भिन्न जो पदार्थ उससे नियम्य है भेदसे नियम्य न होकर नियम्यत्व होनेसे, जो जिससे नियम्य न होकर नियम्य है वह उससे अन्यसे नियम्य है जैसे सम्मत। अथवा ब्रह्मस्वरूपभूतविज्ञानानन्दादिक भेदसे अन्य जो एकतरके परिशेपका निर्वाहक तादृशनिर्वाहकवत् है भेदहीनत्वके होते हुए एकतरका परिशेपरूप जो निर्वाह्य तादृश निर्वाह्यवत्त्व होनेसे, जो यद्हीनत्वविशिष्टहोकर यन्निर्वाह्यवत् है वह तदन्यनिर्वाहकवत् है, जैसे सम्मत; अथवा स्वाश्रितप्रमेयत्वादिक भेदसे अन्य जो आश्रयाश्रयिभावका निर्वाहक तादृशनिर्वाहकवत् है, भेदहीनत्वविशिष्ट आश्रयाश्रयिभावरूपनिर्वाहकत्व होनेसे यथासम्मत, इत्यादिक अनुमान प्रमाण हैं इति चेन्न; क्यों? त्वदभिमत जो विशेप उस विशेपसे भिन्न जो अविद्या तथा अविद्यासे कल्पित धर्मधर्मिभावादिक हैं उन्हींको ही सर्वत्र नियामकत्वका सम्भव होनेसे अर्थान्तरहोनेसे और आविद्यक जो भेद तादृशभेदनियम्यत्व होनेसे बाध है और बाधसे असिद्धि होनेसेभी।

ननु—तथापि प्रत्यक्षमत्र मानम् तथाहि—तन्तुपटादिबुद्धीनां भिन्नघटादिबुद्धितो वैलक्षण्यं तावदनुभूयते, तच्च न तावत्सम्बन्धविपयत्वेन; कुण्डवदरादिबुद्धितो वैलक्षण्यानुभवात्, नापि संयोगान्यसम्बन्धविपयत्वेन घटतज्ज्ञानतदभावबुद्धितोऽपि वैलक्षण्यानुभवात् नापि स्वरूपप्रत्यासत्तिसंयोगान्यसम्बन्धविपयत्वेन; घटतद्धर्मिकान्योन्याभावबुद्धेर्घटपटादिबुद्धितो वैलक्षण्याभावापातात्, नाप्ययुतसिद्धिविपयत्वेन आश्रयाश्रयिभावनियमो ह्ययुतसिद्धिः। तत्र च तदानींतन आश्रयाश्रयिभावः कुण्डवदरादावपि भाति, नियमस्तु न तन्तुपटादिबुद्धावपि। नहि तन्तुपटादिधीप्रत्यक्षा अनयोः सम्बन्धनाशो वा, विभागो वा, न भविष्यतीत्याकारा न वा कुण्डवदरादिधीस्तयोः सम्बन्धनाशो वा, विभागो वा भविष्यतीत्याकारिका नापि समवायविपयत्वेन, उक्तन्यायेन सम्बन्धनित्यत्वस्य सम्बन्ध्ययुतसिद्धत्वस्य वा तत्रास्फुरणात् तस्मादभेदविपयत्वेनैव वैलक्षण्यं वाच्यम्; अयं घटः गजादिकं सेना पत्रमेव ताटङ्क इत्यादौ पुरोवर्त्तिना घटादेरिवातानवितानात्मकास्तन्तव एव पटः शुक्लपट इत्यादावपि तन्त्वादिना पटस्याभेदप्रतीतेः।

शङ्कते नन्विति। तोभी अत्र=विशेपमें प्रत्यक्ष प्रमाण है तन्तुपटादिबुद्धीनाम्='तंतुः पटः' इत्यादि बुद्धिओंका भिन्नघटादिबुद्धितः='घटः पटभिन्नः' इत्यादिबुद्धिसे वैलक्षण्य

अनुभूत होता है तत्र=वह वैलक्षण्य सम्बन्धविषयकत्वेन नहीं है, कुण्डबदरादिकी बुद्धिसे वैलक्षण्यका अनुभव होनेसे। और संयोगान्यसम्बन्धविषयत्वेनभी यह वैलक्षण्य नहीं हो सकता है, घटतज्ज्ञानतदभावबुद्धितोऽपि='घटः' इत्याकारक बुद्धिसे और ज्ञातः इत्याकारक बुद्धिसे और प्रतियोगितासम्बन्धेन अभाववान् इत्याकारकबुद्धिसेभी वैलक्षण्यका अनुभवहोनेसे तैसे स्वरूपसम्बन्ध और संयोग तदुभयान्यसम्बन्धविषयत्वेनभी वैलक्षण्य नहीं है, घटतद्धर्मिकान्योन्याभावबुद्धेः=घट और घटधर्मिकान्योन्याभावबुद्धिका घटपटादिकी बुद्धिसे वैलक्षण्याभावके आपातसे=इसपङ्क्तिका लघुचन्द्रिकामें ऐसा अर्थ किया है कि-तद्धर्मिक अन्योन्याभाव है, जिस कपालादिका उस कपालादिका नाम है-तद्धर्मिकान्योन्याभाव उस तद्धर्मिकान्योन्याभावकी=कपालकी जो घटमें बुद्धि है-घटः कपालद्वयम् इत्याकारिका बुद्धि है उसबुद्धिका घटपटादिबुद्धितः=घटपटादिमें घटत्वपटत्वादिबुद्धिसे वैलक्षण्याभावापातात्=घटादिमें घटत्वादिके समवायको विषयकरनेवाली जो बुद्धि है उसबुद्धिसे 'घटः कपालद्वयम्' इत्याकारकबुद्धिमें जो सम्बन्धांशमें वैलक्षण्यानुभूत होता है वह न होगा, दोनोंमें समवायविषयकत्वका अविशेष होनेसे। और अयुतसिद्धिविषयत्वेनभी वैलक्षण्य नहीं हो सकता है क्योंकि आश्रयाश्रयिभावका जो नियम है वह अयुतसिद्धि है तत्र च-तथाभूत अयुतसिद्धिके होनेपर तदानींतन=कोईकालमें आश्रयाश्रयिभाव कुण्डबदरादिमेंभी प्रतीत होता है और नियम तो तन्तुपटादिमेंभी नहीं है। तन्तुपटके सम्बन्धका नाश न होगा, या इन दोनोंका विभाग न होगा, इत्याकारा तन्तुपटादिकी धी प्रत्यक्ष नहीं है, तथा तयोः=कुण्ड तथा बदर इन दोनोंके सम्बन्धका नाश होगा या इन दोनोंका विभाग होगा, इत्याकारिका कुण्डबदरादिकी धी भी प्रत्यक्ष नहीं होती है। समवायविषयत्वेनभी वैलक्षण्य नहीं हो सकता है उक्तरीतिसे सम्बन्धके नित्यत्वका या सम्बन्धिओंके अयुतसिद्धत्वका तत्र=उसबुद्धिमें स्फुरण न होनेसे। तस्मात् अभेदविषयत्व नहीं 'तन्तुः पटः' इत्यादिमें वैलक्षण्य कहना चाहिए 'अयं घटः' 'गजादिकं सेना' 'पत्रमेव ताटङ्कः' इत्यादिस्थलोमें जैसे पुरोवर्त्तिके साथमें घटादिका अभेद प्रतीत होता है तैसे आतानवितानात्मक तन्तु ही पट है, 'शुक्ल पट है' इत्यादिमेंभी तन्त्वादिके साथ पटके अभेदकी प्रतीतिसे।

नच-अत्र पटत्वशुक्लत्वयोरेकस्थत्वमेव भातीति-वाच्यम्; पटशुक्लयोरैक्यस्यापि तत्रान्तर्गतेः, अन्यथा काप्यभेदो न स्यात् घटः पटो न इतिधीश्च भेदविषया न स्यात्। दण्डी चैत्र इत्यादावपि दण्डिना चैत्रस्याभेदो भात्येव। नच शुक्लः पट इत्यत्र शुक्लवानेव इति प्रतीयत इति-वाच्यम्; शुक्लं रूपमित्यत्र यत् शुक्लं तस्यैवेह प्रतीतेः। अन्यथेहापि दण्डीतिवत् शुक्लीति स्यात्। मतुब्लोपादिकल्पनं शब्दविषयकव्यवहारे नतु प्रतीतौ। पटस्य शौक्ल्यमित्यादिधीर्न भेदविषया किन्तु सम्बन्धविषया सती सत्तेत्यादिवत् भेदाभावेऽपि उपपन्ना च पटस्य तन्त्वन्यत्वे च गुरुत्वद्वयापत्तिः।

नचेति। अत्र='शुक्लः पटः' यहाँपर पटत्व तथा शुक्लत्व इन दोनोंका एकस्थत्वमेव=एकधर्मीमें वैशिष्ट्य ही प्रतीत होता है, इति नच वाच्यम्, क्यों? शुक्ल तथा पट इन दोनोंके अन्तर्गतिकाभी उक्तस्थलमें भान होनेसे, अन्यथा कहींपरभी अभेद न होगा,=नञ्के विना जहाँ अभेद प्रतीत होता है वहींपर वाक्यमें नञ्का सत्त्व होनेपर भेद प्रतीत होता है अतएव भूतले घटो न इत्यादिमें भेदका भान नहीं होता है क्योंकि नञ्के विना यहाँ अभेद नहीं प्रतीत होता है। इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं–घटः पटो न यहभी भेदविषया न होगी='घटः पटः' यह भी यदि अभेदविषया न होगी तो उक्त भी भेदविषया न होगी। ननु–उक्त नियममें व्यभिचार है–दण्डी चैत्रः यहाँपर अभेदके न प्रतीतहोनेपरभी 'न दण्डी चैत्रः' यहाँपर भेदका भान होनेसे तहाँ कहते हैं, दण्डीति। दण्डी चैत्रः इत्यादिमें दण्डीके साथ चैत्रका अभेद प्रतीत ही होता है। नचेति। 'शुक्लः पटः' यहाँपर शुक्लवान् ही प्रतीत होता है इति नच वाच्यम् क्यों? शुक्लं रूपम् यहाँपर जो शुक्ल है उसकी ही यहाँपर प्रतीति होनेसे, अन्यथा उक्तशुक्लकी ही प्रतीति न होनेपर 'दण्डी' इसकी तरह शुक्ली इत्याकारक भान होगा, और मतुप्के लोपादिका जो कल्पन है वह शब्दविषयक व्यवहारमें है न कि प्रतीतिमें। पटका शौक्ल्य है। इत्यादि भी भेदविषया नहीं है किन्तु सम्बन्धविषया है और शुक्ल तथा पट इन दोनोंका भेद न होनेपरभी 'सत्ता सती' 'घटत्वं सत्' इत्यादिवत् उपपन्ना है। और पटको तन्तुओंसे भिन्नत्व होनेपर गुरुत्वद्वयकी आपत्ति है=आधसेर तन्तुओंसे बने हुए पटको तोलनेपर सेरभर गुरुत्व होना चाहिए–आधासेर तन्तुओंका और आधासेर पटका।

तन्तुमति पटवृत्तिश्च न स्यात् मूर्त्तानां समानदेशताविरोधात् व्यवहारार्थक्रियाभेदादिकं तु पत्रताटङ्कादिवद्युक्तम्। तस्मात्तन्तुपटादिबुद्धिरभेदविषयैव। यदि चैवं केवलाभेदविषया तर्हि सामानाधिकरण्यव्यवहारं न जनयेत्; घटः कलशः इत्याद्यव्यवहारात्। तेन ज्ञायतेऽधिकोऽप्यस्य विषयोऽस्ति। नचायं भेदः घटः न शुक्लः इत्युल्लेखापातात्। भेदाभेदविरोधाय विशेषस्यावश्यकत्वाच्च। तस्माद्योऽधिको विषयः स विशेष इति–चेन्न; सत्यप्यभेदे काल्पनिकभेदमादाय तथाव्यवहारोपपत्त्या विशेषस्यासिद्धेः नच घटो न शुक्लः इति प्रतीत्यापत्तिः; फलबलेन काल्पनिकभेदस्य सामानाधिकरण्यादिव्यवहारमात्रनिर्वाहकत्वकल्पनेन विपरीतोल्लेखनं प्रत्यहेतुत्वात्। तस्मादेवं विशेषोऽयं न मानविषयः सखे। विषादं जहि मत्सिद्धाविद्यया सर्वसङ्गतिः।

इत्यद्वैतसिद्धौ विशेषखण्डनम्।

और तन्तुवाले देशमें पटकी वृत्ति न होगी मूर्त्तोंमें समानदेशताका विरोध होनेसे=अनेकमूर्त्तपदार्थ एककालावच्छेदेन एकदेशमें नहीं रह सकते हैं। और 'इमे तन्तवः' 'अयं पटः' इत्यादिरूपव्यवहार और पटजनकत्व अङ्गावरणकर्तृत्वादिरूप जो अर्थक्रिया=स्वोचितकार्य इन्होंके भेदादिक तो पत्रताटङ्कादिकी तरह युक्त है=पत्र तथा ताटङ्क इन्होंका अभेद

स्पष्ट है, फिरभी व्यवहारमें और अर्थक्रियामें भेद है तद्वत्, चाकचिक्यचञ्चरललितविद्युल्लतावत् कमनीयकनकनिर्मितकर्णाभरणका नाम ताटङ्क है,। तस्मात् 'तन्तु पटः' इत्यादिबुद्धि अभेदविषया है। फिरभी यदि यह केवल अभेदविषया ही है, तब 'तन्तु पटः' इत्याकारक सामानाधिकरण्यव्यवहारको न उत्पन्न करेगी 'घटः कलशः' इत्याकारकव्यवहारके न होनेसे। तिससे जाना जाता है कि अधिकभी इसका विषय है। यदि यों कहोकि वह विशेष भेदरूप है तो ऐसा नहीं कहना, क्यों ? 'घटः न शुक्लः' इत्याकारक उल्लेखके आपातसे और भेद तथा अभेद इन दोनोंके अविरोधके लिए विशेषको आवश्यकत्व होनेसेभी। तस्मात् जो अधिकविषय है वह विशेष है इति चेन्न; सत्यपि अभेदे=उक्तस्थलमें अभेदके होनेपरभी काल्पनिकभेदको लेकर उक्तविधव्यवहारकी उपपत्तिसे विशेषकी असिद्धिसे। घटो न शुक्लः इत्याकारक प्रतीतिकी आपत्ति है=काल्पनिक भेदको लेकर 'घटो न शुक्लः' इत्याकारक प्रतीतिकी आपत्ति है नच= उक्तविधप्रतीतिकी आपत्ति नहीं है; क्यों ? फलबलसे काल्पनिकभेदनिष्ठसामानाधिकरण्यादिरूपव्यवहारमात्रके प्रति निर्वाहकत्वके कल्पनसे विपरीत उल्लेखके प्रति अहेतुत्वहोनेसे= काल्पनिकभेदमें सामानाधिकरण्यादिरूपव्यवहारमात्रका निर्वाहकत्व ही फलबलतः कल्पन किया जाता है 'घटो न शुक्लः' इत्यादिरूप विपरीतव्यवहारके प्रति हेतुत्व नहीं कल्पन किया जाता है तथाविध व्यवहारके न देखनेसे। फलितार्थ कहते हैं—तस्मादिति। तस्मात् हे मित्र उक्तप्रकारसे त्वत्कल्पितविशेष किसीभी प्रमाणका विषय नहीं है,। 'तुम विषादको छोडो' मत्सिद्धान्तसिद्ध जो अविद्या उस अविद्यासे सर्व सङ्गति है।

इति सरलायां विशेषखण्डनम्।

अथ भेदपञ्चके प्रत्यक्षप्रमाणभङ्गः।

एवं प्रत्यक्षतः प्राप्तभेदस्यैव निवारणात्। असाक्षात्कृतजीवेशभेदादौ का कथा तव। तथाहि ईश्वरस्याप्रत्यक्षत्वेन तद्धर्मिकस्य तत्प्रतियोगिकस्य वा भेदस्य ग्रहीतुमशक्यत्वात्। ननु—ईशधर्मिकभेदस्य जीवाप्रत्यक्षत्वेऽपि स्वधर्मिकभेदः तथापि तत्प्रत्यक्षः 'नाहं सर्वज्ञो नाहं निर्दुःख इत्याद्यनुभवात्। नच—योग्यप्रतियोगिकत्वमभावयोग्यत्वे प्रयोजकमिति—वाच्यम् स्तम्भः पिशाचो नेत्यादिप्रत्यक्षरूपफलबलेन संसर्गाभावे तथात्वेऽपि अन्योन्याभावे अधिकरणयोग्यताया एव तन्त्रत्वात्। वस्तुतस्तु संसर्गाभावेऽपि न तन्मात्रं योग्यता, जलपरमाणौ योग्यपृथिवीत्वाभावग्रहप्रसङ्गात्, किन्तु यत्र यत्सत्त्वमनुपलब्धिविरोधि, तत्र तस्याभावो योग्य इति अधिकरणनियतैव सर्वाभावसाधारणी योग्यता,। सा च प्रकृतेऽप्यस्त्येव; अन्यथा अभेदश्रुतेरप्रसक्तप्रतिषेधकतापत्तेः। भेदश्रुतेश्च त्वदुक्तमसक्तसिद्धभेदानुवादित्वं न स्यात्। ईशधर्मिकजीवभेदेऽपि 'तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप। उत्तमः पुरुषस्त्वन्य' इत्यादितद्वचनानुमितप्रत्यक्षसिद्धत्वमेवेति—चेन्न; उक्तानुभवस्यान्तःकरणाद्यवच्छिन्नचैतन्यस्य तदनवच्छिन्नचैतन्यप्रतियोगिकभेदावगाहितया शुद्धचैतन्यधर्मिकनिर्दुःखादिप्रतियोगिकभेदानवगाहित्वात्।

अथ सरलायां भेदपञ्चके प्रत्यक्षप्रमाणभङ्गः।

एवमिति। उक्त प्रकारसे प्रत्यक्षसे प्राप्त भेदका ही निवारण हो जानेसे, असाक्षात्कृत जो जीवेशभेदादि हैं उन्होंमें तुह्मारी क्या कथा है, आदिशब्दसे ईशमाया जीवाजीव भेदादिका ग्रहण है, तथाहि=इसी अर्थको स्पष्ट करते है, ईश्वरस्येति। ईश्वरको प्रत्यक्षत्व न होनेसे, ईशधर्मिकभेदको, या ईशप्रतियोगिक भेदको ग्रहण करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे। शङ्कते नन्विति। ईशधर्मिकभेदका जीवको प्रत्यक्षत्व न होनेपरभी स्वधर्मिकभेदः=जीवधर्मिकभेद तथापि तत्प्रत्यक्षः=जीवको प्रत्यक्ष है—मैं सर्वज्ञ नहीं है, 'मैं निर्दुःख नहीं हैं' इत्यादि अनुभव होनेसे। नचेति। योग्यप्रतियोगिकत्व अभावके योग्यत्वमें प्रयोजक है और जीवधर्मिक ईशप्रतियोगिकभेदमें तो योग्यप्रतियोगिकत्व नहीं है अतः यह अभाव प्रत्यक्षके योग्य नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? स्तम्भः पिशाचो न इत्यादिरूप जो स्तम्भादिधर्मिकपिशाचादिप्रतियोगिक भेदका प्रत्यक्षरूप फल है उस फलबलसे संसर्गाभावमें तथात्वेऽपि=योग्यप्रतियोगिकत्वप्रयुक्तयोग्यत्वके होनेपरभी अन्योन्याभावनिष्ठयोग्यत्वमें अधिकरणकी योग्यताको ही तन्त्रत्व होनेसे। और वस्तुतः तो संसर्गाभावमेंभी=संसर्गाभावविषयकप्रत्यक्षमेंभी तन्मात्रम्=योग्यप्रतियोगिकत्वमात्र योग्यता नहीं=योग्यप्रतियोगिकत्वमात्रसे संसर्गाभावका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है क्यों ? जलपरमाणुमें योग्य जो पृथिवीत्व तत्प्रतियोगिक अभावके प्रत्यक्षका प्रसङ्ग होनेसे किन्तु जहाँपर जिसका सत्त्व अनुपलब्धिका विरोधि हो=उपलब्धिका आपादक हो वहाँपर उसका अभाव योग्य है—जलपरमाणौ यदि पृथिवीत्वं स्यात् तर्हि उपलभ्येत इत्याकारक आपादन नहीं बन सकता है क्योंकि योग्यव्यक्तिघटितसन्निकर्षको ही जात्यादिप्रत्यक्षमें हेतुता होनेसे; फलतः जलपरमाणुमें पृथिवीत्वाभावका प्रत्यक्ष नहीं बन सकता है; इस रीतिसे अधिकरणनियत ही सर्वाभावसाधारणी योग्यता है। और सा च=अधिकरणव्याप्या योग्यता तो प्रकृतमेंभी है ही। अन्यथा अभेदश्रुतिको अप्रसक्तके प्रतिषेधताकी आपत्तिसे। और भेदश्रुतिको त्वदुक्त जो प्रत्यक्षसिद्धभेदानुवादित्व है वह न होगा, और ईशधर्मिकजीवप्रतियोगिक भेदमेंभी "हे परन्तप उन सबको मैं जानता हूँ" तू नहीं जानता है (गी० ४।५) उत्तम पुरुष क्षर अक्षरसे अन्य है, (गी० १५।१७) इत्यादि ईशवचनसे अनुमित जो ईश्वरका प्रत्यक्ष तादृशप्रत्यक्षसिद्धत्व है=मैं सबको जानता हूँ और तू सबको नहीं जानता है इस कथनसे यह ज्ञात होता है कि जीवप्रतियोगिक ईशधर्मिकभेदका ईश्वरको प्रत्यक्ष है; इति चेन्न; क्यों ? उक्तानुभवस्य="नाहं निर्दुःखः" इत्यादि अनुभवको अन्तःकरणावच्छिन्नचैतन्यानुयोगिक जो अन्तःकरणाद्यनवच्छिन्न—प्रतियोगिक भेद तादृश भेदावगाहित्व होनेसे शुद्धचैतन्यधर्मिक जो निर्दुःखादिप्रतियोगिक भेद तादृश भेदका अवगाहित्व न होनेसे।

श्रुतिरपि—अवच्छिन्नभेदानुवादिनी। भेदनिषेधश्रुतिस्तु अनुमानादिप्रसक्तभेदनिषेधपरा नच 'योऽहमस्वाप्सं यस्य ममाज्ञानसंसारादि सोऽहं निर्दुःखो ने'तिसुपुप्तिका-

लीनान्तःकरणावच्छिन्नाभेदेनाज्ञानाद्याश्रयाभेदेन च प्रत्यभिज्ञायमाने शुद्धे भेदप्रतीतिः; संसाराधारस्य तदनाधारात् भेदे एव ह्यावयोर्विवादः, नतु चैतन्यस्य चैतन्यादिति-वाच्यम्, एतावता अज्ञानावच्छिन्न एव भेदग्रहो नतु शुद्धे । नहि सुपुप्तिकाले अन्तःकरणानवच्छिन्नत्ववदज्ञानानवच्छिन्नत्वमप्यस्ति । यत्तु चैतन्यस्य चैतन्यात् भेदो नास्तीति तदस्माकमनुकूलम्; चैतन्ये स्वाभाविकस्याभेदस्यैवास्मद्रहस्यत्वात् भवत्प्रतिकूलं च । नहि भवतां चैत्रमैत्रादिचैतन्यानामैक्यमिति मतम् । अहमर्थस्य यथा न शुद्धात्मत्वं तथोक्तं प्राक् । साक्षिप्रत्यक्षस्याध्यस्तादिसाधारणतया तत्सिद्धत्वमात्रेण भेदे अबाधितत्वमसंभावितमेव । एतेन-जीवानां परस्परं भेदे प्रत्यक्षं प्रमाणमिति-निरस्तम्; नाहं चैत्र इत्यादेरवच्छिन्नभेदविषयत्वात् । 'घटो न ब्रह्म, घटो न पटः' नाहं घट इत्यादिप्रत्यक्षस्य कल्पितभेदविषयत्वेन तात्त्विकभेदासिद्धेः । तस्मात् भेदपञ्चके न प्रत्यक्षं प्रमाणम् ।

इत्यद्वैतसिद्धौ भेदपञ्चके प्रत्यक्षभङ्गः ।

श्रुतिभी उक्त अवच्छिन्नवृत्तिभेदकी अनुवादिनी है । और भेदको निषेध करनेवाली श्रुति तो अनुमानादिसे प्रसक्त जो भेद तादृश भेदनिषेधपरा है । शङ्कते नचेति । 'जो मैं सोया था जिस मुझको अज्ञान तथा संसारादि है, सो मैं निर्दुःख नहीं हूँ' इस रीतिसे सुपुप्तिकालीन जो अन्तःकरणानवच्छिन्न चैतन्य तादृशचैतन्यके साथ अभेदरूपसे और अज्ञानादिका आश्रय जो चैतन्य तादृश चैतन्यके साथ अभेदरूपसे प्रत्यभिज्ञायमान जो शुद्धचैतन्य तादृशचैतन्यमें भेदकी प्रतीति होती है । संसाराधारस्य=अज्ञानाधार शुद्धचैतन्यको तदनाधारात्=भेदका आधार न होनेसे; भेदमें ही अपने दोनों जनोंका विवाद है, चैतन्यका चैतन्यसे भेद है इसमें विवाद नहीं है-चैतन्यका चैतन्यसे भेद नहीं है यह अर्थ अपने दोनों जनोंको सम्मत है, इति न च वाच्यम्, क्यों ? इतनेसे अज्ञानावच्छिन्नमें ही भेदका ग्रह है शुद्धमें नहीं क्योंकि-सुपुप्तिकालमें जैसे अन्तःकरणानवच्छिन्नत्व है वैसे अज्ञानानवच्छिन्नत्व नहीं और जो यह कहा है कि चैतन्यका चैतन्यसे भेद नहीं है वह तो हमको अनुकूल ही है चैतन्यमें स्वाभाविक अभेदको ही अस्मदीय रहस्यत्व होनेसे और वह कथन आपके प्रतिकूलभी है, क्योंकि चैत्रमैत्रादिमें चैतन्योंका ऐक्य है, यह आपका मत नहीं है और अहमर्थको जैसे शुद्धात्मत्व नहीं है तैसे कहा है पूर्वमें-प्रथमपरिच्छेदमें विस्तारसे कहा है । और साक्षि प्रत्यक्षको अध्यस्तादिसाधारणत्व होनेसे तत्सिद्धत्व=साक्षिसिद्धत्वमात्रसे भेदमें अबाधितत्व असम्भावित ही है । एतेनेति । जीवोंके परस्पर भेदमें प्रत्यक्ष प्रमाण है यह कथन निरस्त हुआ 'मैं चैत्र नहीं हूँ' इत्यादि प्रत्यक्षको अवच्छिन्ननिष्ठभेदविषयत्व होनेसे । 'घटो न ब्रह्म' 'घटो न पटः' 'नाहं घटः' इत्यादि प्रत्यक्षको कल्पितभेदविषयत्व होनेसे तात्त्विक भेदकी असिद्धिसे तस्मात् भेदपञ्चकमें प्रत्यक्षप्रमाण नहीं है ।

इति सरलायां भेदपञ्चके प्रत्यक्षभङ्गः ।

अथ जीवब्रह्मभेदानुमानभङ्गः।

नाप्यनुमानम्। (१) जीवेश्वरौ, भिन्नौ, विरुद्धधर्माधिकरणत्वात्, दहनतुहिनवदित्यत्र दुःखादेरन्तःकरणादिधर्मत्वेन स्वरूपासिद्धेः एकत्रैव निर्दुःखत्वदुःखवत्त्वयोरवच्छेदकभेदेन दृष्टतया धर्मिभेदासाधकत्वात्, भेदमात्रे सिद्धसाधनात् तात्त्विकभेदे साध्यवैकल्यात्। (२) ब्रह्म तत्त्वतो जीवात् भिन्नम्, सर्वज्ञत्वात् व्यतिरेकेण जीववदित्यत्राप्रसिद्धविशेषणत्वात् (३) ब्रह्म धर्मिसत्तासमानसत्ताकभेदवदिति साध्यकरणे असाधारण्यात् (४) आत्मत्वं नानाव्यक्तिनिष्ठम्; जातित्वात् पृथिवीत्ववदित्यत्रात्मैक्यवादिनं प्रत्यसिद्धेः; कल्पितव्यक्तिनिष्ठत्वेन सिद्धसाधनाच्च। (५) दुःखं गुणत्वावान्तरजात्या सजातीयाश्रयात् भिन्नाश्रितम्, गुणत्वाद्रूपवदित्यत्र शब्दे व्यभिचारात् दुःखादीनामन्तःकरणधर्मत्वेन सिद्धे साधनाच्च। (६) विमतानि शरीराणि स्वसंख्यासंख्येयात्मवन्ति, शरीरत्वात् सम्मतवदित्यत्र योगिशरीरे व्यभिचारात्।

अथ सरलायां जीवब्रह्मभेदानुमानभङ्गः।

अनुमानभी जीवेशके भेदमें प्रमाण नहीं है। अनुमानोंको दिखलाकर दूषित करते हैं– जीव तथा ईश्वर ये दोनों भिन्न हैं, विरुद्ध जो धर्म तादृश धर्मका अधिकरणत्व होनेसे, वह्निहिमवत्; इत्यत्र=इस अनुमानमें दुःखादिको अन्तःकरणका धर्मत्व होनेसे स्वरूपासिद्धि है, और एक धर्मीमें ही निर्दुःखत्व तथा दुःखत्व इन दोनोंको अवच्छेदकभेदसे दृष्टत्व होनेसे धर्मिभेदका असाधकत्व है, और भेदमात्रको साध्य होनेपर सिद्धसाधन है, और तात्त्विकभेदको साध्य-होनेपर दृष्टान्तमें साध्यवैकल्य है अतः यह अनुमान दुष्ट है। ब्रह्म तत्त्वतः जीवसे भिन्न है, सर्वज्ञत्व होनेसे जो तत्त्वतः जीवसे भिन्न नहीं होता है वह सर्वज्ञभी नहीं होता है जैसे जीव, इस अनुमानमें अप्रसिद्धविशेषणत्व है, अतः यह अनुमान दुष्ट है। ब्रह्म धर्मिसत्तासमानसत्ताक जो भेद तादृश भेदवाला है, ऐसा साध्य करनेपर, असाधारण्य है=साध्यवत्त्वेन=निश्चित घटादिसे हेतु व्यावृत्त है, अतः असाधारण्य है। आत्मत्व नानाव्यक्तिओंमें निष्ठ है, जातित्व होनेसे, पृथिवीत्ववत् इस अनुमानमें आत्मैक्यवादिके प्रति स्वरूपासिद्धि है, और कल्पित-व्यक्तिनिष्ठत्व होनेसे सिद्धसाधनभी है अतः यह अनुमान दुष्ट है। देवदत्तीय दुःख, गुणत्वावान्तरजात्या स्वसजातीयाश्रयात्=गुणत्वव्याप्यजातिसे जो स्वसजातीय तादृश स्वजातीयका जो आश्रय तदाश्रित है=स्वशब्दसे लिया पक्षीभूत देवदत्तीय दुःख गुणत्वावान्तर जातिसे तत्सजातीय हुआ,–यज्ञदत्तीय दुःख उसका आश्रय हुआ यज्ञदत्त तादृश यज्ञदत्तरूप आश्रयभिन्न आश्रय हुआ देवदत्त तदाश्रय देवदत्तीय दुःख है गुणत्व होनेसे रूपवत् वटीयरूप तथा तटीय-रूपको लेकर दृष्टान्तमें साध्यको घटाना चाहिए, यहाँपर शब्दमें व्यभिचार है=शब्दमें गुणत्वरूप हेतु है, परन्तु अनेकाश्रितत्व न होनेसे साध्य नहीं है अतः व्यभिचार है। और दुःखादिकोंको अन्तःकरणका धर्मत्व होनेसे सिद्धसाधनभी है, फलतः यह अनुमान दुष्ट है।

विमत शरीर, स्वसंख्यासंख्येय=स्वसमानसंख्यासे सङ्ख्येय जो आत्मा है तादृश आत्मावाले हैं शरीरत्व होनेसे सम्मतशरीरवत्=एक शरीरमें एक आत्मा उभयसम्मत है यहाँपर योगीके शरीरमें व्यभिचार है=योगीके शरीरमें शरीरत्वरूप हेतु है, परन्तु शरीरसङ्ख्यासंख्येय आत्मा नहीं है, अतः व्यभिचार है, और कल्पित समसंख्याकत्वको लेकर सिद्धसाधन है, अतः यह अनुमान सदोष है ।

आत्मा धर्मिसत्तासमानसत्ताकात्मप्रतियोगिकभेदवान् द्रव्यत्वात् घटवत् (८) आत्मा द्रव्यत्वव्याप्यजात्या नाना, अश्रावणविशेषगुणाधिकरणत्वात् घटवदित्यत्र चात्मनो निर्गुणत्वेनासिद्धेः। चैत्रश्चैत्रप्रतियोगिकोक्तभेदवान्, उक्तहेतोरुक्तदृष्टान्तवदित्याभाससाम्याच्च। एतेन नवीनानि–अनुमानान्यपि–निरस्तानि; (१) ईश्वरः जीवप्रतियोगिकतात्त्विकभेदवान्, सर्वशक्तित्वात्, सर्वज्ञत्वात् सर्वकार्यकर्तृत्वात्, स्वतन्त्रत्वाद्वा । व्यतिरेकेण जीववत् (२) जीवो वा, ब्रह्मप्रतियोगिकतात्त्विकभेदवान्, अल्पशक्तित्वात्, अल्पज्ञत्वात् अल्पकर्तृत्वात् ससारित्वाद्वा व्यतिरेकेण ब्रह्मवत्, इत्यादिषु भेदस्य स्वरूपत्वेन तद्वत्त्वसाधने बाधात् । नच विशेषमादाय तदुपपादनम् ; तस्य स्वरूपानतिरेकेण तद्वत्त्वसम्पादकत्वात्–अप्रसिद्धविशेषणतापत्तेश्च । नच—जीवब्रह्माभेदेऽनिष्टप्रसक्त्या अष्टद्रव्यातिरिक्तद्रव्यत्वादेरिव त्वत्सिद्धस्वप्रकाशत्वादेरिव च साध्यस्य मानयोग्यत्वसम्भव इति–वाच्यम् तात्त्विकभेदव्यतिरेकेऽपि, उपाधिकल्पितभेदेन सर्वानिष्टपरिहारसंभवात् ।

आत्मेति । आत्मा, धर्मिसत्तासमानसत्ताक जो आत्मप्रतियोगिकभेद तादृशभेदवाला है, द्रव्यत्व होनेसे, घटवत्; आत्मा; द्रव्यत्वव्याप्यजात्या=आत्मात्वजात्याश्रयतया नाना है, अश्रावणविशेषगुणाधिकरणत्व होनेसे, घटवत्=यहाँ गुणाधिकरणत्व ही हेतु करते तो कालादिमें व्यभिचार होता, क्योंकि वहाँ संख्यादिरूपपञ्चगुणाधिकरणत्व तो है, परन्तु द्रव्यत्वव्याप्यजात्याश्रयत्वेन नानात्व नहीं है, अतः गुणमें विशेष विशेषण दिया, यदि इतना ही कहते= विशेषगुणाधिकरणत्व ही कहते तो आकाशमें व्यभिचार था क्योंकि आकाशमें शब्दरूपविशेषगुणाधिकरणत्वरूप हेतु है, परन्तु उक्त साध्य नहीं अतः विशेष गुणमें अश्रावण विशेषण दिया । इत्यत्र च=इसमेंभी आत्माको निर्गुणत्व होनेसे असिद्धि है=द्रव्यत्व तथा गुणाधिकरणत्व इन दोनोंका आत्मामें अभाव होनेसे । इन दोनों अनुमानोंमें स्वरूपासिद्धि है, अतः ये दोनों दुष्ट है । और, चैत्र, धर्मिसत्तासमानसत्ताकचैत्रप्रतियोगिकभेदवाला है, द्रव्यत्व होनेसे, घटवत्, इत्याकारक आभासके साम्यसेभी । तर्कशून्यत्वरूप साम्य इन अनुमानोंमें है । एतेन=अप्रसिद्धविशेषणत्व–आभाससाम्यादिसे नवीनोंके अनुमानभी व्युदस्त हुए; नवीनोंके अनुमानोंको दिखलाते हैं–ईश्वर, जीवप्रतियोगिक जो तात्त्विक भेद तादृशभेदवाला है, सर्वशक्तित्व होनेसे सर्वज्ञत्व होनेसे सर्वकार्यकर्तृत्व होनेसे, अथवा स्वतन्त्रत्व होनेसे जो जीवप्रतियोगिकतात्त्विकभेदवाला नहीं होता है वह उक्त हेतुओंवालाभी नहीं होता है, जैसे जीव । अथवा, जीव,

ब्रह्मप्रतियोगिकतात्त्विकभेदवाला है, अल्पशक्तित्व होनेसे, अल्पज्ञत्व होनेसे, अल्पकर्तृत्व होनेसे, संसारित्व होनेसे, जो ब्रह्मप्रतियोगिकतात्त्विकभेदवाला नहीं होता है वह उक्त हेतुओंवालाभी नहीं होता है, जैसे कि ब्रह्म। इत्यादि अनुमानोंमें प्रकृतद्वैतीके मतमें, भेदको वस्तुस्वरूपता होनेसे बाध है, अतः ये अनुमान दुष्ट हैं। नचेति। विशेषको लेकर तदुपपादनम्=भेदवत्त्वका उपपादन है, नच=ऐसा नहीं है, क्यों? तस्य=विशेषको स्वरूपसे अतिरेक न होनेसे भेदवत्त्वका असम्पादकत्व होनेसे और अप्रसिद्धविशेषणताकी आपत्तिसेभी उक्तानुमान ठीक नहीं है, एतेन शब्दका ही विवरण करते हैं। नचेति। जीवब्रह्मका अभेद होनेपर अनिष्टकी प्रसक्तिसे अष्टद्रव्यातिरिक्त द्रव्यकी तरह और स्वसिद्धस्वप्रकाशत्वकी तरह साध्यको मानयोग्यत्वका सम्भव है=इच्छादिकं द्रव्याश्रितम् गुणत्वात्, यहाँपर जैसे इच्छादिकमें अष्टद्रव्याश्रितत्वके बाधसे अष्टभिन्नद्रव्याश्रयत्वकी सिद्धि होती है, तैसे मिथ्याभेदके बाधसे अमिथ्या भेदकी अनुमिति होती है, और जैसे वेद्यत्वं, किञ्चिन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि, धर्मत्वात्, इस अनुमानसे अवेद्यत्वे सत्यपरोक्षव्यवहारविषयत्वकी प्रसिद्धि होती है, तैसे जीवो ब्रह्म वा, किञ्चिद्धर्मिकप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदप्रतियोगि, अधिष्ठानत्वात्, इस वक्ष्यमाणानुमानसे जीवादिप्रतियोगिकतात्त्विक भेदकी प्रसिद्धि है, यह भाव है; इति नच वाच्यम्; क्यों? तात्त्विकभेदके न होनेपरभी उपाधिकल्पितभेदसे सर्व अनिष्टके परिहारका सम्भव होनेसे।

नच—जीवो ब्रह्म वा किञ्चिद्धर्मिकप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदप्रतियोगि, अधिष्ठानत्वात्, शुक्तिवदिति सामान्यतः साध्यप्रसिद्धिरिति—वाच्यम्; यत्किंचिदभावप्रतियोगिघटादिज्ञानाबाध्यभेदप्रतियोगित्वेनात्मज्ञानाबाध्यभेदासिद्धेः; स्वप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदप्रतियोगित्वे साध्ये दृष्टान्ते स्वपदेन शुक्तेर्दार्ष्टान्तिकस्वपदेनात्मनः उक्तेर्व्याप्तिग्रहानुपपत्तेः। यत्तु जीवाभिन्न इत्येव साध्यम्, मिथ्याभेदेन सिद्धसाधनं पश्चान्निरसनीयमिति तन्न; निरसनोपायस्य निरसिष्यमाणत्वात्। नच ब्रह्म जीवप्रतियोगिकधर्मिसत्तासमानसत्ताकभेदवदित्येव साध्यम्; धर्मिपदेन ब्रह्मण उक्तावप्रसिद्धविशेषणत्वतादवस्थ्यात्, यत्किंचिद्धर्म्युक्तौ, घटादिधर्मिसमानसत्त्वेन सिद्धसाधनात्, विपक्षबाधकरूपविशेषाभावे पूर्वोक्तासाधारण्यापत्तेश्च। यत्तु ब्रह्म जीवप्रतियोगिकतात्त्विकाभेदवन्नेति तन्न, एवमपि तात्त्विकाभेदस्यातात्त्विकाभावेन सिद्धसाधनात्। अभावेऽपि तात्त्विकत्वविशेषणेऽप्रसिद्धितादवस्थ्यात्।

नचेति। जीव 'या ब्रह्म' किञ्चिद्धर्मिक जो प्रतियोगिज्ञानाबाध्य भेद तादृश भेदका प्रतियोगी है अधिष्ठानत्व होनेसे शुक्तिवत् इस रीतिसे सामान्यतः साध्यकी प्रसिद्धि है, इति न च वाच्यम्, क्यों? यत्किञ्चिदभावप्रतियोगी जो घटादि तादृशघटादिज्ञानसे अबाध्य जो भेद तादृशभेदप्रतियोगित्व होनेसे आत्मज्ञानसे अबाध्य जो भेद तादृश भेदकी असिद्धिसे। और स्वप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदप्रतियोगित्वको साध्य होनेपर दृष्टान्तमें स्वपदसे शुक्तिका ग्रहण

होनेसे और दार्ष्टान्तिकमें स्वपदसे आत्माका ग्रहण होनेसे व्याप्तिग्रहकी अनुपपत्तिसे। और जो कहा है कि—'जीवसे भिन्न' यही साध्य है और मिथ्या भेदको लेकर होनेवाला सिद्धसाधन पश्चात् निरसनीय है सो ठीक नहीं; क्यों? निरसनके उपायको खण्डयिष्यमाण होनेसे। नचेति। ब्रह्म, जीवप्रतियोगिक जो धर्मिसत्तासमानसत्ताक भेद तादृशभेदवाला है, यही साध्य है, नच—यह नहीं हो सकता है, क्यों? धर्मिपदसे ब्रह्मकी उक्तिहोनेपर अप्रसिद्धविशेषणत्वका तादवस्थ्य होनेसे, यत्किञ्चिद्धर्मिकी उक्ति होनेपर घटादिरूप जो धर्मि तादृश धर्मिसमानसत्ताक भेदसे सिद्धसाधन होनेसे। और विपक्षमें बाधकरूप जो विशेष उसका अभाव होनेपर पूर्वोक्त असाधारण्यकी आपत्तिसे भी। और जो कहा है कि,—ब्रह्म जीवप्रतियोगिक तात्त्विक अभेद-वाला नहीं है, यह साध्य है सो ठीक नहीं; क्यों? ऐसा होनेपरभी तात्त्विक जो अभेद उस अभेदके अतात्त्विक अभावसे सिद्धसाधन होनेसे और अभावमेंभी तात्त्विकत्व विशेषण होनेपर अप्रसिद्धिका तादवस्थ्य होनेसे।

ननु—अत्र जीवप्रतियोगिकतात्त्विकभेदस्यान्योन्याभावरूपत्वान्नाप्रसिद्धिर्दोषः, यत्र हि अभावव्यापकतया हेत्वभावो गृह्यते, तत्रैव साध्यप्रसिद्धिरङ्गम्, इह तु जीवतादात्म्य-व्यापकता हेत्वभावस्य ग्राह्या तदभावो हेतुना साध्यत इति किं साध्यप्रसिद्ध्या? तां विनापि व्याप्तिग्रहोपपत्तेः; सन्देहरूपपक्षतासम्पत्तयेऽपि न तदपेक्षा; तस्याः सिषाधयिषा-विरहसहकृतसाधकमानाभावरूपत्वेन सन्देहाघटितत्वात् ब्रह्म तत्त्वतो जीवभिन्नं नवेति सन्देहाभावेपि 'जीवब्रह्मणोर्भेदे तात्त्विकत्वमस्ति नवेति सन्देहसम्भवाच्च'। प्रमेयत्वमेतन्नि-ष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि नवेति सन्देहवदिति—चेत्, न, एवं हि प्रसिद्धेतरभेदः पृथिव्यामिव प्रसिद्धजीवभेदो ब्रह्मणि सिद्ध्यतु न तद्गततात्त्विकत्वमपि। व्यापकव्यतिरेकस्य व्याप्य-व्यतिरेकमात्रसाधनसमर्थत्वात् अन्यथा अतिप्रसङ्गात्।

नन्विति। यहाँपर जीवप्रतियोगिक तात्त्विक भेदको अन्योन्याभावरूपत्व होनेसे अप्र-सिद्धि दोष नहीं है, जहाँपर अभावव्यापकत्वेन हेत्वभाव गृहीत होता है वहींपर साध्यकी प्रसिद्धि अङ्ग है और इह तु=ईश्वरः जीवप्रतियोगिकतात्त्विकभेदवान् इस अनुमानमें तो जीव-तादात्म्यनिरूपयिता व्यापकता हेत्वभावनिष्ठ ग्राह्य है—यहाँपर अन्योन्याभावका अभाव जीव-तादात्म्यरूप है वह तो जीवमें प्रसिद्ध ही है; तदभाव=जीवतादात्म्याभाव सर्वज्ञत्वादिरूप हेतुसे साध्य किया जाता है, अतः साध्यप्रसिद्धिसे=तादात्म्याभावप्रसिद्धिसे क्या प्रयोजन है, तां विनापि=साध्यप्रसिद्धिके विनाभी व्याप्तिग्रहकी उपपत्तिसे। और सन्देहरूप जो पक्षता तादृशपक्षताकी सम्पत्तिके लिए भी साध्यप्रसिद्धिकी अपेक्षा नहीं है तस्याः=पक्षताको सिषा-धयिषाविरहसहकृतसाधकमानाभावरूपत्व होनेसे, सन्देहसे अघटितत्व होनेसे, इस पङ्क्तिका अर्थ ग्रन्थारम्भमें ही आचुका है। ब्रह्म तत्त्वतः जीवसे भिन्न है या नहीं इत्याकारक सन्देहके न होनेपरभी जीव ब्रह्मके भेदमें तात्त्विकत्व है या नहीं इत्याकारक सन्देहके सम्भवसे जैसे कि

प्रमेयत्व एतन्निष्ठात्यन्ताभावका प्रतियोगी है या नहीं यह सन्देह होता है; इति चेन्न; क्यों ? ऐसा होनेपर प्रसिद्ध जो जलादिरूप त्रयोदश इतरपदार्थ उन्होंका भेद जैसे पृथिवी इतरभेदवती गन्धवत्वात् इस अनुमानसे पृथिवीमें सिद्ध होता है वैसे प्रसिद्ध जो जीव उसका भेद ब्रह्ममें सिद्ध हो तद्गत=भेदगततात्त्विकत्वभी नहीं सिद्ध हो सकता है व्यापकाभावको व्याप्याभावके ही साधनमें समर्थत्व होनेसे। अन्यथा अतिप्रसङ्गसे=वन्ध्याभावसे जलादिके अभावकीभी सिद्धि होने लगेगी।

यदपि भेदतात्त्विकत्वं धर्मनिष्ठत्वेन उदशङ्कि, तदपि साध्याप्रसिद्ध्या दुष्टम्। नापि ब्रह्म जीवात् भिन्नम्, दुःखाननुभवितृत्वात्, घटवदित्यन्वयि; सर्वानुभवितरि हेतोरसिद्धेः। स्वनिष्ठेतिविशेषणे जीवे व्यभिचारः; दुःखस्यान्तःकरणनिष्ठत्वात्, मिथ्याभेदेन सिद्धसाधनाच्च। नच—भेदे साध्ये अर्थशून्यभ्रान्त्या सिद्धसाधनोक्त्ययोग इति—वाच्यम्; भ्रान्तेर्वस्तुशून्यत्वस्यैवाभावात् उक्तमिदमनिर्वाच्यवादे। नचैतदनुमितिविषयतया प्रामाणिकत्वेन सिध्यतः कथं मिथ्यात्वम्; अनुमितिविषयतायाः प्रामाणिकत्वे अतन्त्रत्वात् नचैवं मिथ्यात्वाद्यनुमानेऽपि कल्पितमिथ्यात्वादिना सिद्धसाधनापत्तिः; कल्पितत्वं व्यावहारिकत्वमभिप्रेतम् प्रातिभासिकत्वं वा, आद्य इष्टापत्तेः, अन्त्ये हेतोःस्वसमानसत्ताकसाध्यसाधकतया। प्रातिभासिकत्वाप्रसक्तेः।

और जो भेदका तात्त्विकत्व धर्मनिष्ठत्वेन शङ्कित किया है, वहभी साध्यकी अप्रसिद्धिसे दुष्ट है। ब्रह्म जीवसे भिन्न है, दुःखका अनुभवितृत्व न होनेसे घटवत्, यह अन्वयि अनुमानभी ठीक नहीं है, सर्वका अनुभवितृ जो ब्रह्म उसमें हेतुकी असिद्धिसे। और स्वनिष्ठ जो दुःख तादृशदुःखाननुभवितृत्व कहो तो जीवमें व्यभिचार है=जीवमें स्वनिष्ठ दुःखका अननुभवितृत्व है और उक्त साध्य नहीं है अतः व्यभिचार है, व्यभिचारको ही स्पष्ट करते हैं=दुःखको अन्तःकरणनिष्ठत्व होनेसे। और मिथ्या भेदसे सिद्धसाधन होनेसेभी। नचेति। भेदके साध्य होनेपर अर्थसे शून्य जो भ्रान्ति तादृश भ्रान्तिसे सिद्धसाधनकी उक्तिका अयोग है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? भ्रान्तिमें अर्थशून्यताके ही अभावसे=भ्रान्तिमें अर्थशून्यत्व नहीं है, किन्तु विषयितासम्बन्धसे अनिर्वचनीयअर्थवत्त्व है, यह अनिर्वचनीयवादमें कहा है। नचेति। उक्त अनुमितिविषयत्वेन प्रामाणिकत्वेन सिद्ध होनेवाले भेदका मिथ्यात्व कैसे है, नच=ऐसी आशङ्का नहीं करना, क्यों ? अनुमितिकी विषयताको प्रामाणिकत्वमें अतन्त्रत्व होनेसे=जहाँपर अनुमितिकी विषयता हो वहाँपर प्रामाणिकत्व हो ऐसा नियम नहीं है, नचेति। इसीप्रकारसे मिथ्यात्वादिसाध्यकानुमानमेंभी कल्पित मिथ्यात्वादिसे सिद्धसाधनकी आपत्ति है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? कल्पितत्वसे क्या आपको व्यावहारिकत्व अभिप्रेत है, या प्रातिभासिकत्व; आद्यपक्षमें इष्टापत्ति होनेसे। और अन्त्यपक्षमें हेतुको स्वसमानसत्ताकसाध्यकी साधकता होनेसे। प्रातिभासिकत्वकी अप्रसक्तिसे।

एतेन—ब्रह्म जीवप्रतियोगिकधर्मिसत्तासमानसत्ताकभेदवत् । दुःखाननुभवितृत्वात्, अभ्रान्तत्वात् असंसारित्वात् घटवत्, जीवो वा, ब्रह्मप्रतियोगिकतादृक्भेदवान्, असर्वशक्त्यादिभ्य इति—निरस्तम्; उपहितस्य पक्षत्वे धर्मिसमसत्ताकत्वे सिद्धेऽपि तात्त्विकत्वासिद्धेः सिद्धसाधनात्, शोधित—तत्त्वंपदार्थयोः पक्षत्वे तयोर्धर्मित्वाभावेन बाधापत्तेः। नच—धर्मित्वाभावं प्रति धर्मित्वाधर्मित्वाभ्यां व्याघातः, ब्रह्मणः सर्वनिषेधस्वरूपत्वेन व्याघाताभावात्। नच धर्मिशब्देनाश्रयमात्रविवक्षा, धर्मित्ववदाश्रयत्वस्यापि तत्रासत्वात्। यत्तु धर्मिशब्दस्य पित्रादिशब्दवत् सम्बन्धिशब्दत्वेन यत्किञ्चिद्धर्मिसमसत्ताकतया न सिद्धसाधनमिति तन्न, शब्दस्वभावोपन्यासस्यानुमानं प्रत्यनुपयोगात्। एतेन—धर्मिपदस्थाने स्वपदमिति—अपास्तम्; धर्मिपदतुल्ययोगक्षेमत्वात्, अतएव—धर्मिसत्तासमानसत्ताकपदस्थाने पारमार्थिकेति वा; यावत्स्वरूपमनुवर्तमानेति वा स्वाज्ञानाकार्येति वा, स्वज्ञानाबाध्येति वा विशेषणं देयम्; स्वपदस्य समभिव्याहृततत्तत्परत्वस्य व्युत्पत्तिसिद्धत्वादिति—निरस्तम् आद्ये साध्यवैकल्याच्च।

एतेन=सिद्धसाधनादिसे ब्रह्म, जीवप्रतियोगिक जो धर्मिसत्तासमानसत्ताक भेद तादृशभेदवाला है, दुःखाननुभवितृत्व होनेसे, अभ्रान्तत्व होनेसे, असंसारित्व होनेसे घटवत्। या जीव ब्रह्मप्रतियोगिकधर्मिसत्तासमानसत्ताक जो भेद तादृश भेदवाला है, असर्वशक्तित्व होनेसे भ्रान्तत्व होनेसे संसारित्व होनेसे घटवत्; यह कथन निरस्त हुआ, एतेन का अर्थ दिखलाते हैं—उपहितको पक्षत्व होनेपर धर्मिसमसत्ताकत्वके सिद्ध होनेपरभी तात्त्विकत्वकी असिद्धिसे सिद्धसाधन है, और शोधित तत्त्वं पदार्थको पक्षत्व होनेपर उन्होंमें धर्मिकत्व अभावसे बाध है, अतः उक्तानुमान ठीक नहीं नचेति। धर्मित्वाभावके प्रति धर्मित्वस तथा अधर्मित्वसे व्याघात है=यदि ब्रह्म धर्मित्वाभावका धर्मि है तब तो उसमें धर्मित्वाभावनिरूपितधर्मित्वके रह जानेसे धर्मित्वाभावका कथन व्याघातयुक्त है; यदि धर्मित्वाभावका धर्मि ब्रह्म नहीं है तब तो धर्मित्वके रह जानेसे धर्मित्वाभावका कथन व्याघातयुक्त है; नच=ऐसा नहीं कहना, क्यों ? ब्रह्मको सर्वनिषेधरूपत्व होनेसे व्याघातके अभावसे। धर्मिशब्दसे आश्रयमात्रमें हमारी विवक्षा है=धर्मिशब्दसे आश्रय ही हमको कहनेको इष्ट है, नच=ऐसा नहीं कहना क्यों ? धर्मित्ववत् आश्रयत्वकाभी तत्र=ब्रह्ममें असत्त्व होनेसे। और जो कहा है कि—धर्मिशब्दको मित्रादिशब्दवत् सम्बन्धिशब्दत्व होनेसे यत्किञ्चिद्धर्मिसमसत्ताकत्वेन सिद्धसाधन नहीं है वह ठीक नहीं शब्दस्वभावके कथनका अनुमानके प्रति अनुपयोग होनेसे। एतेन, धर्मिपदके स्थानमें 'स्वपद है' यह अपास्त हुआ, इसकोभी धर्मिपदके तुल्ययोगक्षेमत्व होनेसे। अत एवेति। धर्मिसत्तासमानसत्ताकपदके स्थानमें 'पारमार्थिक' यह पद या 'यावत्स्वरूपमनुवर्त्तमान' यह पद या 'स्वाज्ञानाकार्य' यह पद 'स्वज्ञानाबाध्य' यह पद विशेषणरूपसे देय है, स्वपदनिष्ठ समभिव्याहृततत्तत्परत्वको व्युत्पत्तिसिद्धत्व होनेसे—यहाँपर ब्रह्म, जीवप्रतियोगीकपारमार्थिक-

भेदवत्, ऐसा साध्य रखनेमें भेदमें पारमार्थिकत्वकी अप्रसिद्धि है अतः इस पक्षको छोड़कर 'यावत्स्वरूपमनुवर्त्तमान' यह कहा इस पक्षमेंभी सिद्धसाधन है, क्योंकि यावत्कालमें ब्रह्म है तावत्कालमें मिथ्या भेदभी है–जितने कालतक ब्रह्म है=जितने कालमें ब्रह्म है उतने कालतक=उतने कालमें आविद्यक भेदभी है, अतः सिद्धसाधन है, इससे बचनेके लिए 'स्वाज्ञानाकार्य्य' यह तीसरा पक्ष लिया गया है इसमेंभी अनादिसिद्ध मिथ्याभेदको लेकर सिद्धसाधन है, अतः 'स्वज्ञानाबाध्य' इस चतुर्थ पक्षकी शरण ली है, यह कथन अपास्त हुआ; आद्यपक्षमें साध्यके वैकल्यसेभी–घटादिवृत्तिभेदमें पारमार्थिकत्व नहीं है अतः दृष्टान्तमें साध्यवैकल्य है।

नच—घटो जीवप्रतियोगिकप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदवान्, जीवधर्मिकधर्मिज्ञानाबाध्याभेदाप्रतियोगित्वात्, यत् यज्ज्ञानाबाध्ययद्धर्मिकाभेदाप्रतियोगि तत् तज्ज्ञानाबाध्यतत्प्रतियोगिकभेदवत् यथा दूरस्थवनस्पत्योरेक इत्याद्यनुमानेन साध्यसिद्धेर्नाप्रसिद्धिरिति–वाच्यम्; यच्छब्दाननुगमेन पक्षधर्महेतौ व्याप्त्यग्रहात् धर्मित्वप्रतियोगित्वादिसामान्याकारेण व्याप्तिग्रहे विशिष्यसाधनायोगात्। नच–एवं स्वप्रागभावव्यतिरिक्तेत्यादौ का गतिरिति–वाच्यम्; तत्राप्येतद्दूषणसञ्चारेण व्यतिरेकिणि वानुमानान्तरे वा तात्पर्यात्। नापि–ब्रह्म तत्त्वतो जीवाभिन्नं नेति साध्यम्, एवं च न साध्यवैकल्यशङ्कापि त्वन्मतेऽपि कल्पितघटे कल्पितजीवात् तात्त्विकभेदवत्तात्त्विकाभेदस्याप्यभावादिति वाच्यम्; तात्त्विकाभेदस्य तात्त्विकेनाभावेन सिद्धसाधनस्योक्तत्वात्। नापि जीवेश्वरौ धर्मिज्ञानाबाध्यपरस्परप्रतियोगिकभेदवन्तौ विरुद्धधर्माधिकरणत्वात् दहनतुहिनवत्, विरोधश्च परस्परात्यन्ताभावरूपत्वं, तद्व्याप्यत्वं वा कालभेदेनापि सामानाधिकरण्यायोग्यत्वं वा, संयोगतदत्यन्ताभावयोश्च सामानाधिकरण्यं मतद्वयेऽपि नेति न तदाश्रये व्यभिचार इति—वाच्यम्; धर्मिपदमादाय दोषस्य प्रागेवोक्तत्वात्।

नचेति। घट, जीवप्रतियोगिक जो प्रतियोगिकज्ञानाबाध्य भेद तादृशभेदवाला है, जीवधर्मिक जो धर्मिज्ञानाबाध्य अभेद तादृशअभेदका अप्रयोगित्व होनेसे, जो यज्ज्ञानाबाध्ययद्धर्मिक अभेदका अप्रतियोगी है वह तज्ज्ञानाबाध्यतत्प्रतियोगिकभेदवत् है जैसे दूरस्थ वनस्पतिओंमें एक=रसालमें सरलज्ञानाबाध्यसरलधर्मिकाभेदाप्रतियोगित्वरूपहेतु है और सरलज्ञानाबाध्यसरलप्रतियोगिक भेदभी है। इत्यादि अनुमानसे साध्यकी प्रसिद्धिसे अप्रसिद्धि नहीं है, इति नच वाच्यम्; क्यों? यच्छब्दके अननुगमसे पक्षका धर्मिभूत जो हेतु उसमें व्याप्तिका ग्रह न होनेसे, और धर्मित्वप्रतियोगित्वरूपसामान्याकारसे व्याप्तिग्रह होनेपर विशिष्य=जीवज्ञानाबाध्यत्वरूपसे साधनके अयोगसे। नचेति। ऐसा होनेपर 'स्वप्रागभावव्यतिरिक्त' इत्यादि स्थलोंमें क्या गति है, इति नच वाच्यम् क्यों? तत्रापि=उक्तानुमानादिमेंभी स्वशब्दप्रयुक्त अननुगतरूप दूषणके सञ्चारसे, व्यतिरेकमें या अनुमानान्तरमें तात्पर्य्य होनेसे। ब्रह्म तत्त्वतः जीवसे अभिन्न नहीं है यह साध्य है इसके साध्य होनेपर साध्यके वैकल्यकी शङ्काभी नहीं है

तुम्हारे मतमेंभी कल्पितघटमें कल्पितजीवसे तात्त्विक भेदकी तरह तात्त्विक अभेदकेभी अभावसे इति नच वाच्यम्, क्यों? तात्त्विक अभेदके अतात्त्विक अभावसे सिद्धसाधनको उक्तत्व होनेसे। नापीति। जीव तथा ईश्वर ये दोनों धर्मिज्ञानसे अबाध्य जो परस्परप्रतियोगिक भेद तादृश-भेदवाले हैं; विरुद्धधर्माधिकरणत्वहोनेसे दहनतुहिनवत्; और विरोध तो परस्परात्यन्ताभावरूपत्व या परस्परात्यन्ताभावव्याप्यत्व या, कालभेदसे भी सामानाधिकरण्यका अयोग्यत्वरूप है और संयोग तथा संयोगात्यन्ताभाव इन दोनोंका सामानाधिकरण्य मतद्वयमेंभी नहीं, है अतः तदाश्रये= संयोगाश्रयमें व्यभिचार नहीं है इत्यपि न वाच्यम्; क्यों? धर्मिपदको लेकर दोषको प्रथम ही उक्त होनेसे।

अव्याप्यवृत्तिदुःखशब्दाद्यधिकरणे व्यभिचाराच्च, जीवब्रह्माभेदसिद्धौ स्वतन्त्रत्वा-स्वतन्त्रत्वादीनां सामानाधिकरण्यायोग्यत्वरूपविरोधस्यैवासिद्ध्या स्वरूपासिद्धेः कल्पित-सार्वज्ञ्यासार्वज्ञ्यादिव्यवस्थाया वर्णे ह्रस्वत्वदीर्घत्वादिव्यवस्थावत्, कल्पितभेदेनैवोपपत्त्या स्वाभाविकभेदंप्रत्यप्रयोजकत्वाच्च। नच—अल्पशक्तिरसार्वज्ञ्यं पारतन्त्र्यमपूर्णता। उपजीव-कत्वं जीवत्वमीशत्वं तद्विपर्ययः। स्वाभाविकं तयोरेतन्नान्यथा तु कथञ्चन इत्यादिश्रुत्या सार्वज्ञ्यादेः स्वाभाविकत्वोक्त्या कल्पितत्वासिद्धिः अनाद्यविद्यासिद्धत्वेनेदानीन्तनत्वाभा-वेन च स्वाभाविकत्वोक्तेः, तच्छब्देनोपहितयोरेव परामर्शात्। न तत्र स्वाभाविकत्वोक्तिवि-रोधः; न ह्युपहितेऽपि सर्वज्ञत्वादिकमागन्तुकम्। नापि—ब्रह्म, स्वज्ञानाबाध्यजीवप्रतियोगि-कभेदवत्, पदार्थत्वात्, घटवत्, चेतनत्वं जीवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकधर्मिज्ञानाबाध्यभे-दवद्वृत्ति, सर्वचेतनवृत्तित्वात्, चेतनावृत्तिरहितत्वाद्वा शब्दार्थत्ववत् इति वाच्यम्।

अव्याप्यवृत्ति जो दुःख और शब्दादि तदधिकरणमें व्यभिचार होनेसेभी। जीवब्रह्मका अभेद सिद्ध होनेपर स्वतन्त्रत्व अस्वतन्त्रत्व आदिके सामानाधिकरण्यका अयोग्यत्वरूप जो विरोध उस विरोधकी ही असिद्धिसे स्वरूपासिद्धि होनेसे, और कल्पित जो सर्वज्ञत्व तथा असर्वज्ञत्व इन दोनोंकी व्यवस्थाको वर्णमें ह्रस्वत्वदीर्घत्वव्यवस्थाकी तरह कल्पितभेदसे ही उपपत्ति होनेसे स्वाभाविकभेदकेप्रति अप्रयोजकत्व होनेसे। नचेति। अल्पशक्ति और असा-र्वज्ञ्य तथा पारतन्त्र्य और अपूर्णता तथा उपजीवकत्व जीवत्व है, और उक्तोंका विपर्यय ईशत्व है। तयोः=जीव तथा ईश्वर इन दोनोंमें यह जीवत्व तथा ईशत्व स्वाभाविक है, कभी अन्यथा नहीं होता है, इत्यादि श्रुतिसे सार्वज्ञ्यादिके स्वाभाविकत्वके कथनसे कल्पितत्वकी असिद्धि है, नच=ऐसा नहीं कहना क्यों? अनादि जो अविद्या तादृश अविद्यासिद्धत्वसे इदानींतनत्वके अभावसे स्वाभाविकत्वकी उक्ति होनेसे तच्छब्देन=तयोः=इस तत् शब्दसे उपहितोंका ही परामर्श होनेसे। और तत्र=उपहितमें स्वाभाविकत्वकी उक्तिका विरोध नहीं, क्योंकि उपहितमेंभी सार्वज्ञ्यादिक आगन्तुक=कादाचित्क नहीं। नापीति। ब्रह्म, स्वज्ञाना-बाध्य जो जीवप्रतियोगिकभेद तादृशभेदवाला है, पदार्थत्व होनेसे घटवत्; चेतनत्व, जीवत्वाव-

च्छिन्नप्रतियोगिताक जो धर्मिज्ञानाबाध्यभेद तादृशभेदवालेमें वृत्ति है, सर्व चेतनोंमें वृत्तित्व होनेसे, अथवा चेतनावृत्तित्वसे रहितत्व होनेसे शब्दार्थत्ववत्, इति नच वाच्यम्, क्यों ?

स्वपदधर्मिपदाननुगमतादवस्थ्यात्, अन्यहेतोर्जीवत्वे व्यभिचाराच्च जडवृत्तित्वाद्युपाधिसत्त्वेन विपक्षबाधकाभावेन चाप्रयोजकत्वात्। ब्रह्मणो जीववत्संसारित्वापत्ताविष्टापत्तिः। कल्पितभेदेन वा परिहारो विधेयः। तदुक्तम्—अप्रमेयेऽनुमानस्य प्रवृत्तिर्न कथंचन। प्रमेयस्य त्वनात्मत्वात् तत्र भेदानुमेष्यते ॥ शुद्धचैतन्ये धर्मानधिकरणतयानुमानाप्रसरः। यत्र प्रसरः तत्रेष्टापत्तिरित्यर्थः। नच एवमैक्यानुमानमपि कथम्? भवत्पद्यस्य तदैक्यानुमितिः कथमिति पठितुं शक्यत्वादिति—वाच्यम्; शुद्धचैतन्यैक्यस्य शब्दैकगम्यत्वेन तत्राननुमेयत्वस्येष्टत्वात् नच तर्ह्यैक्यानुमानोपन्यासानर्थक्यम्; तस्य भेदे तात्त्विकत्वभ्रममात्रनिरासफलत्वात्। तस्मात् अप्रसिद्धविशेषत्वादन्यथैवोपपत्तितः। सर्वशक्त्यल्पशक्त्यादेर्न भेदे तन्त्रता ततः।

इत्यद्वैतसिद्धौ जीवब्रह्मभेदानुमानभङ्गः।

स्वपद तथा धर्मिपद इन दोनोंका तादवस्थ्य होनेसे, और अन्य हेतुका जीवत्वमें व्यभिचार होनेसेभी और जडवृत्तित्वादिरूप उपाधिका सत्त्व होनेसे तथा विपक्षमें बाधकके अभावसे अप्रयोजकत्व होनेसेभी। और ब्रह्मको जीवस्वरूपवत् संसारित्वकी आपत्तिमें इष्टापत्ति है। अथवा कल्पित भेदसे परिहार करणीय है। सो कहा है—अप्रमेयरूप शुद्धवस्तुमें अनुमानकी किसीभी प्रकारसे प्रवृत्ति नहीं होती है, और प्रमेयको अनात्मत्व होनेसे तत्र=प्रमेयमें भेदकी अनुमिति अङ्गीकृत होती है शुद्ध चैतन्यमें धर्मानधिकरणतया=भेदानुमापकधर्मका अधिकरणत्व न होनेसे अनुमानका प्रसर नहीं है, और जहाँ अनुमानका प्रसर है तहाँ इष्टापत्तिः=सिद्धसाधन है। नचेति। ऐसा होनेपर ऐक्यानुमानभी कैसे होगा, आपके उक्त पद्यको तदैक्यानुमितिः कथम्, चतुर्थपादकी जगहमें इसको रखकर पठन करनेके लिए शक्यत्व होनेसे, इति नच वाच्यम्, क्यों ? शुद्धचैतन्यरूप ऐक्यको शब्दैकगम्यत्व होनेसे तत्र=शुद्ध चैतन्यमें अननुमेयत्वको इष्टत्व होनेसे। तब ऐक्यके अनुमानके उपन्यासका वैयर्थ्य है, नच=वैयर्थ्य नहीं है, क्यों ? तस्य=ऐक्यानुमानोपन्यासको भेदमें जो तात्त्विकत्वका भ्रममात्र तादृशभ्रममात्रका जो निरास तादृशनिरासफलकत्व होनेसे। तस्मात् पारमार्थिकत्वादिरूप विशेषणको या, भेदप्रतिनिधिरूप विशेषको अप्रसिद्धत्व होनेसे। और सर्वशक्ति अल्पशक्तिको आविद्यक भेदसे ही उपपन्न होनेसे सर्वशक्ति अल्पशक्त्यादिको भेदमें तन्त्रता नहीं है यह अर्थ सिद्ध हुआ।

इति सरलायां जीवब्रह्मभेदानुमानभङ्गः।

अथ जीवपरस्परभेदानुमानभङ्गः।

एवं जीवानामपि न परस्परभेदानुमानम्। चैत्रो मैत्रप्रतियोगिकधर्मिज्ञानाबाध्यभेदवान् मैत्रप्रतियोगिकतात्त्विकाभेदवान्नेति वा, मैत्राननुसंहितदुःखानुसन्धातृत्वात्,

मैत्रस्मृतसर्वास्मर्तृत्वात् मैत्रानुभूतसर्वाननुभवितृत्वाच्च, घटवदित्यत्र प्रथमसाध्ये धर्मिपद-विकल्पेन द्वितीयसाध्ये तात्त्विकाभेदस्यातात्त्विकभेदेन सिद्धसाधनात्, उपहितस्य पक्षत्वे अर्थान्तरात्, चैतन्यमात्रपक्षत्वे हेत्वसिद्धेः साधनैकदेशस्याननुसन्धानादेरुपाधित्वसम्भवाच्च। विमतो बन्धध्वंसः, स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधारप्रतियोगिकप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदवन्निष्ठः बन्धध्वंसत्वात्, सम्मतवत्, जीवः संसारी संसारध्वंसाधारो वा, स्वज्ञानाबाध्यजीवप्रतियोगिकभेदवान् संसारप्रतियोगिकस्वज्ञानाबाध्यभेदवान् वा, स्वज्ञानाबाध्यसंसारध्वंसाधिकरणप्रतियोगिकभेदवान् वा, पदार्थवत्, घटवत्, विमतः आनन्दः स्वनिष्ठदुःखविरोधित्वव्याप्यधर्मेण सजातीयप्रतियोगिकस्वज्ञानाबाध्यभेदवान् दुःखविरोधित्वात् दुःखाभाववत्, इत्यादिषु बन्धप्रतियोगिकभेदवति कालादौ ध्वंसस्य विद्यमानत्वेनार्थान्तरात्। दुःखनिगलसाधारणबन्धत्वासम्भवाच्च, स्वपदाननुगमाच्च।

अथ सरलायां जीवपरस्परभेदानुमानभङ्गः।

एवमिति। इसी रीतिसे जीवोंकेभी परस्पर भेदका अनुमान नहीं हो सकता है। अब उक्तविध अनुमानोंको दिखलाकर दूषित करते हैं—चैत्र, मैत्रप्रतियोगिक जो धर्मिज्ञानाबाध्यभेद तादृशभेदवाला है, अथवा मैत्रप्रतियोगिक जो तात्त्विक अभेद तादृश अभेदवाला नहीं है, मैत्रसे अनुसंहित=स्मृत जो दुःख तादृश दुःखका अनुसन्धातृत्व न होनेसे, और मैत्रसे स्मृत जो सर्व तादृश सर्वका स्मर्तृत्व न होनेसे, और मैत्रसे अनुभूत जो सर्व तादृश सर्वका अनुभवितृत्व न होनेसे घटवत्, घटमें उक्त तीनों हेतु हैं और मैत्रप्रतियोगिक घटज्ञानाबाध्य भेदभी है, तैसे मैत्रप्रतियोगिक तात्त्विक अभेदवालाभी घट नहीं है; इत्यत्र=इस अनुमानमें प्रथमसाध्यपक्षमें धर्मिपदके विकल्पसे सिद्धसाधन होनेसे और द्वितीय साध्यपक्षमें तात्त्विकाभेदस्य=तात्त्विक अभेद है जिसमें ऐसा जो पदार्थ तादृशपदार्थप्रतियोगिक अतात्त्विक भेदसे सिद्धसाधनत्व होनेसे और उपहितको पक्षत्व होनेपर अर्थान्तर=सिद्धसाधन है, और चैतन्यमात्रको पक्षत्व होनेपर हेतुकी असिद्धि है, और साधनैकदेश जो सर्वाननुसन्धान सर्वास्मरणादि है उसको उपाधित्वकाभी सम्भव है=घटरूपदृष्टान्तान्तर्भावेन उपाधिको साध्यव्यापकता स्पष्टही है, और पक्षान्तर्भावेन साधनाव्यापकत्व है, अतः यह अनुमान दुष्ट है। विमत, बन्धका ध्वंस, स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नका जो आधार तादृश आधारप्रतियोगिक जो प्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेद तादृश भेदवाला जो पदार्थ तन्निष्ठ है, बन्धध्वंसत्व होनेसे, सम्मतवत्=मुक्तजीवोंमें रहनेवाला बन्धध्वंस पक्ष है, स्वपदसे बन्धके ध्वंसका ग्रहण है स्वप्रतियोगिता बन्धमें है प्रतियोगितावच्छेदक बन्धत्व है, प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न बन्ध है उसका आधार बद्ध आत्मा है तादृश आधारप्रतियोगिक जो आधाररूपप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेद तादृशभेदवाले मुक्त आत्मा हैं, तन्निष्ठ साध्य है, यहाँ यदि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नआधार यह न कहें तो सर्व जीवोंका परस्पर भेद न सिद्ध होगा, क्योंकि स्वशब्दसे—लिया बन्धध्वंस तत्प्रतियोगिरूप जो

बन्ध उसका आधार एक चैत्ररूप आत्मा हुआ तत्प्रतियोगिक भेद मैत्ररूपात्मामें रहा तन्निष्ठत्व बन्धध्वंसको है; जब स्वप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधार कहा तब तो यावत् बन्धाधार आत्माओंका ग्रहण हो गया, क्योंकि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नशब्दोक्त निखिल बन्धोंका आधार तो एक चैत्रात्मा नहीं बन सकता है, किन्तु यावद् बद्ध आत्माही बन सकते हैं तत्प्रतियोगिकभेद मुक्तात्माओंमें रह जायगा, फलतः सर्व आत्माओंका परस्पर भेद सिद्ध हुआ। और व्यावहारिक भेदको लेकर सिद्धसाधनवारणके लिए भेदांशमें प्रतियोगिज्ञानाबाध्य यह विशेषण दिया है। जीव इति। जीव या संसारी, अथवा संसारध्वंसाधार, स्वज्ञानसे अबाध्य जो जीवप्रतियोगिकभेद तादृश भेदवाला है, अथवा स्वज्ञानाबाध्य जो संसारध्वंसाधिकरण-प्रतियोगिकभेद तादृश भेदवाला है, पदार्थत्व होनेसे घटवत्,–यहाँपर तीन पक्षोंका निर्देश है, और तीन साध्योंकाभी निर्देश है, इन्होंका यथासङ्ख्येन अन्वय करना। यहाँपर जीवत्वोप-हितोंके भेदको सिद्धत्व होनेसे, द्वितीयपक्ष किया है, अविद्यारूपसंसारवाला एक ही चेतन माना जाता है, अतः इस पक्षमें सिद्धसाधन नहीं है। अविद्यारूपसंसाराश्रयत्व अविद्योपहितको ही है, और नाना अविद्यापक्षमें अविद्योपहितोंकाभी भेद सिद्ध ही है, अतः सिद्धसाधन है, इससे बचनेके लिए तृतीय पक्षका निर्देश है। विमत आनन्द, स्वनिष्ठ=आनन्दनिष्ठ जो दुःख-विरोधित्वव्याप्य आनन्दत्वरूप धर्म तादृश धर्मसे जो सजातीय तादृशसजातीयप्रतियोगिक जो स्वज्ञानाबाध्य भेद तादृश भेदवाला है, दुःखविरोधित्व होनेसे दुःखाभाववत्, इस अनुमानसे आनन्दोंका भेद सिद्ध होनेपर आत्माओंका भेद सिद्ध होता है; इत्यादि अनुमानोंमें बन्धप्रति-योगिकभेदवाले कालादिमें ध्वंसको विद्यमानत्व होनेसे अर्थान्तर है–कालादौ=यहाँपर आदि शब्दसे शरीरादिका ग्रहण है, जैसे घटादिका ध्वंस भूतलादिमें प्रतीत होता है, वैसे अविद्यारूप बन्धका ध्वंस शरीरादिमेंभी प्रमित हो सकता है, और दुःख तथा निगल एतदुभयसाधारण बन्धत्वका असम्भवभी है, और स्वपदका अननुगमभी है, अतः उक्त अनुमान दुष्ट है।

चैत्रबन्धध्वंसः, चैत्रबन्धाधारप्रतियोगिकभेदवन्निष्ठः, बन्धध्वंसत्वात् सम्मतवदि-त्याभाससाम्याच्च। विपक्षबाधकाभावाच्च ध्वंसप्रतियोगितावच्छेदकं न नानाबन्धानुगत-बन्धत्वम्, तस्य सामान्याभावत्वाभावात्। एतेन–आत्ममात्रभेदे आत्मा, आत्मप्रतियो-गिकस्वज्ञानाबाध्यभेदवान्, पदार्थत्वात् घटवत्, आत्मवैभवपक्षे आकाशः, आत्मप्रतियो-गिकधर्मिज्ञानाबाध्यभेदाधारविशेषगुणवद्विभुव्यतिरिक्तः द्रव्यत्वात् पृथिवीवत्, पृथिवीत्वं जलत्वतेजस्त्ववायुत्वमनस्त्वेतरद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिभिन्नम् प्रमेयत्वात् जलत्ववत्, गगन-त्वजातिपक्षे तदितरत्वमपि विशेषणम्, सत्ता द्रव्यत्वान्यात्मनिष्ठजात्यन्यत् मेयत्वात् घटवत्।

चैत्रेति। चैत्रके बन्धका ध्वंस, चैत्रबन्धाधारप्रतियोगिक जो भेद तादृश भेदवन्निष्ठ है, बन्धध्वंसत्व होनेसे सम्मतवत्, इत्याकारक आभासके साम्यसेभी और विपक्षमें बाधकके अभावसेभी उक्त अनुमान ठीक नहीं हैं। और ध्वंसप्रतियोगितावच्छेदक नानाबन्धमें अनुगत बन्धत्वरूप नहीं है, तस्य=ध्वंसको सामान्याभावत्वके अभावसे। एतेनेति। आत्ममात्रके

भेदमें आत्मा, आत्मप्रतियोगिकस्वज्ञानाबाध्यभेदवाला है, पदार्थत्व होनेसे घटवत्, और आत्मामें विभुत्व है, इस पक्षमें आकाश, आत्मप्रतियोगिक जो धर्मिज्ञानाबाध्यभेद तादृशभेदाधार जो विशेषगुणवद्विभु तादृश विभुसे व्यतिरिक्त है, द्रव्यत्व होनेसे पृथिवीत्ववत्। पृथिवीत्व, जलत्वतेजस्त्ववायुत्वमनस्त्वसे इतर जो द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजाति तादृश जातिसे भिन्न है, प्रमेयत्व होनेसे, जलत्ववत्=यहां पक्षमें आत्मत्वजातिकोलेकर साध्यका पर्य्यवसान है, और दृष्टान्तमें पक्षीभूत पृथिवीत्वको लेकर। गगनत्वजातिपक्षे=औपाधिकव्यक्तिभेदको जातिव्यवस्थापकत्व है, इस पक्षकी रीतिसे गगनत्वकोभी जातित्व है, इस पक्षमें गगनत्वेतरत्वभी साध्य कुक्षिमें विशेषण है। सत्ता, द्रव्यत्वसे भिन्न जो आत्मनिष्ठ जाति तादृश जातिसे भिन्न है अथवा, द्रव्यत्व सत्तासे भिन्न जो आत्मनिष्ठ जाति तादृश जातिसे अन्य है मेयत्व होनेसे घटवत्।

आत्माणुत्वमते आत्मा, द्रव्यत्वव्याप्यजातिमान् अविभुद्रव्यत्वात् घटवदित्यादिभिरात्मत्वजातिसिद्धौ तात्विकात्मभेदसिद्धिरिति—निरस्तम्; आद्ये जडत्वमुपाधिः, आत्मपदयोः स्थाने चैत्रपदंप्रक्षिप्याभाससाम्यं च। द्वितीये शब्दानाश्रयत्वमुपाधिः विभावात्मान्यत्वं विशेषणं दत्वा आत्माकाशभिन्नस्य विभोर्विशेषगुणवतः साधनप्रसङ्गाच्च। जातिपक्षकानुमानेषु कल्पितव्यक्तिभेदेनापि तस्याः जातेरूपपत्त्या तात्त्विकव्यक्तिभेदऽपर्यवसायित्वेनार्थान्तरात्। नच—जातेः धर्मिज्ञानाबाध्यभेदं विनायोगः अन्यथा व्यक्त्यभेदः क्वापि जातिबाधको न स्यादिति—वाच्यम्, जातेर्व्यक्तिभेदसमानसत्ताकत्वनियमेन प्रातिभासिकभेदस्य व्यावहारिकजातिं प्रति न साधकत्वमिति व्यक्त्यभेदस्य जातिबाधकत्वसम्भवात्।

इत्यद्वैतसिद्धौ जीवपरस्परभेदानुमानभङ्गः।

आत्मामें अणुत्व है, इस मतमें, आत्मा, द्रव्यत्वव्याप्यजातिवाला है, अविभुद्रव्यत्व होनेसे, घटवत् इत्यादिकोंसे आत्मत्व जातिकी सिद्धि होनेपर तात्त्विक जो आत्मभेद उसकी सिद्धि है यह कथन निरस्त हुआ; एतेन शब्दके अर्थको फोडते हैं,—आद्यानुमानमें जडत्व उपाधि है, और आत्मपदोंके स्थानमें चैत्रपदका प्रक्षेपकर आभाससाम्यभी है, द्वितीयानुमानमें शब्दानाश्रयत्व उपाधि है, और विभुमें आत्मान्यत्वविशेषण देकर आत्मा तथा आकाश इन दोनोंसे भिन्न विशेषगुणवाले विभुके साधनके प्रसङ्गसे। और जातिपक्षकानुमानोंमें कल्पितव्यक्तिभेदसेभी उस जातिकी उपपत्तिसे तात्त्विक व्यक्तिभेदमें पर्यवसायित्व न होनेसे अर्थान्तर होनेसे। नचेति। धर्मिज्ञानसे अबाध्य जो भेद तादृशभेदके विना जातिका अयोग है, अन्यथा व्यक्त्यभेद कहींभी जातिका बाधक न होगा इति नच वाच्यम्, क्यों? जातिको व्यक्तिभेदसमानसत्ताकत्वका नियम होनेसे, प्रातिभासिकभेदको व्यावहारिकजातिके प्रति साधकत्व नहीं है, अतः व्यक्त्यभेदको जातिबाधकत्वका सम्भव होनेसे।

इति सरलायां जीवपरस्परभेदानुमानभङ्गः।

अथ जीवभेदानुकूलतर्कभङ्गः ।

ननु—यद्यात्मैक्यं स्यात् चैत्रेण सर्वदुःखाद्यनुसन्धानं स्यात् इति—चेन्न; औपाधिकभेदेनाननुसन्धानोपपत्तेः । ननु—हस्तपादाद्युपाधिभेदेऽप्यनुसन्धानदर्शनात् उपाधिभेदोऽप्रयोजकः, नच विश्लिष्टोपाधिस्तत्र तन्त्रम्; मातृसुखादेर्गर्भस्थेनानुसन्धानापातात् । भारते—'उद्यतायुधदोर्दण्डाः पतितस्वशिरोक्षिभिः । पश्यन्तः पातयन्ति स्म कवन्धा अप्यरीन्युधि ॥' इत्यादिना विश्लेषेऽपि अनुसन्धानोक्तेश्चेति—चेन्न; नहि वयं यत्किञ्चिदुपाधिमात्रमननुसन्धानप्रयोजकं ब्रूमः; किन्त्वन्तःकरणरूपोपाधिभेदमविद्याभेदं वा । स च भेदः कवन्धे योगिनि च नास्त्येव । तेन तत्रानुसन्धानं, चैत्रमैत्रयोश्चास्तीति अननुसन्धानम् । एतेन—शरीररूपोपाधिभेदस्याननुसन्धानप्रयोजकत्वे बाल्यानुभूतस्य यौवने जातिस्मरणे पूर्वजन्मानुभूतस्य योगिना नानाशरीरानुभूतस्य च स्मरणं न स्यादिति निरस्तम्; शरीरभेदस्य तत्रातन्त्रत्वात् योगिजातिस्मर्तॄणामन्तःकरणैक्यात् ।

अथ सरलायां जीवभेदानुकूलतर्कभङ्गः ।

शङ्कते नन्विति । यदि आत्माका ऐक्य हो तो चैत्रसे सर्वके दुःखोंका अनुसन्धान होना चाहिए, इति चेन्न; क्यों ? औपाधिक जो भेद तादृश भेदसे अननुसन्धानकी उपपत्तिसे । नन्विति । हस्तपादादिरूप जो उपाधियाँ हैं उन्होंका भेद होनेपरभी अनुसन्धानके देखनेसे उपाधिभेद अननुसन्धानमें प्रयोजक नहीं है, यदि यों कहो कि—विश्लिष्ट=विभक्त जो उपाधियाँ उन्होंका भेद तत्र=अननुसन्धानमें प्रयोजक है हस्तपादादिरूप उपाधियाँ विश्लिष्ट नहीं हैं, किन्तु संश्लिष्ट हैं, अतः कोई अनुपपत्ति नहीं तो ऐसा नहीं कहना, क्यों ? मातृवृत्ति सुखादिका गर्भस्थ वालकसे अनुसन्धानका आपात होनेसे=यहाँपर माताका उपाधिभूत शरीर और गर्भशायिपुत्रका उपाधिभूत शरीर ये दोनों संश्लिष्ट हैं, अतः माताके सुखादिका गर्भस्थ वालकको अनुसन्धान होना चाहिए। और महाभारतमें—उठाये हैं आयुध भुजदण्डोंसे जिन्होंने ऐसे जो कवन्ध हैं वे भी पतित जो स्वशिर तादृश शिरोऽवस्थित इन्द्रियोंसे देखते हुए युद्धमें शत्रुओंको गिराते थे । इत्यादि विभक्त होनेपरभी अनुसन्धानकी उक्तिसे, इति चेन्न; क्योंकि हम लोग यत्किञ्चित् उपाधिमात्रको अननुसन्धानका प्रयोजक नहीं कहते हैं, किन्तु अन्तःकरणरूप जो उपाधि उसके भेदको या अविद्यारूप जो उपाधि उसके भेदको अननुसन्धानका प्रयोजक कहते हैं वह भेद तो कवन्धमें तथा योगीमें नहीं है, तिससे तत्र=कवन्धमें और योगीमें अनुसन्धान होता है और चैत्रमैत्रादिमें तो है, अतः यहाँ अननुसन्धान है । एतेनेति । शरीररूप उपाधिभेदको अननुसन्धानका प्रयोजकत्व होनेपर बाल्यानुभूतका यौवनमें, और जातिका स्मरण है जिसको ऐसे पुरुषसे पूर्वजन्मानुभूतका, और योगीसे नानाशरीरोंमें अनुभूतका स्मरण न होगा, यह कथन खण्डित हुआ; एतेनके=अर्थको स्पष्ट करते हैं—शरीरके भेदको तत्र=अननुसन्धानमें अप्रयोजकत्व होनेसे; और योगी तथा जातिस्मर्ता इन्होंमें अन्तःकरणका ऐक्य होनेसे ।

नच—चैतन्यैक्ये अन्तःकरणभेदस्य नाननुसन्धानप्रयोजकत्वम्, चक्षुरादिकरणभेदेऽप्यनुसन्धानदर्शनादिति—वाच्यम्; अन्यकरणभेदेन तथादर्शनेऽपि अन्तःकरणभेदस्य तदक्याध्यासापन्ने अननुसन्धानप्रयोजकत्वं कल्प्यते, अन्यथा ब्रह्मैक्यस्य जीवे श्रुतिसिद्धतया सर्वानुसन्धानापत्तेः। नच अन्तःकरणस्य प्रत्यहं सुषुप्तौ विलयेन पूर्वदिनानुभूतस्याननुसन्धानापत्तिरिति—वाच्यम् संस्कारात्मनावस्थितस्यैव पुनरुद्बोधेन तत्रान्तःकरणभेदाभावात् नच—एवं सुषुप्तप्रलीनमुक्तानामननुसन्धानप्रयोजकान्तःकरणभेदाभावात् संसारिदुःखानुसन्धानापत्तिरिति—वाच्यम् तेषामनुसन्धानप्रयोजकान्तःकरणैक्याध्यासरूपसामग्रीविरहात्। नहि प्रतिबन्धकमात्रेण कार्यविरहः किन्तुसामग्रीविरहेणापि।

नचेति। चैतन्यका ऐक्य होनेपर अन्तःकरणके भेदको अननुसन्धानका प्रयोजकत्व नहीं है, चक्षुरादिरूप करणोंका भेद होनेपरभी अनुसन्धानके देखनेसे इति नच वाच्यम्, क्यों ? अन्यकरणके भेदसे अनुसन्धानके देखनेपरभी अन्तःकरणके भेदको अन्तःकरणैक्याध्यासापन्नमें अननुसन्धानका प्रयोजकत्व कल्पन किया जाता है अन्यथा ब्रह्मके ऐक्यको जीवम श्रुतिसिद्धत्व होनेसे, सर्वके अनुसन्धानकी आपत्तिसे। नचेति। अन्तःकरणका प्रतिदिवस सुषुप्तिमें लय होनेसे, पूर्वदिनमें अनुभूतके अननुसन्धानकी आपत्ति है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? संस्कारात्मना अवस्थित अन्तःकरणका ही पुनरुद्बोध होनेसे तत्र=उक्त स्थलमें अन्तःकरणके भेदके अभावसे। नचेति। ऐसा होनेपर सुषुप्त तथा प्रलीन एवं मुक्त इन्होंको अननुसन्धानका प्रयोजक जो अन्तःकरणका भेद उस भेदके अभावसे संसारीके दुःखोंके अनुसन्धानकी आपत्ति है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? उन्होंमें अनुसन्धानका प्रयोजक जो अन्तःकरणैक्याध्यासरूपसामग्री उस सामग्रीके अभावसे। क्योंकि प्रतिबन्धकसे ही कार्यका विरह नहीं होता है, किन्तु सामग्रीके विरहसेभी।

नच—एवं मुक्तस्य स्वरूपसुखानुभवोऽपि न स्यादिति—वाच्यम्; तस्याजन्यत्वेनान्तःकरणानपेक्षत्वात्, जीवविभाजकोपाध्यज्ञानभेदाभेदाभ्यामनुसन्धानाननुसन्धानोपपत्तेश्च। नच—ज्ञानप्रागभाववदज्ञानस्यापि भेदाभेदयोस्तत्राप्रयोजकत्वम्; यावन्ति ज्ञानानि तावन्त्यज्ञानानीति मते एकस्मिन्नपि जीवे ब्रह्मविषयकाज्ञानानां भिन्नत्वेनानुसंधानविरहप्रसङ्ग इति—वाच्यम्; ज्ञानप्रागभावानां ज्ञानसमसङ्ख्याकज्ञानानां च जीवविभाजकत्वाभावेनानुसन्धानादावप्रयोजकत्वात्। यत्तु—मुक्तस्यैवं संसारदुःखानुसन्धानापत्तिः। अविद्यारूपोपाधिभेदाननुसन्धाने स्वरूपसुखस्याप्यननुभवापातः—इति तन्न; वैषयिकसुखानुसन्धाने तस्य तन्त्रत्वेन स्वप्रकाशस्वरूपस्फुरणे तदनपेक्षत्वात्।

ऐसा होनेपर मुक्तको स्वरूपभूत सुखका अनुभवभी न होगा, इति नच वाच्यम; क्यों ? तस्य=स्वरूप सुखानुभवको अजन्यत्व होनेसे अन्तःकरणके अनपेक्षत्वसे और जीवत्वविभाजक जो उपाधिरूप अज्ञान उस अज्ञानके भेदसे तथा अभेदसे अननुसन्धान तथा अनुसन्धानकी

यथाक्रम उपपत्ति होनेसेभी । नचेति । ज्ञानप्रागभाववत्=एक ही पुरुषमें अनेक ज्ञानोंके प्रागभावोंका सत्त्व होनेपरभी अनुसन्धान देखने जैसे प्रागभावोंका भेद अननुसन्धानका प्रयोजक नहीं है, तैसे अज्ञानकाभी भेद अननुसन्धानका प्रयोजक नहीं है, और अज्ञानका अभेद अनुसन्धानका प्रयोजक नहीं है,—अज्ञान भेदाभेदोंमें अननुसन्धान तथा अनुसन्धानका प्रयोजकत्व नहीं है; जितने ज्ञान हैं उतने अज्ञान हैं, इस मतमें एक ही जीवमें ब्रह्मविषयक अज्ञानोंको भिन्नत्व होनेसे अनुसन्धानके विरहका प्रसङ्ग है, इति नच वाच्यम् ; क्यों ? ज्ञानके प्रागभावोंको और ज्ञानसमसङ्ख्याक अज्ञानोंको जीवविभाजकत्व न होनेसे अनुसन्धानादिमें अप्रयोजकत्व होनेसे । और जो कहा है कि, ऐसा होनेपर संसारदुःखके अनुसन्धानकी आपत्ति है, अविद्यारूप जो उपाधि उसके भेदका अननुसन्धान होनेपर स्वरूपसुखकेभी अननुभवका आपात है, तन्न=वह ठीक नहीं है, क्यों ? विषयजन्यसुखदिकेभी अनुसन्धानमें तस्य=अविद्याभेदके अननुसन्धानको तन्त्रत्व होनेसे स्वप्रकाशस्वरूपस्फुरणमें तदनपेक्षत्व होनेसे=सामग्रीके अभावसे मुक्तको संसारदुःखके अनुसन्धानकी आपत्ति नहीं और वैषयिक सुखमें तद्विषयक अविद्यावृत्तिरूप अनुसन्धानकी अपेक्षा होनेपरभी स्वरूपभूत सुखमें उसकी अपेक्षा नहीं है ।

ननु—एवमनेकाविद्यासम्बन्धस्य दुःखानुसन्धानस्वरूपस्यानर्थस्य च विशिष्टगतत्वे बन्धमोक्षयोर्वैयधिकरण्यापातेन शुद्धगतत्वे वाच्ये यच्छुद्धं चैत्रीयदुःखानुसन्धातृ तदेव मैत्रीयदुःखानुसन्धात्रिति कथमनुसन्धानाननुसन्धानव्यवस्थेति—चेन्न; अविद्यात्मकबन्धनिवृत्त्यात्मकमोक्षस्य शुद्धगतत्वेपि दुःखाद्यनुसन्धातृत्वस्य उपहितवृत्तितया शुद्धभेदापादनायोगात् । नच संसारस्य शुद्धगतत्वे ब्रह्मणोऽपि संसारित्वापत्तिः; विम्बप्रतिविम्बयोरवदातत्वश्यामत्ववत् घटाकाशमहाकाशयोः परिच्छिन्नत्वापरिच्छिन्नत्ववत् एकस्यैव नभसस्तत्तत्कर्णपुटावच्छेदेन तत्र तत्र श्रोत्रतावच्च औपाधिकभेदेन संसारित्वासंसारित्वव्यवस्थोपपत्तेः । अतएव दुःखानुसन्धानरूपस्यानर्थस्य उपहितनिष्ठत्वेन तस्य कल्पितत्वेन बद्धस्य निवृत्तिरेव, नतु मोक्ष इत्यापात इति—निरस्तम्; उपाधेः कल्पितत्वेन निवृत्तावप्युपाधयेस्याकल्पिततया तन्निवृत्त्ययोगान्मोक्षान्वयोपपत्तेः ।

शङ्कते नन्विति । एवम् अविद्याके भेद तथा अभेदको अननुसन्धान और अनुसन्धानके प्रति प्रयोजकत्व होनेपर अनेक जो अविद्यायें उन्होंके सम्बन्धको और दुःखानुसन्धानरूप अनर्थको विशिष्टगतत्व होनेपर बन्ध तथा मोक्ष इन दोनोंके वैय्यधिकरण्यके आपातसे, शुद्धगतत्वे वाच्ये=अनेकाविद्यासम्बन्धको और दुःखानुसन्धानरूप अनर्थको शुद्धगतत्ववाच्य होनेपर जो शुद्धचैत्रीयदुःखका अनुसन्धाता है वही शुद्धमैत्रीयदुःखकाभी अनुसन्धाता है, अतः अनुसन्धान तथा अननुसन्धान इनदोनोंकी व्यवस्था है, इति चेन्न; अविद्यात्मक जो बन्ध तादृश बन्धकी निवृत्त्यात्मक जो मोक्ष उस मोक्षको शुद्धगतत्व होनेपरभी दुःखादिके अनुसन्धातृत्वको उपहितवृत्तित्व होनेसे शुद्धमें भेदके आपादनके अयोगसे । नचेति । संसारको

शुद्धगतत्व होनेपर ब्रह्मकोभी संसारित्वकी आपत्ति है। नच=यह आपत्ति नहीं है, क्यों ? बिम्ब तथा प्रतिबिम्ब इन दोनोंमें क्रमशः अवदातत्व और श्यामत्वकी तरह घटाकाश तथा महाकाश इन दोनोंमें क्रमशः परिच्छिन्नत्व तथा अपरिच्छिन्नत्वकी तरह, और एकही गगनको तत्तत्कर्णपुटावच्छेदेन श्रोत्रतावत् औपाधिकभेदसे संसारित्व तथा असंसारित्व इन दोनोंकी व्यवस्थाकी उपपत्तिसे। अतएवेति। दुःखानुसन्धानरूप जो अनर्थ उस अनर्थको उपहितनिष्ठत्व होनेसे तस्य=उपहितको कल्पितत्व होनेसे बद्ध की निवृत्ति ही होगी, नकि मोक्ष यह आपत्ति है, यह कथन निरस्त हुआ अतएव शब्दके अर्थको दिखलाते हैं—उपाधिको कल्पितत्व होनेसे उपाधिकी निवृत्ति होनेपरभी उपधेयको अकल्पितत्व होनेसे तन्निवृत्त्ययोगात्=उपहितकी निवृत्तिके अयोगसे मोक्षमें अन्वयकी उपपत्तिसे।

नच–प्रतिबिम्बस्य छायावद्वस्त्वन्तरत्वेनाकाशस्यापि त्वन्मतेऽपि कार्यद्रव्यतया सावयवत्वेन तैजसाहङ्कारकार्याणां श्रोत्राणां स्वतएव भिन्नत्वेन दृष्टान्तासम्मतिरिति–वाच्यम्; प्रतिबिम्बे वस्त्वन्तरत्वस्य निरसिष्यमाणत्वात् आकाशश्रोत्रभावस्य पररीत्या दृष्टान्तत्वात् 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तंभोक्तेत्याहुर्मनीषिणः' इति श्रुतेर्विशिष्टस्यैव भोक्तृत्वात् तस्य भिन्नत्वात् व्यवस्थेति कौमुद्युक्तप्रकारेणापि अनुसान्धानाननुसन्धानोपपत्तेश्च। अतएव शुद्धचिन्मात्रगतत्वे तत्र भेदाप्रतीत्या भेदस्य कल्पितस्याप्यभावः, भावे वा भेदस्यैवव्यवस्थारूपस्वकार्यकारिणो वन्हावुष्णत्ववत् धर्मिज्ञानाबाध्यत्वम् अभेदस्य त्ववस्थारूपस्वकार्यकारिणोऽनुष्णत्ववन्मिथ्यात्वमित्यापाततः, आविद्यकभेदहीनस्य मुक्तस्य संसारिदुःखानुभवापातश्च इति–निरस्तम्; व्यवस्थायाः स्वसमानसत्ताकभेदकार्यत्वेन स्वाधिकसत्ताकभेदेऽनाक्षेपकत्वात्, अव्यवस्थायाः शुद्धचैतन्याभेदकार्यत्वेन तदकारित्वप्रयुक्तमिथ्यात्वस्यापादयितुमशक्यत्वात्। उपाध्यभेदस्य तत्र तन्त्रत्वात्।

शङ्कते नचेति। प्रतिबिम्बको छायाकी तरह वस्त्वन्तरत्व होनेसे, और आकाशकोभी तुम्हारे मतमें कार्यद्रव्यत्वप्रयुक्तसावयवत्व होनेसे और तैजस अहङ्कारके कार्य्य श्रोत्रोंको स्वतः ही भिन्नत्व होनेसे, दृष्टान्तोंमें सम्मति नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? प्रतिबिम्बमें वस्त्वन्तरत्वको पराकरिष्यमाणत्व होनेसे, और आकाशमें श्रोत्रभावको तार्किकादिरीत्या दृष्टान्तत्व होनेसे। आत्मा इन्द्रिय मन ये तीनों, युक्तम्=मिलित हुए भोक्ता हैं, ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं (कठो० ३।४) इस श्रुतिसे विशिष्ट=इन्द्रियमनोयुक्त आत्माको ही भोक्तृत्व होनेसे तस्य=विशिष्टको भिन्नत्व होनेसे व्यवस्था है इत्याकारक जो कौमुदीकथितप्रकार है, उस प्रकारसेभी अनुसन्धान तथा अननुसन्धान इन दोनोंकी उपपत्ति होनेसे। अतएवेति। अनर्थको शुद्धचिन्मात्रगतत्व होनेपर तत्र=शुद्ध चिन्मात्रमें भेदकी अप्रतीतिसे कल्पितभेदकाभी अभाव है, भावे वा=और भेदका शुद्ध चिन्मात्रमें भाव होनेपर तो व्यवस्थारूपस्वकार्य्यकारि=अनुसन्धान तदभावरूपा जो व्यवस्था तद्रूप जो स्वकार्य तत्कारीभेदको ही वह्निमें उष्णत्ववत्

धर्मिज्ञानसे अबाध्यत्व है, और व्यवस्थारूप जो स्वकार्य्य तदकारी अभेदको अनुष्णत्ववत् मिथ्यात्वका आपात है और आविद्यकभेदहीन जो मुक्त उस मुक्तको संसारीके दुःखोंके अनुभवका आपात है यह कथन निरस्त हुआ, अतएव शब्दका अर्थ दिखलाते हैं=व्यवस्थाको व्यवस्थासत्तासमानसत्ताक जो भेद तादृश भेदका कार्यत्व होनेसे, स्वाधिकसत्ताकभेदमें आक्षेपकत्व न होनेसे, और अव्यस्थाको शुद्धचैतन्यका जो अभेद तादृश अभेदका अकार्य्यत्व होनेसे तदकारित्व=अव्यवस्थाऽकारित्वप्रयुक्त मिथ्यात्वको आपादन करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे, उपाधिके अभेदको ही तत्र=अननुसन्धानकी व्यवस्थाके अभावमें तन्त्रत्व होनेसे।

किञ्चोपाधिकल्पितांशजीवानां नानुसन्धानमापद्यते, अंशिनो ब्रह्मणो वा। नाद्यः हस्तावच्छिन्नेन पादावच्छिन्नदुःखाद्यननुसन्धानात्। नच—न वयं भोगायतनानां साङ्कर्यमापादयामः येन पादे मे वेदना शिरसि मे सुखमिति न स्यात् किन्त्वनुसन्धानमात्रम् तच्चांशानामस्त्येव, अन्यथा चैत्रदेहलग्नकण्टकोद्धरणाय मैत्रस्येवपादलग्नकण्टकोद्धरणाय हस्तस्य व्यापारो न स्यादिति—वाच्यम्, पादावच्छिन्नदुःखस्य हस्तावच्छिन्ने अनुत्पादनवत् चैत्रीयदुःखाद्यनुसन्धानस्य मैत्रे अनुत्पादः। हस्ते दुःखसामग्रीप्रयोजकसामग्रीविरहवत् मैत्रे अनुसन्धानप्रयोजकोपाध्यैक्याभावात्। तथाच हस्तावच्छेदेन नानुसन्धानमस्त्येवेति न तत्र व्यापाराभावापत्तिः। नान्त्यः तस्याभोक्तृत्वेन भोगाप्रसङ्गात्, दुःखादिज्ञानमात्रस्य च सर्वज्ञे तस्मिन्निष्टत्वात्। नच भोक्तृजीवाभिन्नत्वेन ब्रह्मणोऽपि भोक्तृत्वापत्तिः बिम्बप्रतिबिम्बवद्व्यवस्थोपपत्तेः अनुसन्धानस्यावच्छिन्नगततया शुद्धब्रह्मण्यापादनायोगाच्च। न चैतावताबन्धमोक्षयोर्वैयधिकरण्यम् अविद्यात्मबन्धस्य शुद्धगतत्वेन सामानाधिकरण्योपपत्तेः। अवच्छिन्नस्यानुसन्धातृत्वेऽप्यवस्थात्रयानुस्यूताविद्यावच्छिन्नद्वारा शुद्धे अनुसन्धातृत्वस्येष्टत्वात् अनेन जीवेनेत्यादिश्रुतेः।

किञ्चेति। उपाधिकल्पितांश जो जीव हैं, उन्होंको अनुसन्धानका आपादन किया जाता है, या अंशिभूत ब्रह्मको, नाद्यः=आद्यपक्ष नहीं बन सकता है, हस्तावच्छिन्नसे पादावच्छिन्न जो दुःख उसका अनुसन्धान न होनेसे। नचेति। भोगके आयतनोंमें हम साङ्कर्यका आपादन नहीं करते हैं, जिससे कि, मेरे पादमें वेदना है और शिरमें सुख है, यह अनुभव न हो, किन्तु अनुसन्धानमात्रका आपादन करते हैं और वह तो अंशोंको है ही अन्यथा चैत्रदेहमें लग्न कण्टकके उद्धरणके लिए जैसे मैत्रकी प्रवृत्ति नहीं होती है तैसे पैरमें लगेहुए काँटेके निकालनेके लिए हाथका व्यापार न होगा, इति नच वाच्यम् क्यों? जैसे पादावच्छिन्न दुःखका हस्तावच्छिन्नमें उत्पाद नहीं होता है तैसे चैत्रीय दुःखादिके अनुसन्धानका मैत्रमें उत्पाद नहीं होता है, हस्तमें जैसे पादावच्छिन्नदुःखप्रयोजकसामग्रीका विरह है, तैसे मैत्रमें अनुसन्धानप्रयोजक जो उपाध्यैक्य उसका अभाव होनेसे। तथाच हस्तावच्छेदेन=हस्तघटितशरीरावच्छेदेन अनुसन्धानम्=जो मैं पादावच्छेदेन दुःखी हूँ इत्याकारक अनुसन्धान है ही

अतः तत्र=हस्तमें पादलग्नकण्टकोद्धरणके लिए व्यापाराभावकी आपत्ति नहीं। नान्त्यः= अंशिभूतब्रह्मको अनुसन्धानका आपादन है यह अन्तिमपक्षभी ठीक नहीं क्यों ? तस्य= अंशिभूतब्रह्मको भोक्तृत्व न होनेसे भोग=उक्तानुसन्धानरूप भोगके अप्रसङ्गसे। और दुःखादिज्ञानमात्रको तो उस सर्वज्ञमें दृष्टत्व है तावता कोई अनुपपत्ति नहीं; नचेति। भोक्ता जो जीव उसके साथ अभिन्नत्व होनेसे ब्रह्मकोभी भोक्तृत्वकी आपत्ति है नच=यह आपत्ति नहीं है; क्यों ? बिम्बप्रतिबिम्बकी तरह व्यवस्थाकी उपपत्ति होनेसे। और अनुसन्धानको अवच्छिन्नगतत्व होनेसे शुद्धब्रह्ममें आपादनके अयोगसेभी। एतावता बन्ध तथा मोक्ष इन दोनोंका वैयधिकरण्य है नच=वैयधिकरण्य नहीं है, क्यों ? अविद्यात्मक बन्धको शुद्धगतत्व होनेसे सामानाधिकरण्यकी उपपत्तिसे, और अवच्छिन्नको अनुसन्धातृत्व होनेपरभी अवस्थात्रयमें अनुस्यूत जो अविद्या तादृश अविद्यावच्छिन्नद्वारा शुद्धमें अनुसन्धातृत्वको इष्टत्व होनेसे, अनेन जीवेन (छा० ६।३।२) इत्यादि श्रुतिसे।

किञ्च स्वकर्णपुटपरिच्छिन्ननादोपलम्भे भागान्तरवर्तिनादानुपलम्भः तथा सुखदुःखाद्युपलम्भानुपलम्भौ। नच—आत्मभेदे कर्णपुटानां तत्तदीयत्वनियमकवदेकात्मवादे सर्वदेहानां स्वीयत्वेन तत्तदीयनियामकाभावेन व्यवस्थानुपपत्तिरिति—वाच्यम्; तवात्मभेदेनेवावच्छेदकाज्ञानादिभेदेन मम व्यवस्थोपपत्तेः। किञ्च व्यवस्थया भेदं वदन् प्रष्टव्यः केयं व्यवस्था ? न तावद्धर्मभेदः; एकस्मिन्नेव सुखदुःखदर्शनेन व्यभिचारात् भिन्नाश्रयधर्मोक्तौ अन्योन्याश्रयात् विरुद्धधर्मोक्तौ तु विरुद्धत्वस्य सहानवस्थानरूपत्वे असिद्धेः बाध्यबाधकभावरूपत्वे तस्यैकाश्रयत्वेनोपपत्त्या भेदासाधकत्वात्। नाप्यनुसन्धानाननुसन्धाने, तयोरुक्तेन प्रकारेण उपाधिभेदेनोपपत्तेरात्मभेदासाधकत्वस्योक्तत्वात्। अत एव—बन्धमुक्त्यादिव्यवस्थापि न स्वाभाविकभेदसाधनाय तत्तदुपाध्युपगमाभ्यामेव व्यवस्थोपपत्तेः। नचोपाधेरप्युपहितनिष्ठत्वेनात्माश्रयादिदोषः उपाधेरविशेषणत्वेन व्यक्त्यन्तरानपेक्षत्वेन चात्माश्रयादिचतुर्णामनवकाशात्।

किञ्चेति। जैसे स्वकर्णसे परिच्छिन्न नादका उपलम्भ होनेपर अन्यभागमें वर्ति नादका अनुपलम्भ है तैसे सुखदुःखादिकेभी उपलम्भ अनुपलम्भ होते हैं। नचेति। आत्माओंका भेद होनेपर जैसे कर्णपुटोंकी तत्तदीयत्वका नियम है तैसे एकात्मवादमें सर्व देहोंको स्वीयत्व होनेसे तत्तदीयत्वके नियमके अभावसे व्यवस्थाकी अनुपपत्ति है, इति नच वाच्यम् क्यों ? तुम्हारे मतमें जैसे आत्मभेदसे व्यवस्था होती है तैसे हमारे मतमें अवच्छेदकाज्ञानादिके भेदसे व्यवस्थाकी उपपत्ति होनेसे। किञ्चेति। व्यवस्थासे भेदको कहता हुआ पूछनेके लायक है कि,— 'यह व्यवस्था क्या है'—धर्मभेदरूप व्यवस्था तो नहीं बन सकती है, एकमें ही सुखके तथा दुःखके देखनेसे व्यभिचार होनेसे, भिन्न जो आश्रय तादृश आश्रयमें रहनेवाला धर्म तादृश धर्मकी उक्ति होनेपर अन्योन्याश्रय है, और विरुद्ध धर्मकी उक्ति होनेपर तो विरोधको सहान-

वस्थानरूपत्व होनेपर असिद्धि है और वाध्यवाधकभावरूपत्व होनेपर तस्य=विरुद्धत्वरूप विरोधको एकाश्रयत्वेन उपपन्न होनेसे भेदका असाधकत्व होनेसे । अनुसन्धान तथा अननुसन्धान ये दोनोंभी भेदके साधक नहीं तयोः=उक्त अनुन्धान अननुसन्धान इन दोनोंको उक्त प्रकारसे उपाधिभेदसे उपपन्न होनेसे इन्होंमें आत्मभेदके असाधकत्वको उक्तत्व होनेसे । अत एवेति । वन्धमुक्तिकी व्यवस्थाभी स्वाभाविक भेदसाधनके लिए नहीं है तत्तदुपाधिके उपगमसे तथा अपगमसे वन्धकी तथा मुक्तिकी व्यवस्थाको उपपन्न होनेसे उपाधिकोभी उपहितनिष्ठत्व होनेसे आत्माश्रयादि दोष है=उपाधिको स्वोपहितनिष्ठत्व होनेपर आत्माश्रय है, इस उपाधिको द्वितीयोपाध्युपहितनिष्ठत्व होनेपर और द्वितीयको एतदुपहितनिष्ठत्व होनेपर अन्योन्याश्रय है, द्वितीयादिको तृतीयाद्युपहितनिष्ठत्व होनेपर चक्रका तथा अनवस्था है, नच= आत्माश्रयादिरूप दोष नहीं है, क्यों ? उपाधिको अविशेषणत्व होनेसे और व्यक्त्यन्तरानपेक्षत्व होनेसे, स्वोपहितनिष्ठत्व होनेसे आत्माश्रयादि चार दोषोंको अवकाश न होनेसे ।

एतेन शुद्धनिष्ठत्वे किमेकैकोपाध्यपगमो मुक्तिः उत सर्वोपाध्यपगमः, नाद्यः सदामुक्तिरेव न तु वन्ध इत्यापातात्, नान्त्यः, अधुना वन्ध एव न कस्यापि मुक्तिरित्यापातादिति–निरस्तम् । येनोपाधिना यस्य चैतन्यस्य परिच्छिन्नत्वं तस्मिन्चैतन्ये तदुपाध्यपगमस्यैव मुक्तित्वे नानाजीववादे पूर्वोक्तदोषानवकाशात्, एकजीववादे सर्वोपाध्यापगमस्यैव मुक्तितया इदानीं मुक्त्यभावस्येष्टत्वात् । ननु–उपाधेः कथं भेदकत्वम्; तथाहि उपाधिः किमेकदेशेन संवध्यते कृत्स्नेन वा; आद्ये त्वन्मते स्वाभाविकांशाभावेनौपाधिकत्वं वाच्यम् तथाचानवस्था अन्त्ये न भेदकता, कृत्स्नस्यैकोपाधिग्रस्तत्वात् गगनादावपि स्वाभाविकांशाभावे घटाद्युतसम्वन्धो न स्यादेव। तदुक्तं ‘ न चेदुपाधिसम्वन्ध एकदेशेऽथ सर्वगः । एकदेशेऽनवस्था स्यात् सर्वगश्चेन्न भेदकः ॥ ’ इति–चेन्न; सर्वविकल्पासहत्वेन मिथ्याभूतस्यैवोपाधेर्मिथ्याभेदप्रयोजकत्वस्य प्रागेवोपपादनात् । यथाचात्मनां सर्वगतानां भेदे व्यवस्थानुपपत्तिः, तथा प्रपञ्चितं भाष्यकृद्भिः ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ जीवभेदानुकूलतर्कभङ्गः ।

एतेनेति । अनर्थको शुद्धनिष्ठत्व होनेपर क्या एक एक उपाधिका अपगम मुक्ति है, या सर्व उपाधिओंका अपगम मुक्ति है नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं वन सकता है, क्यों सर्वकालमें मुक्ति ही है वन्ध नहीं, इत्याकारक आपत्तिके होनेसे । नान्त्यः=अन्त्यपक्ष नहीं वन सकता है क्यों ? अधुना वन्ध ही है किसीकोभी मुक्ति नहीं, इस आपत्तिसे=एक उपाधिका अभाव सर्वकालमें मिल सकता है और सर्व उपाधिओंका अभाव तो अभीतक नहीं हुआ है, अतः प्रथमपक्षमें सर्वकालमें मुक्तिकी आपत्ति है, और द्वितीयपक्षमें अभीतक वन्धकी आपत्ति है; यह कथन निरस्त हुआ, एतेनका अर्थ दिखलाते हैं–जिस उपाधिसे जिस चैतन्यको परिच्छिन्नत्व है उस चैतन्यमें उस उपाधिके अभावको ही मुक्तित्व होनेसे, नानाजीववादमें पूर्वोक्तदोषके अनवकाशसे, और एक जीववादमें सर्व उपाधिओंके अभावको ही मुक्तित्व होनेसे इस कालमें

मुक्तिके अभावको इष्टत्व होनेसे। शङ्कते नन्विति। उपाधिको भेदकत्व कैसे है ? तथाहि= इसी विषयको स्पष्ट करते हैं–उपाधिका एकदेशसे सम्बन्ध होता है या सर्वसे आद्ये=आद्यपक्षमें तुम्हारे मतमें चैतन्यमें स्वाभाविक अंशके अभावसे अंशमें औपाधिकत्व वाच्य है तथाच अनवस्था है=अंशके सिद्ध होनेपर उसके साथ उपाधिका सम्बन्ध होगा, और उपाधिका सम्बन्ध होनेपर अंशकी सिद्धि है, यहाँपर यदि सम्बद्ध होनेवाली उपाधि तथा अंशत्वप्रयोजक उपाधि एक ही हो तो अनवस्था है और दोमें अन्योन्याश्रय है और तीनमें चक्रका और आगे बढनेमें अनवस्था है, अन्त्ये=कृत्स्नके साथ सम्बद्ध होता है, इस पक्षमें भेदकता नहीं है, क्यों ? कृत्स्नको एक उपाधिसे ग्रस्तत्व होनेसे और गगनादिमेंभी स्वाभाविक अंशका अभाव होनेपर घटादिरूप उपाधिका सम्बन्ध नहीं ही होगा। सो कहा है–नचेत्। यदि उक्त प्रकार नहीं मानते हो तो यह कहो कि–उपाधिका सम्बन्ध एकदेशमें है, या सर्व देशमें, यदि एकदेशमें कहो तो अनवस्था है, यदि सर्वगत कहो तो उपाधिभेदक न होगी। इतिचेन्न; क्यों ? सर्वविकल्पासहत्वप्रयुक्तमिथ्याभूत जो उपाधि है उस उपाधिको ही मिथ्याभेदके प्रति प्रयोजकत्वको प्रथम ही उपपादन होनेसे। और सर्वगत आत्माओंका भेद होनेपर जैसे व्यवस्थाकी अनुपपत्ति है, तैसे सविस्तर निरूपित है,–भाष्यकृत्से॥

इति सरलायां जीवभेदानुकूलतर्कभङ्गः।

अथ भेदपञ्चके अनुमानभङ्गः।

एवं जडेशभेदे जडजीवभेदे वा तात्त्विके प्रमाणं नास्ति (१) ब्रह्म, जीवो वा, अनात्मप्रतियोगिकधर्मिज्ञानाबाध्यभेदवान्, पदार्थत्वात् घटवत् (२) ब्रह्म जीवो वा घटप्रतियोगिकधर्मिज्ञानाबाध्यभेदवान्, घटासम्बन्धिकालसम्बन्धित्वात् तदसम्बन्धिदेशसम्बन्धित्वात् तज्जनकाजन्यत्वाद्वा पटवत् (३) ब्रह्म जीवो वा, जडप्रतियोगिकधर्मिज्ञानाबाध्यभेदवान्, जडानात्मकत्वात्, यदेवं तदेवम् यथा दूरस्थवनस्पत्योरेक इत्यादिषु पूर्वोक्तदोषानतिवृत्तेः परिच्छिन्नत्वस्य जडत्वस्य जन्यत्वस्य चोपाधित्वात् अप्रयोजकत्वाच्च। जीवो ब्रह्म वा, आत्मप्रतियोगिकतादृग्भेदाधिकरणम्, पदार्थत्वादित्याद्याभाससाम्याच्च। नच–घटाभेदे घटसिद्ध्यैव तत्सिद्ध्या वेदान्तवैयर्थ्यम् ब्रह्मणो जडत्वनित्यत्वाद्यापत्तिः, मुक्तिसमानाधिकरणबन्धाधारस्य जीवस्य जडवन्निवृत्त्यापत्तिः, गौरोऽहमित्यादिप्रतीतिश्च प्रमा स्यादित्यादिविपक्षबाधकाच्चाभाससाम्यादिकमिति–वाच्यम्–स्वप्रकाशत्वेन सर्वप्रत्ययवेद्यत्वेन च ब्रह्मसिद्धावपि सर्वभासाज्ञाननिवर्तकज्ञानाय वेदान्तसाफल्यस्य बहुधाभिधानात्।

अथ सरलायां भेदपञ्चकेऽनुमानभङ्गः।

इसी रीतिसे तात्विक जो जडेशका भेद उसमें और तात्विक जो जडजीवका भेद उसमें प्रमाण नहीं है। दूषित करनेके लिए प्रमाणोंका अनुवाद करते हैं–ब्रह्मेति। ब्रह्म या जीव,

अनात्मप्रतियोगिक जो धर्मिज्ञानावाध्यभेद तादृश भेदवाला है, पदार्थत्व होनेसे, घटवत्=घटमें पदार्थत्व है और घटादिरूपानात्मप्रतियोगिक घटरूपधर्मिज्ञानावाध्यभेदभी है। ब्रह्म या जीव, घटप्रतियोगिक जो धर्मिज्ञानावाध्यभेद तादृश भेदवाला है, घटका असम्बन्धि जो काल तादृश कालका सम्बन्धित्व होनेसे, तदसम्बन्धि=घटका असम्बन्धि जो देश तादृश देशका असम्बन्धित्व होनेसे, तज्जनक=घटका जो जनक उससे अजन्यत्व होनेसे पटवत्; ब्रह्म या जीव, जडप्रतियोगिक धर्मिज्ञानावाध्यभेदवाला है जडानात्मकत्व होनेसे, यदेवम्=जो जडानात्मकत्ववाला होता है तदेवम्=वह जडप्रतियोगिक धर्मिज्ञानावाध्यभेदवाला होता है जैसे दूरस्थवनस्पतिओंमें एक इत्यादि अनुमानोंमें उक्तविशेषणाप्रसिद्धिसिद्धसाधनादिरूप दोपोंकी निवृत्ति नहीं–जिनदोषोंसे उक्तानुमान दुष्ट हैं वे दोप इन्होंमेंभी हैं तैसे परिच्छिन्नत्व, जडत्व जन्यत्व इन्होंको उपाधित्वभी है और व्यभिचारवारकतर्कशून्यत्वभी है, और जीव या ब्रह्म, आत्मप्रतियोगिक धर्मिज्ञानावाध्यभेदवाला है, पदार्थत्व होनेसे घटवत् इत्यादि आभासका साम्यभी है, अतः ये अनुमान दुष्ट हैं। शङ्कते नचेति। घटाभेदे=घटादिरूपजडके साथ ब्रह्मका अभेद होनेपर घटादिरूपजडकी सिद्धिसे ही तत्सिद्ध्या=ब्रह्मकी सिद्धि होनेसे वेदान्तका वैयर्थ्य है, और जडके साथ अभिन्न होनेसे ब्रह्मको जडत्वकी तथा अनित्यत्वादिकी आपत्ति है, मुक्तिसमानाधिकर जो वन्ध तादृशवन्धका आधार जो जीव उस जीवको जडकी तरह निवृत्तिकी आपत्ति है=वन्ध और जीवका अभेद होनेसे वन्धवत् निवृत्तिकी आपत्ति है और मैं गौर हूँ, इत्यादि प्रतीति प्रमा हो जायगी=गौररूपदेहके साथ आत्माका अभेद होनेसे यह प्रतीति प्रमा हो जायगी, इत्यादिरूप विपक्षमें वाधक होनेसे आभास साम्यादिक नहीं है इति नच वाच्यम् क्यों? स्वप्रकाशत्वेन और सर्वप्रत्ययवेद्यत्वेन ब्रह्मकी सिद्धि होनेपरभी सविलास जो अज्ञान तादृश अज्ञानका निवर्त्तक जो ज्ञान तादृश ज्ञानके लिए वेदान्तके साफल्यका वहुधा कथन होनेसे।

घटादौ कल्पितव्यक्त्यन्तरेणाकल्पितभेदस्याभावेऽपि न यथा कल्पितव्यक्त्यात्मकत्वं तद्वत् प्रातिभासिकत्वं तद्वद्विशेषदर्शनेन निवृत्तिर्वा कल्पितव्यक्त्यन्तरेणैक्यज्ञानप्रमात्वं वा, तथा, प्रकृतेऽपि कल्पितजडेन तदभावेऽपि न तदात्मकत्वादिति न विपक्षवाधकस्याप्यप्रसरः एवं जडानामन्योन्यभेदेऽपि नानुमानम्। घटः तत्त्वतः शुक्त्यभिन्नो न शुक्तिसम्बद्धकालासम्बन्धित्वात्, तज्जनकाजन्यत्वात्तत्रारोपितरूप्यवत्, व्यावहारिकभेदस्य त्वयाप्यङ्गीकारेण नपक्षदृष्टान्ताद्यनुपपत्तिः, अन्यथा भेदसिद्ध्यसिद्ध्योर्दोपतदभावयोश्चाभेदेन स्वक्रियाविरोधः स्यादिति। अत्र तात्त्विकशुक्त्यभिन्नत्वरूपप्रतियोग्यप्रसिद्ध्या साध्याप्रसिद्धेः तत्त्वत इत्यस्य नेत्यत्र विशेषणत्वे सुतरामप्रसिद्धेः घटादिसमसत्ताकभेदमात्रेण हेतोरुपपत्त्या अप्रयोजकत्वाच्च, भेदस्य तात्त्विकत्वे वाधस्योक्तत्वेन वाधाच्च।

घटादिमें कल्पितव्यक्त्यन्तरसे अकल्पितभेदका अभाव होनेपरभी जैसे कल्पित व्यक्त्यात्मकत्व नहीं है, और तद्वत्=कल्पितव्यक्त्यन्तरवत् प्रातिभासिकत्वभी नहीं है, और तद्वत्=कल्पितव्यक्त्यन्तरवत् विशेषदर्शनसे निवृत्ति नहीं है, और कल्पितव्यक्त्यन्तरके साथ ऐक्यज्ञानमें

प्रमात्वभी नहीं है, तैसे–प्रकृतमेंभी कल्पित जड़के साथ तदभावेऽपि=अकल्पितभेदका अभाव होनेपरभी न तदात्मकत्वादि=जडात्मकत्वादि नहीं है अतः विपक्षबाधककाभी अप्रसर नहीं है। इस रीतिसे जडोंके परस्पर भेदमेंभी अनुमान प्रमाण नहीं है; दूषित करनेके लिए जडाजड-भेदसाधक अनुमान दिखलाते हैं, शुक्तिसे सम्बद्ध जो काल तादृश कालका असम्बन्धित्व होनेसे तज्जनक=शुक्ति जनकसे अजन्यत्व होनेसे तत्र=शुक्तिमें आरोपित रूप्यवत्, उक्तस्थलोंमें व्यावहारिकभेदका तुम मायावादिओंसेभी अङ्गीकार होनेसे पक्षकी तथा दृष्टान्तादिकी अनुपपत्ति नहीं, अन्यथा=व्यावहारिकभेदकेभी न अङ्गीकार करनेपर भेदकी सिद्धि तथा भेदकी असिद्धि इन दोनोंका अभेद होनेसे और दोष तथा दोषाभाव इन दोनोंका अभेद होनेसे, स्वक्रियाके साथ विरोध होगा=भेद माननेमें दूषण हैं अतः भेद नहीं सिद्ध होता है। इत्याकारक कथनरूप जो क्रिया है उसके साथ विरोध होगा, भेदासिद्धि और भेदसिद्धि इन दोनोंका अभेद होनेसे भेदासिद्धिसेही भेदसिद्धि होती है और दूषण तथा दूषणाभाव इन दोनोंका अभेद होनेसे दूषणसे ही दूषणाभावकी सिद्धि होती है, अतः स्वक्रिया व्याघात है। अत्र= इस अनुमानमें तात्त्विक जो शुक्त्यभिन्नत्व तादृशशुक्त्यभिन्नत्वरूप जो प्रतियोगी तादृश प्रतियोगीकी अप्रसिद्धिसे साध्यकी अप्रसिद्धि है, और 'तत्त्वतः' इस पदके अर्थका नैत्यत्र= इस पदके अर्थके साथमें=घटः, तात्त्विकाभाववान् इत्याकारक साध्य करनेपर–तत्त्वतः इसको नञर्थमें विशेषणत्व करनेपर सुतराम् अप्रसिद्धि है=अभेदमें तात्विकत्वको विशेषण बनानेमें तो ब्रह्मस्वरूप अभेदकी प्रसिद्धिकीभी सम्भावना है, और अभावमें तात्त्विकत्वको विशेषण बनानेमें उसकी प्रसिद्धिभी नहीं है; अतः सुतराम् असिद्धि है, यद्यपि ब्रह्मरूप अभाव तथाविध है तथापि सिद्धसाधनवारणके लिए द्वैतीको ब्रह्मरूपाभावसे। अपने अभावको पृथक् रखना आवश्यक है, और घटादिसमसत्ताकभेद ही से हेतुकी उपपत्ति होनेसे अप्रयोजकत्व है, और तात्त्विकत्वमें बाधकको उक्तत्व होनेसे बाध है अतः यह अनुमान दुष्ट है।

अनात्मा, स्ववृत्तिधर्मानाधारज्ञानबाध्यान्तर्गणिकभेदवान्, पदार्थत्वादात्मवत्, विपक्षे च दूरस्थवनस्पत्योः शुक्तिरूप्ययोश्चाभेदग्राहि प्रत्यक्षं न तत्त्वावेदकं स्यात् शुक्तिसंसारादिसांकर्यं च स्यादित्यादिबाधकमिति यत् तन्न; एकत्र घटे कल्पिता ये अनेके घटाः तेषु स्ववृत्तिधर्मानधिकरणघटज्ञानबाध्यभेदवत्सु व्यभिचारात्। यत्किञ्चित् स्ववृत्तिधर्मानाधारोक्तौ घटत्वानधिकरणपटज्ञानाबाध्यभेदेनात्मज्ञानबाध्येनार्थान्तरम्। स्ववृत्त्यशेषधर्मनाधारोक्तौ त्वन्मते ब्रह्मणोऽपि वाच्यत्वादिकेवलान्वयिधर्माधारत्वेन साध्याप्रसिद्धिः कल्पितेन सह तात्त्विकभेदाभाववत् तात्त्विकाभेदस्यापि अभावेन उदाहृतस्थले तत्त्वावेदकत्वसाङ्कर्यादीनामप्रसङ्गात्। यत्तु आत्मनामात्मानात्मनोश्च परस्परं तात्त्विकभेदे अनात्मा, स्वावृत्तिधर्माधिकरणप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदाधिकरणम्, पदार्थत्वादात्मवत्, पक्षे स्वावृत्तिधर्माधिकरणात्मा ततो भिन्नादात्मान्तराद्भिन्नत्वेन साध्यसिद्धिः। दृष्टान्ते च स्वावृत्तिधर्माधिकरणं जडं ततो भिन्नाज्जडान्तरात्भिन्नत्वेन साध्यसत्वमिति; तन्न;

अनात्मा, स्व=पक्षीभूततद्वृत्तिधर्मका अनाधार हुआ ईश्वर, उस अनाधारभूत ईश्वरका जो ज्ञान उस ज्ञानसे अबाध्य जो अन्तर्गणिक=अनात्मप्रतियोगिक भेद तादृशभेदवाला है, पदार्थत्व होनेसे आत्मवत्=जीववत्,-यहाँ स्ववृत्तिधर्मानाधारप्रतियोगिकभेदवान् इतना ही कहते तो ईश्वरके भेदको लेकर अर्थान्तर होगा, परस्पर जडोंके भेदकी सिद्धि न होती, अतः अन्तर्गणिक कहा वैसे व्यावहारिक भेदको लेकर अर्थान्तरवारणके लिए अनाधारज्ञानाबाध्य कहा दृष्टान्तरूप जीवमें स्वपदसे जीव लिया तद्वृत्ति धर्मका अनाधार हुआ पक्षीभूत अनात्मा, तज्ज्ञानाबाध्य अन्तर्गणिक भेद हुआ,-परस्परजीवभेद तद्वत्त्व है। विपक्षेच=जडोंमें अन्तर्गणिक=जडप्रतियोगिक भेदके न होनेपर अभेदके तात्त्विकत्वकी आपत्तिसे;-दूरस्थ दो वनस्पतिओंका अभेदग्राहिप्रत्यक्ष तथा शुक्तिरूप्योंके अभेदका ग्राहि प्रत्यक्ष तत्त्वावेदक होगा, और मुक्ति संसारका साङ्कर्यभी होगा, इत्यादि बाधक है, इति यत् तत् तु न; क्यों? स्ववृत्तिधर्मका अनधिकरण जो घट तादृश घटज्ञानसे बाध्य जो भेद तादृशभेदवाले जो एक घटमें कल्पित अनेक घट उन घटोंमें व्यभिचार होनेसे=स्वपदसे लिया कल्पित घट तद्वृत्ति धर्म हुआ प्रातिभासिकत्व तदनधिकरण हुआ व्यावहारिक घट उसके ज्ञानसे बाध्य जो भेद कल्पित घटोंका भेद तद्वत्त्व कल्पितघटोंमें है, तथाच कल्पित घट उक्तविध अबाध्य भेदवाले नहीं है, परन्तु वहाँ पदार्थत्वरूप हेतु है अतः व्यभिचार है, 'स्ववृत्तिधर्मानाधार' इससे यत्किञ्चित् जो स्ववृत्तिधर्म उसका जो अनाधार तादृश अनाधारकी उक्ति होनेपर यत्किञ्चिद्धर्मरूप जो घटत्व उसका अनधिकरण जो पट तादृश पटज्ञानाबाध्य जो आत्मज्ञान बाध्यभेद तादृश भेदसे अर्थान्तर है, और स्ववृत्ति जो अशेष धर्म तादृश धर्मके अनाधारकी उक्ति होनेपर तुम्हारे मतमें ब्रह्मकोभी वाच्यत्वादिरूप केवलान्वयिधर्माधारत्व होनेसे साध्यकी अप्रसिद्धि है, और कल्पितके साथमें जैसे तात्त्विक भेद नहीं है तैसे तात्त्विक अभेदकेभी अभावसे उदाहृत स्थलमें-दूरस्थ वनस्पत्यादिविषयक प्रत्यक्षादिस्थलमें तत्त्वावेदकत्वका और साङ्कर्यादिका अप्रसङ्ग होनेसे। यत्त्विति। आत्माओंके परस्पर तात्त्विकभेदमें आत्मा तथा अनात्मा इन दोनोंके परस्पर तात्त्विकभेदमें अनात्मा स्वावृत्तिधर्माधिकरणप्रतियोगिकप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदाधिकरणम्=स्व=घटादिमें अवृत्तिधर्माधिकरण हुआ चैत्र, तत्प्रतियोगिक और प्रतियोगीभूततज्ज्ञानाबाध्य जो भेद-चैत्रभेद तादृश भेदका अधिकरणम् यत् स्वम्=अधिकरण जो पक्षीभूत अनात्मरूपस्वरूप तादृश स्वमें अवृत्तिधर्मका अधिकरण हुआ मैत्र 'यहाँ तक आत्माओंका परस्पर भेद दिखलाया गया है' तादृश मैत्रप्रतियोगिक और मैत्रज्ञानाबाध्य जो भेद,-मैत्रभेद, तादृश भेदका अधिकरण है, इस अंशमें आत्मा तथा अनात्मा इन दोंका परस्पर भेद दिखलाया है, एतादृश अर्थानुरोधसे अन्तिमाधिकरणान्त एक पद बना दिया जाय तो ठीक मालूम होता है। पदार्थत्व होनेसे आत्मवत् पक्षे=पक्षमें स्वावृत्तिधर्माधिकरण हुआ उससे भिन्न जो आत्मान्तर ततः भिन्नत्वेन साध्यकी सिद्धि है, और दृष्टान्तमें स्वावृत्तिधर्माधिकरण हुआ जड़ उसस भिन्न हुआ जड़ान्तर ततः भिन्नत्वेन साध्यका सत्त्व है,-स्वशब्दसे लिया आत्मा तदवृत्तिधर्म हुआ घटत्व तदधिकरण हुआ घट तादृश घटप्रतियोगिक और प्रतियोगीभूत घटज्ञानाबाध्य जो भेद-घटभेद, तादृश भेदका

अधिकरण जो पक्षीभूत आत्मरूप स्वपदार्थ तद्वृत्ति धर्माधिकरण हुआ पट तादृश पटप्रतियोगिक और पटप्रतियोगिभूत पटज्ञानाबाध्य जो भेद--पटभेद तादृश भेदका अधिकरणत्व आत्मामें है, इस रीतिसे दृष्टान्तमें साध्यको घटाना चाहिए। इति यत् तत् तु न; क्यों ?

पक्षदृष्टान्तयोः स्वपदार्थप्रतियोगिपदार्थयोरननुगमेन व्याप्यत्वासिद्धेः अजडत्वस्योपाधित्वाच्च, जडत्वेन व्यतिरेकिणा सत्प्रतिपक्षाच्च। यदपि जीवस्य ब्रह्मतो जीवाच्च जडस्य सत्याभेदे पृथिवी ब्रह्मप्रतियोगिकधर्मिज्ञानाबाध्यभेदाधिकरणम् यदात्वाद्यनधिकरणम् तत्प्रतियोगिकप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदवती वस्तुत्वात्तोयवत् , अम्त्वादीत्यादीत्यादिशब्देन तत्तद्वादिनः प्रति तत्तद्वादिसिद्धाः पृथिवीत्वभिन्नाः जडनिष्ठधर्मा विवक्षिताः। पक्षे ब्रह्मभिन्नाज्जीवात् भिन्नत्वेन साध्यसिद्धिः, दृष्टान्ते तु ब्रह्मभिन्नपार्थिवभिन्नत्वेनेति, तन्न; अम्त्वाद्यनधिकरणत्ववत् जीवत्वानधिकरणेत्यपि विशेषणं दत्त्वा जीवब्रह्मभिन्नात्मनोऽपि साधनप्रसङ्गात् गन्धाधारत्वादिव्यतिरेकिणा सत्प्रतिपक्षसम्भवाच्च धर्मिपदविकल्पनिबन्धनदोषतादवस्थ्याच्च।

पक्ष तथा दृष्टान्त इन दोनोंमें स्वपदार्थ तथा प्रतियोगिपदार्थ इन दोनोंका अनुगम न होनेसे व्याप्यत्वासिद्धिसे तथा अजडत्वको उपाधित्व होनेसेभी, जडत्वेन व्यतिरेकिणा= अनात्मा, उक्तसाध्याभाववान् जडत्वात् यन्नैवम् तन्नैवम् यथा आत्मा इस व्यतिरेकव्याप्तिमत् हेतुसे सत्प्रतिपक्ष होनेसेभी इस हेतुसे वह हेतु सत्प्रतिपक्षित है इससेभी। जीवस्येति। ब्रह्मसे जीवके सत्यभेदमें और जीवसे जडके सत्यभेदमें, पृथिवी, ब्रह्मप्रतियोगिकधर्मिज्ञानाबाध्य जो भेद तादृश भेदका अधिकरण जो जलत्वादिका अनधिकरण तत्प्रतियोगिक जो प्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेद तादृश भेदवाली है, वस्तुत्व होनेसे नीरवत्=ब्रह्मप्रतियोगिक धर्मिरूपजीवज्ञानाबाध्यभेदका अधिकरण और जलत्वादिका अनधिकरण हुआ जीव तत्प्रतियोगिक और प्रतियोगिभूतजीवज्ञानाबाध्यभेद पृथिवीमें साध्य है इस अनुमानमें जलत्वाद्यनधिकरणपदसे ब्रह्मसे जीवका भेद सिद्ध होता है अवशिष्टसे जीवजडका भेद सिद्ध होता है इसीका स्पष्टीकरण किया जाता है-' अम्त्यादि ' एतद्घटक जो आदि शब्द है उस आदि शब्दसे तत्तद्वादिके प्रति तत्तद्वादिसिद्ध पृथिवीत्वसे भिन्न जडनिष्ठधर्म विवक्षित हैं। पक्षे=पृथिवीरूपपक्षमें ब्रह्मसे भिन्न जो जीव तादृश जीवसे भिन्नत्व होनेसे साध्यकी सिद्धि है-ब्रह्मप्रतियोगिकधर्मिरूपपृथिवीज्ञानाबाध्य जो भेद तादृश भेदकी अधिकरण और जलत्वादिकी अनधिकरण हुई पृथिवी तादृश पृथिवी प्रतियोगिक और प्रतियोगिभूतपृथिवीज्ञानाबाध्यभेद पानीयमें है ही ' इति यत् तत् अपि' न क्यों ? जैसे अम्त्वाद्यनधिकरणत्व विशेषण हैं तैसे जीवत्वानधिकरणम् इत्याकारकभी विशेषणदेकर जीव तथा ब्रह्म इन दोनोंसे भिन्न आत्माकेभी प्रसङ्गसे=अम्त्वसे अव्यवहित पूर्वमें जीवत्वके लगादेनेसे या 'जीवत्वानधिकरणम् ' इतना स्वतन्त्र लगा देनेसे जीवब्रह्मसे भिन्न आत्माकी सिद्धिका प्रसङ्ग है। गन्धाधारत्वादिव्यतिरेकिणा=पृथिवी उक्तसाध्याभाववती,

गन्धाधारत्वात्, यन्नैवम् तन्नैवम् यथा नीरम्, इस व्यतिरेकि हेतुसे सत्प्रतिपक्षके सम्भवसेभी और धर्मिपदविकल्पनिबन्धन जो दोप बतलाये हैं उन्होंके तादवस्थ्यसेभी ।

एतेन—जीवस्य ब्रह्मजीवान्तराभ्यां जीवाच्च जडस्यभेदे पूर्वप्रयोग एव जीवस्य जीवान्तराद्भेदसिद्ध्यर्थमन्तर्गणिकभेदवदित्यस्त्वानधिकरणेत्यत्र विशेषणं दत्त्वानुमानम् । अत्र च पक्षे ब्रह्मणः परस्परं च भिन्ना ज्जीवात् भिन्नत्वेन साध्यसिद्धिः दृष्टान्ते तु ब्रह्मणः परस्परश्च भिन्नात् पार्थिवात् भिन्नत्वेनेतिनिरस्तम्; जीवस्य ब्रह्मजीवान्तराभ्यां जडस्य च जीवात्, ब्रह्मणो जडाच्च भेदे पृथिवी ब्रह्मप्रतियोगिकधर्मिज्ञानाबाध्यभेदाधिकरणम् अस्त्वादि—अनधिकरणमन्तर्गणिकभेदवच्च तत्प्रतियोगिकप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदत्वे सति अस्त्वाद्यानधिकरणसंसारिधर्मिकधर्मिज्ञानाबाध्यभेदप्रतियोगिनी, वस्तुत्वादम्बुवदित्यत्र ब्रह्मणो जडादपि भेदार्थं पूर्वस्मादधिकमस्त्वानधिरणासंसारीत्यादिविशेपणम् । अत्र पक्षे अस्त्वाद्यनधिकरणमसंसारि ब्रह्म, तद्धर्मिकभेदप्रतियोगित्वेन साध्यसिद्धिः; दृष्टान्तेत्वस्त्वाद्यनधिकरणासंसारि पार्थिवम् तद्धर्मिकभेदप्रतियोगित्वेन ज्ञेयम् । अत्र जीवत्वानधिकरणत्वस्य अस्त्वानधिकरणेत्यत्र विशेपणत्वेन पूर्ववदाभाससाम्यात्, पाकजरूपाधिकरणत्वादिना सत्प्रतिपक्षाच्च ।

एतेनेति । ब्रह्मजीवान्तराभ्याम्=ब्रह्मसे जीवके भेदमें जीवान्तरसे जीवके भेदमें, और जीवसे जड़के भेदमें, पूर्वप्रयोगमें ही=पृथिवीपक्षक अव्यवहितपूर्वप्रयोगमें ही, 'अस्त्वाद्यनधिकरण' इत्यत्र=इसके पासमें=इससे अव्यवहित उत्तरमें 'अन्तर्गणिकभेदवच्च' यह विशेपण देकर अनुमान है=उक्त तीन भेदोंको सिद्ध करनेके लिए ऐसा अनुमानकरना,— पृथिवी ब्रह्मप्रतियोगिकधर्मिज्ञानाबाध्यभेदाधिकरणं यदस्त्वाद्यनधिकरणम् अन्तर्गणिकभेदवच्च तत्प्रतियोगिकप्रतियोगिज्ञानाबाध्यभेदवती वस्तुत्वात् नीरवत्; इस अनुमानसे दो भेद तो प्रथमही सिद्ध होते थे अब इस नवीन विशेपणसे जीवोंका परस्पर भेदभी सिद्ध हुआ, परस्पर भेदका नाम है अन्तर्गणिकभेद वह जीवरूप जो अस्त्वाद्यनधिकरण उसमें विशेपण है यहाँपर एक शब्दसे उत्तर और अन्तर्गणिकशब्दसे पूर्व, किसी किसी पुस्तकमें—जीवस्य जीवान्तराद्भेदसिद्ध्यर्थम्, इतना पाठ अधिक मिलता है वह अन्तर्गणिक भेदके निवेशका फल बतलाता है, और खण्डनग्रन्थमें नहीं है, द्वैती इस अनुमानका थोडासा स्पष्टीकरण करता है—अत्रेति । अत्र=इस अनुमानमें ब्रह्मसे भिन्न तथा परस्परभिन्न जो जीव तादृश जीवसे भिन्नत्व होनेसे पक्षमें साध्यकी सिद्धि है, और दृष्टान्तमें ब्रह्मसे भिन्न तथा परस्परभिन्न जो पार्थिव तद्भिन्नत्वेन साध्यकी सिद्धि है; इति निरस्तम्—दो भेदसाधक उक्त अनुमानमें जो दोप हैं वे सबके सब इस अनुमानमेंभी हैं, अतः यहभी उक्तदोपोंसे ही दूपित है । जीवस्येति । ब्रह्मसे जीवके भेदके लिए, और जीवान्तरसे जीवके भेदके लिए और जीवसे जड़के भेदके लिए और जड़से ब्रह्मके भेदके लिए 'पृथिवी' ब्रह्मप्रतियोगिकधर्मिज्ञा-

नाबाध्य जो भेद तादृशभेदाधिकरण जो जलत्वाद्यनधिकरण अन्तर्गणिकभेदवत्, तत्प्रतियोगिक प्रतियोगिज्ञानाबाध्य जो भेद तादृशभेदविशिष्टा हुई जलत्वाद्यनधिकरण जो असंसारि तादृश असंसारिधर्मिक धर्मिज्ञानाबाद्धय जो भेद तादृश भेदकी प्रतियोगिनी है, वस्तुत्व होनेसे सलिलवत् जो यह अनुमान है उस अनुमानमें जडसेभी ब्रह्मभेदके लिए पूर्वसे अधिक अप्त्वाद्यनधिकरणासंसारि—इत्यादि विशेषण हैं। अत्र=इस अनुमानमें अस्वाद्यनधिकरण असंसारि जो ब्रह्म तद्धर्मिकभेदप्रतियोगित्वेन पक्षमें साध्यकी सिद्धि है, और दृष्टान्तमें तो अप्त्वाद्यनधिकरण असंसारि पार्थिव है, तद्धर्मिकभेदप्रतियोगित्वेन साध्य ज्ञेय है। अत्र=यहाँपर अप्त्वाद्यनधिकरणम्। इसके पासमें जीवत्वानधिकरणत्वको विशेषणत्व होनेसे पूर्ववत् आभाससाम्यसे निरास है, और पाकजरूपाधिकरणत्वादिरूप व्यतिरेकिसे सत्प्रतिपक्ष है उससेभी निरास है। पृथिवी, उक्तसाध्याभाववती पाकजरूपाधिकरणत्वात्, यन्नैवम् तन्नैवम्; कीलालवत्। इसव्यतिरेकि हेतुसे सत्प्रतिपक्षित है—प्रथम हेतु। और धर्म्यादि पदको लेकर होनेवाले विकल्पके ग्राससेभी निरास है।

एवं भेदमात्रेऽपि नानुमानम्। ब्रह्म, भेदहीनं नावतिष्ठते स्वज्ञानाबाध्यभेदवद्वा, पदार्थत्वात्, घटवत् इति; मुक्त्यसहवृत्तित्वस्य जडत्वस्य चोपाधित्वात् स्वपदविकल्पग्रासाच्च। एतेन—अनात्मा स्वान्यज्ञानाबाध्यभेदाधिकरणम्, पदार्थत्वात् आत्मवदिति—निरस्तम्। ब्रह्मभेदो न सर्वनिष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगी ब्रह्मनिरूप्यत्वात् ब्रह्माभेदवदित्यत्र ब्रह्माभिन्नावृत्तित्वमुपाधिः; ब्रह्माभेदस्याब्रह्मनिरूप्यत्वेन तदनिरूप्यतया साधनवैकल्याच्च। ब्रह्मज्ञानं, स्वाबाध्यभेदवद्विषयकम्, ज्ञानत्वाच्छुक्तिज्ञानवदित्यत्रानात्मविषयत्वमुपाधिः। स्वपदेन ब्रह्मज्ञानोक्तौ तदबाध्यभेदाप्रसिद्ध्या साध्याप्रसिद्धिः, शुक्तिज्ञानोक्तौ सिद्धसाधनम्, घटो घटसंसर्गानवच्छिन्नप्रतियोगिताकपटादिधर्मिकत्रैकालिकाभावप्रतियोगि, द्रव्यत्वात्, पटवदित्यत्र काल्पनिकाभावस्यापि कालत्रयवृत्तित्वसम्भवेन सिद्धसाधनम्, घटसंसर्गानवच्छिन्नेतिवत्तादात्म्यानवच्छिन्नेत्यपि विशेषणं दत्त्वा पञ्चमाभावसाधनस्यापि प्रसङ्गश्च, विपक्षबाधकाभावस्य उभयत्र सत्वात्, समानाधिकरणकर्मप्रागभावसमानकालीनज्ञानबाधायोग्यो भेदः परमार्थसन् प्रातिभासिकत्वानधिकरणत्वे सत्यसत्त्वानधिकरणत्वात्, सत्त्वासत्त्वगोचरप्रमां प्रति साक्षाद्विषयत्वात्, आरोपितमिथ्याकत्वात् कल्पकरहितत्वात् स्वविषयकसाक्षात्कारात् पूर्वभावित्वात्, आत्मवत्।

एवमिति। इस रीतिसे भेदमात्रमेंभी अनुमान प्रमाण नहीं है। भेदमात्रसाधक अनुमानोंको दिखलाकर दूषित करते हैं—ब्रह्मेति। ब्रह्म, भेदसे रहित होकर नहीं अवस्थित होता है, अथवा ब्रह्म, स्वज्ञानसे अबाध्य जो भेद तादृश भेदवाला है, पदार्थत्व होनेसे घटवत्, इस अनुमानमें मुक्त्यसहवृत्तित्वको और जडत्वको उपाधित्व है, और स्वपदविकल्पग्रासभी है, अतः यह भेदमें प्रमाण नहीं है। एतेनेति। अनात्मा, स्वसे जो अन्य तादृश अन्यका जो ज्ञान

तादृश ज्ञानसे अबाध्य जो भेद तादृश भेदका अधिकरण है, पदार्थत्व होनेसे, आत्मवत् यह अनुमान निरस्त हुआ—उक्तानुमानमें प्रदर्शित उपाध्यादिरूप दोष इसमेंभी हैं अतः निरस्त हुआ। ब्रह्मभेद, सर्वनिष्ठ जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका प्रतियोगी नहीं है, ब्रह्मनिरूप्यत्व होनेसे ब्रह्माभेदवत्, यहाँपर ब्रह्मसे जो भिन्न तद्वृत्तित्व=उपाधि है, और ब्रह्माभेदको अब्रह्म-निरूप्यत्व होनेसे तदनिरूप्यतया=ब्रह्मनिरूप्यत्व न होनेसे साधनका दृष्टान्तमें वैकल्पभी है। अतः यह अनुमानभी ठीक नहीं। ब्रह्मज्ञान, स्वसे अबाध्य जो भेद तादृश भेदवद्विषयक है, ज्ञानत्व होनेसे शुक्तिज्ञानवत्, इस अनुमानमें अनात्मविषयत्व उपाधि है। और स्वपदसे ब्रह्म-ज्ञानकी उक्ति होनेपर ब्रह्मज्ञानसे अबाध्य जो भेद उसकी अप्रसिद्धिसे साध्यकी अप्रसिद्धि है, और शुक्तिज्ञानकी उक्ति होनेपर सिद्धसाधन है। भेदसाधक औरभी अनुमान दिखलाते हैं घट, घटसंसर्गानवच्छिन्नप्रतियोगिताक जो पटादिधर्मिक त्रैकालिक अभाव तादृश अभावका प्रतियोगी है, द्रव्यत्व होनेसे, पटवत्; यहाँपर अत्यन्ताभावको लेकर सिद्धसाधन न हो जाय एतदर्थ त्रैकालिकाभावमें संसर्गानवच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व विशेषण दिया है। अन्योन्याभावमें तादात्म्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व रहता है अतः सिद्धसाधन वारित हुआ, पटवत्=पटे पटो नास्ति, इत्याकारक प्रतीतिसे पटात्यन्ताभावका पटमें सत्त्व होनेसे पटधर्मिकपटप्रतियोगिकात्य-न्ताभावरूपत्रैकालिकाभावको पटसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व होनेसे घटसंसर्गानवच्छिन्न-प्रतियोगिताकत्वका उसमें सद्भाव है, अतः तादृश अभावप्रतियोगित्वरूपसाध्य पटमें है, इत्यत्र=इस अनुमानमें काल्पनिक अभावकोभी कालत्रयवृत्तित्वका सम्भव होनेसे सिद्धसाधन है, और घटसंसर्गानवच्छिन्न इतिवत्=इसकी तरह तादात्म्यानवच्छिन्न यहभी विशेषण देकर पञ्चमा-भावके साधनकाभी प्रसङ्ग है, विपक्षमें बाधकके अभावका उभयत्र सत्त्व होनेसे। समानाधि-करण=ज्ञानसमानधिकरणकर्मप्रागभावसमानकालीन जो ज्ञानबाधायोग्यभेद तादृश भेद पक्ष है, भेदकोही यदि पक्षकरें तो प्रातिभासिक भेदको लेकर बाध है—भेद तो प्रातिभा-सिक भेदभी है, परन्तु उसमें परमार्थसत्त्वरूप साध्य नहीं अतः बाध है, उसके वार-णार्थ बाधायोग्य कहा यदि बाधायोग्य ही कहें तो अद्वैतीके मतसे आश्रयासिद्धि है उसके वारणके लिए ज्ञानसमानाधिकरण जो कर्मप्रागभाव तादृश कर्मप्रागभावसमानका-लीनज्ञान, यह कहा है वहाँ अद्वैतीके मतमें ज्ञानसमानाधिकरणकर्मप्रागभावसमानकालीन जो 'अयं पटः' इत्यादि ज्ञान है तादृश ज्ञानबाधायोग्यत्व भेदमें है ही, क्योंकि अद्वै-तीके मतमें ब्रह्मज्ञानसे भेदका बाध होता है न कि 'अयं घटः' इत्यादिज्ञानसे और मोक्ष-साधनभूत ब्रह्मज्ञानमें ज्ञानसमानाधिकरणकर्मप्रागभावसमानकालीनत्व नहीं है फलतः आश्रया-सिद्धि वारित हुई, कर्मप्रागभावमें यदि ज्ञानसमानाधिकरण यह विशेषण न दें तो कर्मप्रागभावसे मुक्तमें होनेवाले कर्मप्रागभावका ग्रहण हो सकता है, तत्समानकालीनत्व भेदाबाधक 'अयं घटः' इत्यादिरूप इदानीन्तनज्ञानमें नहीं है अतः आश्रयासिद्धि होगी, जब ज्ञानसमानाधिकरणत्व प्रागभावमें विशेषण है तब अतीतकालीन व्यधिकरण मुक्तात्मवृत्ति कर्मप्रागभाव नहीं लिया जा सकता है, और तदभावप्रयुक्त आश्रयासिद्धिभी नहीं है, परमार्थ सत् है, प्रातिभासिकत्वान-

धिकरणत्वविशिष्टासत्त्वानधिकरणत्व होनेसे,=यहाँ असत्त्वानधिकरणत्व ही यदि कहते तो प्रातिभासिकमें व्यभिचार था, अतः प्रातिभासिकत्वानधिकरणत्व कहा, यदि इतना ही कहते तो असत्‌में व्यभिचार था, अतः विशेष्यदल कहा, स्वासत्त्वागोचरप्रमाके प्रति साक्षाद्विषयत्व होनेसे। आरोपित मिथ्याकत्व होनेसे, कल्पकरहितत्व होनेसे । स्वविषयसाक्षात्कारसे पूर्वमें भावित्व होनेसे, आत्मवत् ।

ब्रह्मजीवप्रतियोगिको भेदः परमार्थसन् अनादित्वादात्मवत् , साक्षिवेद्यसुखदुःखादिभेदः परमार्थसन् अनिषेध्यत्वेन दोषाजन्यज्ञानं प्रति साक्षाद्विषयत्वात् । धर्माधर्मयागदानादिभेदः, परमार्थसन् , श्रुतितात्पर्यविषयत्वादित्यादिष्वात्मासाधारणधर्माणां चेतनत्वादीनामुपाधित्वं जडत्वादिना सत्प्रतिपक्षश्च मिथ्यात्वसाधकानां प्राबल्यस्योक्तत्वेन तैर्बाधश्च । आद्ये च प्रातिभासिकत्वस्य दोषप्रयुक्तभानत्वात्मकत्वे असिद्धिः, ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वोक्तौ चरमवृत्त्यव्यवहितप्रातिभासिके व्यभिचारश्च । द्वितीयहेतौ तादृक् प्रमाविषयत्वस्य भेदपारमार्थिकत्वसिद्ध्यधीनत्वेन साध्याविशेषपर्यवसानम् तृतीये चरमवृत्त्यव्यबाध्यमिथ्यात्वकत्वस्योपाधित्वम् , चतुर्थे अविद्यारूपकल्पकसत्त्वेनासिद्धिः। पञ्चमे। दृष्टिसृष्टिपक्षे असिद्धिः इतरत्राप्रयोजकता । अनादित्वं च अज्ञानादौ व्यभिचारि । दोषजन्यज्ञानं प्रतीत्यत्र श्रुतितात्पर्यविषयत्वादित्यत्र चासिद्धिः, साक्ष्यवच्छेदकवृत्तेर्दोषजन्यत्वात् , मुख्यतस्तात्पर्यस्य तत्राभावात् । तस्मात् भेदप्रपञ्चकं नानुमानविषयः ।

इत्यद्वैतसिद्धौ भेदप्रपञ्चके अनुमानभङ्गः ।

ब्रह्मजीवप्रतियोगिकभेद, परमार्थ सन् है, अनादित्व होनेसे आत्मवत्, साक्षीसे वेद्य जो सुखदुःखादि उन्होंका भेद परमार्थ सन् है, अनिषेध्यत्वेन दोषाजन्यज्ञानके प्रति साक्षाद्विषयत्व होनेसे=दोषाजन्यानुव्यवसायके प्रति और दोषाजन्यनिषेधप्रमाके प्रति विषयरूप शुक्तिरूप्यादिके वारणार्थ साक्षात् और अनिषेध्यत्वेन ये विशेषण हैं । धर्म अधर्म यागदान इत्यादिका भेद, परमार्थ सन् है, श्रुतितात्पर्यविषयत्व होनेसे, इत्यादि अनुमानोंमें आत्माके असाधारणधर्म चेतनत्वादिको उपाधित्व है, और जडत्वादिसे सत्प्रतिपक्षभी है और मिथ्यात्वसाधक हेतुओंके प्राबल्यको उक्तत्व होनेसे प्रबलमिथ्यात्वसाधकहेतुओंसे बाधभी है; आद्ये=प्रातिभासिकत्वानधिकरणत्वे सति इत्यादि आदिम हेतुमें प्रातिभासिकत्वको दोषप्रयुक्तभानात्मकत्व होनेपर असिद्धि है=भेदरूपपक्षमें अविद्यात्मकदोषप्रयुक्तभानात्मकत्व रहनेसे, तद्रूपप्रातिभासिकत्वानधिकरणत्व नहीं है–हेतुस्वरूपासिद्ध है ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वोक्तौ=प्रातिभासिकत्वको ब्रह्मज्ञानेतरबाध्यत्वरूप होनेपर चरमवृत्तिसे अव्यवहित जो प्रातिभासिक उसमें व्यभिचार है=अविद्याध्वान्तध्वंसक वेदान्तविचारजन्य चरमवृत्तिसे अव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन अवस्थित प्रातिभासिक पदार्थमें ब्रह्मज्ञानेतरज्ञानाबाध्यत्वरूपप्रातिभासिकत्व नहीं है, क्योंकि उक्तविधप्रातिभासिकका उक्तविध ब्रह्मज्ञानसे ही बाध होता है । फलतः उसमें ब्रह्मज्ञानेतरज्ञानबाध्यत्वाभावरूप प्रातिभासिकत्वा-

नधिकरणत्व रह गया और परमार्थ सत्वरूप साध्य नहीं है अतः व्यभिचार है। द्वितीयहेतौ= 'स्वासत्वागोचरप्रमांप्रति' इत्यादिरूप द्वितीय हेतुमें तादृश प्रमाविषयत्वको भेदपारमार्थिकत्वकी जो सिद्धि तादृश सिद्ध्यधीनत्व होनेसे साध्याविशेषमें पर्यवसान है। तृतीये= आरोपितमिथ्यात्वकत्वात्, इस तृतीयहेतुमें; चरमेति। चरमवृत्तेरन्यत्-इति चरमवृत्त्यन्यत् तेन बाध्यं मिथ्यात्वं यस्य तत्-चरमवृत्त्यन्यबाध्यमिथ्यात्वकम्, तस्य भावः तत्त्वम् तस्य उपाधित्वं चरमवृत्तिसे अन्य हुई सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म (तै० २।१।१) इत्यादिवाक्यजन्यवृत्ति तद्बाध्यमिथ्यात्वकत्व आत्मामें है, अतः उपाधिमें साध्यव्यापकत्व है, साधन भेदरूपपक्षमें है परन्तु वहाँ चरमवृत्तिबाध्यमिथ्यात्वकत्व नहीं है, अतः उपाधिमें साधनाव्यापकत्व है। चतुर्थे= कल्पकरहितत्वात्। इस चतुर्थ हेतुमें अविद्यारूपकल्पकका सत्त्व होनेसे असिद्धि है। पञ्चमे= स्वविषयक साक्षात्कारात्। इत्यादि पञ्चम हेतुमें दृष्टिसृष्टिपक्षमें असिद्धि है, हेतु स्वरूपासिद्ध है, इतरत्र=सृष्टिदृष्टिपक्षमें अप्रयोजकता है, और अनादित्व अज्ञानादिमें व्यभिचारी है और दोषाजन्यज्ञानं प्रति, इस हेतुमें और श्रुतितात्पर्यविषयत्वात्, इस हेतुमें असिद्धि है—ये दोनों हेतु स्वरूपासिद्ध हैं, साक्ष्यवच्छेदक वृत्तिको दोषजन्यत्व होनेसे और मुख्यतः तात्पर्यका भेदमें अभाव होनेसे—वस्तुतः इन सर्व अनुमानोंको मिथ्यात्वसाधक अनुमानने ही गतप्राण-कङ्कालमात्रावशिष्ट कर रक्खा है, द्वैती मृतोंको जीवित समझकर उन्होंसे कार्य निकालनेकी चेष्टा करता है; तस्मात् भेदपञ्चक अनुमानका विषय नहीं है।

इति सरलायां भेदपञ्चकेऽनुमानभङ्गः।

अथ भेदश्रुतेरनुवादकत्वोपपत्तिः।

ननु—भेदतात्त्विकत्वे 'द्वा सुपर्णा य आत्मनितिष्ठन्। नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां। अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्य इति श्रुतयो मानमिति—चेन्न; द्वा सुपर्णेत्यत्र पूर्वार्धे न भेदः प्रमेयः; अपदार्थत्वादवाक्यार्थत्वाच्च। द्वित्वस्य स्वाश्रयप्रतियोगिकभेदसमानाधिकरणत्वनियमात् श्रुतद्वित्वार्थापत्तिसमधिगम्यस्यापि भेदस्य श्रौतत्वमिति चेत् न; द्वौ चन्द्रमसावित्यत्रेव कल्पितभेदेनाप्युपपत्तेः तात्त्विकभेदानाक्षेपकत्वात्। अतएव नोत्तरार्धस्यापि तात्त्विकभेदपरत्वम्, वस्तुतस्त्वस्याः श्रुतेः पैङ्गिरहस्यब्राह्मणे बुद्धिजीवपरतया व्याकृतत्वेन जीवेशभेदपरत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्। य आत्मनि तिष्ठन् इत्यादावाधाराधेयभावस्य चेतनश्चेतनानामिति निर्धारणस्य अजोऽन्य इत्यत्र भेदव्यपदेशस्य काल्पनिकभेदमादायाप्युपपत्तेः भेदतात्त्विकत्वापर्यवसायित्वात् श्रुत्यन्तरविरोधाच्च। नैतच्छ्रुतिविरोधात् सैव श्रुतिरन्यपरा भेदश्रुतेः प्रत्यक्षसिद्धभेदानुवादत्वेन हीनबलत्वात्।

अथ सरलायां भेदश्रुतेरनुवादत्वोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। भेदके तात्त्विकत्वमें द्वा सुपर्णा—(मु० ३।१।१; ऋ० सं० मण्डल १ सूक्त १६४ मं० ८; श्वेत० ४।६) य आत्मनि तिष्ठन् (शतपथ काण्ड १४ प्रपाठक ५ ब्राह्मण ५

कण्डिका ३०) नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां (कठ० ५।१३) अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोन्यः (श्वे० ४।५)इत्यादि श्रुतियाँ प्रमाण हैं इति चेन्न, क्यों ? द्वा सुपर्णा इत्यादि जो मन्त्र है उस मन्त्रका घटक जो पूर्वार्ध है, उस पूर्वार्धमें भेद प्रमेय नहीं है भेदको अपदार्थत्व होनेसे और अवाक्यार्थत्व होनेसे–पूर्वार्ध घटक किसीभी पदका भेदरूप अर्थ नहीं है, और समग्र पूर्वार्धकाभी भेदरूप अर्थ नहीं है । द्वित्वस्य=द्वित्वमें स्वाश्रय=द्वित्वाश्रयप्रतियोगिक जो भेद तादृशभेदसमानाधिकरणत्वका नियम होनेसे, श्रुत जो द्वित्व उसकी जो स्वाश्रयभेद-मन्तरा अन्यथानुपपत्ति तादृश अन्यथानुपपत्तिरूप जो अर्थापत्ति तादृश अर्थापत्तिसे समधिगम्य जो भेद तादृश भेदकोभी श्रौतत्व=श्रुतिप्रमाणकत्व है इति चेन्न; क्यों ? 'द्वौ चन्द्रमसौ' यहाँ जैसे कल्पितभेदसे द्वित्वकी उपपत्ति है तैसे 'द्वा सुपर्णा' यहाँपर कल्पितभेदसेभी द्वित्वकी उपपत्ति होनेसे, श्रुत द्वित्वको तात्त्विकभेदका अनाक्षेपकत्व होनेसे; अतएव=कल्पितभेदसेभी द्वित्वकी उपपत्ति होनेसे ही उक्त मन्त्रके उत्तरार्धकोभी तात्त्विकभेदपरत्व नहीं है; वस्तुतः पैङ्गिरहस्य ब्राह्मणमें इस श्रुतिको बुद्धिजीवपरत्वेन व्याख्यातत्व होनेसे और 'य आत्मनि तिष्ठन्' (श० १४।५।५।३०) इसमें कहे हुए आधाराधेयभावको और चेतनश्चेतनानाम् (कठ० ५।१३) इसमें कहे हुए निर्धारणको तथा 'अजोऽन्यः' (श्वे० ४।५) इसमें किए हुए भेदव्यपदेशको काल्पनिकभेदको लेकरभी उपपन्न होनेसे, तात्त्विकत्वमें अपर्यवसायित्व होनेसे । और अभेद-बोधकश्रुत्यन्तरके साथ विरोध होनेसेभी । एतच्छ्रुतिविरोधात्=भेदबोधक इस श्रुतिके साथ विरोध होनेसे, सैव=अभेदबोधक श्रुति ही अन्यपरा है, नच=अभेदबोधक श्रुति अन्यपरा नहीं हो सकती है क्यों ? भेदश्रुतिको प्रत्यक्षसिद्धभेदानुवादत्वप्रयुक्त हीनबलत्व होनेसे ।

नच–जीवत्वावच्छिन्नजीवभेदस्याप्राप्त्या 'न हिंस्यादित्यादिवदननुवादत्वम्; जीवे ईश्वरभेदस्य प्रत्यक्षसिद्धतया तदन्यथानुपपत्तिसिद्धेशधर्मिकजीवत्वावच्छिन्नभेदस्यापि प्रत्य-क्षसिद्धतुल्यकक्षतया तद्बोधकश्रुतेरनुवादकत्वोपपत्तेः । न हिंस्यादित्यत्र नानुवादत्वशङ्कापि ब्राह्मणो न हन्तव्य इत्यादेः पुरोवादकत्वनिर्णायकाभावात् । नच–पुंविशेषं प्रत्यस्यार्थवत्त्वं शाखान्तरस्थविधिवाक्यवदिति–वाच्यम्; एकस्यानेकशाखाध्ययनासम्भवात्, प्रत्यक्षस्य सर्वपुरुषसाधारणेन प्राथमिकप्रसरत्वेन च पुरुषविशेषं प्रत्यपि सार्थकत्वस्य वक्तुमशक्य-त्वात् । नच–द्वयोः प्रणयन्तीत्यादिवत् वर्तमानमात्रग्राहिप्रत्यक्षप्राप्तकालत्रयाबाध्यभेदप्राप-कत्वमिति–वाच्यम् अजो ह्यन्य इत्यादौ त्रिकालाबाध्यत्वबोधकपदाभावात् ।

नचेति । जीवत्वावच्छिन्न जीवभेदकी अप्राप्तिसे न हिंस्यात् इत्यादिकी तरह अननु-वादकत्व है=ब्राह्मणो न हन्तव्यः इस वाक्यसे ब्राह्मणत्वावच्छेदेन हिंसा निषेधको प्राप्त होनेपरभी जैसे-भूतत्वावच्छेदेन निषेधको न प्राप्त होनेसे तत्प्रापक 'न हिंस्यात् सर्वा भूतानि' इस वाक्यको जैसे अनुवादत्व नहीं है तैसे देवदत्त यज्ञदत्तका भेदसिद्ध होनेपरभी जीवत्वावच्छेदेन भेदको प्रत्यक्षतः न प्राप्त होनेसे तत्प्रापकश्रुतिको अनुवादत्व नहीं है, नच=अनुवादत्व नहीं है,

यह बात नहीं है अनुवादत्वही है; क्यों ? जीवमें ईश्वरके भेदको प्रत्यक्षसिद्धत्व होनेसे तदन्यथानुपपत्तिसिद्ध=ईश्वरप्रतियोगिक जीवानुयोगिक जो भेद तादृशभेदान्यथानुपपत्तिसिद्ध जो ईशधर्मिक जीवत्वावच्छिन्नप्रतियोगिक भेद उस भेदकोभी प्रत्यक्षसिद्धतुल्यकक्ष्यत्व होनेसे तद्बोधक=उक्तविधभेदबोधक श्रुतिको अनुवादकत्वकी उपपत्तिसे । और 'न हिंस्यात्' यहाँपर अनुवादत्वकी शङ्काभी नहीं हैं क्यों ? ब्राह्मणो न हन्तव्यः इत्यादिमें पुरोवादत्वके निर्णायकके अभावसे। नचेति । पुरुषविशेषके प्रति अस्य=भेदबोधकश्रुतिवाक्यको अर्थवत्त्व है, जैसे शाखान्तरस्थ विधिवाक्यका पुरुषविशेषके प्रति अर्थवत्त्व है इति नच वाच्यम्, क्यों ? एकको अनेक शाखाके अध्ययनका असम्भव होनेसे और प्रत्यक्षको सर्वपुरुषसाधारणत्वेन और प्राथमिक प्रसरत्वेन पुरुषविशेषके प्रतिभी सार्थकत्वको कहनेकेलिए अशक्यत्व होनेसे। नचेति । 'द्वयोः प्रणयन्ति इत्यादिको जैसे प्राकृतप्रणयनसे भिन्नप्रणयनप्रापकत्व है, जैसे वर्त्तमानमात्रग्राहि जो प्रत्यक्ष तादृश प्रत्यक्षसे अप्राप्त जो कालत्रयाबाध्य भेद तादृशभेदप्रापकत्व है, इति नच वाच्यम्, अन्योन्य इत्यादिमें त्रिकालाबाध्यत्वबोधक पदके अभावसे ।

नच—अभेदे षड्विधतात्पर्यलिङ्गवद्दाढर्यार्थत्वं भेदेश्रुतेरपि वाच्यम्, तत्र प्रयोजनवत्त्वेऽपि अनुवादत्वापरिहारात्, अग्निर्हिमस्य भेषजमितिवत् नच—षड्विंशतिरित्येव ब्रूयादितिवत् प्रतिप्रसवार्थत्वम्, तदपेक्षया हीनबलत्वेन प्रतिप्रसवायोगात् नच प्रत्यक्षस्याप्रामाण्ये श्रुतेस्तत्सिद्धानुवादकत्वायोगः; तस्या ज्ञातज्ञापकत्वमात्रेणानुवादकत्वोपपत्तेः । नच—एवमपि निरपेक्षानुवादत्वेन धारावाहिकद्वितीयादिज्ञानवत् प्रमात्वोपपत्तिरिति—वाच्यम् निरपेक्षसापेक्षसाधारणानुवादत्वमात्रस्याप्रामाण्यप्रयोजकत्वात्। दृष्टान्तस्यातिरिक्तकालकलाविषयत्वेनानधिगतार्थविषयतया विषमत्वात् नच त्रिद्वाक्यवत् सप्रयोजनानुवादत्वेन स्वार्थपरता तस्य स्वार्थबोधकत्वेऽपि द्वित्वसम्पादकतया स्वार्थपरत्वाभावात् ।

नचेति । अभेदमें षड्विधतात्पर्यलिङ्गको जैसे अर्थदृढतार्थत्व है, तैसे द्वैतश्रुतिकोभी भेददृढतार्थत्व है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? तत्र=भेदश्रुतिमें प्रयोजनवत्व होनेपरभी अनुवादत्वके अपरिहारसे, जैसे 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' इसको अनुवादत्व है । नचेति । षड्विंशतिरित्येव ब्रूयात् इसकी तरह भेदश्रुतिको प्रतिप्रसवार्थत्व है,—अश्वमेधमें 'षड्विंशतिरस्य वंक्रयः' यह मन्त्र चोदकसे प्राप्त है, उसका चतुस्त्रिंशत् वाजिनः इस विशेष मन्त्रसे अपह्नव होता है पुनः न चतुस्त्रिंशदिति ब्रूयात् षड्विंशतिरित्येव ब्रूयात्, इस वाक्यसे जैसे उसका प्रतिप्रसव होता है तैसे प्रथम प्रत्यक्षतः भेद प्राप्त था पश्चात् अभेदश्रुतिने=भेदनिषेधकश्रुतिने उसका निषेध किया पश्चात् भेदश्रुतिने उसका प्रतिप्रसव किया अतः भेदश्रुतिको प्रतिप्रसवार्थत्व है, नच=प्रतिप्रसवार्थत्व नहीं है, क्यों ? तदपेक्षया=भेदनिषेधकश्रुतिकी अपेक्षासे भेदश्रुतिको हीनबलत्व होनेसे प्रतिप्रसवके अयोगसे—भेदनिषेधकश्रुतिको भेदतात्त्विकत्वनिषेधपरत्व होनेसे भेदस्वरूपप्रतिपादक जो वाक्य उस वाक्यको तत्प्रतिप्रसव=भेदप्रतिप्रसवके अयोगसे । नचेति । प्रत्यक्षका प्रामाण्य

न होनेपर श्रुतिको तत्सिद्ध=प्रत्यक्षसिद्धके अनुवादकत्वका अयोग है, नच=अनुवादकत्वका अयोग नहीं है क्यों ? तस्याः=भेदश्रुतिको ज्ञातज्ञापकत्वमात्रसे अनुवादत्वकी उपपत्तिसे। एवमपि=अनुवादत्व होनेपरभी निरपेक्षानुवादत्व होनेसे धारावाहिक द्वितीयादि ज्ञानवत् प्रमात्वकी उपपत्ति है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? निरपेक्ष तथा सापेक्ष एतदुभयसाधारण जो अनुवादत्वमात्र उस अनुवादत्वमात्रको अप्रामाण्यका प्रयोजकत्व होनेसे दृष्टान्तस्य=धारावाहिक-स्थलीयद्वितीयादिज्ञानरूप दृष्टान्तको अतिरिक्त=पूर्वज्ञान=स्वाव्यवहितत्वसामानाधिकरणपूर्व-कालीनज्ञानाविषय जो कालकला, तद्विषयत्वेन अनधिगतार्थविषयत्वप्रयुक्तविषयत्व होनेसे। नचेति। विद्वद्वाक्यवत् सप्रयोजनानुवादत्वेन स्वार्थपरता है; नच=नहीं है, क्यों ? तस्य= विद्वद्वाक्यको स्वार्थबोधकत्व होनेपरभी द्वित्वसम्पादकत्वप्रयुक्तस्वार्थपरत्वके अभावसे-इस प्रकरणमें उदाहृतविद्वद्वाक्यप्रभृतिका स्पष्टीकरण प्रथम परिच्छेदस्थ आगमबाधोद्धारप्रकरणमें देखना चाहिए।

नच—यत्तन्नेत्यादिनिषेधार्थानुवादलिङ्गाभावेन विधेयान्तरश्रवणेन च निषेधार्था-नुवादत्वायोगः, यत्तदित्यादेरनुवादलिङ्गत्वेऽपि अनुवादव्यापकत्वाभावात्, अन्येनापि ह्युन्नयनसम्भवात् 'ब्राह्मणो न हन्तव्य इत्यादौ यत्तत्पदाभावेऽपि निषेधानुवाददर्श-नात्, विधेयान्तरसत्त्वे तु निषेधार्थानुवादकत्वाभावेऽपि तदर्थानुवादत्वापरिहारात्। नचैवं विधानार्थानुवादे तात्त्विकत्वनियमः, यद्रजतं तदानयेत्यादौ अन्यविधानार्थे भ्रान्तिसि-द्धानुवादे तात्त्विकत्वादर्शनात्। नच—अनुवादत्वेऽपि यथार्थत्वरूपप्रामाण्याहानिरिति-वाच्यम्, तस्य बाधकाभावनिबन्धनत्वेन प्रकृते असम्भवात् ननु—औपनिषदस्य ब्रह्मणः शास्त्रातिरिक्तेनाप्राप्तेः तद्धर्मिकस्य तत्प्रतियोगिकस्य वा भेदस्य कथं शास्त्रनिरपेक्षप्रत्य-क्षादिना प्राप्तिरिति—चेन्न; प्रतियोगिग्रहार्थं तदपेक्षत्वेऽपि स्वसमानविषयप्रमाणपूर्वक-त्वानियमेन प्रत्यक्षस्य भेदग्रापकत्वोपपत्तेः। यद्यपीशधर्मिकस्य भेदस्य प्रत्यक्षेणाप्राप्तिः तथापि प्रत्यक्षसिद्धजीवधर्मिकेशभेदान्यथानुपपत्तिसिद्धस्यापि तस्य श्रुतार्थापत्तिसिद्धस्य श्रौतत्ववत् प्रत्यक्षसिद्धत्वोपपत्तेः।

इत्यद्वैतसिद्धौ भेदश्रुतेरनुवादकत्वम्।

नचेति। 'यत् तत् न' इत्यादि जो निषेधार्थ—अनुवादके लिङ्ग हैं उन्होंके अभावसे और विधेयान्तरके श्रवणसे=उपासनादिरूप विधेयान्तरके श्रवणसे भेदश्रुतिको निषेधार्थानुवादत्वका अयोग है। नच=अयोग नहीं है, क्यों ? 'यत् तत्' इत्यादिको अनुवादका लिङ्गत्व होनेपरभी अनुवादव्यापकत्वके अभावसे, अन्यसेभी अनुवादत्वके उन्नयनके सम्भवसे, 'ब्राह्मणो न हन्तव्यः' इत्यादिमें यत्तत्पदका अभाव होनेपरभी निषेधके अनुवादको देखनेसे। और विधेयान्तरका सत्त्व होनेपर तो निषेधके लिए अनुवादत्वका अभाव होनेपरभी तदर्थानुवादत्व=विधेयान्त-रार्थानुवादत्वके अपरिहारसे। एवम्=ऐसा होनेपर विधानके लिए जो अनुवाद है उस अनुवादमें

तात्त्विकत्वका नियम है, नच=तात्त्विकत्वका नियम नहीं है, क्यों? 'जो रजत है, उसको ले आ' इत्यादिस्थलमें अन्यविधानके लिए जो भ्रान्तिसिद्धका अनुवाद है उस अनुवादमें तात्त्विकत्वके न देखनेसे। नचेति। अनुवादत्व होनेपरभी यथार्थत्वरूप प्रामाण्यकी हानि नहीं है इति नच वाच्यम्; क्यों? तस्य=यथार्थत्वरूप प्रामाण्यको बाधकाभावाधीनत्व होनेसे प्रकृतमें उक्तविध प्रामाण्यके असम्भवसे। शङ्कते नन्विति। उपनिषद्गम्यब्रह्मको शास्त्रसे भिन्न प्रमाणसे प्राप्त न होनेसे, ब्रह्मधर्मिक या ब्रह्मप्रतियोगिकभेदकी शास्त्रनिरपेक्षप्रत्यक्षसे कैसे प्राप्ति है, इतिचेन्न; क्यों? प्रतियोगिग्रहके लिए तदपेक्षत्वेऽपि=शास्त्रापेक्षत्व होनेपरभी स्वसमानविषयक जो प्रमाण तादृश प्रमाणपूर्वकत्वके अनियमसे प्रत्यक्षको भेदप्रापकत्वकी उपपत्तिसे, स्वपदसे प्रत्यक्षका ग्रहण है। यद्यपि ईशानुयोगिकभेदकी प्रत्यक्षतः प्राप्ति नहीं है तथापि प्रत्यक्षसिद्ध जो जीवधर्मिक ईशभेद उस भेदकी अन्यथानुपपत्तिसे सिद्ध जो ईशधर्मिकभेद है उसको प्रत्यक्ष-सिद्धत्वकी उपपत्तिसे जैसे कि श्रुतार्थापत्तिसिद्धको श्रौतत्व होता है॥

इति सरलायां भेदश्रुतेरनुवादकत्वम्।

अथ भेदश्रुतेर्व्यावहारिकभेदपरत्वोपपत्तिः।

अथवानुवादकत्वाभावेऽपि व्यावहारिकभेदपरत्वेनैव श्रुत्युपपत्तिः। नचाप्रामाण्यापातः; अर्थवादवाक्यवदुपपत्तेः, प्रतीयमानार्थे चाभेदश्रुतिविरोधेनाप्रामाण्यस्येष्टत्वाच्च। नचाभेदश्रुतेरखण्डचिन्मात्रपरत्वेन भेदाविरोधित्वम् तद्द्वारीभूतभेदमादायतद्विरोधात् नापि वैपरीत्यम्; प्राप्ताप्राप्तार्थत्वाभ्यां विशेषात्। नच—ऐक्यश्रुतेरपि प्रत्यक्षविरुद्धत्वादप्रामाण्यम्, मानान्तरप्राप्तिवत् तद्विरोधस्यापि दौर्बल्यहेतुत्वादिति—वाच्यम् विरोधे विरोधिनो मानत्ववत् अनुवादकत्वोपपादकस्य मानताया अनपेक्षितत्वात्, किञ्च षड्विधतात्पर्यलिङ्ग-वत्वात्, ऐक्यश्रुतेः प्राबल्यम्। नच—तात्पर्यमात्रज्ञापकत्वेन तेषामर्थतथात्वाज्ञापकत्वमिति—वाच्यम्, श्रुतेस्तत्परत्वज्ञापनेन परम्परयोपयोगात् तद्विरुद्धश्रुतेः श्रूयमाणेऽर्थे तात्पर्याभाव-सम्पादनेनाधिकबलसम्पादकत्वाच्च।

अथ सरलायां भेदश्रुतेर्व्यावहारिकभेदपरत्वोपपत्तिः।

अथवेति। अथवा अनुवादकत्व न होनेपरभी व्यावहारिकभेदपरत्वेन ही भेदश्रुतिकी उपपत्ति है। अप्रामाण्यापातः=तात्त्विकप्रामाण्यके अभावका आपात है; नच=अप्रामाण्यापात नहीं है; क्यों? अर्थवादवाक्यवत् प्रामाण्यकी उपपत्ति होनेसे,='वायुर्वै क्षेपिष्ठा देवता' इत्यादि अर्थवादोंका कर्ममीमांसकके मतमें जैसे स्वार्थमें तात्त्विकप्रामाण्य न होनेपरभी स्तुतिमें तात्त्विक-प्रामाण्य है, तैसे भेदश्रुतिका प्रवृत्त्यादिमें तुम्हारे मतमें तात्त्विक प्रामाण्य रहो, और हमारे मतमें सर्वश्रुतिओंका साक्षात् या परम्परया शुद्धब्रह्मपरत्वेन तात्त्विकप्रामाण्य है, और प्रबलतर अभेदश्रुतिके साथ विरोध होनेसे आपाततः प्रतीयमानार्थमें भेदश्रुतिके अप्रामाण्यको इष्टत्व होनेसेभी। नचेति। अभेदश्रुतिको अखण्डचिन्मात्रपरत्व होनेसे भेदका अविरोधित्व है, नच=

अविरोधित्व नहीं है, क्यों ? तद्द्वारीभूतार्थमादाय=अखण्डचिन्मात्रबोधमें द्वारीभूत जो भेदाभाव तादृशभेदाभावको लेकर तद्विरोधात्=भेदके साथ विरोध होनेसे। नापि वैपरीत्यम्=भेदश्रुतिके साथ विरोध होनेसे अभेदश्रुतिकाही प्रतीयमानार्थमें अप्रामाण्य रहो, इत्याकारक वैपरीत्यभी नहीं हो सकता है, क्यों ? प्रमाणान्तरसे प्राप्तार्थत्वेन और प्रमाणान्तरसे अप्राप्तार्थत्वेन विशेष होनेसे;–बतलाचुके हैं कि,–भेद प्रत्यक्षतः प्राप्त है और अभेद नहीं प्राप्त है। शङ्कते नचेति। ऐक्यश्रुतिकाभी प्रत्यक्षविरुद्धत्व होनेसे अप्रामाण्य है मानान्तरप्राप्तिवत्=मानान्तरप्राप्तार्थकत्व जैसे दौर्बल्यमें हेतु होता है, तैसे मानान्तरके विरोधकोभी दौर्बल्यमें हेतुत्व होनेसे, इति नच वाच्यम्, क्यों ? विरोधे=विरोधस्थलमें विरोधिनः=विरोधिप्रमाणमें मानत्ववत्=निर्णीत प्रमाणत्व जैसे अपेक्षित होता है तैसे अनुवादत्वोपपादककी मानतायाः=निर्णीतप्रमाणताको अनपेक्षितत्व होनेसे=श्रुतिविरोधिप्रत्यक्षमें प्रमाणत्वके अनिर्णयसे श्रुतिको अतात्त्विकमानत्व नहीं है यह भाव है। किञ्चेति। षड्विध जो तात्पर्य्यके निर्णायक लिङ्ग हैं तद्वत्त्व होनेसे ऐक्यश्रुतिका प्राबल्य है। नचेति। तात्पर्य्यके उक्त लिङ्गोंको तात्पर्य्यमात्रज्ञापकत्व होनेसे तेषाम्=उक्तलिङ्गोंको अर्थतथात्वका अज्ञापकत्व है इति नच वाच्यम्, क्यों ? श्रुतिनिष्ठ जो तत्परत्व उसके ज्ञापनसे परम्परया अर्थतथात्वमें उपयोग होनेसे। और एतद्विरुद्ध=ऐक्यविरुद्धभेदश्रुतिके श्रूयमाणअर्थमें तात्पर्य्याभावके सम्पादनसे=भेदश्रुतिका श्रूयमाण अर्थमें तात्पर्य नहीं है, इस अर्थके सम्पादनसे ऐक्यश्रुतिमें अधिकबलसम्पादकत्व होनेसेभी।

अत्रापि 'स्वाद्वत्ति अनश्नन्' पूर्णः परः 'जीवसंघो ह्यपूर्ण' इत्याद्युपपत्तिरूपं सत्यं भिदा सत्यं भिदा सत्यं भिदेति–अभ्यासादिरूपं तात्पर्य्यलिङ्गमस्तीति भेदश्रुतिरपि तत्परेति–वाच्यम्; अत्तीति अपूर्ण इति च जीवानुवादेन तस्य पूर्णब्रह्मरूपताविधानार्थत्वेन भेदोपपत्तित्वाभावात्। सत्यं भिदेति न भेदाभ्यासः; एतद्वाक्यस्याप्रामाणिकत्वात्, प्रामाणिकत्वे वा बाधायां सामानाधिकरण्येनाभेदे पर्यवसानात् ननु–भेद-श्रुतिरेव प्रबला, असञ्जातविरोधित्वात्, प्रत्यक्षादिसंवादान्निरवकाशत्वाच्चेति–चेन्न; अभेद–श्रुतिरूपविरोधिनो जातत्वात्, प्रत्यक्षादेरप्रमाणत्वेन तत्संवादस्य प्राबल्याप्रयोजकत्वात् शतमप्यन्धानामिति न्यायात् व्यावहारिकभेदविषयत्वेन सावकाशत्वाच्च। ननु–नायंभेदो व्यावहारिकः मुक्तावपिभेदस्य श्रुतिस्मृतिभ्यां सिद्धेरिति चेन्न; तस्या मुक्तेरवान्तरत्वात्।

नचेति। अत्रापि=भेदमेंभी 'स्वाद्वत्ति अनश्नन्' (मु० ३।१।१) 'पूर्णःपरः जीवसंघो ह्यपूर्णः' इत्यादि उपपत्तिरूप सत्यं भिदा सत्यं भिदा सत्यं भिदा इत्याकारक अभ्यासादिरूप तात्पर्य्य लिङ्ग है; अतः भेदश्रुतिभी भेदपरा है इति नच वाच्यम् क्यों ? 'अत्ति' इत्याकारक और 'अपूर्णः' इत्याकारक जो जीवानुवाद है उस जीवानुवादद्वारा तस्य=जीवनिष्ठपूर्णब्रह्मरूपताविधानार्थत्व होनेसे भेदके उपपत्तित्वके अभावसे। और सत्यं भिदा यह भेदाभ्यास नहीं है, इस वाक्यको अप्रामाणिकत्व होनेसे; प्रामाणिकत्वे वा=अथवा प्रामाणिकत्व होनेपर

वाधसामानाधिकरण्येन अभेदमें पर्य्यवसान है अतः कोई अनुपपत्ति नहीं । शङ्कते नन्विति । भेदश्रुति ही प्रवल है असञ्जातविरोधित्व होनेसे, और प्रत्यक्षादिका सम्वाद होनेसे और निरवकाशत्व होनेसे इति चेन्न; क्यों ? अभेदश्रुतिरूप जो विरोधि उसको जातत्व होनेसे, और प्रत्यक्षादिको अप्रमाणत्व होनेसे तत्सम्वादस्य=प्रत्यक्षादिके सम्वादको प्राबल्यके प्रति अप्रयोजकत्व होनेसे अन्धोंका शतकभी नहीं देखता है इस न्यायसे और व्यावहारिकभेदविपयत्वेन सावकाशत्व होनेसेभी । नन्विति । यह भेद व्यावहारिक नहीं है मुक्तिमेंभी श्रुतिस्मृतिओंसे भेदकी सिद्धि होनेसे; इति चेन्न; क्यों ? तस्याः=भेदवाली मुक्तिको अवान्तरत्व=सायुज्यादिरूप मुक्तित्व होनेसे ।

ननु—इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ‘ सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्तिच ॥ ’ इत्यादिस्मृतौ सर्गाद्यभावोक्तेः ‘ न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः । श्यामावदाताशतपत्रलोचनाः पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशस ’ इति स्मृतौ मायानिपेधाच्च ‘ यो वेद निहितं गुहायां सोऽश्नुते सर्वान् कामान् ’ सह ब्रह्मणा विपश्चितेत्यत्र शुद्धब्रह्मज्ञानफलत्वोक्तेश्च त्वयापि शुद्धब्रह्मविपयत्वेन स्वीकृतायाः भूमविद्यायाः फलोक्त्यवसरे ‘ तस्य सर्वेपु लोकेपु कामचारो भवति’ पञ्चधा सप्तधेत्यादिभेदोक्तेः ‘ परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते ’ ‘ स तत्र पर्येति जक्षन् क्रीडन्रममाण ’ इत्यादौ स्वरूपाभिव्यक्त्युक्तेश्च तथा ‘विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैती’-त्यत्र कर्मक्षयोक्तेश्च ‘ जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ’ पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेतीति भेदज्ञानान्मोक्षोक्तेश्च त्वन्मतेऽपि भेदभोगादिफलेपु फलाध्यायान्त्यपादस्थेपु ‘ जगद्व्यापारवर्जम् ’ सङ्कल्पादेव तु तच्छ्रुतेः, भोगमात्रसाम्यलिङ्गाचेति सूत्रेपु प्रक्रान्तशुद्धविद्याफलस्यैव वक्तव्यत्वाच्च परममुक्तित्वमेवेति चेन्न;

शङ्कते नन्विति । इदं ज्ञानमुपाश्रित्य (गी० १४।२) इत्यादि स्मृतिमें सर्गादिके अभावकी उक्तिसे और न यत्र माया किमुतापरे हरेः ‘ श्रीभागवत ’ इत्यादि स्मृतिमें मायाके निपेधसे, यो वेद निहितं गुहायां सोऽश्नुते सर्वान् कामान् (मुं० २।१।१०) यहाँपर शुद्धब्रह्मज्ञानके फलत्वकी उक्तिसे और तुमसेभी शुद्धब्रह्मविपयत्वेन स्वीकृत जो भूमविद्या है उसके फलकी उक्तिके अवसरमें ‘ तस्य सर्वेपु लोकेपु कामसञ्चारो भवति ’ (छा० ८।१।६; ८।४।३; ८।५।४;) पञ्चधा सप्तधा (छा० ७।२६।२) इत्यादिसे भेदकी उक्ति होनेसे, तथा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति (मुं० ३।१।३) इस श्रुतिमें कर्मक्षयकी उक्तिसे ‘ जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ’ (श्वे० ४।७) इत्यादि श्रुतिसे भेदज्ञानसे मोक्षकी उक्तिसे और तुम्हारे मतमें भी भेदभोगादिपर जो ब्रह्ममीमांसाके चतुर्थाध्यायके चतुर्थपादमें स्थित जगद्व्यापारवर्जम् (१७) सङ्कल्पादेव तु तच्छ्रुतेः (१८) भोगमात्रसाम्यलिङ्गाच्च (२१)

ये सूत्र हैं इन सूत्रोंमें प्रक्रान्त जो शुद्धविद्याका फल उस फलको ही वक्तव्यत्व होनेसेभी जिसमें भेदकी सिद्धि होती है उसको परममुक्तित्व ही है, न कि त्वदुक्त अवान्तरमुक्तित्व; ननुसे लेकर यहाँतक द्वैतीकी शङ्का है अब निरास करते हैं–इति चेन्न; क्यों ?

सगुणोपासनया ब्रह्मलोकं गतस्यापि न स पुनरावर्त्तत इत्यादि श्रुत्या दैनन्दिन-सर्गाद्यसम्बन्धस्य प्रतिपादनेनावान्तरमुक्तावप्युपपत्तेः न तत्र मायेत्यादि स्मृतौ वा माया-शब्दस्य मात्सर्यादिपरत्वेन मूलमायाविरहाप्रतीतेः अन्यथा श्यामावदातत्वादिति विरो-धापत्तेः 'यो वेद निहितमित्यत्र शुद्धब्रह्मज्ञानफलभूता या सर्वकामावाप्तिः; सा न वैष-यिकभोगरूपा; किन्तु सर्ववैषयिकसुखानां एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुप-जीवन्तीतिश्रुत्या ब्रह्मानन्दे अन्तर्भावोक्तेस्तदभिप्रायेति न तद्बलान्नानाकामावाप्तेः शुद्ध-ज्ञानफलत्वम्, भूमविद्याफलोक्त्यवसरे सर्वलोककामचारैकधाभावादेः फलस्य भूमवि-द्यावाक्योपक्रमे प्राणविद्याफलत्वेनोक्तस्य ज्योतिष्टोमप्रकरणे श्रूयमाणाहीनद्वादशोपसत्ता-वत् निर्गुणविद्यास्तावकत्वेनाप्युपपत्तेः; स्वयंज्योतिरित्यादौ जक्षणप्रभृतीनां भेदगर्भत्वेन जक्षन्निव क्रीडन्निवेत्यादिबाधितत्वविवक्षया परममुक्तेस्तत्रोक्त्या त्वदभिमतभेदगर्भक्रीडा-दीनां परममुक्तित्वाभावात्।

सगुणोपासनासे ब्रह्मलोकको प्राप्त जो उपासक है उसमेंभी न स पुनरावर्त्तते (छा० ८।१५।१) इत्यादि श्रुतिसे दिनदिनमें=ब्रह्माके दिनदिनमें होनेवाले सर्गादिके सम्बन्धके प्रति-पादनसे, अवान्तरमुक्तिमेंभी स्मृतिकी उपपत्ति होनेसे=और 'न यत्र माया' इत्यादि स्मृतिमें तो मायाशब्दको मात्सर्यादिपरत्व होनेसे='तेषामेवैष ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया च' (प्र० १।१६) इस श्रुतिके साथ एकवाक्यत्वेन स्मृतिपरक मायाशब्दको मात्सर्यादिपरत्व होनेसे, मूलमायाके विरहकी अप्रतीतिसे; अन्यथा=मूलमायापरत्व होनेपर श्यामावदातत्वादिके साथ विरोधकी आपत्तिसे। और 'यो वेद निहितं गुहायां' (मुं० २।१।१०) यहाँपर शुद्धब्रह्मज्ञानकी फलभूता जो सर्वकामोंकी अवाप्ति है वह वैषयिक भोगरूपा नहीं है, किन्तु सर्वविषयजन्य सुखोंका 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' (ब्र० ४।३।३२) इस श्रुतिसे ब्रह्मज्ञानानन्दमें अन्तर्भावकी उक्ति होनेसे तदभिप्राया=उक्तरूपब्रह्मज्ञानानन्दाभिप्राया सर्व-कामोंकी अवाप्ति है=जो ब्रह्मको जानता है उसको सर्वकाम=सर्वसुख प्राप्त होते हैं इस कथनका यह अभिप्राय नहीं कि उसको सर्वविषयसुख प्राप्त होते हैं; किन्तु उसका यह अभिप्राय है कि उसको जिस ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति हुई है उसके अन्तर्गत सर्वविषयसुख हैं अतः उक्तश्रुतिके बलसे नाना कामनाओंकी प्राप्तिको शुद्धज्ञानका फलत्व नहीं है। और भूमविद्यावाक्यके उपक्रममें प्राणविद्याफलत्वेन उक्त जो सर्वलोककामचार अनेकधाभावादिरूप फल है उस फलकी उक्तिको भूमविद्याफलोक्त्यवसरमें ज्योतिष्टोमप्रकरणमें श्रूयमाण अहीन द्वादशोपसत्तावत् निर्गुणविद्या-स्तावकत्वेनभी उपपन्न होनेसे=जै० तृतीयाध्यायके तृतीयपादके तेरहवें अधिकरणमें विचार किया है–ज्योतिष्टोमके प्रकरणमें 'तिस्र एव साह्नस्योपसदो द्वादशाहीनस्य' यह वाक्य आया

है तहाँ एकाहसे सम्पाद्य होनेसे ज्योतिष्टोमका नाम साह्न है और दीक्षाके दिनसे पश्चात् और सोमका अभिषेक जिस दिनमें होता है उस दिनसे पूर्व जो होम कर्त्तव्य है उन्होंका नाम है- उपसद्। उक्तवाक्यमें बतलाया है कि साह्नस्य=ज्योतिष्टोमके तिस्रः=तीन उपसद् हैं, और अहीनस्य=अहीनके द्वादश उपसद् हैं। और अहीनशब्द द्विरात्रत्रिरात्रादिरूप अहर्गणनामक यागमें रूढ है और यौगिकत्वेन यह ज्योतिष्टोमकाभी बोधक हो सकता है, क्योंकि ज्योतिष्टोम निखिल सोमयागका प्रकृति है, अतः सर्व अङ्गोंका इसमें उपदेश होनेसे विकृतिओंकी तरह सर्वअङ्गोपदेशविकलत्वरूप हीनत्व इसमें नहीं है, अतः इसको अहीन कह सकते हैं यहाँपर पूर्वपक्ष यह है कि ज्योतिष्टोमके प्रकरणमें यह वाक्य है, अतः उपसदोंका द्वादशत्व ज्योतिष्टोममें ही निविष्ट होता है, और ज्योतिष्टोममें उक्त प्रकारसे 'अहीन' शब्दकी प्रवृत्ति बन सकती है, अतः द्वादशत्व और त्रित्व इन दोनोंका विकल्प है, इसका सङ्क्षेपसे समाधान यह है कि अहीन शब्द अहर्गण नामक कर्ममें रूढ है, और रूढि विग्रहनिरपेक्ष होकर शीघ्र पदार्थविषयक बुद्धिको उत्पन्न करती है अतः ज्योतिष्टोमको कहनेवाला जो साह्न शब्द है उससे भिन्न यह अहीन संज्ञा ज्योतिष्टोमसे भिन्न अहर्गणको बोधित करती है, उसी अहर्गणमें षष्ठी श्रुतिसे उक्त द्वादशत्व निविष्ट होता है; अतः 'द्वादशाहीनस्य' इस वाक्यको यहाँसे उठाकर अहर्गण प्रकरणमें लगाना, और इस प्रकरणमें जो इसका पाठ है वह ज्योतिष्टोमके स्तवनके लिए है इसी रीतिसे भूमविद्याफलोक्तिके अवसरमें जो सर्व लोकोंमें कामचार आदिक फल बतलाया है उसको वहाँसे उठाकर भूमविद्याप्रकरणके प्रारम्भमें जो प्राणविद्या कही है उसके साथ फलत्वेन सम्बन्ध करना, और भूमविद्याप्रकरणमें उसके कथनका अभिप्राय यह है कि-यह भूमविद्या ऐसी है कि-उसके फलमें इन सर्व फलोंका अन्तर्भाव है और भूमविद्याके दो फल प्रसिद्ध हैं,-एक जीवन्मुक्ति और दूसरा विदेहमुक्ति, निरतिशय ब्रह्मानन्दके अनुभवका नाम जीवन्मुक्ति है, यह सर्वथा वृत्तिकी ब्रह्माकारता विना नहीं हो सकती है, और जो लोकसञ्चारमें और पञ्चधा सप्तधा बननेमें लगा रहेगा, उसको इस फलका मिलना ही कठिन है और जिन लोकोंमें सञ्चार करना है उन लोकोंमें ही सर्वथा शान्ति और सुख कहाँ है; जो वैकुण्ठ लोक प्रधान माना जाता है, उसके अध्यक्ष विष्णु भगवान्की स्त्रिओंमें केशाकेशी शापाशापी मुक्तामुकी पुराणोंमें बतलाई गई 'यह विषय श्रीदेवीभागवतके तुलस्युपाख्यानमें स्पष्ट है' उसी झगडेके फलसे लक्ष्मीजीको महापापी निर्बुद्धि विवेकरहित सभ्यताशिष्टताशून्य धर्मध्वजी पशुप्राय तथा मक्खीचूसोंके पासमें रहना पडता है और तुलसीजीको काष्ठवनकर प्रायः अशिक्षित लोगोंके गलेमें रहना पडता है, और सरस्वतीजीको वाचाल और ईर्ष्यया ज्वलन्तदरिद्रिओंके पासमें रहना पडता है, यह तो विष्णुभगवान्की स्त्रिओंकी दशा हुई। उनके मुख्यपार्षद जयविजयको वैकुण्ठमें ही शाप मिला और पुराणोपपुराणपल्लवित बहुविध क्लेश उठाने पडे, और तो क्या वैकुण्ठाध्यक्ष खुद विष्णुभगवान्के ही हृदयमें लात मारी गई और वहभी वैकुण्ठमें। स्वर्गलोककी तो बात करनेकीभी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वहाँपर कभी कभी तो एकदम दैत्योंकाही अधिकार हो जाता है, परमपवित्र धर्ममूर्ति इन्द्राणीपर नहुष जैसा मनहूस अवैध आक्रमण करनेकी चेष्टा करता है,

इन्द्रको ब्रह्महत्या लग जाती है, इन्द्रके शरीरमें सहस्र भग तो प्रसिद्ध ही हैं ऐसा दण्ड सायत ही कभी किसीको मिला होगा, जबकी न्यायशास्त्रकर्त्ता महर्षि गौतमकी बुद्धि विचित्र थी तो उन्होंसे विचित्र ही दण्ड मिलना उचित था। ब्रह्माजीका लोक और उन्होंकी सभा बहुत ही प्रसिद्ध पदार्थ है, उस सभामें कर्मकाण्डीयजाड्यसे दक्षने महेश्वरका अपमान किया था और महेश्वरपक्षीय तथा दक्षीय लोगोंमें परस्पर अच्छी तनातनी हुई और इसका अन्तिम परिणाम यह हुआ कि—दक्षके यज्ञमें भगनाम देवताके नेत्र फोड़ दिये गये और पूषाके दाँत तोड दिये गये और ब्रह्माके मानसपुत्रोंमेंसे अन्यतम भृगुकी दाढी उखाड़ ली गई दक्षका शिर मरोड़ कर तोड़ डाला गया, यज्ञकुण्ड मूत्रसे भर दिया गया, इत्यादि, फलतः जो लोक रागद्वेषादिरूपपङ्कसे पङ्किल हैं, और ईर्ष्यारूप शर्करासे शर्करित हैं उन्होंमें विचरना और उन्होंमें बैठकर उपभोगका सम्पादन करना इत्यादिको भूमविद्याका फल बताना एक प्रकारकी शास्त्रीय मुर्खता ही है 'तरति शोकमात्मवित्' (छा० ७।१।३) आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन (तै० २।४।१) इत्यादिश्रुतिओंसे यह अर्थ स्पष्ट ही कि भूमविद्याजन्यफलके साथमें दुःखका बिलकुल सम्बन्ध ही नहीं है 'स्वयं ज्योतिः' (बृ० ४।३।९) इत्यादिमें 'जक्षन्निव क्रीडन्निव' (छा० ८।१२।३) इत्यादिरूप भेदगर्भत्वेन बाधितत्वकी विवक्षासे परममुक्तिकी वहाँपर उक्ति होनेसे त्वदभिमतभेदगर्भक्रीडादिकोंका परममुक्तित्वके अभावसे='अथ यत्र देव इव राजेवाहयेवेदं सर्वमस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः' (बृ० ४।३।२०) इस विद्वत्स्वप्नबोधकश्रुतिमें इव शब्दकी उक्तिसे और स्वप्नको पूर्वानुभवमूलक होनेसे विद्वदनुभवबोधक जो स तत्र पर्य्येति जक्षन् क्रीडन् रममाणः इत्यादि वाक्य है उस वाक्यमें जक्षन् इत्यादिके उत्तरमें इव शब्दका अध्याहार करना चाहिए और इव शब्दको यहाँपर अल्पार्थकत्व है—तथाच यह अर्थ हुआ कि दग्धरज्जुवत् बाधितानुवृत्तिसे प्राप्तविषयोंको आसक्ति रहित विष्टिगृहीतवत् शेषकर्मप्रेरितेन्द्रियोंसे ग्रहण करता हुआभी ज्ञानी ब्रह्मानन्दमें ही निमग्न रहता है फलतः यहाँपर अपरममुक्ति=जीवन्मुक्तिका वर्णन है।

पुण्यपापे विधूयेत्यत्र परमसाम्यस्यैक्यरूपतया कर्मक्षयस्य ऐक्यरूपमुक्तिफलतया भेदगर्भमुक्तिफलत्वाभावात् । जुष्टमित्यत्रान्यपदस्य देहेन्द्रियादिविलक्षणात्मपरत्वेन जीवेशपरत्वाभावात् तथाच भेदज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वम् अतोऽवगम्यते मन्मते भेदभोगादिपरेषु सङ्कल्पादेव तच्छ्रुतेरित्यारभ्याध्यायपरिसमाप्तिपर्य्यन्ताधिकरणेषु सगुणविद्याफलस्य उक्ततया शुद्धब्रह्मविद्याफलाप्रतिपादकत्वात् । तस्मात् परममुक्तौ भेदस्याप्रसक्तेः व्यावहारिकत्वोपपत्त्या भेदश्रुतेर्व्यावहारिकपरत्वं स्थितम् ।

इत्यद्वैतसिद्धौ भेदश्रुतेर्व्यावहारिकभेदपरत्वोपपत्तिः।

पुण्येति । पुण्यपापे विधूय (मुं० ३।१।३) यहाँपर परमसाम्यको ऐक्यरूपत्व होनेसे और कर्मक्षयको ऐक्यरूपमुक्तिफलत्व होनेसे भेदसे गर्भित जो मुक्तिरूपफल तादृश फलत्वका अभाव होनेसे। और जुष्टम् (श्वे० ४।७) यहाँपर अन्यपदको देहेन्द्रियादिसे विलक्षण जो

आत्मा तादृश आत्मपरत्व होनेसे जीवेशपरत्वके अभावसे। तथाच भेदज्ञानको मोक्षहेतुत्व इससे नहीं जाना जाता है और जो हमारे मतमें भेदभोगादिपर सङ्कल्पादेव तच्छ्रुतेः (वे० ४।४।८) यहाँसे आरम्भकर चतुर्थाध्यायकी समाप्तिपर्य्यन्त अधिकरण हैं उन्होंमें सगुणविद्याके फलको उक्तत्व होनेसे, शुद्धब्रह्मविद्याके फलका अप्रतिपादकत्व होनेसे। तस्मात् परमुक्तिमें भेदकी प्रसक्ति न होनेसे। भेदमें व्यावहारिकत्वकी उपपत्तिसे भेदश्रुतिको व्यावहारिकभेदपरत्व सुस्थिर हुआ॥

इति सरलायां भेदश्रुतेर्व्यावहारिकभेदपरत्वोपपत्तिः

अथ शब्दान्तरादेरात्मभेदसाधकत्वासम्भवः।

ननु—पूर्वतन्त्रे द्वितीयाध्याये यैरेव शब्दान्तरादिभिः कर्मभेद उक्तः, तैरेव जीवेशभेदोऽपि सिध्यति। तथाहि—एष एव जीवं प्रबोधयति ‘एतस्माज्जीव उत्तिष्ठतीति विरुद्धार्थधातुनिष्पन्नाख्यातरूपशब्दान्तरस्य ‘नित्यः परो नित्यः जीवः’ इति प्रत्यभिज्ञायमानपुनः श्रुतिरूपाभ्यासस्य ‘द्वा सुपर्णेत्यादिसंख्याया, अशब्दमनश्नन्नित्यादेर्भेदकस्य गुणान्तरस्य यतो वाचो निवर्तन्त इत्यादिप्रकरणान्तरस्य जीवेसाविति नामधेयद्वयस्यापि सत्वाचेति—चेन्न, प्रत्यक्षादिसमकक्ष्यतया शब्दान्तरादीनां भेदकत्वेऽपि तात्त्विकाभेदाविरोधित्वात्। किञ्चादृष्टचरस्त्वं मीमांसकः यः कर्मभेदे शास्त्रभेदे वा प्रमाणत्वेन क्लृप्तानां शब्दान्तरादीनां चेतनभेदे प्रमाणत्वं कल्पयसि। नह्यन्यभेदप्रयोजकस्यान्यभेदप्रयोजकता, विशिष्टभेदे प्रयोजकस्यापि विशेषणभेदस्य विशेष्यभेदकत्वापत्तेः, देवदत्त उत्तिष्ठति शिष्यं बोधयति यजति ददाति जुहोतीत्यादावपि भेदापत्तेः न शब्दान्तरस्य कर्तृभेदकता।

इत्यद्वैतसिद्धौ शब्दान्तरादेरात्मभेदकत्वाभावः।

अथ सरलायां शब्दान्तरादेरात्मभेदकत्वाभावः।

शङ्कते नन्विति। पूर्वतन्त्र=पूर्वमीमांसास्थित द्वितीयाध्यायमें जिन शब्दान्तरादिकोंसे कर्मभेद कहा है, उन्हीं शब्दान्तरादिकोंसे जीवेशभेदभी सिद्ध होता है। तथाहि—एष एव जीवं प्रबोधयति एतस्माज्जीव उत्तिष्ठति इस रीतिसे प्रबोधन उत्थापनरूप जो विरुद्धार्थ तादृशविरुद्धार्थक धातुनिष्पन्न जो आख्यातरूप शब्दान्तर तादृश आख्यातरूप शब्दान्तरका सत्त्व होनेसे, और ‘नित्यः परो नित्यः जीवः’ इस रीतिसे प्रत्यभिज्ञायमान पुनः श्रुतिरूप अभ्यासका सत्त्व होनेसे, और ‘अशब्दम्’ (क० ३।१५) ‘अनश्नन्’ (मुं० ३।१।१) इत्यादिरूप भेदक गुणान्तरका सत्त्व होनेसे, और ‘यतो वाचो निवर्त्तन्ते’ (तै० २।४।१) इत्यादिरूप प्रकरणान्तरका सत्त्व होनेसे तथा जीवेशो (नृ० उ० ता० ९) इत्यादिरूप नामधेयभेदकाभी सत्त्व होनेसे; इति चेन्न; क्यों ? प्रत्यक्षादिके साथ समकक्ष्यत्व होनेसे शब्दान्तादिकोंको भेदकत्व होनेपरभी तात्त्विकाभेदके प्रति अविरोधित्व होनेसे। किञ्च तुम मीमांसकभी एक लोकोत्तर

ही हो, जो कर्मभेदमें तथा शास्त्रभेदमें प्रमाणत्वेन क्लृप्त जो शब्दान्तरादिक हैं उन्होंका चेतनभेदमें प्रमाणत्व कल्पना करते हो, क्योंकि अन्यभेदके प्रयोजकको अन्यभेदके प्रति प्रयोजकता होनेपर विशिष्टभेदमें प्रयोजक जो विशेषणभेद है उसको विशेष्यके भेदकत्वकीभी आपत्तिसे, विशिष्टभेदक विशेषण विशेष्यकाभी भेदक हो जायगा, देवदत्त उठता है, शिष्यको उठाता है, यजन करता है, दान देता है, हवन करता है इत्यादि स्थलमेंभी भेदकी आपत्तिसे शब्दान्तरको कर्तृभेदकत्व नहीं है।

इति सरलायां शब्दान्तरादेरात्मभेदकत्वाभावः।

अथ भेदश्रुतेः षड्विधतात्पर्य्यलिङ्गभङ्गः।

नतु—षड्विधतात्पर्यलिङ्गोपेतश्रुतिगम्यभेदस्य कथमतात्त्विकत्वम्?। तथाहि— आथर्वणे द्वा सुपर्णेत्युपक्रमः परमं साम्यमुपैतीति—उपसंहारः 'तयोरन्यः अनश्नन्नन्यः, अन्यमीशमित्यभ्यासः; शास्त्रैकगम्येश्वरप्रतियोगिकस्य कालत्रयाबाध्यभेदस्य शास्त्रं विना अप्राप्तेरपूर्वता, पुण्यपापे विधूयेति फलं अस्य महिमानमिति स्तुतिरूपोऽर्थवादः अत्ति अनश्नन्नित्युपपत्तिः अत्र च मायामात्रमिदं द्वैत' मित्यादाविव द्विशब्द एव भेदवाचकः तदाक्षेपको वा द्वित्वसंख्यैवैक्यविरोधिनीति वा भवत्युपक्रमो भेदविषयः। तद्भिन्नत्वविशेषितमेव च तद्गतबहुधर्मयोगित्वं तत्सादृश्यम् नतु विशेष्यमात्रम्, नायं सः किन्तु तत्सदृशः नायं तत्सदृशः किन्तु स एवेति सादृश्यैक्ययोरेकतरविधानायांतरनिषेधात्, गगनं गगनाकारमित्यादि तु तत्सदृशवस्त्वन्तरनिषेधपरम्, गगनाद्येकदेशस्य तदेकदेशसादृश्यपरं वा इत्युपसंहारोपि भेदविषय एव। अभ्यासत्वेऽपि अर्थतः एकैकप्रकारत्वं तन्त्रम् नतु शब्दतः अतिप्रसङ्गात्। अन्यमीशमित्यत्र ईशगतान्यत्वं प्रतिपश्यतीति प्रकृतो जीव एव पदन्यायेन प्रतियोगितया संबध्यत इत्यभ्यासोऽपि सम्भवतीति—चेत्, मैवम्

शङ्कते नन्विति। षड्विध जो तात्पर्य्यके लिङ्ग हैं उन लिङ्गोंसे युक्त जो श्रुति तादृश श्रुतिसे गम्य जो भेद उस भेदको अतात्त्विकत्व कैसे है? तथाहि—आथर्वणे—अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषदमें द्वा सुपर्णा (मुं०।३।१।१) यह उपक्रम है, परमं साम्यमुपैति (मुं०।३।१।३) यह उपसंहार है, तयोरन्यः अनश्नन् अन्यः, (मुं० ३।१।१।) अन्यमीशम् (मुं० ३।१।२) यह अभ्यास है, और केवल शास्त्रगम्य जो ईश्वर तत्प्रतियोगिक जो कालत्रयाबाध्यभेद है, उस भेदकी शास्त्रके विना प्राप्ति न होनेसे अपूर्वता है, पुण्यपापे विधूय (मुं० ३।१।३) यह फल है, अस्य महिमानम् (मुं० ३।१।२) यह स्तुतिरूप अर्थवाद है, अत्ति अनश्नन् यह उपपत्ति है। और अत्रच='द्वा सुपर्णा' इत्यादि श्रुतिमें 'मायामात्रमिदं द्वैतम्' इत्यादिकी तरह द्विशब्द ही भेदका वाचक है='मायामात्रमिदं द्वैतं अद्वैतं परमार्थतः' (गौ० १।१७) इस गौडपादीय श्रुतिका द्वैतिओंने ऐसा अर्थ किया है कि—इस श्रुतिमें द्वैतपद भेदसमानार्थक है और 'मायामात्रम्' का अर्थ है कि ईश्वरेच्छाधीन होनेसे सत्य है, तथाच मायामात्रमिदं द्वैतम् इसका अर्थ यह

हुआकि सर्वभेद सत्य है 'अद्वैतं परमार्थतः' इसका अर्थ यह है कि-परमार्थतः=स्वतन्त्रतः-स्वतन्त्र ईश्वरको लेकर अद्वैत है फलतः 'मायामात्रमिदं द्वैतम्' यहाँपर द्वैतपद सत्यभेदपरक है तैसे प्रकृतश्रुतिमें द्विशब्द भेदका वोधक है, अथवा द्विशब्द भेदका आक्षेपक है अथवा द्वित्व संख्या ही ऐक्यकी विरोधिनी है, अतः उपक्रमभेदविषयक है। अब उपसंहारकी भेद-विषयताको दिखलाते हैं, तद्भिन्नत्वेति। तत्प्रतियोगिकभेदविशिष्ट जो तद्गतबहुधर्मयोगित्व है वही तत्में तत्का सादृश्य है, न तु विशेष्यमात्रम्=तद्गतबहुधर्मयोगित्वमात्र नहीं तद्गतबहुधर्म-योगित्वरूपसदृशत्व ऐक्यस्थलमें नहीं वन सकता है इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं,-यह वह नहीं है, किन्तु उसके सदृश है, यह उसके सदृश नहीं है किन्तु यह वही है, इस रीतिसे सादृश्य तथा ऐक्य इन दोनोंमें अन्यतरके विधानके लिए अन्यतरका निषेध होनेसे। और,-गगनं गगना-कारं सागरः सागरोपमः। रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव। इत्यादि तो तत्सदृश जो वस्त्वन्तर तादृश वस्त्वन्तरका जो निषेध तादृश निषेधपर है-गगनं गगनाकारं=इसका अर्थ है गगनभिन्नं गगनसदृशं वस्त्वन्तरं नास्ति; गगन गगनके सदृश है यह वाक्यका अर्थ नहीं है, इसी रीतिसे अन्यत्रभी। अथवा गगनादिके एकदेशका जो गगनादिके एकदेशके साथ सादृश्य है तत्पर है; अतः उपसंहारभी भेदविषयक है। और अभ्यासत्वमेंभी अर्थतः एकप्रकारत्वही तन्त्र है, शब्दतः एकप्रकारत्व तन्त्र नहीं है, अतिप्रसङ्गात्=अतिप्रसङ्ग होनेसे=सास्नादिमती व्यक्तिके अभिप्रायसे और पृथिवी वागादिके अभिप्रायसे प्रयुक्त 'गौर्गौर्गौः' इसकोभी अभ्यासत्वकी आपत्तिसे-क्योंकि शब्दतः एकप्रकारत्व यहाँभी है। और अन्यमीशम् (मुं० ३।१।२) यहाँपर ईशगत अन्यत्वके प्रति पश्यति एतत्कर्तृत्वेन प्रकृत जीव ही पदन्यायसे प्रतियोगितया सम्बद्ध होता है=पदे जुहोति यहाँपर जैसे 'एकहायन्या सोमं क्रीणाति' इससे उपस्थित एक हायनी ही पदके साथ अन्वयको प्राप्त होती है नकि यत्किञ्चित्, तद्वत् प्रकृतमेंभी पश्यतिसे उपस्थित जीव ही प्रतियोगियता सम्बद्ध होता है नकि अन्यत् अतः अभ्यासकाभी सम्भव है, ननुसे लेकर यहां तक पूर्वपक्ष है अब इसका परासन किया जाता है। इति चेन् मैवम्; क्यों ?

आथर्वणे प्रथममुण्डके 'कस्मिन्नुभगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति' शौनक-प्रश्नानन्तरं द्वे विद्ये वेदितव्ये इति विद्याद्वयमवतार्य ऋग्वेदादिलक्षणामपरामुक्त्वा 'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते' यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमित्यादिना परविद्याविषयमक्षरं प्रश्नानुसारेण प्रतिपादयता अभेदस्यैवोपक्रान्तत्वात्, अन्यथा तदुत्तरत्वानुपपत्तेः, द्विती-यमुण्डके पुरुष एवेदं विश्वं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठमिति मध्ये परामर्शात् तृतीयमुण्ड-कान्ते च परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति। स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवतीत्यै-क्यलक्षणफलेनोपसंहाराच्च मुण्डकत्रयात्मिकाया उपनिषद ऐक्यपरत्वे स्थिते 'असंयुक्तं प्रकरणा'दिति न्यायेनाभिक्रमणादिवन्मध्यस्थितवाक्यस्यापि द्वा सुपर्णेत्यादेस्तदनुकूलत्वे संभवति महाप्रकरणविरोधेन विपरीततात्पर्य्यकल्पनया भेदोपक्रमत्वाभावात्, परमं साम्य-

मुपैतीत्यस्य पूर्वोक्तन्यायेन ऐक्यपरतया भेदोपसंहारत्वाभावात् अतः अनश्नन्नित्यादिना न तात्त्विकभेदाभ्यासः, नापीशस्य शास्त्रगम्यतया तत्प्रतियोगिकस्तद्धर्मिको वा भेदोऽपूर्वः ईशज्ञानमात्रे तदपेक्षायामपि प्रत्यक्षेण तत्समकक्ष्यमानेन च तयोः प्राप्तत्वात् ।

आथर्वणे=अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषत्स्थ प्रथममुण्डकमें 'कस्मिन् नु भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति' (मुं० १।१।३) इत्याकारक शौनक प्रश्नके बाद 'द्वे विद्ये वेदितव्ये' (मुं० १।१।४) इस रीतिसे विद्याद्वयका अवतरणकर ऋग्वेदादिलक्षणा अपराविद्याको कहकर अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते (मुं० १।१।५) इस रीतिसे पराविद्याविषयीभूत अक्षरको प्रश्नानुसार प्रतिपादन करते हुए उत्तरदातासे अभेदको ही उपक्रान्तत्व होनेसे अन्यथा=अभेदको ही उपक्रमका विषयत्व न होनेपर अभेदविषयक प्रश्नके उत्तरत्वकी अनुपपत्तिसे । द्वितीय मुण्डकमें 'पुरुष एवेदं विश्वं' (मुं०२।१।१०) ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् (मुं० २।२।११) इस रीतिसे मध्यमें अभेदका ही परामर्श होनेसे । और तृतीय मुण्डकके अन्तमें 'परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति (मुं० ३।२।७) स यो ह वै तत् परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति (मुं० ३।२।९) इस रीतिसे ऐक्य लक्षण फलसे उपसंहारसेभी मुण्डकत्रयात्मक उपनिषत्का ऐक्यपरत्व स्थित होनेपर असंयुक्तं प्रकरणात् (जै० १।३।११) इस न्यायसे अभिक्रमणादिवत् मध्यस्थित द्वा सुपर्णा इत्यादि वाक्यार्थकोभी ऐक्यानुकूलत्वका सम्भव होनेपर महाप्रकरणके साथ विरोध होनेसे विपरीत तात्पर्य्यकल्पनाप्रयुक्त भेदोपक्रमत्वके अभावसे=जैमिनीय मीमांसाके तृतीयाध्यायके तृतीयपादके चतुर्थाधिकरणमें विचार किया है 'दर्शपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत' इसके नजदीकमें 'समिधो यजति' यह वाक्य आया है वहाँ ऐसा संशय किया गया है कि 'समिधो यजति' इसका वाक्यार्थ दर्शपूर्णमासका अङ्ग है या नहीं पूर्वपक्ष यह किया गया है कि, नहीं है, क्योंकि अङ्गाङ्गिभावबोधक जो श्रुतिलिङ्गवाक्य हैं, उन्होंमेंसे तो यहाँ कोई है ही नहीं उत्तर यह किया गया कि असंयुक्तम्=श्रुत्यादिसे असंयुक्त जो 'समिधो यजति' इत्यादिका वाक्यार्थ है वह प्रकरणात्=प्रकरणसे दर्शपूर्णमासकी अङ्गताको प्राप्त होता है, तथाच इस सूत्रसे जैसे समिदादिवाक्यार्थको दर्शपूर्णमासका अङ्गत्व निर्णीत होता है तैसे द्वा सुपर्णा इत्यादिको ऐक्यबुद्धिका उपकारकत्व है । शङ्का 'द्वा सुपर्णा' यहाँपर ऐक्यको स्पष्टत्व न होनेसे उक्त न्यायकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है समाधान अभिक्रमणादिवत्=जैमिनीय मीमांसाके तृतीयाध्यायके प्रथमपादके दशमाधिकरणमें विचार किया है दर्शपूर्णमासके प्रकरणमें प्रयाजादिके समीपमें अभिक्रामञ्जुहोति यह वाक्य आया है यहाँपर सन्देह किया है कि,— क्या यहाँ प्राकरणिक सर्व होमोंका अनुवादकर अभिक्रमणका विधान है अथवा सन्निधिसे प्रयाजोंमें ही अभिक्रमणका विधान है सिद्धान्त यह किया कि इस वाक्यके पूर्वमें और उत्तरमें प्रयाजोंका निरूपण होनेसे मध्यपतित यह वाक्यभी प्रयाजोंके साथमें ही सम्बन्ध रखता है और प्रयाजोंकाभी अवान्तर प्रकरण है, आहवनीय अग्निके चारोंतरफ घूमनेका नाम अभिक्रमण है । तथाच इस अधिकरणसे जैसे मध्यपतित अभिक्रमण प्रयाजोंकेप्रति उपकारक है

तैसे मध्यपतित 'द्वा सुपर्णा' इसके वाक्यार्थकोभी पूर्वपरवाक्यार्थरूप ऐक्यकेप्रति उपकारकत्व है, परमं साम्यमुपैति (मुं० ३।१।३) इसको पूर्वोक्तन्यायसे ऐक्यपरत्व होनेसे भेदोपसंहारत्वके अभावसे। अतः 'अनश्नन्' इत्यादिसे तात्विक भेदका अभ्यास नहीं है। और ईश्वरको शास्त्रगम्य होनेसे ईश्वरप्रतियोगिक या ईश्वरधर्मिकभेद अपूर्वभी नहीं है क्यों ? ईश्वरज्ञानमात्रमें शास्त्रकी अपेक्षा होनेपरभी प्रत्यक्षसे और प्रत्यक्षसमकक्ष्य अर्थापत्तिरूपप्रमाणसे तयोः=ईश्वर और ईश्वरका भेद इन दोनोंको प्राप्तत्व होनेसे।

त्वदुक्तफलार्थवादयोरैक्यपक्षेऽपि सम्भवेन न भेदासाधारणलिङ्गता, अनश्नन्नित्यादेः काल्पनिकभेदेनोपपत्त्या तात्त्विकभेदोपपत्तिस्त्वाभावात् ननु–अन्तर्यामिब्राह्मणं षड्विधतात्पर्यलिङ्गोपेतं वाक्यं भेदे प्रमाणम्। तथाहि–वेत्थ नु त्वं काप्य तमन्तर्यामिणमित्युपक्रमः; एष त अन्तर्यामीत्युपसंहारः 'एष त आत्मे'त्याद्येकविंशतिकृत्वोऽभ्यासः अन्तर्यामित्वस्याप्राप्ततयाऽपूर्वता स वै ब्रह्मविदित्यादि फलम्; 'तच्चेत्त्वं याज्ञवल्क्य' सूत्रमविद्वांस्तंचान्तर्यामिणं ब्रह्मगवीरुदजसे मूर्द्धा ते विपतिष्यतीति निन्दारूपोऽर्थवादः 'यस्य पृथिवी शरीरं यं पृथिवी न वदे' इत्याद्युपपत्तिरिति–चेत् मैवम्।

और त्वदुक्त जो फल तथा अर्थवाद इन दोनोंका ऐक्यपक्षमेंभी सम्भव होनेसे भेदके प्रति इन्होंको असाधारणलिङ्गता नहीं है। और अनश्नन् (मुं० ३।१।१) इत्यादिकीकाल्पनिकभेदसे उपपत्ति होनेसे तात्त्विकभेदमें उपपत्तिके अभावसे शङ्कते नन्विति। अन्तर्यामिब्राह्मणस्थ षड्विधतात्पर्य्योपेत वाक्य भेदमें प्रमाण है। तथाहि वेत्थ नु त्वं काप्य तमन्तर्यामिणम् (बृ० ३।७।१) यह उपक्रम है, एष ते आत्मान्तर्यामी यह उपसंहार है, एषते आत्मा (बृ० ३।७।३) इत्यादि एकविंशतिवार अभ्यास है। और अन्तर्यामित्वको प्रमाणान्तरसे न प्राप्त होनेसे अपूर्वता है स वै ब्रह्मवित् (बृ० ३।७।१) इत्यादि फल है तच्चेत्त्वं याज्ञवल्क्य (बृ० ३।७।१) इत्यादि निन्दारूप अर्थवाद है, यस्य पृथिवी शरीरम् (बृ० ३।७।३) इत्यादिरूप उपपत्ति है इति चेन् मैवम् क्यों ?

आत्मेत्येवोपासीतेतिसूत्रितब्रह्मविद्याविवरणरूपायां—चतुरध्याय्यां अनेनह्येतत्सर्वं वेदेति एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञापूर्वकं ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्तत्सर्वमभवदित्यभेदेनोपक्रम्य चतुर्थाध्यायान्ते मैत्रेयीब्राह्मणे निगमनरूपे यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत् केन कं पश्येदित्यादिना भेदेनैवोपसंहारात् अध्यायचतुष्टयस्याप्यभेदपरत्वे स्थिते तदन्तर्गतस्य ब्रह्मलोकान्तरसूत्रात्मप्रतिपादनपरस्य उत्तरब्राह्मणप्रतिपाद्यनिरुपाधिकसर्वान्तरब्रह्मप्रतिपत्त्यनुकूलस्य महाप्रकरणानुरोधेन तद्विरोधिभेदपरत्वाभावात्, त्वदुपन्यस्तलिङ्गानां भेदपरतानिर्णायकत्वेऽपि कल्पितभेदपरतया तात्त्विकाभेदाविरोधित्वात्। अतएव–'न शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयत' इति सूत्रविरोधः न वा तद्भाष्यव्याहृतिः॥

इत्यद्वतसिद्धौ भेदश्रुतेः षड्विधतात्पर्यलिङ्गभङ्गः॥

'आत्मेत्येव उपासीत' (बृ० १।४।७) इस रीतिसे सूत्रित जो ब्रह्मविद्या तादृश ब्रह्मविद्याकी विवरणरूप जो चतुरध्यायी उस चतुरध्यायीमें अनेन हि एतत्सर्वम् वेद (बृ० १।४।७) इस प्रकारसे एकविज्ञानसे सर्वविज्ञानकी प्रतिज्ञापूर्वक 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्' तदात्मानमेवावदेहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्तत्सर्वमभवत् (बृ० १।४।१०) इस रीतिसे अभेदसे उपक्रम कर चतुर्थ अध्यायके अन्तमें स्थित जो मैत्रेयीब्राह्मण तादृश मैत्रेयीब्राह्मणस्थ निगमनरूपमें यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत् केन कं पश्येत् (बृ० ४।५।१५) इत्याकारक अभेदसे ही उपसंहार होनेसे, और चारों ही अध्यायोंको अभेदपरत्व स्थित होनेपर तदन्तर्गत=अध्यायचतुष्टयान्तर्गत जो उत्तरब्राह्मणप्रतिपाद्य निरुपाधिकसर्वान्तरब्रह्मप्रतिप्रत्त्यनुकूल ब्रह्मलोकान्तरसूत्रात्मान्तर्यामिप्रतिपादनपर अन्तर्यामि—ब्राह्मण है उस ब्राह्मणको महाप्रकरणानुरोधसे तद्विरोधि=महाप्रकरणप्रतिपाद्याभेदविरोधि जो भेद तादृश भेदपरत्वके अभावसे । और त्वदुपन्यस्त लिङ्गोंको भेदपरतानिर्णायकत्व होनेपरभी कल्पितभेदपरत्व होनेसे तात्त्विक अभेदका विरोधित्व न होनेसे ही । शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते (वे० १।२।२०) इस सूत्रके साथमें विरोध नहीं है, और तदीयभाष्यमें व्याघात नहीं है ॥

इति सरलायां भेदश्रुतेः षड्विधतात्पर्य्यलिङ्गभङ्गः ॥

अथैक्यस्वरूपोपपत्तिः ।

ननु—ऐक्यं आत्मस्वरूपम्, उतान्यत्, नाद्यः एकतरपरिशेषाद्यपत्तेः, सापेक्षस्यैक्यस्य निरपेक्षात्मत्वायोगाच्च, नान्त्यः सत्यत्वे अद्वैतहानेः मिथ्यात्वे तत्त्वमसीत्यादेरतत्त्वावेदकतापत्तेरितिचेन्न; आद्यमेवानवद्यम् । ज्ञानानन्दयोरात्मैक्येऽपि यथानैकतरपरिशेषापत्त्यादिकं कल्पितानन्दत्वादिधर्मात् तथा प्रकृतेऽपि सम्भवात् ऐक्ये अभिज्ञेयत्वस्य प्रागुक्तेः तस्यापि निरपेक्षतया निरपेक्षात्मस्वरूपत्वाविरोधात् अज्ञानाद्यधिष्ठानतया भासमानात्मस्वरूपत्वेऽपि ऐक्यस्य तद्गोचरवृत्तिविशेषस्याज्ञाननिवर्त्तकस्य इदानीमसत्त्वात्संसारोपपत्तेः अन्त्ये पक्षे दोषास्त्वनुक्तोपालम्भा एव । अतएव, अतिरिक्तमैक्यं नैकत्वसंख्या न वा, तन्निष्ठाशेषधर्मवत्त्वम्, नवा तन्निष्ठासाधारणधर्मवत्त्वम् निर्धर्मके ब्रह्मणि तेषामभावात् ।

अथ सरलायामैक्यस्वरूपोपपत्तिः ।

शङ्कते नन्विति । ऐक्य आत्मस्वरूप है या आत्मासे भिन्न है; नाद्यः=आत्मस्वरूप है यह आद्यपक्ष नहीं बन सकता है; क्यों ? एकतरपरिशेषादिकी आपत्तिसे, आदि शब्दसे पर्य्यायत्वादिका ग्रहण है, सापेक्ष जो ऐक्य है उसमें निरपेक्षात्मत्वके अयोगसेभी—ऐक्य आत्मस्वरूप नहीं हो सकता है; नान्त्यः=आत्मासे अतिरिक्त ऐक्य है यह अन्तिमपक्षभी नहीं बन सकता है क्यों ? सत्यत्वे=अतिरिक्त होकर सत्यत्व होनेपर अद्वैतकी हानिसे और मिथ्यात्व होनेपर 'तत्त्वमसि' इत्यादिको अतत्त्वावेदकत्वकी आपत्तिसे, इति चेन्न; क्यों ? प्रथमपक्ष ही

निर्दोष है, ज्ञान तथा आनन्द इन दोनोंका आत्माके साथ ऐक्य होनेपरभी जैसे एकतरके परिशेषादिकी आपत्ति नहीं है, कल्पित आनन्दादि धर्मोंसे, तथा प्रकृतमेंभी सम्भव होनेसे, और ऐक्यमें अभिज्ञेयत्वकी पूर्वमें उक्ति होनेसे ऐक्यकोभी निरपेक्षत्व होनेसे निरपेक्षात्मकस्वरूपके अविरोधसे। और ऐक्यको अज्ञानाद्यधिष्ठानत्वेन भासमान जो आत्मा तादृश आत्मस्वरूपत्व होनेपरभी ऐक्यगोचर जो अज्ञाननिवर्त्तकवृत्तिविशेष, उसका इस कालमें=अज्ञानकालमें सत्त्व न होनेसे संसारकी उपपत्तिसे। और अनङ्गीकार होनेसे अन्यपक्षमें जो दोष कहे हैं वे तो अनुक्तोपालम्भ ही हैं, अतएवेति। अतिरिक्त ऐक्य एकत्वसंख्यारूप नहीं है, और तन्निष्ठाशेषधर्मवत्त्वरूपभी नहीं है या तन्निष्ठासाधारणधर्मवत्त्वरूप नहीं है, निर्धर्मक ब्रह्ममें उक्तधर्मोंका अभाव होनेसे।

नापिभेदविरहः भेदस्यैक्यविरहरूपत्वेनान्योन्याश्रयात्। नापि तदवृत्तिधर्मानधिकरणत्वम्; शून्यस्यापि ब्रह्मैक्यापातादितिनिरस्तम्; शून्यतदवृत्तिधर्मानाधारत्वोपलक्षितस्वरूपस्याभेदत्वात्। शून्यस्य निःस्वरूपत्वात् न शून्यस्यैकरूपता। नच—तदवृत्तिधर्मनिषेधेन तद्वृत्तिधर्मविधानप्रसङ्गः, विशेषनिषेधस्य शेषाभ्यनुज्ञाफलकत्वादिति—वाच्यम्; शेषविधायकत्वस्य सर्वत्रासंप्रतिपत्तेः। अन्यथा वायौ न नीलरूपमित्यस्यापि गौरं प्रतिविधायकत्वापातात्। ननु—अभेदे अभेदत्वपारमार्थिकत्वासद्वैलक्षण्यादीनि तत्त्वतः सन्ति न वा आद्ये सद्वितीयत्वापत्तिः द्वितीये अभेदत्वादिहानिरिति—चेन्न; तत्त्वतः स्वरूपभूतैरेव तैरभेदरूपताया अद्वैतस्य चाहान्युपपत्तेः। नच—एवमभेदस्याबाधितात्मस्वरूपपर्यवसाने तस्य चात्मस्वरूपस्य परैरपि सम्मतत्वेन त्वच्छास्त्राविषयत्वमिति—वाच्यम्; जीवावृत्तिधर्मानधिकरणत्वोपलक्षितात्मस्वरूपस्य परैरनङ्गीकारात् तदेवमुक्ते जीवब्रह्माभेदे 'तत्त्वमसि। स वा अयमात्मा ब्रह्मइत्यादि श्रुतिर्मानम्।

इत्यद्वैतसिद्धौ ऐक्यस्वरूपोपपत्तिः॥

भेदविरह रूपभी ऐक्य नहीं हो सकता है, भेदको ऐक्यविरह रूपत्व होनेसे अन्योन्याश्रय होनेसे, तदवृत्ति=आत्मावृत्तिधर्मानधिकरणत्वरूपभी ऐक्य नहीं हो सकता है ब्रह्मके साथ शून्यकेभी ऐक्यके आपातसे यह कथन निरस्त हुआ, अतएवशब्दका अर्थ करते हैं तदवृत्ति=ब्रह्मावृत्ति जो धर्म तादृशधर्मानाधारत्वोपलक्षितस्वरूपको अभेदत्व होनेसे, शून्यस्य निःस्वरूपत्वात्=शून्यको उक्तरूपसे हीनत्व होनेसे शून्यको ऐक्यरूपता नहीं है। नचेति। तदवृत्तिधर्मके निषेधसे तद्वृत्तिधर्मके विधानका प्रसङ्ग है, विशेषके निषेधको शेषाभ्यनुज्ञाफलकत्व होनेसे इति नच वाच्यम्, क्यों? शेषविधायकत्वकी सर्वत्र सम्प्रतिपत्ति न होनेसे। अन्यथा 'वायुमें नीलरूप नहीं है' इसकोभी गौररूपके प्रति विधायकत्वका आपात है, अतः उक्त नियम नहीं है शङ्कते नन्विति। अभेदमें अभेदत्व पारमार्थिकत्व तथा असद्वैलक्षण्यादिक तत्त्वतः हैं या नहीं, आद्यपक्षमें सद्वितीयत्वकी आपत्ति है, और द्वितीयपक्षमें अभेदत्वादिकी हानि है, इति चेन्न;

क्यों ? तत्त्वतः स्वरूप भूत जो अभेदत्वादि हैं उन्होंसे ही अभेदरूपताकी और अद्वैतकी अहानिकी उपपत्तिसे। नचेति। अभेदका अबाधितात्मस्वरूपमें पर्य्यवसान होनेसे और उस आत्मस्वरूपको दूसरोंसेभी सम्मतत्व होनेसे तुह्मारे शास्त्रका अविषयत्व है, इति नच वाच्यम् क्यों ? जीवावृत्तिधर्मानधिकरणत्वोपलक्षितात्मस्वरूपका दूसरोंसे अनङ्गीकार होनेसे। और इस रीतिसे उक्त जीवब्रह्माभेदमें तत्त्वमसि (छा० ६।८।७) स वा अयमात्मा ब्रह्म (बृ० ५।१९) इत्यादि श्रुतियां प्रमाण हैं

इति सरलायामैक्यस्वरूपोपपत्तिः॥

अथ जीवब्रह्माभेदे प्रमाणम्।

ननु—सार्वज्ञ्यासार्वज्ञ्यादिविशिष्टयोरैक्यमयोग्यत्वपराहतम्। कथमुदाहृतश्रुत्या बोध्यमिति-चेन्न; सोऽयमित्यादाविव विरुद्धाकारत्यागेन शुद्धयोरैक्यबोधनात्। ननु-विरुद्धाकारत्यागः किमविवक्षामात्रेण, उतानित्यत्वेन, उत मिथ्यात्वेन; नाद्यः विरुद्धाकारस्याविवक्षायामप्यनपायात्। नहि असद्वा इदमग्र आसीत्सर्वं खल्विदं ब्रह्मेत्यादिश्रुत्या सत्त्वशून्यत्वयोश्चित्वजडत्वयोर्वेहाविवक्षामात्रेण ब्रह्मणः शून्येन जडेन च ऐक्यं सुवचम्। न द्वितीयः तत्त्वं भविष्यसीति निर्देशापत्त्या असीति वर्त्तमाननिर्देशायोगात् दशाभेदेन भेदाभेदयोः सत्त्वापत्त्यात्वयाप्यनङ्गीकाराच्च, जीवेशयोः स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्यादेर्नित्यत्वाच्च। न तृतीयः निर्दोषश्रुतिसाक्षिसिद्धयोर्विरुद्धधर्मयोर्मिथ्यात्वायोगादिति-चेन्न; विरुद्धाकारस्य अविवक्षयैवत्यागात्। त्यागश्चब्रह्मानुभवाविषयत्वम्, नत्वपायः, तस्य चरमसाक्षात्कारसाध्यत्वात्। तथाच तत्तदेन्ते इवानपेते अपि सार्वज्ञ्यासार्वज्ञ्ये नाश्रयाभेदविरोधाय। अविवक्षा च प्रधानप्रमेयनिर्वाहाय। नच—सोऽयमित्यत्र तत्तेदन्तयोर्नत्यागः। क्रमेणैकत्र तयोरविरोधादिति—वाच्यम् अभेदपरे अस्मिन्विशेषणयोरैक्यापत्त्या क्रमेणैकत्र सत्त्वेऽपि तत्त्यागस्यावश्यकत्वात् 'असद्वे'त्यादौ 'सर्वं खल्विदं ब्रह्मे'त्यादौ च न शून्यजडैक्यापत्तिः; शून्यसतोः चिज्जडयोर्वा विरुद्धाकारपरित्यागेन जीवब्रह्मणोरिवानुस्यूतस्याकारस्याभावात्, असतो निःस्वरूपत्वाज्जडस्य बाधस्वरूपत्वात्।

इत्यद्वैतसिद्धौ जीवब्रह्माभेदे प्रमाणम्॥

अथ सरलायां जीवब्रह्माभेदे प्रमाणम्।

शङ्कते नन्विति। सार्वज्ञ्यादिविशिष्ट और असार्वज्ञ्यादिविशिष्ट इन दोनोंका ऐक्य अयोग्यत्वसे पराहत है, एवम्भूत ऐक्य उदाहृतश्रुतिसे=तत्त्वमस्यादिश्रुतिसे कैसे बोध्य है, इति चेन्न; 'सोऽयम्' इत्यादिकी तरह विरुद्धाकारत्यागपूर्वक शुद्धोंके ऐक्यका बोधन होनेसे। नन्विति। विरुद्धाकारका त्याग क्या अविवक्षामात्रसे है या अनित्यत्वेन है या मिथ्यात्वेन है, नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों ? अविवक्षा होनेपरभी विरुद्धाकारके अनपायसे,

क्योंकि असद्वा इदमग्र आसीत् (तै० २।७।१) सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छा० ३।१४।१) इत्यादि श्रुतिसे सत्त्व तथा शून्यत्व इन दोनोंकी अविवक्षामात्रसे या चित्त्व जडत्व इन दोनोंकी अविवक्षामात्रसे ब्रह्मका शून्यके साथ या जडके साथ ऐक्य सुवच नहीं है। न द्वितीयः=अनित्यत्वेन विरुद्धाकारका त्याग है, यह द्वितीयपक्षभी ठीक नहीं है, क्यों? सत्त्वं भविष्यसि इत्याकारक निर्देशकी आपत्तिसे। 'असि' इत्याकारक जो वर्त्तमान निर्देश है उसके अयोगसे। और कालभेदसे भेद तथा अभेद इन दोनोंके सत्त्वकी आपत्तिसे तुमसेभी तथाविध अङ्गीकार न होनेसे और ईश्वरके स्वातन्त्र्यादिको और जीवके पारतन्त्र्यादिको नित्यत्व होनेसेभी। न तृतीयः=मिथ्यात्वेन विरुद्धाकारका त्याग है यह तृतीयपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों? निर्दोषश्रुति तथा साक्षी इन दोनोंसे सिद्ध जो विरुद्धधर्म उन्होंके मिथ्यात्वके अयोगसे। इति चेन्न; क्यों? विरुद्धाकारकी अविवक्षासे ही त्याग होनेसे। और त्याग तो ब्रह्मानुभवाविषयत्वरूप है, अपायरूप नहीं, तस्य=अपायको चरमसाक्षात्कारसाध्यत्व होनेसे तथाच तत्ता तथा इदन्ता इन दोनोंकी तरह अनष्ट हुएभी सार्वज्ञ्य तथा असार्वज्ञ्य ये दोनों आश्रयके अभेदके विरोधके लिए नहीं होते हैं। और इन्होंकी अविवक्षा तो अभेदरूप प्रधानप्रमेयके निर्वाहके लिए है। नचेति। 'सोऽयम्' यहाँपर तत्ता तथा इदन्ता इन दोनोंका त्याग नहीं है, क्रमसे एक अधिकरणमें इन दोनोंका अविरोध होनेसे, इति नच वाच्यम् क्यों? अभेदपर 'सोऽयम्' यहाँपर विशेषणोंकेभी ऐक्यकी आपत्तिसे क्रमशः एकत्र उभयका सत्त्व होनेपरभी तत्ता तथा इदन्ता-इन दोनोंके त्यागको आवश्यकत्व होनेसे। 'असद्वा' (तै० २।७।१) इत्यादिमें तथा सर्वं खल्विदं ब्रह्म (छा० ३।१४।१) इत्यादिमें शून्य तथा जड़ इन्होंके ऐक्यकी आपत्ति नहीं है-शून्य तथा सत् इन दोनोंमें तथा चिज्जड़ इन दोनोंमें-विरुद्धाकारके परित्यागसे जीवब्रह्मकी नाई अनुस्यूत आकारके अभावसे; असत्को निःस्वरूपत्व होनेसे और जड़को बाध्यस्वरूपत्व होनेसे ॥

इति सरलायां जीवब्रह्माभेदे प्रमाणम् ॥

अथ ऐक्यश्रुतेरुपजीव्यविरोधाभावः।

ननु—ऐक्यश्रुत्या प्रत्यक्षसिद्धं जीवमनुद्य ब्रह्मत्वं वा बोधनीयं, श्रुतिसिद्धंब्रह्मानूद्य तस्य जीवत्वं वा, उभयानुवादेनाभेदो वा विधेयः, सर्वथाप्युपजीव्यविरोधात् नैक्ये प्रामाण्यम्, प्रत्यक्षेण जीवस्य ब्रह्मभिन्नत्वेन श्रुत्या च सर्वज्ञत्वादिमद्ब्रह्मग्राहिण्या तद्धीनत्वेनानुभूयमानाज्जीवात् भिन्नत्वेन ब्रह्मणो ज्ञायमानत्वात्, नचानुमानेन ब्रह्मोपस्थितिः तेनापि सर्वज्ञत्वादिना ब्रह्मणो विषयीकरणेन उपजीव्यविरोधतादवस्थ्यादिति-चेन्न; शक्तिग्रहादौ तयोरुपजीव्यत्वेऽपि स्वप्रमेयेऽनुपजीव्यत्वात्। तदुक्तम् वाचस्पत्ये-यत् उपजीव्यं तन्न बाधते, यद्बाध्यते तन्नोपजीव्यमिति। यथा कथंचिदपेक्षामात्रेणोपजीव्यत्वे नेदं रजतमित्यत्रापि इदं रजतमित्यस्योपजीव्यतापत्तेः।

अथ सरलायामैक्यश्रुतेरुपजीव्यविरोधाभावः।

शङ्कते नन्विति। ऐक्यश्रुत्या=तत्त्वमस्यादिरूप ऐक्यश्रुतिसे प्रत्यक्षसिद्धजीवका अनुवादकर ब्रह्मत्व बोधनीय है अथवा दोनोंका अनुवादकर अभेद विधेय है, सर्वथैव उपजीव्यके साथ विरोध होनेसे, अभेदश्रुतिका ऐक्यमें प्रामाण्य नहीं है, प्रत्यक्षप्रमाणसे जीवको ब्रह्मभिन्नत्वेन जीवको और सर्वज्ञत्वादिमत् जो ब्रह्म तादृश ब्रह्म ग्राहिणी श्रुतिसे तद्धीनत्वेन=सर्वज्ञत्वादिहीनत्वेन अनुभूयमानजीवसे भिन्नत्वेन ब्रह्मको ज्ञायमानत्व होनेसे; अनुमानसे ब्रह्मकी उपस्थिति है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना, क्यों ? तेनापि=अनुमानसेभी सर्वज्ञत्वादिरूपसे ब्रह्मका विषयीकरण होनेसे उपजीव्यविरोधका तादवस्थ्य होनेसे; इति चेन्न; क्यों ? शक्तिग्रहादिमें तयोः= प्रत्यक्ष तथा अनुमान इन दोनोंको उपजीव्यत्व होनेपरभी स्वप्रमेयमें अनुजीव्यत्व होनेसे सो कहा है—भामतीमें (वे० १।१।१) की भामती देखनी चाहिए जो व्यावहारिकस्वरूप उपजीव्य है वह श्रुतिसे बाधित नहीं होता है, और जो पारमार्थिक स्वरूपबाधित होता है वह उपजीव्य नहीं है। और यथाकथञ्चित्, उपजीव्यत्व होनेपर 'नेदं रजतम्' यहाँपरभी 'इदं रजतम्' इसके उपजीव्यत्वकी आपत्तिसे।

ननु—यद्धि यदपेक्षं यस्य बाधे स्वस्य बाधापत्तिश्च तत्तस्योपजीव्यम्, प्रकृते च धर्म्यादिग्राहकस्यैव स्वप्रामाण्यग्राहकतया तद्बाधे स्वबाधापत्तिः निषेध्यार्पणस्थले तु न तथा। नहि ब्रह्मस्वरूपधर्मिज्ञानाप्रामाण्ये ऐक्यज्ञानाप्रामाण्यवत् प्रतिषेध्यज्ञानाप्रामाण्ये प्रतिषेधज्ञानाप्रामाण्यम् प्रतिषेधशास्त्रविलोपप्रसङ्गादिति—चेत् सत्यम्; सार्वज्ञ्यादिविशिष्टं न तावद्धर्मि किन्तु ब्रह्मस्वरूपमात्रम् विशिष्टधर्मिज्ञानाप्रामाण्यम् ऐक्यज्ञानप्रामाण्ये नापेक्ष्यते, किन्तु स्वरूपज्ञानप्रामाण्यमात्रम्। अन्यथा इदं रजतमित्यस्यापि धर्मिज्ञानत्वेन उपजीव्यतया निषेधज्ञानप्रामाण्ये रजतत्वविशिष्टेदंज्ञानप्रामाण्यं स्यात्। रजतत्ववैशिष्ट्यस्य धर्मित्वाप्रयोजकत्ववत् सार्वज्ञ्यादिवैशिष्ट्यस्यापि तदप्रयोजकत्वस्य प्रकृतेऽपि समानत्वात्।

शङ्कते नन्विति। जो पदार्थ जिसकी अपेक्षा रखता हो और जिसका बाध होनेपर स्वके बाधकी आपत्ति हो, वह उसका उपजीव्य है। और प्रकृतमें तो धर्म्यादिग्राहकप्रमाणको ही स्वप्रमाणत्वग्राहकता होनेसे तद्बाधे=धर्म्यादिग्राहकनिष्ठ प्रामाण्यका बाध होनेपर स्वके बाधकी आपत्ति है, और निषेध्यार्पणस्थलमें तो तथा नहीं है—क्योंकि जैसे ब्रह्मस्वरूपधर्मिज्ञानका अप्रामाण्य होनेपर ऐक्यज्ञानमें अप्रामाण्य होता है तैसे प्रतिषेध्यज्ञानका अप्रामाण्य होनेपर प्रतिषेधज्ञानका अप्रामाण्य नहीं है प्रतिषेधशास्त्रके विलोपके प्रसङ्गसे इति चेत्सत्यम्; ऐसा यदि कहते हो तो एक प्रकारसे ठीक ही कहते हो—इससे हमारे सिद्धान्तकी हानि नहीं है, इसी अर्थको स्पष्ट करते हैं—सार्वज्ञ्यादिविशिष्ट धर्मि नहीं है, किन्तु ब्रह्मस्वरूपमात्र धर्मि है। और विशिष्टधर्मिनिष्ठज्ञाननिष्ठप्रामाण्य ऐक्यज्ञानके प्रामाण्यमें अपेक्षित नहीं होता है, किन्तु स्वरूपज्ञाननिष्ठप्रामाण्य ही अपेक्षित होता है अन्यथा 'इदं रजतम्' इस ज्ञानकोभी धर्मिज्ञानत्वेन

उपजीव्यता होनेसे निषेधज्ञानका प्रामाण्य होनेपर रजतत्वविशिष्ट इदं ज्ञानकाभी प्रामाण्य होगा, और जैसे रजतत्वके वैशिष्ट्यको धर्मित्वके प्रति अप्रयोजकत्व है तैसे सार्वज्ञ्यादिके वैशिष्ट्यकेभी धर्मित्वके प्रति अप्रयोजकत्वको प्रकृतमेंभी समानत्व होनेसे।

ननु—एवमसाधारणसार्वज्ञ्यादिधर्मावच्छेदेन ब्रह्मणोऽनुद्देश्यत्वे साधारणधर्मेण स्वरूपेण वा उद्देश्यता वाच्या, तत्राद्ये इष्टापत्तिः, चित्त्वादिसाधारणधर्मैक्यस्यास्माभिरप्यङ्गीकारात्, द्वितीये, ब्रह्मैक्यासिद्धिः, साधारणस्वरूपमात्रोद्देशादिति—चेन्न; ब्रह्मैक्यासिद्धिरित्यत्र ब्रह्मशब्देन सार्वज्ञ्यादिविशिष्टं चेदभिमतं तदेष्टापत्तिः तदा त्वमा च लक्षितयोरेव पदार्थैरैक्यबोधस्य प्राक् प्रतिपादितत्वात्। अतएव—शब्देन असाधारणब्रह्मस्वरूपोद्देशस्यासाधारणधर्मेण विनाऽसिद्धेरुपजीव्यविरोधतादवस्थ्यमिति—निरस्तम्; असाधारणधर्मस्य उद्देश्यसमर्पणे उपलक्षकत्वात् नच उपलक्ष्यतावच्छेदकाभावे उपलक्ष्यत्वासिद्धिः, चित्त्वस्य तत्त्वे सिद्धसाधनादिति—वाच्यम्; स्वरूपोपलक्षणे उपलक्ष्यतावच्छेदकस्यानपेक्षणात्। यत्तु चित्त्वेनैक्ये सिद्धसाधनं, तन्न; चित्त्वैक्यस्येष्टत्वेऽपि तदाश्रयैक्यस्य तवानिष्टत्वात्, इष्टौचाविवादात्। अतएव—पुरोडाशकपालेन तुषानुपवपतीत्यत्राधिष्ठानलक्षणायां अन्यतो प्राप्ततुषोपवापविधानरूपेष्टसिद्धिवदत्र न लक्षणयाभीष्टसिद्धिः, येन लक्षणा स्यादिति—निरस्तम् चित्त्वैक्यस्य प्राप्तत्वेऽपि आश्रयैक्यस्याप्राप्तस्य लक्षणाप्रापणीयस्य सत्त्वात् सोऽयमित्यत्रापि उक्त प्रकारस्यावश्यवाच्यत्वात्।

शङ्कते नन्विति। असाधारण जो सार्वज्ञ्यादिधर्म तादृश सार्वज्ञ्यादिधर्मावच्छेदेन ब्रह्मको उद्देश्यत्व न होनेपर साधारण धर्मसे या स्वरूपसे ब्रह्मको अभेदके प्रति उद्देश्यता कहनी चाहिए, तत्र=उक्त दोनों पक्षोंमेंसे आद्यपक्षमें इष्टापत्ति है—चित्त्वादिरूपसाधारणधर्मके ऐक्यका जीवब्रह्ममें हमसेभी अङ्गीकार होनेसे द्वितीये=स्वरूपेण उद्देश्यता है इस द्वितीयपक्षमें ब्रह्मके साथ ऐक्यकी असिद्धि है—साधारणस्वरूपमात्रको उद्देश्य होनेसे इति चेन्न; क्यों? ब्रह्मके साथ ऐक्यकी असिद्धि है, यहाँपर ब्रह्म शब्दसे यदि सार्वज्ञ्यादिविशिष्ट अभिमत है, तब तो इष्टापत्ति है—तत्पदसे तथा त्वंपदसे लक्षितपदार्थोंके ही ऐक्यबोधको पूर्वमें प्रतिपादितत्व होनेसे। अत एवेति। असाधारण जो ब्रह्मका स्वरूप तादृश स्वरूपके उद्देशकी असाधारणधर्मके विना असिद्धि होनेसे उपजीव्यविरोधका तादवस्थ्य है, यह कथन निरस्त हुआ, अतएवशब्दका अर्थ दिखलाते हैं—असाधारण धर्मको उद्देश्यके समर्पणमें उपलक्षकत्व होनेसे। नचेति। उपलक्ष्यतावच्छेदकका अभाव होनेपर उपलक्ष्यत्वकी असिद्धि है; चित्त्वको उद्देश्यतावच्छेदकत्व होनेपर सिद्धसाधन होनेसे—चित्त्वेन ऐक्य हमको अभिमत है अतः सिद्धसाधन है; इति नच वाच्यम्, क्यों? स्वरूपोपलक्षणमें उपलक्ष्यतावच्छेदककी अपेक्षा न होनेसे। और जो कहा है कि—चित्त्वेन ऐक्य होनेपर सिद्धसाधन है वह ठीक नहीं, क्यों? चित्त्वके ऐक्यको इष्टत्व होनेपरभी चित्त्वाश्रयके ऐक्यको तुमको अनिष्टत्व होनेसे, इष्टौच=चित्त्वाश्रयोंके ऐक्यको इष्ट होनेपर

तो विवादके अभावसे। 'पुरोडाशकपालेन तुषानुपवपति' यहाँपर जैसे अधिष्ठानलक्षणायाम्=पुरोडाशसाधनत्वसे उपलक्षितकपालमें लक्षणा होनेपर अन्यतोऽप्राप्ततुषोद्वापविधानरूप इष्टकी सिद्धि होती है तैसे लक्षणासेभी प्रकृतमें इष्टकी सिद्धि नहीं है, जिससेकि लक्षणा हो यह कथन निरस्त हुआ; अतएव शब्दका अर्थ दिखलाते हैं—चित्त्वके ऐक्यको प्राप्तत्व होनेपरभी अप्राप्त जो आश्रयोंका ऐक्य तद्रूपलक्षणाप्रापणीयका सत्त्व होनेसे। और 'सोऽयम्' यहाँपरभी उक्तप्रकारको आवश्यकत्व होनेसे।

नच—तत्ताविशिष्टस्य तत्रोद्देश्यता यद्वत्तया ज्ञातएव यदन्वयधीः तत्त्वस्य विशेषणत्वस्य तत्तादौ सम्भवादिति—वाच्यम्; दत्तोत्तरत्वात्। ननु—एवं परमाणुः सावयवः, ईश्वरो, न सर्वज्ञः 'आदित्यो यूप' इत्यादावुपजीव्यविरोधो न स्यात्, उत्पन्नशिष्टगुणविधौ सगुणोत्पत्तिवाक्यविरोधश्च न स्यात्, तत्रापि परमाणुत्वादिविशिष्टं न धर्मि, किन्तु स्वरूपमात्रमिति सुवचत्वादिति चेन्न; परमाण्वादेः स्वरूपेणापि सावयवत्वादिकं धर्मिसमानसत्ताकं परमाण्वादौ न स्यात्, तदीयासमसत्ताकत्वस्य तत्सावयवत्वबोधकप्राबल्याधीनत्वात् तत्प्राबल्येऽनुमानाभावात्, प्रत्युत भ्रान्तवाक्यत्वेन दुर्बलत्वात्। आदित्यो यूप इत्यत्राभेदो न प्रमेयः स्तुतिद्वारान्यशेषत्वात्, स्तुतेश्च प्रत्यक्षाविरुद्धगुणैरपि सम्भवे प्रत्यक्षविरुद्धार्थकल्पनायोगात्, उत्पन्नशिष्टगुणविधौ तूत्पत्तिवाक्यस्थितामिक्षादिपदस्य द्रव्यसामान्यपरत्वे तत्पदवैयर्थ्यापत्तिः 'तद्धितार्थसेतिसर्वनाम्ना' यजतिचोदनाद्रव्यदेवताक्रियमिति, न्यायेन यागचोदनामात्रेण च द्रव्यसामान्यलाभात् प्रकृते अनन्यशेषतया प्रबलत्वात् प्रमाणवाक्यत्वाच्च तद्विरोध्यैक्यप्रतिपादकतया स्वरूपलक्षणाया युक्ततमत्वाच्च।

शङ्कते नचेति। तत्र='सोऽयम्' यहाँपर तत्ताविशिष्टको उद्देश्यता है—यद्वत्तया ज्ञात होनेपर ही यदन्वयधी हो तत्त्वरूप विशेषणत्वका तत्तादिमें सम्भव होनेसे। इति नच वाच्यम्, क्यों? दत्तोत्तरत्व होनेसे=उक्तस्वरूपको विशेषणस्वरूपत्व होनेपर स्वरूपलक्षणमें उपलक्ष्यतावच्छेदकका अपेक्षण न होनेपरभी विशेषणत्वकी आपत्तिसे। नन्विति। एवम्=ऐसा होनेपर परमाणु सावयव है, ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है, यूप आदित्य है इत्यादिमें उपजीव्यके साथ विरोध न होगा, और उत्पन्नशिष्टगुणविधौ=कर्मोत्पत्तिके बाद शिष्ट=उपदिष्ट जो गुणविधि है उस गुणविधिमें सगुणकर्मोत्पत्ति वाक्योंका विरोध न होगा, तत्रापि=उक्तस्थलोंमेंभी परमाणुत्वादिविशिष्टधर्मी नहीं है किन्तु स्वरूपमात्र है, इस रीतिसे सुवचत्व होनेसे इति चेन्न; क्यों? परमाणुप्रभृतिको स्वरूपसे सावयवत्वादिकके प्रति धर्मित्व होनेपर परमाणुप्रभृतिमें परमाणुत्वादिक धर्मिसमानसत्ताक न होंगे। तदीयासमसत्ताकत्वस्य=परमाणुत्वके असमसत्ताकत्वको तत्सावयवत्व=परमाणुसावयवत्वबोधक प्रमाणका जो प्राबल्य तदधीनत्व होनेसे तत्प्राबल्ये=परमाणुसावयवत्वसाधकप्रमाणनिष्ठ प्राबल्यमें अनुमानके अभावसे, प्रत्युत, परमाणुः सावयवः, इस वाक्यको भ्रान्तवाक्यत्वप्रयुक्त दुर्बलत्व होनेसे। और 'आदित्यो यूपः' यहाँपर अभेद प्रमेय नहीं

है, इस वाक्यको स्तुतिद्वारा अन्यका शेपत्व होनेसे, और स्तुतिका तो प्रत्यक्षसे अविरुद्ध जो तेजस्वित्वादि गुण तादृश गुणोंसेभी सम्भव होनेपर प्रत्यक्षसे विरुद्धार्थकी कल्पनाके अयोगसे। और उत्पन्नशिष्टगुणविधिमें तो उत्पत्तिवाक्यस्थित आमिक्षादिपदको द्रव्यसामान्यपरत्व होनेपर आमिक्षादिपदके वैयर्थ्यकी आपत्ति है, 'तद्धितार्थसा'=वैश्वदेवी एतत्तद्धितार्थरूपत्वेन (सा) इस सर्वनामसे स्मारित इस सर्वनामसे तथा 'यजतिचोदनाद्रव्यदेवताक्रियम्' (जै० ४।२।२७) द्रव्य देवता क्रिया ये तीनों यजतिके अर्थ हैं, इस न्यायसे यागचोदनामात्रसे द्रव्यसामान्यका लाभ होनेसे, और प्रकृतमें=ऐक्यबोधकश्रुतिमें अनन्यशेपत्वप्रयुक्त प्रबलत्व होनेसे तथा प्रमाणवाक्यत्व होनेसे तद्विरोधि=ब्रह्मप्रतियोगिकजीवधर्मिकभेदावगाहिप्रत्यक्षविरोधि जो ऐक्य तादृश ऐक्यप्रतिपादकत्वेन स्वरूपमें लक्षणाको युक्ततमत्व होनेसेभी।

ननु—रूप्यरूपनिपेध्यार्पकस्यापेक्षितस्यापि परीक्षितत्वाभावात् यद्यपि दुर्बलत्वम्, उपजीव्यत्वमात्रस्य प्राबल्याप्रयोजकत्वात् तथापीह निपेध्यार्पकभेदश्रुतिः साक्षिप्रत्यक्षञ्च निर्दोपत्वात् परीक्षितमपि प्रबलं तद्विरोधात् कथमैक्यपरत्वमिति–चेन्न; निर्दोपाया अपि श्रुतेः भेदपरत्वस्यैवाभावेन तद्विरोधस्यैक्यश्रुतावसंभावितत्वात्। न हि श्रुतेरुपक्रमादिपड्विधतात्पर्यलिङ्गशून्यार्थपरत्वम्;तन्नियामकाभावात्, अन्यथातिप्रसङ्गात्, साक्षिणोऽपि निर्दोपत्वमात्रेण परीक्षितत्वाभावात्, दुःखाभावादावारोपितसुखादेरपि प्रामाणिकत्वापत्तेः; मन्मते प्रातिभासिकमात्रस्य साक्षिसिद्धस्य मिथ्यात्वात्, साक्षिणोऽपि निर्दोपजवृत्त्युपरक्तत्वेनाबाध्यत्वासिद्धेरुक्तत्वाच्च। प्रमाणतदभावव्यवस्थापि प्रातिभासिकव्यवहारिकयोः करणसंसर्गिदोपप्रयुक्तत्वाप्रयुक्तत्वाभ्यां। व्यावहारिकस्य चैतन्यमात्रस्याज्ञानदोपप्रयुक्तत्वात्। तस्मादुपजीव्यविरोधाभावात् प्रत्युताभेदश्रुतेरेव सर्वशेपितया भेदश्रुतिं प्रत्युपजीव्यत्वात् भेदश्रुतेरेव तद्विरोधेन तदनुकूलतया नेयत्वात्, सर्वविरोधशून्यं तत्त्वमस्यादिवाक्यम्। तथाचैक्यपरमिति सिद्धम्।

इत्यद्वैतसिद्धौ ऐक्यश्रुतेरुपजीव्यविरोधाभावः।

नन्विति। रूप्यरूप जो निपेध्य तादृशनिपेध्यार्पक जो ज्ञान, 'इदं रजतम्' यह ज्ञान उस ज्ञानको निपेधके प्रति अपेक्षितत्व होनेपरभी परीक्षितत्वके अभावसे यद्यपि दुर्बलत्व है, उपजीव्यत्वमात्रको प्राबल्यके प्रति अप्रयोजकत्व होनेसे तथापि इह=ऐक्यबोधकश्रुतिस्थलमें निपेध्यकी अर्पक भेदश्रुति और साक्षिप्रत्यक्ष निर्दोपत्व होनेसे परीक्षित हैं तद्विरोधात्=उक्त भेदश्रुति और साक्षिप्रत्यक्ष इन दोनोंके साथ विरोध होनेसे ऐक्यबोधक श्रुतिको ऐक्यपरत्व कैसे है इति चेन्न; क्यों? निर्दोपश्रुतिकोभी भेदपरत्वके ही अभावसे तद्विरोधस्य=भेदश्रुतिविरोधका ऐक्यश्रुतिमें असम्भावितत्व होनेसे। श्रुतिको उपक्रमादिरूप पड्विध जो तात्पर्यके लिङ्ग तादृशलिङ्गशून्य जो अर्थ तादृश अर्थपरत्व नहीं है तन्नियामकाभावात्=तादृश अर्थपरत्वमें नियामकके अभावसे, अन्यथा=श्रुतिको उक्तलिङ्गशून्यार्थपरत्व होनेपर अतिप्रसङ्ग होनेसे।

और निर्दोषत्वमात्रसे साक्षीकेभी परीक्षितत्वके अभावसे—दुःखाभावादिमें आरोपित जो सुखादि तादृश सुखादिकेभी प्रामाणिकत्वकी आपत्तिसे, अस्मदीयमतमें साक्षिसिद्धप्रातिभासिकमात्रको मिथ्यात्व होनेसे, और साक्षीकेभी दोषजन्यवृत्त्युपरक्तत्वप्रयुक्त अबाध्यत्वकी असिद्धिको उक्तत्व होनेसे=दोषजन्यवृत्त्युपरक्तत्व साक्षीमें है; अतः साक्षीमें अबाध्यत्वकी असिद्धि है, यह कह चुके हैं, और प्रातिभासिक तथा व्यावहारिक इन दोनोंमें करणसंसर्गिदोषप्रयुक्तत्वसे और करणासंसर्गिदोषप्रयुक्तत्वसे प्रमाण तथा प्रमाणाभाव इन दोनोंकी व्यवस्थाभी है=करणसंसर्गिदोषप्रयुक्तविषयत्वेन प्रमाणाभावकी व्यवस्था है, और करणासंसर्गिदोषप्रयुक्तविषयत्वेन पटादिज्ञानमें प्रमाणत्वकी व्यवस्था है। व्यावहारिकको चैतन्यमात्रस्थ जो अज्ञान तादृश अज्ञानरूपदोषप्रयुक्तत्व होनेसे। तस्मात् उपजीव्यके साथ विरोध न होनेसे, प्रत्युत अद्वैतश्रुतिको ही सर्वशेषित्वप्रयुक्त भेदश्रुतिके प्रति उपजीव्यत्व होनेसे, भेदश्रुतिको ही अभेदश्रुतिके साथ विरोध होनेसे तदनुकूल= अभेदश्रुत्यनुकूलत्वेन नेयत्व होनेसे सर्वविरोधसे शून्य तत्त्वमस्यादि वाक्य हैं। तथाच तत्त्वमस्यादि वाक्य ऐक्यपर हैं यह सिद्ध हुआ।

इति सरलायामैक्यश्रुतेरुपजीव्यविरोधाभावः।

अथ तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थनिरूपणम्।

ननु—एवं पदद्वयेऽपि लक्षणा स्यात्, तथा च मन्मतमाश्रित्य एकपदलक्षणैवाश्रयणीया। तथाहि 'द्वा सुपर्णा सयुजे'त्यादौ जीवस्य ब्रह्मसाहचर्योक्तेस्तत्साहचर्यात्तदिति व्यपदेशः; वसन्तादिभ्यष्ठगित्यत्र वसन्तसहचरिते अध्ययने वसन्तपदप्रयोगस्य महाभाष्ये उक्तत्वात्, 'सन्मूलाः प्रजाः सदायतनाः' इत्यादिवाक्यशेषात् प्रसिद्धतदाश्रितत्वाद्वा तदितिव्यपदेशः 'समर्थः पदविधिः' इति सूत्रे समर्थपदाश्रितत्वेन पदविधौ समर्थपदप्रयोगस्य महाभाष्योक्तेः 'सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सर्वा' इति वाक्यशेषात् प्रसिद्धतज्जत्वाद्वा तत्पदप्रयोगः 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदित्यादिवत्' इग्यणः सम्प्रसारणमित्यत्र संप्रसारणाज्जातो वर्णः संप्रसारणमिति भाष्योक्तेः 'प्राणबन्धनं हि सोम्य मन' इति वाक्यशेषेण जीवस्येशाधीनत्वोक्त्या तदधीनत्वाद्वा तच्छब्दप्रयोगः 'धान्यमसि धिनुहि' इत्यत्र मन्त्रे तण्डुले धान्यपदप्रयोगवत्, तत्सादृश्याद्वा तत्पदप्रयोगः; सारूप्यादिति जैमिनिसूत्रे 'आदित्यो यूप' इत्यादिकं सादृश्यादित्युक्तत्वात् तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवदित्यत्र ब्रह्मसूत्रे ब्रह्मगुणयोगाज्जीवे तद्व्यपदेश इत्युक्तेः, महाभाष्ये च बहुगुणेत्यादि सूत्रे वति विनैव सङ्ख्यावदिति वत्यर्थो गम्यते। अब्रह्मदत्तं ब्रह्मदत्तेत्याह तेन वयं मन्यामहे ब्रह्मदत्तवदयं भवति' इत्युक्तेश्चेति—चेन्न;।

अथ सरलायां तत्त्वमस्यादिवाक्यार्थनिरूपणम्।

शङ्कते नन्विति। एवम्=उक्तप्रकारसे तत्त्वमस्यादिरूप अभेदश्रुतिको ऐक्यपरत्व माननेपर दोनों पदोंमेंभी लक्षणा होगी। फलतः मेरे मतको आश्रयणकर एक पदमें ही लक्षणा

आश्रयणीय है । तथाहि 'द्वा सुपर्णा सयुजा' (मुं०।३।१।१) इत्यादिमें जीवका जो ब्रह्मके साथ साहचर्य्य तादृश साहचर्य्यकी उक्ति होनेसे तत्साहचर्य्यात्=ब्रह्मके साथ साहचर्य्यसे तत्=जीव ब्रह्म है, यह व्यपदेश=कथन है=जीव ब्रह्मके साथ रहता है, अतः जीवको ब्रह्म कह दिया है–'वसन्तादिभ्यष्ठक्' (अ०।४।२।६३) यहाँपर वसन्तसहचरित अध्ययनमें वसन्तपद-प्रयोगको महाभाष्यमें उक्तत्व होनेसे='वसन्तादिभ्यष्ठक्' इस सूत्रसे 'तदधीते तद्वेद' (अ० ४।२।५९) एतत्सूत्रप्रतिपाद्यार्थमें ठक्का विधान है, परन्तु वसन्तको कालविशेषरूपता होनेसे उसमें अध्ययनविषयत्व अनुपपन्न है अतः वसन्तप्रतिपादक ग्रन्थ यहाँ वसन्तशब्दका अर्थ है, और ग्रन्थमें वसन्तसम्बन्धिपदसम्बन्धित्वेन वसन्तका साहचर्य्य है । अथवा 'सन्मूलाः प्रजाः सदायतनाः' (छा०।६।८।४) इत्यादि वाक्यशेषसे जीवमें प्रसिद्ध जो तदाश्रितत्व=ब्रह्माश्रितत्व है उस ब्रह्माश्रितत्वसे 'जीव ब्रह्म है' यह व्यपदेश है, 'समर्थः पदविधिः' (अ०।२।१।१) इस सूत्रमें समर्थ जो पद तादृशपदाश्रितत्वेन पदविधिमें समर्थपदप्रयोगकी महाभाष्यमें उक्ति होनेसे, अथवा 'सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः सर्वाः' (छा०।६।९।२) इस वाक्यशेषसे जीवमें प्रसिद्ध जो तज्जत्व=ब्रह्मजन्यत्व है उस जन्यत्वसे जीवमें ब्रह्मपदका प्रयोग है ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् (य० सं० ३१।११) इत्यादिवत् 'इग्यणः संप्रसारणम्' (अ०।१।१।४५) यहाँपर सम्प्रसारणसे उत्पन्न हुआ वर्ण सम्प्रसारण है इत्याकारक भाष्यकी उक्ति होनेसे । या प्राणबन्धनं हि सोम्य मनः (छा० ६।८।२) इस वाक्यशेषसे जीवमें ईशाधीनत्वकी उक्तिसे जीवको ब्रह्माधीनत्व होनेसे जीवमें ब्रह्म शब्दका प्रयोग है–'धान्यमसि धिनुहि' (य० सं० १।२०) इस मन्त्रमें जैसे तण्डुलमें धान्यपदका प्रयोग है; अथवा तत्सादृश्यात्=जीवमें ब्रह्मके सादृश्यसे ब्रह्म पदका प्रयोग है–सारूप्यात् (१।४।२५) इस जैमिनिसूत्रमें आदित्यो यूपः इत्यादिक प्रयोग सादृश्यसे है, इस रीतिसें उक्तत्व होनेसे तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्य-पदेशः प्राज्ञवत् (वे० २।३।२९) इस ब्रह्मसूत्रमें ब्रह्मवृत्तिगुणयोगसे जीवमें ब्रह्मत्वका व्यपदेश है, इस उक्तिसे और महाभाष्यमें 'बहुगुणवतुडतिसंख्या' (अ०।१।१।२३) इस सूत्रमें वतिके विना ही संख्यावत् इत्याकारक वत्यर्थगम्यमान होता है='बहुगुणवतुडतिसंख्या' इस सूत्रमें बहुगुणादिकी संख्या संज्ञाका विधान होनेपर 'संख्यापूर्वो द्विगुः' (अ०।२।१।५२) इत्यादिमें एक द्वि त्रि प्रभृतिसंख्याका ग्रहण न होगा क्योंकि 'कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययः' इस न्यायसे कृत्रिमसंख्या बहुगुणादिकोंके ही ग्रहणका सम्भव है ऐसी आशङ्का कर कहा है कि; 'बहुगुणवतुडतिसंख्या' इस सूत्रसे संज्ञाका विधान नहीं है, किन्तुबहुगुणादि संख्यावत् हैं, इस रीतिसे अतिदेश किया जाता है, वतिके विनाभी संख्याशब्दको गौणीवृत्तिसे संख्यासदृशार्थ-कत्वका सम्भव होनेसे यह कहा है, अब्रह्मदत्तको 'ब्रह्मदत्त' इस रीतिसे कहता है तिससे तात्पर्य्य जाननेवाले हम जानते हैं कि यह ब्रह्मदत्तवत् होता है, इत्याकारक उक्तिसेभी इतिचेन्न; क्यों?

अभेदे तात्पर्य्येऽवधृते तन्निर्वाहकलक्षणाबाहुल्यस्यादोषत्वात्, न हि लक्षणैक्यानु-रोधेन तात्पर्यपरित्यागः तदुक्तं न्यायचिन्तामणौ–'तात्पर्यात्तु वृत्तिः, न तु वृत्तेस्तात्पर्य्य-

मिति जहदजहल्लक्षणया मुख्यपरत्वे सम्भवति तत्सहचरिताद्यर्थपरत्वकल्पनस्यानुचितत्वाच्च। यथा अभेदपरत्वे न बोधकत्वानुपपत्तिः, तथोक्तं प्राक्। 'द्वा सुपर्णा सयुजा' इत्यादिना न जीवस्य ब्रह्मणा सहचरितत्वोक्तिः; किन्त्वन्तःकरणेनेति न तेन सहचरितत्वप्रसिद्धिरपि। न वा सन्मूलाः प्रजाः इत्यादिना जीवस्य तदाश्रितत्वप्रसिद्धिः, प्रजाशब्दस्य प्रजायमानवाचकत्वेन जीवस्य नित्यस्याप्रतिपादनात्। अतएव न तज्जन्यत्वेनापि तच्छब्दप्रयोगः; 'ब्राह्मणो मुखमित्येव मुखाज्जातत्वहेतुतः। यथावदुच्यते तावज्जीवो ब्रह्मेति वाग्भवेत्॥' इति स्मृतिरप्यस्मृतिरेव श्रुतिविरोधात् यत्तु तद्गुणसारत्वादित्यादिना जीवे ब्रह्मगुणयोग उक्त इत्युक्तम्, तन्न, बुद्धिगुणसूक्ष्मत्वयोगात् जीवे ब्रह्मणीव सूक्ष्मत्वमित्येवंपरत्वात्सूत्रस्य।

अभेदमें अभेदश्रुतिओंके तात्पर्य्यको अवधृत हो जानेपर तन्निर्वाहक=उक्ततात्पर्य्यनिर्वाहक लक्षणाबाहुल्यको अदोषत्व होनेसे। क्योंकि लक्षणाके ऐक्यके अनुरोधसे तात्पर्यका परित्याग नहीं हो सकता है। सो कहा है, न्यायचिन्तामणिमें, तात्पर्य्यात्=उपक्रमादिसे निर्णीत जो तात्पर्य्य है उस तात्पर्यसे वृत्ति कल्पित की जाती है, परन्तु वृत्तेः=वृत्तिलाघवसे तात्पर्य नहीं कल्पित किया जाता है=उक्तविध तात्पर्यानुरोधसे वृत्त्यन्तरकी कल्पना की जाती है, परन्तु वृत्त्यनुरोधसे तात्पर्यान्तरकी कल्पना नहीं की जाती है। और भागत्याग लक्षणासे ऐक्यश्रुतिओंमें मुख्यपरत्वका सम्भव होनेपर तत्सहचरितादिरूप जो अर्थ तादृश—अर्थपरत्वके कल्पनको अनुचितत्व होनेसे। और जैसे अभेदपरत्व होनेपर ऐक्यवाक्योंमें बोधकत्वकी अनुपपत्ति नहीं है तैसे पूर्वमें कहा है। 'द्वा सुपर्णा सयुजा' इत्यादिसे ब्रह्मके साथ जीवके सहचारित्वकी उक्ति नहीं है; किन्तु अन्तःकरणके साथ जीवके सहचारित्वकी उक्ति है, अतः ब्रह्मके साथ जीवके सहचारित्वकी प्रसिद्धिभी नहीं है। और 'सन्मूलाः प्रजाः' इत्यादिसे जीवमें ब्रह्माश्रितत्वकीभी प्रसिद्धि नहीं—प्रजा शब्दको उत्पद्यमानका वाचकत्व होनेसे उक्तश्रुतिमें नित्य जीवके अप्रतिपादनसे। अतएव=प्रजा शब्दको उत्पद्यमानका वाचकत्व होनेसे ही तज्जन्यत्वेन=ब्रह्मजन्यत्वेनभी जीवमें ब्रह्मशब्दका प्रयोग नहीं है। मुखाज्जातत्व हेतुसे जैसे ब्राह्मण मुख है यह कहा जाता है तद्वत् ब्रह्मजातत्व हेतुसे जीव ब्रह्म है यह कथन होगा, यह स्मृतिभी स्मृत्याभास ही है—श्रुतिके साथ विरोध होनेसे। तद्गुणसारत्वात् इत्यादिसे जीवमें ब्रह्मके गुणका योग कहा गया है, इति यत् उक्तं तत् तु न; क्यों? बुद्धिका गुण जो सूक्ष्मत्व उस सूक्ष्मत्वके योगसे जीवमें ब्रह्मकी तरह सूक्ष्मत्व है, सूत्रको एतदर्थपरत्व होनेसे।

एतेन—शाखासदेशे चन्द्रे शाखेतिवत् जीवान्तर्यामितया जीवसदेशे ब्रह्मणि त्वमिति प्रयोगः, आत्मनि तिष्ठन्निति श्रुतेः ब्राह्मणो वै सर्वा देवता इत्यादिवत् जीवाश्रयत्वाद्वा ब्रह्मणः सर्वकर्तृत्वेन यजमानः प्रस्तरः इत्यादिवत् तत्सिद्धया वा ब्रह्मणि त्वमिति व्यपदेशः इति—निरस्तम्। ननु जहदजहल्लक्षणायां वाच्यान्तर्गतत्वेन प्राग्धीस्थस्य बाध-

कात् त्यक्तस्य पुनः स्वीकाराः, जहल्लक्षणायां अधीस्थस्यात्यक्तस्यैव स्वीकारः त्यक्त-स्वीकाराद्वरमधीस्थस्य स्वीकार इति-चेन्न; अनुपपत्त्या विशेषणत्यागेऽपि विशेष्यांशा-त्यागात् । एतेन तच्छब्दात् परतृतीयादिविभक्तेः सुपां सुलुगित्यादिना प्रथमैकवचनादेशो वा लुग्वा, तथा च तेन त्वं तिष्ठसीति वा ततः संजात इति वा तस्य त्वमिति वा तस्मिन् त्वमिति वार्थः 'अनेन जीवेनात्मनानुप्रभूतः' पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठति, सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः, एतदात्म्यमिदं सर्वमित्यादिवाक्यशेषात् । तथा च मीमांसका 'उत यत्सुन्वन्ति सामिधेनीस्तदन्वाहुरित्यत्र यत्तच्छब्दयोः सप्तम्यर्थे प्रथमां स्वीकृत्य यत्र सुन्वन्ति तत्र हविर्धाने स्थित्वा सामिधेनीरनुब्रूयादिति व्याख्याञ्चक्रुः' न्याय्यं च निर-वकाशप्रधानभूतानेकप्रातिपदिकस्वारस्याय सङ्ख्यार्थत्वेन सावकाशप्रधानैकविभक्त्यस्वा-रस्यमिति-निरस्तम्; मोद्गातृणामित्यत्र विभक्तिस्वारस्याय प्रातिपादिकस्यान्यथानय-नवदत्रापि प्रातिपदिकस्यैवान्यथा नयनाच्च ।

एतेनेति । जैसे शाखा-सदेश चन्द्रमें 'शाखा' यह प्रयोग होता है तैसे जीवका अन्तर्यामित्व होनेसे जीवसदेश ब्रह्ममें 'त्वम्' यह प्रयोग होता है-'आत्मनि तिष्ठन्' (शत-पथ, का० १४ प्र० ५ ब्रा० ५ कं० ३०) इस श्रुतिसे । 'ब्राह्मण सर्व देवता है' इत्यादिवत्, ब्रह्मको जीवाश्रयत्व होनेसे ब्रह्ममें 'त्वम्' इत्याकारक व्यपदेश है=यागादिद्वारा तृप्तिकरत्वेन ब्राह्मण देवताओंका आश्रय है अतः ब्राह्मण शब्दका जैसे देवताओंमें प्रयोग होता है, तैसे ब्रह्मको जीवाश्रयत्व होनेसे ब्रह्ममें त्वम्पदका प्रयोग होता है । अथवा ब्रह्मको सर्व कर्तृत्व होनेसे 'यज-मानः प्रस्तरः' इत्यादिवत् तत्सिद्धया=मुख्यार्थरूपजीवसाध्यसाधकत्वसे ब्रह्ममें 'त्वम्' इत्या-कारक व्यपदेश है, यह कथन निरस्त हुआ । शङ्कते नन्विति । भागत्यागलक्षणाके होनेपर वाच्यान्तर्गतत्वेन पूर्वमें जो धीस्थ है, उसका बाधकसे त्याग होता है और पुनः त्यक्तका स्वीकार होता है, और जहल्लक्षणा होनेपर अधीस्थ जो अत्यक्त उसका ही स्वीकार होता है, और त्यक्तके स्वीकारसे अधीस्थका स्वीकार श्रेष्ठ है इति चेन्न; क्यों ? अनुपपत्त्या=तात्पर्यानुपपत्तिसे विशेषणका त्याग होनेपरभी विशेष्यांशके अत्यागसे । एतेनेति । तच्छब्दात्='तत्त्वमसि' घटक जो तत् शब्द है उस तत् शब्दसे पर तृतीयादिविभक्तिको सुपां सुलुक् (अष्टा० ७।१।३९) इत्यादिसूत्रसे प्रथमाके एकवचनका आदेश है या तृतीयादिका लुक् है, तथाच 'तत्त्वमसि' का यह अर्थ हुआ कि;-तेन=आत्मस्वरूप ब्रह्मसे त्वम्=तू असि=तिष्ठसि सत्तावाला है-ब्रह्मसे तू सत्तावाला है, शङ्का-यदि ब्रह्मसे सत्तावाला जीव होगा तब तो जीवमें मिथ्यात्व सिद्ध होगा, जो कि आपकोभी इष्ट नहीं है, क्योंकि अधिष्ठानकी सत्तासे कल्पित ही सत्तावाला हुआ करता है, समाधान=वा=या ततः=उस आत्मस्वरूपब्रह्मसे तू उत्पन्न हुआ है, यह अर्थ है, शङ्का-जीवमें ब्रह्मजन्यत्व औपाधिक ही बन सकता है वास्तविकजन्यत्व तो आपभी नहीं मानते हैं तथाच जीवके वास्तविक स्वरूपका यहाँपर निर्णय न होनेसे तादृश जीवके स्वरूपके ज्ञानसे

मोक्ष न होगा, समाधान वा=अथवा, तस्य-त्वम्=तिस आत्मस्वरूपब्रह्मका तू है यह अर्थ है; शङ्का-यहाँपरभी सम्बन्धविशेषका निर्णय नहीं है, अतः तद्विषयक ज्ञानसे मोक्षानापत्ति समान है,-समाधान-तस्मिन् त्वं वा=या उसमें तू है यह अर्थ है। अनेन जीवेनात्मनानुप्रभूतः (छा० ६।११।१) इत्यादि वाक्यशेषसे। प्रथमा विभक्ति अन्यविभक्तिके अर्थमेंभी होती है, इस अर्थमें मीमांसककी सम्मत्ति दिखलाते हैं-तथाचेति। उत यत्सुन्वन्ति सामधेनीः तदन्वाहुः एतद्वाक्यघटक जो यत् तत् शब्द हैं उन दोनों शब्दोंमें सप्तमीके अर्थमें प्रथमाको स्वीकार कर यत्र=जिस दक्षिणहविर्धानाख्य शकटके पासमें, सुन्वन्ति=सोमका अभिषव करते हैं तत्र=उस हविर्धानके पासमें स्थित होकर सामधेनिओंका उच्चारण करे=सोमयागमें हविर्धानीनामक एक छोटासा गृह बनाया जाता है उस गृहके बीचमें दक्षिणतरफ तथा उत्तरतरफ सोमनामक हविके रखनेके लिए हविर्धाननामक 'दो शकट' स्थापित किये जाते हैं उन दोनोंमें दक्षिण हविर्धानके पासमें सोमका अभिषव किया जाता है उसके पासमें खडे होकर सामधेनीनामक ऋचाओंका उच्चारण करना चाहिए,-जैमिनीयमीमांसाके तृतीयाध्यायके सप्तमपादके सातवें अधिकरणमें विचार किया है। सोमको कूटना और उसका रस निकालना इत्यादिव्यापारसमुदायका नाम है-सोमाभिषव इत्याकारक मीमांसकोंने व्याख्या की है। फलतः यहाँपर जैसे प्रथमा सप्तम्यर्थमें है तैसे 'तत्त्वमसि' एतद्वाक्यघटक तत्पदोत्तर प्रथमाभी तृतीयादिके अर्थमें हो सकती है, और निरवकाश तथा प्रधानभूत जो अनेक प्रातिपदिक हैं उन्होंके स्वारस्यके लिए सङ्ख्यार्थत्वप्रयुक्तसावकाश और अप्रधानभूत जो एक विभक्ति उसका अस्वारस्य न्याय युक्त ही है, यह कथन निरस्त हुआ, और 'प्रोद्गातृणाम्' यहाँपर जैसे विभक्तिके स्वारस्यके लिए प्रातिपदिकका अन्यथा नयन होता है तैसे यहाँपरभी प्रातिपदिकके ही अन्यथा नयनसेभी=प्रोद्गातृणाम् यहाँपर जैसे विभक्तिस्थ बहुवचनकी एकवचनमें लक्षणाकर उद्गातृरूपप्रातिपदिककी ही प्रस्तोतृप्रतिहर्त्रादिमें अजहल्लक्षणाकी जाती है, तैसे ही प्रकृतमेंभी प्रथमाकी तृतीयादिमें लक्षणा न कर प्रातिपदिककी ही अखण्डमें लक्षणा माननी उचित है उक्त विषयका विचार (जैमिनीय ३।५।८) में किया है।

नच—षष्ठीबहुवचनस्य प्रथमैकवचनवदन्यत्राविधानेन तस्यान्यथानयनमसम्भवीति बहुवचनानुसारेण प्रातिपदिकस्य प्रस्तोत्रादिछन्दोगेषु लक्षणाश्रितेति वाच्यम्; सक्तून् जुहोतीत्यत्रेवान्यत्र नयनस्य सम्भावितत्वात्। किञ्च न तावत् प्रातिपदिकस्य निरवकाशत्वम्; विभक्तेः सङ्ख्यायामिव विशेष्यांशे सावकाशत्वात्। नापि प्राधान्यम्; प्रधानार्थवाचकप्रत्ययस्यैव प्राधान्यात् तदुक्तं—प्रकृतिप्रत्ययौ सहार्थं ब्रूतः तयोः प्रत्ययः प्राधान्येनेति, नापि प्रातिपदिकानेकत्वं स्वारस्ये तन्त्रम्, 'गभीरायां नद्यामि'त्यादौ अनेकत्वेऽप्यस्वारस्यदर्शनात्। तात्पर्यबलात्तत्र तथेति चेत्, समं प्रकृतेऽपि। यत्तु 'प्रयाजशेषेण हवींष्यभिघारयती'त्यत्र प्रयाजशेषं हविष्षुपक्षिपतीति तृतीयाविभक्ति—अस्वारस्यं 'सक्तून् जुहोती'त्यादावपि द्वितीयाविभक्त्यस्वारस्यं, तदगत्या 'प्रयाजशेषेणे'त्यादौ उपयुक्तसंस्का-

रव्यतिरेकेण प्रकारान्तरस्यासम्भवात्, सक्तूनित्यादौ भूतभाव्युपयोगाभावेन संस्कार्यत्वाभावात् । एतेन—तस्य त्वं तत्त्वमिति समस्तं पदमिति—निरस्तम् । असमासेनैव षष्ठ्यर्थलक्षणादिरहितेन उपपत्तौ षष्ठीसमासस्यान्याय्यत्वात् अन्यथा स्थपत्यधिकरणविरोधापत्तेः ।

शङ्कते नन्विति । प्रथमैकवचनवत्=प्रथमाके एक वचनका जैसे 'सुपां सुलुक्' (अ० ७। १।३) इत्यादिसे तृतीयाद्यर्थमें विधान है, तैसे षष्ठीके बहुवचनका एकत्वादिमें या तृतीयाद्यर्थमें विधान नहीं है अतः तस्य=षष्ठीबहुवचनका अन्यथा नयन असम्भावित है, इस लिए बहुवचनानुरोधसे उद्गातृरूपप्रातिपदिककी प्रस्तोतृप्रमुखछन्दोगोंमें लक्षणा आश्रित हुई है; इति नच वाच्यम्; क्यों ? 'सक्तून् जुहोति' (तै० सं० ३, ३, ८, ४; आप० श्रौ० सू० १३, २४, १६) यहाँपर जैसे द्वितीयाबहुवचनका तृतीयार्थकत्वेन नयन होता है तैसे षष्ठीबहुवचनकेभी अन्यत्र नयनका सम्भावितत्व होनेसे । किञ्च प्रातिपदिकको निरवकाशत्व नहीं है—विभक्तिको जैसे सङ्ख्यामें सावकाशत्व है तैसे प्रातिपदिकको विशेष्यांशमें सावकाशत्व होनेसे और प्रातिपदिकका प्राधान्यभी नहीं है, प्रधानार्थवाचक प्रत्ययकाही प्राधान्य होनेसे । सो कहा है—प्रकृति तथा प्रत्यय ये दोनों साथ अर्थको कहते हैं और इन दोनोंमें प्रत्ययप्राधान्यसे अर्थको कहता है, और प्रातिपदिकोंका एकत्वभी स्वारस्यमें तन्त्र नहीं है 'गभीरायां नद्याम्' इत्यादि स्थलमें प्रातिपदिकोंका अनेकत्व होनेपरभी अस्वारस्य देखनेसे । यदि यों कहो कि तात्पर्य्यके बलसे तत्र='गम्भीरायां नद्याम्' इत्यादि स्थलमें तथा=अस्वारस्य है तो प्रकृतमेंभी तात्पर्य्यके बलसे प्रातिपदिकमें अस्वारस्य है=प्रथमाविभक्तिसे ज्ञायमान अभेदके प्राधान्यकेलिए प्रातिपदिकोंमें लक्षणा है और जो 'प्रयाजशेषेण हवींष्यभिघारयति' यहाँपर 'प्रयाजशेषं हविषि उपक्षिपति' इस रीतिसे तृतीयाविभक्तिका अस्वारस्य है और 'सक्तून् जुहोति' इत्यादिमें द्वितीया विभक्तिका अस्वारस्य है वह अगत्या है प्रयाजशेषेण इत्यादिमें प्रतिपत्तिरूप उपयुक्त संस्कारके विना प्रकारान्तरका असंभव होनेसे, और 'सक्तून्' इत्यादिमें सक्तुओंके भूतभाविमें उपयोगके अभावसे संस्कार्य्यत्वका अभाव होनेसे । 'प्रयाजशेषेण' इत्यादिका विचार (जै० ४।१।१४) में किया है । एतेनेति । तस्य त्वम् 'तत्त्वम्' 'इस रीतिसे यह समस्तपद है, यह कथन निरस्त हुआ' एतेन=शब्दका अर्थ दिखलाते हैं—षष्ठ्यर्थमें लक्षणादिसे रहित असमाससेही अर्थसामञ्जस्यके होनेपर षष्ठीसमासको अन्याय्यत्व होनेसे । अन्यथा स्थपत्याधिकरणके साथ विरोधापत्तिसे= 'निषादस्थपतिं याजयेत्' यहाँपर, निषादानां स्थपतिः=स्वामी तं निषादस्थपतिं याजयेत्= निषादोंका अधिपति जो कोई त्रैवर्णिक उसको यजन करावे ऐसा अर्थ नहीं है, क्योंकि ऐसा अर्थ करनेपर निषादपदकी निषादसम्बन्धिमें लक्षणा करनी पडती है, अतः यहाँपर कर्मधारयसे निषादाभिन्न—जो स्थपति उसको प्रकृत रुद्रेष्टिरूप यजन करावे ऐसा अर्थ होता है, अतः उसको उक्त यागानुष्ठानमें उपयुक्त जो उक्त यागबोधकवेदवाक्यप्रतिपाद्यार्थविषयक ज्ञान उस ज्ञानको अध्ययनके विना अनुपपन्न होनेसे, पूर्वमें असिद्धभी अध्ययन कल्पन किया जाता है । परन्तु दोषसे मुख्यार्थका त्याग नहीं होता है फलमुख गौरवको अदोषत्व होनेसे, तद्वत् यहाँपरभी

षष्ठीसमास कर मुख्यार्थका त्याग नहीं किया जा सकता है । 'निषादस्थपतिं याजयेत्' इसका विचार (जै० ६।१।१३) में किया है ।

ननु—'ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसी'त्यत्र तत्पदेन नात्मा परामृश्यते, किन्तु ऐतदात्म्यम् नपुंसकत्वात्, ऐतदात्म्यमित्यस्य एष चासावात्मा च एतदात्मा तस्यैदमैतदात्म्यम् । एवञ्च तदीयं वस्तु त्वमसीत्यर्थः, नत्वभेदः; एतदात्मा यस्य तदैतदात्म्यमित्यर्थे भावप्रत्ययवैयर्थ्यापत्तेः । ततो वरमर्थान्तराश्रयणम्; विचित्रा हि तद्धितगतिरिति वचनात् । 'स स्रष्टा चैव संहर्त्ता नियन्ता रक्षिता हरिः । तेन व्याप्तमिदं सर्वमैतदात्म्यमतो विदुः ॥' इति स्मृतेश्चेति—चेन्न; तस्येदमित्यर्थे ष्यञोऽविधानात् प्रयोगादर्शनाच्च । स्वार्थे च सौख्यमित्यादिप्रयोगदर्शनात् । तथाच एतत् सत् आत्मा यस्य सर्वस्य तदेतदात्मा तस्य भाव ऐतदात्म्यं सामानाधिकरण्यं च स्वार्थिकत्वाद्वा भावभवित्रोरभेदोपचाराद्वा, यो वै भूमा तत्सुखमितिवत् । यत्तु स्मृतावेतद्व्यापकत्वेन ऐतदात्म्यक्तिः सा न युक्ता, एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञाविरोधात् ।

शङ्कते नन्विति । ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि (छा०।६।८।७) यहाँपर तत्पदसे आत्मा परामृष्ट नहीं होता है, किन्तु ऐतदात्म्य परामृष्ट होता है नपुंसकत्वात्='ऐतदात्म्यम्' इसको नपुंसकत्व होनेसे=नपुंसक तत् पदसे नपुंसक ऐतदात्म्यका परामर्श युक्त है नकि पुलिङ्ग आत्माका; वस्तुतः द्वैतीका यह कथन सर्वांशमें असङ्गत नहीं है, क्योंकि 'तत्सत्यम्' (छा० ६।८।७) यहाँपर नपुंसक शब्दसे निर्दिष्ट जो ब्रह्म है उसीका तत्पदसे निर्देश युक्त है । ऐतदात्म्यमिति । 'ऐतदात्म्यम्' इसका यह अर्थ होगाकि, एष चासौ आत्मा च=एतदभिन्नात्मा, उसका=जो हो उसका नाम है–'ऐतदात्म्यम्' एवञ्च=फलितार्थ यह हुआकि–एतदीय वस्तु तू है, यह तत्त्वमसि का अर्थ है अभेदरूप अर्थ नहीं और यह आत्मा है जिसका उसका नाम है–ऐतदात्म्य इत्याकारक अर्थके होनेपर भावप्रत्ययके वैयर्थ्यकी आपत्ति है, अतः यह अर्थ ठीक नहीं है । ततः=वैयर्थ्यसे एतदीयत्वरूप जो अर्थान्तर उसका आश्रयण ठीक है=ऐतदात्म्यम् ष्यञन्त है, और ष्यञ् प्रत्यय स्वार्थमें या भावमें विहित है एतदीयत्वरूप अर्थमें नहीं; परन्तु उक्त दोनों अर्थोंमें ष्यञ्के वैयर्थ्यसे उसका 'एतदीयत्वरूप' प्रकृतोपयोगी अर्थान्तर मान लेना उचित है; शङ्का–प्रमाणके विना ऐसा कैसे माना जा सकता है, समाधान–विचित्र तद्धितकी गति है इस वचनसे । उक्तार्थमें द्वैती स्मृतिके नामसे एक कल्पित श्लोककी सम्मति दिखलाता है, वह हरि बनानेवाला है और संहार करनेवाला है, और नियमन करनेवाला तथा रक्षण करनेवाला है, उस हरिसे यह सम्पूर्ण व्याप्त है–अतः उसको ऐतदात्म्य जानते हैं इस स्मृतिसेभी, ननुसे लेकर यहाँतक शङ्का है अब समाधान किया जाता है–इति चेन्न; क्यों ? तस्य=तिसका इदम् यह है, इस अर्थमें ष्यञ् प्रत्ययका विधान न होनेसे और इस अर्थमें ष्यञ्के प्रयोगके भी न देखनेसे; और स्वार्थमें तो 'सौख्यम्'

इत्यादिस्थलोंमें प्रयोग देखा जाता है, फलतः 'तस्येदं' इस अर्थमें यह प्रत्यय नहीं है। तथाच इसका ऐसा अर्थ है कि-यह सत् आत्मा है जिस सर्वका वह एतदात्मा है उसके भावका नाम है-ऐतदात्म्य और इसका जो आत्मादिपदोंके साथ सामानाधिकरण्य है वहतो प्रत्ययको स्वार्थकत्व होनेसे है, या भाव और भविता इन दोनोंके अभेदोपचारसे है, जैसे कि यो वै भूमा तत्सुखम् (छा०।७।२३।१) यहाँपर भाव और भविताके अभेदोपचारसे 'भूमाका' सामानाधिकरण्य है और जो स्मृतिमें एतद्व्यापकत्वेन ऐतदात्म्यकी उक्ति है वह युक्तियुक्त नहीं है, क्यों? एकविज्ञानसे सर्व विज्ञानकी जो प्रतिज्ञा है, (छा० ६।१।२) उसके साथ विरोध होनेसे।

ननु शरीरवाचिनां देवमनुष्यशब्दानां शरीरिपर्यन्तत्वदर्शनात् ब्रह्मशरीरभूतजीववाचित्वंपदस्य ब्रह्मपर्यन्तत्वेन तत्त्वमितिव्यपदेशः, शरीरशरीरिभावनिबन्धनः, 'यस्यात्माशरीरमि'त्यादिश्रुतेरिति मुख्यमेवास्मन्मते पदद्वयमिति चेत् न शरीरपर्यन्तत्वमिति तल्लक्षकत्वं वा तत्रापि शक्तत्वं वा, शरीरविषयवृत्त्यैव तत्प्रतिपादकत्वं वा। नाद्यः, मुख्यत्वानुपपादनात्। न द्वितीयः, शरीरवाचिनामित्यसाधारण्येन निर्देशानुपपत्तेः प्रवृत्तिनिमित्त-मनुष्यत्वादिजातेः शरीरिण्यवृत्तेरुक्तत्वाच्च। न तृतीयः; अन्यविषयवृत्तेरन्यानुपयोगेन शरीरशरीरिणोरनादिभ्रमसिद्धाभेदनिबन्धनोऽयं प्रयोगो वाच्यः। तथा चात्राप्यभेदनिबन्धन एवायं प्रयोगः, अभेदस्तु बाधकाभावादत्र तात्त्विक इत्येव विशेषः। यत्तु आदित्यो ब्रह्मेतिवत् जीवे ब्रह्मत्वोपासनार्थस्तत्त्वमसीति निर्देश इति, तन्न, अनुपासनाप्रकरणस्थत्वेन दृष्टान्तवैषम्यात्, उक्तरीत्या वस्तुनिष्ठत्वे संभवति तत्त्यागायोगाच्च।

शङ्कते नन्विति। शरीरवाचि जो देवमनुष्यादि शब्द हैं, उन शब्दोंको शरीरिपर्य्यन्तत्व देखनेसे ब्रह्मका शरीरभूत जो जीव तादृश जीववाचि जो त्वंपद उस त्वंपदको ब्रह्मपर्य्यन्तत्व होनेसे 'तत्त्वम्' इत्याकारक व्यपदेश शरीरशरीरिभावनिबन्धन है 'यस्य आत्मा शरीरम् (श० १४, ५, ५, ३०) इत्यादिश्रुतिसे, अतः हमारे मतमें दोनों पद मुख्यार्थक ही हैं, इति चेन्न; क्यों? शरीरवाचिपदमें शरीरिपर्य्यन्तत्व क्या है,-शरीरिलक्षकत्वरूप है या तत्रापि= शरीरिमेंभी शक्तत्वरूप है, या शरीरविषयवृत्तिसे ही तत्प्रतिपादकत्व=शरीरिप्रतिपादकत्वरूप है। नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, मुख्यके अनुपपादनसे-जब कि शरीरवाचकपदमें शरीरिलक्षकत्व मान लिया तब शरीरिमें लक्ष्यत्व रहा न कि मुख्यार्थत्व। न द्वितीयः= तत्रापि शक्तत्वरूप द्वितीयपक्षभी ठीक नहीं। 'शरीरवाचिनाम्' इत्याकारक असाधारण्यरूपसे निर्देशकी अनुपपत्तिसे=जब कि शरीरशरीरि-एतदुभयमें शक्ति है तब 'शरीरवाचिनाम्' ऐसा ही निर्देश क्यों होगा 'शरीरशरीरिवाचिनाम्' ऐसा होना चाहिए। और मनुष्यादि पदोंकी प्रवृत्तिमें निमित्त जो मनुष्यत्वादि जाति है, उस जातिकी शरीरिमें अवृत्तिको उक्तत्व होनेसे=अचाक्षुषत्वकी आपत्तिसे, मनुष्यत्वादि आत्मवृत्ति नहीं है, यह कहा जा चुका है; न तृतीयः=तृतीय पक्षभी नहीं बन सकता है-अन्यविषयकवृत्तिका अन्यमें उपयोग न होनेसे

शरीरं तथा शरीरि इन दोनोंका अनादि भ्रमसिद्ध जो अभेद तादृश अभेदनिबन्धन यह प्रयोग कहना होगा, तथाच=जब यों है तब तो प्रकृतमेंभी अभेदनिबन्धन ही यह प्रयोग है और बाधकके अभावसे प्रकृतमें अभेद तात्त्विक है यही विशेष है, और जो कथन है कि आदित्यो ब्रह्म (मै०।६।१६ छा० ३।१९।१) इसकी तरह जीवमें ब्रह्मत्वकी उपासनाके लिए 'तत्त्वमसि' इत्याकारक निर्देश है वह कथन ठीक नहीं क्यों ? तत्त्वमसिमें उपासनाप्रकरणस्थत्व न होनेसे दृष्टान्तके वैषम्यसे, उक्त कथितप्रकारसे वस्तुनिष्ठत्वका सम्भव होनेपर वस्तुनिष्ठत्वके त्यागके अयोगसेभी।

ननु—स आत्मा तत्त्वमसीत्यत्रातत्त्वमसीति पदच्छेदः; 'शब्दोऽनित्य' इत्यत्रानित्य इति पदच्छेदो यथा घटदृष्टान्तानुसारेण, तथाऽत्रापि शकुनिसूत्रादिदृष्टान्तानुसारात् नहि प्रथमखण्डे शकुनिसूत्रयोः स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्ध इत्युक्तयोः शकुनिसूत्रयोः षष्ठे लवणमेतदुदकमित्यादिनोक्तयोर्लवणोदकयोः सप्तमे 'पुरुषं सोम्य गन्धारेभ्य' इत्यादिनोक्तयोः पुरुषगन्धारदेशयोः नवमे 'अपहार्षीत् स्तेयमकार्षीदि'त्यादिनोक्तयोः स्तेनापहार्ययोः ऐक्यम्। स्तेनापहार्यदृष्टान्ते हि स्पष्टमैक्यज्ञानिनोऽनर्थः, परकीयब्रह्मत्वाभिमानी हि स्तेनः, नतु विद्यमानब्रह्मत्वाज्ञानीति—चेन्न; शकुनिसूत्रादौ दृष्टान्ते विद्यमानोऽपि भेदो नातदितिपदच्छेदप्रयोजकः; तं विनैवतदुपपत्तेः। घटदृष्टान्तस्तु न नित्यत्व उपपद्यत इति वैषम्यात्। तथाहि—ज्वरादिरोगग्रस्तस्य तन्निर्मोके स्वास्थ्ये विश्रान्तिवज्जाग्रत्स्वप्नयोः करणव्यापारजनितश्रमापनुत्तये जीवस्य देवतात्मस्वरूपावस्थानमित्यस्मिन्नर्थे शकुनिसूत्रदृष्टान्त इत्यन्यथैवोपपत्तेः; 'स्वमपीतो भवतीति'श्रुतेः।

शङ्कते नन्विति। स आत्मा तत्त्वमसि (छा० ६।८।७) यहाँपर 'अतत्त्वमसि' इत्याकारक पदच्छेद है, जैसे 'शब्दो नित्यः' यहाँपर घटदृष्टान्तानुसारेण 'अनित्यः' इत्याकारक पदच्छेद होता है, तैसे यहाँपरभी शकुनिसूत्रादिके दृष्टान्तानुसारसे उक्त पदच्छेद करना उचित है, क्योंकि प्रथमखण्डमें स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धः (छा० ६।८।२) इस रीतिसे कहे हुए जो शकुनि तथा सूत्र ये दोनों हैं उन दोनोंका ऐक्य नहीं है, और षष्ठ खण्डमें 'लवणमेतदुदकम्' (छा० ६।१३।१) इत्यादिसे उक्त जो लवण तथा उदक ये दोनों हैं इन दोनोंका ऐक्य नहीं है, और सप्तमखण्डमें 'पुरुषं सोम्य गन्धारेभ्यः' (छा० ६।१४।१) इत्यादिसे उक्त जो पुरुष तथा गन्धारदेश ये दोनों है, इन दोनोंका ऐक्य नहीं है, एवम् नवमखण्डमें 'अपहार्षीत् स्तेनमकार्षीत्' (छा० ६।१६।१) इत्यादिसे उक्त जो स्तेन तथा अपहार्य्य ये दोनों है इन दोनोंका ऐक्य नहीं है। और स्तेनापहार्य्यके दृष्टान्तमें ऐक्यज्ञानीको अनर्थ स्पष्ट ही है,—परकीय जो ब्रह्मत्व उसका अभिमानी स्तेन है नकि विद्यमान जो ब्रह्मत्व उसका अज्ञानी, इति चेन्न; क्यों ? शकुनिसूत्रादिरूप दृष्टान्तमें विद्यमान हुआभी भेद 'अतत्' इत्याकारक पदच्छेदका प्रयोजक नहीं—तं विनैव=उक्त पदच्छेदके विना ही तदुपपत्तेः=शकुनिसूत्रादिके भेदकी उपपत्ति होनेसे और शब्दका नित्यत्व होनेपर घट दृष्टान्त तो नहीं बन सकता है, फलतः दृष्टान्तका वैषम्य

है; उक्तार्थको ही स्पष्ट करते हैं–तथाहीति। ज्वरादिरूप रोगसे ग्रस्त जो पुरुष है उस पुरुषको ज्वरादिकी निवृत्तिरूप स्वास्थ्यके होनेपर जैसे विश्रान्ति मिलती है, तैसे जाग्रत तथा स्वप्न इन दोनोंमें करणव्यापारजनित जो श्रम है उस श्रमकी निवृत्तिके लिए देवतात्मक आत्मस्वरूपमें अवस्थान होता है, इस अर्थमें शकुनिसूत्रका दृष्टान्त है इस रीतिसे इस दृष्टान्तको अन्यथैव उपपन्न होनेसे इससे दार्ष्टान्तमें भेद नहीं सिद्ध हो सकता है। स्वमपीतो भवति (छा० ६।८।१) इस श्रुतिसे।

ननु—ब्रह्मणि स्वशब्दो न जीवाभेदाभिप्रायः, किन्तु आत्मीयत्वाद्यर्थः स्वातन्त्र्याभिप्रायो वा, 'स्वातन्त्र्यात्स्व इति प्रोक्त' इत्यागमात् 'अपीतो भवति' इत्यस्यापि तिरोहितः सन् प्राप्तो भवतीत्यर्थः; नत्वभिन्न इति अपेः पिधाने इणोधातोश्च गतौ निष्ठायाः कर्तरि शक्तेः क्लृप्तत्वात् ऐक्ये योगरूढ्योरभावाच्चेति–चेत् न, स्वशब्दस्य स्वरूपे मुख्यस्यार्थान्तरपरत्वे गौणीलक्षणयोरन्यतरापत्तेः, अभेदे योगरूढ्योरभावोऽपि उपसर्गप्रकृतिप्रत्ययपर्यालोचनया लब्धस्वरूपप्राप्तिरूपार्थस्याभेदे पर्यवसानात्। अतएव–ऐक्यार्थत्वे अपीत इत्यस्य भवतेश्चाकर्मकतया श्रुतद्वितीयायोगः अश्रुततृतीयाकल्पनमिति–निरस्तम्; अतएव–यथा वा अस्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा विपरिपत्य श्रान्तः संहत्यपक्षौ संलयायैव ध्रियते 'एवमेवायं पुरुष' इति सुषुप्तिसमयश्रुत्यन्तरे भिन्नश्येननीडदृष्टान्तोक्तिरिति च–निरस्तम्; सर्वसाम्यस्य दृष्टान्ततायामतन्त्रत्वात्।

शङ्कते नन्विति। स्वमपीतो भवति (छा० ६।८।१) यहाँपर ब्रह्ममें जो स्वशब्द है वह जीवाभेदाभिधायक नहीं है, किन्तु आत्मीयत्वाद्यर्थक है या स्वातन्त्र्याभिधायक है, स्वातन्त्र्यसे 'स्व' इस रीतिसे कहा है इस आगमसे। और अपीतो भवति इसकाभी तिरोहित हुआ प्राप्त होता है इत्याकारक ही अर्थ है अभिन्नरूप अर्थ नहीं, अपेः=अपिकी शक्तिको विधानमें और इणधातुकी शक्तिको गतिमें और निष्ठाकी शक्तिको कर्त्तामें क्लृप्तत्व होनेसे। और ऐक्यमें योग तथा रूढि इन दोनोंके अभावसेभी। इति चेन्न; क्यों? स्वरूपमें मुख्यार्थक जो स्वशब्द है उस स्वशब्दको अर्थान्तरपरत्व होनेपर गौणी तथा लक्षणा इन दोनोंमें अन्यतरकी आपत्तिसे और अभेदमें योग तथा रूढि इन दोनोंका अभाव होनेपरभी उपसर्ग तथा प्रकृति एवं प्रत्यय इन्होंके पर्य्यालोचनसे लब्धस्वरूप जो प्राप्तिरूप अर्थ है उसका अभेदमें पर्य्यवसान होनेसे, अतएव=उक्त अर्थका अभेदमें पर्य्यवसान होनेसे ही ऐक्यार्थत्व होनेपर, 'अपीत' इसको और भवतिको अकर्मक होनेसे 'स्वम्' यहाँपर श्रुतद्वितीयाका अयोग है, और अश्रुततृतीयाका कल्पन होगा यह कथन निरस्त हुआ। और अतएव 'यथा अस्मिन्नाकाशे श्येनो वा सुपर्णो वा' (बृ० ४।३।१९) इत्यादिरूप जो श्रुत्यन्तरमें सुषुप्तिसमयावच्छेदेन भिन्न जो श्येन तथा नीड इन्होंके दृष्टान्तकी उक्ति है वह भी निरस्त हुई, अतएवके अर्थका विवरण करते हैं सर्वसाम्यको दृष्टान्ततामें अतन्त्रत्व होनेसे।

नच—प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तः स इति सुषुप्तिविषये भेदश्रुत्या त्वन्मतेपि भेदपरेण सुषुप्त्युत्क्रान्त्योर्भेदेनेति सूत्रेण त्वत्पक्षेऽपि जागरण इव सुषुप्तावपि आविद्यकजीवब्रह्मभेदस्वीकारेण च विरोध इति—वाच्यम्; यतो जाग्रत्स्वप्नयोरिव स्फुटतरविक्षेपो नास्तीत्यभिप्रायेण स्वस्वरूपप्राप्त्युक्तिः; नत्वात्यन्तिकाभेदाभिप्रायेण, अन्यथा सुषुप्तिमुक्त्योरविशेषापत्तेः। यदि सज्जगतो मूलं तदा कथं नोपलभ्यत इत्याशङ्कायां विद्यमानमपि वस्तु नोपलभ्यते अन्यथा तूपलभ्यत इत्यमुमर्थं स्पष्टीकर्तुं लवणोदकदृष्टान्त इति तत्राप्यन्यथैवोपपत्तेः । यद्येवं लवणमिवेन्द्रियैरनुपलभ्यमानमपि जगन्मूलं सत् उपायान्तरेण उपलब्धुं शक्यत इति तस्यैवोपलम्भे क उपाय इत्याशङ्कायां 'आचार्यवान् पुरुषो वेद इत्युपायं वक्तुं गान्धारपुरुषदृष्टान्त इति तत्राप्यन्यथैवोपपत्तेः। तथा च आचार्यवान् विद्वान् येन क्रमेण सता सम्बध्यते स क इत्याकाङ्क्षायां सत्याभिसन्धस्यार्थप्राप्तिरनृताभिसन्धस्यानर्थप्राप्तिरितिवक्तुं स्तेनास्तेनदृष्टान्त इति तत्राप्यन्यैवोपपत्तेः । नच सत्यानृतदृष्टान्ते पुरेऽपहार्षीं 'स्तेयमकार्षीदिति उदाहरणायोगः' तदुपपादकत्वेन पृथक्दृष्टान्तत्वाभावात् ।

शङ्कते नचेति। 'प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तः सः' (बृ० ४।३।२१) इस सुषुप्तिविषयक भेदश्रुतिसे और त्वन्मतेऽपि=तुम्हारे मतमेंभी भेदपर सुषुप्त्युत्क्रात्योर्भेदेन=(वे० १।३।४२) इससूत्रसे और तुम्हारे पक्षमेंभी जागरण की नाईं सुषुप्तिमेंभी आविद्यक जीवब्रह्मके भेदके स्वीकारसे विरोध है, इति नच वाच्यम्; क्यों? यतः=जगत् तथा स्वप्न इन दोनोंमें जैसे स्फुटतर विक्षेप है तैसे सुषुप्तिमें स्फुटतरविक्षेप नहीं है, इस अभिप्रायसे सुषुप्तिमें स्वरूपकी प्राप्ति कही है, अत्यन्ताभेदके अभिप्रायसे नहीं, अन्यथा=सुषुप्तिमें अत्यन्ताभेदाभिप्रायसे स्वस्वरूपकी प्राप्ति होनेपर सुषुप्ति तथा मुक्ति इन दोनोंमें अविशेषकी आपत्ति होनेसे । यदि सद्वस्तु जगत् का मूल है तब क्यों? सद्वस्तु उपलब्ध नहीं होती है, ऐसी आशङ्काके होनेपर विद्यमानभी वस्तु उपलब्ध नहीं होती है और अन्यथा=साधनविशेषसे तो उपलब्ध होती है इस अर्थको स्पष्ट करनेके लिए लवणोदकका दृष्टान्त है, इस रीतिसे तत्रापि=लवणोदकदृष्टान्तमेंभी दृष्टान्तत्वको अन्यथा उपपन्न होनेसे=जैसे जललीन लवण साधनविशेषसे उपलब्ध होता है तैसे उक्त पुरुषभी साधनविशेषसे उपलब्ध होता है, इस अंशको लेकर लवणोदकका दृष्टान्त है, यदि ऐसा है तब इन्द्रियोंसे जैसे उक्त लवण उपलब्ध नहीं होता है तैसे अनुपलभ्यमान हुआभी जगत्कामूल सत् उपायान्तरसे जाननेके लिए शक्य है, ऐसा अन्तर्विलीन अभिप्रायरखकर तस्यैव=उस पुरुषके ही उपलम्भमें क्या उपाय है, ऐसी आशङ्का होनेपर 'आचार्यावान् पुरुषो वेद' (छा० ६।१४।२) इस उपायको कहनेके लिए गान्धारपुरुषका दृष्टान्त है, इस रीतिसे तत्रापि=गान्धारपुरुष दृष्टान्तमेंभी अन्यथा दृष्टान्तत्वको उपपन्न होनेसे=जैसे उपदेशके अनन्तरही ऊहापोह=विचारविशेषसे गान्धारदेश जाना जाता है, तैसे ब्रह्मभी उपदेशके=आचार्योपदेशके अनन्तर ही ऊहापोहसे जाना जाता है इस अंशमें

दृष्टान्त है । तथाच आचार्यवान् विद्वान् जिस क्रमसे सत्के साथ सम्बद्ध होता है वह क्रम कौन है । ऐसी आशङ्का होनेपर सत्याभिसन्धस्य=सत्यप्रतिज्ञको=सत्याभिनिवेशीको अर्थकी प्राप्ति है, और अनृताभिनिवेशीको अनर्थकी प्राप्ति है, इस अर्थको कहनेके लिए स्तेनास्तेन दृष्टान्त है इस रीतिसे स्तेनास्तेनदृष्टान्तमेंभी दृष्टान्तत्वको अन्यथैव उपपन्न होनेसे । नचेति । सत्यानृतदृष्टान्तसे 'पुरेऽपहार्षीत्' 'स्तेयमकार्षीत्' (छा० ६।१६।१) इस उदाहरणका अयोग है नच=अयोग नहीं है, क्यों ? तदुपपादकत्वेन=इस कथनको उक्त दृष्टान्तका उपपादकत्व होनेसे । इसको पृथक् दृष्टान्तत्वके अभावसे ।

ननु—नवमखण्डे 'नानात्ययानां वृक्षाणां' रसानित्यादिनोक्तानां नानावृक्षरसानां दशमे इमाः सोम्य नद्यः इत्यादिनोक्तयोर्नदीसमुद्रयोश्चैक्यं वक्तुं नहि शक्यम्, नहि नानावृक्षरसा अन्योन्यभेदत्यागेन प्राक्सिद्धेन मधुना ऐक्यमापद्यन्ते, नवा प्राक्भेदभ्रान्तिविषयाः पश्चात्तदविषयाः, किन्तु तन्तव इव पटमन्योन्यभिन्ना एव प्रागसिद्धं मधूत्पादयन्ति । न चेदं दार्ष्टान्तिकानुगुणम्; नदीसमुद्रदृष्टान्तेऽपि किं नदीसमुद्रावयविनोरैक्यं, किं वा तदवयवजलाणूनां उतद्रव्यान्तरारम्भः । नाद्यद्वितीयौ; मापराशौ प्रक्षिप्तमापतदवयवादीनामिव क्षीरे प्रक्षिप्तनीरतदवयवानामिव चान्योन्यमिश्रीभावेऽपि प्राग्भिन्नानां पश्चादप्यैक्यायोगात् तृतीये तु भेद एव, एवं दार्ष्टान्तिकाननुगुण्यं चेति—चेन्न; स्फुटावच्छेदकविरहेण स्पष्टभेदाभावाभिप्रायेण दृष्टान्तानामुपात्तत्वेन दृष्टान्ते वास्तवभेदाभेदयोरौदासीन्येन त्वदुक्तदूषणगणानामगणनीयत्वात् । अतएव—सतोभेदस्याज्ञानमात्रे दृष्टान्त इति—निरस्तम्, भेदसत्तायामौदासीन्यात् ।

शङ्कते नन्विति । नवमखण्डे=छान्दोग्योपनिषत्के छठे अध्यायके नवमखण्डमें 'नानात्ययानां वृक्षाणां रसान्' (छा० ६।९।१) इत्यादिसे उक्त जो नानावृक्षोंके रस हैं उन्होंका, और दशमे=उक्तोपनिषत्के उक्ताध्यायके दशम खण्डमें 'इमाः सोम्य नद्यः' (छा० ६।१०।१) इत्यादिसे उक्त जो नदी तथा समुद्र इन दोनोंका ऐक्य कहनेके लिए शक्य नहीं है—क्योंकि नानावृक्षोंके रस परस्पर भेदत्यागपूर्वक प्राक्सिद्ध मधुके साथ ऐक्यको प्राप्त होते हैं, यह नहीं हो सकता है । अथवा पूर्वमें नानावृक्षोंके रस भेदभ्रान्तिके विषय होते हैं और पश्चात् उक्त भ्रान्तिके अविषय होते हैं यह बातभी नहीं है, किन्तु जैसे परस्पर भिन्न तन्तु प्रागसिद्ध पटको उत्पन्न करते हैं तैसे परस्परभिन्न नानावृक्षोंके रस प्रागसिद्ध मधुको उत्पन्न करते हैं । और यह अर्थ भवदभिमत ऐक्यरूप दार्ष्टान्तिकके अनुकूल नहीं है । और नदी समुद्र दृष्टान्तमेंभी क्या, नदीरूप और समुद्ररूप जो अवयवी हैं उन्होंका ऐक्य है, अथवा नदी तथा समुद्र इन दोनोंके अवयवरूप जो जलीय अणु हैं उन्होंका ऐक्य है, अथवा, नदी तथा समुद्र इन दोनोंसे अन्यद्रव्यका आरम्भ होता है; नाद्यद्वितीयौ=प्रथमपक्ष और द्वितीयपक्ष ये दोनों नहीं बन सकते हैं; क्यों ? मापराशिमें प्रक्षिप्त जो माप हैं उन मापोंका और उन्होंके अवयवोंका राशि-

भूतमावोंके साथ तथा उन्होंके अवयवोंके साथ परस्पर मिश्रीभाव=मिश्रण होनेपरभी जैसे ऐक्य नहीं है, और क्षीरमें प्रक्षिप्त जो नीर है उस नीरका और उसके अवयवोंका क्षीरके साथ तथा क्षीरके अवयवोंके साथ मिश्रीभाव होनेपरभी जैसे ऐक्य नहीं है तैसे नदी और समुद्र जलका सम्मिश्रण होनेपरभी इन दोनोंके जलोंका या इन्होंके जलोंके अवयवोंका ऐक्य नहीं है—पूर्वमें भिन्न जो पदार्थ हैं पश्चात्भी उन्होंके ऐक्यका अयोग होनेसे। तृतीये=दोनोंसे द्रव्यान्तरका आरम्भ होता है, इस तृतीयपक्षमें तो भेद ही है और ऐसा होनेपर दृष्टान्तका आनुकूल्यभी नहीं है, इति चेन्न; क्यों ? स्फुटावच्छेदक=अहङ्काररूपस्फुटोपाधिविरहप्रयुक्त जो स्पष्टभेदाभाव तादृश भेदाभावाभिप्रायसे दृष्टान्तोंको उपात्तत्व होनेसे और दृष्टान्तमें वास्तव-भेदमें तथा तथाविध अभेदमें औदासीन्यहोनेसे त्वदुक्तदूषणगणोंको अगणीयत्व होनेसे अतएवेति। सत्का जो भेद है उसके अज्ञानमात्रमें दृष्टान्त है, यह कथन निरस्त हुआ—भेद-सत्तामें उक्त वाक्योंका औदासीन्य होनेसे।

नचैवमस्फुटभेदविषयत्वस्यात्यन्तिकाभेदेऽनुपयोगः; सूक्ष्मोपाध्यवच्छिन्नस्य महोपाध्यवच्छिन्नैक्यवत्तदवच्छिन्नस्यापि तद्विलये अनवच्छिन्नैक्यमिति सम्भावनाबुद्धिजननद्वारोपयोगित्वसम्भवात्। अत एव 'ताः समुद्रात् समुद्रमेवापियन्ति स समुद्र एव भवती'त्यत्र प्रकृतनदीरुद्दीश्य समुद्रभवनविधाने स्वर्णं कुण्डलं भवतीतिवत्, ताः समुद्र एव भवन्तीति व्यपदेशःस्यात्। अतो नद्यो नियतजलराशिरूपात् समुद्रात् गच्छन्ति तं प्रविशन्ति च। समुद्रस्तु स एव। नैतासां समुद्रत्वमिति वा, समुद्र एव न तु नदीत्वं प्राप्नोतीतिवार्थः। सतोऽप्यन्योन्यं भेदस्याज्ञान एवेमौ दृष्टान्तौ। अतएव नानारसवाक्ये दार्ष्टान्तिके 'एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति संपद्य न विदुः सति संपत्स्यामह' इति 'त इह व्याघ्रो वे'ति नदीसमुद्रवाक्ये च दार्ष्टान्तिके 'सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामह' इति 'त इह व्याघ्रो वे'ति सतो भेदस्याज्ञानेनैवानर्थ उक्त इति—निरस्तम्, स्पष्टभेदविषयताभावाभिप्रायेण दृष्टान्तत्वात्। यच्च भेदाज्ञाननिबन्धनव्याघ्रादिरूपानर्थपरा श्रुतिरिति, तन्न; सति सम्पद्येत्यस्यासन्नत्वात्। न विदुरित्यनेन सत्संपत्यज्ञानमुच्यते नतु भेदाज्ञानम् तथा च सत्सम्पत्तेर्ज्ञानपूर्वकत्वाभावात् तत्तद्वासनया तत्तद्व्याघ्रादिभाव एव भवतीत्येतत्परत्वात्।

नन्वेति। एवम् अस्फुटभेदविषयत्वका, आत्यन्तिकाभेदमें अनुपयोग है, नच=अनुपयोग नहीं है क्यों ? सूक्ष्मोपाध्यवच्छिन्नस्य=अहङ्कारोपलक्षितका जैसे महोपाधि=अविद्योपहितके साथ ऐक्य है तैसे तदवच्छिन्नस्यापि=सूक्ष्मोपाध्यवच्छिन्नकाभी तद्विलये=महोपाधिरूप अविद्याका विलय होनेपर अनवच्छिन्न चैतन्यके साथ ऐक्य है इत्याकारक जो सम्भावना बुद्धि है तादृश-सम्भावनाबुद्धिजननद्वारा उपयोगित्वका सम्भव होनेसे। अतएवेति। 'ताः समुद्रान् समुद्र-मेवापियान्ति स समुद्र एव भवति' (छा० ६।१०।१) यहाँपर प्रकृत नदिओंको उद्देश्यकर समुद्रभवनविधानमें सुवर्ण कुण्डल होता है, इसकी तरह वे नदियां समुद्र ही होती हैं यह

व्यपदेश होगा। अतः नदियाँ नियतजलराशिरूप समुद्रसे जाती हैं। और उसके प्रति प्रविष्ट होती हैं। समुद्र तो वही है। इन नदिओंका समुद्रत्व नहीं है अथवा समुद्र ही है, नदीत्वको नहीं प्राप्त होता है यह अर्थ है, सत्काभी जो परस्पर भेद है उसके अज्ञानमें ही ये दोनों दृष्टान्त हैं। अत एव नानारसवाक्यघटकदार्ष्टान्तिकमें, एवमेव खलु सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सति सम्पद्य न विदुः सति सम्पत्स्यामहे इति 'त इह व्याघ्रो वा, इत्यादिरूप अनर्थ तथा नदीसमुद्रवाक्यघटक-दार्ष्टान्तिकमें 'सत आगम्य न विदुः सत आगच्छामहे' इति 'त इह व्याघ्रो वा' (छा० ६।९।२) इत्यादिरूप अनर्थ सत्के भेदके अज्ञानसे ही कहा है यह कथन निरस्त हुआ—स्पष्ट जो भेदविषयता तदभावाभिप्रायसे दृष्टान्तत्व होनेसे। और जो कहा है कि—भेदका जो अज्ञान तादृश अज्ञान-निबन्धन जो व्याघ्रादिरूप अनर्थ तादृश अनर्थपरा श्रुति है वह ठीक नहीं क्यों? 'सति सम्पद्य सति सम्पद्यामहे' इसको आसन्नत्व होनेसे। 'न विदुः' इससे सत्की प्राप्तिका अज्ञान कहा जाता है, भेदका अज्ञान नहीं। तथाच सत्की प्राप्तिको ज्ञानपूर्वकत्वका अभाव होनेसे तत्तद्वासनया= व्याघ्रादिकी वासनासे व्याघ्रादिभाव ही होता है एतत्परत्व होनेसे। इस प्रकरणकी सफाईके लिए छान्दोग्यका छठा अध्याय देखना चाहिए। फलतः उक्तदृष्टान्तोंका भेदमें तात्पर्य न होनेसे इन दृष्टान्तोंके अनुसार 'अतत्' यह छेद नहीं हो सकता है यह स्पष्ट ही है।

तस्माद्दृष्टान्तवर्याणां भेदे तात्पर्यहानितः। एतेपामनुसारेण छेदो नातदिति स्फुटम्॥

ननु—अष्टमखण्डे स्वप्नान्तं मे सोम्य विजानीहीति स्वातन्त्र्यशङ्कानास्पदसुषुप्तिनिदर्शनेन एकादशे चास्य यदेकां शाखां जीवो जहातीत्यादिना अन्वयव्यतिरेकोक्त्या पञ्चदशे च पुरुषं सोम्योतोपतापिनमित्यादिना स्वातन्त्र्यशङ्कानास्पदमरणनिदर्शनेन ईश्वराधीनत्वस्योक्तत्वादतदित्येव छेदो युक्त इति—चेन्न; स्वप्नान्तमित्यादेः सुषुप्त्यवस्थायामेव जीवत्वविनिर्मुक्तं स्वं देवतारूपं दर्शयिष्यामीत्यनेनाभिप्रायेण उद्दालकेनावतारितत्वेनेश्वराधीनत्वपरत्वाभावात्। जलादुत्थितानां वीचीतरङ्गफेनबुद्बुदानां पुनस्तद्भावं गतानां विनाशो दृष्टः। जीवानां प्रत्यहं स्वरूपतां गच्छतां मरणप्रलययोश्च नाशाभावः कथमित्याशङ्कायां तत्परिहारत्वेनोक्तस्य वृक्षशाखानिदर्शनस्य जीवाधिष्ठितं शरीरं जीवति तदपेतं च म्रियते ननु जीवो म्रियत इत्येतत्परत्वात्। जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियत इति वाक्यशेषात् यथा सोम्योपतापिनमित्यस्यापि 'आचार्यवान् विद्वान् केन क्रमेण सत् सम्पद्यत' इत्याशङ्कायां तत्क्रमप्रदर्शनपरत्वेन ईश्वराधीनत्वे तात्पर्याभावात्।

फलतः उक्त दृष्टान्तोंका भेदमें तात्पर्य्य न होनेसे इन दृष्टान्तोंके अनुसार 'अतत्' यह छेद नहीं हो सकता है यह स्फुट है। शङ्कते नन्विति। अष्टमखण्डे=छान्दोग्योपनिषत्के छट्ठे अध्यायके अष्टमखण्डमें स्वप्नान्तं सोम्य मे विजानीहि। इस रीतिसे स्वातन्त्र्यकी शङ्काका अनास्पद जो सुषुप्ति निदर्शन उस सुषुप्तिरूप निदर्शनसे और एकादशे=उक्ताध्यायके एकादश खण्डमें अस्य यदेकां शाखां जीवो जहाति इत्यादिसे अन्वयव्यतिरेककी उक्तिसे और पञ्चदशे=

उक्त अध्यायके पन्द्रहवे खण्डमें 'पुरुषं सोम्योतोपतापिनम्' इत्यादिसे स्वातन्त्र्यशङ्कानास्पदमरणके दृष्टान्तसे जीवमें ईश्वराधीनत्वको उक्तत्व होनेसे 'अतत्' इत्याकारक ही पदच्छेद युक्त है। इति चेन्न; क्यों ? 'स्वप्नान्तम्' इत्यादिको स्वप्नावस्थामें ही जीवत्वसे विनिर्मुक्त देवतास्वरूप स्वको दिखलावेंगे, इस अभिप्रायसे उद्दालकद्वारा अवतारितत्व होनेसे, ईश्वराधीनत्वके परत्वका अभाव होनेसे। प्रथम जलसे उठे और पश्चात् जलभावको प्राप्त होनेवाले वीचीतरङ्ग-फेनबुद्बुदोंका विनाश देखा गया है। तब प्रतिदिन स्वरूपको प्राप्त होनेवाले और मरणप्रलयकोभी प्राप्त होनेवाले जीवोंके नाशका अभाव कैसे है ? ऐसी आशङ्का होनेपर तत्परिहारत्वेन=उक्त शङ्कासमाधानत्वेन उक्त वृक्षशाखानिदर्शनको जीवसे अधिष्ठित हुआ शरीर जीता है—और उससे अनधिष्ठित हुआ मरता है—जीव नहीं मरता है, एतदर्थपरत्व होनेसे। 'जीवापेतं किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते' (छा० ६।११।३) इत्याकारक वाक्यशेषसे। 'यथा सोम्योपतापिनम्' इसकोभी 'आचार्य्यवान् विद्वान् किस क्रमसे सत्को प्राप्त होता है' ऐसी आशङ्का होनेपर तत्क्रम=सत्प्राप्ति क्रमप्रदर्शनपरत्व होनेसे जीवके ईश्वराधीनत्वमें तात्पर्य्यके अभावसे।

यत्तु एकादशे 'जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठतीती'त्यत्र जीवशब्द ईश्वरपरः मोदमान इति संसारिणः पृथगुक्तिरिति, तन्न; मोदमान इत्यस्य दृष्टान्तत्वेन प्रक्रान्तवृक्षविशेषणत्वेन संसारिपरत्वाभावेन जीव इत्यत्र श्रुत्यार्थत्यागायोगात्। यच्च द्वादशे एतस्यैव सोम्येषोऽणिम्नः, एवं महान्यग्रोधस्तिष्ठतीति, अत्र अणिमशब्दः सूक्ष्मेश्वरपरः, स एषोऽणिमा एतदात्म्यमिदं सर्वमिति इहैव श्रुतावीश्वरे तस्य प्रयोगात् नतु धानापरः। तासां किमत्र पश्यसीति अण्व्य इवेमा धाना इति भावप्रत्ययरहितत्वेन स्त्रीलिङ्गेन बहुवचनान्तेन इव शब्दशिरस्केनाणुशब्देन निर्दिष्टतया तद्विपरीताणिमशब्दानर्हत्वाच्चेति—चेन्न; एषोऽणुरात्मेत्यत्र भावप्रत्ययरहितप्रयोगविषयेऽपीश्वरे एषोऽणिमेति प्रयोगदर्शनेन धानासु तथा वक्तुं शक्यत्वात्। नच तर्हि न निभालयस इत्युक्तादृश्यत्वायोगः, अनुभूतायां धानायामेव महान् न्यग्रोधस्तिष्ठति स एवानभिव्यक्तत्वात् न ज्ञायत इत्येवं परत्वात्।

यत्त्विति। एकादशे=छट्ठे अध्यायके ग्यारहवें खण्डमें 'जीवेनात्मनानुप्रभूतः पेपीयमानो मोदमानस्तिष्ठस्तिष्ठति' यहाँपर जीवशब्द ईश्वरपर है 'मोदमानः' इत्यादिका संसारीकी पृथक् उक्ति है; इति यत् तत् तु न; क्यों ? 'मोदमानः' इसको दृष्टान्तत्वेन प्रक्रान्त जो वृक्ष तादृश वृक्षविशेषणत्व होनेसे संसारिपरत्वके अभावसे 'जीवने' यहाँपर श्रुतार्थके त्यागके अयोगसे। द्वादशे=उक्ताध्यायके बारहवें खण्डमें 'एतस्यैव सोम्यैषोऽणिम्न एवमहान्यग्रोधस्तिष्ठति' यहाँपर अणिमशब्द सूक्ष्मेश्वरपर है 'स एषोऽणिमा एतदात्म्यमिदं सर्वम्' इस रीतिसे इहैव श्रुतौ=प्रस्तुतद्वादशखण्डघटकश्रुतिमें ही ईश्वरमें तस्य=अणिमशब्दका प्रयोग होनेसे अणिमशब्द धानापर नहीं है—तासाम्=उन धानाओंको 'किमत्र पश्यसीति अण्व्य इवेमा धानाः' इस रीतिसे भावप्रत्ययरहित तथा इवशब्दशिरस्क एवं बहुवचनान्त तथा स्त्रीलिङ्ग

अणु शब्दसे निर्दिष्टत्व होनेसे तद्विपरीत=उक्तविध अणुशब्दसे विपरीत जो अणिमशब्द तादृश अणिमशब्दनिरूपित योग्यत्वके न होनेसेभी इति चेन्न; क्यों? एषोऽणुरात्मा (मुं० ३।१।९) यहाँपर भावप्रत्ययसे रहित जो अणुशब्दका प्रयोग है तादृशप्रयोगके विषयीभूत ईश्वरमेंभी 'एषोऽणिमा' इस प्रयोगके देखनेसे धानाओंमेंभी भावप्रत्ययान्तप्रयोगको कहनेके लिए शक्यत्व होनेसे। नचेति। तब 'न निभालयसे' इस रीतिसे उक्त अदृश्यत्वका अयोग है-'अणिम्ना तां न निभालयसे' यहाँपर अणिमशब्दसेभी धानाका वाच्यत्व होनेसे और उस धानामें 'किं पश्यसि' इत्यादिसे दृश्यत्वको उक्तत्व होनेसे पुनः अदृश्यत्वका कथन अयुक्त है, नच= नहीं है क्यों? अनुभूतधानामें ही महावट स्थित है वह अनभिव्यक्त होनेसे तुमसे नहीं जाना जाता है एतदर्थपरत्व होनेसे उक्तवाक्यको।

ननु—यदि पञ्चदशे विदुषो ब्रह्मप्राप्तिमात्रं विवक्षितम्, तदा तस्य वाङ्मनसि संपद्यत इत्यादि तेजः परस्यां देवतायामित्यन्तमेव वाक्यं स्यात्, यावद्वा वाङ्मनसि संपद्यत इत्यादि व्यर्थं स्यादिति–चेन्न; लौकिकमरणे यः सत्संपत्तिक्रमः स एव विदुषोऽपि, विशेषस्तु ज्ञानाज्ञानकृत इति अमुमर्थं प्रतिपादयितुं दृष्टान्तेऽन्वयव्यतिरेकाभ्यां सत्सम्पत्तिक्रम इति वैयर्थ्याभावात् नच 'तत् सत्यं स आत्मा' इत्यत्रात्मशब्देनाणिमशब्दोक्तेश्वर एव गृह्यते नतु जीवः 'यदाप्नोति यदादत्ते यच्चात्ति विषयानिह। यच्चास्य सन्ततो भावस्तस्मादात्मेति गीयते॥' इति वचनादिति–वाच्यम्; कतम आत्मेत्यादौ आत्मशब्दस्य जीवे प्रसिद्धत्वात् वचनोक्तविषयात्तृत्वस्य जीव एव च सम्भवात् तत्परिग्रहस्यैवोचितत्वात् यच्च तमेवैकं जानथ आत्मानमिति वाक्योक्तो न जीवः तद्वाचिशब्दाभावात् इति सिद्धान्तितम्, तदात्मशब्दस्य न जीवे अमुख्यत्वाभिप्रायेण किन्तु प्रधानादौ। जीवस्य तु आत्मत्वेऽपि परिच्छिन्नतया जगत्कर्तृत्वासम्भवात् व्युदास इत्येवं परम्। जीवेनात्मनेति सामानाधिकरण्यानुपपत्तेश्च, नच जीवशब्देन ईश्वर एवोक्तः; रूढिपरित्यागे कारणाभावात्। रूढेश्च क्लृप्तत्वात्, अहं हि जीवसंज्ञ इत्यादेश्च अभेदपक्षेऽपि संभवात्।

यदि पञ्चदशे=छठे अध्यायके पन्द्रहवें खण्डमें यदि विद्वान्को ब्रह्मकी प्राप्तिमात्र विवक्षित है, तब तो 'तस्य वाङ्मनसि संपद्यते' यहाँसे लेकर 'तेजः परस्य देवतायाम्' यहाँतक ही वाक्य होगा 'यावद्वा वाङ्मनसि सम्पद्यते' इत्यादि व्यर्थ होगा, इति चेन्न; क्यों? लौकिकमरणमें जो सत्की प्राप्तिका क्रम है वही क्रम विद्वान्कोभी सत्की प्राप्तिका है, इसमें विशेष ज्ञानकृत तथा अज्ञानकृत है इस अर्थको प्रतिपादन करनेके लिए दृष्टान्तमें अन्वयव्यतिरेकसे सत्की सम्पत्तिका क्रम है इस रीतिसे वैयर्थ्यके अभावसे। नचेति। 'तत्सत्यं स आत्मा' यहाँपर आत्मशब्दसे अणिमशब्दोक्त ईश्वर ही गृहीत होता है जीव नहीं 'यदाप्नोति' इत्यादि वचनसे इति नच वाच्यम्, क्यों? कतम आत्मा (बृ० ४।३।७) इत्यादिमें आत्मशब्दको जीवमें प्रसिद्धत्व होनेसे। और उक्त वचनसे उक्त विषयभोक्तृत्वका जीवमें ही सम्भव

होनेसे अतः प्रकृतमेंभी आत्मशब्दसे जीवके परिग्रहको ही उचितत्व है। यच्चेति। और जो उत्तरमीमांसाके प्रथमाध्यायके तृतीयपादस्थ प्रथमाधिकरणमें यह सिद्धान्त किया है कि 'तमेवैकं जानथ आत्मानम्' इस वाक्यमें जो कहा गया है वह जीव नहीं है—जीववाचिशब्दके अभावसे वह जीवमें आत्मशब्दके अमुख्यत्व अभिप्रायसे नहीं है किन्तु प्रधानादिमें आत्मशब्दके अमुख्यत्वके अभिप्रायसे है। और जीवका तो आत्मत्व होनेपरभी परिच्छिन्नत्वप्रयुक्त जगत्कर्तृत्वके असम्भवसे व्युदास है एतदभिप्रायक है। और 'जीवेनात्मना' इस सामानाधिकरण्यकी अनुपपत्तिसेभी आत्मशब्द जीवपर ही है। जीवपदसे ईश्वर ही कहा गया है, नच=ईश्वर जीवपदसे नहीं कहा गया है—रूढिके परित्यागमें कारणके अभावसे और रूढिको क्लृप्तत्व होनेसे। और 'मैं जीवसंज्ञावाला हूं' इत्यादिका अभेदपक्षमेंभी सम्भव होनेसे।

नच प्राणधारकत्वमीशमात्रवृत्तिः, जीवसाधारणत्वात्। नच त्रिवृत्करणपूर्वकनामरूपव्याकरणस्य जीवेऽसंभव अस्मदादावसंभवेऽप्यत्रिवृत्कृतभूतारब्धलिङ्गशरीराभिमानिनो हिरण्यगर्भस्य नामरूपात्मकप्रपञ्चव्याकरणसंभवात्। नच—तर्हि पुनर्जीवप्रवेशोक्त्ययोगः, 'तत्तेज ऐक्षत ता आप ऐक्षन्त इमास्तिस्रो देवता' इति पूर्वमेव चेतनत्वसिद्धेरिति—वाच्यम्; अव्याकृतभूतसृष्टौ साक्षात्कारणत्ववत् ब्रह्माण्डादिसृष्टौ न साक्षात् कारणता किन्तु स्वाभिन्नजीवद्वारेणेत्येवं परत्वात्। किञ्च 'एकमेवाद्वितीयमि'त्युपक्रमात् न श्येनादिदृष्टान्तानुसारादतदिति पदच्छेदो युक्तः; एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञानविरोधात्, ब्रह्मजीवैक्यस्य अप्रसक्तत्वेन निषेधानुपपत्तेश्च। नच—इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठमित्यादाविव श्रुतितात्पर्यापरिज्ञानेन तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदित्यादाविवानादिक्कुसमयेन वा देहेन्द्रियादीन् प्रति स्वातन्त्र्यरूपस्य ऐश्वर्यस्य सर्वैरपि स्वात्मन्यभिमन्यमानत्वेन प्रत्यक्षेण वा प्रसक्तिरैक्यस्येति—वाच्यम्; ऐक्यतात्पर्यस्य प्रमितत्वेन कुसमयत्वस्य व्यवस्थापितत्वेन च तात्पर्यापरिज्ञानकुसुमयप्राप्तत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात्।

नचेति। प्राणधारकत्व ईश्वरमात्रमें वृत्ति है नच=ईश्वरमें ही प्राणधाकरत्व नहीं है जीवसाधारणत्व होनेसे। त्रिवृत्करणपूर्वक जो नामरूपका व्याकरण है, उसका जीवमें असम्भव है नच=असम्भव नहीं है, क्यों? अस्मदादिमें असम्भव होनेपरभी त्रिवृत्कृत भूतोंसे आरब्ध जो लिङ्ग शरीर तादृशलिङ्गशरीराभिमानी जो हिरण्यगर्भ उस हिरण्यगर्भमें नामरूपात्मक जो प्रपञ्च तादृश प्रपञ्चके व्याकरणका सम्भव होनेसे। नचेति। तव पुनः जीवके प्रवेशकी उक्तिका अयोग है 'तत्तेज ऐक्षत ता आप ऐक्षन्त इमास्तिस्रो देवताः' (छा० ६।२।३) इस रीतिसे पूर्वमेंही चेतनत्वकी सिद्धिसे इति नच वाच्यम्, क्यों? अव्याकृतरूप=अनभिव्यक्तरूपसृष्टिमें जैसे हिरण्यगर्भको साक्षात्कारणत्व है तैसे ब्रह्माण्डादिकी सृष्टिमें साक्षात्कारणता नहीं है, किन्तु स्वाभिन्नजीवद्वारा कारणता है एतदर्थपरत्व होनेसे तथाच जीवको नाम तथा रूप इन दोनोंमें प्रवेशके विना हिरण्यगर्भाभिन्न जीवपरिणामभूत ब्रह्माण्डके प्रति उपादानत्व अनुपपन्न है अतः

जीवके प्रवेशकी उक्ति व्यर्थ नहीं है । किञ्चेति । 'एकमेवाद्वितीयम्' (छा० ६।२।१) इस उपक्रमसे श्येनादिदृष्टान्तानुसार 'अतत्' यह पदच्छेद नहीं बन सकता है एकके विज्ञानसे सर्वके विज्ञानकी जो प्रतिज्ञा है (छा०६।१।२) उसके साथ विरोध होनेसे । और जीव तथा ब्रह्म इन दोनोंके ऐक्यको प्रमाणान्तरसे अप्रसक्तत्व होनेसे निषेधके अयोगसेभी । नचेति । 'इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठम्' (मुं० १।२।२०) इत्यादिकी तरह श्रुतितात्पर्यके अपरिज्ञानसे या 'तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीत्' (छा० ३।१९।१) इत्यादिकी तरह अनादि कुमतसे, या देहेन्द्रियादिकोंके प्रति जो स्वातन्त्र्य तद्रूप जो ऐश्वर्य उस ऐश्वर्यको सबसेभी स्वात्मामें जो अभिमन्यमानत्वरूप प्रत्यक्ष है, उस प्रत्यक्षसे=प्रत्यक्षात्मक लिङ्गसे ऐक्यकी प्रसक्ति है, इति नच वाच्यम् क्यों ? ऐक्यविषयक श्रुतितात्पर्य्यके प्रमितत्वसे अभेदवादके सुमतत्वके व्यवस्थापितत्वसे तात्पर्यके अपरिज्ञानको या अभेदवादके कुसमयत्वको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे ।

ऐक्यलिङ्गस्यापि आभिमानिकत्वाभावेन तेन चेत् प्रसक्तिः तदा निषेद्धुमशक्यतयैव, देहेन्द्रियादीनां जीवस्यैक्येनाध्यस्तत्वात् तान् प्रति स्वातन्त्र्याभिमानस्य सार्वलौकिकस्य वक्तुमशक्यत्वात् यत्किञ्चित्प्रति स्वातन्त्र्यस्य ईश्वरलक्षणत्वाभावाच्च एतेन—एकमेवाद्वितीयमिति समाभ्यधिकराहित्यस्योपक्रमात् ऐतदात्म्यमिति तस्यैवोपसंहारात् अतत्त्वमसीतिनवकृत्वोऽभ्यासात्, शास्त्रं विना शास्त्रैकगम्यस्य ईश्वरभेदस्याप्रसक्ततयाऽपूर्वत्वात् अथ सम्पत्स्यत इति फलश्रवणात् येनाश्रुतं श्रुतं भवतीत्यर्थवादात् शकुनिसूत्रादिदृष्टान्तैरुपपादनात् षड्विधतात्पर्यलिङ्गानि भेदपराण्येवेति—निरस्तम्, एकमेवेत्यत्र समाभ्यधिकराहित्यमात्रेण भेदोपक्रमत्वाभावात्, अभेदेऽपि तत्संभवात् एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानप्रतिज्ञानविरोधात् द्वितीयाभावमात्रस्यैवोपक्रमात् । अतएवाभ्यासोपसंहारावपि भेदविषयौ न भवतः अभेदे तु यथाऽपूर्वता तथोक्तम् । फलार्थवादोपपत्तीनामभेद एव सम्भवाच्च । तथा शाखान्तरस्थिताभेदवाक्यानामुपासनाप्रकरणस्थितानां तूपासनापरतया नाभेदपरवाक्यविरोधः ।

इति तत्त्वमसिवाक्यार्थनिरूपणम् ।

ऐक्यलिङ्गस्यापि=मैं देहादिकोंके प्रति स्वतन्त्र='अधिष्ठान हूँ' इत्याकारक जो प्रत्यक्षात्मक लिङ्ग है उस लिङ्गकोभी अभिमानकत्वके अभावसे उससे यदि ऐक्यकी प्रसक्ति है तब तो उसके निषेधकी अशक्यता ही है, और देहेन्द्रियादिकोंको जीवमें अभेदरूपसे अध्यस्तत्व होनेसे तान् प्रति=देहेन्द्रियादिकोंके प्रति सार्वलौकिक स्वातन्त्र्याभिमानको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे, और यत्किञ्चित् देहादिके प्रति जो स्वातन्त्र्य है उस स्वातन्त्र्यको ईश्वरलक्षणत्वके अभावसे=फलतः उक्त स्वातन्त्र्याभिमानसे ईश्वराभेदकी प्रसक्ति नहीं है । एतेनेति । 'एकमेवाद्वितीयम्' (छा० ६।२।१) इत्याकारक ब्रह्मके सम और ब्रह्मसे अधिक इन दोनोंके राहित्यका उपक्रम होनेसे, और 'ऐतदात्म्यम्' (छा० ६, ९, ४; ६, १०, ३; ६, ११, ३; ६, १२, ३; ६, १३, ३; ६, १४, ३; ६, १५, ३; ६, १६, ३;) इत्याकारक

उस राहित्यका ही उपसंहार होनेसे और अतत्त्वमसि, इत्याकारक नववार अभ्यास होनेसे, और शास्त्रके विना शास्त्रैकसमधिगम्य जो ईश्वर उसके भेदको अप्रसक्तत्व होनेसे अपूर्वत्व है, उस अपूर्वत्वसे 'अथ संपत्स्यते' (छा० ६।१४।२) इत्याकारक फलश्रवणसे और 'येनाश्रुतं श्रुतं भवति' (छा० ६।१।२) इस अर्थवादसे और शकुनिसूत्रादिके दृष्टान्तोंसे उपपादन होनेसे षड्विधतात्पर्यके लिङ्ग भेदपर ही हैं यह कथन निरस्त हुआ, एतेन शब्दका अर्थ दिखलाते हैं 'एकमेवाद्वितीयम्' यहाँपर सम तथा अधिकके राहित्यमात्रसे भेदके उपक्रमत्वके अभावसे अभेदमेंभी उभयराहित्यका सम्भव होनेसे। एक विज्ञानसे सर्व विज्ञानकी प्रतिज्ञाविरोध (छा० ६।१।२) होनेसे, द्वितीयाभावमात्रको ही उपक्रम होनेसे, अतएव=उक्त प्रतिज्ञाविरोधसे ही अभ्यास तथा उपसंहार ये दोनोंभी भेदविषयक नहीं हैं; और अभेदमें जिस रीतिसे अपूर्वता है तैसे कहा गया है। और फल तथा अर्थवाद एवं उपपत्ति इन तीनोंका अभेदमें ही सम्भव होनेसेभी। तैसे उपासनाप्रकरणस्थित जो शाखान्तरीण अभेदवाक्य हैं उन्होंको उपासनापरत्व होनेपरभी अभेदपर वाक्योंके साथ विरोध नहीं है, इस प्रकरणमें खण्डय ग्रन्थानुसार 'आद्यखण्डे, द्वितोयखण्डे' इत्यादिनिर्देश आया है, परन्तु प्रस्तुतोपनिषत्के छट्ठे अध्यायके आद्यखण्डमें या द्वितीयादि खण्डोंमें वे श्रुतियाँ नहीं हैं जिन्होंका उल्लेख उक्त खण्डोंके नामसे किया गया है, अतः हमने छान्दोग्यानुसार खण्डोंके नामोंमें परिवर्त्तनकर दिया है उक्तोपनिषत्के छठे अध्यायमें षोडश खण्ड हैं, उन्होंका कोई अवान्तर विभाग मूलग्रन्थमें नहीं, अष्टम खण्डसे लेकर नव खण्डोंमें 'तत्त्वमसि' यह वाक्य आया है अतः जहाँसे तत्त्वमसि इसका उपदेश चला है वहाँसे ही आद्यद्वितीयखण्डादिकी कल्पनाकर यह पाठ-परम्परा चली है, फिरभी जिज्ञासुओंके भ्रमवारणार्थ यथालिखित क्रमसे हमनें खण्डोंका उल्लेख किया है।

इति सरलायां तत्त्वमसिवाक्यार्थनिरूपणम्॥

अथ अहंब्रह्मास्मीत्याद्यनेकश्रुतिस्मृत्यर्थकथनम्।

बृहदारण्यकस्थितस्य तु 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मी'ति वाक्यस्यानुपासनाप्रकरणस्थतया अभेदप्रमापकत्वमेव। नच तद्यो यो देवानां प्रत्यबुद्ध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणामिति भेदपरवाक्यविशेषविरोधः तत्रापि देवादिषु प्रबुद्धं पुरुषं निर्धार्य 'स एव तदभवदिति' ब्रह्माभेदपरत्वेन भेदपरत्वाभावात्। नच—अत्र वाक्ये ब्रह्मण एव प्रकृतत्वान्नानेन जीवब्रह्मैक्यसिद्धिरिति—शङ्क्यम्; यो देवानामिति जीवपरामर्शिवाक्यशेषानुसारेण ब्रह्मपदस्य कार्यब्रह्मपरत्वात्, शुद्धब्रह्मपरत्वे च बोधनिमित्तस्य तस्मात्तत्सर्वमभवदिति सार्वात्म्यलक्षणफलकीर्तनस्यायुक्तत्वापत्तेः। नच—'नाम ब्रह्मेत्युपासीतादित्यो ब्रह्मेत्यादेश' इत्यादाविति शब्दशिरस्कतया नामाद्यभेदाभावादत्रापीतिशब्दशिरस्कतया ब्रह्माभेदाभाव इति—शङ्क्यम् अनुपासनाप्रकरणस्थत्वेनाभे-

दाविवक्षाया नाम ब्रह्मेत्यादाविव वक्तुमशक्यत्वात्। नचेति शब्दवैयर्थ्यम्; आत्मेत्येवोपासीत इत्यादाविव शब्दज्ञानयोः स्वाभाविकसकर्मकत्वप्राप्तौ तन्निराकरणपरत्वेनोपयोगात्।

अथ सरलायामहंब्रह्मास्मीत्याद्यनेकश्रुतिस्मृत्यर्थकथनम्।

और बृहदारण्यकमें स्थित जो 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानमेवावेदहं ब्रह्मास्मि' (बृ० १।४।१०) इत्याकारक वाक्य है उस वाक्यको उपासनाप्रकरणस्थत्व न होनेसे अभेदका प्रमापकत्व ही है। नचेति। तद् यो यो देवानां प्रत्यबुद्ध्यत स एव तदभवत्तथर्षीणां तथा मनुष्याणाम् (बृ० १।४।१०) यह जो भेदपर वाक्यशेप है उसके साथ विरोध है; नच=विरोध नहीं है; क्यों? तत्रापि=उक्त वाक्यशेपमेंभी देवादिकोंमें तत्त्ववेदिता पुरुषका निर्धारणकर 'स एव तदभवत्' (बृ० १।४।१०) इस रीतिसे ब्रह्माभेदपरत्व होनेसे भेदपरत्वके अभावसे। नचेति। इस वाक्यमें ब्रह्मको ही प्रकृतत्व होनेसे इससे जीवब्रह्मके ऐक्यकी सिद्धि नहीं है; इति नच शङ्कयम्; क्यों? 'यो देवानाम्' इत्याकारक जो जीवपरामर्शिवाक्यशेप है उस वाक्यशेपानुसार ब्रह्मपदस्य=ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् एतद्घटक ब्रह्मपदको कार्य्यब्रह्मपरत्व होनेसे। और उक्त ब्रह्मपदको शुद्धब्रह्मपरत्व होनेपर तो बोधहेतुक जो 'तस्मात् तत्सर्वमभवत्' (बृ० १।४।१०) इत्याकारक सार्वात्म्यलक्षणफलकीर्त्तन है, उसके अयुक्तत्वकी आपत्ति है=शुद्धमें सार्वात्म्यलक्षणफल प्रथमसे ही है, बोधहेतुक नहीं अतः यहाँ ब्रह्मपद कार्य्यब्रह्मपर ही है। नचेति। 'नाम ब्रह्मेत्युपासीत' (छा० ७।१।५) 'आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः' (छा० ३।१९।१) इत्यादिमें इतिशब्द शिरस्कत्वेन जैसे ब्रह्मके साथ नामादिका अभेद नहीं है तैसे यहाँभी इति शब्दशिरस्कत्वेन ब्रह्मके साथ अभेदका अभाव है, इति नच शङ्कयम् क्यों? उपासनाप्रकरणस्थत्व न होनेसे अभेदकी अविवक्षाको नाम ब्रह्म इत्यादिकी तरह कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे इति शब्दका वैयर्थ्य है, नच=वैयर्थ्य नहीं है, क्यों? 'आत्मेत्येवोपासीत' (बृ० १।४।७) इत्यादिकी तरह शब्द तथा ज्ञान इन दोनोंमें स्वाभाविक सकर्मकत्वकी प्राप्ति होनेपर तन्निराकरण=सकर्मकत्वनिराकरणपरत्वेन उपयोग होनेसे=आत्मेत्येवोपासीत इस वाक्यमें उपासीत धातुरूपशब्दके प्रति, और उपासनात्मकज्ञानके प्रति आत्माको कर्मतावारण करनेके लिए 'इति' शब्द है वह भाष्यादिमें कहा है तैसे अहं ब्रह्मास्मीति यहाँपरभी अहं ब्रह्मास्मि इस शब्दके प्रति या एतच्छब्दजन्यज्ञानके प्रति ब्रह्मको कर्मतावारण करनेके लिए इति शब्द है।

यच्च—अहं शब्दो जीवान्तर्यामिणि मुख्यः अहं मनुरभवं सूर्यश्चेति (बृ० १।४।१०) अन्तर्यामिण्यहं शब्दप्रयोगात् सर्वान्तर्यामिको विष्णुः सर्वनाम्ना विधीयते एषोऽहं त्वमसौ चेति नतु सर्वस्वरूपतः॥ इति वचनाच्चेति; तन्न; शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववदिति न्यायेन वामदेवजीवचैतन्यस्य वस्तुतो ब्रह्माभेदेन सूर्यादिभावस्योक्ततया अन्तर्यामिपरत्वाभावात् 'तद्यो यो देवानां प्रत्यबुद्ध्यत स एव तदभवदिति' पूर्ववाक्ये तत्त्वबोधनिमित्तकब्रह्मभावस्य प्रकृततया पश्यन् प्रतिपेदे इत्यादेरपि बोधनिमित्तब्रह्मभावपरतया

अन्तर्यामिपरत्वाभावात् । स्मृतेरपि असाधारणतत्तदात्मनि शक्तेरावश्यकतया तत्सहचारेणान्तर्यामिणि एषोऽहमित्यादिप्रयोगः नतु सर्वस्वरूपत इति निषेधस्य तूपहितयोरैक्याभावनिबन्धत्वान्नविरोधः । अतएव विशिष्टचैतन्यरूपे वामदेवे विशिष्टचैतन्यरूपमनुसूर्यादिभावो न सम्भवतीति निरस्तम्; शास्त्रदृष्ट्या तूक्तत्वात् ।

यच्चेति । और जो कथन है कि—अहं शब्द जीवके अन्तर्यामीमें मुख्य है—अहं मनुरभवं सूर्यश्च (बृ० १।४।१०) यहाँपर अन्तर्यामीमें अहंशब्दका प्रयोग होनेसे और 'सर्वका अन्तर्यामी विष्णु है' वह यह मैं तू वह इत्यादि सर्वनामोंसे कहा जाता है स्वरूपतः सर्व नहीं है इस वचनसेभी; वह ठीक नहीं,—क्यों ? शास्त्रदृष्ट्यातूपदेशो वामदेववत् (वे० १।१।३०) इस न्यायसे वस्तुतः ब्रह्माभिन्न जो वामदेवनामधारी जीवचैतन्य है उसके सूर्यादिभावको उक्तत्व होनेसे उक्तवाक्यमें अन्तर्यामिपरत्वके अभावसे । और 'तद् यो यो देवानां प्रत्यबुद्धयत स एव तदभवत्' (बृ० १।४।१०) इस पूर्ववाक्यमें तत्त्वबोधनिमित्तक जो ब्रह्मभाव उस ब्रह्मभावको प्रकृतता होनेसे 'पश्यन् प्रतिदेदे' (बृ० १।४।१०) इत्यादिकोभी बोधनिमित्तकब्रह्मभावपरत्व होनेसे अन्तर्यामिपरत्वके अभावसे । और स्मृतिकाभी असाधारण जो तत्तदात्मा उस तत्तदात्मामें शक्तिको आवश्यकत्व होनेसे तत्सहचारेण=शक्तिसहचारसे अन्तर्यामीमें 'एषोऽहम्' इत्यादि प्रयोग है, और 'न स्वरूपतः' इस निषेधको अन्तर्यामित्व अहन्त्वादिरूप उपाधिओंसे उपहित जो चेतन हैं उन्होंका जो ऐक्याभाव तन्निबन्धत्व होनेसे विरोध नहीं है=स्मृतिका विरोध नहीं है इस रीतिसे व्यवहितके साथ सम्बन्ध है; अतएवेति । विशिष्टचैतन्यरूप जो वामदेव है उस वामदेवमें विशिष्टचैतन्यरूप जो मनुसूर्यादि तादृश मनुसूर्य्यादिका भाव नहीं बनसकता है, यह कथन खण्डित हुआ शास्त्रदृष्टिसे उक्तत्व होनेसे ।

नच—तर्हि शुद्धचित्यभवमित्युत्तमपुरुषायोगः; भूतपूर्वगत्या सम्भवात् । नच—अहं भूमिमददामार्यायेत्याद्ययोगः, नहि चिन्मात्रं भूमिदात्रिति—वाच्यम् ; उपहितचितमादाय तेषामुपपत्तेः । अहं नामाभवत्तस्योपनिषदहमित्यादेश्च तादृशोपासनापरत्वेन शक्तिनिर्णायकत्वाभावात् । तस्मान्नान्तर्याम्यभेदपरेयं श्रुतिः, अन्तर्यामिणि भेदाप्रसक्तेश्च नच नियम्यानन्त्यादिना प्रसक्तिः; एकस्मिन्नपि जीवे अनेकावयवनियामकत्वस्यैकस्मिन्नपि राजन्ये अनेकदेशनियामकत्वस्य च दर्शनात् । 'स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः ।' इत्यस्याऽपि नान्तर्याम्यैक्यपरता, ब्रह्मविदाप्नोति परमित्यादिना शुद्धस्य ब्रह्मणः प्रकृततया तस्मिन्नुपाधिकृतभेदस्य तात्त्विकत्वप्रसक्तौ तन्निराकरणार्थत्वेन ऐक्योपदेशोपपत्तेः । नचैवं छान्दोग्ये य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मीत्यत्र सह एवैनान् ब्रह्म गमयंतीत्यत्र भेदपरोत्तरवाक्यविरोधः, तस्य उपासनाप्रकरणस्थत्वेनाहंग्रहोपासनापरतया विरोधाभावात् ।

नचेति। तत्र शुद्धचैतन्यमें 'अभवम्' इस उत्तम पुरुषका, अयोग है, नच=अयोग नहीं है, क्यों? भूतपूर्वगत्या=बाधितानुवृत्तिसे सम्भव होनेसे। 'अहं भूमिमददामार्य्याय' (ऋ० ४।२६।२) इत्यादिका अयोग है—चिन्मात्र तो भूमिका दाता नहीं है, इति नच—वाच्यम्, क्यों? उपहित चितको लेकर भूमिदातृत्वादिकी उपपत्ति होनेसे। अहं नामाभवत् (बृ० १।४।१) तस्योपनिषदहम् (बृ०५।५।४) इत्यादिको तो तादृश उपासनापरत्व होनेसे शक्तिनिर्णायकत्वके अभावसे। फलतः अन्तर्यामिका जो अभेद तादृश अभेदपरा यह श्रुति नहीं है। और अन्तर्यामीमें भेदकी अप्रसक्तिसेभी। नचेति। नियम्य=नियममें रखनेके लायक जीव हैं, उन्होंके आनन्त्यादिसे अन्तर्य्यामीमें भेदकी प्रसक्ति है; नच=नहीं है, क्यों? एकजीवमेंभी अनेक जो अवयव उन्होंके नियामकत्वको देखनेसे, और एकराजन्यमें अनेक देशके नियामकत्वको देखनेसे। 'स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः' (तै० २।८।१) इसकोभी अन्तर्यामीका जो ऐक्य तत्परत्व नहीं है ब्रह्मविदाप्नोति परम् (तै० २।१।१) इत्यादिसे शुद्ध ब्रह्मको प्रकृतत्व होनेसे उस शुद्ध ब्रह्ममें उपाधिकृत भेदके तात्त्विकत्वकी प्रसक्ति होनेपर तादृश भेदनिराकरणार्थत्वेन ऐक्यके उपदेशकी उपपत्ति होनेसे। नचेति। ऐसा होनेपर छान्दोग्यमें 'य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि' (छा० ४।११।१) यहाँपर स एव एतान् ब्रह्म गमयति (छा० ५।१०।२) इत्याकारक जो यहाँपर भेदपर उत्तरवाक्य है उसके साथ विरोध है; नच=विरोध नहीं है, क्यों? तस्य=उस वाक्यको उपासनाप्रकरणस्थत्व होनेसे अहंग्रहोपासनापरत्वसे विरोधके अभावसे।

नच—उपासनाप्रकरणस्थितवाक्यबलादैक्यासिद्धावपि अनुपासनाप्रकरणस्थितादपि तदसिद्धिः शङ्क्या; अन्यशेषत्वस्य तस्य तत्प्रयोजकस्याभावात्, अथ योऽन्यां देवतामुपास्त इत्युत्तरवाक्यस्य भेदज्ञाननिन्दापरतया तदनुसारेण पूर्ववाक्यस्योपासनापरत्वायोगात् यत्तु ब्रह्मशब्दोऽत्र ब्राह्मणार्थ इति न परब्रह्मैक्यसिद्धिः; अन्यथा पूर्ववाक्ये आत्मानमेवावेदहमित्यनेनैव ब्रह्मेतिज्ञानस्य सिद्धत्वात् ब्रह्मास्मीतिव्यर्थम् इति—तन्न; आत्मशब्देन जीवचैतन्यमनूद्य बृंहितत्वाद्युपलक्षितब्रह्मचैतन्याभेदविधिपरत्वेन सार्थकत्वात्। तथाच स्मृतिः 'अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दन' इत्यादिकापि सङ्गच्छते। यत्तु अथ योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरित्यत्रान्तर्यामिभेदज्ञाननिन्दनमिति तन्न; अन्तर्यामिणोऽप्रकृतत्वात् पदद्वयलक्षणादेस्तात्पर्यानुरोधेन लभ्यत्वात्।

नचेति। उपासनाप्रकरणस्थितवाक्यके बलसे ऐक्यकी असिद्धि होनेपरभी अनुपासनाप्रकरणस्थितवाक्यसेभी ऐक्यकी असिद्धि शङ्क्य है, नच=शङ्क्य नहीं है, क्यों? तस्य=उपासनाप्रकणस्थितवाक्यनिष्ठ जो ऐक्यासिद्धिप्रयोजक अन्यशेषत्व है उस अन्यशेषत्वका अनुपासनाप्रकरणस्थित वाक्यमें अभाव होनेसे। अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते (बृ० १।४।१०) इस उत्तरवाक्यको भेदज्ञानकी जो निन्दा तादृश निन्दापरत्व होनेसे तदनुसार पूर्ववाक्यको उपासनापरत्वके अयोगसे। यत्त्विति। ब्रह्म शब्द यहाँपर बृंहणार्थ है, अतः ब्रह्मके साथ

ऐक्यकी सिद्धि नहीं है अन्यथा पूर्ववाक्यमें आत्मानमेवावेदहम् (बृ०।१।४।१०) इससे ही ब्रह्म इत्याकारकज्ञानको सिद्धत्व होनेसे 'ब्रह्मास्मि' यह व्यर्थ है, इति यत् तत् तु न; क्यों ? आत्मशब्दसे जीव चैतन्यका अनुवादकर बृंहितत्वादिसे उपलक्षित जो ब्रह्मचैतन्य तादृश ब्रह्मचैतन्यके साथ जो अभेद तादृश अभेदविधिपरत्वसे सार्थकत्व होनेसे तथाच 'अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनः' इत्यादि स्मृतिभी सङ्गत होती है। और जो कथन है कि–योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योसावन्योऽवहमस्मीति न स वेद यथा पशुः (बृ० १।४।१०) यहाँपर अन्तर्यामीके भेदज्ञानकी निन्दा है, वह ठीक नहीं, क्यों ? अन्तर्यामीको अप्रकृतत्व होनेसे। ननु अन्तर्यामीके भेदज्ञानकी निन्दा न मानोंगे तो अभेदके लिए दोनों पदोंमें लक्षणा माननी पडेगी एवमन्यभी दोष होंगे, तहाँ कहते हैं–पदद्वयकी लक्षणादिको तात्पर्यानुरोधसे लब्धत्व होनेसे।

यत्तु अत्र योऽन्यो जीवः अन्यां विलक्षणां देवतामुपास्ते अन्योऽसौ परमात्मा अहमस्मीति न स वेद यथा पशुरित्यर्थ इति तत्तुच्छम्; व्यवहितान्वयदोषात्। अहं शब्दसन्निहितान्य इत्यस्य य इत्यत्र नयनात्। नच–'यस्य येनार्थसम्बन्ध' इति न्यायेन सन्निधानाद्योग्यतायाः प्रबलत्वमिति शङ्क्यम्; यथा स्थितार्थसम्बन्धेऽप्युक्तक्रमेण योग्यतासत्त्वात् नचेयं श्रुतिः स्वातन्त्र्येणान्यसद्भावनिषेधिका; अन्यत्वप्रतियोगिनि स्वातन्त्र्योपस्थापकपदाभावात्। यत्तु कैश्चिदुपास्त इति श्रवणात् प्रयत्नसाध्यज्ञानविजातीयवृत्त्यन्तररूपोपासनाया एव निषेधः नतु ज्ञानस्येत्युक्तम्, तन्न 'तद्यो यो देवानां प्रत्यबुद्ध्यते'ति पूर्ववाक्ये न स वेदेति निन्दावाक्ये च वेदनस्यैव निर्देशात् मध्यस्थितोपास्तेरपि ज्ञानपरत्वात्।

यत्त्विति। यहाँपर जो अन्यः=जीव अन्याम्=विलक्षणदेवताकर्मक उपासना करता है, अन्य असौ=परमात्मा मैं हूँ, इत्याकारक वह ठीक नहीं जानता है, जैसे कि–पशु यह अर्थ है, इति यत् तत् तु तुच्छम्; क्यों ? व्यवहितके साथ जो अन्वय तद्रूप दोषसे; व्यवहितान्वयको दिखलाते हैं–अहं शब्दके संनिहित=अहं शब्दके अव्यवहित पूर्वमें पठित जो अन्य यह शब्द है उसका 'यः' इस पदके पासमें आनयन होनेसे। नचेति। यस्य येनार्थसम्बन्धो दूरस्थस्यापि तस्य सः। अर्थतो ह्यसमर्थानामानन्तर्य्यमकारणम्। इस न्यायसे सन्निधानसे योग्यताको प्रबलत्व होनेसे। न्यायदर्शनके प्रथमाध्यायके द्वितीयाह्निकके नवमसूत्रीयभाष्यमें इस न्यायका उल्लेख किया है, इति नच शङ्क्यम्। क्यों ? यथास्थितकाभी अर्थके साथ सम्बन्ध होनेमें उक्तक्रमसे योग्यताका सत्त्व होनेसे । यह श्रुति स्वातन्त्र्यसे अन्यकी निषेधिका है, नच=स्वातन्त्र्यसे अन्यकी निषेधिका नहीं है क्यों ? अन्यत्वप्रतियोगीमें स्वातन्त्र्येण उपस्थापकपदके अभावसे= यह श्रुति जीवमें स्वातन्त्र्यका निषेध करती है, जो जीव ऐसा समझता है कि–मैं परमात्मासे भिन्न स्वतन्त्र हूँ वह पशु है, इस द्वैतीके कथनका सिद्धान्तीने यह समाधान किया कि–त्वदुक्तार्थबोधक यहाँ कोई पद नहीं है अतः त्वदुक्तार्थ असङ्गत है। कैश्चिदिति। 'उपास्ते' इसका श्रवण होनेसे प्रयत्नसाध्य जो ज्ञान उस ज्ञानसे विजातीय जो वृत्त्यन्तररूपोपासना

तादृश उपासनाकाही निषेध है, ज्ञानका निषेध नहीं इति कैश्चित् उक्तम् तत्, न; क्यों 'तद् यो यो देवानां प्रत्यबुद्ध्यत' (बृ० १।४।१०) इस पूर्ववाक्यमें और 'न स वेद' इस निन्दा-वाक्यमें वेदनका ही निर्देश होनेसे मध्यस्थित उपासनाकोभी ज्ञानपरत्व होनेसे।

एवं मुण्डके 'स यो ह वै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' इत्येतदपि वाक्यमभेद-परमेव। नच—द्वितीयब्रह्मशब्दो जीवपर एव, तस्य जातिजीवकमलासनाद्यनेकार्थत्वात्, द्वे ब्रह्मणी इत्यादौ जीवे ब्रह्मशब्दप्रयोगसम्भवाच्च, यः परमं ब्रह्म वेद स जीव एव भवती नतु परमं ब्रह्मेत्यर्थः। अतएव आद्यो ब्रह्मशब्दः परमत्वेन विशेषित इति—वाच्यम्; जीवे ब्रह्मपदप्रयोगसम्भवेऽपि प्रकृते परब्रह्मोपादानमेवोचितम्। जीवभावस्याब्रह्मभावस्य च प्रागेव सिद्धतया ब्रह्मज्ञानसाध्यत्वाभावात्। एवञ्च अर्थाद्द्वितीयब्रह्मभवनमपि परमत्ववि-शेषितमेव यच्च ब्रह्मभवतीत्यस्य बृंहितत्वरूपब्रह्मत्वाक्रान्तो भवतीत्यर्थः सम्पूज्य ब्राह्मणं भक्त्या शूद्रोऽपि ब्राह्मणो भवेत्, इति वत्। नहि शूद्रोऽपि पूजितब्राह्मणव्यक्तिर्भवति, किन्तु ब्राह्मणत्वजात्याक्रान्त इति तन्न; पूर्वोक्तयुक्त्या प्रकृते व्यक्त्यभेदस्यैव सम्भवेन दृष्टान्तवैषम्यात्।

एवमिति। इसी रीतिसे मुण्डकमें जो 'स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति' (मुं० ३।२।९) इत्याकारक वाक्य है वहभी अभेदपर ही है। नचेति। द्वितीयब्रह्मशब्दः= ब्रह्मैव भवति एतद्घटक द्वितीय ब्रह्मशब्द जीवपर ही है; तस्य=ब्रह्मशब्दको जाति तथा जीव एवं कमलासन इत्यादिरूपानेकार्थत्व होनेसे। और द्वे ब्रह्मणी (मै० ६।२२) इत्यादिमें जीवमें ब्रह्मशब्दके प्रयोगके सम्भवसेभी फलतः उक्त मुण्डकवाक्यका यह अर्थ हुआ कि—जो परमब्रह्मको जानता है, वह जीव ही होता है, नकि,—परमब्रह्म; अतएव=द्वितीयब्रह्म शब्दको जीवपरत्व होनेसे ही आदिमब्रह्मशब्द परमत्वेन विशेषित है इति नच वाच्यम्; क्यों? जीवमें ब्रह्मपदके प्रयोगका सम्भव होनेपरभी प्रकृतवाक्यमें परब्रह्मका उपादान ही ब्रह्मपदसे युक्त है। और जीवमें जीवभावको तथा अब्रह्मभावको पूर्वमें ही सिद्धत्व होनेसे उसमें ब्रह्मज्ञानसाध्यत्वके अभावसे। एवञ्च, अर्थात् द्वितीयब्रह्मभवनभी परमत्वसे विशेषित ही है। यच्चेति। 'ब्रह्म भवति' इसका बृंहितत्वरूप जो ब्रह्मत्व उससे आक्रान्त होता है, यह अर्थ है, भक्तिसे ब्राह्मणका सम्पूजनकर शूद्रभी ब्राह्मण होता है (म० भा०) इसकी तरह; दृष्टान्तका स्पष्टीकरण करते हैं—शूद्रभी स्वपूजित जो ब्राह्मणव्यक्ति तद्रूप नहीं होता है, किन्तु ब्राह्मणत्व जातिसे आक्रान्त होता है इति यत् तत् च न; क्यों? पूर्वोक्त युक्तिसे प्रकृतमें व्यक्त्यभेदका ही सम्भव होनेसे दृष्टान्तके वैषम्यसे।

नच—अस्य महिमानमिति, वाक्यशेषात्तदीयमहत्त्वप्राप्तिरेव नतु तद्भाव इति युक्तम्; देहेन्द्रियादिप्रपञ्चविलक्षणं यो वेद, प्रपञ्चं तद्विभूतिं च यो वेद, स वीतशोको भवतीत्येवं परत्वात्। नच यथा नद्यः स्यन्दमाना, इति भिन्ननदीदृष्टान्तोक्तिरयुक्तेति

वाच्यम्; स्पष्टभेदविलयनमात्रपरत्वेन दृष्टान्तोपपत्तेरुक्तत्वात्। परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यमिति न देशान्तरस्थब्रह्मप्राप्त्युक्तिपरा; तस्याः सगुणोपासनाफलत्वेन ब्रह्मविद्याफलत्वासम्भवेन स्वरूपभूतब्रह्मप्राप्तिपरत्वात् नच—अद्वैतमते नित्यं ब्रह्मभूतस्यापूर्वब्रह्मभावोक्तिरयुक्तेति—वाच्यम्; कण्ठगतचामीकरादौ भ्रान्तिनिवृत्तिमात्रेण प्राप्तप्राप्तिरूपतया फलत्वदर्शनात्। न चारोपनिवृत्तेरशाब्दत्वम्; श्रुतार्थापत्तिगम्यतया शाब्दत्वोपपत्तेः। ब्रह्मैवसन् ब्रह्माप्येतीति श्रुतिरप्यैक्यपरा। नचात्र प्रथमब्रह्मपदस्य जीवपरत्वाभावे कर्तृकर्मभावविरोधः। साक्षात्कारप्राक्कालीनौपाधिकभेदमादाय तादृङ्निर्देशोपपत्तेः।

अस्य महिमानम् (श्वे० ४।७) इस वाक्यशेषसे ब्रह्मके महत्वकी ही प्राप्ति है ब्रह्मभावकी नहीं यह मानना युक्त है नच=युक्त नहीं है क्यों? देहेन्द्रियादिरूप जो प्रपञ्च उस प्रपञ्चसे विलक्षण ब्रह्मको जो जानता है, और प्रपञ्चको तथा तद्विभूतिको कल्पितत्वेन जानता है वह वीतशोक होता है एतदर्थपरत्व होनेसे नचेति। यथा नद्यः स्यन्दमानाः (मुं० ३।२।८) इत्याकारक जो भिन्न—नदीसमुद्रदृष्टान्तकी उक्ति है, वह अयुक्त होगी, नच=अयुक्त नहीं होगी, क्यों? स्पष्ट जो भेद तादृश भेदका जो विलयन तादृशविलयनमात्रपरत्वप्रयुक्त दृष्टान्तकी उपपत्तिको उक्तत्व होनेसे। और परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् (मुं० ३।२।८) यह श्रुति देशान्तरमें स्थित जो ब्रह्म तादृश ब्रह्मकी जो प्राप्ति तादृश प्राप्तिपरा नहीं है, क्यों? तस्याः=देशान्तरस्थितब्रह्मप्राप्तिको सगुणोपासनाका फलत्व होनेसे उसमें ब्रह्मविद्याफलत्वके असम्भवसे, उक्त वाक्यको स्वरूपभूत ब्रह्मप्राप्तिपरत्व होनेसे। नचेति। अद्वैत मतमें नित्यब्रह्मभूत जो जीव है उसको अपूर्व जो ब्रह्मभाव उसकी उक्ति अयुक्त है इति नच वाच्यम्; कण्ठगतविस्मृतचामीकरादिमें भ्रान्तिनिवृत्तिमात्रसे प्राप्तप्राप्तिरूपत्वप्रयुक्तफलत्वके देखनेसे। आरोपकी निवृत्तिको अशाब्दत्व है; नच=अशाब्दत्व नहीं है, क्यों? श्रुतार्थापत्तिगम्यत्वेन शाब्दत्वकी उपपत्ति होनेसे। ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति (बृ० ४।४।६) यह श्रुतिभी ऐक्यपरा है। अत्र=ब्रह्मैव सन् इत्यादिमें प्रथमब्रह्मपदको जीवपरत्व न होनेपर कर्तृकर्मभावका विरोध=एक ही पदार्थको प्राप्तिके प्रति कर्मता और कर्तृता नहीं बन सकती है, अतः विरोध है, नच=विरोध नहीं है, क्यों? साक्षात्कारसे प्राक्कालीन जो औपाधिक भेद है उस भेदको लेकर तादृशनिर्देशकी उपपत्ति होनेसे।

परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति इत्येतदपि मानम्। नच 'गावः सायं गोष्ठ एकीभवन्ति।' एकीभूताः नृपाः सर्वे ववर्षुः पाण्डवं शरैः। कीटो भ्रमरेणैकीभूत इति स्थानैक्यमतैक्यसादृश्यनिबन्धनैकीभावस्य गोनृपकीटभ्रमरादौ दर्शनात् अत्रापि तैरेव निमित्तैः गौण एकीभाव इति—वाच्यम्। मुख्यत्वे सम्भवति गौणत्वस्यायोगात्। ब्रह्मैक्यमात्रपरत्वेन सकृदुच्चरितस्य नानेकार्थपरत्वशङ्कापि। नच ऐक्यस्य प्रागेव सिद्धतया अभूततद्भावार्थच्विप्रत्ययायोगः स्वगृहनिक्षिप्ताज्ञातनिधिवत् सतोऽप्यावृतत्वेनाभूतसमतया च्विप्रत्ययोपपत्तेः। नच परेऽव्यय इति श्रुतसप्तमीहानिरश्रुततृतीयः कल्पनापत्तिश्चेति—वाच्यम्; श्रुत्यन्त-

रानुसारेण सप्तम्या अननुसरणीयत्वात्। नच परमं साम्यमुपैति, परात्परं पुरुषमुपैती, ति पूर्वोत्तरवाक्यविरोधः तस्य प्रागेव निरासात्।

परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति (मुं०।३।२।७) यहभी अभेदमें प्रमाण है। नचेति 'गावः सायं गोष्ठे एकी भवन्ति' यहाँपर स्थानैक्यप्रयुक्त एकीभावके देखनेसे, एकीभूताः नृपाः सर्वे ववर्षुः पाण्डवं शरैः। यहाँपर मतैक्यप्रयुक्त एकीभावके देखनेसे 'कीटो भ्रमरेण एकीभूतः' यहाँ सादृश्यप्रयुक्त एकीभाव देखनेसे, प्रकृतमेंभी उक्त निमित्तोंसे ही गौण एकीभाव है, इति नच वाच्यम् क्यों? जीवब्रह्मके ऐक्यमें मुख्यत्वका सम्भव होनेपर गौणत्वके अयोगसे ब्रह्मैक्यपरत्व होनेसे एकवार उच्चरितमें ऐक्यको प्रथम ही सिद्ध होनेसे अभूततद्भावार्थक जो एकीभवन्ति एतत्प्रविष्ट च्विप्रत्यय है, उसका अयोग है नच=अयोग नहीं है, क्यों? स्वगृह-निक्षिप्त अज्ञातनिधि जैसे अभूतसम होती है, तैसे सत्‌कोभी आवृतत्वप्रयुक्तअभूतसमत्व होनेसे च्विप्रत्ययकी उपपत्तिसे। नचेति। 'परेऽव्यये' इस रीतिसे श्रुत जो सप्तमी है उसकी हानि होगी और परेण अव्ययेन एकी भवन्ति इस रीतिसे तृतीयाकी कल्पना की आपत्ति है, इति नच वाच्यम् क्यों? अभेदबोधक श्रुत्यनुसार सप्तमीको अनुसरणीयत्व न होनेसे। नचेति। परमं साम्यमुपैति (मुं०।३।१।३) परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् (मुं०।३।२८) इन पूर्वोत्तर वाक्योंके साथ विरोध है, नच=विरोध नहीं है, क्यों? तस्य=उक्त विरोधका प्रागेव= इसी परिच्छेदमें पूर्व ही निरास होनेसे।

तथा—अन्तर्यामिप्रकरणस्थं 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टेति'वाक्यं अक्षरप्रकरणस्थं 'नान्यदतोऽस्ति द्रष्टेति'वाक्यं च ऐक्ये प्रमाणम्। नचात इत्यनेन प्रस्तुतं सर्वनियन्तारं परामृश्यान्यो द्रष्टा नास्तीत्युक्तेः स्वनियामकद्रष्ट्रन्तरनिषेध आयाति, न तु द्रष्टृसामान्य-निषेधः अस्मिन् ग्रामे अयमेव सर्वनियामको नान्यः पुरुषोऽस्तीत्यादावन्यशब्दस्य प्रस्तुतसदृशान्यपरतया व्युत्पन्नत्वात् समानमितरच्छयनेनेत्यत्र इतरशब्दस्य पूर्वनिर्दिष्ट-सदृशपरत्वोक्तेश्चेति—वाच्यम्; अनेन हि एतत् सर्वं वेदेति प्रतिज्ञातस्य एकविज्ञानेन सर्ववि-ज्ञानस्योपपादनार्थं अन्यत्वेन प्रतीतेन जीवेनाभेदबोधनात् अचेतनवर्गस्य अतोऽन्यदार्तं, नेति नेतीति निषेधाच्च जीवब्रह्माभेद एव वाक्यप्रमेयः। दृष्टान्ते तु अभेदस्याविवक्षित-त्वात् त्वदुक्तप्रकाराश्रयणे बाधकाभावात्।

तैसे अन्तर्यामिप्रकरणमें स्थित 'नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा' (बृ० ३।७।२३) यह वाक्य तथा अक्षरप्रकरमें स्थित 'नान्यदतोऽस्तिद्रष्टृ' (बृ० ३।८।११) यह वाक्य ऐक्यमें प्रमाण है। शङ्कते नचेति। 'अतः' इस पदसे प्रस्तुत जो सर्वनियन्ता है उसका परामर्शकर अन्य द्रष्टा नहीं है इस उक्तिसे स्वनियामक जो अन्य द्रष्टा उसका निषेध आता है द्रष्टृसामान्यका निषेध नहीं आता है—इस ग्राममें यही सर्वका नियामक है अन्य पुरुष नहीं है इत्यादिमें अन्यशब्दको प्रस्तुतके सदृश जो अन्य तादृशअन्यपरत्वेन व्युत्पन्नत्व होनेसे, और 'समानमितरच्छयेनेन'

(जै० ७।१।२) यहाँपर इतर शब्दको पूर्वनिर्दिष्टके जो सदृश तादृश सदृशपरत्वकी उक्तिसेभी इति नच वाच्यम्; क्यों ? 'अनेन हि एतत् सर्वं वेद' (बृ० १।४।७) इस रीतिसे प्रतिज्ञात जो एक विज्ञानसे सर्वविज्ञान है उस विज्ञानके उपपादनके लिए अन्यत्वेन प्रतीत जीवके साथ अभेदबोधनसे और अचेतनसमुदायका अतोऽन्यदार्त्तम् (बृ ०३।७।२३) नेति नेति (बृ० ३।९।२६) इत्यादि निषेधसे जीवब्रह्मका अभेद ही वाक्यका प्रमेय है। दृष्टान्ते तु= 'अस्मिन्ग्रामे अयमेव' इत्यादि दृष्टान्तमें अभेदको अविवक्षितत्व होनेसे त्वदुक्त प्रकारके आश्रयणमें बाधकके अभावसे।

न चात्राप्यन्तर्यामिवाक्ये य आत्मनोऽन्तरः यमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरं य आत्मानमन्तरो यमयति इति पूर्ववाक्येन एष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतः, अतोऽन्यदार्त्तमित्युत्तरवाक्ये च विरोधः तत्र परमात्मनोऽन्यं चेतनमङ्गीकृत्य तस्यार्तियुक्तत्वेनास्वातन्त्र्यस्यैवोक्तिरिति–वाच्यम्, पूर्ववाक्यस्यौपाधिकभेदमात्रेणोपपत्तेः। उत्तरवाक्येन न चेतनान्तरस्यार्तियोगो विधीयते किन्तु एषोऽन्तर्यामी ते आत्मेति जीवस्वरूपभूतादन्तर्यामिणो व्यतिरिक्तं सर्वं आर्तं विनश्वरमिति वा मिथ्येति वा बोधनान्नविरोधशङ्का अतएव अक्षरवाक्येऽपि 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः' इत्यादिपूर्ववाक्येन विरोध–इत्यपास्तम्।

नचेति। यहाँ अन्तर्यामिवाक्यमेंभी 'य आत्मनोऽन्तरः यमात्मा न वेद' (शत० १४, ५, ५, ३०;) इत्यादिरूप पूर्ववाक्यके साथ और 'एष ते आत्मा अन्तर्याम्यमृतः' (शत० १४।५।५।३०; बृ० ३।७।३) अतोऽन्यदार्त्तम (बृ०।३।७।२३) उस उत्तरवाक्यके साथ विरोध है–तत्र=उक्त वाक्यमें परमात्मासे अन्यचेतनका अङ्गीकारकर तस्य=उस परमात्मासे अन्यचेतनको आर्तियुक्तत्वेन=आर्तिप्रयुक्तत्वसे अस्वातन्त्र्यकी ही उक्ति है, इति नच वाच्यम् क्यों ? पूर्ववाक्यकी औपाधिक भेदमात्रसे उपपत्ति होनेसे, और उत्तरवाक्यसे चेतनान्तर= परमात्मभिन्न चेतनमें आर्तियोगः=दुःखयोग विहित नहीं होता है–किन्तु 'एषोऽन्तर्यामी ते आत्मा' इस जीवस्वरूप भूत जो अन्तर्यामी तादृश अन्तर्यामीसे व्यतिरिक्त सर्व आर्त्तम्= विनश्वर है, या मिथ्या है इस अर्थका बोधन होनेसे विरोधकी शङ्का नहीं है। अतएव= उक्तार्थव्यवस्थापनसे ही अक्षरवाक्यमेंभी 'एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः' (बृ०।३।८।९) इत्यादिरूप जो पूर्ववाक्य उसके साथ विरोध है यह कथनभी अपास्त हुआ।

किञ्च द्वितीयाद्वै भयं भवतीति भेदस्य भयहेतुत्वेन निन्दितत्वादप्यभेद एवोपनिषद्गम्यः। नच–अस्य विरोधिनः समानात् भयं भवतीत्येवार्थः; लोके तादृशादेव भयं भवतीति लोकसिद्धानुवादित्वात् पूर्वत्र 'तस्मादेकाकी बिभेति' उत्तरत्र 'तस्मादेकाकी न रमत' इति श्रवणाच्चेति–वाच्यम्। यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नु बिभेमीति तत एवास्य भयं

वीयायेति श्रुतेः। सामान्यतो द्वितीयमात्रदर्शनात् विशेषकल्पनायोगात् एकाकी बिभेतीति पूर्ववाक्ये परमार्थदर्शनरहितस्य तन्निमित्तभयसम्भवात् एकाकी बिभेतीत्युक्तम् । उत्तर-वाक्ये ' तस्मादेकाकी न रमते ' इत्यत्र इष्टसंयोगजन्यरतेरेकाकिन्यभावात् एकाकिनोर-तिर्नास्तीत्युक्तम् । ततश्चातत्त्वज्ञविषयोक्तवाक्यानुसारेण तत्त्वज्ञविषयमध्यवाक्यस्य स्वार्थ-समर्पणेनाप्युपयुक्तत्वात् तद्विरोध्यर्थपरत्वायोगात् एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवतीति भेदनिन्दयाप्यभेदसिद्धिः ।

किञ्चेति । ' द्वितीयाद्वै भयं भवति ' (बृ० १।४।२) इस रीतिसे भेदको भयहेतुत्वेन निन्दितत्व होनेसेभी अभेद ही उपनिषदोंसे गम्य है । नचेति । अस्य=इस जीवका विरोधि जो समान है तादृश समानसे भय होता है, यही उक्त श्रुतिका अर्थ है, लोकमें तादृशसे ही= विरोधी समानसे ही भय होता है, फलतः इस वाक्यको लोकसिद्धानुवादित्व होनेसे उक्तविध ही इसका अर्थ है और इस वाक्यसे पूर्वमें, ' तस्मादेकाकी बिभेति ' (बृ० १।४।२) इस श्रवणसे और इससे उत्तरमें ' तस्मादेकाकी न रमते ' (बृ० १।४।३) इस श्रवणसेभी; इति चेन्न; क्यों ? ' यन्मदन्यन्नास्ति कस्मान्नुबिभेमीति तत एवास्य भयं वीयाय ' (बृ० १।४।२) इस श्रुतिसे सामान्यतः द्वितीयमात्रके ही दर्शनको भयहेतुत्व होनेसे विशेषकल्पनायोगात्=विरोधि जो समान उससे भय होता है इत्याकारक विशेषकल्पनाके अयोगसे । और एकाकी बिभेति (बृ० १।४।२) इस पूर्ववाक्यमें परमार्थदर्शनसे रहित जो पुरुष है उसको तन्निमित्त=परमार्थ-दर्शनप्रतिबन्धकाविद्यानिमित्तक चिन्तादिरूपभयका सम्भव होनेसे एकाकी=विरोधि समानसे रहितभी एकाकी भीत होता है यह कहा है । और उत्तरवाक्यमें ' तस्मादेकाकी न रमते ' (बृ० १।४।३) यहाँपर इष्टके सम्बन्धसे जन्य जो रति है उस रतिका अकेलेमें अभाव होनेसे, एकाकीको रति नहीं है यह कहा है । फलतः अतत्त्वज्ञविषयक जो उक्त वाक्य है, तदनुसार तत्त्वज्ञविषयकमध्यमवाक्यको स्वार्थसमर्पणसेभी उपयुक्तत्व होनेसे तद्विरोधि=यथाश्रुतार्थविरोधि जो अर्थ तादृश अर्थपरत्वके अयोगसे एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते । अथ तस्य भयं भवति (तै० २।७) इस भेदनिन्दासेभी अभेदकी सिद्धि है ।

नच—एतस्मिन्निति श्रवणात् स्वगतभेदनिषेधोऽयम्, न भेदमात्रनिषेध इति—शङ्क्यम्; अल्पार्थकारशब्दस्वारस्यादप्यर्थकोत्पदस्वारस्यात्, एतस्य प्रतियोगित्वेनानु-ल्लेखाच्च, भेदमात्रनिषेधपरतया तद्विशेषनिषेधपरत्वकल्पनायोगात् । एवं एको देवः सर्वभूतेषु गूढः इत्यादिश्रुतिरात्मैक्ये प्रमाणम् । नच—अन्तर्याम्यैक्यपरेयं श्रुतिः ' यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते ' इत्यादाविव भूतशब्दस्य चेतनपरत्वादिति—वाच्यम्; दृष्टा-न्तासम्प्रतिपत्तेः; चेतनस्य जायमानत्वाद्ययोगात् भूतहिंसानिषेधवाक्य इव चेतनाधिष्ठित-प्राणशरीरादेव भूतशब्दवाच्यत्वात् । अतएव 'एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः' इत्यादिस्मृतिरपि । एवं यावन्मोहं तु भेदः स्यात् जीवस्य चपरस्य च । ततः परं न

भेदोऽस्ति भेदहेतोरभावतः ॥ विभेदजनकेऽज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते। 'आत्मनो ब्रह्मणो भेदमसन्तं कः करिष्यति ॥' इत्यादिस्मृत्या भेदस्याविद्यकत्वप्रतीतेरभेद एव तात्त्विक इति गम्यते नचात्र भेदशब्दो मित्रभेद इत्यादाविव वैमत्यार्थः, तथासति लक्षणापत्तेः अन्योन्याभावादेरेव मुख्यत्वात् श्रुतार्थत्यागस्यान्याय्यत्वात् ।

नचेति । 'एतस्मिन्' इस सप्तम्यन्तके श्रवणसे यह उक्त श्रुतिमें निषिद्धभेद स्वगतभेद है, भेदमात्रका निषेध नहीं है, इति नच शङ्क्यम्; क्यों ? उक्त श्रुतिमें अल्पार्थक जो 'अर' शब्द है उसके स्वारस्यसे और अप्यर्थक जो 'उत्' शब्द है उसके स्वारस्यसे और एतस्य= एतत्पदार्थका प्रतियोगित्वेन उल्लेख न होनेसे भेदमात्रनिषेधपरत्व होनेसे तद्विशेष=भेदविशेष= स्वगतभेदका जो निषेध तादृश निषेधपरत्वकी कल्पनाके अयोगसे=अरम्=अल्प उत्=भी अन्तरम्=भेदको कुरुते=जानता है, यदि तो उसको भय होता है इत्यर्थक उक्त श्रुतिसे भेद-सामान्यकी निन्दा है, न कि स्वगतभेदकी ही । इसी रीतिसे एको देवः सर्वभूतेषु गूढः (श्वे० ६।११) इत्यादि श्रुतिभी प्रस्तुत ऐक्यमें प्रमाण है । नचेति । यह श्रुति अन्तर्यामीका जो ऐक्य तादृश ऐक्यपरा है 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' (तै० ३।१।१) इत्यादिकी तरह भूतशब्दको चेतनपरत्व होनेसे इति नच वाच्यम्, क्यों ? दृष्टान्तमें सम्मति न होनेसे– चेतनमें जायमानत्व तथा जीवनत्वादिका अयोग होनेसे भूतहिंसानिषेधवाक्ये इव=मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि । यहाँपर जैसे भूतशब्द चेतनसे अधिष्ठित प्राणशरीरादिपर है, तैसे ऐको देवः सर्वभूतेषु गूढः (श्वे०६।११) यहाँपरभी चेतनाधिष्ठितप्राणशरीरादिको भूतशब्दवाच्यत्व होनेसे । अतएव=व्यवस्थापितार्थक श्रुतिकी अनुसारिणी होनेसे ही 'एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्' यह स्मृति भी ऐक्यमें प्रमाण है । इस रीतिसे जबतक अज्ञान है तबतक जीव तथा परमात्माका भेद है ततः=अज्ञाननाशके बाद भेद नहीं रहता है, भेदका हेतु जो अज्ञान उसके अभावसे । भेदजनक अज्ञानके आत्यन्तिक नष्ट होनेपर आत्मा और परमात्मा इन दोनोंके मिथ्या भेदको फिर कौन करेगा, इत्यादि स्मृतिसे भेदके आविद्यकत्वकी प्रतीति होनेसे तात्त्विक अभेद ही अवगत होता है । नचेति । अत्र=उक्तस्मृतिमें भेदशब्द 'मित्रभेद' इत्यादिवत् वैमत्यार्थक है=मित्रभेद यहाँपर जैसे भेद-शब्दका विरुद्धमतित्वरूप वैमत्य अर्थ है तैसे उक्त स्मृतिमेंभी भेदशब्दका वैमत्य अर्थ है; नच= वैमत्यरूप अर्थ नहीं हो सकता है, क्यों ? लक्षणाकी आपत्तिसे अन्योन्याभावादिको ही भेदशब्दका मुख्यार्थत्व होनेसे=वैमत्यत्व=विरुद्धमतित्वरूप है उसकी अपेक्षा लाघवतः अन्यो-न्याभावत्वरूप अखण्डधर्मको ही भिदिधातुशक्यतावच्छेदकत्व मानना उचित है यह भाव है । और यथाश्रुतार्थके त्यागको अन्याय्यत्व होनेसे='घटवान् पटवतो भिन्नः' इत्यादिस्थलमें विलक्षणार्थभिदिधातुके शक्यतावच्छेदक घटवत्त्वादिक हैं, उन्होंका आदिपदसे ग्रहण है ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत । इत्यादिस्मृतिरप्यत्र मानम् । नच–क्षेत्रज्ञं सर्वज्ञं मां सर्वक्षेत्रेषु विद्धीत्यर्थः 'महाभूतान्यहङ्कार' इत्याद्युक्त्या एतत्क्षेत्रं समासेन

सविकारमुदाहृतम्, इत्यनेन ' यस्य पृथिवी शरीर'मित्यादिश्रुत्येश्वरशरीरतयोक्तं चेतनाचेतनात्मकं सर्वं क्षेत्रमित्युक्तत्वादिति–वाच्यम्; सर्वनियामकतया सकलक्षेत्रसम्बन्धस्य प्रागेव सिद्धेः पौनरुक्त्यापत्तेः; तत्तत्क्षेत्राधिष्ठातृत्वेन क्षेत्रज्ञपदवाच्यजीवाभेदपरत्वस्यैवोचितत्वात् । अतएव ' क्षेत्राणि च शरीराणि बीजानि च शुभाशुभे । श्रुतात्ति येति योगात्मा ततः क्षेत्रज्ञ उच्यते । प्रकृतेश्च विकाराणां द्रष्टारमगुणात्मकम् । क्षेत्रज्ञमाहुर्जीवं तु कर्त्तारं गुणसंवृतम् ॥ ' इत्यादिस्मृतौ क्षेत्रज्ञशब्दस्य सर्वान्तर्यामिसर्वज्ञपरत्वेऽपि प्रकृते तदसम्भवः; जीवे सुप्रसिद्धत्वाच्च । नच शास्त्रस्था वेति न्यायः; तस्य एकतराशास्त्रीयविषयत्वात्; एवमन्यान्यपि वाक्यानि यथासम्भवमैक्ये योज्यानि । तस्मादागम ऐक्ये मानम् ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ अहंब्रह्मास्मीत्याद्यनेकश्रुतिस्मृत्यर्थकथनम् ॥

हे भारत सर्वक्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञभी मुझको समझ । (गी० १३।२) इत्यादि स्मृतिभी ऐक्यमें प्रमाण है । नचेति । क्षेत्रज्ञं=सर्वज्ञ मुझको सर्वक्षेत्रोंमें जान यह अर्थ है–महाभूतान्यहङ्कारः (गी० १३।५) इत्यादि कहकर 'एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम्' (गी० १३।६) इससे; यस्य पृथिवी शरीरम् (बृ० ३।७।७) इत्यादिश्रुतिसे ईश्वरशरीरत्वेन उक्त जो चेतनाचेतनात्मक सर्व है वह सर्व 'क्षेत्रम्' क्षेत्र है इस रीतिसे उक्तत्व होनेसे । इति नच वाच्यम्; क्यों ? सर्वनियामकत्वेन सकल क्षेत्रोंके साथ सम्बन्धको पूर्वमें ही सिद्धत्व होनेसे पुनरुक्तिकी आपत्तिसे । और तत्तत्क्षेत्राधिष्ठातृत्वेन क्षेत्रज्ञपदवाच्य जो जीव हैं तादृश जीवोंका जो अभेद तादृश अभेदपरत्वको ही उचितत्व होनेसे, अतएवेति । शरीररूप क्षेत्र और शास्त्रप्रतिपाद्य शुभाशुभकर्मरूप बीज इन्होंको यतः योगात्मा जानता है ततः क्षेत्रज्ञ कहा जाता है, प्रकृतिके विकारोंका द्रष्टा ऐसा जो अगुणात्मक परमात्मा है उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं, और गुणयुक्त कर्त्ताको जीव कहते हैं 'महाभारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म' इत्यादि स्मृतिमें क्षेत्रज्ञ शब्दको सर्वान्तर्य्यामि जो सर्वज्ञ तादृश सर्वज्ञत्वपरत्व होनेपरभी प्रकृते=क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि (गी० १३।२) इस गीतावाक्यमें क्षेत्रज्ञपदसे सर्वज्ञके ग्रहणका असम्भव है । और क्षेत्रज्ञ शब्दको जीवमें सुप्रसिद्धत्व होनेसेभी । शास्त्रस्था वा तन्निमित्तत्वात् (जै० १।३।९) यह न्याय यहाँपर है= इस न्यायसे जैसे आर्य्यशास्त्रमें प्रसिद्ध यवादि पदोंके दीर्घशूकादिरूप ही अर्थ लिए जाते हैं म्लेच्छप्रसिद्धिसे प्रियंग्वादिरूप नहीं तैसे उक्त मोक्षधर्मसे प्रसिद्ध क्षेत्रज्ञ शब्दका अर्थ सर्वज्ञ ही लेना चाहिए, न कि जीव; नच=यह न्याय यहाँ नहीं लग सकता है, क्यों ? तस्य=उक्त न्यायको एकतराशास्त्रीयविषयत्व होनेसे=जहाँ दो अर्थोंमें एक अर्थ अशास्त्रीय=आर्य्यशास्त्रीय न हो वहाँपर यह न्याय प्रवृत्त होता है, और जहाँपर दोनों अर्थ आर्य्यशास्त्रीय हों यहाँपर यह न्याय नहीं प्रवृत्त होता है और प्रकृतमें तो जीव तथा ईश्वर ये दोनों ही क्षेत्रज्ञपदके अर्थ आर्य्यशास्त्रतः सिद्ध हैं अतः यहाँ इस न्यायको अवकाश नहीं है । इसी रीतिसे अन्यवाक्यभी यथासम्भव ऐक्यमें योजनीय हैं । फलतः आगम ऐक्यमें प्रमाण है ॥

इति सरलायामहंब्रह्मास्मीत्याद्यनेकश्रुतिस्मृत्यर्थकथनम् ॥

अथ जीवब्रह्माभेदानुमानम्।

एवमनुमानमपि तत्र मानम्। जीवाः परमात्मनस्तत्त्वतो न भिद्यन्ते; आत्मत्वात्; परमात्मवत्। ननु—आत्मत्वं जातिरत्र हेतुः; तथा चाभेदे हेतूच्छित्तिरेव प्रतिकूलतर्क इति—चेन्न; तत्त्वतोऽभेदेऽपि व्यावहारिकभेदेनैव व्यावहारिकजातेरनुच्छेदोपपत्तेः। ज्ञातृत्वादित्यप्यत्र हेतुः जीवे उपधेये अन्तःकरणोपहितवृत्तेस्तस्यासिद्धेरभावात्। व्यवहारे स्वभिन्नज्ञानानपेक्षत्वं हेतुः। तत्रापि जीवस्य स्वाभिन्ननित्यज्ञानस्याबाध्यव्यवहारविषयत्वात्। अबाध्यत्वमप्यत्र हेतुः। नच—जडे व्यभिचारः तत्र बाध्यत्वेन हेतोरभावात्; तात्त्विकभेदस्य सर्वत्रासत्त्वेन व्यभिचारानवकाशात्। नच—एवं व्यावहारिकभेदव्यतिरेकोऽप्येवमेव साध्यतां जीवपरमात्मनोरिति वाच्यम्, तत्र प्रत्यक्षविरोधस्यैव बाधकत्वात् श्रुत्यनुग्रहाद्याभाससाम्यापादनाप्रयोजकत्वानवकाशात्।

अथ सरलायां जीवब्रह्माभेदानुमानम्।

एवम्=जैसे आगम जीवब्रह्मैक्यमें प्रमाण है, तैसे अनुमानभी जीवब्रह्मैक्यमें प्रमाण है। अनुमान दिखलाते हैं, जीव, परमात्मासे तत्त्वतः भिन्न नहीं है, आत्मत्व होनेसे परमात्मवत्। शङ्कते नन्विति। आत्मत्वरूप जाति इस अनुमानमें हेतु है, तथाच अभेद होनेपर एकव्यक्तिवृत्तिधर्मो न जातिः। इस नियमके अनुसार हेतुका उच्छेद ही इस अनुमानमें प्रतिकूल तर्क है, इति चेन्न क्यों ? तत्त्वतः अभेद होनेपरभी व्यावहारिक भेदसेही व्यावहारिक जातिके अनुच्छेदकी उपपत्तिसे। ज्ञातृत्वात् यहभी उक्तस्थलमें हेतु है। शङ्का आत्मामें ज्ञातृत्व आपके मतमें नहीं है अतः यह हेतु असिद्ध है,समाधान=उपधेयरूपजीवमें—अन्तःकरणोपहितमें वृत्ति होनेसे तस्य=ज्ञातृत्वकी असिद्धिके अभावसे=अन्तःकरणोपहितमें ज्ञातृत्वके सद्भावसे सर्वथा असिद्धि नहीं है। और व्यवहारमें स्वभिन्नज्ञानानपेक्षत्वभी ऐक्यसाधक हेतु है। और तुम्हारे मतमेंभी स्वाभिन्ननित्यज्ञानाभिन्न जो जीव है उस जीवको अबाध्यव्यवहारविषयत्व होनेसे अबाध्यत्वभी ऐक्यमें हेतु है=स्वाभिन्ननित्यज्ञानस्य इसका अर्थ यह है कि—स्वाभिन्नं साक्षिरूपं नित्यज्ञानं यस्य सः=स्वाभिन्ननित्यज्ञानः तादृशस्य प्रकृत द्वैतीके मतमें धर्मीके रहते हुए जिस धर्मका उत्पादन और नाश होता हो उस धर्मसे अन्य जो धर्म है, तादृश धर्मका धर्मीके साथ अभेद है, और भेदप्रतिनिधिविशेष पदार्थसे धर्मधर्मिभाव है ऐसा स्वीकार है, अतः साक्षी और जीव इन दोनोंका अभेद है। जडमें व्यभिचार है=अबाध्यत्व जडमें है परन्तु ऐक्यरूप साध्य नहीं है अतः व्यभिचार है नच=व्यभिचार नहीं है, क्यों ? तत्र=जडमें बाध्यत्व होनेसे अबाध्यत्वरूप हेतुके अभावसे। और तात्त्विक भेदका सर्वत्र असत्व होनेसे व्यभिचारके अनवकाशसे। शङ्कते नचेति। ऐक्य होनेपर जीवपरमात्माका जो व्यावहारिक भेद है, उसका अभावभी इसी प्रकारसे सिद्ध किया जाय, इति नच वाच्यम्, क्यों ? तत्र=जीवपरमात्माके व्यावहारिकभेदाभावके सिद्ध

करनेमें प्रत्यक्षके विरोधको ही बाधकत्व होनेसे। और श्रुतिका अनुग्रह होनेसे आभाससाम्यके आपादनको और अप्रयोजकत्वको अनवकाश होनेसे।

अतएव विमता जीवाश्चैत्रात् तत्त्वतो न भिद्यन्ते, जीवत्वात् चैत्रवदिति जीवैक्ये, विमता जीवा वस्तुतो ब्रह्मणो न भिद्यन्ते वस्तुत्वात्, ब्रह्मवदिति ब्रह्मजीवैक्ये च यदनुमानं तत्र व्यवहारतोऽपि न भिद्यन्त इत्यप्येवं साध्यतामित्याभाससाम्यम्—अपास्तम्। एवं विमतानि शरीराणि, चैत्राधिष्ठितानि, शरीरत्वात्, संमतवत्। नच—एतावता न जीवैक्यासिद्धिः चैत्राधिष्ठितत्वेऽपि अन्याधिष्ठितत्वसम्भवात्, चैत्रमात्राधिष्ठितत्वे तु अन्तर्याम्यधिष्ठितत्वेन दृष्टान्ते साध्यवैकल्यापत्तिरिति—वाच्यम्, चैत्रमात्रसंसार्यधिष्ठितत्वस्य साध्यत्वात्। चैत्रमात्रभोगायतनानीति वा साध्यम् नच भोक्तृत्वमन्तःकरणविशिष्टस्य; तच्च प्रति शरीरं भिन्नम्, यच्चैकं शुद्धचैतन्यं तन्न भोक्तिति बाध इति—वाच्यम्; भोक्तृत्वस्य विशिष्टवृत्तित्वेऽपि विशेष्यवृत्तित्वानपायात्। नचैवं विमतानि शरीराणि चैत्रमनसैव युक्तानीत्याभाससाम्यम्, मनसोऽप्यैक्ये व्यवस्थायाः सर्वथानुपपत्तेः श्रुत्यनुग्रहानुग्रहाभ्यां विशेषाच्च दृष्टिसृष्टिपक्षे तदभ्युपगमाच्च।

अतएव=प्रत्यक्षविरोधको बाधकत्व होनेसे ही, विमत जीव, चैत्रसे तत्त्वतः भिन्न नहीं है, जीवत्व होनेसे चैत्रवत्, इस रीतिसे जीवैक्यमें, विमत जीव, तत्त्वतः ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, वस्तुत्व होनेसे ब्रह्मवत्; इस रीतिसे ब्रह्मजीवैक्यमें जो अनुमान है, तत्र=उस अनुमानमें व्यवहारसेभी भिन्न नहीं हैं, यह साध्य किया जाय, इस रीतिसे आभाससाम्य अपास्त हुआ= विमता जीवाः, चैत्रात् तत्त्वतो न भिद्यन्ते वस्तुत्वात् चैत्रवत्, विमता जीवाः, वस्तुतः ब्रह्मणो न भिद्यन्ते वस्तुत्वात् ब्रह्मवत् इन दोनों अनुमानों पक्ष हेतु दृष्टान्तको तदवस्थ रखकर साध्यकी जगहमें 'व्यवहारतोऽपि न भिद्यन्ते' को जोड देनेसे दो अनुमानाभास तैयार हो जाते हैं, उन्होंका साम्य उक्त दो अनुमानोंमे प्रसक्त था, वहभी प्रत्यक्षविरोधको बाधकत्व होनेसे अपास्त हुआ=प्रत्यक्षका विरोध होनेसे अन्त्य दोनों अनुमान अनुमानाभास हैं प्रथमके दोनों अनुमानोंमें प्रत्यक्षका विरोध नहीं है, और श्रुतिका अनुग्रह है अतः साम्य नहीं। अनुमानान्तर दिखलाते हैं—एवमिति। विमत शरीर, चैत्रसे अधिष्ठित हैं शरीरत्व होनेसे सम्मतवत्। नचेति। इतनेसे जीवके ऐक्यकी सिद्धि नहीं है, चैत्रसे अधिष्ठित होनेपरभी अन्यसे अधिष्ठितत्वका सम्भव होनेसे और चैत्रमात्रसे अधिष्ठितत्वको विवक्षित होनेपर तो अन्तर्यामीसे अधिष्ठितत्व होनेसे दृष्टान्तमें साध्यके अभावकी आपत्ति है, इति नच वाच्यम्; क्यों? चैत्रमात्र जो संसारी तादृश संसारीसे अधिष्ठितत्वको साध्यत्व होनेसे। अथवा, 'चैत्रमात्रभोगायतनानि' यह साध्य है। नचेति। भोक्तृत्व अन्तःकरणविशिष्टको है, तच्च=और वह विशिष्ट तो शरीर शरीरके प्रति भिन्न है, और जो एक शुद्ध चैतन्य है वह तो भोक्ता नहीं है, तथाच बाध है, इति नच वाच्यम्, क्यों? भोक्तृत्वको विशिष्टमें वृत्तित्व होनेपरभी उसमें विशेष्यवृत्तित्वके अनपायसे। नचेति। ऐसा होनेपर विमत शरीर, चैत्रीयमनसे ही युक्त है, शरीरत्व होनेसे

चैत्रीयत्वेन सम्मतशरीरवत् इत्याकारक जो आभास उसका साम्य है; नच=आभाससाम्य नहीं है; क्यों ? मनकाभी ऐक्य होनेपर व्यवस्थाकी सर्वथा अनुपपत्ति होनेसे, और श्रुत्यनुग्रहसे दोनोंमें विशेष होनेसेभी=आत्मैक्यसाधकानुमानमें श्रुतिका आनुकूल्य है, और मन–ऐक्यसाधकानुमानमें श्रुतिका आनुकूल्य नहीं है, यह विशेष है, और दृष्टिसृष्टिपक्षमें मनके ऐक्यके अभ्युपगमसेभी।

आत्मा, द्रव्यत्वापरजात्या नाना न, विभुत्वात् आकाशवत् नच–प्रतिकल्पमाकाशस्य भेदेन साध्यवैकल्यं परिच्छिन्नत्वेन साधकवैकल्यंचात्मत्वस्य परमाणुत्वादिवदजातित्वेऽपि आत्मभेदसिद्ध्या चार्थान्तरमिति–वाच्यम्; आत्मत्वाधिकरणं, द्रव्यत्वापरजात्यैककाले नाना न, समानकालीनमूर्त्तमात्रसंयुक्तत्वात्, गगनवदित्यत्र तात्पर्यात्। पक्षविशेषणमहिम्ना च नार्थान्तरम्। विमतो भेदः मिथ्या, एकस्यां दिशि कल्पितो वा, भेदत्वात्, दृश्यत्वाद्वा चन्द्रभेदवत्, एकस्यां दिशि क्षणिकत्वादिकल्पितभेदवद्वा। मिथ्यात्वं प्रागुक्तमेव नच कल्पितसाधारणभेदत्वासिद्धिः; भेदे अकल्पितत्वस्यैवासिद्धेः। अतएव चन्द्रस्य कल्पितद्वितीयचन्द्रात् भेदस्य सत्यत्वेन दृष्टान्ते साध्यवैकल्यम्; मुक्तेः संसारात् ब्रह्मणो अनृतात् भेदे च व्यभिचार इति–निरस्तम्; नचैवमभेदो मिथ्या, अभेदत्वात्, देहात्माभेदवदित्यादिसुसाधम्; शून्यवादापत्तेरुक्तत्वात्। एवं विमता भेदधीः मिथ्या भेदधीत्वाच्चन्द्रभेदधीवत्। नच ब्रह्मानृतभेदप्रतीत्यादौ व्यभिचारः तासामपि पक्षसमत्वात्। आभाससाम्यस्य तात्त्विकत्वे प्रत्येतव्यत्वानुपपत्त्यैव निरासः।

आत्मा द्रव्यत्वव्याप्यजातिसे नाना नहीं है विभुत्व होनेसे, आकाशवत्। नचेति। कल्पकल्पके प्रति आकाशका भेद होनेसे, आकाशमें साध्यका अभाव है, और आकाशमें परिच्छिन्नत्व होनेसे तद्विरुद्धविभुत्वरूप जो साधन उसकाभी अभाव है, और आत्मत्वको परमाणुत्वादिवत् जातित्व न होनेपरभी=जैसे परमाणुत्व जाति नहीं है, तैसे आत्मत्वको जातित्व न होनेपरभी आत्मभेदकी सिद्धिसे अर्थान्तरभी है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? आत्मत्वका अधिकरण, द्रव्यत्वव्याप्यजातिसे एककालमें नाना नहीं है, समानकालीन जो मूर्त्तमात्र तत्संयुक्तत्व होनेसे आकाशवत्, अत्र=इस अनुमानमें तात्पर्य होनेसे। और पक्षविशेषणमहिम्ना=आत्मत्व जात्यधिकरणत्वरूप जो पक्षमें विशेषण है, उसकी महिमासे अर्थान्तरभी नहीं है। विमत भेद, मिथ्या है, या एक दिशामें कल्पित है, भेदत्व होनेसे या दृश्यत्व होनेसे, चन्द्रभेदवत् अथवा एकदिशामें क्षणिकत्वादिकल्पितभेदवत्। और मिथ्यात्व तो पूर्वमें कहा ही है। नचेति। कल्पित तथा अकल्पित एतदुभयसाधारणभेदत्वकी असिद्धि है; नच=असिद्धि नहीं है; क्यों ? भेदमें अकल्पितत्वकी ही असिद्धि होनेसे। अतएव=भेदमें अकल्पितत्वकी असिद्धिसे ही, चन्द्रनिष्ठ कल्पितद्वितीयचन्द्रके भेदको सत्यत्व होनेसे दृष्टान्तमें साध्यवैकल्य है, और संसारसे जो मुक्तिमें भेद है–उस भेदमें और अनृतसे जो ब्रह्ममें भेद है उस भेदमें व्यभिचार है, यह

कथन खण्डित हुआ। नचेति। ऐसा होनेपर अभेद, मिथ्या है, अभेदत्व होनेसे, देहात्माभेदवत, इत्यादिभी सुसाध है, नच=सुसाध नहीं है, क्यों? शून्यवादकी आपत्तिको उक्तत्व होनेसे। इसी रीतिसे विमत भेदधी, मिथ्या है, भेदधीत्व होनेसे चन्द्रभेदधीवत् ब्रह्म और अनृतका जो भेद तादृशभेदविषयक प्रतीत्यादिमें व्यभिचार है, नच=व्यभिचार नहीं है, क्यों? उन्होंकोभी पक्षसमत्व होनेसे। और आभाससाम्यके तात्त्विकत्वे=तात्त्विकत्वका स्वीकार होनेपर प्रत्येतव्यत्वानुपपत्त्या=दृश्यत्वकी अनुपपत्तिसे ही आभाससाम्यका निरास है।

अतएव—' विमतं तात्त्विकस्वान्तर्भेदशून्यं महत्त्वतः ' यदेवं तत्तथा यद्वा खं तथेदं यतस्तथा ॥ ' इत्यत्र गगनस्य सावयवत्वेन न साध्यवैकल्यम्; स्वान्तःपदेन स्वावयवातिरिक्तस्योक्तेः। ' एवं संवित् स्वान्तर्गणिकस्वाभाविकभेदहीना, उपाधिमन्तरेणाविभाव्यमानभेदत्वात्, गगनवत्, नच साध्यवैकल्यम्; नैयायिकदिशा दृष्टान्तत्वोक्तेः। नच—इच्छादेरपि घटपटाद्युपाधिभेदेन विभाव्यमानभेदतया व्यभिचारस्तेष्विति—वाच्यम्;। इच्छादीनामेकान्तःकरणपरिणामत्वेन तत्रापि साध्यसत्वात् विमतो अव्याप्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताको भेदः स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगी, भेदत्वात् संयुक्तभेदवत्, विमतो, भेदः, केवलान्वय्यत्यन्ताभावप्रतियोगी, पदार्थत्वात्, नित्यद्रव्यवत्।

अतएवेति। विमतम्=आत्मत्वाधिकरण, तात्त्विक स्वान्तर्गणिक=तात्त्विकस्वप्रतियोगिक भेद शून्य है, महत्त्वतः=उक्त विभुत्व-होनेसे, यदेवम्=जो उक्त विभुत्ववाला है तत्=वह तथा=तात्त्विकस्वप्रतियोगिकभेदशून्य है, यद्वत्=जैसे खम्=आकाश तथेदम्=तैसे उक्त विभुत्ववाला यह आत्मत्वाधिकरण है ततः=उक्तविभुत्ववाला होनेसे तथा=स्वप्रतियोगिकतात्त्विकभेदशून्य है, इत्यत्र=इस अनुमानमें गगनको सावयत्व होनेसे साध्यका वैकल्य नहीं है—स्वान्तः पदसे स्वावयवसे अतिरिक्तकी उक्ति होनेसे। इसी रीतिसे—संवित् स्वान्तर्गणिक=स्वप्रतियोगिकस्वाभाविकभेदसे हीन है, उपाधिके विना अविभाव्यमानभेदत्व होनेसे। गगनवत्। साध्यवैकल्यम्=प्रतिकल्प आकाशका भेद होनेपर दृष्टान्तमें साध्यका आभाव है नच=दृष्टान्तमें साध्यका वैकल्य नहीं है, क्यों? नैयायिकके मतसे दृष्टान्तत्व होनेसे=तार्किकमतमें आकाश एक नित्य और विभु है, अतः तदीयमतसे आकाश दृष्टान्त है। शङ्कते नचेति। इत्यादेरपि=इच्छाप्रयत्नादिमें घटपटादिरूपोपाधिभेदसे विभाव्यमानभेदत्व होनेसे और उपाधिओंके विना अविभाव्यमानभेदत्व होनेसे तेषु=इच्छाप्रयत्नादिमें व्यभिचार है=' उपाधिमन्तरेणाविभाव्यमानभेदत्व रूप हेतु है ' इच्छादिकोंमें परन्तु स्वान्तर्गणिक स्वाभाविक भेदशून्यत्व नहीं है अतः व्यभिचार है, इति नचवाच्यम् क्यों? इच्छादिकोंको अन्तःकरणका परिणामत्व होनेसे तत्रापि=इच्छादिकोंमेंभी साध्यका सत्त्व होनेसे। विमत, अव्याप्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद स्वसमानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका प्रतियोगी है, भेदत्व होनेसे संयुक्तभेदवत्=संयोगवत्प्रतियोगिकभेदवत्—कपिसंयुक्तवृक्ष—प्रति-

यौगिकभेद वृक्षमें रहता है "वृक्षः संयोगवान्न" इत्याकारक प्रतीतिका तार्किकोंसे अङ्गीकार होनेसे। तादृश भेद समानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव=अन्योन्याभावीप्रतियोगितावच्छेदकीभूत जो संयोग तदात्मक जो संयोगवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावप्रतियोगिकात्यन्ताभाव तादृशात्यन्ताभावप्रतियोगित्व संयोगवत्प्रतियोगिक भेदमें है—अन्योन्याभावका अत्यन्ताभाव अन्योन्याभावीयप्रतियोगितावच्छेदकरूप होता है तथाच संयोगवान् वृक्षमें संयोगवत्प्रतियोगिकान्योन्यभावके रह जानेसे संयोगात्मक स्वसमानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव है, तत्प्रतियोगित्व संयुक्त भेदमें है। विमत, भेद केवलान्वयी जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका प्रतियोगी है पदार्थत्व होनेसे नित्यद्रव्यवत्।

स्वरूपेणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वे यथा न तुच्छत्वं, पारमार्थिकत्वाकारेणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वे ब्रह्मवत् सद्रूपतोपपत्त्या न यथार्थान्तरं तत् प्रागुक्तम्। अन्योन्याभावत्वं स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिवृत्ति, त्रैकालिकाभाववृत्तित्वे सति अभावत्वसाक्षाद्व्याप्यत्वात्, अत्यन्ताभाववदित्यनुमानं पूर्वोक्तसंयुक्तप्रतियोगिकभेदरूपदृष्टान्तसिद्ध्यर्थम्। नच—शुक्तौ शुक्तिभेदस्यारोपितस्य सत्त्वेन सिद्धसाधनम्; असदन्यथाख्यातिवादिनस्तवानङ्गीकृतत्वेन तस्य साध्यत्वात्। नच—त्रैकालिकत्वे मिथ्यात्वायोगः; मायाचित्सम्बन्धस्य कालत्वेन सर्वकालस्थितेरतद्विरोधित्वात् नचाव्याप्यवृत्तितया संयोगादिवत् समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेनार्थान्तरम् पक्षविशेषणमहिम्ना अव्याप्यवृत्तित्वस्यासम्भवेन तद्योगात्। अनुसन्धानाद्यव्यवस्थादिकं प्रागेव निराकृतम्। अप्रयोजकत्वाभाससाम्यसत्प्रतिपक्षोपाध्यादिपूर्वोक्तप्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानवन्निराकरणीयम्। एवमात्मत्वमेकत्वव्याप्यम्, आत्ममात्रवृत्तित्वात्, चैत्रत्ववदित्याद्यपि द्रष्टव्यम्।

इति अद्वैतसिद्धौ जीवब्रह्माभेदानुमानम्।

स्वरूपसे अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व होनेपर जैसे तुच्छत्व नहीं है, और पारमार्थिकत्वेन अत्यन्ताभावप्रतियोगित्व होनेपर जैसे ब्रह्मकी तरह सद्रूपकी उपपत्तिसे अर्थान्तर नहीं है, तैसे पूर्वमें—मिथ्यात्वकी निरुक्तिमें कहा गया है, अन्योन्याभावत्व, स्वसमानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावके प्रतियोगीमें वृत्ति है, त्रैकालिकाभावमें वृत्तित्व होकर अभावत्वसाक्षाद्व्याप्यत्व होनेसे अत्यन्ताभावत्ववत् यह अनुमान पूर्वोक्त—संयुक्तप्रतियोगिकभेदरूप दृष्टान्तकी सिद्धिके लिए है। नचेति। शुक्तिमें आरोपित शुक्तिभेदको विद्यमानत्व होनेसे सिद्धसाधन है, नच=सिद्धसाधन नहीं है, क्यों? असदन्यथाख्यातिवादिनः=असद्विषयक भ्रमात्मकज्ञान होता है, ऐसा कहनेवाले तुम माध्वको आरोपितभेदका अनङ्गीकृतत्व होनेसे तस्य=आरोपितभेदको साध्यत्व होनेसे। त्रैकालिकत्व होनेपर मिथ्यात्वका अयोग है। नच=अयोग नहीं है, क्यों? माया तथा चित् इन्होंके सम्बन्धको कालत्व होनेसे सर्वकालस्थितिको मिथ्यात्वका अविरोधित्व होनेसे। नचेति। अव्याप्यवृत्तित्व होनेसे संयोगादिवत् समानाधि-

करणात्यन्ताभावप्रतियोगीत्व होनेसे अर्थान्तर है, नच=अर्थान्तर नहीं है, क्यों? पक्षविशेषण-महिम्ना=अव्याप्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वरूप जो पक्षमें विशेषण उसके माहात्म्यसे पक्षभूतभेदमें अव्याप्यवृत्तित्वके असम्भवसे तदयोगात्=अर्थान्तरका अयोग होनेसे। और आत्मामें भेद न होनेपर जो अनुसन्धानादिकी अव्यवस्थादि है वह तो पूर्वमेंही उपाधिभेदसे निराकृत है। और अप्रयोजकत्व आभाससाम्य सत्प्रतिपक्ष तथा उपाध्यादिक तो पूर्वोक्त प्रपञ्चमिथ्यात्वानुमानवत् निराकरणीय है। इसी रीतिसे आत्मत्व एकत्वका व्याप्य है, आत्मभात्रवृत्तित्व होनेसे चैत्रत्ववत्, इत्यादिभी ज्ञातव्य है ॥

इति सरलायां जीवब्रह्माभेदानुमानम् ॥

अथांशत्वेनाप्यैक्यसिद्धिः ।

'पादोऽस्य विश्वा भूतानी'ति 'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।' इति स्मृतौ चांशत्वव्यपदेशादपि जीवब्रह्माभेदसिद्धिः। यद्यपि ब्रह्म प्रति जीवस्यांशत्वं न तावदारम्भकत्वम् ब्रह्मणोऽनादित्वात्, नापि खण्डत्वम्, अच्छेद्यत्वात्, नापिसमुदायित्वम् समुदायस्य समुदाय्यनन्यत्वेन व्यवहारदशायामपि संसार्यन्यशुद्धब्रह्माभावापातात् नापि भिन्नाभिन्नद्रव्यत्वम्; अनङ्गीकारात् नापि घटं प्रति खण्डघटस्येव प्रदेशत्वम्, निष्प्रदेशब्रह्मप्रतिकल्पनां विना तदयोगात् तथापि घटाकाशस्य महाकाशं प्रतीव कल्पितप्रदेशत्वरूपमंशत्वं जीवस्यावच्छेदपक्षे सम्भवति। स्वतो निरंशेऽपि औपाधिकांशो यथा युज्यते तथोक्तं पुरस्तात्। ननु सदृशत्वे ततो न्यूनत्वम्, स्थूलपटंप्रतिसूक्ष्मपटस्याप्यंशत्वापत्तेः वस्त्वेकदेशे मुख्यस्यांशशब्दस्य स्वतो निरंशेपि कल्पितैकदेशे प्रयोगस्यार्थान्तरे प्रयोगकल्पनापेक्षयाऽभ्यर्हितत्वात्। अंशो नानाव्यपदेशादन्यथाचापि दाशकितवादित्वमधीयते एके इति सूत्रे सोऽन्वेष्टव्यः स विजाज्ञिसितव्य एतमेवं विदित्वा मुनिर्भवति य आत्मनि तिष्ठन्नित्यादिभेदव्यपदेशस्य ब्रह्मदासा ब्रह्मदाशा, ब्रह्मेमे कितवा उतेत्याथर्वणमन्त्रे अभेदव्यपदेशस्य चोदाहृतत्वाच्च उक्तार्थपरिग्रहस्योचितत्वात्।

अथ सरलायामंशत्वेनैक्यसिद्धिः ।

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' (छा० ३।१२।६) इस श्रुतिमें तथा ममैवांशो जीवलोके (गी० १५।७) इत्यादि स्मृतिमें अंशत्वके कथनसेभी जीवब्रह्मके अभेदकी सिद्धि है। यद्यपीति। यद्यपि ब्रह्मके प्रति जो जीवको अंशत्व है वह ब्रह्मारम्भकत्वरूप तो नहीं है, जैसा कि पटके प्रति तन्तुओंका होता है,—ब्रह्मको अनादित्व होनेसे=आरम्भकत्वरूप अंशत्व सादिके ही प्रति हो सकता है न कि अनादिके प्रति। और ब्रह्मके प्रति जीवका अंशत्व ब्रह्मखण्डत्वरूपभी नहीं है—ब्रह्मको अच्छेद्यत्व होनेसे। तैसे समुदायित्वरूपभी अंशत्व नहीं बन सकता है, समुदायको समुदायिओंसे अभिन्नत्व होनेसे=समुदायिओंसे भिन्नत्व न होनेसे व्यवहारदशामेंभी संसारिओंसे भिन्न शुद्ध ब्रह्मके अभावके आपातसे। और भिन्नाभिन्नद्रव्यत्वरूपभी अंशत्व नहीं बन सकता है

अङ्गीकार न होनेसे। और घटके प्रति खण्डघटकी तरह प्रदेशत्वरूपभी अंशत्व नहीं बन सकता है—निष्प्रदेश ब्रह्मके प्रति कल्पनाके विना प्रदेशत्वका अयोग होनेसे; तथापि घटाकाशको महाकाशके प्रति जैसे कल्पितप्रदेशत्वरूप अंशत्व है तैसे कल्पितप्रदेशत्वरूप अंशत्व अवच्छेदपक्षमें जीवमें सम्भावित है। और स्वरूपसे निरंशमेंभी औपाधिक अंश जैसे युक्त होता है तैसे उक्त है पूर्वमें, परन्तु सदृशत्वे सति ततो न्यूनत्वरूप अंशत्व नहीं है=स्थूल घटके प्रति सूक्ष्मपटकोभी अंशत्वकी आपत्तिसे। वस्तुके एकदेशमें मुख्य जो अंशशब्द है उस अंशशब्दके प्रयोगको स्वतः निरंशके भी कल्पितैकदेशमें अर्थान्तरमें प्रयोगकी कल्पनाकी अपेक्षासे अभ्यर्हितत्व होनेसे। 'अंशो नाना व्यपदेशात्' (वे० २।३।४३) इत्यादिसूत्रमें और सोऽन्वेष्टव्यः स विज्ञासितव्यः (छा० ८।७।१) एतमेव विदित्वा मुनिर्भवति, (बृ०४।४।२) य आत्मनि तिष्ठन् (श० १४, ५, ५, ३०) इत्यादि श्रुतिओंमें और ब्रह्मदासा ब्रह्मदाशा ब्रह्मेमे कितवाः—, अथर्ववेदीय ब्रह्मसूक्त' इस आथर्वण मन्त्रमें, अभेदव्यपदेशको उदाहृतत्व होनेसेभी उक्तार्थपरिग्रहमें ही उचितत्व होनेसे।

आत्यन्तिकभेदगर्भार्थान्तरस्वीकारे चैतत्सूत्रविरोधापत्तेः, कुत्रचिदन्यत्र प्रयोगमात्रेण सर्वत्रैतत्कल्पने बहुविप्लवापत्तेश्च। अतएव ननु जीवस्य शुद्धचैतन्यांशत्वं वा ईश्वरांशत्वं वा पादोऽस्येत्यनया श्रुत्या बोध्यम्; नाद्यः, 'पादोऽस्य विश्वा भूतानि' इति श्रुताविदं शब्देन सहस्रशीर्षत्वादिविशिष्टप्रकृतेश्वरस्य ममैवांशस्मृतौ चेश्वरे प्रयुक्तास्मच्छब्देनेश्वरस्यैवोक्तेः। नान्त्यः, त्वन्मते ईश्वरस्याप्युपहितत्वेन घटाकाशं प्रति करकाशस्येवेश्वरं प्रति जीवस्यांशत्वायोगात्। नच—महाकाश एव पुनर्घटेनेवेश्वरोपाधिनाऽवच्छिन्नमेव चैतन्यं पुनर्जीवोपाधिनावच्छिद्यते इति—वाच्यम्, तथात्वे हि मुक्तस्य शुद्धब्रह्मत्वं न स्यात्, तस्मात् त्वन्मतेऽपि न मुख्यमंशत्वम्, नाप्यौपाधिकं वक्तुं शक्यम्, अतो मदुक्तप्रकार एवादरणीय इति—निरस्तम्; अर्थान्तरपरिग्रहे विरोधस्योक्तत्वात् श्रुतिस्मृतिगतसर्वनाम्ना सहस्रशीर्षत्वाद्युपलक्षितचैतन्यपरामर्शादुक्तदूषणानवकाशाच्च। तस्मात् त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः। 'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरः नामानि कृत्वाभिवदन्यदास्ते' इत्यादिश्रुत्या जीवब्रह्माभेदे प्रमितेऽपि मन्तृमन्तव्यादिभेदव्यपदेशनिर्वाहार्थं काल्पनिकांशत्वस्य श्रुतिस्मृतिव्याहतत्वेन तद्बलादप्यभेदोऽवगम्यते इति सिद्धम्।

इत्यद्वैतसिद्धौ अंशत्वेनाप्यैक्यसिद्धिः।

और आत्यन्तिक भेद है गर्भमें जिसके एवम्भूत जो अर्थान्तर तादृश अर्थान्तरका स्वीकार होनेपर उक्तसूत्रके विरोधकी आपत्तिसे। और कहींपर अन्यत्र=गौणार्थ होनेसेही सर्वत्र अन्यार्थकल्पनमें बहुविप्लवकी आपत्तिसेभी अतएवेति। शङ्कते नन्विति। पादोऽस्य विश्वा भूतानि (य० सं० ३१। ३; छा० ३।१२।६) इस श्रुतिसे जीवको शुद्धचैतन्यका अंशत्व बोध्य

है या ईश्वरका अंशत्व बोध्य है, नाद्यः=शुद्धचैतन्यका अंशत्व बोध्य है यह प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है—पादोऽस्य विश्वा भूतानि इस श्रुतिमें इदं शब्दसे सहस्रशीर्षत्वादिविशिष्ट प्रकृत ईश्वरकी ही उक्ति होनेसे तथा 'ममैवांशः' (गी० १५।७) इस स्मृतिमें ईश्वरमें प्रयुक्त अस्मच्छब्दसे ईश्वरकी ही उक्ति होनेसे नान्त्यः=ईश्वरका अंशत्व बोध्य है, यह द्वितीयपक्षभी नहीं बन सकता है—तुम्हारे मतमें ईश्वरकोभी उपहितत्व होनेसे जैसे घटाकाशके प्रति करकाकाशको अंशत्व नहीं है वैसे ईश्वरके प्रति जीवको अंशत्वके अयोगसे। नचेति। गृहाकाश ही जैसे पुनः घटसे अवच्छिन्न होता है तैसे ईश्वरोपाधिसे अवच्छिन्न ही चैतन्य पुनः जीवोपाधिसे अवच्छिन्न होता है; इति नच वाच्यम् ;—तथात्व होनेपर मुक्तको शुद्धब्रह्मत्व न होगा, किन्तु ईश्वरत्व ही होगा, और ऐसा तो आपको इष्ट नहीं है, फलतः तुम्हारे मतमेंभी मुख्य अंशत्व नहीं है और औपाधिक अंशत्वभी कहनेके लिए शक्य नहीं है; फलतः सदृशत्वे सति न्यूनत्वरूप, मदुक्त प्रकार ही आदरणीय है, यह कथन निरस्त हुआ, अतएव शब्दका अर्थ दिखलाते हैं—अर्थान्तरके परिग्रहमें सूत्रविरोधको उक्तत्व होनेसे। और श्रुतिस्मृतिगत सर्वनामसे सहस्रशीर्षत्वादिसे उपलक्षित जो चैतन्य तादृशचैतन्यका परामर्श होनेसे उक्त दूषणके अनवकाशसेभी। तस्मात् त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी, त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः (अथर्व० का० १ अनु० ४ मं० २० श्लो० ४, ३;) 'सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरः नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते' इत्यादिश्रुतिओंसे जीवब्रह्मके अभेदके प्रमित होनेपरभी मन्तृत्व और मन्तव्यत्वादिका व्यपदेश है उसके निर्वाहके लिए काल्पनिक अंशत्वको श्रुतिस्मृतिओंमें व्याहृतत्वेन=आपादितत्व होनेसे तद्बलादपि=काल्पनिकांशत्व व्यवहारके बलसेभी जीवब्रह्मका ऐक्य अवगत होता है; यह सिद्ध हुआ॥

इति सरलायामंशत्वेनाप्यैक्यसिद्धिः॥

अथ जीवब्रह्माभेदनिरूपणम्।

तथा जीवब्रह्मणोर्मुखप्रतिमुखवत् बिम्बप्रतिबिम्बरूपत्वादप्यभेदोऽवगन्तव्यः। ननु—दृष्टान्ते नाभेदः सम्प्रतिपन्नः; चैत्रतच्छाये भिन्ने इतिवत् चैत्रतत्प्रतिबिम्बे भिन्ने इत्येव पार्श्वस्थितेन ग्रहणात् स्वेनापि स्वकरतत्प्रतिबिम्बे भिन्नेति ग्रहणाच्चेति—चेन्न; आपाततो भेदप्रतीतावपि सयुक्तिकप्रत्यक्षेण बिम्बप्रतिबिम्बयोरैक्यसिद्ध्या दृष्टान्तत्वोपपत्तेः। यथा लक्षणापरिज्ञाने भेदभ्रमवतोऽपि बहिस्थितश्चैत्रो यत्स्वलक्षणकत्वेन प्रतिपन्नः ततो गृहस्थे तथा भाति तस्मिन् चैत्र एवायमिति धीः; तथा ग्रीवास्थं मुखं यत्स्वलक्षणकं प्रतिपन्नं दर्पणस्थमपि तथेत्यवधार्य तथैवेदं मुखमिति स एवायं कर इति च स्वपरसाधारणी प्रतीतिरप्यनुभवसिद्धा। नच—किञ्चित्स्वच्छताम्रादौ मुखे छायामात्रे प्रतीतेऽपि संस्थानविशेषाप्रतीत्या प्रत्यभिज्ञाया असिद्धिरिति—वाच्यम् सर्वत्राप्रतीतावपि निर्मलदर्पणादावेव तत्सिद्ध्या दृष्टान्तसिद्धेः।

अथ सरलायां जीवब्रह्माभेदनिरूपणम् ।

तथेति । जैसे अंशत्वेन जीवब्रह्मका अभेद अवगन्तव्य है तैसे जीव तथा ब्रह्म इन दोनोंको मुखप्रतिमुखवत् बिम्बप्रतिबिम्बरूपत्व होनेसेभी इन दोनोंका अभेद अवगन्तव्य है । शङ्कते नन्विति । दृष्टान्ते=मुखप्रतिमुखरूपदृष्टान्तमें अभेद हमको सम्प्रतिपन्न नहीं है—जसे चैत्र और चैत्रकी छाया ये दोनों भिन्न हैं ऐसा पार्श्वमें स्थितसे ग्रहण होता है, तैसे चैत्र और चैत्रका प्रतिबिम्ब ये दोनों भिन्न हैं, ऐसा ही पार्श्वस्थसे ग्रहण होनेसे । और स्वसेभी स्वकर और स्वकरका प्रतिबिम्ब ये दोनों भिन्न हैं, ऐसा ग्रहण होनेसे इति चेन्न; क्यों ? आपाततः बिम्बप्रतिबिम्बमें भेदकी प्रतीति होनेपरभी सयुक्तिक प्रत्यक्षसे बिम्बप्रतिबिम्ब इन दोनोंके ऐक्यकी सिद्धिसे दृष्टान्तत्वकी उपपत्ति होनेसे,—जैसे लक्षणका परिज्ञान न होनेपरभी सयुक्तिक प्रत्यक्षसे बिम्बप्रतिबिम्ब इन दोनोंके ऐक्यकी सिद्धिसे दृष्टान्तत्वकी उपपत्ति होनेसे=जैसे लक्षणका परिज्ञान न होनेपर भेदभ्रमवालेकोभी बहिस्थित चैत्र, यत्स्वलक्षणविशिष्टत्वेन प्रतिपन्न होता है उसके बाद गृहमें स्थित हुआभी तत्स्वलक्षणविशिष्टत्वेन ज्ञात होता है, तस्मिन्= गृहमें स्थित चैत्रमें यह चैत्र ही है इत्याकारक धी होती है, तैसे ग्रीवामें स्थित यत्स्वलक्षणविशिष्ट मुख ज्ञात हुआ, दर्पणस्थभी तथा=तत्स्वलक्षणविशिष्ट है ऐसा अवधारण कर तदेवेदम्= ग्रीवास्थित ही यह मुख है, इत्याकारक, और वही यह कर है, इत्याकारक स्वपरसाधारणप्रतीति अनुभवसिद्ध है । नचेति । किञ्चित्स्वच्छताम्रादिमें मुखच्छायामात्रके प्रतीत होनेपरभी संस्थान- विशेष=अवयवरचनाविशेषकी अप्रतीतिसे प्रत्यभिज्ञायाकी असिद्धि है; इति नच वाच्यम्, क्यों ? सर्वत्रप्रतीतिके न होनेपरभी निर्मलदर्पणादिमें ही तत्सिद्ध्या=अभेदावगाहिनी प्रत्यभिज्ञाकी सिद्धिसे दृष्टान्तकी उपपत्ति होनेसे ।

ननु—स्वनेत्रगोलकादौ स्वस्याभिज्ञाविरहात् प्रत्यभिज्ञापि कथमिति—चेन्न; दर्पणा- हतचक्षूरश्मीनामग्रावच्छेदेन सम्बन्धात् स्वनेत्रगोलकादीनामभिज्ञायाः सन्निहितपूर्वसमय एव संभवात् । यत्तु सूर्यपार्श्वस्थिते प्रतिसूर्ये प्रत्यभिज्ञाविरहादत्रापि प्रत्यभिज्ञाविरहः—इति तन्न;—तत्रोपाधेरत्रेवानाकलनेनौपाधिकत्वानिर्णयात् तथा चोपाधिनिबन्धनत्वज्ञानं तल्लक्ष- कत्वज्ञानं चाभेदसाक्षात्कारे सामग्री तस्यां सत्यां दर्पणे मम मुखं लग्नमिति अनुभवाभाव एवानुभवविरुद्धः । यत्तु चैत्रप्रतिबिम्बो दृष्टो न चैत्रः, किन्तु तेनानुमित इति विपरी- तानुभवविरोधः—इति तन्न; वस्तुतोऽभेदे ज्ञातेऽपि उपाध्यवच्छिन्नो दृष्टोऽनवच्छिन्नोऽनुमित इति प्रतीत्यविरोधात्—शरद्गङ्गाया वर्षर्तुगङ्गानुमानवत् । नच—एवं प्रतिमुखे प्रत्यङ्मुख- त्वादिना दृश्यमाने स्वमुखे तद्बुद्धिः स्यात् बालानाञ्च स्वप्रतिबिम्बे बालान्तरभ्रमो न स्यादिति—वाच्यम्; तयोः स्वलक्षणकत्वाज्ञाननिबन्धनत्वात् । अतएव कदाचित् प्रति- मुखेऽपि मममुखमिति बुद्धिव्यपदेशौ । नचायं व्यवहारो भेदज्ञानपूर्वकत्वेन मार्गे स्वप- दव्यां स्वपदव्यवहारवद्गौणः स्वलक्षणकत्वज्ञानदशायां भेदज्ञानस्यासत्कल्पत्वात् ।

शङ्कते नन्विति। स्वनेत्रगोलकादिमें स्वकी अभिज्ञाके विरहसे प्रत्यभिज्ञाभी कैसे होगी, इति चेन्न; क्यों ? दर्पणाहत=दर्पणसे टक्कर खाकर लौटी हुई जो चक्षुरश्मियाँ हैं उन्होंका मुखके अग्रावच्छेदेन सम्बन्धसे स्वनेत्रगोलकादिविषयक अभिज्ञाका प्रत्यभिज्ञासे सन्निहित= अव्यवहितपूर्वकालमें ही सम्भव होनेसे यह कथन सम्भवाभिप्रायसे है अभिज्ञा प्रत्यभिज्ञासे अव्यवहित पूर्व कालमें ही हो ऐसा नियम नहीं है, । यत्त्विति । सूर्य्यके पार्श्वमें स्थित जो प्रतिसूर्य्य उस प्रतिसूर्य्यमें प्रत्यभिज्ञाके विरहसे प्रकृतमेंभी प्रत्यभिज्ञाका विरह है, इति यत् तत् तु न क्यों ? तत्र=सूर्य्यपार्श्वस्थितप्रतिसूर्यस्थलमें मुखप्रतिमुखस्थलकी नाईं उपाधिके अनाकलनसे=उपाधिके विज्ञानाभावसे औपाधिकत्वके अनिर्णयसे फलतः उपाधिनिबन्धनत्वज्ञान और तल्लक्षणकत्वज्ञान अभेदसाक्षात्कारमें सामग्री है । तस्याम्=उस सामग्रीके होते हुए 'मेरा मुख दर्पणमें लगा हुआ है' इत्याकारक अनुभवका अभाव ही अनुभवसे विरुद्ध है। चैत्रका 'प्रतिबिम्ब देखा है' चैत्र नहीं देखा है किन्तु प्रतिबिम्बसे अनुमित हुआ है, इत्याकारक जो विपरीत अनुभव उसके साथ विरोध है, इति यत् तत् तु न; क्यों ? वस्तुतः अभेदके ज्ञात होनेपरभी उपाध्यवच्छिन्न देखा है, उपाध्यनवच्छिन्न अनुमित हुआ है; इत्याकारक प्रतीतिके अविरोधसे, जैसे कि, शारदी गङ्गासे वार्षिकी गङ्गाका अनुमान होता है । नचेति । ऐसा होनेपर प्रत्यङ्मुखत्वादिरूपसे प्रतिमुखके दृश्यमान होनेपर स्वमुखमें तद्बुद्धिः=प्रत्यङ्मुखत्वादिकी बुद्धि होगी=और बालकोंको स्वप्रतिबिम्बमें बालान्तरका भ्रम न होगा इति नच वाच्यम्, क्यों ? तयोः=प्रत्यङ्मुखादिबुद्धि तथा बालकोंको स्वप्रतिबिम्बमें बालान्तरका भ्रम न होना=इन दोनोंको स्वलक्षणकत्वका जो अज्ञान तादृश अज्ञाननिबन्धनत्व होनेसे। अतएव=मुखप्रतिमुखका अभेद होनेसे ही कदाचित् प्रतिमुखमेंभी 'मम मुखम्' इत्याकारक बुद्धि तथा व्यपदेश ये दोनों होते हैं। नचेति । यह व्यवहार भेदज्ञानपूर्वकत्व होनेसे मार्गमें स्वपदव्याम्=स्वपदचिन्हमें स्वपदव्यवहारवत् गौण है। नच=गौण नहीं है, क्यों ? स्वलक्षणकत्व ज्ञानमें भेदज्ञानको असत् कल्पकत्व होनेसे।

ननु—अविवादः स्यात् भेदसाक्षात्कारे, अन्यथा त्वयापि कस्य भ्रमत्वमुच्यते ? नच भेदं भेदकञ्च साक्षात्कुर्वन् अभेदं साक्षात्कुर्वाणो दृष्ट इति—चेत् श्वैत्यव्याप्यशङ्खत्वसाक्षात्कारे पीतसाक्षात्कारवत् उपाधिमाहात्म्यादभेदं साक्षात्कुर्वाणो भेदं साक्षात्कारोतीत्यङ्गीक्रियते, अनुभवस्य दुरपन्हवत्वात्। नचैवमुपादानस्य ऐक्याज्ञानस्य ऐक्यज्ञानेन निवृत्तेः भ्रमानुपपत्तिः तन्निवर्तने उपाधिविरहस्यापि सहकारित्वात्। नच—एवं तज्ज्ञाने सति तन्न जानामीत्यननुभवेन तस्य स्वप्रागभावं प्रतीवाज्ञानं प्रत्यप्यन्यानपेक्षस्यैव निवर्त्तकत्वमिति—वाच्यम् ; न जानामीति व्यवहारप्रयोजकाज्ञानांशनिवर्त्तनेऽपि भ्रमस्यानुभूयमानत्वेन तदुपादानांशस्य निवृत्तौ जीवन्मुक्तौ प्रारब्धकर्मण इवोपाधेरेव प्रतिबन्धकतया तद्विरहापेक्षाया आवश्यकत्वात्।

शङ्कते नन्विति । मुख तथा प्रतिमुख इन दोनोंके भेदसाक्षात्कारमें अविवाद है, यदि भेदसाक्षात्कार न हो तो तुमसेभी किस ज्ञानका भ्रमत्व कहा जायगा ? और भेदका तथा भेदकका साक्षात्कार करता हुआ पुरुष अभेदको साक्षात्कार करता हुआ नहीं देखा गया है, इति चेत्=ऐसा नहीं कहना, क्यों ? श्वैत्यव्याप्य जो शङ्खत्व तादृश शङ्खत्वका साक्षात्कार होनेपर जैसे पीतका साक्षात्कार होता है, तैसे उपाधिके महात्म्यसे अभेदको साक्षात् करता हुआ पुरुष भेदका साक्षात् करता है, ऐसा अङ्गीकार किया जाता है—अनुभवको दुरपन्हवत्व होनेसे । नचेति । ऐसा होनेपर भेदभ्रमका उपादान जो ऐक्याज्ञान है उस ऐक्याज्ञानकी ऐक्यज्ञानसे निवृत्ति होनेसे भेदभ्रमकी अनुपपत्ति है, नच=भेदभ्रमकी अनुपपत्ति नहीं है, क्यों ? तन्निवर्त्तने=ज्ञानसे अज्ञानके निवर्त्तनमें उपाधिके अभावकोभी निवर्त्तकभूतज्ञानके प्रति सहकारित्व होनेसे; नचेति=तद्वस्तुका ज्ञान होनेपर ' तत् न जानामि ' ऐसा अनुभव न होनेसे तस्य=निवर्त्तकज्ञानको स्वप्रागभावके प्रति जैसे अन्यानपेक्ष होकर निवर्त्तकत्व है तैसे अज्ञानके प्रतिभी अन्यानपेक्ष ज्ञानकोही निवर्त्तकत्व है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? ' न जानामि इत्याकरक जो व्यवहार तादृश व्यवहारका प्रयोजक जो अज्ञानांश तादृश अज्ञानांशका निवर्त्तन होनेपरभी भ्रमको अनुभूयमानत्व होनेसे तदुपादानांशस्य=भ्रमोपादानांशकी निवृत्तिमें जीवन्मुक्तिमें प्रारब्धकर्मकी नांई उपाधिको ही प्रतिबन्धकत्व होनेसे तद्विरहापेक्षायाः= उपाधिका जो अभाव तादृशअभावकी अपेक्षाको आवश्यकत्व होनेसे ।

एतेन—भेदभ्रमस्यास्य मूलाविद्योपादानकत्वे व्यावहारिकत्वापत्तिः, अज्ञानानुपादानकत्वे अपसिद्धान्तः; बिम्बप्रतिबिम्बभेदस्य सत्यत्वापत्तिश्चेति—निरस्तम्; उक्तन्यायेनोपपत्तेर्व्यावहारिकत्वेऽप्यनुपपत्त्यभावाच्च । तयोरैक्ये अनुमानमपि प्रमाणम् । अत्र यद्यप्यत्यन्तसादृश्यं सव्येतरकरादौ व्यभिचारि तथापि प्रतिबिम्बो बिम्बाभिन्नः, तद्गतासाधारणधर्मत्वात् तद्विरुद्धधर्मानधिकरणत्वात्, बिम्बाजनकाजन्यत्वाच्च । नच द्वितीयहेतोरसिद्धिः प्रत्यङ्मुखत्वादिविरुद्धधर्मस्य उपाधिकृतत्वेन, स्वाभाविकविरुद्धधर्मानधिकरणत्वस्य सत्वात् । नच बिम्बानन्तरजाते प्रतिबिम्बे तृतीयहेतोरसिद्धिः ऐक्यवादिनं प्रति बिम्बानन्तरत्वस्यैवासिद्धेः ।

एतेनेति । इस प्रस्तुतभेदभ्रमको मूलाविद्योपादानकत्व होनेपर भ्रममें व्यावहारिकत्वकी आपत्ति है, और अज्ञानोपादानकत्व न होनेपर अपसिद्धान्त है, और बिम्बप्रतिबिम्बके भेदको सत्यत्वकी आपत्तिभी है, यह कथन निरस्त हुआ—उक्तन्यायेन=नजानामीतिव्यवहारप्रयोजकाज्ञानांशनिवर्त्तनेऽपि इत्यादि न्यायसे उपपत्तेः=उपादानभूताज्ञानका व्यावहारिकत्व होनेपरभी अनुपपत्तिके अभावसेभी । तयोरैक्ये=बिम्ब तथा प्रतिबिम्ब इन दोनोंके ऐक्यमें अनुमानभी प्रमाण है । अत्र=उक्त ऐक्यमें यद्यपि अत्यन्तसादृश्य हेतु नहीं बन सकता है क्योंकि वह सव्येतर करादिमें व्यभिचारि है, तथापि इस रीतिसे प्रयोगोंका करना उचित है—प्रतिबिम्ब,

विम्बसे अभिन्न है, तद्गत=विम्बगतासाधारणधर्मवत्त्व होनेसे तद्विरुद्ध=विम्बविरुद्धधर्मोंका अनधिकरणत्व होनेसे; विम्बका जो अजनक तादृश अजनकसे अजन्यत्व होनेसे, यह जन्य-विम्बस्थलमें हेतु है, द्वितीयहेतोः=विरुद्धधर्मानधिकरणत्वरूप हेतुकी असिद्धि है, नच= असिद्धि नहीं है, क्यों ? प्रत्यङ्मुखत्वादिरूप जो विम्बसे विरुद्धधर्म प्रतिविम्बमें है उस धर्मको उपाधिकृतत्व होनेसे स्वाभाविकविरुद्धधर्मानधिकरणत्वका प्रतिविम्बमें सत्त्व होनेसे, विम्बसे अनन्तर उत्पन्न होनेवाले प्रतिविम्बमें तृतीयहेतोः=विम्बाजनकाजन्यत्वरूप तृतीय हेतुकी असिद्धि है=विम्बके अनन्तर उत्पन्न होनेवाले प्रतिविम्बमें विम्बजनकमात्रजन्यत्वकी असिद्धि है, इति नच—वाच्यम् क्यों ? विम्ब तथा प्रतिविम्ब इन दोनोंके अभेदको कहनेवालेके प्रति प्रतिविम्बमें अनन्तरत्वकी ही असिद्धिसे ।

ननु—पृथक्कार्यानुरोधेन परिवेषेन्द्रचापच्छायाप्रतिसूर्यादाविवात्रापि पृथक्कारणं कल्पनीयम्, प्रतिविम्बमपि हि छायाविशेषः नहि भेरीघातादिक्लृप्तहेत्वभावात् ध्वनावुपरतेऽपि श्रूयमाणः प्रतिध्वनिर्न शब्दान्तरमिति—चेन्न; प्रतिविम्बस्य छायाविरोधिन्यालोकेऽपि सम्भवेन छायाविशेषत्वासिद्धेः प्रतिध्वनेस्तु भिन्नकालत्वेन तद्भेदस्य प्रकृतेऽनुपयोगात् कार्यपार्थक्यसिद्ध्युत्तरकालकल्प्यकारणभेदस्य प्रथमं वक्तुमशक्यत्वात्, क्लृप्तहेतुभावेन कार्यस्यैव भावाच्च, प्रत्यक्षस्य भेदाभेदयोः समत्वात्, युक्त्या, अभेद एव प्राबल्याच्च । अतएवोक्तं विवरणे—दर्पणादौ न मुखव्यक्त्यन्तरमस्ति; तज्जनकशून्यत्वात् शशशिरसि विषाणवदिति । एवमभेदधिय उपपादितत्वात् अस्याः प्राबल्यम्; व्यक्त्यन्तरहेत्वभावात् सैव नास्तीति—अपास्तं प्राक् । नच छायादाविव कारणभेदस्य कल्प्यत्वेन भेदबुद्धिः सोपपत्तिका तथा क्लृप्तद्रव्यानन्तर्भावे तमोवद्द्रव्यान्तरतैवेति वाच्यम्, अन्योन्याश्रयापत्तेः । भेदसोपपत्तिकत्वे द्रव्यान्तरत्वकारणान्तरत्वयोः कल्पनम्, तस्मिंश्च सोपपत्तिकत्वमिति ।

शङ्कते नन्विति । प्रतिविम्बरूप जो विम्बसे पृथक् कार्य है उस कार्यके अनुरोधसे परिवेषवत् तथा इन्द्रचापच्छायावत् और प्रतिसूर्यादिवत् यहाँपरभी पृथक् कारण कल्पनीय है 'चन्द्रके चारों तरफ जो कभी २ गोलाकार प्रकाश देखनेमें आता है, उसका नाम परिवेष है' प्रतिविम्बभी छायाविशेष है—भेरीघातादिरूप जो ध्वनिका हेतु है उसका अभाव होनेसे ध्वनिके उपरत होनेपरभी श्रूयमाण प्रतिध्वनि शब्दान्तर नहीं है, यह बात नहीं है इति चेन्न, क्यों ? प्रतिविम्बका छायाका विरोधी जो आलोक उस आलोकमेंभी सम्भव होनेसे प्रतिविम्बमें छायाविशेषत्वकी असिद्धिसे और प्रतिध्वनिको ध्वनिसे भिन्नकालत्व होनेसे तद्भेदस्य=प्रतिध्वनिभेदका प्रकृतमें अनुपयोग होनेसे=प्रतिध्वनि शब्दका प्रतिविम्ब नहीं है, किन्तु कण्ठादिसमवेतशब्दजन्य आकाशादिसमवेतशब्दका नाम प्रतिध्वनि है, और कार्यके पार्थक्यकी "जो सिद्धि उस सिद्धिसे उत्तर कालमें कल्पनीय जो कारणभेद उस कारणभेदको प्रथम कहनेके

लिए अशक्यत्व होनेसे। और क्लृप्त हेतुभावसे कार्यका ही भाव होनेसे प्रत्यक्षको भेद तथा अभेद इन दोनों पक्षोंमें समत्व होनेसे और युक्तिसे अभेदविषयकप्रत्यक्षका ही प्राबल्य होनेसे भी। अतएव विवरणमें कहा है=दर्पणादिमें मुखकी दूसरी व्यक्ति नहीं है, दर्पणादिको व्यक्त्यन्तरजनकशून्यत्व होनेसे शशके शिरमें विषाणवत्। इस रीतिसे अभेदधीको प्रतिपादितत्व होनेसे अस्याः=अभेदधीका प्राबल्य है। व्यक्त्यन्तररूप हेतुके अभावसे सैव=अभेदधी ही नहीं है, यह द्वैतीका कथन प्रथम निरस्त हो चुका है। नचेति। छायादिकी तरह कारणभेदको कल्प्यत्व होनेसे भेदबुद्धि सोपपत्तिका है, फलत क्लृप्तद्रव्योंमें अन्तर्भाव न होनेपर जैसे तमको द्रव्यान्तरत्व है तैसे प्रतिबिम्बकोभी द्रव्यान्तरत्व ही है, इति नच वाच्यम् क्यों? अन्योन्याश्रयकी आपत्तिसे। अन्योन्याभावको दिखलाते हैं-भेदका सोपपत्तिकत्व होनेपर द्रव्यान्तरत्व और कारणान्तरत्व इक दोनोंका कल्पन है और तस्मिन्=कारणभेदका कल्पन होनेपर भेदमें सोपपतिकत्वका कल्पन है।

अतएव 'नोपरक्तं न वारिस्थ'मितिस्मार्तव्यवहारो मुख्यः, नतु यथा चित्रितः सिंहः यथा दारुमयी योषा यथा चर्ममयो मृगः इत्यादिवद्गौणः। नच-त्वत्पक्षेऽपि वारिस्थशब्दो न मुख्यः वारिणि सूर्यान्तराभावात् गगनस्थस्य वारिस्थत्वायोगादिति-वाच्यम्; वारिस्थत्वेनोपस्थिताशेषवारिस्थसूर्यनिषेधात् ननुवारिस्थत्वेन सूर्य एवोपास्थितः तयोरभेदो न प्रत्यक्षसिद्धः, नापि युक्तः; न्यूनाधिकपरिमाणवत्त्वचलत्वोपाधिसंयुक्तत्वासंयुक्तत्वत्वगादिग्राह्यत्वाग्राह्यत्वप्रत्यङ्मुखत्वाप्रत्यङ्मुखत्वादिना कस्तूरीबिम्बप्रतिबिम्बयोः सौरभासौरभादीनां च भेदसिद्धिरिति-चेन्न; न्यूनपरिमाणादिना सौरभादिना च उपाधिगतस्य भेदः साधनीयः, तथाच उपाधिगतत्वस्य बिम्बे कल्पितत्वेन पक्षहेत्वोरसिद्धेः कल्पितहेत्वादिना तत्समानसत्ताकसाध्यसिद्धावविवादाच्च नापि-यथैषा पुरुषे छाया एतस्मिन्नेतदाततम्। छाया यथा पुंसदृशी पुमधीना च दृश्यते एवमेवात्मकाः सर्वे ब्रह्माद्याः परमात्मनः। इति श्रुत्या भेद इति-वाच्यम्, कल्पितभेदमात्रेण सादृश्योपपत्तेः तात्त्विकत्वे श्रुतितात्पर्याभावात्; ऐक्यप्रतिपादकानेकश्रुतिविरोधाच्च।

अतएव बिम्बप्रतिबिम्बका अभेद होनेसे ही उपरक्त सूर्य्यको-ग्रहोपरक्त सूर्य्यको न देखे और वारिस्थम्=जलप्रतिबिम्बित सूर्यको न देखे (मनुस्मृति ४।३७) इत्याकारक स्मार्त्त व्यवहार मुख्य है नकि यथा चित्रितः सिंहः यथा दारुमयीयोषा यथा चर्मप्रयोमृगः इत्यादिवत् गौणः। नचेति। तुम्हारे पक्षमेंभी वारिस्थ शब्द मुख्य नहीं है, जलमें अन्यसूर्यके अभावसे और गगनस्थसूर्य्यमें वारिस्थत्वके अयोगसे, इति नच वाच्यम्; क्यों? वारिस्थत्वेन उपस्थित अशेष वारिस्थ सूर्य्योंका निषेध होनेसे। शङ्कते नन्विति। वारिस्थत्वेन सूर्य्य ही उपस्थित है, तयोः=गगनस्थ तथा वारिस्थ इन दोनों सूर्य्योंका अभेद तो प्रत्यक्षसे सिद्ध नहीं है और इन्होंका अभेदयुक्तभी नहीं है-न्यूनाधिकपरिमाणवत्त्वेन, चलत्वाचलत्वेन, उपाधिसंयुक्त-

त्वासंयुक्तत्वेन, त्वगादिग्राह्यत्वाग्राह्यत्वेन, तथा प्रत्यङ्मुखत्वाप्रत्यङ्मुखत्वेन, भेदकी सिद्धि होनेसे, और कस्तूरीविम्ब तथा कस्तूरीप्रतिबिम्ब इन दोनोंके भेदकी सौरभासौरभादिसे= सिद्धि होनेसे इति चेन्न, क्यों ? न्यूनपरिमाणादिसे और सौरभादिसे उपाधिगतमें भेदसाधनीय है, तथाच उपाधिगतत्वको बिम्बमें कल्पितत्व होनेसे पक्ष तथा हेतु इन दोनोंकी असिद्धिसे और कल्पित हेत्वादिसे तत्समानसत्ताक=कल्पितहेत्वादिसमानसत्ताकसाध्यसिद्धिमें विवादके अभावसेभी। यथेति। जैसे पुरुषमें यह छाया है, एवम्=इस रीतिसे एतस्मिन्=परमात्मामें यह जगत् आतत है=व्याप्त है या विस्तृत है, और छाया जैसे पुरुषके सदृश तथा पुरुषके अधीन देखी जाती है इसी रीतिसे सर्व ब्रह्मादिक परमात्मात्मक है, ' इस श्रुतिसे भेदः=बिम्बभेद है ' इत्यपि न वाच्यम् क्यों ? कल्पितभेदमात्रसे सादृश्यकी उपपत्ति होनेसे भेदके तात्विकत्वमें श्रुतितात्पर्य्यके अभावसे, ऐक्यप्रतिपादक जो अनेक श्रुतियाँ उन्होंके साथ विरोध होनेसेभी

ननु—तत्स्वलक्षणकस्यैव दर्पणस्थत्वेनारोपिततया तद्रूपादियुक्तस्येव तद्गन्धादियुक्तस्यापि दर्पणस्थत्वेन प्रतीतिः स्यादिति—चेन्न; तत्स्वलक्षणकत्वेनारोपितत्वेऽपि यावत्स्वलक्षणत्वेनारोपितत्वानङ्गीकारेण गन्धादिप्रतीत्यापादनस्याशक्यत्वात्। ननु—एवं दर्पणे मुखस्याभावे उपाधेः प्रतिबिम्बपक्षपातित्वेन मुखप्रतिमुखयोरवदातत्वश्यामत्ववत् जीवब्रह्मणोः संसारित्वासंसारित्वादिव्यवस्था कथमिति—चेत्, न; आरोपितत्वेनादर्शस्थत्वेन विशिष्टे प्रतिबिम्बे तद्धर्मस्य मालिन्यादेः सम्भवात्। नचोपाधिस्थत्वस्यापि आरोप्यत्वेन कथं मालिन्याश्रयतावच्छेदकत्वम् ? एकविशिष्टे इतरारोपाभावादिति—वाच्यम् आरोपपूर्वप्रतीतधर्मविशिष्टस्यैवारोप्याश्रयत्वात् नतु तस्य सत्यत्वमपीति परप्रक्रियानिबन्धनदोषानवकाशात्। नच—प्रतिमुखमेव दर्पणस्थं नतु मुखमिति प्रतिबिम्बे दर्पणस्थत्वानुभवेन कथं प्रतिबिम्बत्वस्य तत्स्थत्वगर्भतेति—वाच्यम्; अविद्योपहितस्याविद्याश्रयत्ववत् दर्पणोपहितस्य दर्पणाश्रितत्वसम्भवात्।

शङ्कते नन्विति। तत्स्वलक्षणको ही दर्पणस्थत्वेन आरोपितत्व होनेसे तद्रूपादियुक्तकी जैसे दर्पणस्थत्वेन प्रतीति होती है तैसे तद्गन्धादिसे युक्तकीभी दर्पणस्थत्वेन प्रतीति होगी, इति चेन्न; क्यों ? तत्स्वलक्षणकत्वेन आरोपितत्व होनेपरभी यावत्स्वलक्षणकत्वेन आरोपितत्वके अनङ्गीकारसे गन्धादिकी प्रतीतिके आपादनको अशक्यत्व होनेसे तत्स्वलक्षणकत्वविशिष्टमें दर्पणस्थत्वका आरोप होनेपरभी यावत्स्वलक्षणकत्वविशिष्टमें दर्पणस्थत्वका आरोप न होनेसे ' दर्पणे मुखं गन्धादिविशिष्टम् ' इत्याकारक प्रत्यय नहीं होता है, शङ्कते नन्विति। एवम्= उक्तप्रकारसे दर्पणमें मुखका अभाव होनेपर, उपाधिनिष्ठप्रतिबिम्बपक्षपातित्वेन जैसे मुख तथा प्रतिमुख इन दोनोंमें क्रमशः अवदातत्व तथा श्यामत्वकी व्यवस्था होती है, तैसे जीव ब्रह्म इन दोनोंमें संसारित्व तथा असंसारित्व इन दोनोंकी व्यवस्था कैसे होगी, इति चेन्न; क्यों ? आरोपित जो आदर्शस्थत्व उससे विशिष्ट जो प्रतिबिम्ब उस प्रतिबिम्बमें तद्धर्मस्य=आदर्श-

धर्ममालिन्यादिका सम्भव होनेसे। नचेति। उपाधिस्थत्वकोभी आरोप्यत्व होनेसे उसको मालिन्यकी आश्रयताका अवच्छेदकत्व कैसे है? एकविशिष्टमें इतरके आरोपके अभावसे, इति नच वाच्यम्, क्यों? आरोपसे पूर्वमें प्रतीत जो धर्म तादृश धर्मविशिष्टको ही आरोप्यका आश्रयत्व होनेसे, उस धर्मका सत्यत्वभी आवश्यक नहीं है इस रीतिसे परप्रक्रिया-निबन्धन दोषका अनवकाश होनेसे। नचेति। प्रतिमुख ही दर्पणस्थ है मुख नहीं इत्याकारक प्रतिबिम्बमें दर्पणस्थके अनुभवसे प्रतिबिम्बत्वको तत्स्थत्व=दर्पणस्थत्वगर्भता कैसे है, इति नच वाच्यम् क्यों? अविद्योपहितको जैसे अविद्याश्रयत्व है तैसे दर्पणोपहितमें दर्पणाश्रितत्वका सम्भव होनेसे।

एतेन—मालिन्यस्थानीयसंसारस्य विशिष्टवृत्तित्वात् शुद्धाश्रितमोक्षसामानाधिकरण्यायोग इति—निरस्तम्; संसारस्तावदुपहितवृत्तिः; तथाचोपधेयांशमादाय सामानाधिकरण्यसंभवात् तथाच वृक्षस्थकपिसंयोगाधारतया अग्रेणेव मुखे मालिन्यम् दर्पणसम्बन्धे-नावच्छिद्यते। एतावानेव विशेषः—वृक्षे संयोगस्तुसाहजिकः मुखे औपाधिकं मालिन्यम्। तेनोपहिते उपाध्यवच्छिन्ने एव मुखे मालिन्यधीः। एतेन—दर्पणमालिन्यस्य मुखनिष्ठत्वे संसारस्यापि शुद्धनिष्ठतापत्तिः; वृक्षः संयुक्तइतिवत् मुखं मलिनमितिप्रतीत्यापत्तिः मुखं न मलिनम् किन्तु प्रतिमुखमिति—अनुभवविरोधापत्तिश्चेति—निरस्तम्। ननु कस्तूर्यादि-प्रतिबिम्बस्य स्वलक्षणाननुगमेन कथं बिम्बैक्यम्? नच तदाकारतामात्रेण तत्त्वं तर्हि छायाप्रतिमुद्राप्रतिमादीनामपि तत्त्वं स्यात्, प्रत्यङ्मुखत्वादेर्भेदकस्यात्रापि सत्त्वाच्च। नच प्रत्यङ्मुखत्वधीर्भ्रान्ता; प्रतिबिम्बं बिम्बाभिमुखं नेति कदाप्यननुभवादितिचेन्न; दर्पणादिप्रतिबिम्बे स्वलक्षणानुगमेन बिम्बैक्ये व्यवस्थिते प्रतिबिम्बत्वावच्छेदेनैव तत्कल्पनात् छायादौ स्वलक्षणकत्वस्य कुत्राप्यदर्शनेन साम्याभावात्।

एतेनेति। मालिन्यस्थानीय संसारको विशिष्टवृत्तित्व होनेसे शुद्धाश्रित जो मोक्ष तादृश मोक्षके साथ सामानाधिकरण्यका अयोग है, यह कथन निरस्त हुआ। एतेन=शब्दका अर्थ दिखलाते हैं—संसार उपहितमें वृत्ति है, तथाच उपधेयांशको लेकर सामानाधिकरण्यका सम्भव होनेसे दोष नहीं। फलतः वृक्षस्थकपिसंयोगकी आधारता जैसे वृक्षाग्रसे अवच्छिन्न होती है तैसे मुखमें मालिन्य दर्पणसम्बन्धसे अवच्छिन्न होता है। इतनाही विशेष है कि वृक्षमें संयोग साहजिक है और मुखमें मालिन्य औपाधिक है ततः उपहिते=उपाध्यवच्छिन्नमुखमें ही मालिन्यधी होती है। एतेनेति। एतेन='मुखं मलिनम्' इस प्रमाके स्वीकारसे दर्पणमालिन्यको मुखनिष्ठत्व होनेपर संसारकोभी शुद्धनिष्ठताकी आपत्ति है। और 'वृक्षः संयुक्तः' इत्याकारक प्रतीति जैसे होती है तैसे 'मुखं मलिनम्' इत्याकारक प्रतीतिकी आपत्ति है, और मुख मलिन नहीं है किन्तु प्रतिमुख मलिन है, इत्याकारक अनुभवका विरोधभी है, यह कथन निरस्त हुआ। शङ्कते नन्विति। कस्तूरी आदिके प्रतिबिम्बमें स्वलक्षणका अनुगम न होनेसे उसका बिम्बके

साथ ऐक्य कैसे है ? नचेति। तदाकारतामात्रेण तत्त्वम्=कस्तूर्य्यादिके प्रतिबिम्बको कस्तूर्य्याद्याकारतामात्रसे तत्त्वम्=ऐक्य है=कस्तूर्य्यादिके साथ ऐक्य है नच=तदाकारतामात्रसे कस्तूर्य्यादिके साथ ऐक्य नहीं हो सकता है, क्यों ? तव तो छाया तथा प्रतिमुद्रा एवं प्रतिमा इत्यादिकाभी छायावदादिके साथ ऐक्य होगा और प्रत्यङ्मुखत्वादिरूप भेदका अत्रापि=कस्तूर्य्यादिप्रतिबिम्बस्थलमेंभी सत्त्व होनेसेभी। प्रत्यङ्मुखादिकी धी भ्रान्त है नच=भ्रान्त नहीं है, क्यों ? प्रतिबिम्ब बिम्बाभिमुख नहीं है, ऐसा कभीभी अनुभव न होनेसे, इति चेन्न; क्यों ? दर्पणादिमें होनेवाले प्रतिबिम्बमें स्वलक्षणके अनुगमसे बिम्बके साथ ऐक्यके व्यवस्थित होनेपर प्रतिबिम्बत्वावच्छेदेनैव तत्कल्पनात्=अभेदके कल्पनसे और छायादिमें स्वलक्षणकत्वको कहींपरभी न देखनेसे साम्यके अभावसे।

नापि प्रत्यङ्मुखत्वादि भेदकम्, मलिनत्ववदुपाधिकृतत्वात् अतएव-जपाकुसुमे रक्तताप्रतीतिवत् तद्धीर्भ्रान्ता। दर्पणाहतं चक्षुः प्रत्यङ्मुखं भवति, तस्य च स्वाभिमुखतया ग्रहणसामर्थ्याच्चान्याभिमुखस्यापि मुखादेस्तथा ग्रहणोपपत्तेश्च। तदुक्तं-'दर्पणाभिहता दृष्टिः परावृत्त्य स्वमाननम्। व्याप्नुवन्त्याभिमुख्येन व्यत्यस्तं दर्शयेन्मुखम् ॥' नच परावृत्य स्वमुखस्यैव ग्रहणे पार्श्वस्थस्य मुखद्वयप्रतीत्ययोगः, स्वमुखस्यैवेति नियमासिद्धेः उपाधिसन्निहितमात्रस्यैव तथा ग्रहणात्। नच-एवं दर्पणादेरभिघातकमात्रेण उपक्षीणतया दर्पण इव दर्पण भेदेऽप्यनेकमुखप्रतीतिर्नस्यात् इति-वाच्यम्; अभिघातानेकत्वेन चक्षुषोऽनेकाग्रसम्पत्त्या प्रत्यग्रं स्वाभिघातकावच्छेदकमुखग्राहकतया दृष्टान्तवैषम्यात्। नच-मणिदर्पणकृपाणादिषु विरुद्धरूपानेकमुखप्रतीतिः कथमेवं युज्यत इति-वाच्यम्; अन्वयव्यतिरेकसिद्धोपाधिप्राबल्यनिबन्धनत्वादिति गृहाण।

और प्रत्यङ्मुखत्वादि भेदकभी नहीं है, मलिनत्ववत्, प्रत्यङ्मुखत्वादिको उपाधिकृतत्व होनेसे। अतएव जपाकुसुमका सान्निध्य होनेपर जैसे स्फटिकमें रक्तताकी प्रतीति भ्रान्तिरूप है तैसे प्रत्यङ्मुखत्वादिकी प्रतीति भ्रान्त्यात्मक है, दर्पणसे आहत हुआ चक्षु प्रत्यङ्मुख होता है, और उस चक्षुमें स्वाभिमुखत्वेन ग्रहणका सामर्थ्य होनेसे, अन्यके अभिमुख जो मुखादि तादृश मुखादिके स्वाभिमुखतया ग्रहणकी उपपत्ति होनेसे। सो कहा है=दर्पणसे ताडित दृष्टि लौटकर स्वमुखके प्रति व्याप्त होती हुई आभिमुख्येन विपरीत मुखको दिखलाती है। नचेति। लौटकर स्वमुखका ही ग्रहण होनेपर पार्श्वस्थको मुखद्वयकी प्रतीतिका अयोग है; नच=अयोग नहीं है, क्यों ? लौटकर स्वमुखका ही ग्रहण करती है इस नियमकी असिद्धिसे, उपाधिसन्निहितमात्रका ही स्वाभिमुख्येन ग्रहण होनेसे। शङ्कते नचेति। एवम्=ऐसा होनेपर दर्पणादिको अभिघातकतामात्रसे उपक्षीणता होनेसे दर्पणकी नाईं दर्पणका भेद होनेपरभी अनेक मुखकी प्रतीति न होगी इति नच वाच्यम् क्यों ? अभिघातकके अनेकत्वसे चक्षुमें अनेक अग्रकी सम्पत्तिसे अग्र अग्रके प्रति स्वाभिघातकतावच्छेदक जो मुख तादृश मुख-ग्राहकता

होनेसे दृष्टान्तके वैषम्यसे। नचेति। ऐसा होनेपर मणिदर्पणकृपाणादिमें विरुद्ध अनेक मुखकी प्रतीति कैसे युक्त होगी, इति नच वाच्यम् क्यों? अन्वयव्यतिरेकसे सिद्ध जो उपाधिका प्रावल्य तादृशप्रावल्यनिबन्धनत्व होनेसे ऐसा ग्रहणकर।

नच—चक्षुःपरिवृत्तिप्रक्रिया ब्रह्मप्रतिबिम्बे जीवे न संभवतीति—वाच्यम्; चाक्षुषप्रतिबिम्बमात्रविषयतयैवास्या उपपादितत्वात्। नच विरलावयवस्य जलस्य नेत्राभिघातकत्वे जलान्तर्गतशिलाद्यग्रहणप्रसङ्गः; सर्वावच्छेदेनाभिघाताभावेनान्तरेऽपि चक्षुषः प्रवेशसम्भवात्। नच—एवं बहुदूरव्यवहितोर्ध्वभागसूर्यादिग्रहणे पृष्ठभागस्थस्य व्यवहितस्यापि ग्रहणापत्तिरिति—वाच्यम्; चक्षुषो गमनागमनाभ्यां विशेषात्। नहि दूरस्थसूर्यग्रहणं वदता पृष्ठकुड्यादिकं भित्त्वा चक्षुर्गच्छतीत्युक्तं भवति। नच—एवं शिलाभिहतमपि चक्षुः परावृत्य मुखं गृह्णात्विति—वाच्यम्। तवापि प्रतिबिम्बं तत्रोत्पद्यतामित्यापत्तेः अस्वच्छतया परिहारस्यास्माकमपि समत्वात्। तव स्वच्छे एव उत्पद्यते; मम ततः एव चक्षुः परावर्तते इत्यङ्गीकारात्। नचैवं प्रतिबिम्बदर्शनेनापि बिम्बदर्शनजन्यसुखपुण्यादिप्रसङ्गः यत्र तद्दर्शनमात्रजन्यता नान्यतः तत्रेष्टापत्तेः यत्र चोपाधिविनिर्मुक्तज्ञानत्वेन विशिष्यजन्यता तत्रापादकाभावात्। नचैवं सूर्यकस्यापि सूर्यवद्दुर्दर्शत्वापत्तिः; गोलके सूर्य्यतेजः साम्मुख्यस्य दुर्दर्शताप्रयोजस्य सूर्यकग्रहणकालेऽभावात्।

नचेति=चक्षुके परिवर्त्तनकी जो प्रक्रिया है वह ब्रह्मप्रतिबिम्बरूप जीवमें सम्भावित नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्यों? चाक्षुष जो प्रतिबिम्ब तादृश प्रतिबिम्बमात्रविषयत्वेन ही इस प्रक्रियाको उपपादितत्व होनेसे=यह प्रक्रिया चाक्षुषप्रतिबिम्बमात्रसे सम्बन्ध रखती है नकि सर्व प्रतिबिम्बोंसे। नचेति। विरलावयव जो जो जल है उस जलको नेत्रका अभिघातकत्व होनेपर जलके अन्तर्गत जो शिलादि उन्होंके अग्रहणका प्रसङ्ग है, नच=अग्रहणका प्रसङ्ग नहीं है, क्यों? सर्वावच्छेदेन=अभिघातका अभाव होनेसे जलके अन्तरमेंभी चक्षुके प्रवेशका सम्भव होनेसे। नचेति। वह दूरव्यवहितोर्ध्वभागावस्थित जो सूर्य्यादि तादृश सूर्य्यादिके ग्रहणमें=तादृश सूर्य्यादिका ग्रहण होनेपर पृष्ठभागस्थ व्यवहितकेभी ग्रहणकी आपत्ति है, इति नच वाच्यम्, क्यों? चक्षुके गमनसे तथा अगमनसे विशेष होनेसे—दूरस्थसूर्य्यके ग्रहणको कहने वालेसे पृष्ठकुड्यादिका भेदनकर चक्षु जाता है इत्याकारक कहा हुआ नहीं होता है। नचेति। इस रीतिसे शिलासे=अस्वच्छ शिलासे अभिहत भी चक्षु उलटकर मुखको ग्रहण करे इति नच वाच्यम्, क्यों? तुम्हारे मतमेंभी प्रतिबिम्ब उक्तशिलामें उत्पन्न हो, इत्याकारक आपत्तिसे, अस्वच्छत्वप्रयुक्त परिहारको हमलोगोंकोभी समत्व होनेसे=यदि यों कहो कि अस्वच्छत्व होनेसे उक्तशिलामें प्रतिबिम्बके उत्पत्तिकी आपत्ति नहीं है तो अस्वच्छत्व होनेसे चक्षुके परावर्त्तनकीभी आपत्ति नहीं है=तुम्हारे मतमें स्वच्छमें ही प्रतिबिम्ब उत्पन्न होता है और हमारे मतमें स्वच्छसे ही चक्षु परावृत्त होता है, इस रीतिसे अङ्गीकार

होनेसे। नचेति। एवम्=प्रतिविम्यका विम्बके साथ अभेद होनेपर प्रतिबिम्बदर्शनसेभी विम्बदर्शनसे जन्य सुखपुण्यादिका प्रसङ्ग है नच=ऐसी शङ्का नहीं करना; क्यों? जहाँपर सुखपुण्यादिमें तद्दर्शनिमात्रजन्यता है, अन्यसे जन्यता नहीं है तहाँपर इष्टापत्ति होनेसे। और जहाँपर उपाधिविनिर्मुक्तज्ञानत्वेन विशेष्य जन्यता है तहाँपर आपादकके अभावसे। नचेति। अभेद होनेपर सूर्यकस्यापि=सूर्यप्रतिविम्बकोभी सूर्यवत् दुर्दर्शत्वकी आपत्ति है नच= दुर्दर्शत्वकी आपत्ति नहीं है, क्यों? दुर्दर्शताप्रयोजक सूर्यतेजःसामुख्यका गोलकमें सूर्यकके ग्रहणकालमें अभाव होनेसे।

नच स्वच्छदर्पणे इव किञ्चित्स्वच्छताम्रादौ मुखसंस्थानविशेषप्रतीत्यापातः, उपाधिगतात्यन्तस्वच्छताव्यतिरेकप्रयोजकमालिन्यादेरेव तत्र प्रतिबन्धकत्वात्, अन्यथा तवापि तादृक्संस्थानविशेषवत् प्रतिविम्बं तत्र कथं नोत्पद्यत इत्यस्य दुष्परिहरत्वापत्तेः। ननु—अवच्छेदपक्षे द्विगुणीकृत्य वृत्त्यसम्भवेऽपि प्रतिविम्बपक्षे तत्सम्भवेनान्तर्यामित्वमिति स्ववचनविरोधः, उपाधेः प्रतिविम्बपक्षपातित्वमिति उक्त्ययोगश्चेति—चेन्न; सर्वोपाध्यवच्छिन्नत्वैकदेशोपाध्यवच्छिन्नत्वाभ्यामुपाधिकल्पितभेदेन च स्वोक्त्यविरोधोपपत्तेः। अतएव—दर्पणे न मुखमित्येव उपाधिसंसृष्टतया निषिध्यते न तु 'नेदंरूप्यमितिवत् नैतन्मुखमिति स्वरूपेण' ननु—नात्र मुखच्छायास्तीति—अननुभवेन प्रत्युतैतावन्तं कालमत्र प्रतिसूर्य असीदितिवत् प्रतिमुखमासीदित्येवानुभवेन प्रतिविम्बमिवादर्शे इत्यादिस्मृत्या च प्रतिमुखे दर्पणस्थत्वस्याप्यबाध एव, नहि भूमौ मेघो नेत्येतावता मेघच्छायापि तत्र बाधितेति—चेन्न; मुखप्रतिमुखयोरेकस्वलक्षणकत्वेनैक्यव्यवस्थित्या मुखस्यैव तत्स्थत्वनिषेधेन प्रतिमुखस्य तत्सत्वनिषेधसम्भवात्।

नचेति=स्वच्छदर्पणकी तरह किञ्चित्स्वच्छ ताम्रादिमें मुखसंस्थानविशेषकी प्रतीतिका आपात है नच=आपात नहीं है, क्यों? उपाधिगत जो अत्यन्त स्वच्छत्व तादृश स्वच्छताका जो व्यतिरेक=अभाव तादृशव्यतिरेकप्रयोजक मालिन्यादिको ही तत्र=उक्तविधप्रतीतिमें प्रतिबन्धकत्व होनेसे अन्यथा तुह्मारे मतमेंभी तादृक्संस्थानविशेषवत् प्रतिविम्ब ही क्यों नहीं उत्पन्न होता है, इसको दुष्परिहरत्वकी आपत्तिसे, शङ्कते नचेति। अवच्छेदपक्षमें द्विगुणकर चैतन्यकी वृत्तिका असम्भव होनेपरभी प्रतिविम्बपक्षमें तत्सम्भवेन=द्विगुणचेतनका सम्भव होनेसे अन्तर्यामित्व=प्रतिविम्बभूत जीवके प्रति अन्तर्यामित्व है, इति स्ववचनविरोध= इस विवरणोक्तिके साथ विरोध है विम्ब तथा प्रतिविम्ब इन दोनोंका ऐक्य होनेसे द्विगुणत्वके असम्भवसे, और उपाधिको प्रतिविम्बपक्षपातित्व है, इस उक्तिकाभी अयोग है विम्ब तथा प्रतिविम्ब इन दोनोंको अभिन्नत्व होनेसे उपाधिसम्बन्धके अविशेषसे; इति चेन्न; क्यों? सर्वोपाध्यवच्छिन्नत्वसे और एकदेशोपाध्यवच्छिन्नत्वसे तथा उपाधिकल्पित भेदसे स्वोक्तिके साथ अविरोधकी आपत्तिसे=विम्बीभूत अन्तर्य्यामी सर्वोपाध्यवच्छिन्न है, और प्रतिविम्बभूत

जीव एक एक उपाध्यवच्छिन्न है अतः कोई अनुपपत्ति नहीं । अतएव दर्पणमें मुख नहीं है इस रीतिसे उपाधिसंसृष्टत्वेन ही मुख निषिद्ध होता है; नकि 'नेदं रूप्यम्' इसकी तरह 'नैतन्मुखम्' इत्याकारक स्वरूपसे । शङ्कते नन्विति । अत्र=दर्पणादिमें मुखकी छाया नहीं है इत्याकारक अनुभवके न होनेसे प्रत्युत इतने कालतक प्रतिसूर्य्य था, इसकी तरह । 'प्रतिमुख था' इत्याकारक अनुभव होनेसे और आदर्शमें 'प्रतिबिम्बकी तरह' इस स्मृतिसे प्रतिमुखमें दर्पणस्थत्वकाभी अबाध ही है । भूमिमें मेघ नहीं है एतावता मेघकी छायाभी भूमिमें बाधित नहीं है इति चेन्न; क्यों ? मुख तथा प्रतिमुख इन दोनोंमें एकस्वलक्षणकत्वसे ऐक्यकी व्यवस्थितिसे मुखमें ही दर्पणस्थत्वके निषेधसे प्रतिमुखमें दर्पणस्थत्वके निषेधका सम्भव होनेसे ।

मेघच्छायाप्रतिसूर्यादीनां न तथेति न मेघादिनिषेधेन छायादिनिषेधः, स्मृतिस्तु प्रातीतिकार्थमादाय दृष्टान्तपरा । नच—एवं प्रतिबिम्बात्, बिम्बानुमानोच्छेदः साध्याविशेषादितिवाच्यम्; उपाधिकल्पितभेदेन विशेषोपपत्तेः । एतेन नेक्षेतोद्यन्तमादित्यमित्यनेन उद्यत्प्रतिबिम्बदर्शनस्यापि निषेधः स्यात्, वारिस्थसूर्यदर्शननिषेधेनाकाशस्थसूर्यदर्शनस्यापि निषेधश्चस्यात् प्रतिबिम्बदर्शनेनैव दृष्ट्वा स्नायादिति शास्त्रार्थोऽप्यनुष्ठितः स्यादिति—निरस्तम्; कल्पितभेदादेव शास्त्रीयव्यवस्थोपपत्तेः । नच औदुम्बरतया ज्ञातेनानौदुम्बरेण औदुम्बरो यूपो भवतीति शास्त्रार्थसिद्धिप्रसङ्गः; आत्मतया ज्ञातदेहश्रवणादिनात्मा श्रोतव्य इति शास्त्रार्थसिद्धिप्रसङ्गश्चेति—वाच्यम्; प्रमया उपपत्तौ संभवन्त्यां भ्रमेण तदुपपादनस्यायुक्तत्वात् । ननु—अनादेर्जीवस्य नोपाध्यधीनं प्रतिबिम्बत्वम् किन्तु तदधीनत्वे सति तत्सदृशत्वम्; तच्च भेदव्याप्तमितिविरुद्धो हेतुः । उक्तं हि सूत्रकृता—'अत एवोपमा सूर्यकादिव'दिति—चेत् न; उपाध्यधीनत्वं हि उपाधौ सत्येव सत्त्वम् तच्च नानादित्वविरोधि; अनादिजीवस्यापि तत्संभवात् । अतएव प्रतिबिम्बपदस्य भेदसादृश्यार्थकत्वमादाय विरुद्धत्वोक्तिर्हितवायुक्ता । तदेवं प्रतिबिम्बस्य बिम्बेनैक्ये व्यवस्थिते । ब्रह्मैक्यं जीवजातस्य सिद्धं तत्प्रतिबिम्बनात् ।

इत्यद्वैतसिद्धौ बिम्बप्रतिबिम्बन्यायेनैक्यसिद्धिः ॥

और मेघछाया तथा प्रतिसूर्यादिकोंमें न तथा=एक स्वलक्षणकत्वप्रयुक्तऐक्यकी व्यवस्थिति नहीं है, अतः मेघादिका निषेध होनेपर छायादिका निषेध नहीं है । और स्मृति तो प्रातीतिकार्थको लेकर दृष्टान्तपरा है । नचेति । एवम्=उक्त प्रकारसे अभेद होनेपर प्रतिबिम्बसे बिम्बके अनुमानका उच्छेद होगा, साध्यके अविशेषसे, इति नच वाच्यम्; क्यों ? उपाधिसे कल्पित जो भेद तादृश भेदसे विशेषकी उपपत्तिसे । एतेनेति । 'नेक्षेतोद्यन्तमादित्यम्' (मनु० ४।३७), इससे उद्यत् प्रतिबिम्बके दर्शनकाभी निषेध होगा, और वारिस्थ सूर्य्यके दर्शनके निषेधसे आकाशस्थ सूर्य्यदर्शनकाभी निषेध होगा, और प्रतिबिम्बदर्श-

नसे ही 'दध्ना स्नायात्' इस शास्त्रका अर्थ अनुष्ठित होगा, यह कथन निरस्त हुआ एतेन—शब्दका अर्थ दिखलाते हैं—कल्पित भेदसे ही शास्त्रीय व्यवस्थाकी उपपत्ति होनेसे। शङ्कते नचेति। औदुम्बरत्वेन ज्ञात अनौदुम्बरसे 'औदुम्बरो यूपो भवति' इस शास्त्रके अर्थकी सिद्धिका प्रसङ्ग है, और आत्मत्वेन ज्ञात जो देह तादृश देहके श्रवणादिसे 'आत्मा श्रोतव्यः' इस शास्त्रके अर्थकी सिद्धिका प्रसङ्ग है, इति नच वाच्यम्, क्यों? प्रमासे उपपत्तिका सम्भव होनेपर भ्रमसे उक्त शास्त्रोंके उपपादनको अयुक्तत्व होनेसे। शङ्कते नन्विति। अनादिजीवका उपाध्यधीन प्रतिबिम्बत्व नहीं है, किन्तु बिम्बाधीनत्वे सति बिम्बसदृशस्वरूप प्रतिबिम्बत्व है, तच्च=और उक्तविध प्रतिबिम्बत्व तो भेदसे व्याप्त है, अतः हेतु विरुद्ध है। कहा है सूत्रकारने—'अतएव उपमा सूर्यकादिवत्' (वे० ३।२।१८) इति चेन्न; क्यों? उपाध्यधीनत्व उपाधिका सत्त्व होनेपर ही सत्त्वरूप है। और वह अनादित्वका विरोधि नहीं है अनादिजीवमेंभी तादृश उपाध्यधीनत्वका सम्भव होनेसे अतएव=उपाध्यधीनत्वको उक्तविध होनेसे ही प्रतिबिम्बपदके भेदघटितसादृश्यार्थकत्वको लेकर हेतुमें विरुद्धत्वकी उक्ति अयुक्त है। सो इस रीतिसे बिम्बके साथ प्रतिबिम्बके ऐक्यको व्यवस्थित होनेपर ब्रह्मप्रतिबिम्बनसे जीवसमुदायका ब्रह्मके साथ ऐक्य सिद्ध हुआ॥

इति सरलायां बिम्बप्रतिबिम्बन्यायेनैक्यसिद्धिः॥

अथात्मनोऽणुत्वभङ्गः।

ननु—अणुत्वाज्जीवस्य कथं व्यापकादीश्वराद्भेदइति—चेन्न; 'नित्यः सर्वगतः' 'स वा एष महानज आत्मा' इत्यादिश्रुत्या जीवो नाणुः प्रत्यक्षगुणाश्रयत्वात्, प्रत्यक्षत्वाच्च घटवत्, आत्मत्वादभूतत्वाच्चेश्वरवदित्याद्यनुमानैश्च जीवानणुत्वसिद्धेः, विपक्षे च देहव्यापिसुखज्ञानाद्यनुपलम्भापत्तिर्बाधिका नच—'अणुर्ह्येष आत्मा यं वा एते सिनीतः पुण्यञ्च पापञ्च' बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। 'भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पत' इति श्रुत्या जीवोऽणुरिति—वाच्यम्, व्यापकत्वप्रतिपादकबहुश्रुतिविरोधेन दुर्विज्ञेयत्वपरत्वात्, देहव्यापिगुणोपलम्भस्यान्यथयितुमशक्यत्वात्। एतेन जीवो न व्यापकः, उत्क्रान्तिमत्त्वात्, गतिमत्त्वात्, क्रियावत्वाच्च खगशरीरवत्, विपक्षे हेतूच्छित्यापत्तिर्बाधिकेति—निरस्तम् हेत्वसिद्धेः। नच—'सोऽस्माच्छरीरादुत्क्रम्यामुं' लोकमधिगच्छति अमुष्मादिमं लोकमागच्छतीत्यादिभिः श्रुतिभिः 'तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्तते' इत्यादिस्मृतिभिश्च हेतुसिद्धिरिति—वाच्यम्; उत्क्रमणादीनां बुद्धिगतानां तदुपहिते श्रुत्या प्रतिपादनात्।

अथसरलायामात्मनोऽणुत्वभङ्गः।

शङ्कते नन्विति। जीवको अणुत्व होनेसे व्यापक ईश्वरके साथ उसका अभेद कैसे है, इति चेन्न; क्यों? 'नित्यः' (कठ० २।१८) 'सर्वगतः' (श्वे० ३।११) 'स वा एष महानज

आत्मा ' (बृ० ४।४।२२) इत्यादि श्रुतिओंसे तथा जीव अणु नहीं है, प्रत्यक्ष जो सुखदुःखादिरूप गुण तादृशगुणाश्रयत्व होनेसे, और प्रत्यक्षत्व होनेसे; घटवत्, जीव अणु नहीं है, आत्मत्व होनेसे, तथा अनुभूतत्व होनेसे ईश्वरवत्, इत्यादिअनुमानोंसे जीवमें अनणुत्वकी सिद्धिसे और देहव्यापि जो सुखज्ञानादि उसके अनुपलम्भकी आपत्ति विपक्षमें बाधिका है। नचेति । ' अणुर्ह्येष आत्मायं वा एते सिनीतः पुण्यं पापञ्च ' बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च (श्वे० ५।९) इत्यादि श्रुतिओंसे जीव अणु है इति नच वाच्यम् क्यों ? आत्माके व्यापकत्वकी प्रतिपादिका जो बहुतसी श्रुतियाँ हैं उन्होंके साथ विरोध होनेसे उक्त श्रुतिओंको दुर्विज्ञेयत्वपरत्व होनेसे—देहव्यापिगुणोपलम्भको अन्यथा करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे । एतेनेति । जीव व्यापक नहीं है उत्क्रान्तिमत् होनेसे, गतिमत्त्व होनेसे क्रियावत्त्व होनेसे, शकुन्तशरीरवत् विपक्षमें हेतुओंके उच्छेदकी आपत्ति बाधिका है, यह कथन निरस्त हुआ, हेतुओंकी असिद्धि होनेसे । नचेति । वह इस शरीरसे उत्क्रमणकर परलोकको जाता है और परलोकसे इस लोकको आता है इत्यादि श्रुतिओंसे और 'तत्र चांद्रमसं योतिर्योगी प्राप्य निवर्तते (गी० ८।२५) इत्यादि स्मृतिओंसे हेतुओंकी सिद्धि है इति नच वाच्यम्, क्यों ? बुद्धिगत उत्क्रमणादिकोंका तदुपहिते=बुद्ध्युपहित आत्मामें श्रुतिसे प्रतिपादन होनेसे ।

नच—' नाकस्य पृष्ठे सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति । ' ' ते अशुभमनुभूयन्त ' इत्यादौ श्रुतौ सुखदुःखाद्यनुभवसामानाधिकरण्यस्य गतावुक्तेः कथं तस्या बुद्धिगतत्वमिति—वाच्यम् ; आत्मनि सुखदुःखाद्यनुभवस्यापि बुद्ध्युपाधिकत्वेन तत्सामानाधिकरण्यस्य गतौ स्वाभाविकत्वासाधकत्वात् । ननु—' स एनान् ब्रह्म गमयती' त्यादिश्रुतौ ' तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ' इत्यादिस्मृतौ च गतेर्मुक्तिसामानाधिकरण्योक्तेः कथमसिद्धिरिति—चेन्न; अव्यापकस्यैवाव्यापकं प्रत्येव गमनम् । ब्रह्म च व्यापकं तत्प्रति गमनासम्भवेन गमनपदस्य उपाधिकृतभेदराहित्यपरतया गतिमुक्तिसामानाधिकरण्याप्रतिपादकत्वात् । ननु—' प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामती'त्यात्मनिष्ठत्वश्रुतेर्नासिद्धिः; अन्यथा मोक्षादिकमपि बुद्धेरेव स्यात्, नापि श्रुतेर्बुद्ध्युपाधिकगत्यादिविषयत्वं सम्भवति; तद्यथा अनः सुसमाहितमुत्सर्जद्यायादेवमेवायं शारीर आत्मा ' प्राज्ञेनात्मनाऽन्वारूढ उत्सर्जन् याती'ति स्वाभाविकगत्याश्रयशकटदृष्टान्तोक्तिरिति—चेन्न; एष इति बुद्ध्युपहितस्यैव परामर्शेन शुद्धात्मनिष्ठत्वस्य गतावनुक्तेः मोक्षे तु बुद्ध्युपरमेण तन्निष्ठत्वस्यासम्भावितत्तया वैषम्यात् सर्वसाम्यस्य दृष्टान्ततायामप्रयोजकत्वात् तद्बलेन स्वाभाविकत्वपर्यन्तत्वासिद्धेः ।

शङ्कते नन्विति । 'नाकस्य पृष्ठे सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वा विशन्ति' (मुं० १।२।१०) इत्यादि श्रुतिमें सुखदुःखादिका जो अनुभव तादृश अनुभवके सामानाधिकरण्यकी गतिमें उक्ति होनेसे तस्याः=गतिको बुद्धिगतत्व कैसे है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? आत्मामें सुखदुःखादिके

अनुभवकोभी बुद्धयुपाधिकत्व होनेसे तत्सामानाधिकरण्यस्य–सुखदुःखाद्यनुभवसामानाधिकरण्यको गतिमें स्वाभाविकत्वका असाधकत्व होनेसे। शङ्कते नन्विति। 'सएतान् ब्रह्म गमयति' (छा० ४।१५।६) इत्यादि श्रुतिमें और तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्म विदोजनाः (गी०८।२४) इत्यादि स्मृतिमें गतिनिष्ठमुक्तिसामानाधिकरण्यकी उक्ति होनेसे गतिकी आत्मामें असिद्धि कैसे है; इति चेन्न; क्यों? अव्यापकका ही अव्यापकके प्रति ही गमन होता है, और ब्रह्मतो व्यापक है, अतः उसके प्रति गमनके असम्भवसे गमनपदको उपाधिकृत जो भेद तादृशभेदराहित्यपरत्व होनेसे गति तथा मुक्ति इन दोनोंके सामानाधिकरण्यका अप्रतिपादकत्व होनेसे शङ्कते नन्विति। 'प्रद्योतेनैष आत्मा निष्क्रामति' (वृ० ४।४।२) इस आत्मनिष्ठत्वश्रुतिसे=आत्मनिष्ठगतिबोधक श्रुतिसे गतिकी आत्मामें असिद्धि नहीं है। अन्यथा मोक्षादिकभी बुद्धिको होगा। और श्रुतिको बुद्ध्युपाधिकगत्यादिविषयत्वका सम्भवभी नहीं है अनःसुसमाहितमुतसर्जत्= (वृ०४।३।३५) इत्यादिमें स्वाभाविक गत्याश्रय जो शकट तद्रूप दृष्टान्तकी उक्ति होनेसे; इति चेन्न; क्यों? 'एष' इससे बुद्ध्युपहितका ही परामर्श होनेसे शुद्धात्मनिष्ठत्वकी गतिमें उक्ति न होनेसे। और मोक्षमें तो बुद्धिके उपरमसे तन्निष्ठत्वको असम्भावितत्व होनेसे वैषम्य है, सर्व साम्यको दृष्टान्ततामें अप्रयोजकत्व होनेसे तद्बलेन=शकटरूपदृष्टान्तके बलसे स्वाभाविकत्वपर्य्यन्तत्वकी असिद्धिसे।

नच—तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामतीत्यादिश्रुतौ प्राणाख्यबुद्धिगतितः प्रागेव जीवे गत्युक्तेः कथं बुद्धिगत्याऽन्यथासिद्धिरिति–वाच्यम्; प्राणाख्यांशेन क्रियाशक्तिशालिना पश्चाद्गतावप्यंशान्तरेण प्रथममुत्क्रमणसम्भवात्। एतेन–' मन उद्क्रामन्मीलित इवाश्नन् पिबन्नास्ते वे'त्यादिश्रुतौ मनउत्क्रमणेऽपि आत्मनस्तदभावश्रवणाच्च कथं तद्गत्यैव गतिमत्वमिति–निरस्तम्; उपहितस्योपाधिनिबन्धनगतिमत्त्वे बुद्ध्यनुपहितस्य तदभावाविरोधात्। नच–तथा ' विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यमि'त्यादिश्रुतौ नामरूपविमोक्षानन्तरमपि गतिश्रवणात् कथं सा औपाधिकीति–वाच्यम्, परमपुरुषस्य सर्वत्र सन्निहितत्वेन तं प्रति गमनासम्भवेन उपैतीत्यस्यापि पूर्ववदर्थान्तरपरत्वात्। अतएव परमज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते स उत्तमः स तत्र पर्य्येतीत्यादिश्रुतिरपि न गत्यर्था।

नचेति। उस गमन करते हुएके पश्चात् प्राण=बुद्धि उत्क्रमण करती है (वृ० ४।४।२) इत्यादिश्रुतिमें प्राणनामक जो बुद्धि है उस बुद्धिकी गतिसे पूर्वमें ही जीवमें गतिकी उक्ति होनेसे बुद्धिकी गतिसे जीवकी गतिकी अन्यथा सिद्धि कैसे है, इति नच वाच्यम्, क्यों? क्रियाशक्तिशालिप्राणाख्यांशसे पश्चात् गति होनेपरभी अंशान्तरसे प्रथम उत्क्रमणका सम्भव होनेसे। एतेनेति। 'मन उद्क्रामन् मीलित इवाश्नन् पिबन्नास्ते' इत्यादि श्रुतिमें मनका उत्क्रमण होनेपरभी आत्माके उत्क्रमणके अभावके श्रवणसे मनकी गतिसें ही आत्मामें गतिमत्व कैसे हैं यह कथन निरस्त हुआ, एतेन शब्दका अर्थ दिखलाते हैं=उपहितको

उपाधिनिबन्धनगतिमत्त्व होनेपर बुद्ध्यनुपहितमें गत्यभावके अविरोधसे । नचेति । 'तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्' (मुं० ३।२।८) इत्यादिश्रुतिमें नाम तथा रूप इन दोनोंके विमोक्षके बादभी गतिके श्रवणसे वह गति औपाधिकी कैसे है; इति नच वाच्यम्, क्यों ? परमपुरुषको सर्वत्र सन्निहितत्व होनेसे, उसके प्रति गमनके असम्भवसे 'उपैति' इसकोभी अर्थान्तरपरत्व होनेसे । अतएव=परमपुरुषके प्रति गमनके असम्भवसे ही परं ज्योतिरुपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यते (छा० ८।३।४) इत्यादिश्रुतिभी गत्यर्था नहीं है ।

ननु–बुद्धिगतेन गत्यादिना किं तदवच्छिन्नात्मनि गत्यादि जायते ? उत बुद्धिगतमेवारोप्यते उतोपचर्य्यते ? नाद्यः घटगत्या तदवच्छिन्ने नभसि गत्यन्तरादर्शनात् । अन्यथा यतो घटस्य बुद्धेर्वा गतिः तत्राकाशस्यात्मनो वा सच्छिद्रत्वं स्यात् । अन्यत्र द्विगुणीकृत्य वृत्तिश्च स्यात् । नच–प्रतिबिम्बपक्षे नोक्तदोष इति–वाच्यम्; तस्य वस्त्वन्तरत्वमते उक्तदोषाभावेऽपि दर्पणाहता दृष्टिः परावृत्य स्वमुखं गृह्णातीति त्वन्मते उपाधिगत्या बिम्बे न गतिरिति प्रतिबिम्बेऽप्यस्यायोगात् । नान्त्यौ; कर्तुरवच्छिन्नस्यैतदात्मप्रदेशस्य न भोगायतनलोकप्राप्तिः किन्तु गत्या बुद्ध्यावच्छिन्नस्य प्रदेशान्तरस्य वेति स्वीकारे कृतहान्यादिप्रसङ्गात्, कर्तुर्भोक्तुश्चावच्छिन्नस्य भिन्नत्वात् अभिन्ने वा अनवच्छिन्ने कर्तृत्वाद्यभावादिति–चेन्न; उपाधिगत्या उपहिते गतिप्रयोग औपचारिक एव । नचैवं कृतहान्याद्यापत्तिः, यद्बुद्ध्यवच्छिन्नेन येनैवात्मना यत् कृतं तदवच्छिन्नेन तेनैव भोगजननात् । नह्यात्मनो निरवयवस्य प्रदेशोऽस्ति । यत्तु अवच्छिन्नस्य कर्तुर्भोक्तुर्भेद इत्युक्तम् तन्न अवच्छेद्यात्मनो अवच्छेदकबुद्धेश्चैक्येऽवच्छिन्ने भेदस्य वक्तुमशक्यत्वात् ।

शङ्कते नन्विति । बुद्धिगत जो गत्यादि है उस गत्यादिसे क्या तदवच्छिन्न=बुद्ध्यवच्छिन्न आत्मामें गत्यादि उत्पन्न होता है, या बुद्धिगत ही गत्यादि बुद्ध्यवच्छिन्नमें आरोपित होता है, अथवा बुद्ध्यवच्छिन्न आत्मामें बुद्धिगत गत्यादि उपचलित होता है ? । नाद्यः= प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है–घटकी गतिसे घटावच्छिन्नाकाशमें गत्यन्तरके अदर्शनसे, अन्यथा जहाँसे घटकी या बुद्धिकी गति होगी तहाँपर आकाशको तथा आत्माको सच्छिद्रत्व होगा और अन्यत्र आकाश तथा आत्मा इन दोनोंकी द्विगुणीकृत्य वृत्ति होगी; प्रतिबिम्बपक्षमें उक्त दोष नहीं है, इति नच वाच्यम्; क्यों तस्य=प्रतिबिम्बको वस्त्वन्तरत्व है इस मतमें उक्त दोषका अभाव होनेपरभी दर्पणसे आहत हुई दृष्टि पलटकर स्वमुखको ग्रहण करती है इस तुम्हारे मतमें उपाधिकी गतिसे बिम्बमें गति नहीं है किन्तु प्रतिबिम्बमें सा=वह गति है इस कथनके अयोगसे, नान्त्यौ=द्वितीय तथा तृतीय ये दोनों पक्षभी नहीं बन सकते हैं,–अवच्छिन्न एतदात्मप्रदेशरूप जो कर्त्ता है उस कर्त्ताको भोगायतनलोककी प्राप्ति नहीं है किन्तु गतबुद्ध्यवच्छिन्न प्रदेशान्तरको भोगायतनलोककी प्राप्ति है, ऐसा स्वीकार होनेपर कृतहान्यादिके प्रसङ्गसे,–अवच्छिन्नरूप कर्त्ता तथा भोक्ताको भिन्नत्व होनेसे, या अनवच्छिन्नत्वरूप अभिन्नमें कर्तृ-

त्वादिके अभावसे; इति चेन्न; उपाधिकी गतिसे उपहितमें गतिका प्रयोग औपचारिक ही है। ऐसा होनेपर कृतहान्यादिकी आपत्ति है, नच=कृतहान्यादिकी आपत्ति नहीं है, क्यों? यद्बुद्ध्यवच्छिन्न जिस आत्मासे जो किया गया है तदवच्छिन्नेन=तद्बुद्ध्यवच्छिन्न तिस आत्मासे ही भोगका जनन होनेसे। क्योंकि निरवयव आत्मामें प्रदेश नहीं है और जो कहा है कि, अवच्छिन्न कर्त्ता तथा भोक्ताका भेद है, यह ठीक नहीं क्यों? अवच्छेद्यरूप आत्माका और अवच्छेदकरूप बुद्धिका ऐक्य होनेपर अवच्छिन्नमें भेदको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे।

नचात्मत्वमणुनिष्ठं द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातित्वात् पृथिवीत्ववदित्यनुमानम् व्यापकाव्रृत्तित्वस्योपाधित्वात्, स्पर्शादिसामानाधिकरण्यस्याप्येवं साधनप्रसङ्गाच्च। जीवो न व्यापकः भूतेतरत्वे सति परत्वासमवायिकारणानाधारत्वे सत्यसर्वज्ञत्वात् शब्देतरानित्यविशेषगुणाश्रयत्वात् संस्काराश्रयत्वाच्च घटवदित्यत्रानात्मत्वमुपाधिः; अनित्यविशेषगुणसंस्कारादीनामुपाधिव्रृत्तित्वेनासिद्धिश्च। एवं महत्वस्यापि सुसाधत्वं च। जीवः अणुः, ज्ञानासमवायिकारणसंयोगाश्रयत्वात् मनोवत् इत्यत्र मध्यमपरिमाणवत्वेन मनसो दृष्टान्तासंप्रतिपत्तेः; जडत्वस्योपाधित्वाच्च। सर्वत्र चात्र व्यापिसुखज्ञानाद्युपलम्भः प्रतिकूलस्तर्कः एकस्याणोरेकदा व्यवहितदेशद्वयावच्छेदासम्भवेन पादे मे सुखं सिरसि वेदना इत्यादियुगपदनुभवविरोधश्च। नच गुणिनः अणुत्वेऽपि गुणव्याप्त्या व्यापिसुखज्ञानानुमानविरोधः गुणव्यतिरेकेणास्यासम्भावितत्वात्। अन्यथा घटव्यतिरेकेणापि घटरूपं स्यात्। प्रदीपादन्यत्र दृश्यमानापि प्रभा न दीपगुणः किन्तु अनुद्भूतस्पर्शं द्रव्यान्तरम्।

आत्मत्व, अणुनिष्ठ है, द्रव्यत्वसाक्षात्व्याप्यजातित्व होनेसे पृथिवीत्ववत्, यह अनुमान अणुत्वका साधक है, नच=नहीं है, क्यों? व्यापकाव्रृत्तित्वको उपाधित्व होनेसे। पृथिवीत्वमें व्यापकाव्रृत्तित्व है, अतः उपाधिमें साध्यव्यापकत्व है, और साधन आत्मत्वमें है, परन्तु वहाँ व्यापकाव्रृत्तित्वरूप उपाधि नहीं अतः उपाधिमें साधनाव्यापकत्व है। और इसी प्रकारसे स्पर्शादिके सामानाधिकरण्यके साधनके प्रसङ्गसेभी यह अनुमान असङ्गत है। जीव, व्यापक नहीं है, भूतेतरत्वविशिष्टपरत्वासमवायिकारणानाधारत्वविशिष्ट-असर्वज्ञत्व होनेसे, शब्द-भिन्न-अनित्यविशेषगुणाश्रयत्व होनेसे, तथा संस्काराश्रयत्व होनेसे घटवत्; इन अनुमानोंम अनात्मत्व उपाधि है और अनित्यविशेषगुण और संस्कारादिकोंको उपाधिव्रृत्तित्व होनेसे स्वरूपासिद्धिभी है। और इसी रीतिसे महत्त्वका सुसाधत्व है। जीव, अणु है, ज्ञानका असमवायिकारण जो संयोग तादृश संयोगका आश्रयत्व होनेसे मनोवत्। इत्यत्र=इस अनुमानमें मनको मध्यमपरिमाणवत्त्व होनेसे उसके दृष्टान्तताकी असम्प्रतिपत्तिसे। और जडत्वको उपाधित्व होनेसेभी। और इन सर्व अनुमानोंमें व्यापिसुखज्ञानादिका उपलम्भ प्रतिकूलतर्क है। और एक अणुका एक कालमें व्यवहितदेशद्वयसे अवच्छेदका असम्भव होनेसे पादमें मुझको सुख है, और शिरमें वेदना है, इत्यादिरूप युगपदनुभवका विरोधभी है। नचेति। गुणिको अणुत्व

होनेपरभी गुणकी व्याप्तिसे=गुणके सम्बन्धसे व्यापिसुखज्ञानादिके अनुभवका अविरोध है, नच=अविरोध नहीं है, क्यों ? गुणिव्यतिरेकेण=गुणिका सम्बन्ध न होनेपर अस्य=गुण-सम्बन्धको असम्भावितत्व होनेसे अन्यथा घटका व्यतिरेक होनेपरभी घटका रूप होगा। और प्रदीपसे अन्यत्र दृश्यमानभी प्रभा दीपका गुण नहीं है किन्तु अनुद्भूतस्पर्शवाला द्रव्यान्तर है।

नच—जातिसमवायादेर्धर्मितोऽन्यत्र वर्तमानत्ववदत्रापि गुणस्य बुद्धेरन्यत्रोपलम्भः स्यात्, इति वाच्यम्; जातिसमवायादिवदत्रापि तर्हि व्यापकत्वप्रसङ्गात्, धर्मिणो विहायापि स्थितौ तस्या नियमकाभावात्। नच कारणनियमान्नियमः तर्ह्यव्यवहितसमवायिकारणनियमादेव नियमे अणुमात्रदेशता दुर्वारैव, नच वह्नेरौष्ण्यं वहिर्नोपलभ्येत, समीपवृत्त्यनुद्भूतरूपतेजसस्तदिति उच्यमाने वह्नेरौष्ण्यं न सिध्येदिति—वाच्यम्; बाधके सति सविधे तेजोऽन्तरकल्पनेऽपि दृश्यमानवह्नावनुभूमानोष्णस्पर्शे बाधकाभावेन तस्मिंस्तेजोन्तरत्वकल्पनस्याशक्यत्वात्। एतेन केतक्यादौ परितो गन्धानुभवात् गुणानां गुणिनैरपेक्ष्यम्, नच तत्र केतक्यवयवानां परितः प्रसरतां ते गन्धाः तर्हि द्रव्यक्षयप्रसङ्गात् न चावयवान्तरप्रवेशात्तदक्षयः स्फटिककरण्डिकास्थकस्तूर्यादौ अवयवान्तरप्रवेशकल्पने मानाभावात् इति—निरस्तम्; समवायिनैरपेक्षे कार्यस्य निराश्रयत्वापत्तौ तत्प्रत्यासत्तिनिबन्धनकारणान्तरस्याप्युच्छेदे कार्यत्वहानेरेव तत्र कल्पनायां मानत्वात्।

शङ्कते नचेति। जैसे जातिसमवायादिको धर्मिसे अन्यत्र विद्यमानत्व है, तैसे अत्रापि=आत्मामेंभी बुद्धिरूप गुणका अन्यत्र उपलम्भ हो इति नच वाच्यम् क्यों ? तब जातिसमवायादिवत् आत्मामेंभी व्यापकत्वके प्रसङ्गसे। और धर्मिको छोडकरभी बुद्धिकी स्थिति होनेपर तस्याः=उस बुद्धिको नियामकके अभावसे—अमुकबुद्धि अमुककी है इसका कोई नियामक न होगा, कारणके नियमसे नियम है, नच=ऐसा नहीं कह सकते हो क्यों ? तब तो अव्यवहित समवायी कारणके नियमसे ही नियम होनेपर बुद्धिमें अणुमात्रदेशता दुर्वारा ही है। नचेति। वन्हिका औष्ण्य वन्हिसे वहिर्देशमें उपलब्ध न होगा, और समीपवर्ति जो अनुद्भूतरूपवाला तेज है, उस तेजका वह औष्ण्य है, इस रीतिसे कहाजानेपर वन्हिका औष्ण्य न सिद्ध होगा, इति नच वाच्यम् क्यों ? बाधक होनेपर सविधे=नजदीकमें तेजोन्तरका कल्पन होनेपरभी दृश्यमानवन्हिमें अनुभूयमान उष्णस्पर्शमें बाधकके अभावसे तस्मिन्=उक्तविधस्थलमें तेजोन्तर कल्पनको अशक्यत्व होनेसे। एतेनेति। केतक्यादिमें सर्वतरफसे गन्धका अनुभव होनेसे गुणोंको गुणिनिरपेक्षत्व है। नचेति। तत्र=उक्तस्थलमें सर्वतरफ फैलनेवाले जो केतकीके अवयव हैं उन अवयवोंके वे गन्ध हैं। नच=ऐसा नहीं हो सकता है क्यों ? तर्हि=तब द्रव्यके क्षयके प्रसङ्गसे। अन्य अवयवोंके प्रवेशसे तदक्षयः=द्रव्यका अक्षय है; नच=ऐसा नहीं हो सकता है क्यों ? स्फटिककरण्डिकामें स्थित कस्तूर्यादिमें अवयवान्तरोंके प्रवेशकल्पनमें प्रमाणके अभावसे, यह कथन निरस्त हुआ, एतेन=शब्दका अर्थ दिखलाते हैं—समवायिनिरपे-

क्षत्व होनेपर कार्य्यमें निराश्रयत्वकी आपत्ति होनेपर तत्प्रत्यासत्तिनिबन्धन=समवायिकरण-प्रत्यासत्तिनिबन्धन कारणान्तरकाभी उच्छेद होनेपर कार्य्यत्वकी हानिको ही तत्र=अवयवान्तरप्रवेशकल्पनामें प्रमाणत्व होनेसे ।

यत्तु—नित्यः सर्वगतः स्थाणुरित्यत्र 'नित्ये सर्वगते विष्णावणुर्जीवो व्यवस्थितः ।' इति स्मृत्यन्तरानुसारात् सर्वगतस्थः अणुश्चेति विग्रहः इति—तन्न; 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' 'स वा एष महानज आत्मे'ति श्रुत्यनुसार्यर्थस्यैवोचितत्वात् अणुरिति पदच्छेदे तद्विरोधापत्तेः । यत्तु क्रमेण नानादेहसम्बन्धादणोरेव सर्वगतत्वोक्तिः—इति; तन्न; अशेषवाचिसर्वशब्दसङ्कोचे मानाभावात् । यदपि प्रत्यक्षादिनैवाव्यापकत्वं साधनीयमित्युक्तं तन्न; प्रतिकूलतर्कस्योक्तत्वात् व्यापकत्वसाधने तस्यैवानुकूलत्वेनाप्रयोजकत्वाभावाच्च । ननु—आत्मनो व्यापकत्वे सर्वाणि शरीराणि सर्वस्यैव भोगायतनानि स्युः सर्वशरीरेन्द्रियादीनां सर्वदा सर्वात्मसंयुक्तत्वात् कर्मणामपि साधारणदेहादिकृतत्वेनासाधारण्यायोगात्, अहन्त्वारोपादेरपि नियामकमूलसम्बन्धादेरभावेन नैयत्यायोगादिति—चेन्न; तवापीश्वरस्य व्यापकत्वेन सर्वशरीराणां तद्भोगजनकत्वापत्तेः समानत्वात् ।

यत्त्विति । 'नित्यः सर्वगतः स्थाणुः' (गी० २।२४) यहाँपर नित्य तथा सर्वगत-विष्णुमें अणुरूप जीव व्यवस्थित है इस स्मृत्यन्तरके अनुसार 'सर्वगतस्थः अणुश्च' ऐसा विग्रह है इति यत् तत् तु न क्यों ? 'आकाशवत्सर्वगतश्च नित्यः' 'स वा एष महानज आत्मा' (बृ० ४।४।२४) इत्यादिरूप जो श्रुतियाँ हैं तादृश श्रुत्यनुसारि जो अर्थ तादृश अर्थको ही उचितत्व होनेसे 'अणुः' ऐसा पदच्छेद होनेपर उक्त श्रुतिओंके विरोधकी आपत्तिसे और जो कहा है कि,—क्रमसे नाना देहोंके साथ सम्बन्ध होनेसे अणुमें ही सर्वगतत्वकी उक्ति है वह ठीक नहीं, क्यों अशेषवाचि जो सर्वशब्द उसके सङ्कोचमें प्रमाणके अभावसे । और जो कहा है कि,—प्रत्यक्षत्वादिरूप हेतुसे ही अव्यापकत्व साधनीय है, वह ठीक नहीं क्यों ? अव्यापकत्व साधनमें प्रतिकूलतर्कको उक्तत्व होनेसे और व्यापकत्व साधनमें उस तर्कको ही अनुकूलत्व होनेसे प्रत्यक्षत्वको व्यापकत्व साधनमें अप्रयोजकत्वके अभावसे भी=प्रत्यक्षत्वहेतु व्यापकत्वसाधनमें समर्थ है । शङ्कते नन्विति । आत्माको व्यापकत्व होनेपर सर्व शरीर सर्वके भोगके आयतन होंगे; सर्व शरीर तथा इन्द्रियादिकोंको सर्वकालमें सर्व आत्माओंके साथ संयुक्तत्त्व होनेसे । और कर्मोंकोभी साधारणदेहादिकृतत्व होनेसे असाधारण्यके अयोगसे । और अहन्त्वारोपादिकेभी नियामकमूलसम्बन्धके अभावसे नैयत्यके अयोगसे इति चेन्न; क्यों ? तुह्मारे मतमेंभी ईश्वरको व्यापकत्व होनेसे सर्वशरीरोंको ईश्वरमें भोगजनकत्वकी आपत्तिको समानत्व होनेसे ।

नच—तददृष्टाजन्यत्वात्तत्संयुक्तत्वेऽपि न तत्र भोगजननम् तर्हीहापि समम् । नैच—कर्मणामेव कथमसाधारण्यम् ? पूर्वतरकर्मजन्यत्वात् । एवमनादित्वैव । अन्यथा ईशात्मनि

तत्राप्यगतेः। चैत्रभोगजनकाङ्कुरादेः तददृष्टजन्यत्वात् आत्मसमवेतस्यादृष्टस्य साक्षादङ्कुरासम्बन्धात् आत्मद्वारकसम्बन्धस्य वाच्यतायामात्मनो विभुत्वम्। नच—चैत्रभोगाहेतोरप्यङ्कुरादेरात्मद्वाराऽदृष्टसम्बन्धेऽपि तदजन्यत्वेन तस्यातन्त्रत्वमिति—वाच्यम् जनकादृष्टनिरूपितात्मद्वारकसन्निकर्षस्यातिप्रसङ्गाभावेन तन्त्रत्वात् जनकता तु अदृष्टस्य फलैकोन्नेया। एवमेवोपपत्तौ प्रतियोग्यभाववाच्यवाचकज्ञानज्ञेयादाविवादृष्टकार्ययोरपि सम्बन्धान्तरस्वीकारे मानाभावः। यत्तु कारीर्यदृष्टस्य वृष्ट्या सह तदुद्देशेन विहितक्रियाजन्यत्वादिरूपः सम्बन्धोऽस्तीत्युक्तं तन्न, तत्रापि यजमानात्मद्वारकसंयुक्तसमवायस्यैव जलक्षरणादिप्रयोजकत्वात्। एतच्च सर्वं पररीत्योक्तम्। स्वमते च व्यवस्था प्रागुक्तैव।

नचेति तददृष्टाजन्यत्वात् सर्वशरीरोंको ईश्वरीय अदृष्टसे जन्यत्व न होनेसे तत्संयुक्तत्वेऽपि=शरीरोंको ईश्वरके साथ संयुक्तत्व होनेपरभी तत्र=ईश्वरमें भोगकी उत्पत्ति नहीं है, तर्हि=तत्र प्रकृतमें भी सम है। कर्मोंकाही कैसे असाधारण्य है। नच=ऐसी शङ्का नहीं करना; क्यों ? पूर्वमें जो तत्कर्म तज्जन्यत्व होनेसे। इस रीतिसे अनादिता ही है=पूर्व पूर्व कर्मसे उत्तर उत्तर कर्म उत्पन्न हुआ करते हैं, इस रीतिसे अनादिता ही है। अन्यथा=ऐसा नियम न मानों तो तुह्मारे मतमेंभी ईशात्मामें अगति है, अतः ऐसा मानना ही उचित है चैत्र भोगजनक अङ्कुरादिको चैत्रअदृष्टजन्यत्व होनेसे आत्मसमवेत अदृष्टका साक्षात् अंकुरके साथ सम्बन्ध न होनेसे आत्मद्वारकसम्बन्धकी वाच्यता होनेपर आत्माको विभुत्व है। नचेति। चैत्रके भोगका अहेतु जो अंकुरादि है उस अङ्कुरादिके साथ आत्मद्वारक अदृष्टका सम्बन्ध होनेपरभी तदजन्यत्वेन=उक्तविध=अदृष्टजन्यत्व न होनेसे तस्य=आत्मद्वारकादृष्टसम्बन्धको जनकत्वमें तन्त्रत्व नहीं है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? जनक जो अदृष्ट तादृश अदृष्टनिरूपित आत्मद्वारक सन्निकर्षको अतिप्रसङ्गाभावसे तन्त्रत्व होनेसे। और अदृष्टनिष्ठजनकता तो फलसे ही उन्नेय है। उक्तप्रकारसे ही उपपत्ति होनेपर प्रतियोगी तथा अभाव इन दोनोंमें और वाच्य तथा वाचक इन दोनोंमें तथा ज्ञान और ज्ञेय इन दोनोंमें जैसे सम्बन्धान्तरका स्वीकार होता है, तैसे अदृष्ट और कार्य इन दोनोंमेंभी सम्बन्धान्तरके स्वीकारमें प्रमाणका अभाव है और जो कहा है कि कारीरीजन्य अदृष्टका वृष्टिके साथ वृष्ट्युद्देशेन विहितक्रियाजन्यत्वादिरूप सम्बन्ध है, वह ठीक नहीं क्यों ? तत्रापि=उक्तस्थलमेंभी यजमानात्मद्वारकसंयुक्तसमवायको ही जलक्षरणादिके प्रति प्रयोजकत्व होनेसे। यह सर्व न्यायकी रीतिसे कहा है। और स्वमतमें व्यवस्था पूर्वमें ही कही है—देह तथा आत्मा इन दोनोंका संयोग सम्बन्ध नहीं हैं; किन्तु कल्पिततादात्म्यसम्बन्ध है। और वहभी कर्ममूलक है और वह कर्मभी पूर्वकर्ममूलक है; अनादित्व होनेसे, और अनिर्वाच्यत्व होनेसे तथा अनुकूलत्व होनेसे अनवस्था दोष नहीं है इत्यादिरूप कहा है।

तथाच 'बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव ह्याराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्ट' इति श्रुतौ बुद्धिगुणेनाराग्रमात्रत्वोक्तेः स्वाभाविकमेव विभुत्वम्। न चात्रात्मगुणेनाराग्रमात्रत्वं बुद्धेर्गुणेन चावरत्वमिति व्युत्क्रमयोजना; तद्यथाणुनश्चक्षुषः प्रकाशो व्याप्तः। एवमेवास्य पुरुषस्य

प्रकाशो व्याप्त अणुर्ह्येवैषपुरुष इति श्रुत्यनुसारादिति–वाच्यम्; व्यापकत्वबोधकानेकश्रुतिविरोधेन बुद्धेर्गुणेनेत्यदनुसारेण चास्या एव औपाधिकाणुत्वपरत्वात् पुरुषस्येति षष्ठ्या 'राहोः शिरः' इत्यादिवदुपचरितार्थत्वाच्च तथाच न व्युत्क्रमेणान्वयः तस्मादणुत्वं नात्मभेदकम्।

इति अद्वैतसिद्धौ आत्मनोऽणुत्वभङ्गः॥

स्थितानि ग्रन्थेषु प्रकटमुपदिष्टानि गुरुभिर्गुणो वा दोषो वा न मम परवाक्यानि वदतः।
परंत्वस्मिन्नस्ति श्रमफलमिदं यन्निजधिया श्रुतीनां युक्तीनामकलि गुरुवाचां च विषयः॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीविश्वेश्वरसरस्वतीश्रीचरणशिष्य-
श्रीमधुसूदनसरस्वतीविरचितायामद्वैतसिद्धौ आत्म-
निरूपणं नाम द्वितीयः परिच्छेदः॥

तथाचेति। फलतः 'बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव ह्याराग्रमात्रो ह्यवरोऽपि दृष्टः' (श्वे० ५।८) इस श्रुतिमें बुद्धिगुणसे आराके अग्रमात्रत्वकी उक्ति होनेसे विभुत्व ही स्वाभाविक है। चर्मशकलकारिशस्त्रविशेषका नाम आरा है। शङ्कते नचेति। यहाँ आत्मगुणसे आराग्रमात्रत्व है और बुद्धिगुणसे अवरत्व है, इस रीतिसे विपरीत क्रमसे योजना है 'सो जैसे अणुरूप चक्षुका प्रकाश व्याप्त है' इसी रीतिसे इस पुरुषका प्रकाश व्याप्त है अणुरूप यह पुरुष है इस श्रुतिके अनुसार, इति नच वाच्यम्; क्यों? व्यापकत्वबोधक जो अनेक श्रुतियाँ उन्हींके साथ विरोध होनेसे और 'बुद्धेर्गुणेन' इसके अनुसार इस श्रुतिको ही औपाधिकाणुत्वपरत्व होनेसे और पुरुषस्य प्रकाशः=इस षष्ठीको 'राहोः शिरः' इत्यादिवत् उपचारितार्थत्व होनेसे 'फलतः विपरीतक्रमसे' अन्वय नहीं है ततः अणुत्व आत्मभेदक नहीं है।

ग्रन्थोंमें स्थित तथा प्रकट गुरुओंसे उपदिष्ट एवम्भूत परवाक्योंको कहनेवाले मुझको गुण या दोष नहीं है। परन्तु इस ग्रन्थमें श्रमका फल यह है कि,–अपनी बुद्धिसे श्रुतियुक्तिगुरुवाक्योंका विषय आकलित हुआ है=इस ग्रन्थमें प्रतिपाद्यविषय तो प्रथमसे ही यत्र तत्र निक्षिप्त हैं परन्तु उन्होंका स्वीयबुद्धिमें आकलनकर यथास्थान सुव्यवस्थित करनेमें ही मदीय प्रयत्नका साफल्य है॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः॥

इति सरलायामात्मनोऽणुत्वभङ्गः॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीरामाश्रमशिष्यब्रह्मचारि-
श्रीरामेश्वरदत्तशर्मविरचितायां सरलायामात्म-
निरूपणं नाम द्वितीयः परिच्छेदः॥

अथ तृतीयः परिच्छेदः ।

अथ मनननिदिध्यासनयोः श्रवणाङ्गत्वोपपत्तिः ।

तदेवमैकात्म्ये व्यवस्थिते तत्साक्षात्काराय श्रवणमङ्गि, मनननिदिध्यासने तदङ्गतया मुमुक्षुभिरनुष्ठेये । तदुक्तं विवरणे–' श्रवणमङ्गि; प्रमाणस्य प्रमेयावगमं प्रत्यव्यवधानात्, मनननिदिध्यासने तु चित्तस्य प्रत्यगात्मप्रवणसंस्कारपरिनिष्पन्नतदेकाग्रवृत्तिकार्यद्वारेण ब्रह्मानुभवहेतुतां प्रतिपद्येते ' इति फलोपकार्यङ्गे, ननु–श्रवणं तावद्विचाररूपं शाब्दज्ञाने न कारणम्, वेदेन धर्म इव ब्रह्मणि प्रमीयमाने विचारस्यानुमानादौ तर्कस्येव शब्दरूपे तज्ज्ञानरूपे वा करणे इतिकर्त्तव्यतामात्रत्वादिति–चेन्न; शब्दशक्तितात्पर्यावधारणं तावत् विचारः अवधृततात्पर्यकश्च शब्दः करण मिति विचारस्य करणकोटिप्रवेशेनेतिकर्त्तव्यतात्वाभावात् अङ्गित्वनिर्णयात् ।

अथ सरलायां मनननिदिध्यासनयोः श्रवणाङ्गत्वोपपत्तिः ।

उक्त प्रकारसे ऐक्यात्म्यके सुव्यवस्थित होनेपर तत्साक्षात्काराय=ऐकात्म्यसाक्षात्कारके लिए श्रवण अङ्गि=प्रधान है, और मनन तथा निदिध्यासन ये दोनों तदङ्गतया=श्रवणाङ्गतया मुमुक्षुओंसे अनुष्ठेय हैं । सो कहा है; विविरणमें–श्रवण अङ्गि है,=प्रमाणको प्रमेयज्ञानके प्रति अव्यवधानात्=करणत्व होनेसे=प्रमास्वरूपके प्रति प्रमाणको कारणत्व होनेसे । और मनन तथा निदिध्यासन ये दोनों तो चित्तका जो प्रत्यगात्मप्रवण संस्कार=ब्रह्मात्मैक्यमात्रविषयकसंस्कारसे परिनिष्पन्न जो तदेकाग्रवृत्ति=विपरीतभावनाशून्य ब्रह्मात्मैक्याकारवृत्ति तादृश वृत्तिरूपकार्य द्वारा ब्रह्मानुभवकी हेतुताको प्राप्त होते हैं । अतः फलोपकारी अङ्ग है । शङ्कते नन्विति । विचाररूप जो श्रवण है वह शाब्दज्ञानमें करण नहीं है–वेदसे प्रमीयमानधर्ममें विचारको जैसे इतिकर्त्तव्यतामात्रत्व है और अनुमानमें जैसे तर्कको इतिकर्तव्यतामात्रत्व है, तैसे प्रमीयमान ब्रह्ममें शब्दरूप या शब्दज्ञानरूप जो करण है उस करणमें विचारको इतिकर्त्तव्यतामात्रत्व होनेसे इति चेन्न; शब्दशक्तिके तात्पर्य्यका अवधारण विचार है । और अवधृततात्पर्यक शब्द शाब्दज्ञानमें करण है इस रीतिसे विचारका करणकोटिमें प्रवेश होनेसे इतिकर्त्तव्यत्वके अभावसे अङ्गित्वका निर्णय है, अतः ।

तदुक्तं विद्यासागरे—अनुमितौ लिङ्गज्ञानवत्तात्पर्यविशिष्टशब्दज्ञानं करणम्; अतस्तात्पर्यावधारणरूपविचारस्याङ्गित्वम् । नच आकांक्षादिसहितशब्दज्ञानस्यैव करणत्वसम्भवे तात्पर्यभ्रमनिरासोपक्षीणतयोक्ततात्पर्यज्ञानस्य करणकोटिप्रवेशे मननादेरपि तत्कोटिप्रवेशः स्यादिति–युक्तम्; एवं साङ्क्षात्क्षादिधियोऽपि निराकाङ्क्षत्वादिभ्रमनि

रासाकत्वमात्रेणोपयोगापत्तौ, आकाङ्क्षादिकमपि करणकोटिप्रविष्टं न स्यात् । न चान्यो-न्याश्रयः; सामान्यतोऽर्थावगमेन तात्पर्यग्रहसम्भवात् । अन्यथा नानार्थादौ विनिगमना-दिकञ्च न स्यात् । तथाच सर्वत्र तात्पर्यज्ञानस्याजनकत्वेऽपि यत्र तात्पर्यसंशयविपर्ययो-त्तरं शाब्दधीः, तत्र तात्पर्यज्ञानस्य हेतुता ग्राह्या संशयविपर्ययोत्तरप्रत्यक्षे विशेषदर्शनस्येव । अतएव न विवरणविरोधोऽपि ।

सो कहा है विद्यासागरमें—अनुमितिमें जैसे लिङ्गविशिष्टज्ञान करण है, तैसे तात्पर्य्याव-धारणविशिष्टशब्दज्ञान शाब्दज्ञानमें करण है; अतः तात्पर्यावधारणरूप जो विचार है उसे अङ्गित्व है । नचेति । आकाङ्क्षायोग्यतादिसहित जो शब्द तादृश शब्दको ही करणत्वका सम्भव होनेपर, तात्पर्यभ्रमनिरासमें उपक्षीणत्व होनेसे, उक्त तात्पर्यज्ञानका करणकोटिमें निवेश होनेपर मननादिकाभी करणकोटिमें प्रवेश होगा इति नच वाच्यम्; क्योंकि ऐसा होनेपर साकाङ्क्षादिधीके भी निराकाङ्क्षत्वादिभ्रमनिरासकत्वमात्रसे उपयोगकी आपत्ति होनेपर, आकाङ्क्षादिकभी करणकोटिमें प्रविष्ट न होंगे । अन्योन्याश्रयः=वाक्यार्थका शाब्दबोधसे पूर्वमें मानान्तरसे निश्चय न होनेसे शाब्दनिश्चय होनेपर ही वाक्यार्थघटित तात्पर्यका निश्चय होगा, और तात्पर्यका निश्चय होनेपर ही शाब्दनिश्चय होगा, अतः अन्योन्याश्रय है; नच=अन्योन्या-श्रय नहीं है; क्यों ? सामान्यतः=तात्पर्यनिश्चयकालीन पदार्थत्वरूपसे पदार्थावगमसे तात्पर्य-ग्रहका सम्भव होनेसे । अन्यथा=तात्पर्यावधारणको शाब्दनिश्चयके प्रति हेतुत्व न माननेपर नानार्थादौ=अन्वययोग्यनानार्थोपस्थापकपदस्थलमें विनिगमनादिक न होगा,=' गां देहि ' इत्यादिमें धेनु तथा भूमि एवं जलादिरूप नाना अर्थोंको अन्वययोग्यत्व होनेसे योग्यता अन्यतम अर्थकी विनिगमिका नहीं हो सकती है, किन्तु तात्पर्य विनिगमक है, यह भाव है । फलतः सर्वत्र तात्पर्यज्ञानको जनकत्व न होनेपरभी जहाँपर तात्पर्यके संशयके बाद या तात्पर्यके भ्रमके बाद शाब्दज्ञान होता है वहाँपर तात्पर्यज्ञानमें शाब्दबोधनिरूपित हेतुता ग्राह्य है, जैसे संशयके उत्तर होनेवाले प्रत्यक्षमें और विपर्ययके उत्तरमें होनेवाले प्रत्यक्षमें विशेषदर्शनको हेतुता है । अतएव=उक्त व्यवस्थापनसे ही विवरणमें उक्त जो श्रवणका अङ्गित्व है उसके साथ विरोध नहीं है=विवरणमें तात्पर्यज्ञानको शाब्दबोधके प्रति हेतुता नहीं मानी है, और तात्पर्यावधार-णात्मक श्रवणको अङ्गित्वभी बतलाया है अतः विरोध प्रतीत होता है उसका समाधान यह हुआ कि,—विवरणोक्त निषेध सार्वत्रिक नहीं है; अतः तात्पर्यसंशयविपर्ययोत्तर जायमान शाब्दबोधके प्रति तात्पर्यनिश्चयको हेतुता विवरणमेंभी अभिप्रेत है, अतः विरोध नहीं ।

ननु—तात्पर्यज्ञानस्य करणकोटिप्रवेशे वेदेऽपि तात्पर्यभ्रमसम्भवात्, बाह्याग-मेऽति तात्पर्यप्रमासंभवात् शाब्दज्ञानकरणस्य दुष्टत्वादुष्टत्वव्यवस्था न स्यात् इति—चेन्न; वेदे कदाचित् कस्यचित् कुत्रचित्तात्पर्यभ्रमेऽपि निर्दुष्टत्वेन यथार्थतात्पर्यमस्त्येव परागमे तु पौरुषेयतया प्रतारणादिमत्पुरुषप्रणीततया दुष्टत्वेन न तथेति दुष्टत्वादुष्टत्वव्यवस्था-

संभवात् तात्पर्यांशस्यावधातादेरिव यागे शब्दे सन्निपत्योपकारकतया करणकोटिप्रविष्टत्वेनाङ्गित्वम् । नच—दृष्टान्ते करणद्रव्यशेषत्वात् तथा सर्वसाम्यस्य दृष्टान्तत्वाप्रयोजकत्वात् । ननु—सन्निपत्योपकारकत्वेऽपि न फलोपकारकमनननिदिध्यासनरूपाङ्गं प्रति शेषिता, अन्यथा प्रयाजादिकंप्रत्यवघातादिः शेषी स्यादिति—चेन्न; विशिष्टयागप्रविष्टतया शेषित्वे इष्टापत्तेः असाधारण्येन शेषिता तु असाधारणफलोपकारकत्वे स्यात् असम्भावनाविशेषनिवृत्तिरूपासाधारणोपकारजनकत्वात् सापि श्रवणस्य सम्भावितैव ।

शङ्कते नन्विति । तात्पर्यज्ञानका करणकोटिमें प्रवेश होनेपर वेदमेंभी तात्पर्यभ्रमका सम्भव होनेसे और वेदबाह्यागममेंभी तात्पर्यप्रमाका सम्भव होनेसे शाब्दज्ञानका जो करण है, उसके दुष्टत्वकी और अदुष्टत्वकी व्यवस्था न होगी, इति चेन्न; क्यों ? वेदमें किसी कालमें किसी पुरुषको कहींपर तात्पर्यभ्रम होनेपरभी निर्दुष्टत्वप्रयुक्त यथार्थतात्पर्य है ही; और परागममें तो पौरुषेयत्वप्रयुक्त प्रतारणादिमत्पुरुषप्रणीतत्व होनेसे दुष्टत्व है, अतः न तथा=उसमें यथार्थ तात्पर्य नहीं है इस रीतिसे दुष्टत्वकी तथा अदुष्टत्वकी व्यवस्थाका सम्भव होनेसे । करणतावच्छेदकघटकत्वेन श्रवणका शेषित्व कहकर, करणके प्रति सन्निपत्याङ्गत्वेनभी श्रवणका शेषित्व दिखलाते हैं । तात्पर्यांशस्य=तात्पर्यावधारणको शब्दमें सन्निपत्योपकारकत्वप्रयुक्त करणकोटिप्रविष्टत्वेनभी अङ्गित्व है जैसे अवघातादिको यागमें सन्निपत्योपकारकत्वप्रयुक्त करणकोटिप्रविष्टत्वेनभी अङ्गित्व है,=जो अङ्ग करणस्वरूपका या करणस्वरूपगतयोग्यताका प्रयोजक होता है उसका नाम सन्निपत्योपकारक है । नचेति । दृष्टान्तमें करणरूप जो द्रव्य तादृशद्रव्यशेषत्व होनेसे तथा=सन्निपत्योपकारकत्वप्रयुक्तकरणकोटिप्रविष्टत्वेन अङ्गित्व है और प्रकृतमें तो तात्पर्यावधारणको किसी द्रव्यकी शेषता नहीं है, फिर दृष्टान्तदार्ष्टान्तिकभाव कैसे बनेगा, नच=ऐसी शङ्का मत करो—सर्वसाम्यको दृष्टान्तत्वका अप्रयोजकत्व होनेसे । शङ्कते नन्विति । श्रवणको सन्निपत्योपकारकत्व होनेपरभी फलोपकारक जो मनननिदिध्यासनरूप अङ्ग है उस अङ्गके प्रति श्रवणको शेषिता नहीं हो सकती है, अन्यथा फलोपकारक प्रयाजादिके प्रति अवघातादि शेषी होगा, इति चेन्न; क्यों ? विशिष्टयागप्रविष्टत्वेन शेषित्वे=प्रयाजादिके प्रति व्रीह्यवघातप्रोक्षणादिका शेषित्व होनेपर इष्टापत्ति होनेसे और असाधारण्येन=अवघातत्वादिरूपसे शेषिता तो असाधारणफलोपकारकत्वे=असाधारणरूप जो मुख्य फलोपकार तादृश फलोपकारका जनकत्व होनेपर होगी, और असम्भावनाविशेषकी निवृत्तिरूप जो असाधारणोपकार तादृश असाधारणोपकारके प्रति जनकत्वात्=असाधाण्येन जनकत्व होनेसे सापि=तात्पर्यावधारणरूप असाधारण्येन शेषिताभी श्रवणमें सम्भावित ही है ।

अतएवोक्तं चित्सुखाचार्यैः—'करणीभूतशब्दगतातिशयहेतुत्वात् श्रवणस्य करणत्वेनाङ्गित्वम्, मनननिदिध्यासनयोस्तु सहकारिभूतचित्तगतातिशयहेतुत्वात् फलोपकार्यङ्गत्वे'ति । नच—एवं सोमयागसहकारिभूतदीक्षणीयाद्यङ्गस्य तद्गतातिशयहेत्वभिपत्र-

ग्रहणादिकं प्रत्यङ्गत्वप्रसङ्ग इति–वाच्यम्; पूर्ववदुक्तोत्तरत्वात्। तदुक्तं तत्त्वशुद्धौ–'करणीभूतशब्दधर्मशक्तितात्पर्यविषयत्वात् श्रवणस्य करणान्तर्भावेनाङ्गित्व'मिति। नच–शब्देनापरोक्षज्ञप्तौ चोत्पाद्यायां श्रवणस्याप्यपेक्षिततया त्रयाणामपि फलोपकार्यङ्गत्वमेवेति कथं परस्परमङ्गाङ्गिभाव इति–वाच्यम्; मननिदिध्यासने फले जनयितव्ये शब्दस्य सहकारिणं संपादयतः श्रवणं तु तस्य जनकतामेवेति–विशेषात्। यत्र च नैवं तत्र तुल्यवदङ्गतैव।

अतएव चित्सुखाचार्य्यने तत्त्वप्रदीपिकाके तृतीय परिच्छेदमें कहा है=करणीभूत जो शब्द तद्गत अतिशयका हेतुत्व होनेसे श्रवणको करणत्वेन अङ्गित्व है। और मनन तथा निदिध्यासन इन दोनोंको तो सहकारिभूत जो चित्त तद्गतातिशयका हेतुत्व होनेसे फलोपकार्यङ्गता है। नचेति। ऐसा होनेपर सोमयागका सहकारिभूत जो दीक्षणीयादिरूप अङ्ग है उस अङ्गको तद्गत=सोमगतातिशयका हेतु जो 'सोममभिषुणोति' 'अश्विनं गृह्णाति' इत्यादि वाक्योक्त अभिषवग्रहणादिक है, उस अभिषवग्रहणादिकके प्रति अङ्गत्वका प्रसङ्ग है, इति नच वाच्यम्; क्यों? पूर्ववत् उक्तोत्तरत्व होनेसे=विशिष्टयागप्रविष्टत्वेन शेषित्वको इष्टत्व होनेसे। इस रीतिसे उक्तोत्तरत्व है। सो कहा है तत्त्वशुद्धिमें–करणीभूत जो शब्द तादृशशब्दधर्म जो शक्ति तादृश शक्तितात्पर्यविषयत्व होनेसे श्रवणको करणान्तभाव होनेसे अङ्गित्व है; शङ्कते नचेति। शब्दसे अपरोक्ष ज्ञानके उत्पाद्य होनेपर तथा अप्रतिबद्धापरोक्ष ज्ञानके उत्पाद्य होनेपर मनन तथा निदिध्यासन इन दोनोंका जैसे अपेक्षित्व है तैसे शब्दसे परोक्षज्ञानके उत्पाद्य होनेपर तथा अप्रतिरुद्ध परोक्षज्ञानके उत्पाद्य होनेपर श्रवणकोभी अपेक्षितत्व होनेसे श्रवण मनन निदिध्यासन इन तीनोंक फलोपकार्य्यङ्गत्व ही है अतः इन्होंमें परस्पर अङ्गाङ्गिभाव कैसे है; इति नच वाच्यम्, क्यों? मनन तथा निदिध्यासन ये दोनों फलके जनयितव्य होनेमें शब्दके सहकारिका सम्पादन करते हैं और श्रवण तो तस्य=शब्दकी जनकता सम्पादन करता है, यह विशेष है, और जहाँपर ऐसा नहीं है वहाँपर तुल्यवत् अङ्गता है।

एतेन—'यो वृष्टिकामो योऽन्नाद्यकामो यः स्वर्गकामः स सौभरेण स्तुवीत, हीषिति वृष्टिकामय निधनं कुर्यात् ऊर्गित्यन्नाद्यकामाय ऊ इति स्वर्गकामाये'ति श्रुतानां वृष्ट्यादिफलाय सोभरेतिकर्त्तव्यतानिधनगतहीषादीनां श्रवणमननादिवत् परस्परमङ्गाङ्गिभावप्रसङ्ग इति–निरस्तम् करणस्वरूपसम्पादकत्वसहकारिसम्पादकत्वरूपतत्प्रयोजकस्यात्रैव तत्राभावात्। नच–एवं करणापूर्वोत्पत्तौ यागार्थस्यावघातादेः परमापूर्वोत्पत्तौ तदर्थः प्रयाजादिः शेष स्यादिति–वाच्यम्; एकफल उभयोर्यागार्थत्वाभावेन विशेषात्। ननु–क्लृप्तं परोक्षज्ञानं लोके शब्दस्य फलम्। तथाच शब्दातिशयाधायकस्य श्रवणस्य साक्षात्कारफलजनकाङ्गित्वं कथमिति–चेत्, साक्षात्त्वं न जातिः नवा इन्द्रियजन्यत्वादिकं नियामकं किन्तुविषयगताज्ञाननिवर्त्तकत्वमेवापरोक्षत्वे प्रयोजकम्। तथाचाज्ञाननिवर्त्तकत्वं विषयपर्यन्तत्वेन। तच्चात्मपर्यन्तत्वादत्रास्त्येवेति नादृष्टकल्पना। इत्थंच प्रकरण-

बलादपि सिद्धमस्याङ्गित्वम्; श्रवणस्य फलसम्बंधेन प्राधान्यसिद्धावितिकर्त्तव्यताकाङ्क्षायाः सम्भवम् ।

एतेनेति । जो वृष्टिकी कामनावाला है और जो अन्नादिकी कामनावाला है तथा जो स्वर्गविषयककामनावाला है वह—अक्षसामाख्य स्तोत्रके ऊपर सौभर नामक सामका गायन करे वृष्टिकामके लिए ' हीष् ' यह निधन करे अन्नाद्यकामके लिए ' ऊर्क ' इस निधनको करे और स्वर्गकामके लिए ' ऊ ' इस निधनको करे—सामके अन्तिमभागका नाम निधन है, इस रीतिसे वृष्ट्यादिकामके लिए श्रुत जो सौभरेतिकर्त्तव्यतारूप निधनगतहीषादि तादृश हीषादिकोंको श्रवणादिवत् परस्पर अङ्गाङ्गिभावका प्रसङ्ग है;—इस विषयका स्पष्टीकरण जैमिनीय मीमांसाके द्वितीय अध्यायके द्वितीय पादके अन्तिम अधिकरणमें देखना चाहिये; ग्रन्थबाहुल्यभयसे यहाँ नहीं उतारते; यह कथन निरस्त हुआ एतेन=शब्दका अर्थ दिखलाते हैं, यहाँकी तरह=प्रकृतकी तरह=श्रवणमननादिकी तरह तत्र=उक्तस्थलमें=हीषादिस्थलमें करणस्वरूपसम्पादकत्व और करणसहकारिसम्पादकत्वरूप अङ्गाङ्गिभावके प्रयोजकका अभाव होनेसे=श्रवण तथा मनननिदिध्यासन इन्होंमें जैसे अङ्गाङ्गिभावप्रयोजक करणस्वरूपसम्पादकत्व और करणसहकारिसम्पादकत्व है, तैसे ' हीष, ऊर्क्, ऊ ' इन्होंमें करणस्वरूपसम्पादकत्व या करणस्वरूपसहकारिसम्पादकत्व नहीं है । नचेति । इसी रीतिसे करणापूर्वकी उत्पत्तिमें यागार्थावघातादिके, परमापूर्वोत्पत्तिमें तदर्थः=परमापूर्वके उत्पादनीय होनेपर यागसहकारि=प्रयाजादि शेष हो जायँगे=यागसे परमापूर्वके जननीय होनेपर प्रयाजादि यागके सहकारि होते हैं, अब करणापूर्वोत्पत्तिमें यागार्थावघातादिके शेष हो जायँगे क्योंकि अवघातादि और प्रयाजादिका पर्य्यवसान परमापूर्वमें होता है; इति नच वाच्यम्; क्यों ? एकफलमें प्रयाजादि और अवघातादि इन दोनोंमें यागार्थत्वके अभावसे विशेष होनेसे=जिस परमापूर्वके जननीय होनेमें प्रयाजादि यागके सहकारि हैं तज्जनकत्वका अवघातत्वादिरूपसे अवघातादिमें अभाव होनेसे विशेष है । शङ्कते नन्विति । लोकमें शब्दका फल परोक्षज्ञान निर्णीतहै, तथाच शब्दमें अतिशयका आधायक जो श्रवण उस श्रवणको साक्षात्कारफलजनकत्वरूप अङ्गित्व कैसे है, इति चेत्, साक्षात्त्वजाति नहीं है और इन्द्रियजन्यत्वादिकभी साक्षात्त्वका नियामक नहीं है । किन्तु विषयगताज्ञाननिवर्त्तकत्व ही अपरोक्षत्वमें प्रयोजक है और अज्ञाननिवर्त्तकत्व विषयपर्यन्तत्वेन होता है । और वह तो= विषयपर्य्यन्तत्वतो आत्मपर्यन्तत्व होनेसे अत्रापि=श्रवणजन्यशाब्दज्ञानमेंभी है ही, फलतः अदृष्टकल्पना नहीं है । इस रीतिसे प्रकरणबलात्=इतिकर्त्तव्यताकाङ्क्षाके बलसे, अस्य= श्रवणको अङ्गित्व सिद्ध हुआ है । श्रवणका फलसम्बन्धेन=वक्ष्यमाणरीतिसे (द्रष्टव्यः श्रोतव्यः) (बृ० २, ४, ६; ४, ५, ६;) एतच्छ्रुत्युक्त फलके साथ सम्बन्ध होनेसे प्राधान्यकी सिद्धि होनेपर इतिकर्त्तव्यताकी आकाङ्क्षाका सम्भव होनेसे ।

ननु—यद्यपि चित्तैकाग्र्यस्य सूक्ष्मवस्तुज्ञानहेतुत्वम् दृष्टमस्ति तथापि मननं न चित्तैकाग्र्यहेतुः युक्त्यनुसान्धानरूपमननस्यायुक्तत्वशङ्कानिवर्तकताया एव दृष्टत्वेन

चित्तैकाग्र्यहेतुत्वकल्पने सति दृष्टहान्यापत्तेः मननविधेरपूर्वविधित्वापाताच्च मतिर्यावद्युक्तते'तिस्मृतिविरोधाच्चेति–चेन्न; तादृक्छङ्कायां सत्यां नानाकोटौ चित्तविक्षेपस्य तस्याश्च निवृत्तौ युक्तत्वेनावधारणविषयकोटौ चित्तप्रवणतायास्तावत्पर्य्यन्तत्वस्य दृष्टत्वेन दृष्टहान्यपूर्वविधिस्मृतिविरोधाभावात् निदिध्यासनस्य तु विपरीतभावनानिवर्तकता सकलसिद्धा। ननु-तन्निवृत्तेः न ज्ञानहेतुता दृष्टा रूप्यसंस्कारानुवृत्तावपि शुक्तिसाक्षात्कारदर्शनादिति–चेत् इयं शुक्तिरिति ज्ञातानन्तरं तद्रजततया ज्ञानमिति स्मृतेर्ज्ञानगोचरसंस्कारसत्वेऽपि तद्रजतमित्यस्मरणेन विपरीतसंस्कारनिवृत्तेस्तत्रापि सत्त्वात् ।

शङ्कते नन्विति । यद्यपि चित्तकी एकाग्रताको सूक्ष्मवस्तुके ज्ञानमें हेतुता दृष्ट है तथापि मनन चित्तकी एकाग्रतामें हेतु नहीं है,–युक्तिओंका अनुसन्धानरूप जो मनन उस मननमें अयुक्तत्वके शङ्काकी निवर्त्तकताको ही दृष्टत्व होनेसे चित्तैकाग्र्यके प्रति हेतुत्व कल्पन होनेपर दृष्टके हानिकी आपत्तिसे और मननविधिमें अपूर्वविधित्वके आपातसेभी और जबतक अयुक्तता हो तबतक मतिः=मनन कर्त्तव्य है इस स्मृतिके साथ विरोधसेभी, इति चेन्न; क्यों ? तादृक्छङ्कायां सत्याम्=अयुक्तत्वशङ्काके विद्यमान होनेपर नाना कोटिओंमें चित्तके विक्षेपको दृष्टत्व होनेसे और तस्याः=अयुक्तत्वके शङ्काकी निवृत्ति होनेपर युक्तत्वेन जो अवधारण तादृश अवधारणविषयक जो कोटि तादृश कोटिम चित्तकी प्रवणतामें तावत्पर्यन्तत्वके देखनेसे दृष्टकी हानि और अपूर्वविधि और स्मृतिविरोध इन सर्वके अभावसे; और निदिध्यासनकोतो विपरीत भावनाकी निवर्त्तकता सकलसिद्ध है । नन्विति । तन्निवृत्तेः=विपरीतभावनाकी निवृत्तिको ज्ञानके प्रति हेतुता नहीं देखी गई है–रूप्यसंस्कारकी अनुवृत्ति होनेपरभी शुक्तिसाक्षात्कारके देखनेसे,–इति चेत्, क्यों ? 'इयं शुक्तिः' इत्याकारक ज्ञानके वाद तद्रजततया ज्ञातम् । इत्याकारक स्मृतिसे ज्ञानगोचर संस्कारका सत्त्व होनेपरभी 'तद्रजतम्' इत्याकारकस्मरणके न होनेसे विपरीत संस्कारकी निवृत्तिका उक्तस्थलमेंभी सत्व होनेसे ।

ननु—शब्दसामर्थ्यरूपेण लिङ्गेन 'ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमान' इत्यादिवाक्येन निदिध्यासनपदस्य बर्हिर्देवसदनमित्यादाविव साक्षात्काररूपफलसम्बन्धेन शक्तिरिति शब्दसामर्थ्याभावात्। वाक्येऽपि योग्यतावलाच्छ्रवणमेवाध्याह्रियते। तथाच्च तच्छ्रवणाद्ध्यायमानो निष्फलं ब्रह्म पश्यतीत्यनुकूलार्थस्यैव पर्यवसानात् । तस्माद् "द्रष्टव्यः श्रोतव्य" इति दर्शनेनाव्यवहितपाठरूपसन्निधानात् श्रवणस्य दर्शनेन साक्षादन्वयादङ्गित्वम् । किञ्चनिदिध्यासनरूपभावनाप्रकर्षजन्यत्वे साक्षात्कारस्य कामिनीसाक्षात्कारवत् अप्रमात्वापातः, नच मूलप्रमाणदार्ढ्यात् प्रमात्वं; तर्हि तदेव साक्षात्करणमस्तु ? किं तदुपजीविनान्येन एतेन–निदिध्यासनसहकृतमनःकरणत्वमपि निरस्तम् ;

इत्यद्वैतसिद्धौ मनननिदिध्यासनयोः श्रवणाङ्गत्वम् ।

शङ्कते नन्विति। शब्दसामर्थ्यरूप जो लिङ्ग है उस लिङ्गसे 'ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः (मुं० ३।१।८) इत्यादिवाक्यसे निदिध्यासनका फलके साथ सम्बन्ध होनेसे और प्रकरणसे श्रवणादिक निदिध्यासनमें सन्निपत्य अङ्ग है इति चेन्न; क्यों ? 'बर्हिर्देवसदनं दामि' इत्यादिकी तरह निदिध्यासनपदकी साक्षात्रूप जो फल उस फलके साथ जो सम्बन्ध उस सम्बन्धमें शक्ति नहीं है, इस रीतिसे शब्दसामर्थ्यका अभाव होनेसे। और उक्त वाक्यमेंभी योग्यताके बलसे श्रवण ही अध्याहृत होता है, 'ततस्तु तं' इत्यादिमें 'ततः' इस पदसे परामृष्ट होता है—न चक्षुपा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। 'ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते' (मुं० ३, १, ३;) इत्यादिवाक्यमें कर्मको पूर्वमें उक्तत्व होनेसे श्रवणरूपविचारात्मक उस कर्मका ही यहाँपर परामर्श है कर्मत्वरूपसे कर्मका परामर्श होनेपरभी योग्यताके बलसे श्रवणात्मक कर्मका भान है, और 'न कर्मणा' (महानारा० १०।५; कैव० १।२) यह जो निषेध है वह श्रवणात्मक कर्मसे भिन्न कर्मका निषेध है। तथाच तत्=श्रवणसे ध्यान करता हुआ निष्कल ब्रह्मको देखता है, इस रीतिसे अनुकूल अर्थमें ही पर्यवसान होनेसे। 'ततः द्रष्टव्यः श्रोतव्यः' इस रीतिसे दर्शनसे अव्यवहित पाठरूपसन्निधानसे—श्रवणका दर्शनके साथ साक्षात् अन्वय होनेसे श्रवणको अङ्गित्व है। किञ्च निदिध्यासनरूपभावनाप्रकर्षजन्यत्व होनेपर साक्षात्कारको कामिनीसाक्षात्कारवत् अप्रमात्वका आपात है। मूलशब्दरूप प्रमाणके दार्ढ्यसे उस साक्षात्कारमें प्रमात्व है, नच=ऐसा नहीं कहना—तब तो तदेव=मूलप्रमाण ही साक्षात्कारमें करण रहो तदुपजीवि अन्यप्रमाणसे क्या प्रयोजन है। इस कथनसे निदिध्यासन सहकृतमनका करणत्वभी निरस्त हुआ॥

इति सरलायां मनननिदिध्यासनयोः श्रवणाङ्गत्वम्॥

अथ विवरणकारोक्तनियमोपपत्तिः।

तच्च श्रवणादिकं विषयावगमं प्रत्यन्वयव्यतिरेकसिद्धोपाय इति तद्विधेर्नापूर्वविधित्वम्; किन्तु नियमविधित्वमेव। ननु—अत्रश्रवणस्यापरोक्षफलं प्रति साधनत्वम्, तच्चान्यतो नावगतमिति अपूर्वविधित्वमिति—चेन्न; गान्धर्वशास्त्रविचारे षड्जादिसाक्षात्कारे हेतुताया दृष्टत्वात्। नच—एतावता शास्त्रविचारः सर्वत्रार्थसाक्षात्कारहेतुरिति न सिद्धम्, धर्मशास्त्रविचारे व्यभिचारादिति—वाच्यम्; अपरोक्षार्थकशास्त्रविचारत्वेन साक्षात्कारजनकतायास्तद्दर्शनबलेन सिद्धेः। आत्माच षड्जादिवदपरोक्षः न धर्मादिः। नच—अपरोक्षे विचारवैयर्थ्यम् नहि यद्यदपरोक्षं तत्तद्विचार्यत इति नियम इति—वाच्यम्; अपरोक्षे विचार्यत्वनियमाभाववदविचार्यत्वनियमोऽपि नास्ति षड्जादावपरोक्षेऽपि विचार्यत्वदर्शनात् तद्वदेव साफल्यसंभवाच्च। सन्दिग्धत्वसप्रयोजनत्वयोरेव सर्वत्र विचार्यत्वे प्रयोजकत्वात्।

अथ सरलायां विवरणोक्तनियमोपपत्तिः।

और वह श्रवणादिक विषयके अवगम प्रति अन्वयव्यतिरेकसे सिद्धोपायताक है, अतः श्रवणादिकी विधिको अपूर्वविधित्व नहीं है=श्रवणादिक विषयावगमके प्रति हेतु हैं यह अर्थ

अन्वयव्यतिरेकसे सिद्ध है, अतः साक्षात्कारको उद्देश्यकर श्रवणादिकको विधान करनेवाला जो शास्त्र है उस शास्त्रको अपूर्वविधित्व नहीं है, किन्तु नियमविधित्व ही है शङ्कते नन्विति। अत्र=' द्रष्टव्यः श्रोतव्यः ' यहाँपर श्रवणको अपरोक्ष फलके प्रति साधनत्व कहा गया है तच्च= और अपरोक्षफलके प्रतिसाधनत्व तो अन्य प्रमाणसे अवगत नहीं है, अतः उक्तशास्त्रको अपूर्वविधित्व है इति चेन्न; क्यों ? गान्धर्वशास्त्रके विचारमें षड्जादिसाक्षात्कारनिरूपित हेतुताको दृष्टत्व होनेसे। नचेति। इतनेसे=गान्धर्वशास्त्रके विचारको षडजादिसाक्षात्कारके प्रति हेतुताके ही देखनेसे शास्त्रका विचार सर्वत्र साक्षात्कारका हेतु है यह तो नहीं सिद्ध होता है, धर्मशास्त्रविचारमें व्यभिचार होनेसे; इति नच वाच्यम् क्यों ? अपरोक्षार्थक जो शास्त्र तादृशशास्त्रविचारत्वेन साक्षात्कारकी जनकताको तद्दर्शनबलेन=उक्तदर्शनबलसे सिद्ध होनेसे शास्त्रविचारत्वेन और साक्षात्कारत्वेन हेतुहेतुमद्भाव विवक्षित नहीं है, किन्तु अपरोक्षार्थकशास्त्रविचारत्वेन और साक्षात्कारत्वेन विवक्षित है, इस अर्थके अभिप्रायसे उक्त निदर्शन है। और आत्मा तो षड्जादिवत् अपरोक्ष है धर्मादि नहीं। नचेति। अपरोक्षमें विचारका वैयर्थ्य है; क्योंकि जो जो अपरोक्ष है वह वह विचार्य्य है, ऐसा नियम नहीं है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? अपरोक्षमें जैसे विचार्यत्वका नियम नहीं है तैसे अविचार्यत्वकाभी नियम नहीं है—अपरोक्ष षड्जादिमेंभी विचार्यत्वके देखनेसे और तद्वत् ही साफल्यके सम्भवसेभी। सन्दिग्धत्व तथा सप्रयोजनत्व इन्हींको ही सर्वत्र विचार्य्यत्वमें प्रयोजकत्व होनेसे।

एतेन—विचार्यशास्त्रार्थस्य साक्षात्कारयोग्यस्य साक्षात्कारे हेतुरिति न युज्यते कालान्तरे साक्षात्करिष्यमाणत्वेन तद्योग्ये विचारशास्त्रार्थे स्वर्गनिध्यादौ विचारेण तदभावादिति—निरस्तम्; निध्यादिसाक्षात्कारे तदसन्निकर्षादजातेऽपि विचारस्य तद्धेतुता न गच्छति। तत्रविचार इन्द्रियसहकारित्येन तद्विलम्बेन विलम्बात् प्रकृते तु शाब्दत्वात् साक्षात्कारस्य न तदपेक्षा; अपरोक्षयोग्यार्थसाक्षात्कारत्वेन कार्यत्वस्य तादृशार्थकशास्त्रविचारत्वेन साधनत्वस्य सत्त्वात्। एतेन—प्रकृतकार्यविजातीयकार्ये प्रकृतविचारविजातीयविचारस्य हेतुताक्लृप्तिमात्रेण तस्यापूर्वविधित्वत्यागे अपूर्वविधिमात्रोच्छेदापात इति—निरस्तम्। ननु—पाक्षिकप्राप्तौ नियमः साच साधनान्तरप्राप्तौ नच रूपादिरहितात्मज्ञाने तत्प्राप्तिरस्तीति—चेन्न; निर्विशेषात्मनि मानान्तराप्राप्तावपि आत्मनि सामान्यतस्तत्प्राप्तिरस्तीति—नियमसम्भवात्। यथाऽपूर्वीयेषु व्रीहिविशेषेषु नखविदलनादेरप्राप्तावपि व्रीहिसामान्ये तत्प्राप्त्या व्रीहीनवहन्तीति नियमविधिः।

एतेनेति। साक्षात्कारके योग्य जो विचार्य्य शास्त्रका अर्थ है, उस अर्थके साक्षात्कारमें सः=विचार हेतु है, यह अर्थ युक्त नहीं है,—कालान्तरमें साक्षात्करिष्यमाणत्व होनेसे तद्योग्ये= साक्षाद्योग्य जो विचार्य्यशास्त्रके अर्थ स्वर्गनिध्यादि हैं उन स्वर्गनिध्यादिमें विचारसे तदभावात्= साक्षात्कारके अभावसे; यह कथन निरस्त हुआ, एतेन शब्दका अर्थ दिखलाते हैं, तदसन्नि-

कर्षात्=निध्यादिके असन्निकर्षसे निध्यादिसाक्षात्कारके न उत्पन्न होनेपरभी विचारनिष्ठसाक्षात्कारकी हेतुता दूर नहीं होती है । तत्र=स्वर्गनिध्यादि साक्षात्कारमें विचारमें इन्द्रियका सहकारित्व होनेसे तद्विलम्बेन=इन्द्रियविलम्बसे साक्षात्कारमें विलम्ब होनेसे; और प्रकृतमें तो साक्षात्कारको शाब्दत्व होनेसे तदपेक्षा=इन्द्रियकी अपेक्षा नहीं है—अपरोक्षयोग्य जो अर्थ तादृश अर्थसाक्षात्कारत्वेन कार्य्यत्वका और तादृशार्थक=अपरोक्षार्थकशास्त्रविचारत्वेन साधनत्वका सत्त्व होनेसे, एतेनेति । प्रकृतकार्य्यसे विजातीय जो कार्य्य तादृश कार्य्यमें प्रकृत विचारसे विजातीय जो विचार तादृश विचारकी हेतुताकी कल्प्तिमात्रसे तिसके अपूर्वविधित्वका त्याग होनेपर अपूर्वविधिमात्रके उच्छेदका आपात है; यह कथन निरस्त हुआ । शङ्कते नन्विति । पाक्षिक प्राप्ति होनेपर नियम होता है और साच=पाक्षिक प्राप्ति तो साधनान्तरकी प्राप्ति होनेपर होती है, और रूपादिसे रहित जो आत्मा तादृश आत्माके ज्ञानमें साधनान्तरकी प्राप्ति नहीं है; इति चेन्न; क्यों ? निर्विशेष आत्मामें मानान्तरकी प्राप्ति न होनेपरभी आत्मामें सामान्यतः मानान्तरकी प्राप्ति है, अतः नियमका सम्भव होनेसे । जैसे अपूर्वजनक व्रीहि विशेषोंमें नखविदलनादिकी प्राप्ति न होनेपरभी व्रीहिसामान्यमें नखविदलनादिकी प्राप्तिसे 'व्रीहीनवहन्ति' यह नियम नहीं है ।

ननु—व्रीहीनवहन्तीत्यत्र व्रीहिपदमपूर्वीयद्रव्यपरम् नतु व्रीहिमात्रपरम्, अन्यथा यवेष्ववघात औपदेशिको न स्यात्, नीवारेषु च व्रीहित्वाभावेनातिदिष्टोऽपि बाध्येतेति नवमे स्थापितत्वेनापूर्वीयद्रव्य एव नखविदलनादिप्राप्तिर्वक्तव्या । अन्यथा वैतुष्यमात्रे अवघातनियमे द्रव्यार्जने याजनादि—उपायनियमवत्, तस्य पुरुषार्थत्वप्रसङ्गेन लौकिकेष्वपि व्रीहिषु दलने प्रत्यवेयादिति—चेन्न; नियम्यमानावघातस्य अपूर्वीयद्रव्यमात्रविषयत्वेऽपि सामान्यविषयकप्राप्त्यैव नियमोपपत्तौ विशेषविषयप्राप्तेरनपेक्षितत्वात् । नच—निर्विशेषसविशेषरूपविशिष्टद्वयानुगते विशेषाभावादिद्वारा वेदान्तवेद्ये चिन्मात्रे न मानान्तरप्राप्तिरिति—वाच्यम्; उभयानुगते सविशेषतया प्रमेयतायां मानान्तरप्राप्तेः सत्त्वात् सजातीये प्राप्त्यापि यत्र सजातीयान्तरे नियमसम्भवः तदा किमु वाच्यमेकस्मिन्नेवात्मनि अवस्थाविशेषेण मानान्तरप्राप्त्या विशेषान्तरे नियम इति । नच—एवं विशेषान्तरे प्राप्त्या विशेषान्तरनियमे वैयधिकरण्यमिति—वाच्यम्; व्यक्तिसामानाधिकरण्याभावेऽपि अनन्यगत्या सामान्यधर्ममादाय सामानाधिकरण्याङ्गीकारात् ।

शङ्कते नन्विति । 'व्रीहीनवहन्ति' यहाँपर व्रीहिपद अपूर्वीय द्रव्यपर है, व्रीहिमात्रपर नहीं अन्यथा=व्रीहिमात्रपरत्व होनेपर यवोंमें अवघात औपदेशिक न होगा, और नीवारोंमें व्रीहित्वके अभावसे अतिदिष्टभी अवघात बाधित होगा, इस रीतिसे जैमिनीयमीमांसाके नवमाध्यायमें स्थापितत्व होनेसे अपूर्वीयद्रव्यमें ही नखविदलनादिकी प्राप्ति वक्तव्य है, अन्यथा वैतुष्यमात्रमें अवघातका नियम होनेपर द्रव्यार्जनमें जैसे याजनादिरूप उपायके नियमको

पुरुषार्थत्व है तैसे अवघातनियममें पुरुषार्थत्वके प्रसङ्गसे लौकिक व्रीहिओंके दलनमेंभी पापको प्राप्त होगा=याजनादिसे ही द्रव्य आर्जनीय है, एतन्नियमजन्य अदृष्टके सार्थक्यके लिए याजनादिसे भिन्नोपायसे द्रव्यार्जनमें जैसे प्रत्यवायकी कल्पना की जाती है, तैसे अवघातसे ही वैतुष्यसाध्य है, यहाँपरभी एतन्नियमजन्यादृष्टके सार्थक्यके लिए दलनादिसे वैतुष्यसम्पादनमें प्रत्यवायकी कल्पना है, इति चेन्न; क्यों ? नियम्यमान अवघातको अपूर्वीयद्रव्यमात्रविषयत्व होनेपरभी सामान्यविषयकप्राप्तिसे ही नियमकी उपपत्ति होनेपर विशेषनियमकी प्राप्तिको अनपेक्षितत्व होनेसे। नचेति निर्विशेष तथा सविशेषरूप जो विशिष्टद्वय तादृश विशिष्टद्वयमें अनुगत और विशेषाभावादिद्वारा वेदान्तवेद्य जो चिन्मात्र है उस चिन्मात्रमें प्रमाणान्तरकी प्राप्ति नहीं है, इति नच वाच्यम्; क्यों ? उभयानुगतमें सविशेषत्वप्रयुक्त प्रमेयता होनेपर मानान्तरकी प्राप्तिका सत्व होनेसे। सजातीयमें मानान्तरकी प्राप्ति होनेसेभी जहाँ सजातीयान्तरमें नियमका सम्भव है, तब अवस्थाविशेषसे एकही आत्मामें मानान्तरकी प्राप्तिसे विशेषान्तरमें नियम है, इस विषयमें क्या कहना है। नचेति। इस रीतिसे विशेषान्तरमें मानान्तरकी प्राप्तिसे विशेषान्तरमें नियम होनेपर इन दोनोंका वैयधिकरण्य है; इति नच वाच्यम् क्यों ? विशेषधर्मविशिष्टत्वेन सामानाधिकरण्यका अभाव होनेपरभी अनन्यगत्या सामान्यधर्मको लेकर सामानाधिकरण्यका अङ्गीकार होनेसे।

ननु—अत्रान्यैव गतिरस्ति अपूर्वीयव्रीहिषु नियमादृष्टाजनकस्यापि दलनस्य प्राप्तिरस्ति। नहि यत्र तेन वैतुष्यसम्पादनं तत्र तत्प्राप्तिः किन्तु शक्तत्वेन प्रसक्तिमात्रमिति—चेन्न; एवं तद्योग्यत्वमिति पर्यवसितोऽर्थः। तच्च तज्जातीयेऽन्वयि ननु तत्र तथाच वैयधिकरण्यतादवस्थ्यम्। प्रकृते च सविशेषनिर्विशेषरूपदशाद्वयानुगतैकात्मविषयतया वैयधिकरण्यशङ्कानवकाशश्च। तत्त्वकौमुदीकृतस्तु—'यथा मन्त्रार्थज्ञानस्य कल्पसूत्रीयग्राहकवाक्यादिनापि प्राप्तत्वेन पक्षे अप्राप्तमन्त्रसाध्यत्वं नियम्यते मन्त्रैरेव स्मृतिः साध्येति तथा वेदान्तमूलस्त्रीशूद्रसाधारणस्मृतिपुराणादिप्राप्त्या पक्षे अप्राप्तवेदान्तश्रवणादिपरिपूर्णार्थो नियमः। 'तस्मात् न ब्राह्मणोऽवैदिकमधीयीत' इति श्रुतेः 'श्रोतव्य श्रुतिवाक्येभ्य' इत्यादिस्मृतेश्चेति—आहुः। नच—'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहये' दित्यादिस्मृतिविरोधः, अविचारितेन उपबृंहणायोगादिति—वाच्यम्; वेदान्ततात्पर्यनिर्णयाय तद्विचारापेक्षायामपि ब्रह्मज्ञाने तद्विचारापेक्षाविरहात्। नच—कर्मविषयकस्मृतिभिः कर्मज्ञानस्येव ब्रह्मविषयात् भारतादेरितिहासादपि साक्षाद्ब्रह्मज्ञानस्योदयात् ब्रह्मज्ञानेऽपि तदपेक्षेति—वाच्यम् उभयत्रापि स्मृत्यादेः स्वातन्त्र्येणाप्रमाणतया श्रुतितात्पर्यकत्वात्।

शङ्कते नन्विति। यहाँपर दूसरी ही गति है अपूर्वीय व्रीहिओंमें नियमादृष्टके अजनक दलनकीभी प्राप्ति है क्योंकि यत्र=जहाँपर तेन=दलनसे वैतुष्यका सम्पादन है तत्र=वहाँपर

तत्प्राप्तिः=दलनप्राप्ति है यह दलनप्राप्तिका अर्थ नहीं है, किन्तु शक्तत्वेन दलनकी प्रसक्तिमात्र दलनप्राप्तिका अर्थ है । इति चेन्न; ऐसा होनेपर तद्योग्यत्वरूप पर्य्यवसितार्थ हुआ; और तच्च= तद्योग्यत्व तो तज्जातीयमें अन्वयी है, न कि तिसमें तथाच वैयधिकरण्यका तादवस्थ्य है । और प्रकृतमें तो सविशेष निर्विशेषरूप जो दशाद्वय तादृशदशाद्वयमें अनुगत जो एक आत्मा तादृश आत्मविषयत्व होनेसे वैयधिकरण्यकी शङ्काका अनवकाश है । और तत्त्वकौमुदीके कर्त्ता तो, जैसे मन्त्रार्थज्ञानको मन्त्रमूलककल्पसूत्रीय संग्राहक वाक्यादिसेभी प्राप्तत्व होनेसे पक्षमें अप्राप्त-मन्त्रसाध्यत्व नियमित किया जाता है—मन्त्रसे ही स्मृति साध्य है इत्याकारक, तैसे वेदान्तमूलक जो स्त्रीशूद्रसाधारण स्मृतिपुराणादिक हैं, उन्होंकी प्राप्तिसे पक्षमें अप्राप्त जो वेदान्तका अश्रवण उसके परिपूरणके लिए नियम है, 'तस्मान्न ब्राह्मणोऽवैदिकमधीयीत' (मै० ७।१०) इस श्रुतिसे 'श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः' इत्यादि स्मृतिसेभी यह कहते हैं । नचेति । 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् (महाभारतप० १) ' इस स्मृतिके साथ विरोध है—अविचारितसे उपबृंहणके अयोगसे, इति नच वाच्यम्; क्यों? वेदान्ततात्पर्य्यके निर्णयके लिए इतिहास पुराणके विचारकी अपेक्षा होनेपरभी ब्रह्मज्ञानमें इतिहास पुराणके विचारकी अपेक्षाके विरहसे । नचेति । कर्मविषयकस्मृतिओंसे जैसे कर्मज्ञानका उदय होता है तैसे ब्रह्मविषयक भारतादिरूप इतिहाससे-भी साक्षाद्ब्रह्मज्ञानका उदय होनेसे ब्रह्मज्ञानमेंभी भारतादिरूप इतिहासकी अपेक्षा है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? उभयत्रापि=दोनों मतोंमें स्मृत्यादिको स्वातन्त्र्येण=श्रुतिनिरपेक्ष्येण अप्रामाण्य होनेसे श्रुतितात्पर्य्यकत्व होनेसे ।

अत एवोक्तम्—' वेदं समुपबृंहयेदिति ' नतु वेदार्थं जानीयादिति । यत्तु श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः इत्यादिकं श्रुतिमूलप्रमाणाभिप्रायकम्—इति तन्न; पञ्चमीप्रतीतहेतुत्वस्य-साक्षात् सम्भवे पारम्पर्यकल्पनायोगात् । नच—विप्रकीर्णनानाशाखार्थसंग्रहादिरूपेणेति-हासादिना तत्त्वनिश्चयदर्शनात् सति च तस्मिन् विविदिषाद्वारा तदर्थाय अन्तः करण-शुद्धेरनपेक्षितत्वात् आपरोक्ष्यस्य विषयाभावादेव सिद्ध्या वेदजन्यब्रह्मज्ञाने इतिहासज-न्यादधिकस्यापरोक्ष्यस्याननुभवेन तस्य नियमादृष्टासाध्यत्वात् ज्ञानस्य च स्वप्रागभाव-निवर्तन इव अज्ञाननिवर्त्तने अदृष्टनिरपेक्षत्वात् अन्यस्य च नियमादृष्टसाध्यस्याभावात् न नियमविधिरिति—वाच्यम् ; तमेतं वेदानुवचनेनेत्यादिश्रुतिबलात् यज्ञादिजन्या-दृष्टस्य नियमादृष्टस्य च विविदिषाद्वारकान्तःकरणशुद्धेरेव सर्वादृष्टसाध्यायाः सम्भवेन ज्ञानस्वरूपोपकारितया तत्साध्याज्ञाननिवृत्तौ तदपेक्षत्वाच्च विद्यायुक्ततदयुक्तकर्मजन्यफ-लगतचिराचिरस्वरूपातिशयवत् नियमादृष्टजन्यसाक्षात्कारे तदजन्यतत्त्वनिश्चयापेक्षया-तिशयकल्पनस्यावश्यकत्वाच्च नियमविधित्वसम्भवाच्च । तस्मात्—

'नियमादृष्टसाध्यस्य व्यावर्त्यस्यापि सम्भवात् ।
श्रवणादेर्नियमनं सम्यगेवोपपद्यते ॥' इति ।

अतएव—शूद्रप्रणीतात्मप्रबन्धादिप्राप्तिनिमित्तकाप्राप्तांशपूर्णार्थो नियमविधिरित्याचार्यान्तरोक्तिरपि व्याख्याता ॥

इति विवरणोक्तनियमोपपत्तिः ॥

अतएव—कहा है–वेदका इतिहास पुराणसे समुपबृंहण करे, (म० भा० १।१।२९३) न कि वेदार्थको जाने । श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्य इत्यादिक स्मृति श्रुतिमूलक प्रमाणाभिप्रायक है इति यत् तत् तु न; क्यों ? श्रुतिवाक्येभ्यः इस पञ्चमीसे प्रतीत जो हेतुत्व उस हेतुत्वका साक्षात् सम्भव होनेपर पारम्पर्य्यकल्पनाके अयोगसे । शङ्कते नचेति । विप्रकीर्ण=जहाँ तहाँ फैली हुई जो नाना शाखाएँ हैं, उन शाखाओंके जो अर्थ तादृश अर्थोंका संग्रह जो इतिहासादि तादृशेतिहासादिसे तत्त्वनिश्चयके देखनेसे और सति च तस्मिन्=तत्त्वनिश्चयके होनेपर विविदिषाद्वारा तदर्थाय= तत्त्वनिश्चयके लिए अन्तःकरणकी शुद्धिको अनपेक्षितत्व होनेसे आपरोक्ष्यकी विषयभावसे ही सिद्धि होनेसे, वेदजन्यब्रह्मज्ञानमें इतिहासजन्यब्रह्मज्ञानसे अधिक आपरोक्ष्यके अननुभवसे तस्य= वेदजन्यब्रह्मज्ञानको नियमादृष्टसे असाध्यत्व होनेसे, और ज्ञानको स्वप्रागभावके निवर्त्तनमें जैसे अदृष्टकी अपेक्षा नहीं होती है तैसे अज्ञानके निवर्त्तनमेंभी अदृष्टनिरपेक्षत्वहोनेसे, और अन्यस्य=विविदिषाद्वारकान्तःकरणशुद्ध्यादिसे भिन्न नियमादृष्टसाध्यका अभाव होनेसे नियमविधि नहीं है इति नच वाच्यम् ; क्यों ? तमेतं वेदानुवचनेन (बृ० ४।४।२२) इत्यादि श्रुतिबलसे यज्ञादिजन्यादृष्टका और नियमादृष्टका सर्वादृष्टसाध्यविविदिषाद्वारकान्तःकरणकी शुद्धिरूप ही फलका सम्भव होनेसे, ज्ञानस्वरूपोपकारित्वेन और ज्ञानसाध्य अज्ञानकी निवृत्तिमें ज्ञानसे अपेक्षत्व होनेसे और जैसे उपासनायुक्त तथा उपासनासे अयुक्त पुरुषोंसे किये गये जो कर्म उन कर्मोंसे जन्य जो फल तादृश फलमें चिराचिरस्वरूप अतिशय रहता है–उपासनायुक्तपुरुषकृतकर्मजन्यफलमें अचिरस्वरूपातिशय रहता है और उपासनारहितपुरुषकृतकर्मजन्यफलमें चिरस्वरूप अतिशय रहता है, तैसे नियमादृष्टजन्यसाक्षात्कारमें तदजन्य=नियमादृष्टाजन्यतत्व निश्चयकी अपेक्षासे अतिशय कल्पनको आवश्यकत्व होनेसेभी नियमविधित्वका सम्भव होनेसे । तस्मात् नियमादृष्टसाध्यका सम्भव होनेसे, और नियमादृष्टव्यावर्त्यकाभी सम्भव होनेसे श्रवणादिकी नियमविधिरूपता सर्वथैव उपपन्न होती है, अतएव=नियमविधित्वको उपपन्न होनेसे ही शूद्रप्रणीत जो आत्मप्रबन्धादि तादृश आत्मप्रबन्धादिप्राप्तिनिमित्तक जो अप्राप्तांश उसके पूरणार्थ नियमविधि है, यह अन्य आचार्यकी उक्तिभी व्याख्यात हुई ॥

इति सरलायां विवरणोक्तनियमोपपत्तिः ॥

अथ श्रवणादेर्विधेयत्वोपपत्तिः ।

ननु—किमिदं श्रवणं नाम ? शक्तितात्पर्य्यावधारणं वा तद्विशिष्टशब्दावधारणं वा, तात्पर्यप्रमापकलिङ्गावधारणं वा, आगमाचार्योपदेशजज्ञानं वा । नाद्यः; अर्वाच्ये ब्रह्मणि शक्त्यसंभवात् । तात्पर्यमपि न तावदापातधीजन्यस्य विचारनिवर्त्यस्य संशयस्य

धर्मिणि तस्य प्रागेव निश्चितत्वेन तन्निश्चयार्थं तात्पर्यनिश्चयसाधनस्य विचारस्य वैयर्थ्यात्, अन्यथा विचारानन्तरमपि संशयादिप्रसङ्गात्। नापि संशयधर्मिगतप्रकारविशेषे तद्विशिष्टे तदुपलक्षिते वा; अखण्डार्थताहानेः अवधारणस्य ज्ञानत्वे विधेयत्वस्य त्वयानङ्गीकारात्। अतएव न द्वितीयादि। नापि गुरुमुखाद्वेदान्तानां ब्रह्मणि संयोजनं श्रवणम्; तस्याद्यपक्षानतिरेकात्। नापि वाक्यविशेषप्रयोगरूपवादकथाश्रवणम्; तत्र श्रवणपदाप्रयोगात्। अतएव मनननिदिध्यासनयोरपि न विधिः; तयोरपि ज्ञानानतिरेकादितिचेन्न; आद्यपक्षस्यैव क्षोदसहत्वात्। नच तत्र शब्दशक्त्यसम्भवो दोषः; शुद्धे शक्त्यसम्भवेऽपि विशिष्टशक्तेस्तद्बोधोपयोगिन्या अवधारणीयायाः सम्भवात्, तात्पर्यस्यापि संशयधर्मिणो निश्चितत्वेन तत्रासम्भवेऽपि संशयकोट्युपलक्षिते निर्विशेषे सम्भवेन विचारावैयर्थ्यात्।

अथ सरलायां श्रवणादेर्विधेयत्वोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। श्रवण क्या पदार्थ है; क्या शब्दशक्तितात्पर्यावधारणरूप है, या तद्विशिष्ट=शब्दशक्तितात्पर्यविशिष्टशब्दावधारणरूप है अथवा तात्पर्य्यका प्रमापक जो लिङ्ग तादृश लिङ्गका जो अवधारण तादृश अवधारणरूप है या आगम तथा आचार्य्य इन दोनोंका जो उपदेश तादृश उपदेशसे जन्य जो ज्ञान तादृश ज्ञानस्वरूप है, नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है अवाच्यरूपब्रह्ममें शक्तिके अभावसे—असम्भवसे। और तात्पर्य्यभी आपातधीसे जन्य और विचारसे निवर्त्य ऐसा जो संशय तादृश संशयके धर्मीमें नहीं बन सकता है—तस्य=धर्मिको पूर्वमें ही निश्चितत्वहोनेसे तन्निश्चयार्थम्=संशयधर्मिनिश्चयार्थ तात्पर्यनिश्चयका साधन जो विचार उस विचारके वैयर्थ्यसे अन्यथा=निश्चितमें संशयका अङ्गीकारकर विचारका साफल्य कहनेपर विचारके अनन्तरभी संशयादिका प्रसङ्ग होनेसे। और संशयधर्मिगत जो प्रकारविशेष उस प्रकारविशेषमें या तादृश प्रकारविशिष्टमें अथवा तादृशप्रकारोपलक्षितमेंभी तात्पर्य नहीं हो सकता है—अखण्डार्थताकी हानिसे। और अवधारणत्वको ज्ञानत्व होनेपर ज्ञानमें विधेयत्वका तुमसे अनङ्गीकार होनेसे। अतएव=ज्ञानमें विधेयत्वके अनङ्गीकारसे ही ज्ञानघटितद्वितीयादि पक्षभी नहीं बन सकते हैं। तथा गुरुमुखसे वेदान्तोंका ब्रह्ममें संयोजनरूपभी श्रवण नहीं बन सकता है, उसका प्रथमपक्षसे भेद न होनेसे। तैसे वाक्यविशेषका प्रयोगरूप जो वादकथा तद्रूपभी श्रवण नहीं बन सकता है—तत्र=उक्तविधकथामें श्रवणपदके अप्रयोगसे। अतएव मनन तथा निदिध्यासन इन दोनोंकीभी विधि नहीं है, अतएव शब्दका अर्थ दिखलाते हैं तयोरपि=मनन तथा निदिध्यासन इन दोनोंकाभी ज्ञानसे अनतिरेक होनेसे इति चेन्न, क्यों ? आद्यपक्षस्यैव—शब्दशक्तितात्पर्य्यावधारणरूपप्रथमपक्षको ही विचारसहत्व होनेसे। तत्र=प्रथमपक्षमें शब्दशक्तिका असम्भवरूप दोष है नच=यह दोष नहीं है, क्यों ? शुद्धमें शक्तिका असम्भव होनेपरभी तद्बोधोपयोगिन्या=शुद्धबोधोपयोगित्वेन अवधारणीय

विशिष्टशक्तिका सम्भव होनेसे और तात्पर्य्यकाभी संशयके धर्मीको निश्चितत्व होनेसे तत्र= संशयधर्मीमें असम्भव होनेपरभी संशयकोटिसे उपलक्षित निर्विशेषमें सम्भव होनेसे विचारके अवैयर्थ्यसे ।

नचाखण्डार्थताहानिः, स्वरूपमात्रोपलक्षकतया अखण्डार्थताया उपपादितत्वात् । नचावधारणस्य ज्ञानरूपतया अविधेयता; तस्य तर्कत्वेन ज्ञानविजातीयचेतोवृत्त्यन्तरत्वात् सुरेश्वराचार्य्यैः; 'श्रवणादिक्रिया तावत् कर्त्तव्येह प्रयत्नत' इति श्रवणादौ क्रियापदप्रयोगात् । एवमेव मनननिदिध्यासनयोरपि विधेयत्वमुन्नेयम् । नच—तात्पर्यरूपे विषये उपक्रमादिरूपे च प्रमाणे सति जायमानस्य तस्य ज्ञानबहिर्भावानुपपत्तिः तद्बहिर्भूतवाग्धेनूपासनादौ प्रमाणवस्तुपरतन्त्रत्वादर्शनादिति—वाच्यम् ; मन्मते लिङ्गस्य प्रामाण्यानभ्युपगमेन सति प्रमाण इत्यस्यैवाभावात् , उपक्रमादेः प्रमाणत्वपक्षे तत्पूर्वकालीनत्वेनास्य प्रमाणे सतीत्येतदंशसिद्धेः । तस्मात् श्रवणादेरधीरूपतया मनोव्यापारत्वे विधेयत्वोपपत्तिः । सिद्धान्तबिन्दुकल्पलतिकयोर्विस्तरः । यच्चानुवादित्वादिवर्णनं वाचस्पत्ये, तत् प्रस्थानान्तरत्वान्नविधित्वोक्तिविरोधि ।

इत्यद्वैतसिद्धौ श्रवणादेर्विधेयत्वोपपत्तिः ॥

अखण्डार्थताकी हानि है, नच=अखण्डार्थताकी हानि नहीं है, क्यों ? स्वरूपमात्रोपलक्षकत्वेन अखण्डार्थताको उपपादितत्व होनेसे । अवधारणको ज्ञानरूपता होनेसे विधेयता नहीं है, नच=ऐसा नहीं कहना क्यों ? तस्य=अवधारणको तर्कत्व होनेसे=ज्ञानसे विजातीयमनोवृत्त्यन्तरत्व होनेसे;—श्री सुरेश्वराचार्य्यसे इह=आत्मविषयक श्रवणादिरूप क्रिया प्रयत्नसे कर्त्तव्य है, इस रीतिसे श्रवणादिमें क्रियापदके प्रयोगसे । इसी रीतिसे मनन तथा निदिध्यासन इन दोनोंमेंभी विधेयत्व उन्नेय है । शङ्कते नचेति=तात्पर्यरूप विषयके होते हुए और उपक्रमादिरूप प्रमाणके होते हुए जायमान जो अवधारण है उस अवधारणमें ज्ञानसे बहिर्भावकी अनुपपत्ति है=तात्पर्य्यरूप अवधारणका विषय है और उपक्रमादिरूप अवधारणका जनक प्रमाणभी है, अतः—अवधारणको ज्ञानही मानना उचित है, ज्ञानसे बहिर्भाव नहीं बन सकता है—तद्बहिर्भूत= ज्ञानबहिर्भूत वाग्धेनूपासनादिमें प्रमाणपरतन्त्रत्वके न देखनेसे इति नच वाच्यम्; क्यों ? मन्मतमें लिङ्गस्य=व्याप्यत्वेन ज्ञायमान लिङ्गके प्रामाण्यका अभ्युपगम न होनेसे 'सति प्रमाणे' इसके ही अभावसे । और उपक्रमादिके प्रमाणत्वपक्षमें अस्य=तात्पर्यावधारणको तत्पूर्वकालीनत्वेन=उपक्रमादिहेतुकतात्पर्यानुमितिसे पूर्वकालीनत्व होनेसे 'प्रमाणे सति' इस अंशकी असिद्धि होनेसे 'तस्मात्'=श्रवणादिको अधीरूपता होनेसे मनोव्यापारत्वेन विधेयत्वकी उपपत्ति है । सिद्धान्तबिन्दु तथा कल्पलतिका इन दोनोंमें विस्तर देखना चाहिए । और वाचस्पत्यमें जो 'श्रोतव्यः' इत्यादिके अनुवादित्वादिका वर्णन है='श्रोतव्यः' इत्यादिमें विध्यभावका वर्णन है वह प्रस्थानान्तरत्व होनेसे विधित्वकी उक्तिका विरोधी नहीं ॥

इति सरलायां श्रवणादेर्विधेयत्वोपपत्तिः ॥

अथ जिज्ञासासूत्रस्य श्रवणविधिमात्रमूलकत्वम्।

एवं विचारविधायकश्रवणविधिरेव जिज्ञासासूत्रमूलम्। नच विचारविधौ श्रवणसाध्यापरोक्षज्ञानाधीनाया अपरोक्षज्ञानकामनाया अधिकारिविशेषणत्वाङ्गीकारेण अन्योन्याश्रयापात इति–वाच्यम्; अधीतवेदस्य विदितपदपदार्थसङ्गतिकस्यापततो जायमानपरोक्षज्ञानाधीनापरोक्षज्ञानकामनाया अधिकारिविशेषणत्वेनोक्तान्योन्याश्रयानवतारात्। नच–जिज्ञासासूत्रोक्तो विचारस्तत्वनिर्णायकन्यायानुसन्धानरूपः; अन्यथा न्यायग्रथनात्मकशास्त्रारम्भसिद्धये तत्कर्त्तव्यतोक्त्ययुक्तेः, इतरस्य वेदेतिकर्त्तव्यतात्वानुपपत्तेश्च। श्रवणं च नोक्तन्यायानुसन्धानरूपं मननाभेदप्रसङ्गात् अतो न श्रवणविधिजिज्ञासासूत्रयोर्मूलमूलिभाव इति–वाच्यम्; जिज्ञासासूत्रस्य श्रवणविधिसमानविषयकतया मूलमूलिभावाभावेऽपि श्रवणविधिविषयशक्तितात्पर्यावधारणात्मकश्रवणाक्षिप्तोपक्रमोपसंहारादितात्पर्यलिङ्गविचारमादाय समानविषयत्वसम्भवेन तदुपपत्तेः। मननं तु श्रुतस्यार्थस्य युक्तिभिश्चिन्तनमिति न तदभेदोऽपि अर्थाक्षिप्तविचारस्येतिकर्त्तव्यतात्वेऽपि तात्पर्यावधारणरूपे श्रवणे उक्तस्याङ्गित्वस्यानपायात्।

अथ सरलायां जिज्ञासासूत्रस्य श्रवणविधिमात्रमूलकत्वम्।

उक्तप्रकारसे विचारविधायक जो श्रवणविधि है वही जिज्ञासासूत्रका मूल है=' श्रोतव्यः ' इस श्रुतिसे विहित जो श्रवण है उसी श्रवणका विधान करनेवाला=उक्तश्रुतिमूलक ' अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ' (वे० १।१।१) सूत्र है; शङ्कते नचेति। विचारकी विधि होनेपर श्रवणसे साध्य जो अपरोक्षज्ञान तादृश अपरोक्षज्ञानाधीन जो अपरोक्षज्ञानविषयिणी कामना तादृश कामनाको अधिकारिमें विशेषणत्व अङ्गीकार होनेसे अन्योन्याश्रयका आपात है=अपरोक्षज्ञानकामनाविशिष्ट अधिकारी है और अपरोक्षज्ञानके विना अपरोक्षज्ञानकी कामना नहीं बन सकती है, तथाच अधिकारिपदार्थको अपरोक्षज्ञानकी अपेक्षा है, अपरोक्षज्ञान उक्तविध अधिकारीके विना नहीं हो सकता है, तथाच अपरोक्षज्ञानको स्वसिद्धिमें अधिकारीकी अपेक्षा है, अतः अन्योन्याश्रय है इति नच वाच्यम्, क्यों ? अध्ययन करलिया है वेदका जिसने और ज्ञात है पदपदार्थकी सङ्गति जिसको ऐसा जो पुरुष है उस पुरुषको आपाततः=श्रवणादिकें विनाही जायमान जो परोक्षज्ञान तादृश परोक्षज्ञानाधीन जो अपरोक्षज्ञानकी कामना तादृश कामनाको अधिकारिविशेषणत्व होनेसे उक्तान्योन्याश्रयके अवताराभावसे। नचेति। जिज्ञासासूत्रमें कहा गया विचार तत्वनिर्णायक जो न्याय तादृश न्यायका अनुसन्धानरूप है। अन्यथा न्यायग्रथनात्मक जो शास्त्र तादृश शास्त्रके आरम्भकी सिद्धिके लिए तत्कर्तव्यता=विचारकर्त्तव्यताकी उक्तिकी अयुक्तिसे, और इतरस्य=तत्त्वनिर्णायकन्यायानुसन्धानरूपविचारसे भिन्नात्मकविचारको वेदीयइतिकर्त्तव्यतात्वकी अनुपपत्तिसेभी; और श्रवण तो उक्तन्याय=तत्त्वनिर्णायकन्यायानुसन्धानरूप नहीं है—मननके साथ अभेदके प्रसङ्गसे अतः श्रवणविधि और

जिज्ञासासूत्र इन दोनोंका मूलमूलिभाव नहीं है; इति नच वाच्यम्, क्यों ? जिज्ञासासूत्रको श्रवणविधिसमानविषयकत्वेन मूलमूलिभावका अभाव होनेपरभी श्रवणविधिका विषय जो शक्तितात्पर्यावधारणात्मक श्रवण तादृश श्रवणसे आक्षिप्त जो उपक्रमोपसंहारादितात्पर्यलिङ्ग-निर्णायक विचार तादृश विचारको लेकर समानविषयत्वके सम्भवसे तदुपपत्तेः=मूलमूलिभावकी उपपत्तिसे। और मनन तो श्रुत अर्थका युक्तिओंसे चिन्तनरूप है, अतः मननके साथ श्रवणका अभेदभी नहीं। और अर्थाक्षिप्त विचारको इतिकर्त्तव्यतात्व होनेपरभी तात्पर्यावधारणरूप श्रवणमें उक्त अङ्गित्वके अनपायसे।

यत्तु—युक्तिभिरनुचिन्तनं नाम यदि श्रवणनिश्चितस्य तात्पर्यस्य तद्विषयशब्दस्य वा स्मरणं प्रत्यभिज्ञानं वा, संस्कारदार्ढ्यफलकं श्रवणसमानाकारमभिज्ञान्तरं वा तर्हि तस्यावश्यकश्रवणावृत्त्यैव सिद्धेः मननविधिवैयर्थ्यं, त्रिविधस्यापि तस्य श्रवणानन्तर्गत-युक्त्यनपेक्षत्वेन श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिरिति स्मृतिविरोधश्च, 'श्रवणं यावदज्ञानं मतिर्यावदयुक्तता' इति मननस्य श्रवणानिवर्तितायुक्तत्वशङ्कानिवर्त्तकत्वप्रति-पादकस्मृतिविरोधश्च इति, तन्न, अनुचिन्तनस्य श्रुतार्थविषयकयुक्तायुक्तत्वादिसंशयनिव-र्तकयुक्त्यनुसन्धानरूपत्वेन विवक्षिततया त्वदुक्तदोषानवकाशात्। नच एवं युक्तायुक्तत्व-संशयादेः संशयपूर्वपक्षसिद्धान्तात् मीमांसाशास्त्रारम्भोपयुक्तविचारकर्तव्यतां प्रतिपाद-यदाद्यसूत्रं मननविधिमूलमेव स्यात् नतु श्रवणविधिमूलमिति—वाच्यम्; तात्पर्य-विषययुक्तायुक्तत्वादिसंशयादिनिवर्तकविचारपेक्षया तात्पर्यनिर्णायकश्रवणाक्षिप्तलिङ्ग-विचारस्याभ्यर्हिततया तदाक्षेपकश्रवणविधिमूलत्वस्यैव वक्तुं शक्यत्वात् युक्तायुक्तत्व-विचारस्यानुपङ्गिकत्वाच।

यत्त्विति। युक्तिओंसे अनुचिन्तन क्या पदार्थ है ? श्रवणसे निश्चित जो तात्पर्य तादृश तात्पर्य्यका स्मरणरूप है, या तात्पर्यविषयक शब्दका स्मरणरूप है, अथवा श्रवणनिश्चित तात्पर्य्यका प्रत्यभिज्ञानरूप है, या संस्कारदार्ढ्यफलक श्रवणसमानाकार अभिज्ञानान्तररूप है, यदि इन्होंमेंसे कोईभी रूप है, तब उस रूपकी आवश्यक जो श्रवण उसकी आवृत्तिसे ही सिद्धि होनेसे मननविधिका वैयर्थ्य है त्रिविधस्यापि तस्य=उक्त तीनों प्रकारके मननको श्रवणानन्तर्गत जो युक्ति तादृश युक्तिका अनपेक्षत्व होनेसे श्रोतव्य है श्रुति वाक्योंसे और मन्तव्य है युक्तिओंसे, इस स्मृतिका विरोध है और यावत् अज्ञान है तावत् श्रवण है, और यावत् अयुक्तता दीखती हो तावत् मनन है, इत्याकारक जो मननको श्रवणसे अनिवर्त्तित जो अयुक्तत्वकी शङ्का तादृश शङ्कानिवर्त्तकत्व प्रतिपादक जो स्मृति है उस स्मृतिकाभी विरोध है, इति यत् तत् तु न; क्यों अनुचिन्तनको श्रुतार्थविषयक जो युक्तत्वायुक्तत्वका संशय तादृश संशयनिवर्त्तक जो युक्तियाँ तादृश युक्तिओंको अनुसन्धानरूपत्वेन विवक्षितत्व होनेसे त्वदुक्तं-दोषोंके अनवकाशसे। शङ्कते नचेति। ऐसा होनेपर युक्तत्वायुक्तत्वादिका जो संशयादि है उस

संशयादिकी मीमांसाशास्त्रसे ग्रथित और संशयादिनिवर्त्तक जो संशयपूर्वपक्षसिद्धान्तात्मक न्यायसमुदाय है उस न्याय समुदायसे जो अन्य तादृश अन्यसे निवृत्ति न होनेसे तादृश न्यायग्रथनात्मक जो मीमांसाशास्त्र तादृश शास्त्रारम्भमें उपयुक्त जो विचारकर्त्तव्यता तादृश विचारकर्त्तव्यताको प्रतिपादन करता हुआ आदिमसूत्र मननविधिमूलक ही होगा न कि श्रवणविधिमूलक इति नच वाच्यम्; क्यों ? तात्पर्य्यके विषयमें जो युक्तत्वायुक्तत्वका संशयादि तादृसंशयादिनिवर्त्तक जो विचार उस विचारकी अपेक्षा तात्पर्य्यनिर्णायक जो श्रवणाक्षिप्तलिङ्गविचार तादृश लिङ्गविचारको अभ्यर्हितत्व होनेसे तदाक्षेपक=उक्तविचाराक्षेपक जो श्रवणविधि तादृश श्रवणविधिमूलत्वको ही कहनेके लिए शक्यत्व होनेसे, श्रवण अङ्गि है अतः उसमें स्वविषयमें अयुक्तत्वकी जो शङ्का तादृश शङ्कानिवर्त्तक जो विचाररूप मनन है तादृश मननरूप स्वाङ्गसे अभ्यर्हितत्व है, उभयत्र स्वशब्दसे श्रवणका ग्रहण है । और युक्तायुक्तत्वविचारको अनुषंगलभ्यत्व होनेसेभी तत्कर्त्तव्यताकी पृथक् उक्ति व्यर्थ है, अतोऽपि श्रवणविधिमूलत्व ही है; तात्पर्य्यावधारणार्थ जो प्रवृत्ति उस प्रवृत्तिसे ही श्रवणविषयधर्मिकायुक्तत्वसंशयादिनिवर्त्तकहेतुभूतविचारात्मक मननके अनुष्ठानका लाभ होनेसे मननके कर्त्तव्यताकी पृथक् उक्ति व्यर्थ है ।

यद्वा—समन्वयाध्यायोक्ततात्पर्यनिश्चायकोपक्रमादियुक्त्यनुसन्धानं श्रवणं द्वितीयाध्यायोक्तार्थासत्त्वशङ्कानिवर्त्तकयुक्त्यनुसन्धानं मननम् । ननु—एवं विवरणोक्तिविरोधः यौक्तिकासंभावनाविपरीतभावनानिरासितर्काणां प्रथमज्ञानान्तर्भूतत्वात् इत्यादिना अर्थापत्तीनामपि श्रवणान्तर्गतिमुक्त्वा ‘ ब्रह्मात्मत्वविपरीतभावनाप्रचयनिमित्ततदेकाग्रवृत्त्ययोग्यत्वमसम्भावना विपरीतभावना तु शरीराध्याससंस्कारप्रचयः ’ इत्यादिना—असम्भावनानिवर्त्तकस्य मननस्यार्थनिश्चयानन्तरभाविभावनाप्रचयहेतुचित्तैकाग्र्यहेतुताया एवोक्तत्वादिति—चेन्न; भिन्नप्रस्थानतया विवरणविरोधस्याकिंचित्करत्वात् । नच जिज्ञासासूत्रस्यांशे मननविधिमूलत्वापातः; समन्वयोक्तिविचारस्याभ्यर्हिततया श्रवणविधिमूलत्वस्यैव वक्तव्यत्वोपपत्तेः । ननु–‘ मन्तव्यश्चोपपत्तिभि’रिति स्मृतिगतोपपत्तिशब्दस्य मतिर्यावदयुक्ततेति स्मृतिस्थायुक्तशब्दस्य श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्य इति श्रुतिशब्दस्येव सामान्यपरत्वाहानेन ‘ आदौ यच्छ्रद्धया सिद्धं पश्चान्न्यायेन साधितम् ’ । इति न्यायेन युक्त्यनपेक्षश्रद्धामात्रेण प्रतिवाक्यमयमस्य वाक्यस्यार्थ इति गुरुमुखाद्वेदार्थग्रहणं श्रवणं पश्चात् न्यायानुसन्धानं मननमिति भेदसम्भवे युक्तिष्वेव श्रपणमाननभेदकथनायोग इति चेन्न; वाक्यार्थग्रहणस्य प्रमारूपतया अविधेयत्वस्योक्तत्वात् ।

अथवा समन्वयाध्यायमें उक्त जो तात्पर्यनिश्चायक उपक्रमादिरूप युक्तियाँ तादृश युक्तिओंका अनुसन्धान श्रवण है, और द्वितीयाध्यायमें उक्त जो अर्थासत्त्वशङ्कानिवर्त्तक युक्तियाँ उन युक्तिओंका अनुसन्धान मनन है । शङ्कते नन्विति । ऐसा होनेपर विवरणकी उक्तिके साथ विरोध है–यौक्तिक जो असम्भावना और विपरीतभावना तन्निरासितर्कोंको प्रथमज्ञान=श्रवणमें

अन्तर्भूतत्व होनेसे इत्यादिसे अर्थापत्तीनामपि=अर्थायुक्तत्वशङ्कानिवर्त्तकमननाख्य तर्कोंकीभी श्रवणमें अन्तर्गतिको कहकर–ब्रह्मात्मत्वमें जो विपरीतभावनाओंका प्रचय तादृश प्रचयनिमित्तक जो ब्रह्मात्मक विषयक ऐकाग्र्यवृत्त्ययोग्यत्व वह असम्भावना है, और शरीराध्यासजन्यसंस्कार-प्रचयका नाम विपरीत भावना है इत्यादिसे असम्भावनानिवर्त्तक मननमें अर्थनिश्चयके अनन्तर-भावि जो भावनाप्रचयहेतुक चित्तैकाग्र्य तादृश चित्तैकाग्र्यकी हेतुताको ही उक्तत्व होनेसे; इति चेन्न; क्यों ? भिन्नप्रस्थानत्व होनेसे विवरणके विरोधको अकिञ्चित्करत्व होनेसे। ननु–द्वितीयाध्यायको मननरूपत्व होनेपर मननकर्त्तव्यतांशमें आद्यसूत्रको मननविधिमूलकत्व होगा, आद्यसूत्रको अध्यायचतुष्टयात्मविषयकविचारकी कर्तव्यताबोधकत्व होनेसे, इत्याकारक आशङ्का कर निषेधकरते हैं–नचेति। जिज्ञासासूत्रको अंशमें मननविधिमूलत्वका आपात है; नच=उक्त आपात नहीं है, क्यों ? प्रथमाध्यायोक्त विचारको अभ्यर्हितत्व होनेसे श्रवणविधिमूलत्वके ही वक्तव्यत्वकी उपपत्तिसे। नन्विति। 'मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः' एतत्स्मृतिगत उपपत्ति शब्दके और 'मतिर्यावदयुक्तता' एतत्स्मृतिस्थ अयुक्तशब्दके श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यः एतद्गतश्रुति-शब्दकी नाईं सामान्यपरत्वके अहानसे। 'आदौ यत् श्रद्धया सिद्धं पश्चान्न्यायेन साधितम्' इस न्यायसे युक्त्यनपेक्षश्रद्धामात्रसे प्रतिवाक्य यह इस वाक्यका अर्थ है, इस रीतिसे गुरुमुखसे जो वेदार्थका ग्रहण है वह श्रवण है, श्रवणके पश्चात् जो न्यायका अनुसन्धान है वह मनन है इस रीतिसे श्रवणमननके भेदका सम्भव होनेपर युक्तिओंमें ही श्रवण मननके भेदके कथनका अयोग है। इति चेन्न, क्यों ? वाक्यार्थग्रहणके प्रमारूपत्वसे अविधेयत्वको उक्तत्व होनेसे=द्वैतीने कहा कि–प्रतिवाक्य=यह इस वाक्यका अर्थ है, इत्याकारक जो गुरुमुखसे वेदार्थका ग्रहण है, वह श्रवण है इसका उत्तर सिद्धान्तीने यह दिया कि–उक्तरूपसे जो गुरुमुखसे वेदार्थका ग्रहण है, वह प्रमात्मक है, अतः उसमें विधेयत्व नहीं बन सकता है और श्रवणका तो 'श्रोतव्यः इस श्रुतिसे विधान है अतः त्वदुक्त श्रवणका लक्षण अयुक्त है।

ननु—उक्तस्य वाक्यार्थग्रहणस्य श्रवणादित्रयानन्तर्भावे चतुर्थस्यापि मुमुक्ष्वनुष्ठेयत्वापात इति–चेन्न; तस्य ज्ञानरूपतया अनुष्ठानानर्हत्वात, श्रद्धामात्रात्स्वत एव जातत्वेनापुंतंत्रत्वाच्च। नचैवं केवलगुरुमुखात्तदर्थं श्रुतवति श्रुतमनेनेति प्रयोगानुपपत्तिः; विधेयत्वान्यथानुपपत्त्या अर्थान्तरत्वे स्थिते अस्य प्रयोगस्य गौणतादिना कथंचिदुपपादनीयत्वात्। अतएव स्मृतिगतोपपत्त्ययुक्ततापदयोर्न सामान्यपरता। नच–प्रमाणभूतश्रुतितात्पर्ये निश्चिते अर्थसत्त्वार्थमुपपत्त्यपेक्षायोगेन मननस्यार्थासत्वरूपाप्रामाण्यशङ्कानिवर्त्तकत्वे वक्तव्ये निश्चितप्रामाण्यस्य पुंसो मननाभावप्रसङ्ग इति–वाच्यम्; तादृशं प्रति तदभावस्येष्टत्वात् कृष्णले अतिदेशप्राप्तस्यावघातस्य द्वारबाधेन बाधदर्शनात्। तस्मात्तात्पर्यावधारणं श्रवणम्। तच्च लिङ्गविचाराधीनमिति विचारकर्त्तव्यतापरमाद्यसूत्रं श्रवणविधिमूलकं नतु मननविधिमूलकमिति सिद्धम्–जिज्ञासासूत्रस्य श्रवणविधिमात्रमूलकत्वम्॥

नन्विति। उक्त वाक्यार्थग्रहणका श्रवणादित्रयमें अन्तर्भाव न होनेपर मुमुक्षुको श्रवणादिसे भिन्न चतुर्थकेभी अनुष्ठेयत्वका आपात होगा, इति चेन्न; क्यों ? तस्य=उक्तवाक्यार्थग्रहणको ज्ञानरूपता होनेसे अनुष्ठानका अनर्हत्व होनेसे। और श्रद्धामात्रसे स्वतः ही जातत्व होनेसे पुमधीनत्व न होनेसेभी उसके अनुष्ठेयत्वका अनर्हत्व है। नचेति। ऐसा होनेपर उक्तवाक्यर्थग्रहणको श्रवणरूपत्व न होनेपर केवल गुरुमुखसे तदर्थको सुननेवाला जो पुरुष है उस पुरुषमें 'श्रुतमनेन' इसने सुना है, इस प्रयोगकी अनुपपत्ति है, नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों ? विधेयत्वकी अन्यथानुपपत्तिसे अर्थान्तरत्वके स्थित होनेपर इस प्रयोगको गौणतादिसे कथञ्चित् उपपादनीयत्व होनेसे। अतएव स्मृतिगत जो उपपत्ति पद तथा अयुक्तता पद इन दोनोंको सामान्यपरता नहीं है। नचेति। प्रमाणभूत जो श्रुति तादृश श्रुतिके तात्पर्य्यके निश्चित हो जानेपर अर्थसत्त्वके लिए उपपत्तिकी अपेक्षाके अयोगसे मननको अर्थासत्त्वरूप अप्रामाण्यशङ्काका निवर्त्तकत्व वक्तव्य होनेपर निश्चित है प्रामाण्य जिसको ऐसा जो पुरुष उस पुरुषको मननके अभावका प्रसङ्ग है; इति नच वाच्यम्; क्यों ? तादृशं प्रति=निश्चितप्रामाण्यक पुरुषके प्रति मननाभावको इष्टत्व होनेसे। कृष्णलमें अतिदेशप्राप्त अवघातका द्वारबाधेन=योग्यताबाधसे बाध देखनेसे। तस्मात् तात्पर्यावधारणरूप श्रवण है। तच्च=वह तात्पर्यावधारण तो लिङ्गविचारके अधीन है, अतः विचारकर्त्तव्यतापर आद्यसूत्र श्रवणविधिमूलक है न कि मननविधिमूलक, इस रीतिसे सिद्ध हुआ जिज्ञासासूत्रको श्रवणविधिमूलकत्व॥

इति सरलायां जिज्ञासासूत्रस्य श्रवणविधिमूलत्वोपपत्तिः।

अथ विचारस्य श्रवणविधिमूलत्वोपपत्तिः।

ननु—त्वन्मते कर्मकाण्डविचारो यथोत्तरक्रतुविधिप्रयुक्तः, तथा ब्रह्मकाण्डविचारोऽपि ज्ञानविधिप्रयुक्त इत्येव किं न स्यात् उत्तरक्रतुविधिभिः स्वानुष्ठाप्यार्थनिर्णयान्तविचारस्येव 'तरति शोकमात्मविदि'त्यादिना शोकनिवृत्तिहेतुत्वेनावगतेनात्मज्ञानेन स्वसिद्धये वेदान्तविचारस्याक्षेपात्। युक्तं चानेकेषां क्रतुविधीनामाक्षेपकत्वादप्येकस्यैवाक्षेपकत्वमिति—चेन्न; यद्यपि कार्येण कारणाक्षेपः सम्भवति, तथापि तस्य वैधत्वसिद्ध्यर्थं विधिमूलत्वस्यावश्यं वक्तव्यत्वात्। अन्यथा कर्मकाण्डविचारस्यापि कर्मज्ञानादेवाक्षेपे अध्ययनविधेर्वोत्तरक्रतुविधीनां वा आक्षेपकत्वोक्तिरयुक्ता स्यात्; मननविधिमूलत्वं वदता त्वयापि अस्याक्षेपस्यावश्यं परिहरणीयत्वात्। एतेन—अर्थावगमपर्यन्ताध्ययनविधिप्रयुक्तत्वस्य कर्मविचारवत् ब्रह्मविचारेऽपि सम्भवे न श्रवणविधिप्रयुक्तत्वम्। नच—साक्षात्कारफलकमावृत्तिगुणकमननाद्यङ्गकमिदं श्रवणमध्ययनविधिप्रयुक्तश्रवणमात्रात् भिन्नमिति विध्यन्तरं युक्तमिति—वाच्यम् ब्रह्मविचारस्याप्यध्ययनविधिप्रयुक्तत्वेऽपि साक्षात्कारस्यापरोक्षैकरसात्मविषयत्वेनैवसिद्धेः।

अथ सरलायां विचारस्य श्रवणविधिमूलत्वोपपत्तिः ।

शङ्कते नन्विति । तुम्हारे मतमें कर्मकाण्डका विचार जैसे उत्तरक्रतुविधिप्रयुक्त है तैसे ब्रह्मकाण्डका विचारभी ज्ञानविधिप्रयुक्त है, ऐसा क्यों ? न हो, उत्तरक्रतुविधिओंसे जैसे स्वानुष्ठाप्य जो अर्थ तादृश अर्थका जो निर्णय तादृशनिर्णयान्त जो विचार तादृश विचारका आक्षेप होता है तैसे 'तरति शोकमात्मवित्' (छा० ७।१।३) इत्यादिसे शोकनिवृत्तिहेतुत्वेन अवगत जो आत्मज्ञान है तादृश आत्मज्ञानसे स्वसिद्धिके लिए वेदान्तके विचारका आक्षेप होनेसे । और अनेक क्रतुविधिओंमें आक्षेपकत्वसे एकका ही आक्षेपकत्व युक्तभी है इति चेन्न; क्यों ? यद्यपि कार्य्यसे कारणका आक्षेप सम्भवित है तथापि तस्य=विचारके वैधत्वकी सिद्धिके लिए विधिमूलत्वको अवश्य ही वक्तव्यत्व होनेसे । अन्यथा=विधिको आक्षेपकत्वका स्वीकार होनेपर कर्मकाण्डके विचारकाभी कर्मज्ञानसे ही आक्षेप होनेपर अध्ययन विधिमें या विचारोत्तर अनुष्ठेय जो क्रतु तादृश क्रतुविधिओंमें आक्षेपकत्वकी उक्ति अयुक्त होगी, और विचारको मननविधिमूलत्व कहनेवाले तुमसेभी इस आक्षेपका अवश्य परिहरणीयत्व होनेसे, एतेन इसका 'निरस्तम्' इस व्यवहितके साथ सम्बन्ध है, अर्थावगमपर्य्यन्त जो अध्ययनविधि तादृश अध्ययनविधिप्रयुक्तत्वका जैसे कर्मविचारमें सम्भव है, तैसे ब्रह्मविचारमेंभी सम्भव होनेपर विचारको श्रवणविधिप्रयुक्तत्व नहीं है । यदि यों कहो कि साक्षात्कारफलक और आवृत्तिगुणक जो मननादि तादृशमननाद्यङ्गक यह श्रवण अध्ययनविधिप्रयुक्तश्रवणमात्रसे भिन्न है, अतः विध्यन्तर युक्त है; तो ऐसा नहीं कहना क्यों ? ब्रह्मविचारको अध्ययनविधिप्रयुक्तत्व होनेपरभी साक्षात्कारको अपरोक्ष एकरस जो आत्मा तादृश आत्मविषयत्वसे ही सिद्ध होनेसे ।

आवृत्तेश्च विध्यन्तराङ्गीकारेऽपि अवघातवदृष्टफलत्वेन वक्तव्यत्वात् कर्मकाण्डेऽपि तात्पर्यावधारणपर्यन्तविचारावृत्तेरपेक्षितत्वात् ततः परं ब्रह्मकाण्डेऽपि तदावृत्तेरनपेक्षितत्वात् मननस्य च कर्मकाण्डेऽपि तदर्थनिश्चयापेक्षितत्वादध्ययनविधिविहितैकदेशारण्यकाध्ययनानुवादेन वाक्यान्तरेणारण्याद्यङ्गान्तरविधानवत् मुण्डककारीयाद्यध्ययनानुवादेन शिरोव्रतभूमिभोजनाद्यङ्गविधानवत् 'तां चतुर्भिरादत्त' इत्यर्थप्राप्ताभ्यादानानुवादेन संख्याविधानवच्चाध्ययनविध्याक्षिप्तविचारैकदेशानुवादेन त्वद्रीत्या मननाद्यङ्गविधानस्य सम्भवादिति–निरस्तम् ; मननविधिमूलत्ववादिनोऽपि समानत्वादध्ययनविधेः स्वाध्यायावाप्तिफलकतया अर्थज्ञानफलत्वाभावात्, अध्येतव्य इति कर्मप्रधानतव्यप्रत्ययेन स्वाध्यायस्यैव फलत्वावगमात् । नच तस्यापुरुपार्थतया फलवदर्थावबोधपर्यन्तं व्यापारः, 'चित्रया यजेत पशुकामः' इत्यादावपि काम्यमानपश्वादेरप्यफलत्वापत्तेः परम्परया पुरुषार्थसाधनतया फलत्वे प्रकृतेऽपि तस्य संभवात् । तस्माच्छ्रवणविधिर्मूलं विचारविधायकजिज्ञासासूत्रस्य नतु मननविधिरितिसिद्धम् ।

इत्यद्वैतसिद्धौ विचारस्य श्रवणविधिमूलत्वोपपत्तिः

आवृत्तेश्च=विचारावृत्तिविषयक विध्यन्तरका अङ्गीकार होनेपरभी अवघातवत् दृष्टफलत्वेन आवृत्तिको वक्तव्यत्व होनेसे कर्मकाण्डमेंभी तात्पर्य्यावधारणपर्यन्त विचारकी आवृत्तिको वक्तव्यत्व अपेक्षितत्व होनेसे 'ततः परम्' तात्पर्य्यावधारणके बाद ब्रह्मकाण्डमेंभी विचारकी आवृत्तिको अनपेक्षितत्व होनेसे। और मननको तो कर्मकाण्डमेंभी तदर्थ=कर्मकाण्डार्थनिश्चयके लिए अपेक्षितत्व होनेसे; और अध्ययनविधिसे विहित जो अध्ययन उस अध्ययनका एकदेश जो आरण्यकका अध्ययन उस आरण्यकाध्ययनके अनुवादसे जैसे आरण्यादिरूप अङ्गान्तरका विधान है और जैसे मुण्डकोपनिषदध्ययनानुवादसे शिरोव्रतका विधान है और जैसे कारीरीप्रतिपादकानुवाकाध्ययनके अनुवादसे भूमिभोजनादिरूप अङ्गका विधान है, और 'चतुर्भिरादत्ते' यहाँपर जैसे अर्थप्राप्त अभ्यासानुवादसे सङ्ख्याका विधान है, तैसे अध्ययनविध्याक्षिप्त जो विचार तादृश विचारका जो एकदेश तादृश विचारैकदेशके अनुवादसे तुम्हारी रीतिसे मननादिरूप अङ्गविधानका सम्भव होनेसे 'तां चतुर्भिरादत्ते' इसका स्पष्टीकरण–तां=वेणुनिर्मितकुद्दालको चतुर्भिः=देवस्य त्वा सवितुः (यजु० १।१०) इत्यादि चार मन्त्रोंसे आदान करता है, यहाँपर हस्तसे उक्त–काष्ठकुद्दालके ग्रहण विना मृत्खननरूप जो कुद्दालका कार्य्य है उसकी अनुपपत्ति है तथाच उक्तकुद्दालका अभ्यादान=आदान=हस्तसे ग्रहण अर्थतः=उक्त अनुपपत्तितः प्राप्त है उसका अनुवादकर उक्त वाक्य संख्याका विधान करता है, तद्वत्; यह कथन निरस्त हुआ, एतेन शब्दका अर्थ दिखलाते हैं विचारको मननविधिमूलत्व है, ऐसा कहनेवाले वादीके मतमेंभी उक्त दोषको समानत्व होनेसे। और अध्ययन विधिको स्वाध्यायप्राप्तिफलकत्व होनेसे अर्थज्ञानफलकत्वके अभावसे। 'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः' यहाँपर कर्मप्रधान तव्यप्रत्ययसे स्वाध्याय=स्वशाखाको ही फलत्वका अवगम होनेसे। नचेति। तस्य=स्वाध्यायको अपुरुषार्थत्व होनेसे, फलवाला जो अर्थावबोध तादृश अर्थावबोधपर्यन्त अध्ययनविधिका व्यापार है; नच=ऐसा नहीं है, क्यों? 'चित्रया यजेत पशुकामः' इत्यादिमेंभी काम्यमानपश्वादिकेभी अफलत्वकी आपत्तिसे और परम्परया पुरुषार्थसाधनत्वेन काम्यमान पश्वादिको फलत्व होनेपर प्रकृतेऽपि='अध्येतव्यः' यहाँपरभी तस्य=स्वाध्यायको परम्परया पुरुषार्थसाधनत्वका सम्भव होनेसे, तस्मात् विचारविधायक जिज्ञासासूत्रका श्रवणविधिमूल है, न कि मननविधि, यह सिद्ध हुआ।

इति सरलायां विचारस्य श्रवणविधिमूलत्वोपपत्तिः।

अथ वाचस्पत्युक्तस्वाध्यायविधिविचाराक्षेपकत्वस्योपपत्तिः।

प्रस्थानान्तरे तु अध्ययनविधेरेवार्थावगमपर्यन्तत्वात् काण्डद्वयविचाराक्षेपकत्वम्, श्रवणादिषु च न विधिः। तेषामन्वयव्यतिरेकसिद्धसाक्षात्कारसाधनताकत्वादित्युक्तम्। नच–अध्ययनाभावे प्रत्यवायश्रवणादध्ययनस्य नित्यताया अप्यवगमात् कथं तस्यार्थावगमपर्यन्तत्वमिति–वाच्यम्; अर्थज्ञानत्वेऽपि अध्ययनविधेरवैयर्थ्याय अधीतेनैव वेदेन कर्तव्यतां ज्ञात्वा अनुष्ठितं कर्म फलायालमित्यादिनियमाश्रयणादसत्यध्ययने यथोक्तनि-

त्यादिकर्मानुष्ठानासिद्ध्या प्रत्यवायश्रवणोपपत्तिः। तथाचअर्थज्ञानार्थस्यापि अध्ययनस्य फलतो नित्यत्वमिति केचित् अपरेतु—अनध्ययने संध्यानुपासन इव साक्षात् प्रत्यवायश्रवणेनाध्ययनस्यादृष्टत्वेऽप्यर्थज्ञानस्यापि दृष्टत्वादपेक्षितत्वाच्च तादर्थ्यमपीत्युभयार्थता पशुपुरोडाशादिवदिति—आहुः अत्र च—अध्ययनविधेर्नित्यत्वे सत्युभयविचाराक्षेपकत्वम् परेणाप्यङ्गीकृतं तदयुक्तम्; जिज्ञासासूत्रस्य मननविधिमूलत्ववादिनस्तस्य तदङ्गीकारानर्हत्वात्, अयुक्तत्वशङ्कानिवर्तकमननरूपविचारस्यापि अध्ययनविध्याक्षिप्तत्वेन तत्र विधिवैयर्थ्यात् सूत्रस्य तन्मूलत्वासिद्धेः।

इत्यद्वैतसिद्धौ वाचस्पत्युक्तस्वाध्यायविधिविचाराक्षेपकत्वस्योपपत्तिः।

अथ सरलायां वाचस्पत्युक्तस्वाध्यायविधिविचाराक्षेपकत्वस्योपपत्तिः।

प्रस्थानान्तरमें तो अध्ययनविधिको ही अर्थावगमपर्यन्तत्व होनेसे काण्डद्वयके विचारका आक्षेपकत्व है। और श्रवणादिमें विधि नहीं है तेषाम्=श्रवणादिको अन्वयव्यतिरेकसे सिद्ध जो साक्षात्कारकी साधनता तादृश साधनताकत्व होनेसे। नचेति। अध्ययनका अभाव होनेपर प्रत्यवायश्रवणात् 'योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम' (मनु० २।१६) इत्यादि प्रत्यवायके श्रवणसे अध्ययनकी नित्यताकाभी अवगम होनेसे तस्य=अध्ययनविधिको अर्थावगमपर्य्यन्तत्व कैसे है, इति नच वाच्यम् क्यों? अर्थज्ञानार्थत्व होनेपरभी अध्ययनविधिके अवैयर्थ्यके लिए अधीत वेदसे ही कर्त्तव्यताको समझकर अनुष्ठित हुआ कर्म फलके लिए समर्थ होता है इत्यादिरूप नियमके आश्रयणसे अध्ययनके न होनेपर यथोक्तनित्यादिकर्मके अनुष्ठानकी असिद्धिसे प्रत्यवायके श्रवणकी उपपत्ति है। फलतः अर्थज्ञानार्थ अध्ययनकोभी फलतः नित्यत्व है; ऐसा कोई लोग कहते हैं। और दूसरे लोग तो सन्ध्याका उपासन न करनेमें जैसे साक्षात् पापका श्रवण है तैसे अनध्ययनमें साक्षात् पापका श्रवण होनेसे अध्ययनको अदृष्टार्थत्व होनेपरभी अर्थज्ञानकोभी दृष्टत्व होनेसे और अपेक्षितत्व होनेसे तादर्थ्यमपि=अर्थज्ञानार्थत्वभी अध्ययनको है, इस रीतिसे पशुपुरोडाशादिवत्=अध्ययनको उभयार्थता है, यह कहते हैं उक्त दृष्टान्तका स्पष्टीकरण जैमिनीयमीमांसाके दशमाध्यायके प्रथमपादके नवम अधिकरणमें, और चतुर्थाध्यायके प्रथमपादके सप्तम अधिकरणमें देखना चाहिए। और यहाँपर अध्ययनविधिका नित्यत्व होनेपर उभयविचार=काण्डद्वयविचारका आक्षेपकत्व द्वैतीनेभी अङ्गीकार किया है, यह अयुक्त है—जिज्ञासासूत्रको मननविधिमूलत्व कहनेवाले द्वैतीको तदनर्हत्वात्=अध्ययनविधिको जो उभयविचाराक्षेपकत्व तादृश उभयविचाराक्षेपकत्वका जो अङ्गीकार तादृश अङ्गीकारके प्रति अनर्हत्व होनेसे। और अयुक्तत्वशङ्कानिवर्त्तक जो मननरूपविचार उस कोभी अध्ययनविधिसे आक्षिप्तत्व होनेसे तत्र=मननरूपविचारमें विधिके वैयर्थ्यसे सूत्रको उक्तमननरूपविचारमूलत्वकी असिद्धिसे—उक्तस्थलमें उभयविचारसे काण्डद्वयके विचारका ग्रहण है और काण्ड-

द्वयसे–कर्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड=ज्ञानकाण्ड इन दो काण्डोंका ग्रहण है, उपासनाकोभी मानसव्यापारत्व होनेसे कर्ममें अन्तर्भाव है अतः उपासनाकाण्डको पृथक् नहीं गिना है।

इति सरलायां वाचस्पत्युक्तस्वाध्यायविधिविचाराक्षेपकत्वस्योपपत्तिः॥

अथ ज्ञानस्य पुरुषतन्त्रताभङ्गः।

यत्तु शब्दजज्ञानस्वरूपमेव श्रवणं विधेयमिति तन्न; आपातदर्शनस्य तद्विना जायमानत्वात्। नच तद्भिन्ने प्रतिवाक्यमस्य वाक्यस्यायमर्थ इति सिद्धार्थोक्तरूपगुरूपदेशेनानेकशाखास्थवाक्यार्थज्ञानम्; वेदान्तरूपवाक्यार्थविचारस्य सामान्यतः साधनत्वेन प्राप्तत्वात्। नच यथा घटादावितरभेदे सिद्धेऽपि पृथिवीतरेभ्यो भिद्यत इत्यत्र न सिद्धसाधनम्, यथा च स्थानप्रकरणाधिकरणोक्तरीत्या राजसूयान्तर्गतेष्टिपशुसोमेषु प्रातिस्विकरूपेण चोदकत इति कर्त्तव्यताप्राप्तावपि राजसूयरूपे तदप्राप्तिः; तथा वेदान्तविचारत्वोपहिते ब्रह्मज्ञानहेतुताया अप्राप्तेरपूर्वविधितेति–वाच्यम्; सामान्यतः प्राप्तसाधनसाध्यभावमनादृत्य विशेषोपाधिना अप्राप्तसाधनत्वप्राप्तये अपूर्वविध्यङ्गीकारे ज्योतिष्टोमादिवाक्यविचारेऽपि तेन रूपेण तद्वाक्यार्थज्ञानं प्रत्यप्राप्तसाधनतासिद्धये अपूर्वविध्यन्तरकल्पनापत्तेः।

अथ सरलायां ज्ञानस्य पुरुषतन्त्रताभङ्गः।

शब्दसे उत्पन्न होनेवाला जो ज्ञान तद्रूप ही श्रवण विधेय है; इति यत् तत् तु न; क्यों? आपातदर्शनको तद्विना=विधिविना जायमानत्व होनेसे नचेति। तद्भिन्ने=आपातदर्शनसे भिन्न वाक्यवाक्यके प्रति 'इस वाक्यका' यह अर्थ है, इस रीतिसे सिद्धार्थोक्तिरूप जो गुरूपदेश तादृश गुरूपदेशसे जो अनेक शाखास्थितवाक्योंके अर्थका ज्ञान तादृश ज्ञानमें विधि है, नच=ऐसा नहीं हो सकता है, क्यों? वेदान्तरूप जो वाक्य तादृश वाक्योंका जो अर्थ तादृश अर्थविचारको सामान्यतः साधनत्वेन प्राप्तत्व होनेसे। नचेति। घटादिमें पृथिवीतरभेदके सिद्ध होनेपरभी 'पृथिवी इतरेभ्यो भिद्यते गन्धवत्त्वात्' यहाँपर जैसे सिद्धसाधन नहीं है, और जैसे स्थानप्रकरणाधिकरणोक्तरीतिसे राजसूयान्तर्गत इष्टि पशु तथा सोमनामक यागोंमें प्रातिस्विकरूपेण=प्रतिव्यक्तिरूपसे अतिदेशसे इतिकर्त्तव्यताकी प्राप्ति होनेपरभी राजसूयरूपमें इतिकर्त्तव्यताकी अप्राप्ति है, तैसे वेदान्तविचारत्वोपहितमें ब्रह्मज्ञानके हेतुताकी अप्राप्ति होनेसे श्रवण विधिको अपूर्वविधिता है, इति नच वाच्यम्; क्यों? सामान्यतः प्राप्त जो साध्यसाधनभाव उस साध्यसाधनभावका आदर न कर विशेष उपाधिसे अप्राप्तसाधनत्वकी प्राप्तिके लिए अपूर्वविधिका अङ्गीकार होनेपर ज्योतिष्टोमादिवाक्यविचारमेंभी तिस रूपसे तद्वाक्यार्थज्ञानके प्रति अप्राप्तसाधनताकी सिद्धिके लिए अपूर्वविध्यन्तरके कल्पनाकी आपत्तिसे उक्त राजसूयदृष्टान्तका स्पष्टीकरण जैमिनीयमीमांसाके तृतीयाध्यायके तृतीयपादके दशवें अधिकरणमें देखना चाहिए।

एतेन—निदिध्यासनस्याव्यक्तस्वभावब्रह्मसाक्षात्कारहेतुता नान्यतः प्राप्तेति स तावदपूर्वविधिः तथा अज्ञातादौ श्रवणमननयोर्निदिध्यासने लिङ्गादेव प्राप्तावपि नियत-

विषयकनिदिध्यासनविषयगुणान्यगुणेषु लिङ्गेन तयोरप्राप्तेः तद्विधिरप्यपूर्वविधिरेव, एवं च श्रवणमननयोर्निदिध्यासितव्यगुणांशे दृष्टद्वारेण, अन्यत्र त्वदृष्टद्वारेण निदिध्यासनाङ्गतेति–निरस्तम् ; श्रवणादीनां निर्गुणविषयतया सगुणविषयत्वाभावात् विपरीताङ्गाङ्गिभावस्य स्थापितत्वाच्च, सूक्ष्मार्थगोचरनिदिध्यासनस्य तादृशार्थविषयकसाक्षात्कारहेतुताया दृष्टत्वेनापूर्वत्वाभावाच्च। ननु–अत्र श्रूयमाणलिङ्गादेः का गतिरिति–चेत् ; शिलातलप्रयुक्तक्षुरतैक्ष्ण्यवत् कुण्ठीभावात् 'जर्तिलयवाग्वा वा जुहुया'दित्यादिदात्विवार्थवादत्वमेव नच–'पत्न्यवेक्षितमाज्यं भवति' विदुषा कर्मकर्त्तव्यं तस्मात् पश्येत् नित्यशः। इत्यादिना ज्ञानस्यापि विधानं दृष्टमिति–वाच्यम्, तत्र तद्धेत्विन्द्रियसंयोगादेर्विधेयत्वात् अनन्यगत्या लक्षणाया इष्टत्वात्।

एतेनेति। निदिध्यासनको अव्यक्तस्वभाव जो ब्रह्म तादृश ब्रह्मका जो साक्षात्कार तादृश साक्षात्कारके प्रति हेतुता अन्यप्रमाणसे नहीं प्राप्त है, अतः निदिध्यासनकी विधि अपूर्वविधि है तैसे अज्ञातादौ=अज्ञातमें और अमतमें निदिध्यासनके असम्भवसे श्रवणमनन इन दोनोंकी निदिध्यासनमें लिङ्गसे ही प्राप्ति होनेपरभी नियतविषक जो निदिध्यासन तादृश निदिध्यासनके विषय जो गुण उन गुणोंसे अन्य जो गुण उन गुणोंमें लिङ्गसे तयोः=श्रवण तथा मनन इन दोनोंकी प्राप्ति न होनेसे तद्विधिरपि=श्रवण तथा मनन इन दोनोंकी विधिभी अपूर्व विधि ही है, एवञ्च=ऐसा होनेपर श्रवण और मनन इन दोनोंको निदिध्यासितव्यगुणांशमें दृष्टद्वारसे और अन्यत्र=निदिध्यासनविषयीभूतगुणान्यगुणोंमें अदृष्टद्वारा निदिध्यासनकी अङ्गता है यह कथन निरस्त हुआ एतेन शब्दका स्पष्टीकरण करते हैं=श्रवणादिको निर्गुणविषयत्व होनेसे सगुणविषयत्वके अभावसे और विपरीत अङ्गाङ्गिभावके स्थापितत्वसे–श्रवण अङ्गी है और मनन तथा निदिध्यासन ये दोनों अङ्ग है यह सिद्ध कर चुके हैं, और सूक्ष्मार्थविषयक जो निदिध्यासन तादृश निदिध्यासनमें तादृशार्थ=सूक्ष्मार्थविषयक साक्षात्कारके प्रति हेतुताको दृष्टत्व होनेसे अपूर्वत्वके अभावसेभी; शङ्कते नन्विति। अत्र=तद्विजिज्ञासस्व (तै०३।१।१) (श्रोतव्यः) इत्यादि वाक्योंमें श्रूयमाणलिङ्गतव्यादिकी क्या गति है, इति चेत् शिलाके ऊपर प्रयुक्त जो क्षुर उसकी तीक्ष्णताकी तरह कुण्ठीभाव होनेसे 'जर्तिलयवाग्वा जुहुयात्' जै० १०।८।४ इत्यादिवत् अर्थवादत्व ही है। नचेति। पत्न्यवेक्षितमाज्यं भवति। विदुषा कर्मकर्त्तव्यं तस्मात्पश्येत नित्यशः। इत्यादिसे ज्ञानकाभी विधान देखागया है, इति नच वाच्यम्, क्यों ? तत्र=उक्तस्थलोंमें तद्धेतु=ज्ञानहेतु जो इन्द्रियसंयोगादि तादृश इंद्रियसंयोगादिका विधेयत्व होनेसे अनन्यगतिसे लक्षणाको इष्टत्व होनेसे।

नच—न विधौ परः शब्दार्थ इत्यनेन विरोधः गोभिः श्रीणीत मत्सरमित्यादौ विधिवाक्येऽपि लक्षणादर्शनेन तस्यौत्सर्गिकत्वात् ; अर्थवादानुरोधेन विधौ न परः शब्दार्थ इत्यर्थकत्वाच्च। नच–साक्षात्कृतिसाध्यत्वस्य इन्द्रियसम्प्रयोगेऽप्यभावात् इन्द्रि-

यनिष्ठक्रियाद्वारा परम्परया कृतिसाध्यत्वस्य ज्ञानेऽपि सम्भवात् अनिच्छतो दुर्गन्धादि-ज्ञानवत् अनिष्टसम्प्रयोगस्यापि दर्शनाच्च ज्ञानसाम्यं संप्रयोगस्येति—वाच्यम्; स्वर्गादाविव स्वेच्छाधीनकृतिसाध्यत्वस्य विधेयताप्रयोजकस्य ज्ञाने अभावात्, सम्प्रयोगस्य तु तद्वै-परीत्येन विशेषात्। नच—'भक्षेहि'ति भक्षमन्त्रेषु तृप्तेरनुनिष्पादितयाऽननुष्ठेयत्वेन तृप्ति-प्रकाशकभागस्य तत्र विभज्य विनियोगाभावेऽपि अवेक्षणस्यानुष्ठेयत्वात् तत्प्रकाशक-भागस्य अवेक्षणे विनियोग इति तृतीयाध्यायोक्तिविरोध इति—वाच्यम्; इन्द्रियसम्प्र-योगरूपावेक्षणस्य तृप्त्यादिवदनुनिष्पादित्वाभावेनानुष्ठेयतया तत्प्रकाशकभागस्य तस्मि-न्विभज्य विनियोग इत्येवंपरत्वात्।

नचेति। 'न विधौ परः शब्दार्थः' इसके साथ विरोध है, नच=विरोध नहीं है, क्यों? गोभिः=गोदुग्धके साथ मत्सरम्=सोमरसको पकावे, इत्यादि विधिवाक्यमेंभी लक्षणाके देखनेसे तस्य=उक्त शाबरवाक्यको औत्सर्गिकत्व होनेसे। और अर्थवादके अनुरोधसे विधिमें 'पर शब्दार्थ' नहीं होता है इत्यर्थकत्वसेभी, नचेति। साक्षात्कृतिसाध्यत्वका इन्द्रियसम्प्रयोगमेंभी अभाव होनेसे और इन्द्रियनिष्ठ क्रियाद्वारा परम्परासे कृतिसाध्यका ज्ञानमेंभी सम्भव होनेसे और इच्छा न करनेवालेको जैसे दुर्गन्धादिका ज्ञान होता है, तैसे अनिष्टके साथ सम्प्रयोगकेभी देखनेसे ज्ञानसाम्य है संयोगमें, इति नच वाच्यम्, क्यों? स्वर्गादिकी तरह विधेयताप्रयोजक जो स्वेच्छाधीनकृतिसाध्य है उस कृतिसाध्यत्वका ज्ञानमें अभाव होनेसे और सम्प्रयोगमें तद्वैपरीत्यप्रयुक्त विशेष होनेसे। नचेति। 'भक्षेः हि' (जै० ३, २, ९;) इत्यादि भक्षमन्त्रोंमें तृप्तिके भक्षणानुनिष्पादित्व होनेसे अननुष्ठेयत्वसे तृप्तिप्रकाशक भागका तत्र=तृप्तिमें विनियोगका अभाव होनेपरभी अवेक्षणको अनुष्ठेयत्व होनेसे तत्प्रकाशकभागस्य=अवेक्षणप्रकाशकभागका अवेक्षणमें विनियोग है, इस तृतीयाध्यायोक्ति=जैमिनीयमीमांसाके तृतीयाध्यायके द्वितीय-पादके नवमाधिकरणकी उक्तिके साथ विरोध है, इति नच वाच्यम्, क्यों? इन्द्रियसम्प्रयोग-रूप अवेक्षणमें तृप्त्यादिवत् अनुनिष्पादित्वके अभावसे इन्द्रियसम्प्रयोगरूप अवेक्षणको अनुष्ठेयता होनेसे अवेक्षणप्रकाशक भागका तस्मिन्=इन्द्रियसम्प्रयोगरूप अवेक्षणमें विभागकर विनियोग है, इत्याकारक अर्थपरत्व होनेसे। इस विषयका स्पष्टीकरण उक्तस्थलमें द्रष्टव्य है।

यच्च—एकश्रोत्रगतानेकगकारेषु बुभुत्साप्रयत्नाभ्यामभीष्टगकारज्ञानदर्शनेन ज्ञान-स्यापि विधेयत्वमिति, तन्न; अनभिमतविषयवैमुख्यस्यैव बुभुत्साप्रयत्नासाध्यतया ज्ञानं प्रति तयोरप्रयोजकत्वात्। नच—'यदेव विद्यया करोती'ति विद्याया अङ्गत्वश्रवणात् अवि-हितस्य चाङ्गत्वानुपपत्त्या विद्याया विधेयत्वमिति—वाच्यम्; तस्य वाक्यस्योद्गीथोपासना-प्रकरणस्थतया तत्रत्य विद्यापदस्य उपासनापरतया विहितत्वेनाङ्गत्वाविरोधात्, 'तन्निर्धा-रणानियमस्तद्दृष्टे'रित्यत्र विद्याया अङ्गावबद्धाया अङ्गत्वनिरासेऽपि न विधेयत्वहानिः।

ननु—यथा दुर्गन्धादिज्ञानस्येच्छाविषयत्वाभावेऽपि ब्रह्मज्ञानस्य तद्विषयत्वं यथाच ज्ञानान्तरस्य नियमादृष्टासाध्यत्वेऽपि ब्रह्मज्ञानस्य तत्साध्यत्वं यथापर्वतादिज्ञानस्य नयनोन्मीलने सति प्रयत्नान्तरनिरपेक्षत्वेऽपि ध्रुवारुन्धत्यादिज्ञाने तत्सापेक्षत्वं तथातिसूक्ष्मब्रह्मज्ञानस्य इच्छाप्रयत्नसाध्यत्वसम्भव इति—चेन्न ।

और जो कहा है कि—एकश्रोत्रगत अनेक गकारोंमें बुभुत्सा तथा प्रयत्न इन दोनोंसे एक गकारका ज्ञान देखनेसे ज्ञानकोभी विधेयत्व है, तन्न; वह ठीक नहीं, क्यों ? अनभिमत जो विषय तादृश विषयसे जो वैमुख्य उस वैमुख्यको ही बुभुत्साप्रयत्नसाध्यत्व होनेसे ज्ञानके प्रति तयोः=बुभुत्सा तथा प्रयत्न इन दोनोंको अजनकत्व होनेसे नचेति । यदेव विद्यया करोति (छा० १।१।१०) इस रीतिसे विद्यामें अङ्गत्वके श्रवणसे और अविहितमें अङ्गकी अनुपपत्तिसे विद्याको विधेयत्व है, इति नच वाच्यम् ; क्यों ? तस्य=उक्तवाक्यको उद्गीथोपासनाप्रकरणस्थत्व होनेसे तत्रत्यविद्यापदको उपासनापरत्व होनेसे विहितत्वेन अङ्गत्वके अविरोधसे । 'तन्निर्धारणानियमस्तद्दृष्टेः' (वे० ३।३।४२) यहाँपर अङ्गावबद्ध विद्यामें अङ्गत्वका निरास होनेपरभी विधेयत्वकी हानि नहीं है । शङ्कते नन्विति । जैसे दुर्गन्धादिज्ञानमें इच्छाविषयत्वका अभाव होनेपरभी ब्रह्मज्ञानको तद्विषयत्वम्=इच्छाविषयत्व है । और जैसे ज्ञानान्तरमें नियमादृष्टसे असाध्यत्व होनेपरभी ब्रह्मज्ञानमें नियमादृष्टसाध्यत्व है । और जैसे पर्वतादिज्ञानमें नयनोन्मीलनके होते हुए प्रयत्नान्तरनिरपेक्षत्व होनेपरभी ध्रुवके तथा अरुन्धत्यादिके ज्ञानमें प्रयत्नान्तरसापेक्षत्व है, तैसे अतिसूक्ष्म जो ब्रह्म उस ब्रह्मके ज्ञानमें इच्छाप्रयत्नसाध्यत्वका सम्भव है, इति चेन्न; क्यों ?

प्रामाणिकदृष्टविजातीयकिंचिद्धर्मदर्शनेनाप्रामाणिकवैजात्यस्य कल्पयितुमशक्यत्वात्, प्रयत्नान्वयव्यतिरेकयोश्च ज्ञानसाधनजनने उपक्षीणतया ध्रुवारुन्धत्यादिनिदर्शनान्यथासिद्धतया तन्न्यायेन ब्रह्मज्ञाने कृतिसाध्यत्वस्य वक्तुमशक्यत्वाच्च । नच—शास्त्रार्थज्ञानस्य नियमेन पुंतन्त्रत्वदर्शनात् ब्रह्मणश्च शास्त्रार्थत्वात् तज्ज्ञानस्य पुंतन्त्रत्वमिति—वाच्यम्, तत्रापि ज्ञानसाधनस्यैव पुंतन्त्रत्वात् । यच्च प्रशस्ताप्रशस्तज्ञानयोर्विधिनिषेधदर्शनं तदपि ज्ञानकारणविषयकमेव । यच्च इच्छादिना उत्पत्तिनिरोधयोरनुभवः, सोऽपि करणव्यापारविषयक एव । नच एवं नामादिषु ब्रह्मोपासनायां त्वया वैधेयत्वेनाङ्गीकृतायां पुंतन्त्रत्वं न सिध्येत् तत्रापि मनोधारणादेरेव पुंतन्त्रत्वस्य वक्तुं शक्यत्वादिति—वाच्यम्, ज्ञानविध्युक्तानुपपत्तेस्तत्राभावेन निरोधादीनामन्यपरत्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् । नच—उक्तज्ञानरूपश्रवणादिप्रवृत्तिप्रयत्नसाध्यत्वस्यानुभवसिद्धत्वात् विधेयत्वमिति—वाच्यम्, अनुभवान्यथासिद्धेरुक्तत्वात् ।

प्रमाणसे सिद्ध जो दृष्ट उससे विजातीय जो किञ्चित् धर्म तादृश धर्मदर्शनसे अप्रामाणिकवैजात्यको कल्पना करनेके लिए अशक्यत्व होनेसे, और प्रयत्नके अन्वयव्यतिरेकोंको ज्ञानसाधनके उत्पादनमें उपक्षीणत्व होनेसे ध्रुवारुन्धत्यादि निदर्शनके अन्यथा सिद्धत्वसे,

तन्न्यायसे ब्रह्मज्ञानमें कृतिसाध्यत्वको कहनेके लिए अशक्य होनेसे, नचेति । शास्त्रप्रतिपाद्य जो अर्थ तादृश अर्थविषयक ज्ञानको नियमसे पुमधीनत्व देखनेसे ब्रह्मकोभी शास्त्रार्थत्व होनेसे, तज्ज्ञानस्य=ब्रह्मज्ञानको पुंतन्त्रत्व है इति नच वाच्यम् ; क्यों ? तत्रापि=शास्त्रार्थज्ञान स्थलमेंभी ज्ञानसाधनको ही पुंतन्त्रत्व होनेसे। और जो प्रशस्तज्ञानमें विधिदर्शन है और अप्रशस्तज्ञानमें निषेध दर्शन है वहभी ज्ञानकारणविषयक ही है । और जो इच्छादिसे ज्ञानमें उत्पत्ति तथा निरोध इन दोनोंका अनुभव है वहभी करणव्यापारविषयक ही है । नचेति । ऐसा माननेपर तुमसे विधेयत्वेन अङ्गीकृत जो नामादिमें ब्रह्मोपासना है, उस ब्रह्मोपासनामें पुंतन्त्रत्व न सिद्ध होगा, वहाँपरभी मनोधारणादिको ही पुंतन्त्रत्वको कहनेके लिए शक्यत्व होनेसे; इति नच वाच्यम् ; क्यों ? ज्ञानविधिमें उक्त जो अनुपपत्ति उस अनुपपत्तिका वहाँपर अभाव होनेसे निरोधादीनाम्=इच्छाधीनत्वेन अनुभूय निरोधोत्पत्त्यादिका अन्यपरत्व कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे । नचेति । उक्त जो ज्ञानरूप श्रवणादिक हैं उन श्रवणादिकोंमें अतिप्रयत्नसाध्यत्वको अनुभवसिद्धत्व होनेसे श्रवणादिरूप ज्ञानमें विधेयत्व है, इति नच वाच्यम् क्यों ? अनुभवकी अन्यथा सिद्धिको अनुपदमेव उक्तत्व होनेसे ।

नच—त्वयापि निदिध्यासनस्य परोक्षज्ञानसन्तानरूपस्य विधेयत्वं वदता सन्तानिनां ज्ञानानामपि विधेयत्वमङ्गीकर्त्तव्यमेव तद्विधाने सन्ततिविधानानुपपत्तेरिति—वाच्यम् आवृत्तिगुणयोगस्यैव विधेयत्वात् उपनिषदमावर्तयेदित्यत्रेव नच—श्रवणादेः ज्ञानात्मकत्वे श्रवणं यावदज्ञानमित्यज्ञानविरोधित्वस्मृतेः श्रवणेनाज्ञानं निवृत्तमित्यनुभवस्य चानुपपत्तिरिति—वाच्यम् ; आवृत्तिगुणयोगवाक्यार्थप्रमित्युपयुक्ततात्पर्यनिर्णयद्वारा उपक्रमादिलिङ्गविचारात्मकश्रवणादेरज्ञानादिविरोधितया स्मृत्यनुभवयोरुपपत्तेः । 'विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीते'त्यादौ ज्ञानविधावुक्तानुपपत्त्या प्रज्ञाशब्दस्य विचारलाक्षणिकत्वोपपत्तेः । नच त्वया विधेयत्वेनाङ्गीकृतस्य ध्यानस्य ज्ञानभिन्नत्वे तस्य स्वविषये व्यवहारजनकत्वं न स्यादिति—वाच्यम् ; तदन्यज्ञानेनैव तत्कारणतयाऽऽवश्यकेन तद्विषये व्यवहारोपपत्तेः प्रमाणवतोऽस्य गौरवस्यादोषत्वात् ।

नचेति । परोक्षज्ञानोंका सन्तानरूप जो निदिध्यासन है उस निदिध्यासनके विधेयत्वको कहनेवाले तुमसेभी सन्तानिरूपज्ञानोंका विधेयत्व अवश्य अङ्गीकरणीय है, तद्विधाने=सन्तानिरूपज्ञानोंका विधान न होनेपर सन्ततिके विधानकी अनुपपत्तिसे, इति नच वाच्यम्; क्यों ? आवृत्तिरूप जो गुण उसके योगको ही विधेयत्व होनेसे—' उपनिषदमावर्तयेत् ' यहाँकी तरह । नचेति । श्रवणादिको ज्ञानात्मकत्व न होनेपर ' श्रवणं यावदज्ञानं ' इस अज्ञानविरोधित्वकी स्मृतिकी और ' श्रवणेन अज्ञानं निवृत्तम् ' इस अनुभवकी अनुपपत्ति है इति नच वाच्यम् क्यों ? आवृत्तिगुणयोगसम्बन्धि जो वाक्य तादृश वाक्यप्रतिपाद्यार्थविषयक जो प्रमिति तादृश प्रमिति—उपयुक्त जो तात्पर्यनिर्णय तादृश निर्णयद्वारा उपक्रमादिलिङ्गविचारात्मक

श्रवणादिको अज्ञानविरोधित्व होनेसे स्मृति तथा अनुभव इन दोनोंकी उपपत्ति है अतः। और 'विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत' (बृ० ४।४।२१) इत्यादिमें ज्ञानविधि होनेमें उक्त अनुपपत्ति है अतः प्रज्ञाशब्दको विचारमें लाक्षिणकत्व मानना युक्तियुक्त है । नचेति । तुमसेभी विधेयत्वेन अङ्गीकृत जो ध्यान है, उस ध्यानको ज्ञानभिन्नत्व होनेपर तस्य=ध्यानको स्वविषयमें व्यवहार-जनकत्व न होगा, इति नच वाच्यम्; क्यों ? तत्कारणतया=ध्यानविषयकव्यवहारकारणत्वेन आवश्यक तदन्य=ध्यानान्यज्ञानसे ही तद्विषये=ध्यानविषयमें व्यवहारकी उपपत्तिसे प्रमाणवत् इस गौरवको अदोषत्व होनेसे ।

अतएव ध्यानविषये जानामीत्यनुभवस्मरणे तद्भिन्नज्ञानप्रयुक्ततया व्याख्याते । तस्याभिध्यानादिति श्रुतौ ध्यानस्य मायाख्याविद्यानिवर्त्तकत्वेऽपि तदुक्तिः ध्यानानन्तर-भाविसाक्षात्कारद्वाराभिप्रायेति न तया विरोधः । यत्तूपासीतेत्युपक्रम्य 'य एवं वेद'त्यु-पसंहारेण त्वयापि विधेयत्वेनाङ्गीकृतायामुपासनायां विदिधातुप्रयोगेण उपासनायाः ज्ञानत्वावगमात् अत्रापि ज्ञानत्वं न विधेयत्वविरोधीति तन्न; उक्तानुपपत्त्या विदेस्तत्रा-मुख्यत्वेनैव ज्ञानत्वागमकत्वात् धात्वनेकार्थत्वेन वा । नच—मानतन्त्रतामात्रेण कथमपुं-तन्त्रता प्रतिग्रहीत्रादितन्त्रस्यपि दानादेस्तद्दर्शनादिति—वाच्यम्; नह्यन्यतन्त्रतामात्रेणा-विधेयत्वं ब्रूमः किन्तु पुमिच्छाभिर्यत्कारणे सति अन्यथा कर्तुमशक्यत्वात् ।

इत्यद्वैतसिद्धौ ज्ञानस्य पुरुषतन्त्रताभङ्गः ॥

अतएव=उक्तस्थलमें ध्यानभिन्नज्ञानके स्वीकारसे ही ध्यानविषयविषयक 'जानामि' यह अनुभव और स्मरण ये दोनों तद्भिन्न=ध्यानभिन्नज्ञानप्रयुक्तत्वेन व्याख्यात हुए 'तस्या-भिध्यानम्' (श्वे० १।१०) इस श्रुतिमें ध्यानको मायाख्य अविद्याका निवर्त्तकत्व न होने-परभी जो तदुक्तिः=ध्यानको मायाख्याविद्याके निवर्त्तकत्वकी उक्ति है वह ध्यानके बाद होनेवाला जो साक्षात्कार तादृश साक्षात्कारी ध्यानको मायाख्याविद्यानिवर्त्तकत्वाभिप्राया है= स्वानन्तर भावि साक्षात्कारद्वारा ध्यान अविद्याका निवर्त्तक है, एतदभिप्रायवाली वह श्रुति है अतः उसके साथ विरोध नहीं । 'उपासीत' यह उपक्रमकर 'य एवं वेद' इस उपसंहारसे तुमसेभी विधेयत्वेन अङ्गीकृत उपासनामें विदिधातुके प्रयोगसे उपासनाके ज्ञानत्वका अवगम होनेसे अन्यत्रभी ज्ञानत्व विधेयत्वका विरोधी नहीं है, इति यत् तत् तु न, क्यों ? उक्त अनु-पपत्तिसे विदिको तत्र=ध्यान में अमुख्यत्वेन ही ज्ञानत्वका अगमकत्व होनेसे, या धातुओंका अनेकार्थत्व होनेसे । नचेति । प्रमाणाधीनत्वमात्रसे पुरुषतन्त्रताका अभाव कैसे है—प्रतिग्रही-त्रादितन्त्रदानादिमेंभी पुरुषतन्त्रता=विधेयत्व देखनेसे, इति नच वाच्यम्, क्यों ? अन्यतन्त्र-तामात्रसे हम अविधेयत्व नहीं कहते हैं किन्तु कारणे सति=कारणके होनेपर पुरुषेच्छाओंसे अन्यथा करनेके लिए जो अशक्य है 'तेन इति शेषः' उससे अविधेयत्व कहते हैं ।

इति सरलायां ज्ञानस्य पुरुषतन्त्रताभङ्गः ॥

अथ ज्ञानविधिभङ्गः ।

किञ्च विधीयमानं ज्ञानं किं शाब्दं किं वा तदभ्यासः यद्वा तत्त्वमनपेक्ष्यारोपितविषयतया ध्यानं; किंवाऽपरोक्ष्यफलकं ज्ञानान्तरम् । नाद्यः; कर्मकाण्ड इव गृहीतसङ्गतेः स्वतः सिद्धत्वेन कृत्यसाध्यतया विध्यविषयत्वात् । नच—कर्मकाण्डेऽप्यापातजन्यस्य स्वतः सिद्धत्वेऽपि विमर्शजन्यस्य कृतिसाध्यत्वम्, अन्यथा अध्ययनविधेरुत्तरक्रतुविधेर्वा तदाक्षेपकता न स्यादिति—वाच्यम्; तज्जनकविचार एव विधेयताप्रयोजककृतिसाध्यत्वपर्यवसानेन तादृशज्ञानेऽप्यसम्भवात् । न द्वितीयः; स किं मोक्षाय विधीते । साक्षात्काराय वा । नाद्यः,तस्य नैयोगिकत्वेन स्वर्गादिवदनित्यत्वापातात् । नच बन्धध्वंसस्य नैयोगिकत्वेऽपि ध्वंसत्वात् श्रुत्यादिबलाच्च नित्यत्वोपपत्तिरिति—वाच्यम्, नहि मन्मय इव त्वन्मयेऽपि बन्धध्वंसमात्रं मुक्तिः किन्तु लोकान्तरप्राप्तिः; तस्यामुक्तदोषतादवस्थ्यापत्तिः। नचानावृत्तिश्रुत्या नित्यत्वम्; 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते एवमेवामुत्र पुण्यचितो लोकः क्षीयते' इति श्रुत्या नैयोगिकस्यानित्यत्वावगमात् ।

अथ सरलायां ज्ञानविधिभङ्गः ।

किञ्च=औरभी वक्तव्य है, विधीयमान ज्ञान क्या शाब्द है या शाब्दज्ञानका अभ्यास है या तत्त्वकी अपेक्षा न कर आरोपितविषयत्वेन ध्यान है, अथवा आपरोक्ष्यफलक ज्ञानान्तर है। नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों ? गृहीतपदपदार्थसङ्गतिक पुरुषको कर्मकाण्डकी नाईं शाब्दज्ञानको स्वतः सिद्धत्व होनेसे शाब्दज्ञानके विध्यविषयत्वसे। नचेति । कर्मकाण्डमेंभी आपातजन्यज्ञानको स्वतः सिद्धत्व होनेपरभी विमर्शविचारजन्यको कृतिसाध्यत्व है । अन्यथा अध्ययनविधिको या उत्तरक्रतुविधिको तदाक्षेपकता=विचाररूपविमर्शाक्षेपकता न होगी, इति नच वाच्यम्; क्यों ? तज्जनकविचारे एव=ज्ञानजनकविचारमें ही विधेयताप्रयोजककृतिसाध्यत्वके पर्य्यवसानसे तादृश=उक्तविचारजन्यज्ञानमें कृतिसाध्यत्वके असम्भवसे । न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी नहीं बन सकता है; क्यों ? स=वह अभ्यास क्या मोक्षके लिए विहित होता है या साक्षात्कारके लिए । नाद्यः=मोक्षके लिए अभ्यास विहित होता है यह प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, तस्य=मोक्षको नैयोगिकत्वेन=अभ्यासजनियोगजन्यत्व होनेसे स्वर्गादिवत् मोक्षके अनित्यत्वके आपातसे; बन्धध्वंसको नियोगजन्यत्व होनेपरभी ध्वंसत्व होनेसे और श्रुत्यादिके बलसे नित्यत्वकी उपपत्ति है; इति नच वाच्यम् क्योंकि मन्मतकी तरह त्वन्मतमें बन्धध्वंसमात्र मुक्ति नहीं है किन्तु अन्यलोककी प्राप्तिरूप है और लोकान्तरकी प्राप्तिरूप मुक्तिमें तो उक्त दोषके तादवस्थ्यकी आपत्ति है । अनावृत्तिश्रुतिसे 'तेषां न पुनरावृत्तिः' (बृ० ६, २, १५;) एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवावर्त्तं नावर्त्तन्ते (छा० ४।१५।६) नच पुनरावर्त्तते (छा० १५।१) लोकान्तरकी प्राप्तिरूप मुक्तिको नित्यत्व है । नच=नहीं है, क्यों ? तद्यथेह कर्मचितो लोकः क्षीयते (छा० ८।१।६) इत्यादिश्रुतिसे नियोगजन्यके अनित्यत्वका अवगम होनेसे ।

नचैतच्छ्रुतिविरोधेन तस्यानित्यत्वाबोधकत्वं; 'यत् कृतकं तदनित्यम्' इति युक्त्युपोद्बलिततया प्राबल्यात् । न द्वितीयः; तत् किं दृष्टफलकमदृष्टफलकं वा । नाद्यः, परोक्षज्ञानाभ्यासेन तत्त्वसाक्षात्कारादर्शनात् । न द्वितीयः; प्रमाणायत्तत्वात्तस्य । अतएव न तृतीयः । ध्यानस्य ज्ञानरूपत्वाभावाच्च न चतुर्थः शब्दस्यापि प्रामाण्याभावापातात् ब्रह्मणि प्रमाणीभूतज्ञानकर्त्तव्यतायामेव प्रामाण्यात् । नच महातात्पर्यमादाय ब्रह्मण्यपि प्रामाण्यम्, तादृशज्ञानस्यापि प्रमाणात्ततया विधिफलत्वात् । तस्मात् पत्न्यवेक्षितमाज्यमित्यादावपि ज्ञानस्याविधानात् ध्यानस्यापि विज्ञानव्यतिरेकसाधनात् सूक्ष्मशास्त्रार्थबुद्धौ कृत्यन्वयव्यतिरेकयोस्तत्साधनविषयतयान्यथासिद्धत्वाच्च नात्मज्ञानं विधातुं शक्यते । तदेवं श्रवणस्य ज्ञानरूपत्वे विधेयत्वानुपपत्तिः तस्मात् ज्ञानविजातीयं श्रवणम्, अपरोक्षज्ञानजनकशब्देतिकर्त्तव्यतारूपविचारात्मकं मननिदिध्यासनाङ्गकं प्रमेयावगमप्रत्यङ्गतया प्रधानभूतमपरोक्षज्ञानफलकतया विधीयत इति सिद्धम् ।

इत्यद्वैतसिद्धौ ज्ञानविधिभङ्गः ।

नचेति । एतच्छ्रुतिविरोधेन=अनावृत्तिश्रुतिविरोधसे तस्य=उक्तश्रुतिवाक्यको अनित्यत्वका अबोधकत्व है, नच=अनित्यत्वका अबोधकत्व नहीं है, क्यों ? 'यत्कृतकं तदनित्यम्' इत्याकारक युक्तिसचिवत्वेन 'तद्यथेह कर्मचितो लोकः' (छा० ८।१।६) इत्यादि वाक्यका प्राबल्य होनेसे, न द्वितीयः=साक्षात्कारके लिए अभ्यास है, यह द्वितीयपक्षका द्वितीयदलभी ठीक नहीं यह अभ्यास साक्षात्कारके प्रति दृष्टविधया हेतु है या अदृष्टविधया, नाद्यः=प्रथम पक्ष नहीं बन सकता है—क्यों ? परोक्षज्ञानाभ्याससे तत्त्वसाक्षात्कारके अदर्शनसे । न द्वितीयः= द्वितीय पक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों तस्य=उक्तसाक्षात्काररूपफलको प्रमाणायत्तत्वात्= प्रमाणमात्रजन्यत्व होनेसे=मात्रपदसे अभ्यासजन्य अदृष्टके अपेक्षाकी व्यवच्छित्ति की अतएव= साक्षात्कारके प्रति दृष्टविधया या अदृष्टविधया हेतुत्वके अभावसे ही तृतीय पक्षभी नहीं बन सकता है, ध्यानको ज्ञानरूपत्वके अभावसे ही तृतीयपक्षभी नहीं बन सकता है । न चतुर्थः= अपरोक्षफलकज्ञानान्तररूप चतुर्थपक्षभी नहीं बन सकता है क्यों ? शब्दकेभी ब्रह्ममें प्रामाण्याभावके आपातसे । ब्रह्ममें प्रमाणीभूत जो ज्ञान उसकी कर्त्तव्यतामें ही प्रामाण्य होनेसे । नचेति । महातात्पर्यको लेकर ब्रह्ममेंभी प्रामाण्य है नच=ऐसा नहीं हो सकता है, क्यों ? तादृशज्ञानस्यापि=विधेयत्वाभिमतज्ञानकोभी प्रमाणायत्तत्वप्रयुक्त विधिफलत्व होनेसे, तस्मात्= 'पत्न्यवेक्षितमाज्यम्' इत्यादिमेंभी ज्ञानका अविधान होनेसे और ध्यानमेंभी विज्ञानके भेदका साधन होनेसे, और सूक्ष्मशास्त्रार्थबुद्धिमें कृतिके अन्वयव्यतिरेकोंको तत्साधन=सूक्ष्मशास्त्रार्थविषयकबुद्धिसाधनविषयत्वेन अन्यथा सिद्धत्व होनेसे, आत्मज्ञानविधानकरनेकेलिए शक्य नहीं है । सो इस रीतिसे श्रवणको ज्ञानरूपत्व होनेपर विधेयत्वकी अनुपपत्ति है । तस्मात् सेज्ञान-

विजातीय और अपरोक्षज्ञानजनक जो शब्द तादृश शब्दकी इतिकर्त्तव्यतारूप विचारात्मक और मनन तथा निदिध्यासन ये दोनों अङ्ग हैं जिसके एवम्भूत और प्रमेयावगमके प्रति अङ्गतया=करणतया प्रधानभूत जो श्रवण वह श्रवण अपरोक्षज्ञानफलकतया विहित होता है ॥

इति सरलायां ज्ञानविधिभङ्गः।

अथ शब्दादपरोक्षोपपत्तिः।

ननु—कथमपरोक्षज्ञानजनकत्वं शब्दस्य ? मानाभावादिति—चेन्न; 'तद्धास्य विजज्ञौ तमसः पारं दर्शयती'त्यादेः 'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः' इत्यादेश्च मानत्वात्, पूर्ववाक्ये तज्जनकापरोक्षज्ञानस्योपदेशमात्रसाध्यत्वोक्तेः, द्वितीयश्रुतौ शब्दज्ञानस्य विपदेन विशेषविषयत्वस्य लाभात् सुपदेनापरोक्षत्वोक्तेः। नच विजज्ञावितीत्यादेः परोक्षज्ञानेनापि चरितार्थता 'तमसः पारं दर्शयती'त्युत्तरवाक्यस्वरसेन अपरोक्षज्ञानपरत्वसिद्धेः। नच ग्राममार्गोपदेष्टरि ग्रामं दर्शयतीतिवत् परम्परया प्रयोजकतयोपचारः साक्षात्साधनत्वे बाधकाभावेन तस्यात्रान्याय्यत्वात्, उपदेशातिरिक्तकारणस्य नारदसनत्कुमाराख्यायिकायामप्रतीतेश्च। नच मनसैवानुद्रष्टव्यमित्यादिश्रुतिविरोधः; तस्याश्चित्तैकाग्र्यपरत्वात्। नच—सुपदस्याप्रामाण्यशङ्काविरहपरत्वेन द्वितीयवाक्ये न तेनापरोक्षरूपताप्राप्तिः अन्यथा वेदान्तबोध्यस्य विचारकर्त्तव्यतादेश्चापरोक्षत्वापातादिति—वाच्यम्; निश्चितपदेनैवाप्रामाण्यशङ्काविरहादेर्लब्धतया सुपदस्यातत्परत्वात्।

अथ सरलायां शब्दादपरोक्षत्वोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। शब्दको अपरोक्षज्ञानका जनकत्व कैसे है ? प्रमाणका अभाव होनेसे; इति चेन्न; क्यों ? 'तद्धास्य विजिज्ञौ' 'तमसः पारं दर्शयति' (छा० ७।२६।२) इत्यादिको और 'वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः' (मुं० ३।२।६) इत्यादिको प्रमाणत्व होनेसे, पूर्ववाक्ये=तद्धास्य=अस्य उद्दालकके तत्=तिस उपदेशसे='तत्त्वमसि' इस उपदेशसे विजिज्ञौ=आत्माको जाना श्वेतकेतुने इत्यर्थक पूर्ववाक्यमें तज्जनक=फलजनक जो अपरोक्षज्ञान तादृश अपरोक्षज्ञानको उपदेशमात्रसाध्यत्वकी उक्ति होनेसे। द्वितीयश्रुतौ=वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः (मुं० ३।२।६) इस द्वितीय श्रुतिमें शाब्दज्ञानमें विपदसे विशेषविषयत्वका लाभ होनेसे सुपदसे अपरोक्षत्वकी ही उक्ति होनेसे। नचेति। 'विजिज्ञौ' इत्यादिकी परोक्षज्ञानसेभी चरितार्थता है। नच=परोक्षज्ञानसे चरितार्थता नहीं है क्यों ? 'तमसः पारं दर्शयति'=तमसः=अज्ञानप्रयुक्तसे विलक्षण सर्वाधिष्ठानानवच्छिन्न आनन्दको दर्शयति=साक्षात्कारकराता है। इस उत्तरवाक्यके स्वरससे अपरोक्षज्ञानपरत्वकी सिद्धिसे। नचेति। ग्रामके मार्गका उपदेश देनेवाला जो पुरुष है उसमें जैसे 'ग्रामं दर्शयति'=यह परम्परया प्रयोजकतया उपचार होता है, तैसे यहाँपरभी परम्परया प्रयोजकतया उपचार है, नच=ऐसा नहीं हो सकता है, क्यों ? साक्षात्साधनत्वमें

बाधकके अभावसे तस्य–परम्परया प्रयोजकतयोपचारको यहाँपर न्यायापेतत्व होनेसे। और उपदेशसे अतिरिक्त कारणकी नारदसनत्कुमारकी आख्यायिकामें प्रतीति न होनेसेभी। नचेति। ' मनसैवानुद्रष्टव्यम् ' (बृ० ४।४।१९) इत्यादि श्रुतिके साथ विरोध है; नच=विरोध नहीं है, क्यों ? तस्याः=उक्त श्रुतिको चित्तैकाग्र्यपरत्व होनेसे। नचेति=सुपदस्य=सुनिश्चितार्थाः= एतद्घटकसुपदको अप्रामाण्यशङ्काविरहपरत्व होनेसे द्वितीय वाक्यमें=वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः इस वाक्यमें तिस सुपदसे अपरोक्षरूपताकी प्राप्ति नहीं है, अन्यथा वेदान्तबोध्य विचारकर्त्त-व्यादिकेभी अपरोक्षत्वका आपात होनेसे अर्थपदको सन्निहितवेदान्तमात्रार्थत्व होनेसे विचार-कर्त्तव्यादिकोभी सन्निहितवेदान्तमात्रार्थपरत्व होनेसे अपरोक्षत्वकी आपत्ति है। इति नच वाच्यम्, क्यों ? निश्चितपदसे ही अप्रामाण्यशङ्काविरहादिको लब्धत्व होनेसे सुपदको अतत्परत्व होनेसे।

नापि वेदान्तबोध्यस्य ब्रह्मातिरिक्तस्याप्येवमापरोक्ष्यापत्तिः। अर्थपदस्य मुख्यतः तात्पर्यविषयपरत्वात् वेदान्तबोध्यताया ब्रह्ममात्रपर्यवसन्नत्वाच्च। एवमनुमानमप्यत्रमा-नम्। अपरोक्षत्वं तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्यज्ञानवृत्ति, अपरोक्षज्ञाननिष्ठात्यन्ताभावाप्रतियो-गित्वात् ज्ञानत्ववत्। नच–कर्मकाण्डजन्यज्ञानवृत्तीत्येवमपि साध्येतेति–वाच्यम्; विप-क्षबाधकसत्त्वासत्त्वाभ्यां विशेषात्। तथाहि–तत्त्वमस्यादिवाक्यस्यापरोक्षज्ञानाजनकत्वे, अपरोक्षभ्रमनिवृत्तिर्न स्यात्। नच मनसैवापरोक्षज्ञानम्; मनसः कुत्राप्यसाधारण्येन प्रमाकरणत्वाभावात्, आत्मनः स्वप्रकाशत्वात् सुखादीनां साक्षीवेद्यत्वात्। नच शब्दे अपरोक्षज्ञानजनकत्ववत् अन्यत्राक्लृप्तमेव मनसि तत्कल्पनीयम्। एवं हि सर्वांशस्यैव मनसि कल्प्यत्वेन विशेषात्। नचैवं ज्योतिष्टोमादिविषयक–कर्मकाण्डजन्यज्ञाने कल्पकमस्ति। तत्रहि कल्पनीयम् अनुष्ठानाय वा फलाय वा। नाद्यः परोक्षज्ञानादेवतत्सम्भवात्। तत एवानुष्ठानात् फलसिद्धेर्न द्वितीयोऽपि। नच विमतः शब्दो नापरोक्षधीहेतुः शब्दत्वात इति प्रतिसाधनम् दशमस्त्वमसीत्यादावेव व्यभिचारात्।

और वेदान्तबोध्य ब्रह्मातिरिक्तकोभी इस रीतिसे आपरोक्ष्यकी आपत्ति नहीं है, अर्थ पदको मुख्यतः तात्पर्यविषयपरत्व होनेसे, और वेदान्तबोध्यताको ब्रह्ममात्रमें पर्य्यवसन्नत्व होनेसेभी। इसी रीतिसे अनुमानभी अत्र=शब्दके अपरोक्षज्ञानजनकत्वमें प्रमाण है। अपरो-क्षत्व, तत्त्वमस्यादिवाक्यजन्य जो ज्ञान उस ज्ञानमें वृत्ति है अपरोक्षज्ञाननिष्ठ जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका अप्रतियोगीत्व होनेसे, ज्ञानत्ववत्। नचेति। अपरोक्षत्व कर्मकाण्डजन्य-ज्ञानमें वृत्ति है–अपरोक्षज्ञाननिष्ठात्यन्ताभावका अप्रतियोगित्व होनेसे ज्ञानत्ववत् इस रीतिसेभी साधित होगा, इति नच वाच्यम् क्यों ? विपक्षमें बाधकके सत्त्वसे और विपक्षमें बाधकके असत्त्वसे विशेष होनेसे। तथाहि=उक्तार्थको दिखलाते हैं–तत्त्वमस्यादि वाक्यको अपरोक्ष-ज्ञानका अजनकत्व होनेपर उस ज्ञानसे अपरोक्ष भ्रमकी निवृत्ति न होगी। मनसे अपरोक्ष

ज्ञान होता है; नच=ऐसा नहीं कहना, क्यों? मनको कहींपरभी असाधारणरूपसे प्रमाकरणत्व न होनेसे आत्माको स्वप्रकाशत्व होनेसे, और सुखादिको साक्षिवेद्यत्व होनेसे। नचेति। शब्दमें जैसे अन्यत्र अक्लृप्त अपरोक्षज्ञानजनकत्व कल्पनीय है, तैसे अन्यत्र अक्लृप्त ही अपरोक्षज्ञानजनकत्व मनमें कल्पनीय है; नच=ऐसा नहीं कहना, क्यों? एवं हि=ऐसा होनेपरभी सर्वांशको ही मनमें कल्पनीयत्व होनेसे विशेष है, अतः=मनको करणत्व और मनोजन्यज्ञानमें अपरोक्षत्व ये दो पदार्थ तुम्हारी रीतिसे कल्पनीय होंगे, और हमारी रीतिसे शब्दमें करणत्व तो क्लृप्त ही है केवल शब्दजन्यज्ञानमें अपरोक्षत्व कल्पनीय है अतः अस्मदीयपक्षका आश्रयण करना उचित है। नचेति। इस रीतिसे ज्योतिष्टोमादिवाक्यजन्यज्ञानमें अपरोक्षत्वका कल्पक नहीं है, तत्र हि=ज्योतिष्टोमादिविषयककर्मकाण्डजन्यज्ञानमें कल्पनीय अपरोक्षत्व अनुष्ठानके लिए होगा, या फलके लिए होगा। नाद्यः=अनुष्ठानके लिए होगा यह प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है; क्यों? परोक्षज्ञानसे ही अनुष्ठानका सम्भव होनेसे। और परोक्षज्ञानसे सिद्ध होनेवाले अनुष्ठानसे ही फलकी सिद्धि होनेसे, द्वितीयपक्षभी ठीक नहीं। विमत शब्द अपरोक्ष ज्ञानका हेतु नहीं है, शब्दत्व होनेसे, ज्योतिष्टोमादिशब्दवत् यह प्रतिसाधन है, नच=प्रतिसाधन नहीं है, क्यों? 'दशमस्त्वमसि' इत्यादिमें ही व्यभिचार होनेसे।

नच—तत्रापीन्द्रियमेव करणं शब्दस्तत्सहकारीति—वाच्यम् क्वचित् बहुलतमे तमसि लोचनहीनस्यापि तद्वाक्याद्परोक्षभ्रमनिवर्त्तकस्य दशमोऽस्मीत्यपरोक्षज्ञानस्य दर्शनात्। यत्रापीन्द्रियसद्भावः; तत्रापि तदप्रयोजकमेव। नच—धर्मवांस्त्वमसि पर्वतोऽग्निमानित्यादौ विशेष्यापरोक्षत्वेऽपि विशेषणपारोक्ष्यवत् अत्रापि दशमत्वे पारोक्ष्यमस्त्विति—वाच्यम्; अत्र परोक्षत्वे अपरोक्षभ्रमानिवृत्तिप्रसङ्गात्। ननुएवमपि शब्दस्यापरोक्षज्ञानजनकत्वं किं स्वाभाविकं उतापरोक्षविषयनिमित्तकम्। नाद्यः अतिप्रसङ्गात्। न द्वितीयः; जीवाः परमात्मनो न भिद्यन्ते आत्मत्वादित्यादिना जायमानानुमितेः श्रवणात् प्रागापततो वेदान्तजन्याया भाषाप्रबन्धजन्याया अनधीतवेदान्तजन्याया ऐक्यप्रतीतेश्चापरोक्ष्यापातात्—श्रवणनियमादेरनियमात्। किंचार्थस्यापरोक्ष्यं न तावदपरोक्षबुद्धिविषयत्वरूपम्; ब्रह्मण्यस्य सत्त्वेऽपि दशमत्वादावभावात् चैत्रापरोक्षज्ञाने मैत्रस्य शब्दादिना आपरोक्ष्यादर्शनाच्च।

नचेति। तत्रापि='दशमस्त्वसि' इत्यादिस्थलमेंभी इन्द्रिय ही करण है. शब्द इन्द्रियका सहकारी है, इति नच वाच्यम्; क्यों? कहींपर सूचीभेद्य अन्धकारमें लोचनहीनस्य=बहिरिन्द्रियसन्निकर्षशून्यपुरुषकोभी तद्वाक्यात्=दशमस्त्वमसि इस वाक्यसे अपरोक्षभ्रमनिवर्त्तक 'दशमोऽस्मि' इत्याकारक अपरोक्ष ज्ञानको देखनेसे 'और जहाँपर इन्द्रियका सद्भाव है' वहाँपरभी तत्=इन्द्रिय अप्रयोजक ही है। नचेति। 'धर्मवाला तू है' 'पर्वत अग्निवाला है' इत्यादि स्थलमें पुरुषपर्वतरूप विशेष्यका अपरोक्षत्व होनेपरभी जैसे धर्मवन्हिरूप विशेषणका

पारोक्ष्य है तैसे अत्रापि=' दशमस्त्वमसि ' यहाँपरभी दशमत्वमें पारोक्ष्य रहो; इति नच वाच्यम् क्यों ? अत्र=दशमत्वांशमें परोक्षत्व होनेपर अपरोक्षभ्रमकी अनिवृत्तिके प्रसङ्गसे। नन्विति। ऐसा होनेपरभी शब्दको अपरोक्षज्ञानजनकत्व क्या स्वाभाविक है अथवा अपरोक्षविषयनिमित्तक है। नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं वन सकता है, क्यों ? अतिप्रसङ्गात्=स्वर्गोऽस्ति इत्यादिकोभी अपरोक्षज्ञानजनकत्वके प्रसङ्गसे न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी ठीक नहीं, क्यों ? जीव परमात्मासे भिन्न नहीं है, आत्मत्वसे इत्यादिसे जायमान अनुमितिके आपरोक्ष्यके आपातसे, और श्रवणसे पूर्व आपाततः वेदान्तजन्यप्रतीतिके, और भाषाप्रबन्धजन्यप्रतीतिके तथा अनधीतवेदान्तजन्यप्रतीतिके आपरोक्ष्यके आपातसे श्रवणनियमादिके अनियमकी आपत्तिसे। किञ्च अर्थनिष्ठ आपरोक्ष्य अपरोक्षबुद्धिविषयत्वरूप नहीं बन सकता है, ब्रह्ममें इसका सत्त्व होनेपरभी दशमत्वादिमें अभाव होनेसे, और चैत्रीयापरोक्षज्ञानमें मैत्रको शब्दादिसे आपरोक्ष्यके अदर्शनसेभी।

नाप्यपरोक्षव्यवहारविषयत्वम्; व्यवहारापरोक्ष्यस्य तादृगर्थभेदविषयकत्वरूपत्वे अन्योन्याश्रयात्, अपरोक्षोऽयमित्येवं रूपत्वे अज्ञानावृतेऽपि तदभावात्, त्वयापि न प्रकाशत इत्यादिव्यवहारार्थमेवावरणकल्पनात्, उक्तव्यवहारयोग्यत्वरूपत्वे व्यवहितघटे शब्दादपरोक्षज्ञानप्रसङ्गात्, अपरोक्षज्ञानजन्यत्वरूपत्वे च वक्ष्यमाणपक्षान्तर्भावात्। तस्मादर्थस्यापरोक्षधीविषयत्वमेवापरोक्षत्वं वाच्यम्, । तत्र चैतज्ज्ञानविषयत्वेन तदुक्तावन्योन्याश्रयः; ज्ञानान्तराभिप्राये तु केषांचिदपरोक्षे स्वर्गादावस्माकं शब्दादपरोक्षधीप्रसङ्गात्। एकपुमभिप्रायेतु पूर्वापरोक्षे शब्दादिना इदानीमपरोक्षधीप्रसङ्गात्। एककालाभिप्राये प्रत्यक्षाग्नौ लिङ्गाच्छब्दाद्वा आपरोक्ष्यं स्यादिति चेन्न; यं शाब्दबोधमादाय यस्य बोध्यत्वं तत्साक्षात्कारार्थं तदभिन्नार्थावगाहित्वनिमित्तकमित्युक्तदोषानवकाशात्। नच—एवं प्रत्यक्षान्तर्भावः शब्दस्य स्यादिति—वाच्यम्; बोद्धृयभिन्नार्थकशब्दातिरिक्तत्वे सति प्रत्यक्षप्रमाकरणत्वस्य प्रत्यक्षस्यान्तर्भावे तन्त्रत्वात्।

नापीति। अपरोक्षव्यवहारविषयत्वरूपभी अर्थका आपरोक्ष्य नहीं बन सकता है. व्यवहारापरोक्ष्यस्य=व्यवहारनिष्ठ आपरोक्ष्यको तादृगर्थभेदविषयकत्वरूपत्वे=अपरोक्षार्थविशेषविषयकत्वरूपत्व होनेपर अन्योन्याश्रय होनेसे। और ' अपरोक्षोऽयम् ' इत्याकारकत्व होनेपर अज्ञानसे आवृतमेंभी उक्तव्यवहाराभावसे तुमसेभी 'न प्रकाशते ' इत्यादिव्यवहारार्थ ही आवरणका कल्पन होनेसे। और उक्तव्यवहारयोग्यत्वरूपत्व होनेपर व्यवहितघटमें शब्दसे अपरोक्षज्ञानके प्रसङ्गसे। और। अपरोक्षव्यवहारजन्यत्वरूप होनेपर तो वक्ष्यमाणपक्षमें अन्तर्भाव होनेसे। फलतः अपरोक्षधीविषयत्वरूप अपरोक्षत्व विषयमें कहना चाहिए तत्र च=उक्तविधअपरोक्षत्वमें तो एतज्ज्ञानविषयत्वेन=जिस ज्ञानके अपरोक्षवनिर्वचनके लिए विषयापरोक्षत्व निरुक्त होता है तज्ज्ञानविषयत्वेन तदुक्तौ=विषयापरोक्षत्वकी

उक्ति होनेपर अन्योन्याश्रय है=तज्ज्ञानका अपरोक्षत्व अपरोक्षविषयकज्ञानत्वेन है. और विषयका अपरोक्षत्व अपरोक्षतज्ज्ञानविषयत्वेन है, अतः अन्योन्याश्रय है, और ज्ञानान्तरमें अभिप्राय होनेपर तो किन्हीं लोगोंको अपरोक्ष जो स्वर्गादि तादृश स्वर्गादिमें हमलोगोंको शब्दसे अपरोक्षधीका प्रसङ्ग होनेसे और एक पुरुषका अभिप्राय होनेपरतो पूर्वकालमें अपरोक्ष हुए पदार्थमें इदानीं कालमें शब्दादिसे अपरोक्षधीका प्रसङ्ग होनेसे, और एककालका अभिप्राय होनेपर तो प्रत्यक्ष अग्निमें लिङ्गसे या शब्दसे आपरोक्ष्य होगा, इति चेन्न क्यों ? यस्य= जिस प्रमाताको जिस शाब्दबोधको लेकर बोद्धृत्व है तदभिन्नार्थावगाहिनिमित्तम्= तदभिन्नार्थविषयकज्ञानत्व तत्साक्षात्कारकत्व है इस रीतिसे उक्तदोषके अनवकाशसे। एवम्= शब्दको प्रत्यक्षज्ञानजनकत्व होनेपर शब्दका प्रत्यक्षमें अन्तर्भाव हो जायगा, इति नच वाच्यम्; क्यों ? बोद्ध्रयभिन्नार्थकशब्दातिरिक्तत्वे सति=बोद्धा=प्रमातासे अभिन्नार्थक जो शब्द है तादृश शब्दभेदविशिष्टप्रत्यक्षप्रमाकरणत्वको प्रत्यक्षके अन्तर्भावमें तन्त्रत्व होनेसे।

ननु—मनसैवानुद्रष्टव्यमित्यदिरेव मनःकरणताप्रतिपादकस्य प्रकृते अभावात् अनौपदेशिकं शब्दस्य साक्षात्कारकरणत्वमिति—चेन्न; 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामी-त्यादौ' तत्रसाधुरिति तदन्यासाधुत्वे सति तत्साधुत्वरूपसाध्वर्थविहिततद्धितश्रुत्या एव मानत्वात्। ननु मनसः करणत्वेऽपि औपनिषदत्वस्य निदिध्यासनापेक्षिततया अन्यथा-सिद्धिः, न; 'यन्मनसा न मनुत' इति मनसः करणत्वनिषेधात्। नच 'यतो वाचो निवर्त्तन्त' इति शब्दस्यापि करणत्वानुपपत्तिः; औपनिषदत्वश्रुत्यनुसारेण तस्याः शक्त्या अबोधकत्वपरत्वात्। तदुक्तं—चकितमभिधत्तेश्रुतिरपि, इति। नच—मनसैवानुद्रष्टव्यमि-तितृतीयाश्रुत्यनुसारेण न मनुत इत्यस्यैवापक्वमनोविषयतयाऽन्यथानयनसाम्यमिति—वाच्यम्; एवं साम्येऽपि मनसः करणत्वे ह्यधिककल्पना। शब्दस्य करणत्वे त्वल्पकल्पनेति विशेषात्। तस्मात् तत्त्वमस्यादिवाक्यस्यापरोक्षज्ञानजनकत्वादविद्यानिवृत्त्यात्मकमोक्षसा-धनब्रह्मसाक्षात्काराय मननाद्यङ्गकं श्रवणमङ्गि नियमविधिविषय इति सिद्धम्॥

इत्यद्वैतसिद्धौ शब्दादपरोक्षोपपत्तिः।

शङ्कते नन्विति। 'मनसैवानुद्रष्टव्यम्' (बृ० ४, ४, १९) इत्यादिको जैसे अपरोक्ष ज्ञानमें मनःकरणताका प्रतिपादकत्व है, तैसे शब्दमें करणताप्रतिपादकका प्रकृतमें अभाव होनेसे शब्दका साक्षात्कारके प्रति करणत्व अनौपदेशिक है, इति चेन्न; क्यों ? 'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि' (बृ० ३।९।२६) इत्यादिमें 'तत्र साधुः' अष्टाध्यायी अ० ४ पा० ४ सू० ९८ इस सूत्रसे तदन्यासाध्यत्वे सति=उपनिषत्करणकत्वरूप जो साध्वर्थ तादृश साध्वर्थमें विहितजो तद्धित प्रत्यय तादृश तद्धितप्रत्ययरूप श्रुतिको ही प्रमाणत्व होनेसे। नन्विति। मनको करणत्व होनेपरभी औपनिषदत्वको निदिध्यासनसे अपेक्षितत्व होनेसे अन्यथा सिद्धि है, न=औपनिष-दत्वकी अन्यथा सिद्धि नहीं है क्यों ? 'यन्मनसा न मनुते' (केन ३।५) इससे मनके करणत्वका

निषेध होनेसे। नचेति। 'यतो वाचो निवर्त्तन्ते' (तै० २।४।१) इस निषेधसे शब्दकेभी करणत्वकी अनुपपत्ति है; नच=अनुपपत्ति नहीं है; क्यों? औपनिषदत्वश्रुत्यनुसार तस्याः= यतो वाचो निवर्त्तन्त। इस श्रुतिको शब्दको शक्तिसे अबोधकत्व है, एतदर्थपरत्व होनेसे। सो कहा है=श्रुतिरपि=श्रुतिभी चकितम्=शक्तिविना अभिधत्ते=बोधन करती है। नचेति। मनसैवानुद्रष्टव्यम् एतद्घटक तृतीयश्रुत्यनुसार 'न मनुते' इस वाक्यको ही अपक्वमनोविषय-तया=रागद्वेषाद्यवलिप्तमनोविषयत्वेन जो अन्यथानयन तादृश अन्यथानयनका साम्य है इति नच वाच्यम्, क्यों? उक्तविध साम्य होनेपरभी मनके करणत्वमें अधिक कल्पना करनी पडती है और शब्दके करणत्वमें अल्प कल्पना है इस विशेषसे=मनको साक्षात्कारके प्रति हेतु माननेमें दो कल्पनायें करनी पडती हैं, मनके करणत्वकी कल्पना और साक्षात्कारके प्रति हेतुत्व; और शब्दको साक्षात्कारके प्रति हेतुत्व माननेमें केवल साक्षात्कारके हेतुत्वकी ही कल्पना करनी पडती है करणत्व तो उभय क्लृप्त ही है यह विशेष है। फलितार्थको दिखलाते हैं,—तस्मादिति। तस्मात् तत्त्वमस्यादिवाक्यको अपरोक्षज्ञानजनकत्व होनेसे अविद्यानिवृत्त्यात्मक जो मोक्ष उस मोक्षका साधन जो ब्रह्मसाक्षात्कार उस साक्षात्कारके लिए मननाद्यङ्गक श्रवणरूप अङ्गि नियम-विधिका विषय है। यह सिद्ध हुआ॥

इति सरलायां शब्दादपरोक्षोपपत्तिः॥

विश्वेश्वराख्यस्य गुरोः प्रसादाद‌द्वैतसिद्धिर्मधुसूदनस्य।
अभूद‌भूमिः खलु दूषणानां गुणैरमेयैरवगुम्फितश्रीः॥

ससंभ्रममपेक्षया, परगुणोन्नतिर्दुःसहा, नितान्तमनपेक्षया निजपुमर्थहानिः परा। अतः सुमतयो यथानयमुपेक्ष्य दुर्मत्सरं प्रयोजनवशानुगाः कुरुत मत्कृतौ सत्कृतिम्॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीविश्वेश्वरसरस्वतीश्रीचरणशिष्य-
श्रीमधुसूदनसरस्वतीविरचितायामद्वैतसिद्धौ श्रवणादि-
निरूपणं नाम तृतीयः परिच्छेदः॥

श्रीविश्वेश्वरसरस्वतीनामक गुरुकी कृपासे अमेय गुणोंसे अवगुम्फित=प्रतिपादित है ब्रह्मविद्यारूप श्रीजिसमें एवम्भूत श्रीमधुसूदन सरस्वतीकी अद्वैतसिद्धि दूषणोंकी अभूमि हुई है= श्रीगुरुकी महती कृपासे अनेक गुणोंसे विभूषित अथ च दोषरहित इस ग्रन्थको मधुसूदन सरस्वती बना सके हैं। प्रेक्षावान् पुरुषोंको धैर्यसे यह ग्रन्थ देखना चाहिए इस अर्थको दिख-लाते हैं—ससम्भ्रममपेक्षया=एकदम सादर देखनेसे परगुणोंकी उन्नति दुःसह होगी और एकदम न देखनेसे आत्मीयपुरुषार्थकी महती हानि होगी; अतः प्रयोजनवशानुगाः=प्रयोजन नाम है प्रकृतमें=मोक्षका, प्रयोजन है, वशमें जिसके उसका नाम है प्रयोजनवश अर्थात् तत्त्वज्ञान

तदनुगामिना=तत्त्वजिज्ञासु सुमतिलोग यथानयं दुर्मत्सरमुपेक्ष्य=रिक्तस्य जन्तोर्जातस्य गुणदोषमपश्यतः। विलब्धा बत केनामी सिद्धान्तविषयग्रहाः। 'खण्डन द्वितीय परिच्छेद' इस खण्डनोक्तिके अनुसार साम्यभावसे आत्मीयभावको भावितकर मत्कृतौ=इस प्रस्तुत मत्कृति-परिष्कृतसंग्रहमें सत्कारको करें॥

इति श्रीरामेश्वरदत्तशर्मविरचितायां सरलायां श्रवणादिनिरूपणं नाम तृतीयः परिच्छेदः॥

चतुर्थः परिच्छेदः ।

अथ अविद्यानिवृत्तिनिरूपणम् ।

ननु—मुक्तिस्तावदविद्यानिवृत्तिर्नसम्भवति । तथाहि—सा किमात्मरूपा तद्भिन्ना वा, नाद्यः असाध्यत्वापत्तेः । द्वितीये किं सती मिथ्या वा आद्ये अद्वैतहानिः, द्वितीये अविद्यातत्कार्यान्यतरत्वापत्तिरिति—चेन्न;चरमवृत्त्युपलक्षितस्यात्मनोऽज्ञानहानिरूपत्वात् । तथाचोपलक्षणसाध्यतयैव मुक्तेरपि साध्यता । नचोपलक्षणनिवृत्त्या मुक्तेरपिनिवृत्तिः पाके निवृत्तेऽपि पाचकानिवृत्तिदर्शनात् । तदुक्तं—निवृत्तिरात्मा मोहस्य ज्ञातत्वेनोपलक्षितः । उपलक्षणानाशेऽपि स्यान्मुक्तिः पाचकादिवत् । इति नच वृत्त्युपलक्षितस्य पश्चादिव पूर्वमपि सत्त्वेन । मोहकालेऽपि तद्धान्यापत्तिः; पूर्वमसिद्धस्योपलक्षणत्वायोगात् नहि पाकसम्बन्धात्पूर्वं पाचको भवति तथा व्यवह्रियते वा ।

अथ सरलायामविद्यानिवृत्तिनिरूपणम् ।

मङ्गलाचरणम् ॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रतात्वमभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥

शङ्कते नन्विति । अविद्यानिवृत्तिरूप मुक्ति नहीं बन सकती है । तथाहि—सा=वह अविद्याकी निवृत्ति क्या आत्मरूप है, या आत्मासे भिन्न है, नाद्यः=आत्मरूप है यह प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है; क्यों ? असाध्यत्वकी आपत्तिसे=आत्मा नित्यपदार्थ होनेसे असाध्य है. एवम्भूत आत्मस्वरूपनिवृत्तिकोभी नित्यता होगी और नित्यता होनेपर साध्यत्वकी अनुपपत्ति है । द्वितीयेऽपि=आत्मासे भिन्न अविद्याकी निवृत्ति है, इस द्वितीयपक्षमेंभी वह निवृत्ति सती है या मिथ्या; आद्ये=सती है इस पक्षमें अद्वैतकी हानि है=आत्मासे भिन्नको आत्मसत्ता-समानसत्ताकत्व हो जानेसे अद्वैतकी हानि है, और द्वितीय पक्षमें अविद्या और अविद्याका कार्य्य=अविद्या और अविद्याका ध्वंस इन दोनोंमें अन्यतरकी प्राप्ति है=अविद्याकी निवृत्तिकी निवृत्ति होनेपर अविद्याकी आपत्ति है, अन्यथा अविद्यानिवृत्तिकी आपत्ति है इति चेन्न; क्यों ? चरमवृत्तिसे उपलक्षित जो आत्मा तादृश आत्माको अज्ञानहानिरूपत्व होनेसे, फलतः चरम-वृत्तिरूप उपलक्षणको साध्यत्व होनेसे ही मुक्तिमेंभी साध्यत्व है । नचेति=चरमवृत्तिरूपोपलक्षणकी निवृत्तिसे मुक्तिकीभी निवृत्ति है नच=उपलक्षणकी निवृत्ति होनेपर मुक्तिकी निवृत्ति नहीं है, क्यों ? पाके=उपलक्षणरूप पाकके निवृत्ति होनेपरभी पाचककी अनिवृत्ति देखनेसे तदुक्तम्=सो कहा है चित्सुखाचार्य्यने तत्त्वप्रदीपिकाके चतुर्थ परिच्छेदमें मोहस्य=अविद्याकी निवृत्ति ज्ञातत्वेनोपलक्षितात्मस्वरूप है । और उपलक्षणका नाश होनेपरभी पाचकादिवत् मुक्ति

रहेगी। नचेति=वृत्त्युपलक्षित आत्माका पश्चादिव=वृत्तिके पश्चात्की तरह वृत्तिसे पूर्वमेंभी सत्त्वहोनेसे अज्ञानकालमेंभी अज्ञानके हानिकी आपत्ति है, नच=ऐसी आपत्ति नहीं है, क्यों ? पूर्वमें असिद्धपदार्थको उपलक्षणत्वके अयोगसे क्योंकि पाकके सम्बन्धसे पूर्वमें पुरुष पाचक नहीं होता है अथवा पाचकत्वेन व्यवहृत नहीं होता है ।

यत्तु—पाककर्तृत्वमेव पाचकत्वं तदा अपचति तत्प्रयोगो भूतपूर्वन्यायेनौपचारिकः; यदि तु पाककर्तृतावच्छेदकावच्छिन्नत्वं तत्कर्तृत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वं वा, तद्वयमपि पश्चादस्ति । नचैवं मुक्तावात्मातिरिक्तं योग्यत्वादिकमस्ति चिन्मात्रं तु प्रागप्यस्ति इत्यसाध्यतापत्तिः, पाकोपलक्षितत्ववत् वृत्त्युपलक्षितत्वस्याधिकत्वे सविशेषतापत्तिः इति तन्न; उपलक्ष्यस्वरूपस्याध्यत्वेऽपि उपलक्षणगतसाध्यत्वोपपत्तेः घटाकाशे उत्पत्तिवत् । यद्वा अविद्यानिवृत्तिस्तद्विरोधिवृत्तिरेव यावत्कार्योत्पत्तिविरोधिकार्यमेव ध्वंस इत्यङ्गीकारात् । नच वृत्तौ नष्टायां विरोधिनः कार्यान्तरस्यानुदयात् तदापि ध्वंससत्त्वेन स न ध्वंस इति—वाच्यम् ; यावद्विरोधिकार्योदयमेव तथात्वात् यावद्विभागं तस्य ध्वंसरूपत्वेऽपि विभागध्वंसस्याधिकरणतारूपतावच्चरमवृत्तिपर्यन्तं विरोधिकार्यरूपत्वेऽपि ध्वंसस्य चरमवृत्तिध्वंसस्याधिकरणरूपतैव ।

यत्त्विति । पाककर्तृत्वमेव=पाकजनककृत्याश्रयत्वही यदि पाचकत्व आपको विवक्षित है, तब तो जिसकालमें पाक नहीं करता है उसकालमें तत्प्रयोग=पाचक शब्दका प्रयोग भ्रष्टाधिकारपुरुषमें 'दण्डनायकः' इस प्रयोगकी तरह भूतपूर्वन्यायसे है, फलतः पाचक दृष्टान्त नहीं हो सकता है=जिसकालमें आप उसका दृष्टान्तरूपसे उपन्यास करते हैं उस समय उसमें पाचक शब्दकी मुख्यवृत्तिसे प्रवृत्ति ही नहीं है; और यदि पाककर्तृतावच्छेदकावच्छिन्नत्वरूप या कर्तृत्वात्यन्ताभावानधिकरणत्वरूप पाचकत्व विवक्षित हो तो वे दोनों पाकसम्बन्धसे पश्चात् हैं परन्तु इस रीतिसे मुक्तिमें मुक्तात्मासे अतिरिक्त योग्यत्वादिक नहीं है और चिन्मात्र तो मुक्तिसे प्रथमभी है, इस रीतिसे असाध्यताकी आपत्ति है, और पाकोपलक्षितत्व जैसे पुरुषमें एक अधिकधर्म है, तैसे मुक्तात्मामें वृत्त्युपलक्षितत्वको अधिकत्व होनेपर सविशेषताकी आपत्ति है, इति यत् तत् तु न; क्यों ? उपलक्ष्यस्वरूपको असाध्यत्व होनेपरभी उपलक्षणगत साध्यत्वकी उपपत्तिसे, जैसे स्वरूपसे घटाकाशकी उत्पत्ति न होनेपरभी घटकी उत्पत्तिसे उसमें उत्पत्तिभावका व्यवहार होता है । अथवा अविद्याकी निवृत्ति तद्विरोधि=अविद्याविरोधिवृत्ति ही है यावत्कार्योत्पत्तिविरोधिकार्यमेव=कार्यकी उत्पत्ति जबतक होती है तबतक विरोधि जो कार्य्य वही ध्वंस है—द्वैत जबतक स्थित है तबतक विरोधिकार्यका नाम ध्वंस है । नचेति । वृत्तिके=अज्ञानविरोधिवृत्तिके नष्ट होनेपर विरोधिकार्यान्तरके अनुदयसे तदापि=उसकालमेंभी ध्वंसका सत्त्व होनेसे स न ध्वंसः=वह विरोधिकार्य्यध्वंस नहीं है, यहाँपर 'स' इस तत्पदको ध्वंसरूपविशेषणलिङ्गग्राहित्व है—जैसे कि—शैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य

यहाँपर विशेषणरूप जो प्रकृति तल्लिङ्गग्राहित्व तत्पद्को है, इति नच-वाच्यम्, क्यों ? यावद्विरोधिकर्योदयमेव=विरोधिकार्यकी स्थिति जबतक होती है तबतक ही तथात्वात्=विरोधिकार्य्यके ध्वंसत्वका स्वीकार होनेसे यावद्विभागं=जबतक विभाग है तबतक तस्य=विभागको ध्वंसरूपत्वेऽपि=संयोगध्वंसरूपत्व होनेपरभी जैसे विभागके ध्वंसकी परमाण्वादिरूप अधिकरणस्वरूपता है तैसे ध्वंसस्य=पूर्ववृत्तिद्वयध्वंसको विरोधिकार्यरूपत्व होनेपरभी चरमवृत्तिके ध्वंसको अधिकरणस्वरूपता ही है।

ननु—इयं प्रक्रिया किमन्यत्र इहैव वा। नाद्यः=बिम्बप्रतिबिम्बैक्याज्ञाननिवृत्तिरपि ज्ञाततदैक्यरूपेति तदैक्यधीकाले सोपाधिकतद्भेदभ्रमोपादानाज्ञानानुवृत्त्ययोगात्। नान्त्यः; नियामकाभावात्। नचेह निवृत्तेर्ज्ञाताधिष्ठानातिरिक्ते विश्वमिथ्यात्वश्रुतिपर्यालोचनया निवृत्तेरपि निवृत्त्यापत्तिर्नियामिका; तस्याः ज्ञानाद्विश्वनिवृत्तिपरत्वेन स्वतात्पर्यविषयनिवृत्तीतरमिथ्यात्वपरत्वादिति-चेन्न, न तावदाद्ये दोषः, सोपाधिकभ्रमे उपाधिविरहकालीनस्यैव तस्य तथात्वात्। नापि द्वितीयः; नेति नेतीतिश्रुतेः स्वारस्येनात्मातिरिक्तसर्वनिवृत्तावेव तात्पर्यात्। नच वृत्त्युपलक्षित आत्मा जीवन्मुक्तावप्यस्तीति तदापि मोक्षापत्तिः, मुक्तिमात्रापादनस्येष्टत्वात्, परममुक्तेश्चरमसाक्षात्कारोपलक्षितात्मस्वरूपत्वेन तदापादकाभावात्। नच चरमसाक्षात्कारनिवृत्तेरात्मत्वे साध्यत्वापत्तिः; अविद्यानिवृत्तेरसाध्यत्वेऽप्रवृत्त्यापत्तिवत् अत्र तदभावात्।

नन्विति। इयं प्रक्रिया=अज्ञानकी निवृत्ति ज्ञात-अधिष्ठानरूप है, यह प्रक्रिया क्या अन्यत्रभी है, अथवा प्रकृतमें ही है। नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों ? बिम्बप्रतिबिम्बके ऐक्याज्ञानकी निवृत्तिभी ज्ञात जो तदैक्य=बिम्बप्रतिबिम्बैक्य तद्रूप है, अतः बिम्बप्रतिबिम्बैक्यधीकालमें सोपाधिक जो तद्भेदभ्रम=बिम्बप्रतिबिम्बभेदभ्रम उसका उपादान जो अज्ञान तादृश अज्ञानकी अनुवृत्तिके अयोगसे। नान्त्यः=प्रकृतमें ही यह प्रक्रिया है यह अन्तिमपक्षभी ठीक नहीं; क्यों ? नियामकके अभावसे नचेति। इह=प्रकृतमें निवृत्तिका ज्ञाताधिष्ठानसे अतिरेक होनेपर विश्वमिथ्यात्वश्रुतिके पर्यालोचनसे निवृत्तिकेभी निवृत्तिकी आपत्ति है, यह आपत्ति ही निवृत्ति ज्ञाताधिष्ठानरूप है, इस अर्थमें नियामिका है, नच=यह नियामिका नहीं हो सकती है क्यों ? तस्याः=विश्वमिथ्यात्वश्रुतिको ज्ञानसे विश्वनिवृत्तिपरत्व होनेसे स्वतात्पर्यकी विषयीभूत जो विश्वकी निवृत्ति उस निवृत्तिसे जो इतर उस इतरका जो मिथ्यात्व तादृशमिथ्यात्वपरत्व होनेसे इति चेन्न; क्यों ? न तावदाद्ये दोषः=आद्यपक्षमें दोष नहीं है,—सोपाधिकभ्रममें उपाधिविरहकालीन जो ज्ञाताधिष्ठान तादृश ज्ञाताधिष्ठानको ही तथात्वात्=निवृत्तिरूपत्व होनेसे। नापि द्वितीयः=द्वितीय दोषभी नहीं है, क्यों ? 'नेति नेति' (बृ० ३।९।२६) इस श्रुतिके स्वारस्यसे आत्मातिरिक्त सर्वकी निवृत्तिमें ही तात्पर्य्य होनेसे। नचेति। वृत्त्युपलक्षित आत्मा जीवन्मुक्तिमेंभी है अतः उस कालमेंभी—जीवन्मुक्तिकालमेंभी

मोक्षकी आपत्ति है; नच=ऐसी शङ्का नहीं करना क्यों ? उस कालमें मुक्तिमात्रके आपादनको इष्टत्व होनेसे । और परममुक्तिको चरमसाक्षात्कारोपलक्षित जो आत्मा तादृश आत्मस्वरूपत्व होनेसे तदापादक=परममुक्तिके आपादकके अभावसे । परमसाक्षात्कारकी निवृत्तिको आत्मत्व होनेपर असाध्यत्वकी आपत्ति है, नच=ऐसी शङ्का करनेकी जरूरत नहीं क्यों ? अविद्याकी निवृत्तिको आत्मत्व होनेपर जैसे अप्रवृत्तिकी आपत्ति है तैसे अत्र=चरमसाक्षात्कारकी निवृत्ति आत्मस्वरूप है, यहाँपर तदभावात्=अप्रवृत्तिकी आपत्तिके अभावसे=चरमसाक्षात्कारकी निवृत्तिके लिए किसी प्रयत्नकी आवश्यकता ही नहीं है वह तो तृणराशिनिक्षिप्त अङ्गारवत् अविद्याको निवृत्तकर स्वयं निवृत्त हो जाता है, अतः उक्तविध आपत्ति नहीं ।

नच—जीवन्मुक्तिप्रयोजकवृत्त्यपेक्षया परममुक्तिप्रयोजकवृत्तौ आनन्दाभिव्यक्तिगतविशेपाभावेचरमक्षणेन चरमश्वासेन वा उपलक्षित आत्मा मुक्तिरिति किं न स्यादिति—वाच्यम् ; प्रारब्धकर्मप्रयुक्तविक्षेपाविक्षेपाभ्यामभिव्यक्तिविशेपस्याङ्गीकारात् । एतेन—वेदान्तश्रवणादिसाध्यः पुमर्थो वाच्यः; नच स त्वन्मते वक्तुं शक्यः मुक्त्यनुस्यूतसुखज्ञप्तिरूपस्यात्मनः पुरुषार्थत्वेनाप्यसाध्यत्वात् , वृत्तेः साध्यत्वेऽपि स्वतोऽपुमर्थत्वात् । तस्मादात्मव्यतिरिक्त एव वृत्तिसाध्य आवरणनिवृत्तिरूपः आनन्दप्रकाशः पुमर्थो वाच्यः । तथाच कथमात्मैव निवृत्तिरिति—अपास्तम् ; प्राप्तप्राप्तिरूपतया फलस्यानन्दप्रकाशस्य स्वरूपतोऽसाध्यत्वेऽपि तत्तिरोधायकाज्ञाननिवर्तकवृत्तेः साध्यत्वमात्रेण साध्यत्वोपपत्तेः कण्ठगतचामीकरादौ तथादर्शनात् । तस्मादज्ञानहानिरात्मस्वरूपं तदाकारा वृत्तिर्वेति सिद्धम् । ये तु पञ्चमप्रकारादिपक्षाः ते तु मन्दबुद्धिव्युत्पादनार्था इति न तत्समर्थनमर्थयामः ।

इत्यद्वैतसिद्धौ अविद्यानिवृत्तिनिरूपणम् ।

नचेति । जीवन्मुक्तिप्रयोजक जो वृत्ति तादृश वृत्तिकी अपेक्षासे परममुक्तिप्रयोजक वृत्तिमें आनन्दाभिव्यक्तिगत जो विशेष तादृश विशेषका अभाव होनेपर चरमक्षणसे उपलक्षित या चरमश्वाससे उपलक्षित आत्मा मुक्ति है ऐसा क्यों न हो, इति नच वाच्यम्; क्यों ? प्रारब्धकर्मप्रयुक्त विक्षेपसे और उक्त विक्षेपाभावसे अभिव्यक्तिविशेषका अङ्गीकार होनेसे । एतेनेति । वेदान्तविषयकश्रवणादिसे साध्य पुरुषार्थ वाच्य है, परन्तु वह तुम्हारे मतमें कहनेके लिए शक्य नहीं है,—मुक्तिमें अनुस्यूत सुखज्ञप्तिस्वरूप जो आत्मा है उस आत्माको पुरुषार्थत्व होनेपरभी असाध्यत्व होनेसे और वृत्तिको साध्यत्व होनेपरभी स्वतः अपुरुषार्थत्व होनेसे तस्मात् आत्मासे भिन्न ही वृत्तिसे साध्य आवरणनिवृत्तिरूप आनन्दप्रकाशपुरुषार्थ वाच्य है, फलतः आत्मस्वरूपही निवृत्ति कैसे है; ? यह कथन खण्डित हुआ एतेनका अर्थ दिखलाते हैं—प्राप्तप्राप्तिरूपता होनेसे आनन्दप्रकाशरूपफलको स्वरूपसे साध्यत्व न होनेपरभी तत्तिरोधायक=आनन्दप्रकाशतिरोधायक जो अज्ञान उस अज्ञानकी निवर्तक जो वृत्ति उस वृत्तिके साध्यत्वमात्रसे साध्यत्वकी उपपत्तिसे कण्ठगतचामीकरादिमें तथा देखनेसे, तस्मात्

अज्ञानकी निवृत्ति आत्मरूप है, या आत्माकार जो वृत्ति तद्रूप है, यह सिद्ध हुआ, और जो न्यायमकरन्दाद्युक्त पञ्चमप्रकारादि पक्ष हैं वे तो मन्दबुद्धिओंके व्युत्पादनके लिए हैं अतः उन्होंके समर्थनको हमलोग इष्ट ही नहीं समझते हैं ॥

इति सरलायामविद्यानिवृत्तिनिरूपणम् ॥

अथ अविद्यानिवर्तकनिरूपणम्

अविद्यानिवर्त्तकं च यद्यपि न स्वप्रकाशब्रह्मरूपज्ञानमात्रम्, तस्य तत्साधकत्वात्, तथापि श्रवणादिसाध्यापरोक्षवृत्तिसमारूढं तदेव। अत-एवैतदपास्तम्—किं स्वप्रकाशचिदविद्यानिवर्त्तिका, तदाकारा अपरोक्षवृत्तिर्वा, नाद्यः तस्या इदानीमपि सत्वात्। न द्वितीयः असत्यात्सत्यासिद्धेरयोगात् अज्ञाने न जानामीति ज्ञप्तिरूपचिद्विरोधस्यानुभवेनाज्ञप्तिरूपवृत्तिविरोधस्यासंभवात्, चिता प्रकाशमानसुखादावज्ञानदर्शनाच्च। किंच इच्छानिवर्त्यद्वेषवज्जातिनिवन्धनवृत्तिनिवर्त्यस्याज्ञानस्याविशेषेण सत्वापत्तिः इति, वृत्त्युपारूढचितो वा चित्प्रतिविम्बधारिण्या वृत्तेर्वा निवर्त्तकत्वात्। नचासत्यायाः सत्योत्पादकत्वविरोधः अभावस्य भावजनकत्ववदस्य संभवात् प्रातिभासिकस्य व्यावहारिकसुखजनकत्वदर्शनाच्च। नापि न जानामीति ज्ञप्तिरूपचिद्विरोधित्वानुभवविरोधः; चिदसंसृष्टवृत्तेर्विरोधित्वस्यानङ्गीकारात्। यच्चूक्तं द्वेषवत्सत्यत्वमिति तन्न अधिष्ठानतत्वसाक्षात्कारत्वनिवन्धननिवर्तकत्वस्य शुक्त्यादिज्ञानवदत्रापि संभवेन तन्निवर्त्यरूप्यवत्सत्यत्वानापत्तेः। यच्चूक्तं चरमवृत्तेर्घटादिवृत्त्या चिद्विषयत्वे अविशेषः—इति तन्न अवच्छिन्नानवच्छिन्नविषयतया विशेषात्। यत्तु स्वनिवर्त्तकत्वे स्थितिविरोधः, स्वोपादाननिवर्त्तकत्वं त्वदृष्टचरम् इति तन्न; अन्यत्रादृष्टस्यापि प्रमाणवलादत्रैव कल्पनात्।

अथ सरलायामविद्यानिवर्त्तकनिरूपणम्।

यद्यपि अविद्याका निवर्त्तक स्वप्रकाशब्रह्मस्वरूपज्ञानमात्र नहीं है, तस्य=उसको तत्साधकत्वात्=अज्ञानका साधकत्व होनेसे। तथापि श्रवणादिसाध्य जो अपरोक्षवृत्ति तादृश वृत्तिमें समारूढ हुआ वही अज्ञानका निवर्त्तक है। अतएवेति। क्या स्वप्रकाशचित् अविद्याकी निवर्तिका है या स्वप्रकाशचिदाकारा अपरोक्षवृत्ति अविद्याकी निवर्तिका है, नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है—तस्याः=स्वप्रकाशचित्का इस कालमेंभी सत्व होनेसे, न द्वितीयः=द्वितीय पक्षभी नहीं बन सकता है—असत्त्यात्=असत्यभूतवृत्तिसे अविद्यानिवृत्तिरूप सत्यकी सिद्धिके अयोगसे। अज्ञानमें 'न जानामि' इत्याकारक ज्ञप्तिरूप चिद्विरोधका अनुभव होनेसे अज्ञप्तिरूप जो वृत्ति उसके विरोधका असम्भव होनेसे। और चित्से प्रकाशमान जो सुखादि हैं उन्होंमें अज्ञानके अदर्शनसेभी, किञ्च इच्छासे निवर्त्य द्वेषवत् जातिनिवन्धनवृत्तिनिवर्त्य अज्ञानको अविशेषेण सत्त्वकी आपत्ति है, यह कथन खण्डित हुआ, अतएव शब्दका

अर्थ दिखलाते हैं–वृत्तिमें उपारूढचित्को या चित्प्रतिबिम्बधारिणी वृत्तिको अविद्याका निवर्त्तकत्व होनेसे। नचेति। असत्यभूतवृत्तिको सत्यरूपाज्ञाननिवृत्तिके उत्पादकत्वका विरोध है; नच=विरोध नहीं है; क्यों? अभावको जैसे भावजनकत्व होता है तैसे असत्यसे सत्यका सम्भव होनेसे। और प्रातिभासिकको व्यावहारिकसुखके प्रति जनकत्वके देखनेसेभी। और 'न जानामि' इत्याकारक जो ज्ञप्तिरूपचिद्विरोधित्वका अनुभव होता है, उसके साथ विरोधभी नहीं–चित्से असंसृष्ट=चित्से असम्बद्ध=केवलवृत्तिमें विरोधित्वके अनङ्गीकारसे। और जो कहा है कि द्वैपवत् सत्यत्व होगा, वह ठीक नहीं क्यों? अधिष्ठानतत्त्वका जो साक्षात्कारत्व तादृशसाक्षात्कारत्वनिबन्धननिवर्त्तकत्वको शुक्त्यादिज्ञानवत् इस ज्ञानमेंभी सम्भव होनेसे तन्निवर्त्यरूप्यवत्=शुक्तितत्वसाक्षात्कारनिवर्त्यरूप्यवत् सत्यत्वकी अनापत्तिसे। और जो कहा कि,–चरमवृत्तिको चिद्विषयत्वमें घटादिवृत्तिके साथ अविशेष है जैसे 'अयं घटः' इत्यादिरूपघटादिवृत्तियाँ चिद्विषयक हैं तैसे चरमवृत्तिभी चिद्विषयक है, अतः इन दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है, वह ठीक नहीं; क्यों? अवच्छिन्नविषयतया और अनवच्छिन्नविषयतया विशेष होनेसे। और जो कहा है कि–स्वनिवर्त्तकत्व होनेपर स्थितिका विरोध है, और स्वोपादानका निवर्त्तकत्व तो अदृष्टचर है, तन्न;=यह ठीक नहीं क्यों? अन्यत्र अदृष्टकाभी प्रमाणबलसे यहाँ ही पर कल्पन होनेसे।

तथाहि—'मायां तु प्रकृतिं विद्यादि'त्यवगतमायोपादानकत्वस्याप्यात्मतत्त्वसाक्षात्कारस्य 'तरति शोकमात्मवित्' सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्येत्यादिना तन्निवर्तकत्वस्य च प्रमितत्वात्। वृत्तिप्रतिबिम्बितचितो निवर्त्तकत्वे तु नोक्तवचसः शङ्कापि। तदुक्तं 'तृणादेर्भासिकाप्येषा सूर्यदीप्तिस्तृणं दहेत्।' सूर्यकान्तमुपारुह्य तन्न्यायं विनियोजयेत्॥ नच=अपरोक्षवृत्तौ सत्यां चिदप्रतिबिम्बनिबन्धननिवृत्तिविलम्बादर्शनात् न विशिष्टे निवर्त्तकतेति–वाच्यम्; शुद्धजडस्य शुद्धचितश्च जडतया तद्भासकतया चाज्ञानानिवर्तकतया विशिष्टे निवर्त्तकताया आवश्यकत्वात्। यत्तु निवर्त्तकं ज्ञानमपि न शुद्धविषयकम्; तस्यादृश्यत्वात् नापि विशिष्टविषयकम्; तस्याध्यस्तत्वेन भ्रमत्वापत्तेः इति, तन्न; उपहितस्य विषयत्वेऽपि उपाधेरविषयत्वेनाभ्रमत्वात्; यत्तु–अन्त्यस्य ज्ञानस्य किं निवर्त्तकम्? स्वयमन्यद्वा; नाद्यः अन्यनिरपेक्षप्रतियोगिनो ध्वंसजनकत्वे क्षणिकत्वापत्तेः, दग्धदारुदहनस्यापि ईश्वरेच्छादिनैव नाशात्। कतकरजस्तु न पङ्कं नाशयति। नापि स्वम्; विश्लेषमात्रदर्शनात्, नान्त्यः शुद्धात्मनः किंचिदपि प्रत्यहेतुत्वात् तदन्यस्य च निवर्त्यत्वात्–इति तन्न; तन्तुनाशस्य पटनाशप्रयोजकत्वदर्शनेन स्वोपादानाविद्यानाशस्यैव तन्नाशकत्वात्।

तथाहि–'मायां तु प्रकृतिं' (श्वे०।४।१०) इस श्रुतिसे अवगत है मायोपदानकत्व जिसका एवम्भूत जो आत्मतत्त्वसाक्षात्कार तादृश आत्मतत्त्वसाक्षात्कारमें 'तरति शोकमात्मवित्' (छा०।७।१।३) 'सोऽविद्याग्रन्थिं विकरतीह सोम्य' (मुं०।२।१।१०) इत्यादिसे तन्निवर्त्तक-

त्वस्य=मायानिवर्त्तकत्वको प्रमितत्व होनेसे=उक्त श्रुतिओंसे मायोपादानज्ञानकोभी मायानिवर्त्तकत्व सिद्ध होता है। और वृत्तिविम्बितचित्को अविद्याका निवर्त्तकत्व होनेपर तो 'स्वोपादाननिवर्त्तकत्वं स्वदृष्टचरम्) इस उक्त वचनकी शङ्काभी नहीं है। सो कहा है—तृणादिका प्रकाशकरनेवालीभी यह आदित्यदीप्ति सूर्य्यकान्तावच्छिन्न होकर तृणादिको जलाती है, उस—दृष्टान्तको प्रकृतमें जोडना,=जैसे कार्पासतृणादिप्रकाशक जो सूर्य्यकी रश्मियाँ है व काचविशेषसे अवच्छिन्न हुई कार्पास तृणादिको जलाती हैं तैसे अज्ञानभासकभी चैतन्य वेदान्तविचारजन्याप्रतिवद्धवृत्त्यवच्छिन्न होकर=प्रतिविम्बित होकर अज्ञानका स्वाहा कर देता है। नचेति। अपरोक्षवृत्तिके होनेपर चित्का जो अप्रतिविम्ब तन्निबन्धन जो निवृत्तिमें बिलम्ब उस बिलम्बके न देखनेसे विशिष्टमें निवर्त्तकता नहीं है, इति नच वाच्यम्; क्यों? शुद्धजडस्य=केवल जडको जडत्व होनेसे और केवलचित्को अज्ञानका भासकत्व होनेसे अज्ञानका निवर्त्तकत्व न होनेसे। और जो यह कथन है कि निवर्त्तकज्ञानभी शुद्धविषयक नहीं है तस्य=शुद्धको अदृश्यत्व होनेसे और विशिष्टविषयकज्ञानभी अज्ञानका निवर्त्तक नहीं हो सकता है; तस्य=विशिष्टको अध्यस्तत्व होनेसे तद्विषयकज्ञानमें भ्रमत्वकी आपत्तिसे, तन्न;=वह ठीक नहीं क्यों? उपहितको विषयत्व होनेपरभी उपाधिविषयत्व न होनेसे भ्रमत्वके अभावसे। यच्चेति। अन्त्यज्ञानका कौन निवर्त्तक है? स्वयम् या अन्यकोई; नाद्यः=अन्त्यज्ञानका निवर्त्तक अन्त्यज्ञान ही है, यह प्रथम पक्ष नहीं बन सकता है, क्यों? अन्यनिरपेक्ष जो प्रतियोगि तादृश प्रतियोगीको ध्वंसका जनकत्व होनेपर प्रतियोगीके क्षणिकत्वकी आपत्तिसे दग्धकाष्ठवह्निकाभी ईश्वरेच्छासे ही नाश होनेसे=दग्धदारुदहनकाभी ईश्वरेच्छासे ही नाश होता है, अतः उसको स्वयं नाशके प्रति दृष्टान्तता नहीं बन सकती है। और कतकरज तो न पङ्कका नाश करता है न अपना, विभागमात्रके देखनेसे। नान्त्यः=' अन्य कोई निवर्त्तक है' यह अन्तिमपक्षभी नहीं बन सकता है—शुद्धात्माको किसीके प्रतिभी हेतुत्व न होनेसे, और आत्मासे अन्यको निवर्त्यत्व होनेसे; इति यत् तत् तु न; क्यों? तन्तुके नाशको पटनाशके प्रति प्रयोजकत्व देखनेसे स्वोपादान=अन्त्यज्ञानोपादान जो अविद्या उस अविद्याके नाशको ही तन्नाशकत्वात्=अन्त्यज्ञानका नाशकत्व होनेसे।

नच—अविद्यानाशो तदुपलक्षितात्मा वा वृत्तिर्वा, पूर्वत्र शुद्धस्याहेतुत्वम्, द्वितीये प्रतियोगिमात्रस्यैव नाशकतापर्यवसानमिति वाच्यम्; उभयथाप्यदोषात्,—वृत्तिमादायैव ब्रह्मण उपहितत्वेन शुद्धत्वाभावात्। प्रतियोगिनः प्रतियोगित्वेन नाशकतायामितरानपेक्षत्वे हि क्षणिकत्वं रूपान्तरावच्छेदेन यत् कारणं तस्यापेक्षणे न तदिति उपादाननाशत्वावच्छिन्नस्य स्वस्यैव क्षणिकत्वानापादकं नाशकत्वं स्यात्। द्वितीयकारणनिरपेक्षप्रतियोगिनः प्रतियोगित्वोपादाननाशत्वरूपद्वयावच्छिन्नस्य नाशकत्वोपपत्तेः। वस्तुतस्तु—अविद्यानिवृत्तेर्वृत्तिरूपतया न निवर्त्तकखण्डनावकाशः वृत्तिनिवृत्तेरात्मरूपतया न तज्जनकखण्डनावकाशोऽपीति सर्वमवदातम्॥

इत्यद्वैतसिद्धौ अविद्यानिवर्त्तकनिरूपणम्॥

नचेति। अविद्याका नाश वृत्त्युपलक्षित आत्मा है या वृत्ति है; पूर्वत्र=प्रथमपक्षमें शुद्धको अहेतुत्व है, और द्वितीयपक्षमें प्रतियोगिमात्रमें ही नाशकताका पर्य्यवसान है; इति नच वाच्यम्, क्यों? दोनों प्रकारसे दोषके न होनेसे; वृत्तिको लेकरही ब्रह्मको उपहितत्व होनेसे शुद्धत्वके अभावसे, अतः प्रथमपक्षमें अविद्याका नाश बन सकता है। प्रतियोगीको प्रतियोगित्वेन नाशकतामें इतरानपेक्षत्व होनेपर क्षणिकत्व होगा, और रूपान्तराच्छेदेन जो कारण है उसका अपेक्षण होनेपर न तत्=क्षणिकत्व नहीं है; अतः उपादाननाशत्वावच्छिन्नस्वको ही क्षणिकत्वका अनापादक नाशकत्व होगा, प्रतियोगित्व उपादाननाशत्वरूपद्वयावच्छिन्नद्वितीयकारणनिरपेक्षप्रतियोगीको नाशकत्वकी उपपत्ति होनेसे; और वस्तुतः तो अविद्याकी निवृत्तिको वृत्तिरूपता होनेसे निवर्त्तकके खण्डनका अवकाश नहीं है। और वृत्तिकी निवृत्तिको आत्मरूपता होनेसे वृत्तिनिवृत्तिके जनकके खण्डनका अवकाशभी नहीं है अतः सर्व शुद्ध है।

इति सरलायामविद्यानिवर्त्तकम्॥

अथ मुक्तेरात्मरूपत्वेन पुरुषार्थत्वम्।

ननु—त्वन्मते मुक्तौ न दुःखोच्छेदमात्रम् किन्तु निरतिशयानन्दस्फुरणमपि। तदुक्तं—'तस्मादविद्यास्तमयो नित्यानन्दप्रतीतितः। निःशेषदुःखोच्छेदाच्च पुरुषार्थः परो मतः॥' इति। तत्र न सुखात्मता तावत्पुरुषार्थः, सुखी स्यामितिवत् सुखं स्यामिति इच्छाया अदर्शनात्, पुमर्थताया इच्छानियम्यत्वात्। अन्यथा बौद्धमतसिद्धात्मनाशादिरपि पुमर्थः स्यात्। अतएव नापरकीयं सुखं पुमर्थः, तथेच्छाविरहात्, गौरवाच्च, सुखसाधने परकीयेऽपि स्वकीये पुमर्थत्वस्यापरकीयेऽप्यस्वकीये अपुमर्थत्वस्य च दर्शनेन इष्टत्वाविशेषात्, सुखेऽपि तत्कल्पनाच्च दुःखतत्साधनयोः स्वकीयतयैवापुमर्थत्वस्य दर्शनेन सुखादेरपि तथैव पुरुषार्थत्वाच्चेति—चेन्न; सुखादौ हि पुमर्थता नापरकीयत्वप्रयुक्ता नापि स्वकीयत्वप्रयुक्ता गौरवात् किन्तु साक्षात्क्रियमाणतया, सम्बन्धस्य चानित्यत्वसाधनपारतन्त्र्यादेरिवावर्जनीयसन्निधिकत्वात् नच—ईश्वरस्याप्यस्मदादिसुखं पुमर्थः स्यादिति—वाच्यम्; हेयतया अज्ञातत्वे सतीत्यस्यापि तत्र प्रयोजकत्वादीश्वरादिना चास्मदादिसुखस्य हेयत्वेनैव ज्ञानात् स्वरूपसुखे चेष्टापत्तेः।

अथ सरलायां मुक्तेरानन्दरूपत्वेन पुरुषार्थत्वम्।

शङ्कते नन्विति। तुम्हारे मतमें मुक्तिमें दुःखका ही उच्छेद नहीं है; किन्तु निरतिशय आनन्दका स्फुरणभी है। सो कहा है=तस्मात् नित्यानन्दकी प्रतीतसे और निःशेषदुखोःच्छेदसे अविद्यास्तमय परमपुरुषार्थ माना गया है। तहाँ सुखात्मता पुरुषार्थ नहीं बन सकती है—'सुखी स्याम्' यह इच्छा जैसे होती है सेतै 'सुखं स्याम्' इस इच्छाके अदर्शनसे—पुरुषार्थताको इच्छासे नियम्यत्व होनेसे। अन्यथा बौद्धमतसे सिद्ध आत्मनाशादिभी पुरुषार्थ होंगे।

अतएव=इच्छानियम्यत्व होनेसे ही अपरकीयसुख पुरुषार्थ नहीं है-तथेच्छाविरहात्= 'अपरकीयं सुखं मे स्यात्' इत्याकारक इच्छाके अदर्शनसे गौरवाच=गौरव होनेसेभी=स्वकीयत्वको भावरूपत्व होनेसे, स्वकीयत्वापेक्षया अभावरूप होनेसे अपरकीयत्वमें गौरव है। अपरकीयत्वेन पुरुषार्थता नहीं है, इसमें औरभी युक्ति दिखलाते हैं-परकीय सुखसाधनमेंभी पुरुषार्थत्व देखनेसे=देवदत्त तथा यज्ञदत्त इन दोनोंने मिलकर प्रासाद बनाकर खडाकिया और उसमें दोनों रहने लगे तहाँ देवदत्तको सुख न होना चाहिए क्योंकि प्रासादमें अपरकीयत्व नहीं है किन्तु तदभाव परकीयत्व ही है, और जो स्वकीयत्वेन पुरुषार्थमानते हैं उनके मतमें यह आपत्ति नहीं, क्योंकि उस प्रासादमें स्वकीयत्व है ही और अपरकीय अथच अस्वकीय जो जो चन्द्रमण्डलादिक हैं उन्होंमें अपुरुषार्थत्वके देखनेसे; सुखसाधन तथा सुख इन दोनोंमें इष्टत्वके अविशेषसे, सुखेऽपि=सुखमेंभी स्वकीयत्वेन पुरुषार्थत्वके कल्पनसे। और दुःख तथा दुःखके साधन इन दोनोंको स्वकीयत्वेन ही अपुरुषार्थत्वके देखनेसे सुखादिकोभी तथैव= स्वकीयत्वेन ही पुरुषार्थत्व होनेसेभी, इति चेन्न; क्यों ? सुखादिमें पुरुषार्थता अपरकीयत्वेन नहीं है; अपरकीयत्वप्रयुक्त नहीं है। और स्वकीयत्वप्रयुक्तभी नहीं है, गौरव होनेसे किन्तु साक्षात्क्रियमाणत्वेन है; और संबन्धस्य च=स्वकीयत्वादिके सम्बन्धको अनित्यत्वसाधनपार तन्त्र्यादिकी नाईं अवर्जनीयसन्निधिकत्व होनेसे, अस्मदादिका सुख ईश्वरकाभी पुरुषार्थ होगा- साक्षात्कारत्वको अविशेषत्व होनेसे, इति नच वाच्यम्; क्यों? हेयत्वेनाज्ञातत्वे सति साक्षा- त्क्रियमाणत्व=इतनेको पुरुषार्थत्वलक्षणमें प्रयोजकत्व होनेसे । और ईश्वरादिको अस्मदादि- सुखका हेयत्वेन ही ज्ञान होनेसे। और स्वरूपसुखमें इष्टापत्तिसे।

नच—गौरवम्; स्वसम्बन्धित्वेन पुमर्थतावादिनोऽपि निर्लीनसुखे पुरुषार्थता- निवृत्त्यर्थं तथावश्यं वर्णनीयत्वात्। यत्तु—साक्षात्कारेऽपि स्वकीयतया पुरुषार्थतापक्षे मुक्तस्य सुखसाक्षात्काररूपतया तं प्रत्यपि तस्यापुरुषार्थतापत्तिः; स्वेतरासम्बन्धित्वेन स्वस्य पुरुषार्थत्वे मुक्तस्वरूपेण सुखेन संसारीतरासम्बन्धेन संसारिणः पुरुषार्थप्रसङ्ग इति तन्न; साक्षात्क्रियमाणत्वेनैव हि पुमर्थता मुक्तसुखसाक्षात्कारस्य तं प्रति पुमर्थत्वेऽपि न संसारिणस्तथा; तं प्रत्यभासमानत्वात् भाने वाऽसंसारित्वेनेष्टापत्तिः। यत्तु—प्रत्यक्षप्र- काशमानत्वेन सुखं पुमर्थः—इति, तदप्येतेन व्याख्यातम्; प्रत्यक्षप्रकाशमानत्वेन साक्षा- त्क्रियमाणताया एवोक्तेः। यत्तु—सुखत्वेन प्रकाशमानं सुखं पुमर्थः। नच तत्परमते मोक्षेऽस्ति—इति तन्न; साक्षात् क्रियमाणत्वेनैवातिप्रसङ्गनिरासे अधिकोक्तेर्गौरवकरत्वात्।

इत्यद्वैतसिद्धौ मुक्तेरानन्दरूपत्वेन पुरुषार्थत्वम्।

नचेति। गौरव है; नच=गौरव नहीं हैं—स्वसम्बन्धित्वेन पुरुषार्थतावादिकोभी विलीन सुखमें पुरुषार्थताकी निवृत्तिके लिए तथावश्यं=साक्षात्क्रियमाणत्वेन, अवश्य वर्णनीयत्व होनेसे। यत्त्विति। साक्षात्कारमेंभी स्वकीयतया पुरुषार्थतापक्षमें मुक्तको सुखसाक्षात्काररूपता होनेसे

मुक्तके प्रतिभी तस्य=साक्षात्कारके अपुरुषार्थताकी आपत्ति है और स्वेतरासम्बन्धित्वेन स्वको पुरुषार्थत्व होनेपर मुक्तस्वरूपसुखके संसारीतरके असम्बन्धसे संसारीको, पुरुषार्थत्वका प्रसङ्ग है इति यत् तत् तु न; क्यों ? साक्षात् क्रियमाणत्वेन ही पुमर्थता है, मुक्तसुखसाक्षात्कारको मुक्तके प्रति पुमर्थता होनेपरभी संसारीको पुमर्थता नहीं है तं प्रति=संसारीके प्रति अभासमानत्वात्=साक्षात्कारत्वेन अज्ञायमानत्व होनेसे, और भान होनेपर असंसारित्व होनेसे इष्टापत्ति है, और जो कहा है कि प्रत्यक्षप्रकाशमानत्वेन सुख पुरुषार्थ है, इससे वह भी व्याख्यात् हुआ–प्रत्यक्षप्रकाशमानत्वेन साक्षात्क्रियमाणताकी ही उक्ति होनेसे, और जो कहा है कि,–सुखत्वेन प्रकाशमान पुरुषार्थ है और वह परमतके मोक्षमें नहीं हैं तन्न=क्यों ? साक्षात्क्रियमाणत्वेन ही अतिप्रसङ्गका निरास होनेपर अधिकोक्तिको गौरवकरत्व होनेसे ॥

इति सरलायां मुक्तेरानन्दरूपत्वेन पुरुषार्थत्वम् ॥

अथ चिन्मात्रस्य मोक्षभागित्वोपपत्तिः ।

ननु—कस्यायं मोक्षः पुमर्थः ? किमहमर्थस्य आहोस्वित् चिन्मात्रस्य । नाद्यः । त्वन्मतेऽहमर्थस्य मुक्त्यनन्वयात्; नान्त्यः अहं मुक्तः स्यामितिवच्चिन्मात्रं मुक्तं स्यादितीच्छाया अननुभवादिति–चेन्न; अहमर्थगतं चिदंशं मुक्तिकालान्वयिनं प्रति पुमर्थस्य मोक्षे संभव इत्युक्तप्रायत्वात् । नच–सुखस्य दुःखाभावमात्रत्वे वैशेषिकमोक्षवदपुमर्थता अतिरेके सद्वितीयत्वमिति–वाच्यम्; दुःखाभावातिरेकेऽप्यात्मानतिरेकात् । नच–आत्मनः सुखमात्रत्वे सुखप्रकाशाभावेनापुमर्थत्वम् उभयात्मकत्वे चाखण्डार्थत्वहानिरिति–वाच्यम्; सुखप्रकाशयोरेकात्मरूपतया उभयत्वस्यैवाभावात् । नचार्थभेदाभावे सुखप्रकाश इति सहप्रयोगायोगः, अविद्याकल्पितदुःखजडात्मकत्वरूपव्यावर्त्यभेदेन तदुपपत्तेः । यत्तुदुःखाभावस्य सुखस्य च तत्त्वतो दुःखाद्भेदे अपसिद्धान्तः अभेदेत्वपुमर्थता–इति तन्न; दुःखस्य कल्पितत्वेन तद्भेदस्य तत्समानयोगक्षेमतया तात्त्विकत्वाभावेनापसिद्धान्ताभावात् । यत्तु-स्वप्रकाशस्य सुखस्य स्वतः स्फुरणेऽपि दुःखाभावस्यास्फुरणादपुमर्थता–इति तन्न, दुःखाभावस्यात्मानतिरेकेणात्माभिन्ने सुखे स्फुरति तस्यापि स्फुरणात् तत्वेनास्फुरणस्याप्रयोजकताया उक्तत्वात् । तस्मात्स्वप्रकाशचिदभिन्नं सुखं पुमर्थः ।

इति चिन्मात्रस्य मोक्षभागित्वोपपत्तिः ॥

अथ सरलायां चिन्मात्रस्य मोक्षभागित्वोपपत्तिः ।

शङ्कते नन्विति । यह मोक्षरूप पुरुषार्थ किसको है ? क्या अहमर्थको है या चिन्मात्रको । नाद्यः=अहमर्थको है यह आदिमपक्ष नहीं बन सकता है, क्यों ? तुम्हारे मतमें अहमर्थका मुक्तिमें अन्वय न होनेसे । नान्त्यः=चिन्मात्रको है, यह अन्तिमपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? 'मैं मुक्त होऊँ' इस इच्छाकी तरह 'चिन्मात्र मुक्त हो' इत्याकारक इच्छाके अननु-

भवसे इति चेन्न; क्यों ? मुक्तिकालमें अन्वयि एवम्भूत जो अहमर्थगत चिदंश है उस चिदंशके प्रति पुमर्थताका मोक्षमें सम्भव है, इस अर्थको उक्तप्रायत्व होनेसे। नचेति। सुखको दुःखाभावमात्रत्व होनेपर वैशेषिकमोक्षवत् अपुरुषार्थता होगी और सुखका दुःखाभावसे भेद होनेपर सद्वितीयत्व होगा, इति नच वाच्यम्; क्यों ? दुःखाभावसे अतिरेक=भेद होनेपरभी आत्मासे भेद न होनेसे। नचेति। आत्माको सुखमात्रत्व होनेपर सुखके प्रकाशके अभावसे अपुमर्थत्व होगा और उभयात्मकत्वे=सुखात्मक और प्रकाशात्मकत्व एतदुभयात्मकत्व होनेपर अखण्डार्थत्वकी हानि है; इति नच वाच्यम्; क्यों ? सुख तथा प्रकाश इन दोनोंको एकात्मरूपता होनेसे उभयत्वके ही अभावसे। अर्थभेदका अभाव होनेपर 'सुखप्रकाशः' इत्याकारक सहप्रयोगका अयोग है नच=अयोग नहीं है, क्यों ? अविद्यासे कल्पित जो दुःखात्मकत्वरूप व्यावर्त्य और जडात्मकत्वरूपव्यावर्त्य उस व्यावर्त्यके भेदसे तदुपपत्तेः=सहप्रयोगकी उपपत्ति होनेसे। यत्त्विति। दुःखाभावका और सुखका तत्त्वतः दुःखसे भेद होनेपर अपसिद्धान्त है, और अभेद होनेपर अपुरुपार्थता है; इति यत् तत् तु न; क्यों ? दुःखको कल्पितत्व होनेसे तात्त्विकत्वके अभावसे अपसिद्धान्त नहीं है। यत्त्विति। स्वप्रकाशसुखका स्वतः स्फुरण होनेपर दुखःभेदकोभी दुःखस्थितिसमानस्थितिकत्व होनेसे भी दुःखाभावका स्फुरण न होनेसे अपुरुपार्थत्व है, इति यत् तत् तु न; क्यों दुःखाभावका आत्मासे अतिरेक न होनेसे आत्माभिन्नसुखके स्वतः स्फुरित होनेपर तस्यापि=दुःखाभावकाभी स्फुरण होनेपर तत्त्वेन=दुःखाभावत्वेन स्फुरणाभावको अपुरुपार्थत्वके प्रति अप्रयोजकताको उक्तत्व होनेसे। फलितार्थ कहते हैं–तस्मादिति स्वप्रकाशचित्से अभिन्न जो सुख वह पुरुपार्थ है, यह सिद्ध हुआ॥

इति सरलायां चिन्मात्रस्य मोक्षभागित्वोपपत्तिः।

अथ जीवन्मुक्त्युपपत्तिः।

तच्च जीवन्मुक्तानां स्वानुभवसिद्धम्। जीवन्मुक्तश्च तत्त्वज्ञानेन निवृत्ताविद्योऽप्यनुवृत्तदेहादिप्रतिभासः। नच–तत्त्वज्ञानादविद्यानाशे सद्यः शरीरपातापत्तिः निवृत्तसर्पभ्रमस्यापि संस्कारात् भयकम्पानुवृत्तिवत् दण्डसंयोगनाशेऽपि चक्रभ्रमणवच्च संस्कारानुवृत्तेरविद्यानिवृत्तावपि तत्कार्यानुवृत्तिसम्भवात्। नच–क्रियाज्ञानयोरेव संस्कारः नान्यस्येति–वाच्यम्; निःसारितपुष्पायां सम्पुटिकायां पुष्पवासनादर्शनात्, विमतो नाशः संस्कारव्याप्तः, संस्कारनाशान्यत्वे सति नाशत्वात् ज्ञाननाशवत् इत्यनुमानाच्च संस्कारः कार्योऽपि ध्वंस इव निरुपादानकः अविद्येव च शुद्धात्माश्रित इति नाविद्यासापेक्षः। नच भावकार्यस्याध्यस्तस्य संसारदेहादितद्धेतुप्रारब्धकर्मादेः स्थित्यर्थः तदुपादानाज्ञानानुवृत्त्यापात इति–वाच्यम्; विनश्यदवस्थस्य समवायिकारणं विना स्थितिदर्शनात्। नच–क्षणमात्रस्थितावपि कथं बहुक्षणस्थितिरिति–वाच्यम्; सत्युपपादके क्षणगणकल्प-

नाया अप्रयोजकत्वात्। तत्र क्षणमात्रं स्थितिः समसमस्याजनकत्वात्, अत्र तु प्रतिबन्धकाभावसहकृतहेतोस्तावत्कालमभावात्।

अथ सरलायां जीवन्मुक्त्युपपत्तिः।

तच्च=वह स्वप्रकाशचिदभिन्नसुख जीवन्मुक्तोंको अपने अनुभवसे सिद्ध है। और जीवन्मुक्त तो तत्त्वज्ञानसे निवृत्त होगई है अविद्या जिसमें एवम्भूत हुआभी अनुवृत्त है देहादिका प्रतिभास जिसको एवम्भूत है। नचेति। तत्त्वज्ञानसे अविद्याका नाश होनेपर शीघ्र शरीरके पातकी आपत्ति है; नच=यह आपत्ति नहीं है, क्यों? निवृत्त हुआहै सर्पभ्रम जिसमें ऐसा जो पुरुष उस पुरुषकोभी संस्कारसे भयकम्पकी अनुवृत्ति जैसे होती है और दण्डसंयोगका नाश होनेपरभी जैसे चक्रका भ्रमण होता है तैसे अविद्याकी निवृत्ति होनेपरभी संस्कारकी अनुवृत्तिसे तत्कार्य्य=अविद्याकार्य्यकी अनुवृत्तिका सम्भव होनेसे। नचेति। क्रिया तथा ज्ञान इन दोनोंका ही संस्कार होता है इन्होंसे भिन्नका नहीं, इति नच वाच्यम्; क्यों? निकाल दिये हैं पुष्प जिसमेंसे ऐसी जो सम्पुटिका है उस सम्पुटिकामें पुष्पसंस्कारके देखनेसे; विमत, नाश, संस्कारसे व्याप्त है; संस्कारनाशभेदविशिष्टनाशत्व होनेसे ज्ञाननाशवत्, इस अनुमानसेभी और संस्कार कार्य्य हुआभी ध्वंसकी तरह निरुपादानक है और अविद्याकी तरह शुद्धात्माश्रित है, अतः अविद्यासापेक्ष नहीं। नचेति। जीवन्मुक्त्यवस्थामें भावकार्य्य अध्यस्तरूप जो संस्कार तथा देहादि और संस्कारदेहादिके हेतु जो प्रारब्ध कर्मादि उन सर्वकी स्थितिके लिए तिन्होंका उपादान जो अज्ञान उस अज्ञानकी अनुवृत्तिका आपात है, इति नच वाच्यम्; क्यों? विनश्यदवस्थकी समवायिकारणके विना स्थिति देखनेसे। समावायिके विना क्षणमात्रस्थिति होनेपर बहुक्षण तक कैसे स्थिति है, इति नच वाच्यम्; क्यों? उपपादकके होनेपर क्षणगणकल्पनाको अप्रयोजकत्व होनेसे। तत्र। समवायिके विना स्थितिकालमें समसमयस्य=कार्यनाशसे पूर्ववृत्ति समवायिनाशको अजनकत्वात्=कार्य्यनाशका अजनकत्व होनेसे; अत्र तु=अविद्यानाशस्थलमें तो प्रतिबन्धकाभावसहकृत=भुज्यमानकर्माभावसहकृत हेतोः=अविद्याद्युपादाननाशका-भुज्यमानकर्माभावसहकृताविद्याद्युपादाननाशका तावत्काल अभाव होनेसे तावत्कालस्थिति है।

अतएव—पूर्वज्ञानानिवृत्तस्याध्यस्तस्य तदनधिकविषयेण कथं निवृत्तिरिति—निरस्तम्, प्रतिबन्धकाभावसहकारासहकाराभ्यां विशेषात्। जीवन्मुक्तिदशायामानन्दस्फूर्त्यापादानमिष्टमेव; तत्त्वे ज्ञाते द्विचन्द्रादिवद्दोषाद्बाधितानुवृत्तिसंभवाच्च। नच तत्रेवात्र ज्ञानानिवर्त्यदोषाभावेन वैषम्यम्; यावत्प्रतिबन्धकसत्त्वं ज्ञानानिवर्त्यस्य दोषस्यात्रापि संभवात्, सर्वज्ञानानिवर्त्यस्य तस्य कुत्राप्यसंप्रतिपत्तेः। तदुक्तं नहि जात्यैव कश्चिद्दोषोऽस्तीति। यद्वा—अविद्यालेशानुवृत्त्या देहाद्यनुवृत्तिः। ननु लेशो नावयवः अज्ञानस्य निरवयवत्वात्। अतएव अविद्यादग्धपटन्यायेन तावत्तिष्ठतीत्यपि निरस्तम्; निरवयवे एतन्न्यायासम्भवात् इति चेन्न; आकारस्यैव लेशशब्दार्थत्वात् 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप

ईयत' इत्यादिश्रुत्या अविद्याया अनेकाकारत्वावगमात्। आकारिनिवृत्तावप्याकारस्यानुवृत्तिर्व्यक्तिनिवृत्तावपि जातेरिव ।

अतएवेति=पूर्वज्ञानसे अनिवृत्त जो अध्यस्त है उस अध्यस्तकी पूर्वज्ञानसे अनधिकविषयकज्ञानसे कैसे निवृत्ति होगी, यह कथन निरस्त हुआ, अतएवशब्दका अर्थ दिखलाते हैं—प्रतिबन्धकाभावके सहकारसे तथा असहकारसे विशेष होनेसे=पूर्वमें प्रतिबन्धकाभावका सहकार नहीं है और उत्तरज्ञानमें प्रतिबन्धकाभावका सहकार है, अतः पूर्वज्ञानसे अनिवृत्तभी अध्यस्त उत्तरज्ञानसे निवृत्त होता है। और जीवन्मुक्तिदशामें आनन्दकी स्फूर्तिका जो आपादान है वह तो इष्ट ही है; और तत्त्वके ज्ञात होनेपर द्विचन्द्रादिवत् बाधितानुवृत्तिका सम्भव होनेसेभी। नचेति। तत्रेव=द्विचन्द्रभ्रमस्थलकी तरह अत्र=संसारभ्रमस्थलमें तत्त्वज्ञानसे अनिवर्त्य दोषके अभावसे=द्विचन्द्रभ्रमस्थलमें जैसे चन्द्रतत्त्वज्ञानसे अनिवर्त्य अङ्गुल्यवष्टम्भरूप दोष है तैसे प्रकृतमें तत्त्वज्ञानसे अनिवर्त्य कोई दोष नहीं है, अतः बाधितानुवृत्ति नहीं बन सकती है, फलतः दोनोंका वैषम्य है; नच=वैषम्य नहीं है, क्यों? यावत्प्रतिबन्धकका सत्त्व है तावत् ज्ञानसे अनिवर्त्यदोषका प्रकृतमेंभी सम्भव होनेसे। और सर्वज्ञानसे अनिवर्त्य दोषकी कहींपरभी सम्प्रतिपत्ति न होनेसे सो कहा है—जातिसे ही कोई पदार्थ दोष नहीं है=कार्यानुसारपदार्थमें दोषता कल्पित की जाती है, दोषत्वनामक किसी धर्मविशेषसे घटादिवत् दोषकी प्रतीति नहीं होती है, अतएव प्रारब्धकर्मादिकोभी दोषता बन सकती है। अथवा अविद्याके लेशकी अनुवृत्तिसे देहादिकी अनुवृत्ति होती है। शङ्कते नन्विति=अविद्याका अवयवरूप लेशपदार्थ नहीं हो सकता है, क्यों अज्ञानको निरवयवत्व होनेसे; अतएव—अविद्या दग्धपटन्यायसे जीवन्मुक्तिपर्य्यन्त स्थित रहती है, यह कथनभी खण्डित हुआ, निरवयवमें इस न्यायके असम्भवसे, इति चेन्न; क्यों? आकारको ही लेशशब्दार्थता होनेसे 'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (बृ०।२।५।१९) इत्यादि श्रुतिओंसे अविद्याके अनेक आकारत्वका अवगम होनेसे। और आकारिकी निवृत्ति होनेपरभी आकारकी अनुवृत्ति होती है, जैसे कि व्यक्तिकी निवृत्ति होनेपरभी जातिकी अनुवृत्ति होती है।

ननु—कोऽयमाकारो नाम जातिर्वा शक्त्यादिरूपो धर्मो वा, सुवर्णकुण्डलादिवदवस्थाविशेषो वा। नाद्यौ; तयोर्देहादिभ्रमोपादानत्वे अविद्यात्वापातात्, अनुपादानत्वे च उपादानान्तराभावेन देहादिभ्रमोत्पत्त्ययोगात् आत्मान्यत्वेन ज्ञाननिवर्त्यत्वेन चाविद्यातत्कार्यान्यतरत्वावश्यंभावेनाज्ञाने निवृत्ते स्थित्ययोगाच्च। अतएव न तृतीयः अवस्थावन्तं विना अवस्थायाः स्थित्ययोगादिति—चेन्न; अनेकशक्तिमदविद्यायाः प्रपञ्चे पारमार्थिकत्वादिभ्रमहेतुशक्तेः प्रपञ्चे अर्थक्रियासमर्थत्वसम्पादकशक्तेश्च प्रारब्धकर्मसमकालीनतत्त्वसाक्षात्कारेण निवृत्तावपि अपरोक्षप्रतिभासयोग्यार्थाभासजनिकायाः शक्तेरनुवृत्तेः तद्वती अविद्यापि तिष्ठत्येवेति नोक्तदोषावकाशः,। नचाविद्यायां कथं मुक्त इति व्यप-

देशः ? शक्तिनाशमात्रात्। अतएव समये सर्वशक्तिमदज्ञाननाशः तज्जातीयेनाप्रतिरुद्धेन प्रत्ययेन। तथाच श्रुतिः 'तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावात् भूयश्चान्ते विश्वमाया-निवृत्तिरिति।'—

शङ्कते नन्विति। यह आकार नामक क्या पदार्थ है जातिका नाम आकार है—जाति स्वरूप आकार है या शक्त्यादिरूप धर्म हैं, या सुवर्णकी जैसे कुण्डलादि अवस्थायें होती हैं तैसे आकारभी अवस्थाविशेषस्वरूप है, नाद्यौ=प्रथम तथा द्वितीय ये दोनों पक्ष नहीं बन सकते हैं, क्यों ? तयोः=प्रथमोक्त दोनों धर्मोंको देहादिभ्रमका उपादानत्व होनेपर अविद्यात्वके आपातसे=देहादिभ्रमका उपादानत्व होनेपर उक्तधर्मोंमें अविद्यात्व हो जायगा। अनुपादान-त्वेच=उक्त दोनों धर्मोंको उपादानत्व न होनेपर अन्य उपादानके अभावसे देहादिभ्रमकी उत्पत्तिके अयोगसे। और आत्मभेदविशिष्टत्वेन तथा ज्ञाननिवर्त्यत्वेन अविद्या तथा तत्कार्य= अविद्याप्रयुक्त एतदुभयान्यतरत्वका अवश्यम्भाव होनेसे अज्ञानके निवृत्त होनेपर स्थितिके अयोगसेभी। अतएव तृतीयपक्षभी नहीं बन सकता है, अतएव=शङ्काका स्फोरण करते हैं अवस्थावान्के विना अवस्थाकी स्थितिके अयोगसे, इति चेन्न; क्यों ? अनेकशक्तिमती जो अविद्या है उस अविद्याकी प्रपञ्चधर्मिक जो पारमार्थिकत्वादिप्रकारभ्रम तादृश भ्रमकी हेतुभूत जो शक्ति उस शक्तिकी तथा प्रपञ्चमें रहनेवाला जो अर्थक्रियासमर्थत्व उस समर्थत्वकी सम्पादिका जो शक्ति उस शक्तिकी प्रारब्धकर्मसमानकालीन जो तत्त्वसाक्षात्कार उस साक्षा-त्कारसे निवृत्ति होनेपरभी अपरोक्षप्रतिभासयोग्य जो अर्थाभास तादृशार्थाभासकी जनिका जो शक्ति है, उस शक्तिकी अनुवृत्तिसे तद्वती=अपरोक्ष-प्रतिभासयोग्यार्थजननानुकूलशक्तिमती अविद्याभी स्थित ही है, अतः उक्त दोषोंको अवकाश नहीं है। नचेति=अविद्याके रहते हुए 'मुक्तः' इत्याकारक व्यपदेश कैसे होगा; नच=ऐसी शङ्का नहीं करना; क्यों ? प्रथमोक्त दो शक्तियोंके नाशमात्रसे उक्त व्यपदेश होनेसे। अतएव समये=विदेहमुक्त्यव्यवहितपूर्वकालमें सर्वशक्तिमदज्ञानका नाश- तज्जातीयेन=प्रारब्धकर्मसमानकालीनसाक्षात्कारजातीय जो अप्रति-रुद्धप्रत्यय उस प्रत्ययसे होता है। तथाच इस अर्थको कहनेवाली श्रुति है। 'तस्याभिध्यानाद् योजनात् तत्त्वभावात् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः' (श्वे० १।१०) तस्य=उसब्रह्मके अभि-ध्यानसे और योजनात्=श्रवणादिसे और तत्त्वभावात्=तत्त्वसाक्षात्कारसे विश्वमायानिवृत्तिः= उक्तशक्तिरूपविश्वमायाकी निवृत्ति होती है और अन्ते=प्रारब्ध भोगकी समाप्ति होनेपर अवशिष्टशक्तिमदज्ञान और तत्प्रयुक्त देहादि एतदुभयरूप जो विश्वमाया उसकी भूयः=पुनः निवृत्ति होती है।

नच—भूय इत्यस्य योजनादित्यनेनान्वयात् न लेशानुवृत्तावस्याः श्रुतेर्मानतेति—वाच्यम्; विशेषणान्वयापेक्षया विशेषान्वयस्याभ्यर्हितत्वात् तत्त्वभावादित्यनेन व्यव-धानात् अन्त इति पदवैयर्थ्याच्च विपरीतयोजनस्यासङ्गतेः। नच—लेशस्थितौ कर्पानुवृत्तिः

तदनुवृत्तौ च ज्ञानप्रतिबन्धेन लेशस्थितिरिति-अन्योन्याश्रय इति-वाच्यम् ; न तावत् ज्ञप्तौ 'भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिरि'त्यादिश्रुतेरेव लेशानुवृत्तेरवगतत्वात् , नापि स्थितौ एककालीनत्वेन दोषाभावात् । यद्वा-अज्ञानस्य सूक्ष्मावस्था लेशः । यथा तस्मात् फले प्रवृत्तस्य यागादेः शक्तिमात्रकम् , ''उत्पत्तावपि पश्वादेरपूर्वं न ततः पृथक् ॥' इति वार्तिकेन यागे गतेऽपि यागसूक्ष्मावस्थारूपमपूर्वं यागे साधनतानिर्वाहकमङ्गीक्रियते तथा अज्ञाने गतेऽपि तत्सूक्ष्मावस्थारूपो लेशो देहादिप्रतीत्यनुकूलः स्वीक्रियते ; स्वर्गजनकताग्राहकश्रुतेरिवात्रापि जीवन्मुक्तिश्रुतेस्तादृगर्थस्वीकारात् तस्मादविद्यालेशानुवृत्त्या जीवन्मुक्तिरुपपन्नतरा ।

इत्यद्वैतसिद्धौ जीवन्मुक्त्युपपत्तिः ।

नचेति । 'भूयः' इसका 'योजनात्' इसके साथ अन्वय होनेसे लेशानुवृत्तिमें इस श्रुतिकी प्रमाणता नहीं है; इति नच वाच्यम्; क्यों विशेषणके साथ अन्वयकी अपेक्षा विशेष्यान्वयको अभ्यर्हितत्व होनेसे और 'तत्त्वभावात्' इससे 'योजनात्' का व्यवधान होनेसे । और 'अन्ते' इसपदके वैयर्थ्यसे विपरीतकी असङ्गतिसे । नचेति । अविद्यालेशकी स्थिति होनेपर कर्मकी अनुवृत्ति है, और तदनुवृत्तौ च=कर्मकी अनुवृत्ति होनेपर ज्ञानके प्रतिबन्धसे लेशकी स्थिति है । अतः अन्योन्याश्रय है इति नच वाच्यम्, क्यों ज्ञप्तिमें तो अन्योन्याश्रय नहीं हो सकता है, 'भूयश्चान्ते विश्वमाया निवृत्तिः' (श्वे०।१।१०) इत्यादि श्रुतिसे ही लेशानुवृत्तिको अवगतत्व होनेसे, स्थितिमेंभी अन्योन्याश्रय नहीं है=उभयको एककालीनत्व होनेसे दोषके अभावसे=अन्योन्यस्थितिको अन्योन्यनिष्ठत्व या अन्योन्यस्थितिको अन्योन्याधीनत्व होनेपर दोष है वह दोष प्रकृतमें नहीं है यह भाव है । अथवा लेशशब्दार्थ अज्ञानकी सूक्ष्मावस्था है । जैसे फलमें प्रवृत्त जो यागादिक तादृश यागादिनिष्ठ फलानुकूल अपूर्वनामकशक्ति कल्पित करते हैं और पश्वादिकी उत्पत्तिमेंभी वह अपूर्वशक्तिही कर्मका व्यापार है, उससे पृथक् नहीं इस वार्तिकसे यागके समाप्त होजानेपरभी यागनिष्ठसाधनताका निर्वाहक यागकी सूक्ष्मावस्था अपूर्व अङ्गीकृत होता है, तैसे अज्ञानके निवृत्त होनेपरभी तत्सूक्ष्मावस्था=अज्ञानकी सूक्ष्मावस्थारूप और देहादिप्रतीत्यनुकूल लेश स्वीकृत होता है । यागादिनिष्ठस्वर्गजनकताग्राहकश्रुतिकी तरह यहाँपरभी जीवन्मुक्तिश्रुतिसे तादृशार्थका स्वीकार होनेसे । तस्मात् अविद्याके लेशकी अनुवृत्तिसे जीवन्मुक्ति उपपन्नतरा है ॥

इति सरलायां जीवन्मुक्त्युपपत्तिः ॥

अथ मुक्तौ तारतम्यभङ्गः ।

यत्तु—परमतेऽपरोक्षज्ञानिनोऽपि स्वयोग्यपरमानन्दहेतुपरमकाष्ठापन्नभक्त्यभावे तत्साध्यस्य मोचकस्य ईश्वरप्रसादस्याभावेन प्रारब्धकर्मणा संसारानुवृत्तौ जीवन्मुक्तिः

तद्भावे तु प्रसादस्यापि भावेन निशेषदुःखनिवृत्तिविशिष्टस्वतो नीचोच्चभावापन्नस्वरूपानन्दाविर्भावरूपा मुक्तिः इति, तन्न; 'तावदेवास्य चिरमि'त्यादिश्रुत्या अस्योत्पन्नतत्त्वसाक्षात्कारस्य प्रारब्धकर्मक्षयमात्रमपेक्षणीयं कैवल्यसम्पत्त्यर्थमिति प्रतिपादनेन ईश्वरप्रसादापेक्षाया वक्तुमशक्यत्वात् स्मृतिपुराणादीनां श्रुतिविरोधेन स्तुतिपरत्वात् 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा निवृणुते तनूं स्वामि'ति भक्तिजन्येश्वरप्रसादस्यापि तत्साक्षात्कारस्वरूप एवोपयोगस्य बोधितत्वेन स्मृत्यादीनामपि तदनुसारित्वात् वैपरीत्येन साध्यसाधनभावे मानाभावात्। नच—प्रारब्धकर्मक्षये प्रसादविनियोगः, प्रसादनिरपेक्षभोगादेव तत्सिद्धेः, नापि मुक्तावुच्चनीचभावः; तस्य द्वितीयसापेक्षत्वेन तदा असंभवात् 'परमं साम्यमुपैति' इति साम्यश्रुतेश्च। सातिशयत्वे मुक्ते स्वर्गादिवदनित्यत्वं स्यात् अधिकदर्शने दुःखद्वेषादिकश्च स्यात्।

अथ सरलायां मुक्तौ तारतम्यभङ्गः।

यत्त्विति। परमते=प्रकृतद्वैतीके मतमें अपरोक्षज्ञानीकोभी स्वयोग्य और परमानन्दकी हेतु तथा परमकाष्ठापन्न जो भक्ति तादृश भक्तिका अभाव होनेपर तत्साध्यस्य=भक्तिसाध्य तथा मोचक जो ईश्वरका प्रसाद उस प्रसादके अभावसे प्रारब्धकर्मसे संसारकी अनुवृत्ति होनेपर जीवन्मुक्ति होती है, तद्भावे तु=उक्तविशेषणत्रयविशिष्ट भक्तिका सद्भाव होनेपर तो ईश्वरप्रसादकेभी सद्भावसे निःशेष दुःखोंकी जो निवृत्ति तादृशनिवृत्तिविशिष्ट स्वतो नीचोच्चभावापन्न जो स्वरूपानन्द तादृश स्वरूपानन्दका आविर्भावरूपा मुक्ति होती है, इति यत् तत् तु न; क्यों ? 'तावदेवास्य चिरम्' (छा०।६।१४।२) इत्यादिश्रुतिसे इस उत्पन्नतत्त्वसाक्षात्कार पुरुषको प्रारब्धकर्मका क्षयमात्र अपेक्षणीय है कैवल्यसम्पत्तिकेलिए इस प्रतिपादनसे ईश्वरप्रसादकी अपेक्षाको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे। और श्रुतिके साथ विरोध होनेसे त्वदुपन्यस्तस्मृतिपुराणादिको स्तुतिपरत्व होनेसे। 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्' (मुं०।३।२।१३) इससे भक्तिजन्येश्वरके प्रासादकेभी तत्साक्षात्कारस्वरूपमें ही उपयोगको बोधितत्व होनेसे स्मृत्यादिकोंकोभी श्रुत्यनुसारित्व होनेसे श्रुतिबोधितसाध्यसाधनभावसे विपरीत साध्यसाधनभावमें मानके अभावसे। प्रारब्धकर्मका जो क्षय है उस क्षयमें ईश्वरप्रसादका फल है, नच=प्रारब्धक्षयमें विनियोग नहीं है, क्यों ? प्रसादनिरपेक्षभोगसे ही तत्सिद्धेः= प्रारब्धकर्मके क्षयकी सिद्धिसे। और मुक्तिमें उच्चनीचभावभी नहीं है—तस्य=उक्तभावको द्वितीयसापेक्षत्व होनेसे तदा=निखिलद्वैतशून्यमुक्तिमें उक्तभावके अभावसे। 'परमं साम्यमुपैति' (मुं०।३।१।३) इस साम्यश्रुतिसेभी। और सातिशयत्व होनेपर मुक्तिका स्वर्गादिवत् अनित्यत्व होगा, और अपनेसे अधिकके देखनेपर दुःखद्वेषादिकभी होंगे।

ननु—मुक्तौ अतारतम्यं किं भेदाभावात्, उत सत्यपि भेदे तत्साम्यात्, नाद्यः; श्रुत्या भेदसिद्धेः। नान्त्यः; साम्यं किं जीवेश्वरयोः उत जीवानामेव। नाद्यः तयोर्विभुत्वाणु-

त्वशेषशेषिभावस्वातन्त्र्यपारतन्त्र्यादिना तारतम्यात्, अनेकेश्वरापत्त्या जगत्प्रवृत्त्ययोगात् तद्द्वयतारतम्यप्रतिपादकस्मृतिभिः 'जगद्व्यापारवर्जम्' इत्यादिसूत्रैरुत्कृष्टत्वनिकृष्टत्वग्राहकानुमानैर्विरोधाच्च । नान्त्यः; जीवान्प्रति शेषिणो लक्ष्मीतत्त्वात् तान् प्रति नियामकाद्विष्वक्सेनादितश्च जीवानां निकृष्टत्वात् 'सैषानन्दस्ये'त्यादितैत्तिरीयादिश्रुतिभिः 'मुक्तात्मनामपि सिद्धानां नारायणपरायणः । सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने' इत्यादिस्मृतिभिः 'वृद्धिह्रासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामञ्जस्यादेवमि'त्यादिसूत्रैरुक्तश्रुतितर्कानुगृहीतैरनुमानैर्विरोधाच्चेति–चेन्न; भेदाभावेन तारतम्यासिद्धेः । यथाच श्रुत्यादेर्न भेदपरत्वं तथा प्रागेव गतम् ।

शङ्कते नन्विति । मुक्तिमें जो अतारतम्य आप कहते हैं वह क्या भेदाभावसे है, अथवा भेदके होनेपरभी ब्रह्मके साम्यसे अतारतम्य है । नाद्यः=प्रथमपक्ष समीचीन नहीं क्यों ? श्रुतिसे भेदकी सिद्धि होनेसे । नान्त्यः=अन्तिमपक्षभी अच्छा नहीं क्यों ? क्या=जीव तथा ईश्वर इन दोनोंका आपसमें साम्य है, या जीवोंका ही परस्पर साम्य है । नाद्यः=प्रथमपक्ष नहीं बन सकता है क्यों ? तयोः=जीव तथा ईश्वर इन दोनोंमें विभुत्वाणुत्वसे और शेषशेषिभावसे तथा स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्यादिसे तारतम्य होनेसे और तारतम्य न होनेपर अनेक ईश्वरकी आपत्तिसे जगत्में प्रवृत्तिके अयोगसे तद्द्वय=जीव तथा ईश एतद्द्वयके तारतम्यकी प्रतिपादिका जो स्मृतियाँ हैं, उन स्मृतिओंके साथ और 'जगद्व्यापारवर्जम्' (वे० ४।४।१८) इत्यादि सूत्रोंके साथ और उत्कृष्टत्वनिकृष्टत्वसाधक जो मुक्तभोगः ईश्वरभोगान्निकृष्टः जीवभोगत्वात् संसारिभोगवत् इत्यादिरूप अनुमान हैं उन अनुमानोंके साथ विरोध होनेसेभी । नान्त्यः=जीवोंका ही परस्पर साम्य है, यह अन्त्यपक्षभी नहीं बन सकता है, क्यों ? जीवोंके प्रति शेषी जो लक्ष्मीतत्व है जो कि जीवोंके प्रति नियामक है, उससे तथा विष्वक्सेनादिसे जीवोंको निकृष्टत्व होनेसे । 'सैषानन्दस्य' (तै० २।८।१) इत्यादि तैत्तिरीयादिश्रुतिओंसे और मुक्तसिद्धोंमेंभी नारायणपरायणप्रशान्तात्मा तो कोटिओंमें सुदुर्लभ है, हे महामुने' इत्यादि स्मृतिओंसे और 'वृद्धिह्रासभाक्त्वमन्तर्भावात् उभयसामञ्जस्यादेवम्' (वे० ३।२।२०) इत्यादि सूत्रोंके साथ और उक्त श्रुतितर्कानुगृहीत,–अस्मदादिमुक्तभोगः मुक्तचतुर्मुखभोगान्निकृष्टः अस्मदादिभोगत्वात्, संसारस्थास्मदादिभोगवत्, इत्याद्यनुमानोंसे विरोध होनेसेभी इति चेन्न; क्यों ? भेदका अभाव होनेपर तारतम्यकी असिद्धिसे । और जिस रीतिसे श्रुत्यादिको भेदपरत्व नहीं है तिस रीतिसे पूर्वमें ही कहा जा चुका है ।

यत्तु द्वितीयपक्षमाशङ्क्य दूषणं, तदकाण्डताण्डवम्; भेदसत्त्वे अभेदात्मकपरमसाम्याभावात् तत्सत्त्वे, भेदस्यैवाभावात्, किंच तारतम्याभिधानं परममुक्तौ उत ब्रह्मलोकादिवासरूपापरममुक्तौ वा, नाद्यः; 'एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृतेस्तदवस्थावधृते'रिति तृतीयान्त्याधिकरणे 'ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनादि'त्येतत्सूत्रोक्तज्ञान-

गतैहिकत्वामुष्मिकत्वरूपविशेषवन्मुक्तावपि तारतम्यमाशङ्क्य निषेधात्। द्वितीये त्विष्टापत्तिः। यत्तु–मुक्तजीवभोगः ईश्वरभोगान्निकृष्टः जीवभोगत्वात् संसारिभोगवत्। एवं जीवज्ञानादिकमपि पक्षीकृत्य प्रयोग ऊहनीयः। ईश्वरानन्दः जीवानन्दादुत्कृष्टः तन्नियामकानन्दत्वात्। यदेवं तदेवं यथा सेवकानन्दात् सेव्यानन्दः। ईश्वरः जीवस्वभावानन्दादित उत्कृष्टस्वभावानन्दादिमान् तत्प्रेप्सुत्वे सति तत्र शक्तत्वात्, यो यत्प्रेप्सुत्वे सति यत्र शक्तः स तद्वान् यथा सम्मतः इत्यादीनि तारतम्यसाधकानि इति तन्न;।

और जो द्वितीयपक्षकी आशङ्का कर दूषण दिया है वह अकाण्डताण्डव है–भेदका सत्त्व होनेपर अभेदात्मक परमसाम्यके अभावसे तत्सत्त्वे=अभेदात्मकपरमसाम्यका सत्त्व होनेपर भेदके ही अभावसे। किञ्च तारतम्यका कथन परममुक्तिमें है या ब्रह्मलोकादिमें वासरूप अपरम मुक्तिमें; नाद्यः=प्रथमपक्ष ठीक नहीं, क्यों? 'एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृतेस्तदवस्थाधृतेः' (वे० ३।४।५२) इस तृतीयाध्यायके अन्तिमाधिकरणमें 'ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात्' (वे० ३।४।५१) एतत्सूत्रोक्त जो ज्ञानगत ऐहिकआमुष्मिकरूपविशेष तादृश विशेषवन्मुक्तिमें भी तारतम्यकी आशङ्का कर निषेध होनेसे। और द्वितीयपक्षमें तो इष्टापत्ति है। यत्त्विति=मुक्तजीवका भोग ईश्वरके भोगसे निकृष्ट है, जीवभोगत्व होनेसे संसारिभोगवत्। इस रीतिसे जीवके ज्ञानादिकोभी पक्ष बनाकर प्रयोग कल्पनीय है। ईश्वरका आनन्द जीवके आनन्दसे उत्कृष्ट है, तन्नियामकका आनन्दत्व होनेसे जो तन्नियामकानन्दत्ववाला है वह तन्नियम्यानन्दसे उत्कृष्टत्ववाला है, जैसे सेवकानन्दसे सेव्यानन्द; ईश्वर, जीवस्वभावानन्दादिसे उत्कृष्टस्वभाव जो आनन्दादि तत् वाला है तत्प्रेप्सुत्व होकर तत्र शक्तत्व होनेसे तत्प्रेप्सुत्वविशिष्टतच्छक्तत्व होनेसे। जो यद्विषयकप्रेक्षावाला होकर यद्विषयकशक्त होता है वह तद्वान् होता है सम्मतवत् इत्यादिक अनुमान तारतम्यके साधक हैं इति यत् तत् तु न; क्यों?

आद्ये मुक्तस्य ब्रह्मरूपतया उपाधिकृतजीवत्वाभावेनाश्रयासिद्धेः ईश्वरत्वाभावेन साध्याप्रसिद्धेः स्वरूपासिद्धेश्च। द्वितीयाद्यनुमाने जीवेश्वरविभागकाले तारतम्यसाधनं चेत्सिद्धसाधनम् तद्भिन्ने काले चेत् पूर्वदोषानुवृत्तिः। सैषानन्दस्येत्यादिश्रुतिभिः मानुषानन्दमारभ्य ब्रह्मानन्दपर्य्यन्तेषु उत्तरोत्तरशतगुणत्वरूपतारतम्यमुपाधितारतम्येन वदन्तीभिर्निरुपाधिके स्वरूपानन्दे तारतम्यस्य वक्तुमशक्यत्वात्। एतेन–प्रकृता बन्धनिवृत्तिः स्वसजातीयबन्धनिवृत्त्याश्रयप्रतियोगिकतारतम्यवन्निष्ठा बन्धनिवृत्तित्वात् निगलबन्धनिवृत्तिवदिति–निरस्तम्; तारतम्यस्य गुणगतजातित्वेन बन्धनिवृत्त्याश्रयात्मनि वक्तुमशक्यत्वात्। अतएव–निवृत्तिगततारतम्यसाधनमपि–अपास्तम्; निवृत्तेर्निरतिशयत्वादानन्दस्य स्वरूपतया उभयवादिसिद्धत्वेन गुणत्वाभावेन तत्रापि तस्य वक्तुमशक्यत्वात्। एतेन स्वरूपसुखानां प्रत्येकमेकत्वेनाणुत्वेन च संख्यापरिमाणकृतवैषम्याभावेऽपि जलसुधापानजन्यसुखयोरिव मधुरमधुरतरत्वादिवच्च स्वरूपकृतवैषम्यं मुक्तावितिति–निरस्तम्;

वैषयिकसुखे साधनतारतम्यप्रयुक्ततारतम्येऽपि स्वरूपानन्दे तदभावाच्च। नच सालोक्यादिमुक्तिः सायुज्यादिमुक्तितोऽपकृष्टेति प्रसिद्धिविरोधः; परापरमुक्तिरूपतया तदुपपत्तेः। सायुज्यादिमुक्तावुत्कृष्टत्वव्यपदेशोऽपकृष्टत्वाभावमात्रेण।

प्रथमानुमानमें मुक्तको ब्रह्मरूपता होनेसे उपाधिकृत जीवत्वके अभावसे आश्रयासिद्धि होनेसे, ईश्वरके अभावसे साध्यकी अप्रसिद्धिसे और स्वरूपासिद्धिसेभी और द्वितीयानुमानमें जीवेश्वरके विभागकालमें तारतम्यका साधन होनेपर सिद्धसाधन है, और उक्तकालसे भिन्न कालमें यदि तारतम्यका साधन है तो पूर्व दोषोंकी अनिवृत्ति है। और मानुषानन्दका आरम्भ कर ब्रह्मानन्दपर्य्यन्तोंमें उत्तरोत्तरशतगुणरूपतारतम्यको उपाधितारतम्यसे कहनेवाली जो 'सैषानन्दस्य' (तै० २।८।१) इत्यादि श्रुतियाँ हैं उन श्रुतिओंसे निरुपाधिकस्वरूपानन्दमें तारतम्यको कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे एतेनेति। प्रकृत बन्धकी निवृत्ति स्वसजातीय जो बन्धकी निवृत्ति तादृशनिवृत्त्याश्रयप्रतियोगिक जो तारतम्य तादृश तारतम्यवन्निष्ठा है, बन्धनिवृत्तित्व होनेसे निगलबन्धनिवृत्तिवत् यह कथन निरस्त हुआ—तारतम्यको गुणगतजातित्व होनेसे बन्धनिवृत्तिका आश्रय जो आत्मा तादृश आत्मामें कहनेके लिए अशक्यत्व होनेसे, अतएव निवृत्तिगततारतम्यसाधनभी अपास्त हुआ, निवृत्तिको निरतिशयत्व होनेसे और आनन्दको स्वरूपत्वेन उभयवादिसिद्धत्व होनेसे गुणत्वके अभावसे तत्रापि=आनन्दमें भी तस्य=तारतम्यको कहनेकेलिए अशक्यत्व होनेसे एतेनेति। स्वरूपसुखोंमें प्रत्येकको एकत्व होनेसे और अणुत्व होनेसे संख्यापरिमाणकृत वैषम्यके न होनेपरभी जलपानजन्य और सुधापानजन्य सुखोंकी नाईं और मधुरमधुरतरत्वादिवत् स्वरूपकृत वैषम्य है, यह कथन निरस्त हुआ—वैषयिकसुखमें साधनतारतम्यप्रयुक्ततारतम्य होनेपरभी स्वरूपानन्दमें तारतम्यके अभावसे। सालोक्यादिमुक्ति सायुज्यादिमुक्तिसे अपकृष्ट है, इस प्रसिद्धिके साथ विरोध है, नच=विरोध नहीं है, क्यों? परापरमुक्तिरूपत्वेन इसकी उपपत्ति होनेसे। सायुज्यादिमुक्तिमें उत्कृष्टत्वका कथन अपकृष्टत्वके अभावमात्रसे है।

ननु—सायुज्यं नैक्यम्। 'चन्द्रमसः सायुज्यꣳ सलोकतामाप्नोती'त्यादिश्रुत्या सत्यपि भेदे सायुज्योक्तेः 'सयुज्यः परमात्मानं प्रविश्य च बहिर्गतः' इत्यादौ सयुजां प्रवेशमात्रोक्तेश्च सयुजो भावः सायुज्यमिति युजशब्देन सम्बन्धस्यैवोक्तेः 'सालोक्यमपि सामीप्यं सारूप्यं योग एव च॥' इति स्मृतौ सायुज्ये सम्बन्धवाचकयोगशब्दप्रयोगाच्च, तस्मात्सायुज्यं नाम क्षीरनीरवत् अन्यदेहाविष्टग्रहदेवतादिवच्च संश्लेषमात्रं, नत्वैक्यमिति—चेत्, न, व्यापकेनेश्वरेण संश्लेषस्य नित्यसिद्धत्वेनापुमर्थत्वात्। नचैतल्लोकस्थितस्य जीवस्य लोकान्तरस्थितालौकिकशरीरावच्छिन्नेश्वरेण संश्लेषः साध्यः; 'अत्र ब्रह्म समश्नुत' इति श्रुतेः। उत्क्रमणगमनादिसाध्यब्रह्मलोकावाप्तिवदुपाध्यवच्छिन्नजीवस्यानवच्छिन्नब्रह्माभेदरूपपरममुक्तेः पारलौकिकफलत्वाभावात् 'ब्रह्मविदाप्नोति परमि'त्यादौ अवाप्ते-

ब्रह्मरूपत्ववत् सायुज्यस्यापि तद्रूपताया अङ्गीकरणीयत्वाच्च 'चन्द्रमसः सायुज्यमि'त्यादौ एकोपाध्यवच्छिन्नस्योपाध्यन्तरावच्छिन्नेन ऐक्यानुपपत्तिवदत्रानुपपत्तेरभावात् प्रसिद्धार्थस्वीकारे बाधकस्य उक्तत्वाच्च, सायुज्यशब्दस्तावद्विभक्तत्वाभावाभिप्रायकः।

शङ्कते नन्विति। सायुज्य ऐक्यस्वरूप तो नहीं है, 'चन्द्रमसः सायुज्यं सलोकतामाप्नोति' (महाना०२५।१) इत्यादि श्रुतिसे भेदके होनेपरभी सायुज्यकी उक्ति होनेसे, सयुज् लोग परमात्माके प्रति प्रविष्ट होकर बहिर्गत होते हैं इत्यादिमें सयुजोंके प्रवेशमात्रकी उक्तिसेभी। सयुज्के भावका नाम सायुज्य है। इस रीतिसे युज् शब्दसे सम्बन्धकी ही उक्ति होनेसे। चार प्रकारकी प्रायः पौराणिकी मुक्ति है,-सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, योगः=सायुज्य; इस स्मृतिमें सायुज्यमें सम्बन्ध वाचक जो योग शब्द उसके प्रयोगसेभी। तस्मात् नीरक्षीरकी नाईं और अन्यदेहप्रविष्टग्रहदेवतादिकी नाईं संश्लेषमात्र सायुज्य है, ऐक्य स्वरूप नहीं, इति चेन्न; क्यों? व्यापक ईश्वरके साथ संश्लेषको नित्यसिद्धता होनेसे अपुमर्थत्व है, अतः। नचेति। एतल्लोकस्थित जीवका लोकान्तरमें अवस्थित जो अलौकिकशरीरावच्छिन्न ईश्वर उस ईश्वरके साथ संश्लेष-सम्बन्धविशेष साध्य है, नच=यह साध्य नहीं हो सकता है, क्यों? 'अत्र ब्रह्म समश्नुते' (क० ६।१४) इस श्रुतिसे। उत्क्रमणगमनादिसे साध्य जो ब्रह्मलोककी प्राप्ति उस प्राप्तिमें जैसे पारलौकिक फलत्व रहता है तैसे उपाध्यवच्छिन्न जीवकी जो अनवच्छिन्न ब्रह्मके साथ अभेदरूपपरममुक्ति है, उस अभेदरूपपरममुक्तिमें पारलौकिक फलत्वके अभावसे ब्रह्मविदाप्नोति परम् (तै० २।१।१) इत्यादिमें जैसे अवाप्तिको ब्रह्मरूपत्व है, तैसे सायुज्यमेंभी ब्रह्मरूपताका अङ्गीकरणीयत्व होनेसे। और 'चन्द्रमसः सायुज्यम्' (महाना० २५।१) इत्यादिमें एकोपाध्यवच्छिन्नका उपाध्यन्तरावच्छिन्नके साथ जैसे ऐक्य अनुपपन्न है तैसे यहाँपर अनुपपत्तिके अभावसे और प्रसिद्धार्थस्वीकारमें बाधकको उक्तत्व होनेसे सायुज्यशब्द विभक्तत्वाभावाभिप्रायक है।

यच्च—उत्तरोत्तरं शतगुणानन्दप्रकाशकवाक्येषु प्रतिवाक्यं मुक्तावकामहतशब्दप्रयोगात् मानुषानन्दवत् अकामहतमुक्तानन्देऽपि तारतम्यमिति, तन्न; एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्तीति सर्वेषां लौकिकानन्दानां परमानन्दान्तर्भावाभिधानोपपत्तेः नतु तस्य तस्याकामहतस्य तावानेवानन्द इति। येन तत्रापि तारतम्यं कल्प्येत। तथाच 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान्' कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधी, त्यादिश्रुतेः 'स हि मुक्तोऽकामहत' इत्यादिब्रह्माण्डोक्तेश्च न विरोधः। ननु—एकस्यैव श्रोत्रियस्य सर्वत्र परामर्शे मानुषानन्दादिभ्यः सावधारणशतगुणितमनुष्यगन्धर्वाद्यनेकानन्दा एकस्मिन् विरुद्धाः भिन्नाश्चेदकामहतत्वादेरेकरूपतया श्रुतस्याव्यवस्थापकत्वादानन्दव्यवस्थायोगः। अथ व्यवस्थार्थं एतत्पदाकाम एतदितरपदकामश्च लक्ष्यते तदाऽश्रुतकल्पनाबाधश्च। नहीन्द्रादिपदे वा राजपदे वा निष्कामस्य भिक्षुकस्य इन्द्राद्यानन्दानुभवोस्ति

तस्माच्छ्रुत्या पूर्ववाक्येनामुक्तानां तारतम्यमुक्त्वा श्रोत्रियस्य चेत्यादिना 'यश्च श्रोत्रिय' इत्यादिना चोत्तरवाक्येन मुक्तस्य तदुच्यते इति-चेन्न; सर्वेषु वाक्येषु अकामहतस्य मुक्तस्यैकत्वेऽपि तदानन्दे सर्वानन्दानामन्तर्भावात् स एव तस्मिन् तस्मिन्नानन्दे वक्तव्ये परामृश्यते; तत्तदिन्द्रादिसाम्येन तस्य सर्वत्राभिधानोपपत्तेः 'अधिकं प्रविष्टं नतु तद्धानिरिति न्यायात् ।' साम्ये हि तत्सजातीयधर्मवत्त्वं तन्त्रम्, नतु तदितरधर्मानधिकरणत्वमपि गौरवात् ।

यच्चेति । उत्तरोत्तरशतगुण आनन्दप्रकाशक वाक्योंमें प्रतिवाक्य मुक्तिमें अकामहत शब्दका प्रयोग होनेसे मानुषानन्दादिकी तरह अकामहतमुक्तानन्दमेंभी तारतम्य है; इति यत् तत् च न; क्यों ? 'एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति' (बृ० ४।३।३२) यहाँपर सर्वलौकिक आनन्दोंका जो परमानन्दमें अन्तर्भावका अभिधान है उस अभिधानकी उपपत्तिसे, तिसतिस अकामहतको तावानेव=तत्तच्छतगुणित आनन्द ही नहीं है, जिससे कि तत्रापि=मुक्तानन्दमेंभी तारतम्य कल्पित किया जाय तथाच 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान्' (तै० २।१।१) 'कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधि' (ऋ० सं० ९।११३।११) इत्यादि श्रुतिओंसे सहि मुक्तोऽकामहतः, इत्यादि ब्रह्माण्डकी उक्तिओंसे विरोध नहीं है । शङ्कते नन्विति । एक श्रोत्रियकाही सर्वत्र परामर्श होनेपर मानुषानन्दादिकोंसे सावधारण शतगुणित मनुष्यगन्धर्वाद्यनेक आनन्द एकमें विरुद्ध हैं, आनन्द यदि भिन्न हैं तव एकरूपसे श्रुत अकामहतत्वादिको व्यवस्थापकत्व न होनेसे आनन्दकी व्यवस्थाका अयोग है । यदि यों कहो कि,—व्यवस्थाके लिए एतत्पदाकाम और एतदितरपदकाम लक्षित होता है, तब अश्रुतकी कल्पना और बाध है बाधको दिखलाते हैं नहीति । इन्द्रादिपदमें या राजपदमें अकाम जो भिक्षुक है उस भिक्षुकको इन्द्रादिके आनन्दका अनुभव नहीं है, तस्मात् श्रुतिसे पूर्ववाक्योंसे अमुक्तोंके तारतम्यको कहकर श्रोत्रियस्य च (तै० २।८।१) इत्यादिसे और 'यश्च श्रोत्रियः' इत्यादि उत्तरवाक्यसे मुक्तस्य=मुक्तका तत्=तारतम्य कहा जाता है इति चेन्न; क्यों ? सर्ववाक्योंमें अकामहत मुक्तका एकत्व होनेपरभी तदानन्दे=मुक्तानन्दमें सर्व आनन्दोंका अन्तर्भाव होनेसे स एव=अकामहत मुक्त ही तिसतिस आनन्दके वक्तव्य होनेपर परामृष्ट होता है, और तत्तदिन्द्रादिके साम्यसे तस्य=अकामहत श्रोत्रियके सर्वत्र अभिधानकी उपपत्ति होनेसे अधिक प्रविष्ट हुआ है विद्यमानकी हानि नहीं है इस न्यायसे । साम्यमें तत्सजातीयधर्मवत्त्व तन्त्र होता है, न कि तदितरधर्मानधिकरणत्वभी गौरव होनेसे ।

यच्च—मुक्तसुखं परस्परतारतम्यवत् परस्परतारतम्यवत्साधनकत्वात् सम्मतवदिति, तन्न; असिद्धेः । ननु–मुक्तिः प्रयागमरणभगवद्वेषादिसाध्येति मते ज्ञानकर्मसमुच्चयसाध्येति मते च प्रयागमरणादीनां वर्णाश्रमकर्मणां च विषमत्वात् नासिद्धिः, ज्ञानैकसाध्येतिमतेऽपि 'कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति' सर्वे गुणा ब्रह्मणैव ह्युपास्या नान्यैर्देवैः

किमु सर्वैर्मनुष्यैरित्यादिश्रुत्या 'ब्रह्मादि तद्वेद न चेदसम्यगन्ये कुतो देवमुनीन्द्रवर्याः।' इत्यादिस्मृतिभिः देवादिमनुष्यादिस्थमुक्तिहेतुब्रह्मज्ञानगतस्य बहुबहुतरशाखाश्रवणसाध्यत्वस्य बहुबहुतरगुणविषयत्वं विनाऽयोगेनार्थापत्त्या च तत्सिद्धिरिति–चेन्न; केवलकर्मपक्षे समुच्चयपक्षे वा कर्मसाध्यत्वेन मुक्तेरनित्यत्वापत्तेः, नान्यः पन्था इत्यादिश्रुतिविरोधाच्च, तृतीयपक्षे तूदाहृतश्रुतीनां ब्रह्मविद्यादुर्लभत्वप्रतिपादनपरत्वेन तदुक्तसाधनसाध्यत्वाप्रतिपादकत्वात्। नच–अर्थापत्त्या तत्सिद्धिः ब्रह्मसाक्षात्कारस्य निर्गुणविषयतया गुणविषयत्वायोगात्।

यच्चेति। और जो कथन है कि=मुक्तसुख, परस्परतारतम्यवाला है, परस्परतारतम्यवत् जो साधन तादृश साधनकत्व होनेसे, सम्मतवत्, वह ठीक नहीं क्यों? असिद्धेः=स्वरूपासिद्धि होनेसे। नन्विति। मुक्ति प्रयागमरणसे तथा भगवद्वेषादिसे साध्य है इस मतमें और ज्ञानकर्मका जो समुच्चय है उस समुच्चयसे मुक्ति साध्य है, इस मतमें प्रयागमरणादिकोंको और वर्णाश्रमकर्मोंको विषमत्व होनेसे स्वरूपासिद्धि नहीं है 'सितासिते सरिते यत्र सङ्गते तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति। ये वै तन्वं विसृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्वं भजन्ते' (ऋ० सं० मण्डल १० का परिशिष्ट) इस श्रुतिमें प्रयागमरणको मोक्षके प्रति प्रयोजकता कही है, और 'द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः' इस भागवत वाक्यसे द्वेषको मोक्षके प्रति प्रयोजकत्व बतलाया है, ज्ञानसे ही मुक्ति साध्य है, इस मतमेंभी 'कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति' (कठ० २।२१) सर्वे गुणा ब्रह्मणैव ह्युपास्या नान्यैर्देवैः किमुसर्वैर्मनुष्यैः इत्यादि श्रुतिओंसे 'ब्रह्मादि तद्वेद नचेदसम्यगन्ये कुतो देवमुनीन्द्रवर्याः' इत्यादिस्मृतिओंसे देवादिमें तथा मनुष्यादिमें स्थित जो मुक्तिका हेतु ब्रह्मज्ञान तादृश ब्रह्मज्ञानगत जो बहुबहुतरशाखाश्रवणसाध्यत्व तादृश साध्यत्वका बहुबहुतरगुणविषयत्वके विना अयोग होनेसे, अर्थापत्तिसेभी परस्परतारतम्यवत्साधनकत्वरूप हेतुकी सिद्धि है=किसीका ज्ञान बहुशाखाश्रवणसाध्य है और किसीका बहुतरशाखाश्रवणसाध्य है किसीका अल्पश्रवणसाध्य ही है, फलतः साधनमें तारतम्य है और साधनमें तारतम्य होनेसे तादृश साधनसम्भूत मुक्तसुखमेंभी तारतम्य होना चाहिए इति चेन्न; क्यों? केवल कर्मपक्षमें या समुच्चयपक्षमें कर्मसाध्यत्वप्रयुक्तमुक्तिमें अनित्यत्वकी आपत्तिसे। और 'नान्यः पन्था' (श्वे० ३।८) इत्यादि श्रुतिके साथ विरोध होनेसेभी तृतीयपक्षे=मुक्ति ज्ञानसे ही साध्य है इस तृतीय पक्षमें उदाहृतश्रुतिओंको ब्रह्मविद्यादुर्लभत्वप्रतिपादनपरत्व होनेसे तदुक्त=उक्तवाक्योक्तसाधनसाध्यत्वका अप्रतिपादकत्व होनेसे। नचेति। अर्थापत्तिसे तत्सिद्धिः=उक्तहेतुकी सिद्धि है नच=नहीं है, क्यों? ब्रह्मसाक्षात्कारको निर्गुणविषयत्व होनेसे सगुणविषयत्वके अयोगसे=बहुशाखाओंका श्रवण और अल्पशाखाओंका श्रवण तथा बहुतरशाखाओंका श्रवण अन्तःकरणगत संशयादिकी निवृत्तिमें उपयुक्त हो सकता है और आत्मज्ञान तो तत्त्वमस्यादिमहावाक्यश्रवणसे ही होता है, अतः अपरोक्षात्मक

आहार्य्यभिन्नाप्रामाण्यज्ञानानास्कन्दितअप्रतिबद्धज्ञानमें किसीभी प्रकारकी विशेषता नहीं, और तदधीन मुक्तसुखमेंभी विशेषता नहीं।

यत्तु—'यस्त आशीष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् स वै भृत्यः स च स्वामी गुणलुब्धौ न कामुकौ। मुमुक्षोरमुमुक्षुस्तु परश्चैकान्तभक्तिमान्॥' इत्यादिस्मृत्या मुमुक्षु-भक्तापेक्षया अमुमुक्षोर्भक्तस्याधिक्योक्तेः तदाधिक्यलोकरीतिसिद्धत्वाच्च 'भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी'ति स्मृत्या अल्पभक्तिसाध्यमुक्त्यपेक्षया अधिकमुक्तिहेतुभक्तेरपि आधिक्यस्योक्तेश्च—इति तन्न; यस्ते आशीष इत्यादिना फलमनिच्छतो गुणलोभेन या भक्तिस्तस्यास्तु गरीयस्त्वं यत्प्रतिपादितं तत्तत्त्वसाक्षात्कारे त्वरासम्पादकं नतु मुक्तितारतम्याक्षेपकम्। भक्तिः सिद्धेरित्यादिना प्रतिपादितं गरीयस्त्वमपि तज्जनकत्वमात्रेण पुत्रात्पितुरिव।

यस्त्विति। यः=जो भक्त ते=तुमसे आशिषः=काम्यपदार्थोंकी आशास्ते=प्रार्थना करता है स=वह भक्त भृत्यः=वास्तविकभक्त न=नहीं है, सः=वह वणिक्=लाभार्थव्यापार-वत्त्वेन=वणिक् जैसा है वही भक्त है और वही स्वामी है जो परस्पर एकदूसरेके गुणोंमें लुब्ध हैं और परस्पर किसीभी विषयकी कामना नहीं रखते हैं। मुमुक्षोः=मोक्षकी इच्छासे भजने वालेसे एकान्तभक्तिमान्=केवलेश्वरविषयक भक्तिमान् अमुमुक्षुः=मोक्षकी इच्छा न रखकर भजनेवाला परः=श्रेष्ठ है 'इस सार्धश्लोकमें भक्तिमार्गका परम रहस्य रख दिया है' इत्यादि स्मृतिओंसे मुमुक्षु जो भक्त उस भक्तकी अपेक्षा अमुमुक्षुभक्तके आधिक्यकी उक्ति होनेसे। और तदाधिक्यस्य=उक्तविधमुमुक्षुके आधिक्यको लोकरीतिसिद्धत्व होनेसेभी; लोकमें फलाभिसन्धिरहित भक्तिका महत्त्व प्रसिद्ध है, और भक्ति सिद्धिसेभी बडी है, इस स्मृतिसे इस स्मृतिसे अल्पभक्तिसाध्यमुक्तिकी अपेक्षा अधिकमुक्तिहेतुभक्तिकेभी आधिक्यकी उक्ति होनेसे; इति यत् तत् तु न; यस्ते आशीष आशास्ते, इत्यादिसे फलकी इच्छा न रखनेवालेकी गुणलोभसे जो भक्ति उसका गरीयस्त्व जो प्रतिपादित है वह गरीयस्त्व तत्त्वसाक्षात्कारमें त्वराका सम्पादक है मुक्तिमें तारतम्यका आक्षेपक नहीं और भक्ति सिद्धिसे=ज्ञानसे या मोक्षसे गरीयसी है। इत्यादिसे प्रतिपादित गरीयस्त्वभी तज्जनकत्वमात्रेण=ज्ञानजनकत्वमात्रसे या ज्ञानद्वारा मोक्षजनकत्वमात्रसे पुत्रसे पिताकी तरह है=पितामें पुत्रजनकत्वसे पुत्रापेक्षया गरीयस्त्व जैसे होता है, वैसे सिद्धिजनकत्वेन भक्तिमें सिद्ध्यपेक्षया गरीयस्त्व है।

यत्तु—'अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते। तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥' इत्यत्रापिशब्देन 'स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्। 'किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ताराजर्षयस्तथा।' इत्यत्र कैमुत्येनच साधनतारतम्येन साध्ये तत्प्रतीतिः इति, तन्न; नहि तरणेऽपीत्यस्यान्वयः, किन्तु अधिकारिणि। तथा च विलम्बिततरणरूपफलसम्बन्धमात्रपर्यवसानात् कैमुत्यस्यापि त्वराफललाभमात्रेणोपपत्तेः साधनमात्रतारतम्यस्य फलतारतम्याप्रयोजकत्वाच्च। नहि दण्डतारतम्येन घटतारतम्यं क्वचि-

दपि दृश्यते । यत्तु–' साधनस्योत्तमत्वेन साध्यमुत्तममाप्नुयुः । ब्रह्मादयः क्रमेणैव यथानन्दश्रुतौ श्रुताः ॥ ' इति ब्राह्मे, अधिकं तत्र विज्ञानमधिका च गतिस्तवेति साक्षान्मोक्षधर्मे च साधनतारतम्येन साध्ये तदुक्तिः इति, तन्न, साधनोत्तमत्वेन साध्योत्तमत्वस्यापरममुक्तिविषयत्वात् विज्ञानगताधिक्योक्तेरपि साक्षात्कारप्रयोजकसगुणविषयकज्ञानपरत्वाच्च अत एव दहरादिविद्यानामधिकाल्पगुणविषयकत्वेन साधनतारतम्यं यत्पराभिमतं तदप्येवमिति न कश्चिद्दोषः ।

तस्मात्स्वरूपानन्दस्य स्वप्रकाशात्मरूपिणः ।
प्राप्तिर्मुक्तिर्न तत्रास्ति तारतम्यं कथंचन ॥

इत्यद्वैतसिद्धौ मुक्तौ तारतम्यभङ्गः ॥

यत्त्विति । और अन्य लोग तो उक्त प्रकारसे न जानते हुए अन्योंसे सुनकर उपासना करते हैं वेभी श्रुतिपरायण=श्रवणपरायण हुए मृत्युको तरते ही हैं यहाँपर अपि शब्दसे, पापप्रधानजन्मवाले स्त्री वैश्य शूद्रभी परमगतिको ईश्वराश्रयणसे प्राप्त होते हैं तो पुण्यप्रधानजन्मवाले ब्राह्मण तथा राजर्षिलोग ईश्वराश्रयसे परमगतिको प्राप्त होते हैं इसमें क्या कहना है (गी० ९।३२) यहाँपर कैमुत्यसे साधनमें तारतम्य होनेसे साध्ये=मुक्तसुखरूपसाध्यमें तत्प्रतीतिः=तारतम्यकी प्रतीति है, इति यत् तत् तु न; क्यों ? यहाँपर 'अपि' इस पदका तरणमें अन्वय नहीं है, किन्तु अधिकारीमें अन्वय है, तथाच विलम्बिततरणरूप जो फल तादृश फलके साथ सम्बन्धमात्रमें पर्य्यवसान होनेसे कैमुत्यकीभी त्वराफललाभमात्रसे उपपत्ति होनेसे=उक्त गीतावाक्योंका यह अर्थ नहीं है कि–सुनकर उपासना करनेवालोंकी मुक्तिमें थोडा सुख होता है और अन्योंकी मुक्तिमें अधिक सुख होता है, ब्राह्मणों तथा राजर्षिओंकी मुक्तिमें विशेषसुख मिलता है और महिलादिकी मुक्तिमें न्यून सुख मिलता है, किन्तु यह तात्पर्य्य है कि सुनकर उपासना करनेवालोंको तथा अबलादिको जरा विलम्बसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है और ब्राह्मणादिको सत्वर मुक्तिकी प्राप्ति होती है । और साधनमात्रनिष्ठतारतम्यको फलतारतम्यके प्रति अप्रयोजकत्व होनेसेभी–दण्डके तारतम्यसे घटका तारतम्य कहींपरभी नहीं देखा जाता है । यत्त्विति । साधनके उत्तमत्वसे ब्रह्मादिक उत्तमसाध्यको प्राप्त हुए हैं, जैसे कि क्रमशः आनन्दश्रुतिमें श्रुत हैं, इति ब्राह्मे=इस रीतिसे ब्राह्मपुराणमें और अधिक तुम्हारा विज्ञान है और अधिक तुम्हारी गति है; इस रीतिसे साक्षान्मोक्षधर्ममें साधनके तारतम्यसे साध्यमें तदुक्तिः=तारतम्यकी उक्ति है, इति यत् तत् तु न; साधनके उत्तमत्वसे साध्यके उत्तमत्वको अपरममुक्तिविषयत्व होनेसे और विज्ञानगत आधिक्यकी उक्तिकोभी साक्षात्प्रयोजक जो सगुणविषयकज्ञान तादृश ज्ञानपरत्व होनेसे । अतएव=साक्षात्कारप्रयोजकसगुणविषयकज्ञानपरत्व होनेसे ही दहरादिविद्याओंको अधिकाल्पगुणविषयकत्वेन तारतम्य जो परको अभिमत है वहभी एवमिति=पूर्ववत् ही उपपन्न होता है, अतः कोई दोष नहीं है=पुराणादिकमें जहाँ तहाँ मोक्षके अनेक साधन बतलाये हैं,

उन्होंमें कोई साक्षात्साधन है तो कोई परम्परया साधन है जो परम्परासे साधन है वहभी अनेक विध है—कोई वैराग्यको उत्पन्नकर भक्तिको उत्पन्न करता है और भक्तिद्वारा ज्ञानको उत्पन्न करता है और तद्वारा मोक्षके प्रति उसकी प्रयोजकतारूप साधनता है, कोई भक्तिज्ञान दोनोंको उत्पन्नकर मोक्षके प्रति प्रयोजक है कोई साक्षात् ज्ञानको ही उत्पन्न करता है और ज्ञानद्वारा मुक्तिमें प्रयोजक होता है, इन साधनोंमें=ज्ञानके विना मोक्षतक नहीं पहुँचनेवाले साधनोंमें कोई दुर्बल होता है, कोई सबल होता है, कोई प्रतिवद्ध होता है तो कोई अप्रतिवद्ध होता है कोई समुचित होता है कोई असमुचित होता है, कोई शरीरसाध्य होता है तो कोई वाणीसाध्य होता है, कोई मानस होता है तो कोई बाह्योपकरणसापेक्ष होता है और कोई बाह्योपकरणनिरपेक्ष होता है, इन साधनोंमें जहाँपर जिसका निरूपण किया गया है वहाँपर वह मुक्तितक पहुँचा दिया गया है, तहाँ भ्रमज्ञान प्रमासे ही निवृत्त होता है, इस मूलतत्त्वपर जिन्होंकी दृष्टि नहीं रहती है वे लोग बडे ही चकरमें पड जाते हैं, उन्होंको मार्गपर लानाभी बहुत ही कठिन हो जाता है, और द्वैती लोगोंका माना हुआ तारतम्यभी यथार्थ आत्मज्ञानको और आत्मज्ञानजन्यमुक्तिको छोड़कर उक्तसाधनोंमें यथायोग्य रहता है, फलतः परम्परया साधनत्वेन विवक्षित पदार्थोंमें तारतम्य देखकर साक्षात् मुक्तिसाधनमें या मुक्तिमें तारतम्यकी कल्पना, अधिकतर मनुष्योंमें मौर्ख्य देखकर किसी पण्डितमें मौर्ख्यकी कल्पनासे अधिक महत्त्वकी नहीं है; और मुक्तिजनकज्ञानोंमें अतिशय रहता है और तादृशज्ञानजन्यमुक्तिओंमेंभी अतिशय रहता है, यह निरूपण षड्दर्शनोंमेंभी नहीं मिलता है, अतः यहभी प्रकृत द्वैतिओंकी मिथ्या ही कल्पना है, वस्तुतः श्रुतिओंसे विमुख होकर पुराणोंके जालमें फँस जानेसे परम मुक्तिका और प्रायः पुराणकल्पितसालोक्यादिमुक्तिओंका विवेचन द्वैतिओंसे नहीं हुआ है, इन लोगोंने पुराणोंको अपने मतका मूल बनाकर श्रुतिओंको अपनीतरफ जैसे तैसे घसीटा है, विशेषतः प्रकृत द्वैतीके मूलमतको खडा करने वाले मध्वने पुराण ही देखे थे, इसी लिए श्रुतिओंके रहते हुएभी उन्होंने अपनी ब्रह्मसूत्रकी टीकामें—जिसको ये लोग भाष्य कहते हैं पुराण ही भरदिये हैं, परन्तु श्रुतिओंका यथाविधि बोध न होनेसे पुराणोंकोभी ये लोग समझ न सके, अस्तु पुरुषार्थतः वञ्चित इन लोगोंके अवैदिक वाग्जालसे मुमुक्षुओंको सावधान रहना उचित है। फलितार्थ कहते हैं तस्मादिति। यतः द्वैतिकथित कोईभी दोष नहीं है, ततः स्वप्रकाशात्मरूपस्वरूपानन्दकी प्राप्ति मुक्ति है=कण्ठगतचामीकरप्राप्तिवत् उक्तस्वरूपानन्दकी प्राप्ति मुक्ति है, तत्र=उस मुक्तिमें किसीभी प्रकारसे तारतम्य नहीं है।

इति सरलायां मुक्तौतारतम्यभङ्गः ॥

यो लक्ष्म्या निखिलानुपेक्ष्य विबुधानेको वृतः स्वेच्छया
यः सर्वान्स्मृतमात्र एव सततं सर्वात्मना रक्षति।
यश्चक्रेण निकृत्य नक्रमकरोन्मुक्तं महाकुञ्जरं
द्वेषेणापि ददाति यो निजपदं तस्मै नमो विष्णवे ॥

जिस इष्टकी कृपासे इस अपूर्वग्रन्थकी निर्विघ्नसमाप्ति हुई है, उसको नमस्कार करते हैं यः=जो विष्णु लक्ष्मीसे सर्वदेवताओंकी उपेक्षाकर स्वेच्छासे स्वीकृत हुआ है, और जो स्मृतमात्र हुआ ही सकलस्मरणकर्ताओंकी निरन्तर सर्वात्मना रक्षा करता है। और यः= जिसने चक्रसे नक्रका निकन्दनकर महाकुञ्जरको मकरसे उन्मुक्त किया है, और जो द्वेपसेभी शिशुपालादिके लिए निजपदम्=सायुज्यमुक्ति देता है उस विष्णुके लिए नमस्कार हो।

श्रीमाधवसरस्वत्यो जयन्ति यमिनां वराः।
वयं येषां प्रसादेन शास्त्रार्थे परिनिष्ठिताः ॥

यमिनां वराः=अहिंसासत्यादिरूप यमोंके धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीमाधवसरस्वती अतिशय विराजमान हैं, जिन्होंके प्रसादसे हमलोग शास्त्रप्रतिपाद्यार्थविपयकत्वविशिष्टपरिपक्वबुद्धिक हुए हैं।

सहजसरलां प्रेम्णा दीर्घां समस्तविशोधिनीं,
सकृदपि कृपादृष्टिं सन्तो दिशन्तु भवद्विधाः।
कथमपि सती पूता सद्यस्तया विपयीकृता
मम कृतिरियं हित्वा दोपान्भवत्वतिसद्गुणाः ॥

शान्तान्तःकरणवाले विद्वानोंको सम्बोधितकर कहते हैं,-भवद्विधाः सन्तः=आप जैसे सुपवित्र सज्जन लोग, स्वभावतः सरल और प्रेमसे दीर्घ तथा समस्त पदार्थोंको विशोधन करने वाली एवम्भूत जो आप लोगोंकी कृपादृष्टि है उस दृष्टिका सकृदपि=एकबारभी मेरी इस कृतिपर निक्षेप करो, तथा=उक्तविध भवदीय दृष्टिसे विपयीकृत मम=मेरी यह कृति कथमपि-सती=किसीभी प्रकारकी होती हुई, सद्यः=तुरत दोपान्=दोपोंको हित्वा=छोडकर पूता=पवित्र हुई अतिसद्गुणा भवतु=अत्यन्त सद्गुणवाली हो।

गुरूणां माहात्म्यान्निजविविधविद्यापरिचयात्
श्रुतेर्यन्मे सम्यङ्मननपरिनिष्पन्नमभवत्।
परब्रह्मानन्दस्फुरणमखिलानर्थशमनं
तदेतस्मिन् ग्रन्थे निखिलमतियत्नेन निहितम् ॥

गुरुओंके माहात्म्यसे और निजका जो विविधविद्याओंके साथ परिचय है उस परिचयसे और श्रुतेः=सम्यक् श्रवणसे तथा मननसे, निखिल अनर्थका शमन होता है जिससे एवम्भूत ब्रह्मानन्दस्फुरण जो मुझमें निष्पन्न हुआ है तत् निखिलम्=वह सम्पूर्ण स्फुरण इस ग्रन्थमें अतियत्नसे निहितम्=लिखित है।

इह कुमतिरतत्वे तत्त्ववादी वराकः, प्रलपति यदकाण्डे खण्डनाभासमुच्चैः।
प्रतिवचनममुष्मै तस्य को वक्तु विद्वान् नहि रुतमनुरौति ग्रामसिंहस्य सिंहः॥

इसका अर्थ प्रथम कर चुके हैं। (देखो ६९५ पृष्ठपर)

कुतर्कगरलाकुलं भिषजितुं मनो दुर्धियां मयायमुदितो मुदा विपविघातिमन्त्रो महान्।
अनेन सकलापदां विघटनेन यन्मेऽभवत् परं सुकृतमर्पितं तदखिलेश्वरे श्रीपतौ॥

दुराग्रहयुक्तबुद्धिवालोंके कुतर्करूप जो गरल उससे आकुल जो मन तादृश मनको भिषजितुम्=निर्विषबनानेके लिए यह विपविघाति महामन्त्र आनन्दपूर्वक मुझसे कहा गया है। इस सकल आपदाओंके विघटनसे जो मुझमें महत्पुण्य उत्पन्न हुआ है वह अखिलेश्वर श्रीपतिमें समर्पित है।

ग्रन्थस्यैतस्य यः कर्ता स्तूयतां वा स निन्द्यताम्।
मयि नास्त्येव कर्तृत्वमनन्यानुभवात्मनि॥

इस ग्रन्थका कर्ता स्तुत हो वा निन्दित हो। अखण्डैकरसानुभवात्मक मुझमें कर्तृत्व तो नहीं ही है॥

श्रीव्यासशङ्करसुरेश्वरपद्मपादान् वेदान्तशास्त्रसुनिबन्धकृतस्तथान्यान्।
विद्याप्रदानिह यतिप्रवरान्दयालून् सर्वान् गुरून् सततमेव नमामि भक्त्या॥

श्रीव्यासजीको, तथा श्रीशङ्कराचार्य्यको एवं श्रीसुरेश्वराचार्य्य तथा श्रीपद्मपादाचार्यको तथा वेदान्तसम्बन्धि सुनिबन्धोंके करनेवाले अन्याचार्य्योंको एवम् विद्याको देनेवाले दयालु यतिप्रवर सर्व गुरुओंको भक्तिसे निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

सिद्धीनामिष्टनैष्कर्म्यब्रह्मगानामियं चिरात्।
अद्वैतसिद्धिरधुना चतुर्थी समजायत॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीविश्वेश्वरसरस्वतीश्रीचरणशिष्य-
श्रीमधुसूदनसरस्वतीविरचितायामद्वैतसिद्धौ मुक्तिनिरू-
पणं नाम चतुर्थः परिच्छेदः॥

इत्यद्वैतसिद्धिः॥

इष्ट तथा नैष्कर्म्य एवं ब्रह्म इन तीनोंमें अव्यवहितोत्तरत्व सम्बन्धसे रहनेवाले जो सिद्धि पद हैं, उन सिद्धि पदोंके मध्यमें चिरकालबाद इस कालमें यह चतुर्थी अद्वैतसिद्धि निष्पन्न हुई है=अद्वैतवादमें अभीतक सिद्धिपद तीन ग्रन्थोंके साथ सम्बन्ध रखता था, अब चारके साथ रक्खेगा—अद्वैतमतमें अभीतक इष्टसिद्धि नैष्कर्म्यसिद्धि, ब्रह्मसिद्धि, ये सिद्ध्यन्त तीन ग्रंथ चले आते थे तो अब इनके साथ अद्वैसिद्धिके मिलनेसे ये चार हो गये हैं॥

सच्चिदानन्दरूपाहं ब्रह्मैवाहं स्फुरत्प्रभम् ।
मम नाशो नास्ति कदा निःसन्देहास्तु तिष्ठत ॥
यद्रूपं दृष्टमस्माकं युष्माभिः परमं मतम् ।
ध्यात्वा तद्रूपममलं जपं कुरुत मे मनुम् ॥
तदेव मङ्गलं तुभ्यं भविष्यति महाप्रभम् ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीरामाश्रमशिष्यकान्यकुब्जवंशसम्भूतब्रह्म-
चारियामानन्दापरनामधेयश्रीरामेश्वरदत्तशर्मविरचितायां सर-
लाख्यायामद्वैतसिद्धिव्याख्यायां मुक्तिनिरूपणं नाम
चतुर्थः परिच्छेदः ॥

इति सरला ।

श्रीभगवत्या अर्पणमस्तु ॥

विक्रम सम्वत् १९७६ चैत्र कृष्णपक्ष ५ मङ्गलवार ता० ९।३।२० ईस्वी ।

अथ—अत्रोपयुक्तपारिभाषिकशब्दानां कोषः ।

(अ) 'अखण्डोपाधि'—जातिसे भिन्न और स्वरूपसे भासित होनेवाला धर्म, जैसे कि—अनुयोगीतात्व प्रतियोगितात्व विषयतात्व प्रभृति हैं ।

'अघटक'—जो जिसके स्वरूपमें प्रविष्ट न हो वह उसका अघटक कहा जाता है—जैसे 'राम' इस समुदायमें चार अक्षर हैं ये चारों इसके घटक हैं और इन चारोंसे अतिरिक्त सर्व अक्षर इसके अघटक हैं ।

'अङ्गविधि'—गुणका विधान; जैसे 'अग्निहोत्रं जुहोति' इस वाक्यसे होम प्राप्त है, उसमें 'दध्ना जुहुयात्' यह वाक्य दधिरूप गुणका विधान करता है इसलिए इस वाक्यका नाम गुणविधि तथा अङ्गविधि है ।

'अणुत्व'—परमाणुमें और द्व्यणुकमें रहनेवाला परिमाण ।

'अतिदेश'—एकत्र श्रुतका अन्यत्र सम्बन्ध ।

'अतिप्रसङ्ग'—अतिव्याप्ति, प्रस्तुतविषयसे अन्यत्र प्रसक्ति ।

'अतिव्याप्ति'—लक्षणका लक्ष्यमें रहकर अलक्ष्यमें रहना; जैसे गोका यदि शृङ्गित्व लक्षण किया जाय तो उस लक्षणमें अतिव्याप्ति है ।

'अतीन्द्रिय'—इन्द्रियोंसे जन्य जो लौकिकप्रत्यक्ष उस प्रत्यक्षका अविषय, जैसे न्यायमतमें कालादिक ।

'अत्यन्ताभाव'—जो वस्तु जिस वस्तुमें कालत्रयमें न रहती हो उस वस्तुका जो उसमें अभाव, जैसे वायुमें रूपाभाव । त्रैकालिकसंसर्गाभावभी इसका नाम है । नवीनलोग प्रतियोगीके अधिकरणमेंभी इसको मानते हैं ।

'अदृष्ट'—धर्माधर्म । अपूर्व

'अधः'—गुरुत्वसे जन्य जो क्रिया उस क्रियासे जन्य जो संयोग तादृश संयोगका आश्रय देश ।

'अधर्म'—दुःखजनक आत्मामें रहनेवाला गुणविशेष, वेदान्तसाङ्ख्यादि मतमें यह अन्तःकरणमें माना जाता है यह निषिद्ध क्रियासे उत्पन्न होता है ।

'अधिकरण'—जिसमें किसीकी आधारता प्रतीत होती हो, जैसे 'गेहे घटः' यहाँपर गेह घटका अधिकरण है, इसीको आधार तथा धर्मीभी कहते हैं ।

'अधिकवृत्ति'—दोपदार्थोंमें जो एकपदार्थ अधिकदेश या अधिककालमें रहता हो वह;—इसको व्यापकभी कहते हैं जैसे कि घटत्वकी अपेक्षा पृथिवीत्व, पृथिवीत्वकी अपेक्षा द्रव्यत्व द्रव्यत्वकी अपेक्षा सत्तासामान्य अधिकवृत्ति है ।

'अधिष्ठान'—जिसके सामान्यज्ञानसे भ्रम हो और विशेष ज्ञानसे भ्रमकी निवृत्ति हो ।

अध्यक्ष=प्रत्यक्ष ।

अध्यवसाय=निश्चयात्मकज्ञान ।

अध्यात्म=आत्मसम्बन्धि ।

अध्याहार=प्रकृतोपयोगी अश्रुतपदका अनुसन्धान ।

अनतिरिक्तत्व=अन्यूनवृत्तित्व, जैसे कि प्रमेयत्वसे अनतिरिक्तवृत्तित्व अभिधेयत्वमें है ।

अनभ्यासदशापन्नज्ञान=प्रथम होनेवाला ज्ञान, विशेपदर्शनसे अजन्यज्ञान ।

अनवस्था—निर्णीतवस्तुके सजातीयवस्तुओंकी परम्पराकल्पनमें विरामका अभाव, जैसे भेदमें भेद पुनः भेदमेंभी भेद इसी रीतिसे आगे बढते जानेमें अनवस्था है;

इसी रीतिसे गुणजातिक्रियाप्रभृतिमें भी अनवस्था समझनी चाहिए ।

अनागत—भविष्यत् ।

अनादित्व—उत्पत्तिरहितत्व ।

अनारभ्याधीत—जिसमन्त्रका कर्मविशेषमें विनियोग न कहा गया हो वह।

अनिष्टप्रसङ्ग—अनभिमत अर्थका आपादन ।

अनुकरण—सदृशक्रियादिका करना,

अनुकूलत्व—प्रयोजकत्व ।

अनुगम=अनुगतप्रवृत्तिका निमित्त ।

अनुपपत्ति=असम्भव, उपपत्तिका अभाव ।

अनुपलब्धि—ज्ञानका अभाव ।

अनुबन्ध—अधिकारी, सम्बन्ध, विषय, प्रयोजन ।

अनुभव—स्मृतिसे भिन्न ज्ञान ।

अनुमान—अनुमिति प्रमाका करण, व्याप्तिज्ञानादि ।

अनुमिति—व्याप्तिज्ञानसे उत्पन्न हुआ ज्ञान ।

अनुयोगी—जिसमें किसीभी पदार्थका सम्बन्ध या सादृश्य या अभाव प्रतीत होता हो वह, रूपवाला घट है । चन्द्रवन्मुख है, घटाभाववद्भूतल है, इन स्थलोंमें घट मुख भूतल ये अनुयोगी हैं ।

अनुवृत्तत्व—सामानाधिकरण्य, जैसे वह्निमें धूमानुवृत्तत्व है, अर्थात् धूमसामानाधिकरण्य है, या धारातः प्राप्तत्वका नाम अनुवृत्तत्व है, जैसा कि क्षणिकविज्ञानवादीके मतमें विज्ञानसन्तानका अनुवृत्तत्व है ।

अनुव्यवसाय=व्यवसायगोचर प्रत्यक्षज्ञान जैसे 'अयं घटः' यह व्यवसायात्मक ज्ञान है, एतद्विषयक 'अहं घटं जानामि' यह ज्ञान हैं, इसका नाम अनुव्यवसाय है ।

अनेकत्व—एकत्वभिन्नसङ्ख्याविशिष्टत्व ।

अन्त्यावयवित्व—द्रव्यानारम्भक द्रव्यत्व ।

अन्यतम—भेदकूटावच्छिन्नप्रतियोगीताकभेदवाला ।

अन्यतर—भेदद्वयावच्छिन्नप्रतियोगीताकभेदवाला ।

अन्यथाख्याति—भ्रमात्मक ज्ञान ।

अन्यथासिद्ध—अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववृत्तिसे भिन्न ।

अन्योन्याभाव—भेद;—नित्य हो और अभाव हो तथा अत्यन्ताभावसे भिन्न हो वह ।

अपूर्वविधि—प्रमाणान्तरसे अप्राप्त अर्थका विधायक वाक्य, जैसे ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत इस वाक्यका नाम अपूर्वविधि है।

अभ्युपगम—स्वीकार।

अयुतसिद्ध—जिन दो पदार्थोंमेंसे एक अविनश्यदवस्थ हुआ दूसरेके आश्रित ही रहता हो वे दोनों पदार्थ अयुतसिद्ध कहे जाते हैं। जैसे अवयव अवयवी, गुण गुणी, क्रिया क्रियावान्, जाति व्यक्ति।

अर्थवाद—स्तुतिपर या निन्दापर वाक्य।

अर्थान्तर—प्रकृत अर्थसे असम्बद्ध अर्थ।

अलीक—ज्ञानाविषय, जैसे शशशृङ्गादि।

अवच्छिन्न—धर्मविशिष्ट-विशिष्ट।

अवच्छेद—ज्ञान, अवधारणात्मक ज्ञान, व्याप्ति इयत्ताकरण।

अवच्छेदक—प्रतियोग्यंशमें प्रकारीभूतधर्म 'घटो नास्ति' यहाँपर घटनिष्ठप्रतियोगितावच्छेदक घटत्व है; अवच्छेद्यसे अनतिरिक्तवृत्ति, जैसे घटत्वसे अवच्छेद्य उक्ताभावीय प्रतियोगीता निखिलघटोंमें है और घटत्वभी निखिलघटोंमें है, अतः घटत्व प्रतियोगितासे अनतिरिक्तवृत्ति है-प्रतियोगिताभाववत्में वृत्ति नहीं है।

अवच्छेद्य=अवच्छिन्न, अवच्छेदकावच्छिन्न।

अवधारण—निश्चयात्मक ज्ञान।

अवयवि—जन्यद्रव्य।

अव्याप्ति—सर्वलक्ष्योंमें लक्षणका न रहना।

अव्याप्यवृत्तिगुण—जो गुण अपने अभावके अधिकरणमें अभावके साथ रहता हो जैसे शब्द।

अव्याप्यवृत्ति—जो पदार्थ अपने अभावके अधिकरणमें अभावके साथ रहता हो जैसे संयोग।

असम्भव—अनुपपन्न; लक्षणका किसीभी लक्ष्यमें न रहना; जैसे मनुष्यका लक्षण पुच्छवत्त्व।

असद्धेतु—हेत्वाभास।

असमवायिकारण—समवायिकारणमें रहकर कार्यका जनक हो जैसे घटके प्रति असमवायिकारण कपालसंयोग है।

असाधारण—यह एक हेत्वाभास है, सपक्षमें तथा विपक्षमें जो हेतु न रहता हो और पक्षमें रहता हो उसका नाम है-असाधारण।

असाधारणकारण—जो कारण सर्व कार्योंको न उत्पन्न करता हो किन्तु किसी एक कार्यको उत्पन्न करता हो वह,-जैसे दण्डादिक।

असाधारणधर्म—लक्ष्यतावच्छेदक समनियतधर्म,-जैसे गोत्वादि।

अस्तित्व=कालसम्बन्धित्व।

आकृति—अवयवोंका संस्थान विशेष।

आख्या—संज्ञात्मक नाम।

आगम—वेदशास्त्र मन्त्रादि।

आत्माश्रयः—स्वमें स्वापेक्षापादक प्रसङ्गः ।

आप्त—प्रकृतवाक्यप्रतिपाद्य । अर्थविषयक यथार्थज्ञानवाला, तथाभूत अबाधितार्थका तथात्वेन उपदेष्टा ।

आप्तोपदेश—प्रमाणशब्द ।

आलोचन—विशेष धर्मादिसे विवेचन ।

आवाप—कुछ और मिलना ।

(इ) इतिकर्त्तव्यता—करनेका प्रकार ।

इदम्—प्रत्यक्षबुद्धिविषय ।

इन्द्रियार्थसंनिकर्ष—प्रत्यक्षज्ञानका हेतु इन्द्रियका विषयके साथ सम्बन्ध, यह दो प्रकारका होता है, लौकिक तथा अलौकिक । संयोग, संयुक्तसमवाय, संयुक्तसमवेतसमवाय, समवाय, समवेतसमवाय, विशेषणता । ये लौकिक सन्निकर्ष कहे जाते हैं । सामान्यलक्षण ज्ञानलक्षण, योगजधर्म ये अलौकिक सन्निकर्ष कहे जाते हैं ।

इष्ट=इच्छाका विषय ।

(उ) उत्तर—परपक्षका प्रतिषेध, जिज्ञासितविषयका बोधक वाक्य ।

उत्तेजक—प्रतिबन्धककोटिमें प्रविष्ट अभावका प्रतियोगी ।

उत्थाप्याकाङ्क्षा—अनियताकाङ्क्षा ।

उत्थिताकाङ्क्षा—नियताकाङ्क्षा ।

उत्पत्ति—आद्यक्षणके साथ सम्बन्ध ।

उत्पत्तिविधि—कर्मस्वरूपबोधकविधि ।

उत्पाद—उत्पत्ति ।

उदाहरण—दृष्टान्त ।

उद्देश—नाममात्रसे वस्तुका कथन ।

उद्बोधक—स्मृतिका प्रयोजक ।

उद्भूत—प्रत्यक्षयोग्य रूपरसादिक ।

उद्वाप=श्रूयमाण पदका किसीभी वाक्यमेंसे निकालना ।

उन्नायक=ज्ञापक ।

उन्नेय=ज्ञाप्य ।

उपकार—सहकारिका लाभ ।

उपक्रम—आरम्भ ।

उपचय—वृद्धि ।

उपचार—शक्यार्थको छोडकर लक्षणासे अन्यार्थका बोधन ।

उपजीवक—कार्य्य ।

उपजीव्य—कारण ।

उपन्यास—वाक्यका उपक्रम, वाक्यका प्रयोग, विचार।
उपपत्ति—ज्ञान, सम्भव, युक्ति हेतु उपाय प्राप्ति।
उपभोग—विषयसेवाजन्यसुखविशेष।
उपमर्द—एकरूपकी निवृत्ति होनेपर अन्यरूपकी उत्पत्ति।
उपलक्षण—अविद्यमान हुआ व्यावर्त्तक।
उपष्टम्भ—आलम्बन।
उपसर्जन—गौण, अप्रधान।
उपस्थिति—स्मरण।
उपहित—उपाधिमत्।
उपादान—जिसमें कार्य्यकी स्वरूपसे अवस्थिति हो।
उपादेय—उपादानसे जन्य, ग्रहण करनेके लायक।
उपाधि—धर्मसामान्य, साध्यकी व्यापक होकर साधनकी अव्यापक।
उपाय—साक्षात्सम्बन्धसे या परम्परासम्बन्धसे कार्य्यका जनक
उपालम्भ—परपक्षमें दूषणदान।
उपोद्घात—प्रकृतोपयोगी अर्थका अभिधान।
(ऊ) ऊहः—तर्क, परीक्षण अनुमान अध्याहारकल्पन।
(ए) एक—सजातीयनिष्ठ भेदका अप्रतियोगी।
एकवाक्यत्व—विशिष्टैकार्थप्रतिपादकत्व।
(क) करण—व्यापारवाला असाधारण कारण।
कर्त्ता—क्रियानुकूलकृतिमान्।
कर्म—परसमवेतक्रियाफलशाली।
काम्य—अभिलाषाविषय।
कार्य्य—प्रागभावका प्रतियोगी।
कुर्वद्रूपत्व—यत्किञ्चित्कार्यजनकतावच्छेदकतया सिद्ध जातिविशेष।
क्षणिक—तृतीयक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगी।
क्षेम—सिद्धका रक्षण
(ख) खण्डप्रलय=कार्य्यद्रव्यका अनधिकरण और कार्य्यका अधिकरण काल।
ख्याति—ज्ञान।
(ग) गमकत्व—नित्यसाकाङ्क्षत्व जैसे 'चैत्रस्य गुरुकुलम्' यहाँपर गमकत्वेन समास होता है, इसी रीतिसे 'प्रमाणादीनां तत्त्वज्ञानम्' (न्या० द० १।१।१) यहाँपरभी समझना चाहिए।
गमक—बोधक।
गुण—प्रमाका असाधारणकारण, रूपरसादिक।
गोत्र—ऋषिओंकी परम्परा।

गौण—गौणीवृत्तिसे प्रवृत्त हुआ शब्द ।

ग्रन्थ—अन्तिमवर्णपर्यन्त वर्णोंका समूह ।

(च) चतुरणुक—चारद्व्यणुकोंसे उत्पन्न हुआ द्रव्य ।

चाकचक्य—भ्रमोत्पादकप्रमेयनिष्ठदोषविशेष इसीका नाम चाकचिक्यभी है ।

चेष्टा—हितकी प्राप्तिके लिए और अहितके परिहारके लिए जो क्रिया की जाती है वह ।

चोदना—विधिवाक्य, प्रवर्त्तकवाक्य, मूलभावना, प्रवर्त्तना, अज्ञातार्थका ज्ञापकशब्दमात्र, नोदना ।

ज्ञातता—ज्ञानविषयता ।

तद्व्यक्तित्व—तत्तादात्म्यविशिष्टधर्म ।

तर्क—व्याप्यके आरोपसे व्यापकका प्रसाधन ।

तादर्थ्य—तत्प्रयोजनत्व ।

तादात्म्य—तद्वृत्तिधर्मविशेष ।

तारतम्य—न्यूनाधिकभाव ।

तुल्यवित्तिवेद्यत्व—एकज्ञानविषयत्व ।

त्रसरेणु—तीन द्व्यणुकोंसे उत्पन्न हुआ द्रव्य ।

देवता—मन्त्रपूर्वक हविस्त्यागभागित्वेन उद्देश्य ।

दैशिक—देशकृत, देशसम्बन्धि, मन्त्रादिका उपदेशक ।

दैशिकविशेषणता—स्वरूपसम्बन्ध ।

दोष—अप्रमाका साधारण कारण; राग, द्वेष, मोह ।

द्योतक—अर्थविशेषमें तात्पर्य्यग्राहक ।

द्रव्य—समवायसम्बन्धसे गुणाश्रय, समवायिकारण; द्रव्यत्वरूपजातिवाला ।

द्विष्ठ—उभयनिरूपितवृत्तित्वविशिष्ट ।

द्व्यणुक—दोपरमाणुओंके संयोगसे जो द्रव्य उत्पन्न होता है वह ।

नित्य—जो प्रागभाव तथा ध्वंस इन दोनोंका अप्रतियोगी हो ।

नियमविधि—नानासाधनोंसे साध्यक्रियामें एक साधनकी प्राप्ति होनेपर अप्राप्त अपर साधनकी प्रापकविधि । जैसे 'व्रीहीनवहन्ति' यह वाक्य नियमविधि है ।

नियोग—'ऐसा करो' इत्याकारक आज्ञा ।

नियोज्यत्व—प्रवर्त्तनीयत्व प्रवर्त्तनाकर्मत्व ।

निरनुयोज्यानुयोग—जहाँपर जो दोष देने लायक न हो वहाँपर वह दोष देना ऐसे स्थलमें दोष देनेवाला दूषित समझा जाता है ।

निरुपाख्य—जो किसीभी प्रमाणका विषय न हो ।

निरूपण—ज्ञानानुकूलशब्दप्रयोग ।

निर्देश—शब्दप्रयोग ।

निर्वर्त्य—उत्पादन करनेके लायक,-जिसकी क्रियासे उत्पत्ति होती हो वह क्रियाजन्य ।

निर्वाहक—प्रयोजक ।

निर्विकल्पक—सम्बन्धानवगाहि प्रत्यक्ष, निष्प्रकारक प्रत्यक्ष ।

निवृत्ति—द्वेषसे उत्पन्नप्रयत्नविशेष, प्रवृत्तिका अभाव । अभाव ।

निषिद्ध—निषेधका विषय ।

निषेध—अनिष्टसाधनताका बोधकवाक्यविशेष, जैसे कि 'न कलञ्जं भक्षयेत्' न सुरां पिबेत्, अष्टम्यां मांसं माश्नीयात् इत्यादि ।

निष्ठ—वृत्ति ।

नोदन—शब्दका अहेतुभूत संयोग ।

न्याय—प्रमाणोंसे अर्थका परीक्षण ।

न्यायाभास—अनुमानाभास—प्रत्यक्षसे तथा आगमसे विरुद्ध अनुमान ।

पक्ष—जिसमें साध्यका सन्देह हो ।

पक्षधर्मता—हेतुका पक्षमें रहना ।

पक्षासिद्धि—आश्रयासिद्धि ।

पङ्क्ति—सजातीय पदार्थोंकी स्थिति विशेष ।

पण्डा—फल साधनके अयोग्य अदृष्ट विशेष ।

पद—शक्त; अर्थबोधक; वाक्यका एकदेश ।

पदार्थ—पदका वाच्य ।

परतन्त्र—इतरसत्ताधीनसत्ताक ।

परमाणु—मूर्त होकर निरवयव, जिससे छोटा दूसरा पदार्थ न हो वह ।

परमात्मा—नित्यज्ञानादिवाला ।

परमापूर्व—स्वर्गसे अव्यवहितपूर्वमें रहनेवाला, क्रियाजन्य संस्कारविशेष ।

परामर्श—व्याप्तिविशिष्टका पक्षवृत्तित्वेन ज्ञान ।

परार्थानुमान—दूसरेमें अनुमिति उत्पन्न करनेवाला प्रतिज्ञादिरूप पञ्चावयवात्मक वाक्य ।

परिचय—ज्ञातपदार्थका पुनः पुनः ज्ञान ।

परिचायक—तटस्थ रहकर ज्ञापक ।

परिच्छित्ति—ज्ञान, अनुभव, परिच्छेद ।

परिणाम—अन्यथाभाव, जीर्णता, पाक, अन्यावस्था,

परिपाक—फल परिणाम,

परिभाषा—नवीन सङ्केत; असाधारण सङ्केत ।

परिमण्डल—परमाणुओंका परिमाण परिमाणयुक्त, परमाणु ।

परिशेषानुमान—विशेषाभावसहकृतसामान्यहेतुकानुमान ।

परिषत्—सभाविशेष, धार्मिक लोगोंकी सभा ।

परिसंख्या—सर्वत्रप्राप्त भक्षणादिका कहीं पर विधान, जैसे पञ्च पञ्चनखा भक्ष्याः, यह परिसंख्या विधि है । दोकी युगपत् प्राप्ति होनेपर इतरव्यावृत्तिपर विधि, उदाहरण पूर्ववत् ।

पर्य्यनुयोग—दूषणदान।

पर्य्यनुयोज्य—दूषण देनेके योग्य।

पर्य्यनुयोज्योपेक्षण—दूषण देनेके योग्यका उपेक्षण।

पर्य्यवसित—पूर्वोत्तरके आलोचनसे अवधारित अर्थ, निष्कृष्टार्थ,।

पर्य्याप्ति—स्वरूपसम्बन्ध विशेष।

पर्य्याय—समानप्रवृत्तिनिमित्तक और भिन्नानुपूर्वीक शब्द जैसे कि घट, कलश, कुम्भ।

पर्य्युदास—अन्योन्याभाव, जैसेकि 'घटः पटो न;' यहाँपर और 'अब्राह्मणमानय' यहाँपर नञ्का अर्थ पर्य्युदास है।

पशुत्व—लोमवल्लाङ्गूल,—जिसके लोमवाला लाङ्गूल हो उसको पशु कहते हैं।

पाक—विजातीय तेजका संयोग, रूपादिकी परावृत्तिका जनक तेजःसंयोग, विक्लित्यनुकूलव्यापार।

पाठ—कण्ठ ताल्वादिका अभिघात।

पारिभाषिक—आधुनिक सङ्केतसे अर्थबोधक पद।

पारिमाण्डल्य—अणुओंका परिमाण।

पूर्वपक्ष—शास्त्रीयसंशयकी निवृत्तिके लिए प्रश्नरूपवाक्य सिद्धान्तविरुद्धकोटि।

प्रकार—विशेषण, सामान्यका भेदक।

प्रकृत—प्रतिज्ञाका विषय, प्रधानतया जिसको उद्देश्यकर विचार चला हो वह।

प्रचय—शिथिलाख्य संयोग।

प्रणिधान—स्मरणकी इच्छासे मनका धारण, अन्यविषयमें लगानेके लिए विषयान्तरसे मनके सञ्चारका वारण, चिन्तन विशेष, भक्तिविशेष।

प्रतिकूल—द्वेषका विषय।

प्रतिग्रह—विधिपूर्वक उचित परिश्रमविना प्राप्तका स्वीयत्वेन स्वीकार, विधिपूर्वक दत्तका स्वीकार।

प्रतिज्ञा—स्वकर्त्तव्यत्वेन निर्देश 'इदं करिष्यामि' इत्याकारक वाक्य; न्यायका प्रथम अवयव।

प्रतिपत्ति—ज्ञान।

प्रतिपादन—प्रतिपत्तिके अनुकूलशब्दका प्रयोग।

प्रतिप्रसव—प्रतिषिद्धका पुनः विधान।

प्रतियोग—विरोध।

प्रतियोगी—जिसका सम्बन्ध या सादृश्य अथवा अभाव किसीमें रहता हो वह जैसे रूपवान् घटः। यहाँपर रूप तथा घटत्व ये दोनों प्रतियोगी हैं, क्योंकि उन्होंका समवाय नामक सम्बन्ध घटमें रहता है 'चन्द्रवन्मुखम्' यहाँपर चन्द्रप्रतियोगी है क्योंकि, उसका सादृश्य मुखमें रहता है। 'घटाभाववद्भूतलम्' यहाँपर घट प्रतियोगी है क्योंकि घटका अभाव भूतलमें रहता है।

प्रतियोगितावच्छेदक—प्रतियोगितासमनियतधर्म धर्मशब्दसे सम्बन्धकाभी ग्रहण है।

प्रतिरोध—सत्प्रतिपक्ष दोष, प्रतिबन्ध, कार्यविशेषका अनुत्पाद;

प्रतिवाद—वादीसे प्रयुक्त जो न्यायवाक्य उस न्यायवाक्यसे विरुद्ध न्यायवाक्यका प्रयोग।

प्रतिवादी—उक्तविधन्यायवाक्यके प्रयोगका कर्ता।

प्रतिसन्धान—अनुचिन्तन, अनुसन्धान, ज्ञान।

प्रतिप्रत्यक्ष—इन्द्रियार्थ सन्निकर्षसे उत्पन्न हुआ ज्ञान।

प्रत्यवस्थान—दूषणका अभिधान।

प्रत्यासत्ति—सम्बन्ध।

प्रत्यासन्न—सम्बद्ध।

प्रयोग—अनुमान।

प्रसक्त—जिसकी स्मृति हुई हो और उपेक्षाके लायक न हो वह।

प्रसज्यप्रतिषेध—संसर्गाभाव—अर्थात् क्रियापसमभिव्याहृत जो नञ् तादृश नञ् प्रतिपाद्य अत्यन्ताभाव, जैसे 'भूतले घटो नास्ति' यहाँपर नञ्का अर्थ प्रसज्यप्रतिषेध अर्थात् अत्यन्ताभाव है।

प्रसञ्जन=आपादन।

प्रसक्ति—ज्ञान।

प्रस्तावना—आरम्भ।

प्रातिस्विक—प्रतिव्यक्तिनिष्ठ।

प्रादेशिकगुण—अव्याप्यवृत्ति।

प्राप्यप्रकाशकारि—विषयदेशमें जाकर विषयका प्रकाशक,-जैसे न्यायमतमें-चक्षु, वेदान्तमतमें श्रोत्रभी।

फलोपधायक—स्वाव्यवहितोत्तरत्वसम्बन्धसे फलविशिष्टः-फलोपहित।

बहिरिन्द्रिय—मनसे भिन्न इन्द्रिय।

बहिर्द्रव्य—आत्मासे भिन्न द्रव्य।

भक्ति—गौणी वृत्ति।

भविष्यत्—वर्त्तमानकालमें रहनेवाले प्रागभावका प्रतियोगी।

भाक्त—लाक्षणिक। गौणीवृत्तिसे बोधित अर्थ।

भाग—पक्षतावच्छेदकाश्रययत्किञ्चित्पक्षका एकदेश। जैसा कि 'भागासिद्धि' यहाँपर लिया जाता है।

भागासिद्धि—पक्षतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन हेतुका अभाव,-जैसे पृथिवी गन्धवती, घटत्वात् यहाँपर पक्षतावच्छेदकपृथिवीत्वसामानाधिकरण्येन पटादिमें घटत्वरूप हेतुका अभाव है, वह भागासिद्धिरूप है, इसी रीतिसे,-पृथिव्यादिरूपचत्वारःपरमाणवो नित्याः, गन्धवत्त्वात, इत्यादिमेंभी समझना चाहिए।

भास्वर—परप्रकाशक, अथवा भास्वरत्वरूपजातिविशेष है,-तदाश्रय।

भिन्न—भेदानुयोगी, भेदवाला, भेदाधिकरण।

भूतकाल—जिस वस्तुके नाशसे जो काल अवच्छिन्न होता है वर्त्तमानकालमें रहनेवाला जो ध्वंस तादृश ध्वंसका जो प्रतियोगी तादृश प्रतियोगीसे अवच्छिन्नकाल।

भूत—विद्यमान जो ध्वंस उस ध्वंसका प्रतियोगी।

भूतार्थवाद—प्रमाणान्तरसे जिस अर्थकी प्राप्ति न हो और प्रमाणान्तरका जिसमें विरोधभी न हो एवम्भूत अर्थका प्रतिपादकवाक्य 'जैसे' इन्द्रो वृत्राय वज्रमुदयच्छत् 'वज्रहस्तः पुरन्दरः' इत्यादि।

भूमिका—प्रयोजन सम्पादनका प्रकारविशेष।

भेदक—व्यावर्त्तक, विशेषण, अवच्छेदक।

भोग—सुखका या दुःखका साक्षात्कार।

भोगायतन—भोगका अवच्छेदक यद्विशिष्ट आत्मामें भोग उत्पन्न होता है वह, शरीर।

मन्त्र—प्रयोगसमवेत अर्थका स्मारक वेदका भाग।

ममता—स्वकीयत्वका अभिमान।

महाकाल—अनवच्छिन्न काल।

महाप्रलय—सर्व भावकार्यका ध्वंस।

याग—प्रीतियुक्त समन्त्रक द्रव्यका त्याग, देवताको उद्देश्यकर हविका त्याग।

युतसिद्ध—जो दो पदार्थ स्वतन्त्ररूपसे गतिके अधिकरण हो सकते हों; जो दो पदार्थ भिन्न आश्रयमें रहते हों जो परस्पर सम्बन्धके विना भी विद्यमान हों, जो परस्पर सम्बन्धसे शून्य होकर भी रहते हों, घटादिमें यथायोग्य लक्षण घटाने चाहिए।

योगक्षेम—अनुभवके अनुसार वस्तुस्थितिका संघटन।

योग्यता—कार्य्यविशेषके उत्पादनमें सामर्थ्य।

अर्थाबाध—बाधक प्रमाणका अभाव।

यौगपद्य—एककालवृत्तित्व एककालोत्पत्तिकत्व।

लक्षण—लक्ष्यतावच्छेदकसमनियतधर्म, अव्याप्ति अतिव्याप्ति असम्भव इन तीनों दोषोंसे शून्य धर्म, जैसे गोका लक्षण सास्नादिमत्व है।

लक्षणा—स्वशक्यसम्बन्ध, स्वबोध्यसम्बन्ध' स्वशक्यसे अशक्यकी उपस्थिति।

लक्षणाभास—दोषयुक्त लक्षण, यह तीन प्रकारका होता है, अव्याप्त अतिव्याप्त असम्भवि।

लक्षित—लक्षणासे ज्ञात हुआ अर्थ, ज्ञात, अनुमित।

लक्ष्य—पदकी लक्षणावृत्तिसे बोध्य अर्थ।

लाक्षणिक—लक्षणासे अर्थका बोधक शब्द।

लिङ्गपरामर्श—परामर्श।

लिङ्ग—व्याप्तिबलसे जो जिस अर्थका गमक हो वह उसका लिङ्ग कहा जाता है, जैसे कि धूम वह्निका।

लिङ्गाभास—दोषयुक्त लिङ्ग।

लिङ्गि—जो अर्थ लिङ्गसे जाना जाता हो वह, व्याप्तिनिरूपक।

वर्त्तमानकाल—जिस वस्तुसे जिस कालका अवच्छेद 'व्यावृत्ति' होता हो उस वस्तुका वह वर्त्तमान काल कहा जाता है।

वाक्य—पदोंका समूह; स्वार्थबोधमें समाप्त पदसमुदाय,

वाक्यार्थ—पदोंसे उपस्थापित पदार्थोंका परस्पर सम्बन्ध।

वाक्यार्थज्ञान—शाब्दबोध–एकपदार्थधर्मिक अपरपदार्थप्रतियोगिकसंसर्गज्ञान।

वाचक—शक्तिसे अर्थका बोधक पद, मुख्यपद, शक्यार्थबोधक पद।

वाच्य—वाचकसे बोध्य अर्थ।

वादी—प्रकृतसाध्यकी सिद्धिके लिए न्यायप्रयोग कर्त्ता, प्रथमपक्ष प्रतिपादन करनेवाला वाद कथाका कर्त्ता।

विच्छित्ति—तेजके संयोगसे उत्पन्न होनेवाला अवयवोंका विभाग।

विगीत—वेदसे निषिद्ध, विरुद्ध कथन, विगान,

विघात—ध्वंस।

विघ्न—समीहितक्रियास्वरूपमें प्रतिबन्धक।

विधि—विधायक शब्द, प्रवृत्तिपरवाक्य, अज्ञातार्थज्ञापक वेदवाक्य।

विनिगमक—दो पक्षोंमेंसे एक पक्षको सिद्ध करनेवाली युक्ति।

विनियोग—प्रकृतक्रियामें प्रवृत्ति।

विनियोगविधि—प्रधानकर्मके साथमें अङ्गोंके सम्बन्धका बोधक वाक्य जैसे दध्ना जुहोति।

विपक्ष—निश्चितसाध्याभाववाला।

विपर्य्यय—मिथ्याज्ञान।

विप्रतिपत्ति—विरुद्धार्थप्रतिपादक दो वाक्य।

विभाग—संयोगका नाशक गुण।

विभुत्व—सर्वमूर्तसंयोगित्व, सर्वगतत्व, परममहत्परिमाणवत्व मूर्त्तेतरद्रव्यत्व।

विमर्श—विरुद्धार्थ।

विरह—अभाव।

विरोधि—साथ नहीं रहनेवाले एककालावच्छेदेन एकत्र नहीं रहनेवाले साथमें न रहनेका जिन्होंका नियम होवे।

विलक्षण—विजातीय, विभिन्न।

विशिष्ट—विशेषणवाला विशेष्य।

विशेषण—व्यावर्त्तक अवच्छेदक।

विशेषित—विशिष्ट।

विशेष्य—विशेषताश्रय।

विषयि—ज्ञान, विषयिताश्रय, विषयासक्त।

विसम्वाद—अन्यथा स्थितवस्तुका अन्यथा कथन।

विसर्ग—त्याग।

विहित—इष्टसाधनत्वेन वेदबोधित।

वृत्ति—शाब्दबोधानुकूल जो पदार्थोपस्थिति उस पदार्थोपस्थितिके अनुकूल पदार्थका सम्बन्ध, सन्निकर्ष, ज्ञान, आधेयता।

वेद—लौकिक वाक्यसे भिन्न वाक्य ।

वैशिष्ट्य—सम्बन्ध ।

व्यक्ति—पदार्थमात्र, गुणविशेषाश्रय, मूर्ति, जात्याश्रयद्रव्य,

व्यङ्ग्य—बोध्य, प्रकाश्य,

व्यञ्जक—ज्ञानजनक, प्रकाशक ।

व्यञ्जन—ज्ञान ।

व्यतिरेक—अभाव, अत्यन्ताभाव, सजातीयका आधिक्य ।

व्यतिरेकव्याप्ति—साध्याभावका व्यापक जो अभाव तादृश अभावका प्रतियोगित्व, साध्याभाव-निरूपित हेत्वभावनिष्ठ व्यापकत्वरूपा व्याप्ति, यह व्याप्ति हेतुके ऊपर स्वाश्रयप्रतियोगित्वसम्बन्धसे आती है, स्वशब्दसे उक्तव्यापकत्व लिया, तदाश्रय हुआ हेत्वभाव तत्प्रतियोगीत्व हेतुमें है ।

व्यतिरेकि—अत्यन्ताभावका प्रतियोगी ।

व्यतिरेक्यनुमान—व्यतिरेकव्याप्तिविशिष्टहेतुकानुमान जैसे पृथिवी, इतरभेदवती, गन्धवत्वात् ।

व्यधिकरण—भिन्नभिन्न अधिकरणोंमें रहनेवाले,—जैसे घटत्व पटत्वादि धर्म व्यधिकरण हैं ।

व्यपदेश—शब्दप्रयोग ।

व्यपेक्षा—अपेक्षा ।

व्यर्थविशेषण—जिस विशेषणके विनाभी व्याप्तिग्रह हो जाता हो वह ।

व्यवधान—अन्तराय, अन्यद्रव्यसे अन्यद्रव्यका आच्छादन ।

व्यवसाय—प्राथमिक ज्ञान, ज्ञानका विषय ज्ञान ।

व्यवस्था—मर्य्यादा ।

व्यवहार—शब्दप्रयोग, ज्ञान, बोधन करनेकी इच्छासे वाक्यका प्रयोग ।

व्यवहारपद—व्यवहारका विषय ।

व्याघात—असम्बद्धार्थकवाक्य जैसे कि—यावज्जीवमहं मौनी; ब्रह्मचारी च मे पिता । माता तु मम वन्ध्यासीत् अपुत्रश्चपितामहः ।

व्याप्य—व्याप्तिका आश्रय ।

व्याप्यवृत्ति—स्वसमानाधिकरण जो अत्यन्ताभाव तादृश अत्यन्ताभावका अप्रतियोगी ।

व्यावर्त्तक—विशेषण ।

व्यावृत्ति—भेद, अत्यन्ताभाव, प्रयोजन ।

व्यासङ्ग—अन्यकार्योंको छोडकर एक कार्य्यमें लगना । मनकी विषयान्तरमें अनासक्ति ।

व्युत्पत्ति—शब्दशक्तिग्रह, शक्तिग्रहजन्यसंस्कार, व्यवहार,—जैसे कि लोकव्युत्पत्तिका अर्थ लोक-व्यवहार है, विग्रहव्याक्य जैसे कि पदस्य अर्थः पदार्थः इसकोभी व्युत्पत्ति कहते हैं ।

शक्त—शक्तिवाला, निरूपकतासम्बन्धसे शक्तिवाला ।

शक्तिः—कारणनिष्ठ कार्योत्पादनके योग्य धर्मविशेष ।

कारणत्व—शब्दनिष्ठ शक्ति अर्थस्मृत्यनुकूल पदपदार्थसम्बन्धरूप है ।

शक्य—शक्तिनिरूपितसे ज्ञात हुआ अर्थ जिसमें विषयता सम्बन्धसे शक्ति रहती हो।

शब्दाध्याहार—आकाङ्क्षितशब्दका अनुसन्धान।

शरीर—चेष्टाका आश्रय, इन्द्रियोंका आश्रय, अवच्छेदकतासम्बन्धसे सुखाश्रय या दुःखाश्रय, आत्माके भोगका आयतन और अन्त्यावयवि।

श्रद्धा—फलके अवश्यम्भावका निश्चय। आस्तिक्यबुद्धि, आदर।

श्रवण—शब्दविषयक प्रत्यक्ष।

श्रावण—श्रोत्रेन्द्रियजन्यप्रत्यक्ष।

सन्तति—अविच्छिन्नधारा, सन्तान।

सन्दर्भ—योग्यशब्दोंसे सारात्मकगूढार्थका प्रकाश।

सन्निकृष्टत्व—सान्निध्य, सन्निधान, सन्निधि, अव्यवधान।

सामीप्य—सन्निपात, सन्निहितत्व।

सम्प्रतिपत्ति—निश्चय।

सम्प्रदाय—गुरुपरम्परासे प्राप्त सदुपदेश।

सम्बन्ध—सम्बन्धिओंसे भिन्न होकर सम्बन्धिओंके आश्रित।

सम्वाद—सम्मति, अविरुद्धार्थकज्ञान।

संसर्ग—सम्बन्ध।

संसर्गाभाव—अन्योन्याभावसे भिन्न अभाव।

संस्थान—अवयवोंका समुच्चय, अवयवोंकी रचनाविशेष आरम्भक अवयवोंका संयोगविशेष।

संहत—मिलित, संघात।

संहार—प्रलय।

संहिता—वेदका एकभाग ऋषीप्रणीत धर्मशास्त्र पुराण।

समनियत—व्याप्य होकर व्यापक।

समभिव्याहार—साथ उच्चारण।

समय—इस शब्दका यह अर्थ है, इत्याकारक सङ्केत।

समाप्ति—अवसान, चरमवर्णका ध्वंस, चरमवृत्तिका ध्वंस।

समास—संक्षेप, समाहार, अनेकपदोंका एकपदीभवन

समाहार—साहित्य।

समुदाय—अपेक्षाबुद्धिविशेषका विषय।

समूहालम्बन—अनेकप्रकारतानिरूपक, अनेकमुख्यविशेष्यताकज्ञान।

सविकल्प—वैशिष्ट्यवगाहि, सप्रकारकज्ञान।

सहचार—सामानाधिकरण्य।

सहावस्थायित्व—एकदेशमें एकक्षणावच्छेदेन सामानाधिकरण्य।

साक्षात्कारि—प्रत्यक्षात्मकज्ञान साक्षात्कार।

असाधारण—इतरवृत्ति धर्मसे भिन्न तद्गतबहुधर्मवत्त्व ।
साधकमान—साध्यवत्ताका निश्चय, पक्षमें साध्यका ज्ञान साध्यसिद्धि ।
साधनवैकल्य—साधनका अभाव ।
साधारण धर्म—तत्से भिन्नमें रहकर तत्में रहनेवाला ।
साध्यता—सिद्धिकर्मत्व, इच्छानिरूपित विषयता विशेष ।
साध्यताघटकसम्बन्ध—जिस सम्बन्धसे साध्यपक्षमें विवक्षित हो वह सम्बन्ध ।
साध्यतावच्छेदक—जिस धर्मसे या जिस सम्बन्धसे साध्यता अवच्छिन्न हो वह धर्म या सम्बन्ध ।
साध्यप्रसिद्धि—साध्यका ज्ञान ।
साध्यसंसृष्टज्ञान—साध्यसम्बन्धिविषयकज्ञान ।
सामग्री—कारणकूट ।
सामयिकाभाव—उत्पत्तिविनाशशाली संसर्गाभाव ।
सामर्थ्य—किञ्चित्कार्य्यजननयोग्यत्व ।
सामानाधिकरण्य—तदधिकरणवृत्तित्व ।
सामान्य—नित्य होकर अनेकसमवेत ।
सिद्धसाधन—प्रमाणान्तरसे ज्ञातार्थका साधन ।
सिद्धान्त—प्रामाणिकत्वेन अभ्युपगत अर्थ, तत्तच्छास्त्रसे सिद्ध अर्थ ।
सिद्धि—निश्चयात्मक ज्ञान ।
सुख—धर्ममात्रही जिसका असाधारण कारण हो ऐसा गुण, सर्वात्मना
अनुकूलवेदनीय—अन्यविषयकेच्छानधीनेच्छाविषय ।
सुषुप्ति—पुरीतत् के साथ मनका संयोग, निद्राऽवच्छिन्नमनःसंयोग ।
सृष्टि—प्रपञ्चोत्पत्त्यनुकूलव्यापारविशेष ।
स्तुति—गुणवत्तया किसी पदार्थका ख्यापन ।
स्थिति—गतिकी निवृत्ति ।
स्पार्शनम्—त्वगिन्द्रियजन्यप्रत्यक्ष ।
स्फोट—अकारादिवर्णोंसे अतिरिक्त अकारादिवर्णोंसे अभिव्यङ्ग्य अर्थका प्रत्यायक नित्यशब्द ।
स्वगत—स्वमें विद्यमान ।
स्वतन्त्र—इतरसत्तानधीनसत्ताक ।
स्वभाव—हेत्वन्तरकी अपेक्षा नहीं रखनेवाला वस्तुका धर्मविशेष ।
स्वारसिक—सकलजनसाधारण ।

॥ इति ॥

अथ

संशोधनपत्रम् ।

पृष्ठ.	पङ्क्ति.	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	१३	त्रिकाल्बाध्य	त्रिकालाबाध्य
२	११	कहेते हैं	कहते हैं
२	१२	हैं:—	है—एवमग्रेऽपि
२	१४	श्री चित्	श्रीचित्
२	१६	तथा	तथा सर्वदा
२	१८	अतः	अतः सर्वदा
२	२७	वसी	वैसी
३	५	ज्ञापक भाव	ज्ञापकभाव एवमग्रेऽपि
३	८	वाक्यका है	वाक्यका
४	५	मिथ्यात्व	मिथ्यात्व—
४	९	ब्रह्मद्वैता	ब्रह्म द्वैता
४	११	निपेध ज्ञान	निषेधज्ञान एवमग्रेऽपि
४	२४	निरूपिन	निरूपित
४	२६	विशिष्ठ	विशिष्ट
५	२	पक्षकाखण्डन्	पक्षका खण्डन एवमग्रेऽपि
५	१२	विप्रपत्ति	विप्रतिपत्ति
६	२२	अर्थकानिर्णय	अर्थका निर्णय
७	४	वादि प्रतिवादि	वादि–प्रतिवादि–मध्यस्थ.
७	९	विरह दशा	विरहदशा
७	१६	धर्मिविषयाभान	धर्मिविषया भान
७	१३	वच्छेदक	वच्छेदकक
७	२३	दुसरा	दूसरा
८	११	संशय कारण	संशयकारण
८	१३	संशय स्मारक	संशयस्मारकविषया
८	१७	होता हे	होता है
८	२०	रूपकारणता	रूप कारणता.
११	११	पंक्तितको	पंक्तिको
११	१६	को	का

पृष्ठ.	पङ्क्ति.	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२	९	बह्ममें	ब्रह्ममें
१२	१४	वपसे	रूपसे
१३	१	आकाशमिथ्या	आकाश मिथ्या
१३	६	इसमें	इनमें
१४	१	प्रतिज्ञा विप्रयत्व	प्रतिज्ञाविषयत्व
१५	२२	तादृश पक्ष बोधना	तादृशपक्षबोधना
२०	२३	गुण्यादि विशेषणक	गुण्यादिविशेषणक
२०	३२	अच्छानिरूपण	अच्छा निरूपण
२१	२५	अप्रसिद्ध विशेयणत्व	अप्रसिद्धविशेषणत्व
२२	७	भाव प्रति	भावप्रति
२३	८	स्वप्रकारक धी	स्वप्रकारकधी
२४	७	नं दे	न दें
२५	१६	होनेस	होनेसे
२६	३	कुच्छ	कुछ
२८	३३	निवेध बोधकत्वे	निषेधबोधकत्वे
२८	३३	भुतेः	श्रुतेः
३४	७	भाव विप्रयत्व	भावविषयत्व